तेतली-पुत्र

[संवत् २०२४ के कांदावाडी (बम्बई) चातुर्मास में दिये गये प्रवचनों का संग्रह]

: प्रवचनकार :

लींबडी नाना सम्प्रदाय के आध्यात्म योगी बा. ब्र. पूज्य

श्री केशवलालजी म. साहब की सुशिष्या बा. ब्र.

विदुषी श्री लीलावंतीबाई महासतीजी

: सम्पादक :

रत्नकुमार जैन 'रत्नेश'

साहित्यरत्न, धर्मशास्त्री

: प्रकाशक :

श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, कांदावाडी (बम्बई)

: सचालित :

श्री सुधर्मा ज्ञान मंदिर,

१७०, कांदावाडी, बम्बई–४.

: प्रकाशक :

मानदमंत्री,

श्री सुधर्मा ज्ञान मंदिर,

१७०, कांदावाडी, बम्बई–४

लागत मूल्य		प्रथमावृत्ति		विक्री मूल्य
रु. ७–५०	☆	२००० प्रति	☆	रु. ३–००

प्राप्तिस्थान

श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ,

१७०, कांदावाडी, बम्बई–४

: मुद्रक :

श्री. धीरूभाई जे. देसाई,

स्टेट्स पीपल प्रेस,

घोघा स्ट्रीट कोट, बम्बई–१

मंत्रियों का निवेदन

सौराष्ट्र नाना लींवडी सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी विदुषी महासती श्री लीलावतीबाई महासतीजी के आध्यात्मिक प्रवचनो का यह संग्रह हिन्दी मे प्रकाशित करते हुए हमे अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है ।

विगत १७ वर्षों से हमारा यह प्रयत्न था कि महासती जी का चातुर्मास कादावाडी मे हो और उनके तात्त्विक प्रवचनो को सुनने का लाभ बम्बई संघ को भी प्राप्त हो । सद्भाग्य से संवत् २०२४ का यह चातुर्मास महासतीजी ने कांदावाडी मे करने की अनुमति दी तो इससे संघ मे उत्साह और हर्ष की लहर व्याप्त हो गई । वर्षों की इच्छा पूरी होने पर ऐसा होना स्वाभाविक भी था ।

सतीजी के कतिपय प्रवचन संग्रह गुजराती भाषा मे प्रकाशित हो चुके है, जिनका उस क्षेत्र में अच्छा प्रचार हुआ है । फिर भी क्षेत्रीय भाषा मे प्रकाशित होने से उनका लाभ उस सीमा तक ही सीमित रहा । इस कमी को कादावाडी संघ के कार्यकर्ताओ ने समझा और यह निश्चय किया कि सतीजी के प्रवचनो को अगर गुजराती के वजाय हिन्दी भापा मे प्रकाशित कराया जाय तो उसका प्रचार ज्यादा हो सकता है । हिन्दुस्तान के किसी भी कौने मे रहने वाला व्यक्ति भी चाहेगा तो इसका लाभ आसानी से उठा सकेगा । इसी भावना को लक्ष्य मे रख कर हमने यह पुरुषार्थ किया है । आशा है हमारा यह नम्र प्रयास समाज में लोकप्रिय बनेगा और दूसरे संघ भी इसका अनुकरण करने मे तत्पर बनेगे ।

सतीजी अपने प्रवचनो में मुख्य रूप से तत्वज्ञान पर ही विशेप जोर देते है । क्योकि समझने योग्य भी यही है । मै कौन हूं ? जिस दिन आत्मा यह समझ लेता है, उस दिन वह सव कुछ समझने का अधिकारी बन जाता है । पर भाव को छोड़ कर स्वभाव में स्थिर होना ही आत्मा से परमात्मा बनना है ।

चातुर्मास दरमियान सतीजी ने ज्ञाता सूत्र के १४ वे अध्ययन तेतलीपुत्र का अधिकार फरमाया था, उसी को लक्ष्य मे रख कर पुस्तक का नाम तेतली–पुत्र रखा गया है ।

तत्वज्ञान जैसे गंभीर विषय को भी सतीजी अपनी विशिष्ट शैली से इस तरह समझाते है कि सहज ही जन-मानस उनके प्रति आकर्षित हो जाता है । यह उनकी प्रवचन पटुता के साथ साथ विद्वत्ता का भी परिचायक है ।

शास्त्रीय ज्ञान के वे दृढ हिमायती है । वे अपनी शिष्याओ को भी लगन पूर्वक शास्त्रीय ज्ञान कराते है । कई सतियो को ११ सूत्र कठस्थ है ।

सूत्र-सिद्धान्तों के पठन-पाठन पर सतीजी ज्यादा भार देते है। वे कहते हैं सर्व प्रथम अपने सिद्धान्तों का ज्ञान करो और फिर अपने जीवन को सुधारो। अकेला ज्ञान या अकेली क्रिया कभी फलदायी नही होती है।

सम्यग् ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्ष :

और भी कहा है :-

पढम नाण तओ दया।

ज्ञान तो पहले होना ही चाहिये। परन्तु ज्ञान के साथ क्रिया होगी तभी जीवन मे सुधार हो सकेगा।

ज्ञान रहित क्रिया का और क्रिया रहित ज्ञान का कोई महत्व नहीं है। शास्त्रीय ज्ञान के अभाव मे ही आज हमारे समाज मे धार्मिक शिथिलता दृष्टि-गोचर हो रही है। कई लोग लोक-प्रवाह मे वह जाते है और सच्चे धर्म के प्रति अरुचि प्रकट करने लग जाते है। इन सबके मूल मे सम्यक् ज्ञान का अभाव ही मुख्य कारण होता है। अत: आज सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यही है कि हम अपना शास्त्रीय ज्ञान बढ़ावें, जिससे समाज मे आज जो धार्मिक शिथिलता और अनादर भाव की विषम वृत्ति घर कर गई है उसे दूर हटाने में मददगार बन सकेंगे। अगर प्रतिदिन भी एक घंटा स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति समाज में नियमित रूप से चालू हो जाय तो धीरे धीरे समाज की काया पलट हो सकती है और धर्म की मधुर सुवास जीवन को सुगधित बना सकती है। हमारे उपाश्रयों में स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल सके वैसा प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

इस पुस्तक के प्रकाशन मे भाई श्री रत्नेश और भाई श्री नंदलाल दोशी का हमें बहुत सहयोग रहा, एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

दानवीर सेठ रामजीभाई वीराणी ने पुस्तक प्रकाशन के लिये ५ हजार रुपये प्रदान किये है जिससे यह पुस्तक अल्प मूल्य में वितरित की जा रही है। आशा है अधिकाधिक संख्या में भाई-बहिन इसका लाभ उठावेगे और महासतीजी की अमूल्य वाणी को अपने जीवन में धारण कर वीतराग मार्ग के पथिक बनेगें-इसी शुभ भावना के साथ-

भवदीय,

रवीचंद सुखलाल शाह

रमणीकलाल कस्तुरचंद कोठारी

मानदमंत्री,

श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, कांदावाडी

कांदावाडी,

२०-२-६९.

सम्पादकीय

यही कांदावाडी स्थानक, जहां वीस वर्ष पूर्व महासती उज्ज्वलकुमारी जी के व्याख्यान लिखने का मौका मिला था, जो 'उज्ज्वल वाणी' के नाम से प्रकट हो चुके हैं।

संयोग की ही वात है कि इतने लंबे अर्से वाद प्रस्तुत व्याख्यान संग्रह – तैंतली-पुत्र–लिखने का सुयोग मिला – जिसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं।

जिनके प्रवचन आपके सामने आ रहे हैं– वे हैं–वाल ब्रह्मचारी श्री लीलावंती बाई महासती–जो अपने गण की प्रमुख आर्या है, विदुषी और चारित्र सम्पन्न प्रभा-विक साध्वीजी हैं–। जो कार्य आज से २० वर्ष पूर्व महासती उज्ज्वल कुमारीजी ने किया– वैचारिक क्रांति का–उसका अगला कदम आचार में क्रांति का श्रेय महासती लीलावंतीवाई को जाता है। आप इन व्याख्यानों को पढेंगे तो मेरी इस बात से आप भी सहमत हो जायंगें।

हम अपने जीवन को धर्ममय कैसे वनावें ? जहां–तहां इसी प्रश्न का समाधान आप इन प्रवचनों में भी देखेगें। विचारों से क्रांति पैदा करना पहली सीढी है–उसका अगला सौपान चारित्र मे उसे उतारना है। तभी वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान बनता है। महासतीजी के प्रवचनों का यही हार्द है।

सतीजी अपने प्रवचनों में आत्म ज्ञान पर ही विशेष जोर देते है। क्योंकि यही ज्ञान सच्चा ज्ञान है। इसके अभाव में अन्य सभी ज्ञान अज्ञान है–सा विद्या या विमुक्तये।'

सतीजी की व्याख्यान शैली सुंदर है, विषय प्रतिपादन शक्ति भी अनूठी है। प्रहार इनका इतना सशक्त होता है कि वह सीधा तीर की तरह हृदय से टकराता है। सती जी के प्रवचनों की सब से बड़ी विशेषता यही है कि वे श्रोताओं को अन्त तक अपने से वांधे रखती है।

हृदय को स्पर्श करने वाले उदाहरण अपना प्रभाव डाले बिना नही रहते। कठौर से कठौर हृदय वाला पुरुष भी क्यों न हो, लेकिन जब वे अनुकम्पा का प्रतिपादन करने लगती हैं तो पत्थर दिल भी पिघले बिना नही रहता। यही बात उनके ब्रह्मचर्य के प्रवचन के बारे में भी है। जैसा स्पष्ट चिंतन और मनन उनका सिद्धान्तों के प्रति है–वैसा अन्यत्र बहुत कम दिखाई देता है। अत्यधिक स्पष्टवादिता भी इनका एक गुण है।

अपने कार्यो मे श्रावकों का दखल वे स्वीकार नही करती और न श्रावकों के कार्यो में खुद दखल देना ठीक समझती है। उनका यह कथन देखिये–'साधु उपदेश दे

सकता है, आदेश नहीं । तुम्हारी तुम जानो । हम तो पक्षी की तरह पंख फडफ़डाकर उड़ जाने वाले है । सुनाना हमारा काम है । स्वाध्याय करना हमारा धर्म है । यही हमारी खिचडी है, जिसे हमें ही पकानी है । उसके साथ साथ तुम भी अपनी ढोकली पकालो तो हमारा क्या बिगड जाता है ?' साधुत्व का कैसा निस्पृह उपदेश है ?

सती जी गुजराती में बोलती है, उसको तत्काल हिन्दी मे लिखना और फिर प्रवचन का रूप देना सरल काम तो नहीं है, फिरभी मेरे लिये तो यह रस प्रद ही रहा । फिर भी एक बात कहना जरूरी है– भाषा का संबंध मेरे से है, सतीजी से नहीं । उनके तो भाव हैं– उन भावों को लिपिबद्ध करने मे कहीं भूल हो सकती है– जिसका उत्तरदायित्व मुझ पर है, सतीजी का उससे कोई संबंध नहीं है ।

प्रस्तुत संग्रह के प्रारंभिक ७ प्रवचन–'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिसा संजमो तवो' के संदर्भ में दिये गये है । ता. ८–७–६८ से तेतली-पुत्र का प्रवचन शुरू होता है, जो चातुर्मास की पूर्णाहुति तक बराबर चलता रहा है । अतः उसी को लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत संग्रह का नाम तेतली–पुत्र रखा गया है ।

सतीजी की जीवन चर्या ही उनका खुला चरित्र है। उनका अधिकांश समय स्वाध्याय, चिंतन–मनन और पठन–पाठन मे ही व्यतीत होता है । वे स्वयं बाल ब्रह्म चारी है । १८ वर्ष की वय में दीक्षित हुए और आज ३३ वर्ष हो गये संयम की साधना करते करते । उनके पास आज १७ आर्याजी दीक्षित है जो प्रायः सभी बाल ब्रह्मचारी हैं । उनके निकट बैठने से तपोभूमिके साधकों की स्मृति ताजा हो जाती है । उनकी जीवन चर्या हृदय पर अपनी छाप डाले बिना नहीं रहती ।

कांदावाडी संघ की यह प्रकाशन योजना सचमुच प्रशंसनीय है । हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है । हिन्दुस्तान के किसी भी कौने मे बैठा हुआ व्यक्ति भी इसका लाभ ले सकता है ।

विदुषी महासतीजी के प्रवचनों का जैन समाज अधिकाधिक लाभ ले, इसी शुभकामना के साथ –

मोतीवाला जुबिली बाग,
तारदेव, बम्बई ७
ता. २१–२–६९.

रत्नकुमार जैन, 'रत्नेश'
साहित्यरत्न, धर्मशास्त्री

तेतली-पुत्र

भगवान ने सिद्धान्त बताये है। सिद्धान्त यानी तीनो कालमे सिद्ध हुई वस्तु। यहा दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की पहली गाथा का विवेचन चल रहा है। भगवान ने फरमाया है :—

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नम्मंसंति जस्स धम्मे सयामणो।

भगवान ने धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा है। महा मंगलकारी, आनंददायक और भव२ का फेरा मिटानेवाला धर्म ही एक ऐसा साधन है जिससे मोक्ष मिल सकता है। मोक्ष साध्य है और धर्म उसका साधन। जो जीव धर्म का आराधन करते हैं वे ही मोक्ष मे जा सकते है,।

धर्म —धारयतीति धर्म : धारण करने वाला धर्म है। लोगो को दुर्गति में जाने से बचाने वाले को धर्म कहते है। स्त्री, धन, वैभव, बंगला, दुकान, ऑफिस, फरनीचर आदि दुर्गति मे पड़ने वाले को बचा नहीं सकते हैं। धर्म ही तरण-तारण नाव है, उसका जो शरण ले लेते हैं वह संसार-समुद्र से पार हो जाते हैं। आनंदघनजी कहते है :—

दुख दोहग दूरे टल्यारे, सुख संपदशुं भेट
धींगधणी माथे कियोरे, कुण गंजे नरखेट ?
विमल जिन दीठां लोयणे आज,
मारा सिध्या वांछित काज

विमलनाथ जी की स्तुति करते हुए आनदघनजी कहते है-जो आत्मा प्रभु का शरण ग्रहण कर लेता है उसके दुख दर्द सदैव के लिये दूर हो जाते है। **आणाए धम्मो, आणाए तवो, आणाए मामगं धम्मं'** — मेरा धर्म आत्मा में है, आणा कांक्षी ही मेरा धर्म स्वीकार करते है। उनका ही मोक्ष होता है। जिसने यह आज्ञा धारण कर ली उनका सब दुख दूर हो जाता है। फिर वहां दुख आ नही सकता है। दुख क्या है ? मनुष्य अज्ञान से ही दुखी होता है। भगवान ने आचारांग मे कहा है :—

लोयंसि जाण अहियाए दुक्खं

लोक मे अज्ञान ही सबसे बडा, दुख है। जब तक अज्ञान दूर नही होता तब तक मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता है।

अज्ञान का अंधकार सूर्य से या दीपक जलाने से दूर नही होता है, वह तो ज्ञानी पुरुषो के ज्ञान से ही मिटाया जा सकता है। हमारे ज्ञानी संत-महात्माओं ने जगह२ ऐसे प्रकाश स्तंभ खडे कर दिये है जहा से मनुष्य प्रकाश की ज्ञान-किरण प्राप्त कर अपनी आत्म-ज्योति को प्रकाशित कर सकता है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ही मनुष्य का अज्ञान दूर होता है और ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है। स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होता है।

सज्झाएणं भन्ते जीवे किं जणयई ?

स्वाध्याय करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

भगवान ने कहा :–

सज्झाएणं जीवे ज्ञानावरणीय कम्मं खवेई

स्वाध्याय करने से जीव ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा करता है। स्व + अध्यवसाय अर्थात अपने स्वरूप को जानना स्वाध्याय है। पर को समझ कर उससे निर्लिप्त होना और स्वाध्याय में आना – आत्म दर्शन करना सम्यग् दर्शन है। यह सम्यग् दर्शन आते ही आत्मा की क्रोडाक्रोडी सागरोपम की स्थिति भी सीमित होकर अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल परावर्तन तक की हो जाती है। शास्त्रो मे सम्यग् दर्शन की बडी महिमा गाई गई है। नौ पूर्व की विद्या भी सम्यग् दर्शन के अभाव मे अविद्या कही गई है :–

जो होय पूर्व भणेल नवपण जीवने जाण्यो नहीं
तो सर्व ते अज्ञान भाख्युं, साक्षी छे आगम माहीं।

नौ पूर्व की विद्या पढ़ कर भी जो आत्मा को नही जान सका तो उसका ज्ञान अज्ञान ही है। दृष्टि सच्ची न हुई तो ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है। सच्ची दृष्टि आने पर ही ज्ञान शुद्ध होता है। जैसे चाद विना चादनी और हंस बिना सरोवर शोभित नही होता, वैसे ही ज्ञान भी सम्यग् दर्शन के विना शुद्ध नही होता है। सम्यग् दर्शन होने पर ही आत्मा का मोक्ष (निर्वाण) सभव होता है। अगर सम्यग् दर्शन की साधना उत्कृष्ट रूप मे हुई तो जीव का उसी भव में मोक्ष हो जाता है। मध्यम रूप मे साधना रही तो जीव ३ भव मे मोक्ष [illegible] लेता है। जघन्य रूप में साधना रही तो जीव अधिक से अधिक १५ भव में मोक्ष [illegible]ता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि सम्यग् दृष्टि जीव मिथ्यात्व मे भी चले जाते है। लेकिन जैसे धागे मे पिरोई हुई सूई घुम हो जाने पर भी आसानी से मिल जाती है उसी प्रकार सम्यग् दृष्टि जीवो के मिथ्यात्व मे चले जाने पर भी उनका निर्वाण तो निश्चित है ही। चाहे वे निगोद मे भी क्यो न चले जायं, अर्द्धपुद्गल परावर्तन के वाद तो उनका मोक्ष निश्चित है ही।

क्योंकि उन्होने अपना संसार तो सीमित कर ही लिया होता है। फर्क इतना ही है कि सम्यग् दृष्टि जीव अपनी मंजिल पर कम समय में सीधा पहुंच जाता है, वह इधर उधर नही भटकता फिरता, जब कि पडवाही जीव भटकता भटकता अर्द्धपुद्‌गल परावर्तन काल की मर्यादा तक मंजिल पर पहुंचता है। यहा प्रश्न हो सकता है कि ऐसे जीव कितने है? जो समकित प्राप्त कर लेने पर भी मिथ्यात्व में चले गये हैं? भगवान ने शास्त्रों मे कहा है–जिन्हे समकित हुआ ही नही और होगा भी नही ऐसे अभवी जीव अनंत है। उनसे सम्यग् दृष्टि आत्मा जो समकित से गिर कर (पडवाही) मिथ्यात्व में चले गये है वे अनंत गुणा अधिक है। उनसे भी सिद्ध के जीव अनंत गुणा है। यह पन्नवणा सूत्र का अधिकार है। ऐसा हिसाब–किताब सर्वज्ञ भगवान को छोड़ कर और कौन बता सकते हैं?

हमारे शास्त्रो मे २४ दंडक कहे गये हैं। वनस्पति को छोड़ कर शेष २३ दंडकों के जीवो का समूह एक तरफ इकट्ठा कर दिया जाय और दूसरी तरफ सिद्ध भगवान के जीवो का ढेर कर दिया जाय तो सिद्धो के जीव अनंत गुणे होगे। इतने जीव सिद्ध हो गये, पर हम अभी तक सिद्ध न हो सके, इसका कारण अज्ञान ही है। हमारी ही भूल हमारे मार्ग मे बाधक बनी हुई है। तभी तो आनदघनजी ने कहा:–

धींग धणी मांथे कियो रे कुण गंजे नरखेट ?

जिस पर सरकार का हाथ हो उसको फिर डर किसका? आनंदघनजी कहते है–आज मैंने दिव्य नयन से आपका दर्शन कर लिया है, अब मै किसी से डरने वाला नही हू। सिह को अपना स्वरूप समझ मे आ गया है। कर्म से बकरा बना हुआ सिह भी जब आत्म ज्ञान में आ जाता है तो उसका अज्ञान निकल जाता है। मैंने भी आज अपना आत्म स्वरूप पहिचान लिया है – मेरा सिह जागृत हो गया है अब मुझे कर्म रूपी गीदड से डरने की जरुरत नही है।

लेकिन आज कौन किससे डर रहा है? सिह भी गीदड से डरता है क्या? लेकिन आज तो यही हो रहा है। कर्म गीदड है और आत्मा सिह, पर आज वह कर्म से डर रहा है। सिह गीदड से डर रहा है। क्योकि वह आत्म मान भूला हुआ है–वह अपने को सिह नही [illegible] रहा है। यह सब क्या है? अज्ञान का ही परिणाम है। इसीलिये ज्ञानी कहते ह– आत्म शक्ति को पहचानो, सोओ मत, जागृत बनो :–

त ब्रह्मांड भेदी जावे,
एक पलमें पल्टो खावे,
तारी अखंड शक्ति भावे रे हो ज्ञानी आत्मा !
ओ आत्म तारी अपूर्व लीला निरखो आज तो

आत्मा की शक्ति अनंत है। सातवी नरक मे पड़ा हुआ जीव भी एक समय मे

ब्रह्मांड भेद कर ऊपर नवग्रैवेयक लोक के अग्र भाग तक पहुंच जाता है। समय यानी जिसका भेद न हो सके। कितनी तेज गति है आत्मा की? ऐसी प्रचंड शक्तिवाला आत्मा आज गीदड हो गया है। वह अपनी शक्ति को पहचान नही पा रहा है।

एक सिह है, जो बीमार पडा है, मुर्दा हो गया है, पूंछ भी उठा नही सकता है। गीदड ने उसे देखा तो खुश हो उठा। सोचा, आज तो शेर का मांस खाने को मिलेगा। लेकिन फिर यह सोचने लगता है कि शेर जीता है या मर गया है? जीवित होगा तो मेरी मौत हो जायगी। शंका-कुशंका में वह आगे-पीछे होता रहता है। इतने में शेरनी गर्जना करती हुई आती है तो गीदड भाग जाता है। शेर कहता है—ठीक हुआ जो तूं आ गई, नही तो आज यह गीदड मुझे हैरान कर डालता। शेरनी बोली—कौन! गीदड़! तुम्हे हैरान कर डालता? एक आंख भी ऊंची कर ली होती या पूछ भी हिला दी होती तो वह भाग खडा हो जाता, मुड कर भी नही देखता। ज्ञानी पुरुष भी यही कहते हैं—हे आत्मा! कर्मरूपी गीदड से तूं क्यो डर रहा है? तू अपनी प्रचंड शक्ति का अनुभव कर, तू तो राजाओ का भी राजा है, तू जड़ नही चैतन है, इसको याद रख।'

आत्मा तो अजर-अमर है — नाम–धाम से वह अलिप्त है। वह न शरीर है, न आंख, नाक और कान है। ये सब जड है— अशाश्वत है— मिटनेवाले है। मै तो इनसे जुदा अरूपी हूं, पवित्र हू, चैतन्य हू, सच्चिदानंद स्वरूप हू। जब यह स्वरूप जीव को ज्ञात हो जाता है. तब वह किसी से डरता नही है। पुरुषार्थ जागृत होते ही आत्मा अपने स्वरूप का जानकार हो जाता है। स्वाध्याय करने से ही जीव को अपना यह स्वरूप समझ मे आता है और आत्मा सम्यग्ज्ञान का धारक बनता है।

यहा एक प्रश्न सामने आता है. . कर्म बडा है या कर्म को पैदा करनेवाला बड़ा है?

कर्म मैंने पैदा किये है तो उसे मै ही मिटाऊगा, दूसरा कोई नही मिटा सकता।

बड़े बडे पत्थरों को सुरंग से फोडा जाता है। दारू गोला (बारूद) भर कर आग लगाने से बड़े बड़े पत्थर भी चूर–चूर हो जाते है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अंतराय और मोहनीय इन चार घनघाती कर्मो को फोडने के लिये सम्यग् दर्शन की एक चिगगारी ही पर्याप्त होती है। एक कविने कहा है :—

एक ज दे चिनगारी, महानल, एकज दे चिनगारी!
चकमक लोढूं घसता घसता खरची जिंदगी सारी!
जा मगरी मा तणखो न पड्यो, न फली मेहनत म्हारी महानल....

अज्ञान के पहाड को फोडने के लिये सम्यग्दर्शन की एक चिनगारी ही मुझे चाहिये और मै कुछ नही चाहता। मुक्ति भी मुझे नहीं चाहिये:—

मुक्ति मंगल स्थान तोय मुझने इच्छा न लक्ष्मी तणी
आपो सम्यग् रत्न श्याम जीवने तो तृप्ति थाये घणी ।

मुझे तो सम्यग्दर्शन चाहिये, वह अजायगा तो मुक्ति अपने आप मुझे मिल जायगी । मुक्ति रूपी महल की नीव तो सम्यग्दर्शन ही है । नीव अगर मजबूत होगी तो महल खडा होते देर नही लगेगी । यह सम्यग् दर्शन दो तरह से उत्पन्न होता है :–

तन्निसर्गादधिगमाद्वा

(१) निसर्ग से–स्वतः और २ गुरु समागम से । सम्यग्दर्शन ऐसा कीमती रत्न है जिसका मुकावला दुनिया का कोई भी बहुमूल्य पदार्थ नहीं कर सकता ।

लोहे से पीतल महगा होता है । पीतल से ताबा और तांबे से चादी महंगी होती है । चांदी से सोना और सोने से हीरा बेश कीमती होता है । कोहिनूर हीरा लाखो का माना जाता है । लेकिन इससे भी बहुमूल्य हीरा सम्यग्दर्शन है । कोहिनूर हीरे ने तो अनेकों का संहार कराया है, उसे कोई खा जाय तो मौत के मुह में चला जाय । परन्तु सम्यग्दर्शन का रत्न तो इतना अमूल्य है कि उसकी कोई कीमत नही है । उससे सबका कल्याण ही होता है । किसीका अहित वह नही करता । जैनदर्शन की तो शुरुआत ही सम्यग्दर्शन से होती है ।

आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरु होय ।
बाकी कुल गुरु कल्पना, आत्मार्थी नहि जोय ।

जहा सम्यग् दर्शन है वही श्रावक और साधुपना हो सकता है । उसकी महिमा अपरपार है । उसको कोई छीन नही सकता ।

टिटोडी तो टव २ करे ऊंचा मुंके इंडा ।
समकित विनानी करणी करे, एकडा बिना ना मिंडा ।

सम्यग्दृष्टि जीव किसी के चक्कर मे नही पडता । वह नव तत्वो में ही श्रद्धा रखता है । उसकी श्रद्धा अटूट होती है । अतः सम्यक् रत्न को समझो, उस पर मिथ्यात्व की रज-मेल मत लगने दो । उसके जो पाच अतिचार वताये गये है : (१) शंका–जिन मार्ग में शका करना २ काक्षा– मिथ्यात्व की चाहना करना । (३) वितिगिच्छा–त्यागी पुरुषों से घृणा करना या धर्म फल मे संदेह करना (४) परपाखंड पससा– परमत की प्रशसा करना (५) पर पाखंड संस्तव : पर मत का परिचय करना ।

ये जो पांच अतिचार वताये गये है इन से वच कर सम्यग्रत्न को हिफाजत करनी चाहिये । जो भव्य आत्माएे इस सम्यग् दर्शन को समझ कर अपने जीवन में धर्म का आचरण करेगे वे अवश्य अपने जीवन का कल्याण कर सकेगें ।

ता. १–७–६८ ·७५

[२]

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की पहली गाथा का वर्णन चल रहा है :

धम्मो मंगल मक्किट्ठं–धर्म उत्कृष्ट मंगल है, वह सदैव जीव को दुर्गति से बचाता है। धर्म की शक्ति अपरपार है। जीवन मे धर्म का जितना पालन किया जाता है जीवन उतना ही उच्च बनता है। धर्म हीन जीवन दुखो को प्राप्त करता है, अपना अध:पतन ही करता है।

पाठशाला में जाते समय सबसे पहले बालक को एक की संख्या सिखाई जाती है, पीछे २ और ३ की संख्या। सबसे पहले जो एक की संख्या सिखाई जाती है वह क्या सूचित करती है ? यही न कि आत्मा एक है। २ आत्मा नित्य है ३ कर्ता, ४ भोक्ता ५ मोक्ष और ६ मोक्ष का उपाय :–

षट स्थानक संक्षेप मां षटदर्शन पण तेह
समझाववा परमार्थ ने कह्या ज्ञानिये तेह।

षट् पद मे पहला पद आत्मा का है। आत्मा क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? इसका विवेचन करते हुए शास्त्रकार कहते है:– आत्मा असंख्यात प्रदेशी है, लोक जैसा है। जितने प्रदेश लोक के है उतने ही प्रदेश आत्मा के भी हैं :–

लोक मात्र प्रमाणो हि निश्चये नहि संशयः
व्यवहारो देह मात्रेपि कथयंति मुनिश्वराः।

लोक असंख्याता योजन क्रोडा क्रोडी लम्बा-चौडा है, उतना ही आत्मा भी है। आत्मा अरूपी है, सुख-दुख का ज्ञाता और उपयोग वाला है। 'उपयोगो लक्षणं जीवस्य जानना और देखना जीव का लक्षण है। आत्मा अरूपी है, वह चर्म चक्षुओ से कैसे जानी जा सकती है ?

चरम नयणे करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार,
जिणे नयणे करी मारग जोवियें रे नयन ते दिव्य विचार–
पंथडो निहालुं रे बीजा जिनतणोरे, अजित अजित गुण धाम,
जे ते जीत्यारे तेणें हुं जीतियो रे, पुरुष किस्युं मुज नाम ? – पंथडो निहालुं.

आनंदघन जी दूसरे अजितनाथजी की स्तुति करते हुए कहते है :–चर्म चक्षुओ से धर्म का मार्ग देखना चाहूं तो संसार मे ही भटक जाता हूं, परन्तु दीव्य विचार रूपी नयनो से अर्थात् ज्ञान-चक्षुओसे जब उसे देखता हूं तो उस मार्ग को पा,जाता हूं। मन तो भटकने वाला है, स्व मे नही तो पर मे चला जायगा। चुप बैठनेवाला तो वह नही है। अत.क्या करना और क्या नहीं करना इसका विवेक तो होना ही चाहिये।

बाजार से आप साधारण सी वस्तु लेने जाते हैं, वह भी देख–भालके लाते हैं। घडा जैसी मामुली चीज भी देखते हैं और सोच कर लेते हैं कि इसमे पानी ठंडा रहेगा या नही ! कही फूटा हुआ तो नही है। उसे बजा कर भी देखते हैं। शाक भाजी भी सडी-गडी लेना नही चाहते है। इसी तरह दूध, दही गेहूं-बाजरा भी देख कर लिया जाता है। खराव चीज कोई भी लेना नही चाहता। जहां शरीर स्वास्थ्य के लिये इतनी सावधानी रखी जाती है तो मानसिक स्वास्थ्य के लिये हमे कितनी अधिक सावधानी रखनी चाहिये ? इस पर भी क्या कभी आपने विचार किया है ? खराब विचार मेरी आत्मा को कही मलिन न बना दे यह क्यो नही आज सोचा जाता है ?

प्रसन्न चन्द्र राजर्षि तपस्या मे लीन खडे है ? श्रेणिक महाराज उन्हे देख कर भगवान से पूछते है – भगवन् ! प्रसन्नचन्द्र राजर्षि इतना कठिन तप कर रहे है, वे अगर मर जायं तो कहा उत्पन्न होगे ?

भगवान ने कहा– अगर वह अभी मर जाय तो पहली नरक मे जायगा।

यह सुन कर श्रेणिक आश्चर्य मे पड गया, पर शका का कोई स्थान नहीं था क्योंकि कहने वाले स्वयं भगवान केवली थे।

उसी मार्ग से सुमुख और दुमुख सेनापति निकले। उन्होने भी राजर्षि को तपस्या में लीन खडे हुए देखा। सुमुख ने उनकी सराहना की और उनके सन्मुख अपना सिर झुका दिया। लेकिन दुमुख से यह देखा न गया। वह बोला–यह कैसा तपस्वी है ? अपने १।। साल के बच्चे को छोडकर चला आया है और अब यह ढोग कर रहा है ? इसे पता नही, उधर काका राज्य लेने को तैयार हो रहा है। राजर्षि के कानो मे भी ये शब्द पहुच गये। फिर क्या था पुरानी वाते याद हो आई। मन ही मन युद्ध के नगारे वज उठे। सेनाएँ आमने–सामने डट गई और भीषण संग्राम शुरू हो गया। मारो-काटो का नाद गुजायमान हो उठा। भाई और लड़के की लडाई आरंभ हो गई। राग और द्वेष का इतना घमासान युद्ध मच जाता है कि भगवान कहते है– राजन् ! अगर राजर्षि अभी मर जाय तो ७ वी नरक मे पैदा होगा। यह क्या ! अभी पहली और अभी ७ वी नरक मे पैदा होगा। श्रेणिक विस्मय मे डूव गया। परन्तु भगवान का कहा सच था। वह असत्य हो नही सकता। क्योंकि

मनः एव मनुष्याणां कारणं वंध मोक्षयो :।

मन ही मनुष्य के वंध और मोक्ष का कारण होता है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के मन मे जो तूफान चल रहा था, वह इस सीमा तक पहुच चुका था कि उसके सभी शस्त्र समाप्त हो चुके थे, केवल मुकुट ही शेप रहा था, उसने जैसे ही अपना हाथ मुकुट पकडने के लिये सिर पर उठाया कि सारा खेल चौपट हो गया। उसे याद आया–यह तो साधु का मस्तिष्क है, मन की धारा पलटा खाती है, विचारो की घमसान लडाई क्षण

में शांत हो जाती है और वह पुनः समाधि में स्थिर हो जाता है। कैसी विचित्र स्थिति है इस मन की ? आप कह सकते हैं मन में बुरे विचार ही क्यों आते हैं ? अच्छे क्यों नही आते ?

मन वाहन पर बेसे विरला
वा नर की बलिहारी रे।

जो पुरुष मन को वश में कर लेते है वे ही नर से नारायण बन जाते है। यह मन का घोडा इतना चंचल है कि इसको वश मे नही करोगे तो यह तुम पर सवार हो जायगा और तुम्हे घुमाने लग जायगा। तुम सवार हो, घोडे पर तो तुम्हे बैंठना चाहिये, परन्तु आज तो घोडा तुम्हारे पर चढा हुआ है, यह कैसी हालत है तुम्हारी ? मन के हाथ मे अपनी डोरी मत दो, मन को काबू मे रखोगे तो बाकी इन्द्रियां अपने आप वश में हो जायगी।

एक शेर जंगल मे घूम रहा है और दूसरा पिजरे में बंद है। दोनो की शक्ति में वड़ा अन्तर हो जाता है ? पिजरे में वंद शेर की शक्ति कुठित हो जाती है। इसी तरह मन को भी पिजरे में बंद कर दो उसे बाहर भटकने मत दो। यही मन का तप है :-

इच्छा निरोधो तपो

अपनी इच्छाओ का निरोध करना तप है। भूख लगे और उसे रोकना तप है, जिसे भूख ही न लगे उस का निरोध तप नहीं कहा जाता। सर्वार्थसिद्ध के देवताओंको ३३ हजार वर्ष वाद आहार की इच्छा होती है। जुगलिया को ३ दिन बाद आहार की इच्छा होती है। वह चौथे दिन आहार लेगा और वह भी चने की दाल जितना ही। उतने मात्र से ही उनकी भूख मिट जाती थी। पदार्थो मे उस समय रस ज्यादा होता था। धरती का स्वाद भी भिन्न भिन्न हुआ करता है। पहले आरे में पृथ्वी शक्कर जैसी होती है-२ आरे में मिश्री जैसी, ३ आरे मे गुड जैसी, ४ आरे में सारेरि जैसी, ५ आरे मे थोडेरी जैसी, ६ आरे मे राख जैसी। इस तरह काल चक्र के हिसाब से पृथ्वी के स्वाद में भी अन्तर होता जाता है। वर्तमान की ही वात देखें। पहले के लोग हाथ का पीसा हुआ अनाज खाते थे और रोगों से कोसो दूर रहते थे। परन्तु आज घर घर में चक्की का आटा खाया जाता है। आज जो गेहूं राशन में मिलता है वह वैसे ही सत्व हीन होता है और फिर चक्की में पीसने से तो उसका जो भी सत्व शेष रहता है वह भी चला जाता है। इसीलिये आज वीमारिया भी अधिक दिखाई दे रही है। पृथ्वी के स्वाद मे भी अन्तर होता चला जाता है अतः उसमे पैदा होने वाले अनाज मे भी उतनी ताकत नही रहती है। यही करण है कि जहां युगलिये चौथे दिन भी चने की दाल जितना आहार करके भी तृप्त हो जाते थे वहा आज आवा सेर आटा भी भोजन के लिये पर्याप्त नही होता है। दूसरे आरे मे २ दिन वाद आहार की जरूरत होती है। तीसरे आरे मे १ दिन वाद। तो क्या यह वर्षी तप

कहा जायगा तीसरे आरेवालो का ? नहीं, वह तप नहीं कहा जा सकता । तप तो मन पर काबू करने से होता है । इच्छाओं का निरोध करना ही तप कहा गया है । उपवास का अर्थ भी यही है कि भूख की इच्छा का निरोध करना ।

धर्म और त्याग को लेकर ही भारतीय संस्कृति का महत्व है । जहां धर्म नही होता वहां भक्ष्याभक्ष्य का कोई सवाल ही नही रहता है । वहां पेट एक कब्र के समान है जिसमें चाहे जो डाल दिया जाता है । इन्द्रिय लौलुप मनुष्य दूसरों की वेदना नहीं सोच सकता । वह तो अपना स्वार्थ सोचता है । लेकिन जैनदर्शन यह नही कहता । वह कहता है अपना हित देख, पर दूसरे का अहित मत कर । दूसरे का दुख भी देख । इन्द्रियो को वश मे रख, इच्छाओ का निरोध कर-मन को काबू में कर, मन के घोडे पर तू खुद सवारी कर, कही ऐसा न हो कि वह तुम पर सवार हो जाय ?

ब्रह्मा वाहन हंस किया है
विष्णु गरुड असवारी रे ।
शिव का वाहन बैल बन्यो है,
मूषक गणेश गुणधारी रे,
मन वाहन पर बेसे विरला
वा नर की बलि हारी रे ।

ब्रह्मा का वाहन हंस कहा जाता है । विष्णु का गरुड, शिव का बैल और गणश का चूहा। यो देवताओ के भी अलग आलग वाहन है, जिन पर वे सवारी करते है । पर मन ने तो इन को भी नही छोडा है :–

देव, दानव और मनुज ऊपर मन करत असवारी रे ।
मन वाहन पर बेसे विरला, वा नर की बलिहारी रे ।

क्या देव, दानव और मानव सब पर मन सवारी कर बैठा है। घोडा सवार पर चढ गया है, जबकि उस पर हमको सवारी करनी चाहिये ! उत्तराध्यान सूत्र मे कहा है :–

अयं साहसीओ भीमो दुड्ठसो परिधावई

यह मन चारों तरफ दौडता रहता है । राकेट से भी मन की गति वड़ी तेज होती है । यहां वैठे २ मन अमेरिका पहुंच जाता है ।

दिन रात करे दौडा दौडी ।
जेनी जग मां जडे न जोडी ।
व्रत नियम नाखें वधा तोडी ।
गुरुकृपा विना मायावाला मननो पार न आवे,
शि शोध करूं अजाण नरने अंधारे केम फावे ।

मन को व्याकरण मे नपुंसक लिग कहा गया है, फिर भी वह पुरुषों को परास्त कर

देता है यह कैसा आश्चर्य है। श्रेणिक को भगवानने कहा था, अगर प्रसन्नचन्द्र राजर्षि अभी मर जाय तो ७ वी नरक में जायगा। लेकिन जैसे ही राजर्षिने अपना हाथ सिर पर फेरा-साधु का वेष स्मरण हो आया। मैं तो साधु बना हुआ हूं, मेरा कौन भाई और कौन पुत्र ? मन ही मन मैंने यह कैसा अनर्थ कर दिया ? राजर्षि पश्चात्ताप करने लगते हैं। जैसे २ वे पश्चात्ताप की अग्नि मे झुलसते जाते है वैसे २ नरक के दरवाजे उनके बंद होते चले जाते है और देव दुदुभी बज उठती है। जिसे सुन कर श्रेणिक पूछता है– भगवन् ! यह क्यो बज रही है? भगवान कहते हैं– राजर्षि को केवलज्ञान हो गया है। मन का कैसा विचित्र हाल है ? अभी २ जो सातवी नरक मे पहुंच गया था वही अब मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। मन की धारा सन्मार्ग मे प्रवाहित हो जाती है तो मोक्ष में पहुंचा देती है।

साधन आपको बहुत अच्छे मिले हुए है। पुण्यात्मा जीव को ही अच्छे साधन मिलते है। पर उनका उपयोग न करो तो उनसे आपको क्या लाभ हो सकता है ? एक इन्द्रिय से दो इन्द्रियां, दो इन्द्रियो से तीन और तीन से चार इन्द्रिया अनती पुण्याई से मिलती है। मन भी अनंती पुण्याई से मिलता है अतः उसे निरर्थक मत घुमाओ, इधर उधर मत भटकने दो और वश में रखो।

पधावन्तनिगिण्हामि, सुयरस्सी समाहियं
न मे गच्छई उम्मगं मग्गं च पडिवज्जई।

मन रूपी घोडे को सूत्ररूपी रस्सी से बांधकर वश में करोगे तो वह उन्मार्ग मे नही भाग सकेगा।

मनडु किम ही न बाजे हो कुंथु जिन,
मनडु किम ही न बाजे।
जिम जिम जतन करीने राखूं,
तिमतिम अलगू भांजे।

आनंदघनजी कहते है–जैसे २ मै मन को पकडता हूं वैसे २ वह दुगुने वेग से भागता फिरता है। रात-दिन दौडता रहता है। ऐसे मन को वश मे करना आसान काम नही है। विरले ही इसको वशमे कर सकते है। श्रीकृष्णने भी गीता मे अर्जुन से कहा है– यह मन वडा चचल है, रथ की ध्वजा की तरह वह हिलता-डुलता ही रहता है। हे अर्जुन ! तू उसको वश मे कर।

मर्कटस्य सुरापानो, तत्र वृश्चिक दंशन :।
तन्मद्ये भूत संचारो यद्वातद्वा भविष्यति।

मन की स्थिति वंदर जैसी है। वंदर स्वभावतः चचल होता है। ऊपर से उसे

मदिरा पिला दी जाय तो वह और अधिक कूदने लग जायगा । संयोग से बिच्छू डंक मार जाय तो उसकी उछल-कूद और बढ जायगी । इस पर भी भूत सवार और हो जाय तो फिर क्या पूछना ? मन का भी ऐसा ही हाल है । आप माला के १०८ मणके फिराते हैं, पर मन कितने मणको मे आपका साथ देता है ? क्या पूरी माला आप बिना मन के झटके के फिरा सकते हैं ? मन इतना चचल है तो उसको वंश मे हम कैसे कर सकते हैं ? ज्ञानियों ने हमें बताया है कि मन को भी अभ्यास से और वैराग्य से वश मे किया जा सकता है ।

मन वाल्यु वले सद्गुरुवर थी,
सद्गुरुवर थी निज अनुभव थी
अभ्यासे अने वैराग्ये थी
मन वाल्यु वले सद्गुरुवर थी ।

अभ्यास करने से मन वश मे किया जा सकता है। संत समागम, सतत जागृति और जाप (ध्यान)मन को वश करने मे सहायभूत बनते हैं । मन बड़ा तूफानी है, वह वश में हो जाय तो मोक्ष-सुख देनेवाला हैं और बिगड जाय तो नरक में फेक देता है । धीरे २ अभ्यास से मन को वश में करना चाहिये । एक दिन का काम नही है । जैसे २ जीवन में वैराग्य की मस्ती बढ़ती जाती है वैसे २ मन भी काबूमे होता चला जाता है । आवश्यकता है जीवन में वैराग्य को बढाने की ।

मुह पर तो मुह पत्ती (मुखवस्त्रिका) लगी हो पर वरघोडा देखने का मोह न छोड सको तो यह कैसी सामायिक है आपकी ? यह तो मन की करतूत हुई, सामायिक की साधना इसे नही कह सकते । साधु के लिये आबू और एरोड्राम का क्या देखना ? उसको इनसे क्या काम है ? कुछ लोग कहते हैं—देखने मे क्या नुकशान है, कुछ जानने को ही मिलेगा । लेकिन मै कहती हू ऐसा कहना ठीक नही है । एक सामायिक करने वाला भी सामायिक मे यह सब देख नही सकता तो यावज्जीव सामायिक वाला इन्हे कैसे देख सकता है ?

वन्धुओ ! वाहर मत देखो, अन्तर्मुखी वनो । सब कुछ भीतर समाया हुआ है । वैराग्य पैदा करो, अभ्यास वढाओ, सव कुछ आपको दिखाई पड जायगा । मनो निग्रह करना सीखिये । इससे आत्मा मे जो अखूट खजाना भरा पड़ा है उसकी चावी आपके हाथ मे आजायगी । जो जीव मन को वश मे करेगे और धर्माराधन करेंगे, वे अवश्य अपने जीवन को प्रशस्त कर सकेगे । याद रखिये जो आत्मा अपने जीवन में धर्म को एकाकार कर लेते है उनके चरणो मे देवता भी नतमस्तक हो जाते हैं :—

देवा वि तं नम्मंसंति जस्स धम्मे सयामणो : ।

ता. २–७–६८ वुधवार

[३]

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं :

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। धर्म की आराधना सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र से की जा सकती है। सम्यग्दर्शन उसकी नीव है- पाया है। जिस मकान की नीव मजबूत होती है उसको गिरने का डर नही रहता है। लेकिन यदि नीव ही कमजोर रही तो मकान भी कमजोर ही रहेगा। इसी तरह सम्यग्दर्शन अगर शुद्ध रहा तो धर्म की आराधना भी शुद्ध रूप से की जा सकेगी।

परमत्थसंथवो सुदिट्ठ परमत्थसेवणा वावि.

शुद्ध दृष्टिसे परम अर्थ की सेवना करना सम्यग् दर्शन है। भगवान ने जो स्वरूप बताये है वह वैसा ही समझना और प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है। हमारा धर्म दयामय है। उसमे कही भी हिंसा को स्थान नहीं है। गांधीजी की अहिसा तो मनुष्य तक ही सीमित थी, परन्तु भगवान की दया तो चराचर प्राणियो के लिये है। वहां कोई भेदभाव नही है। जैसा अपना आत्मा है, नारकीका भी वैसा ही है। कीडे मकौडे और निगोद के जीवो में भी कोई भेद नहीं है। सब का आत्मा समान है। सभी जीव सुख की इच्छा करते हैं, दुख कोई नही चाहता। इसलिये किसी को भी दुख मत पहुंचाओ, प्राणों का घात मत करो, यही अहिंसा है।

जीव था, जीव है और जीव रहेगा, वह कभी नष्ट होने वाला नही है। यहा यह शका हो सकती है कि यदि जीव मरता नहीं है तो फिर पाप किसे लगता है ?

शास्त्रकारो ने प्राणातिपात को हिसा कहा है। जहाँ जीव का नहीं बल्कि प्राणों का घात किया जाता है वही शास्त्रकार हिसा कहते है। जैन दर्शन में १० प्राण कहे गये हैं। एक इन्द्रिय जीव मे ४ प्राण होते है। दो इन्द्रिय में ६, तीन इन्द्रिय में ७, चार इन्द्रिय मे ८, असंज्ञी पंचेन्द्रिय मे ९ और संज्ञी पंचेन्द्रिय में १० प्राण कहे गये हैं। जिस इन्द्रिय के पास जितने प्राण है उन प्राणों को छीन लेना, नष्ट कर देना प्राणातिपात है– हिसा है। सिद्ध मे प्राण नही होते है क्योकि वहा कोई इन्द्रिय नही है। वहा तो केवल भाव प्राण रहता है।

प्राणो को लूटना हिंसा है और ऐसी हिंसा आत्मा का अव:पतन करनेवाली है। जैसा कि कहा भी है।–

हिंसा दुखनी वेलडी हिंसा दुखनी खाण,
अनंत जीव नर्के गया, हिंसा तणा फल जाण।

इसके विपरीत दया कैसी है ?

दया सुख नी वेलडी, दया सुखनी खाण।
अनंत जीव मुकते गया, दया तणा फल जाण।

आचारांग मे कहा है। **कम्मं मूलं च जं छणं**

कर्म का मूल हिसा है, जो आत्मा का अध:पतन करनेवाली है।

तुम जैसा कर्म करोगे वैसा ही तुम्हे फल भी भोगना पडेगा। यह तो हो नही सकता कि कर्म तुम करो और फल कोई दूसरा भोगे। यह तो बिल्कुल सीधा सादा हिसाब है कि जैसा करोगे वैसा ही भरोगे। आचारांग मे कहा है—

तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावे यव्वंति मन्नसि,

तू जिसको मारने का विचार करता है वहा यह समझ कि वह मै ही हूं। तब फिर क्या तू मरना चाहेगा ? तो फिर दूसरे को क्यों मारते हो ? जो चीज तुम्हे प्रिय नही है, वह दूसरो को भी प्रिय कैसे होगी ? इसे क्यो नही समझते। गाली तुम्हे अच्छी नही लगती तो दूसरे को क्यो देते हो ?

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत

यह गीता का साराश है। आपको भी अपने जीवन मे यह सूत्र उतार लेना चाहिये।

आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति सः पश्यति :।

लेकिन आज तो जीवन मे सब उलटा ही दिखाई दे रहा है। अपने जीवन के मुकाबले दूसरो का जीवन तुच्छ माना जा रहा है, उसकी कोई परवाह तक नही कर रहा है। अपने खातिर दूसरो का प्राणान्त कर देना आज वहुत सस्ता बन गया है। लेकिन याद रखिये यह महावीर का मार्ग नही है। दूसरो के दुखों को न समझना और अपना ही सुख देखना हिसा है।

भगवती सूत्र मे गौतमस्वामी पूछते है –

भगवन्। जीव भारी कर्मो वाला कैसे होता है ? भगवान कहते है— प्राणातिपात, मैथुन, क्रोध, मान, माया लोभ आदि १८ पाप स्थानो का सेवन करने से जीव भारी कर्मो वाला होता है। कहिये, आप तो इन १८ पापो मे से कोई पाप नही कर रहे है?

पानी के लिये आप लोग रात को ही नल खोल कर रख देते है कोठी भर जाती। है और पानी फालतू वहता रहता है। लेकिन आप सोते रहते है, क्या यह पानी के जीवों की हिसा नही है ?

घर मे घाटी नही आया है, रसोई के वर्तन सव झूठे पडे है, उनमें सम्मूर्छिम जीवों की उत्पत्ति हो रही है। यह कैसी अहिंसा है आपकी ? आज तो सव कुछ जीवन मे उल्टा ही हो रहा है। धर्म तो जीवन मे रहा ही कहां है ?

गौतमस्वामी भगवान से प्रश्न करते है– भगवन ! स्थावर जीवो को भी क्या दुख होता है ? भगवान उत्तर देते है–

अप्पेगे अंधमच्छे, अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगें पायमच्छे, अप्पेगे गंपफमब्भे अप्पेगे जंघमब्भे अप्पेगे जाणुमब्भे,

एक जन्माध, गूंगा और बहिरा पुरुष जिसके बाई ओर ३२ आदमी तलवार लेकर खडे हों और दायी ओर भी ३२ आदमी भाले लेकर खडे हो। ये सब मिल कर उस आदमी पर अपने शस्त्रों से प्रहार करे तो जैसे वह पुरुप कुछ बोल नही सकता, देख नही सकता, चल नही सकता, पर उस असह्य पीडा का तो अनुभव वह करता ही है। इसी तरह एकेन्द्रिय जीव की पीडा भी आप देख नही सकते है, लेकिन उसको भी पीडा तो होती ही है, इसीलिये भगवान ने कहा है–

पुढविकायं न हिंसति, मणसा वयसा काएणं
तिविहेणकरण जोएण संजया सुसमाहिया।

पृथ्वीकाय के जीवो की मन, वचन और काया से हिसा मत करो। जो संयमी जीव है वे तीन करण और तीन योग से इन जीवो की हिसा न करते है, न कराते है और न अनुमोदन ही करते है।

कितना स्पष्ट निर्देश है भगवान का। फिर भी कोई साधु उपाश्रय या अस्पताल बनवाने का कहे तो आप उसे क्या कहेगें ? भाषा समिति और ईर्या समिति का भी ख्याल अगर साधु को न रहे तो फिर उसे महावीर का उपासक कैसे कहा जा सकता है ?

साधक जीवन हो या गृहस्थ जीवन, विवेक की आवश्यकता तो दोनों ही जीवन मे समान रहती है। विवेक जहा नही रहता वहा पाप आ जाता है। अतःसाधु उपाश्रय या अस्पताल बनाने का भी नही कह सकता है। यह साधु का काम नही है। धर्म को धक्का मारने वालो के पास धर्म कैसे रहेगा ? जिस आत्मा मे धर्म ही न रहा वह आपको क्या दे सकेगा ? अतः विवेक को मत छोडो। साधुत्व बडा कीमती है उसे काच के टुकडे की तरह मत लुटने दो। अपरिग्रही को परिग्रही मत बनाओ। हमें तो अपरिग्रही ही रहने दो। उमास्वाति ने कहा है–

परिग्रह मनुष्य को नरक मे ले जाता है।

मेरा श्रावक प्रथम श्रेणी की मुसाफिरी करता है, यह कोई गौरव की बात नहीं है। गौरव की बात तो तब कही जा सकती है जब कि कोई यह कहे कि मेरा श्रावक झूठ नही बोलता, हिसा नही करता, दान देता है, अपरिग्रही है, और ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

एक ६० फूट ऊंचा स्तंभ बनाना है। कारीगर उसको रोज बनाते है। लेकिन

रात मे वह कम हो जाता है। कारीगर दिन मे २ फूट बनाता है तो रात में १।।। फूट कम हो जाता है। फिर भी वह स्तंभ एकदिन तो पूरा बन ही जाता है। लेकिन आप अपने जीवन का भो तो हिसाव-किताब देखिये। वर्षो से आप धर्म-ध्यान कर रहे है लेकिन आगे कितने बढे है ? इसका भी माप-तोल किया है ? दो कदम आगे बढे है या तीन कदम नीचे उतरे है। मनुष्य भव से देव गति में जाने की तैयारी कर रहे है या तिर्यचगति में जानेका साधन जुटा रहे हैं ?

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो उपाश्रय मे भी नही आते है। पूछने पर कहते है- नफरत हो गई है। कैसी विपरीत हवा चल रही है। धर्म से भी घृणा हो रही है। मै पूछती हूं खाने से तो नफरत नही हुई ? धर्म छोडने को तैयार हो गये हो तो खाना क्यो नही छोड देते हो ? मनुष्य की यह कैसी कमजोरी है कि वह अच्छी बात तो छोडने को तैयार हो जाता है पर बुरी वात को छोडना नही चाहता ?

धर्म धर्म तो सब को कहे
पण न जाणे धर्मनो मर्म,
धर्म कारणें हिंसा करे,
ते निश्चे बांधे कर्म

धर्म के नाम पर आज अधर्म हो रहा है। बकरे और पाडों का बलिदान किया जा रहा है। काली देवी पर रक्त की धार वहाई जाती है। यह कैसा धर्म है ? धर्म के नाम पर वर्षो से यह सब होता चला आ रहा है।

आचारांग सूत्र में कहा है– जीव ५ कारणो से जीव हिंसा करता है :–

तत्थखलु भगवया परिण्णा पवेइ आ। इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण माणण पपूणाए जाइमरण मोयणाए दुक्खपडिघायहेऊं।

दीर्घजीवी वनने के लिये, कीर्तिप्राप्त करने के लिये, मान के लिये, जन्मजरा और मरण से मुक्त होने के लिये, और दुख मिटाने के लिये।

(१) अपना दीर्घ जीवन जीने के लिये मनुष्य जीवो की हिंसा करता है। बीमारी से मुक्त हो जाऊंगा तो वकरा चढाऊंगा, ऐसी मान्यता भी की जाती है। प्राचीन जमाने में भी अश्वमेध यज्ञ किये जाते थे। घोडे को जीवित अग्नि मे जला दिया जाता था और उसकी राख पवित्र मानी जाती थी। गज मेध, नरमेध, अजमेध जैसे यज्ञ भी किये जाते थे और खून की नदिया वहाई जाती थी। इस भयंकर प्राणि हिंसा मे भी धर्म माना जाता था। इसीलिये भगवान कहते है दृष्टि शुद्ध करो। सव से पहले यह देखो कि धर्म कहा है ? धर्म के नाम पर कही धर्माभास तो नही हो रहा है ?

कुछ लोग ऐसे भी है जो भगवान को स्नान कराते है और उसी मे धर्म मानते है। भगवान तो अशरीरी है। उसे कौन स्नान करा सकता है ? धूप-दीप से भी

उनको क्या काम है ? ये सब तो धर्म के नाम पर हिंसा के साधन हैं । सम्यग् दर्शन के अभाव में मानव यह सब करता रहता है । भगवान को हिंसा प्रिय नही है । वे तो किसी भी प्राणि की हिंसा देख नही सकते ।

तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं ।
अहिंसा निउणादिठं सव्वभूससु संजमो ।

हिंसा के लिये उनकी आज्ञा नही है । उन की आज्ञा मे न चलना धर्म नही, अधर्म है । उन्होने तो स्पष्ट कहा है कि आणाए धम्मो । जो मेरी आज्ञाका पालन नही करते है, हे गौतम ! वे मेरे धर्म मे नही हैं ।

धर्म मे भी आज अनेक भेद हो गये हैं । ये भेद नये नही है । भ. महावीर के समय भी ३६३ पाखंडियो के मत थे । महाविदेह क्षेत्र मे आज चौथा आरा चल रहा है, जहा २० तीर्थंकरो के साथ जधन्य दो क्रोडा क्रोडी केवली विचर रहे है, वहां भी ७ वी नरक मे जाने वालो की संख्या कम नही है । दुनिया मे धर्म का सेवन करनेवाले कम और अधर्म को चाहने वाले अधिक ही होते हैं ।

आर्य देश कम हैं जब कि अनार्य देश ज्यादा है । जीव हिंसा करने वाले तो सदैव विशेष ही रहते हैं । आपको जो सुधर्म मिला है, वह बड़ी मुश्किलसे मिलता है । उसको यो ही मत घुमा बैठना, वरना फिर पछतावा ही हाथ लगेगा । अत: विवेक को मत छोडो, धर्म ध्यान करो और स्वाध्याय मे मन को स्थिर करना सीखोगे तो जीवन मे धर्म आवेगा और अवश्य आवेगा । तब आप देखेगे कि एकदिन आपका आत्मा धर्ममय होकर प्रशस्त मार्ग का राही बन जायगा ।

ता. ३–७–६८ गुरुवार

[४]

अनत धर्मो को धारण करने वाला आत्मा ही धर्मी है । धर्म क्या है? **वस्तु स्वभावो धर्मो** : वस्तुओ का स्वभाव ही धर्म है । अहिंसा का विवेचन यहा चल रहा है । उसको समझने के लिये षट् द्रव्यों को भी समझ लेना जरूरी है । द्रव्य ६ है :– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय । इन छह द्रव्यों मे सारे संसार का समावेश हो जाता है । इनमे से ५ द्रव्य तो जड़ हैं, जो न खुद को जानते है और न दूसरो को । केवल जीव द्रव्य ही ऐसा तत्व है जो अपने को और दूसरो को भी जानता है। जीव अनंत है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु के जीव भी असंख्य हैं । देव, दानव, नारकी और मनुष्य भी असंख्याता– हैं । जीव उपयोग स्वभाव वाला होता है – यानी सुख

दुख का ज्ञाता होता है। पुदग्ल सडन, गलन स्वभाव वाला होता है। वह भी अनंत है। इसके स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु नामक चार भेद किये गये हैं।

(१) स्कंध – यानी सम्पूर्ण रूप जैसे तिलका लड्डू।

(२) देश–यानी विभाग-जैसे तिल के लड्डू के टुकडे कर देना।

(३) प्रदेश–मिलाहुआ–जैसे तिलके लड्डू के टुकडे के साथ भी तिल का मिला रहना प्रदेश है।

(४) परमाणु–अलग होजाना। तिल के लड्डू के टुकडे से भी तिलका अलग हो जाना परमाणु है।

स्कंध और परमाणु दोनो एक दूसरे से असंख्याता काल तक अलग २ रह सकते हैं।

परमाणुकी तरह काल भी अनंत कहा गया है। धर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है वह जीव और अजीव को गति करने में सहायभूत होता है। यह असंख्यात प्रदेशी है। लोक व्यापी है, अलोक मे नही है। इसीलिये सिद्धो की आत्माऐ लोक के अग्रभाग में ही स्थित हो जाती है।

अधर्मास्तिकाय भी एक ही है और लोक व्यापी है। वह जीव और अजीव को स्थिति मे सहायक वनता है। आकाश जगह देने वाला है। यह भी एक ही द्रव्य है। आकाश द्रव्य क्षेत्र है जब कि शेष द्रव्य क्षेत्री। क्योकि पाचो द्रव्यो का समावेश आकाश मे होजाता है। यह लोकालोक व्यापी है। छह द्रव्यो मे आकाश ही एक ऐसा द्रव्य है जो अलोक मे भी होता है। इसीलिये इसके लोकाकाश और आलोकाकाश रूप से दो भेद किये गये हैं।

इन छह द्रव्यो मे से ५ द्रव्य जड़ है जिन्हे अपना और पराया कुछ भी वोध नही होता है। केवल एक जीव द्रव्य ही स्व-पर प्रकाशक है, सुख-दुःख का कर्ता, भोक्ता और पर-पीडा भी समझने वाला है। इसलिये जीव को लक्ष्यकर कहा जाता है कि जैसे तुम सुख चाहते हो वैसे ही दूसरे जीव भी सुख चाहते है. कष्ट पीडा कोई नही चाहता। सुख सब को प्रिय है, हिंसा किसी को प्रिय नही। अत.भूल कर भी किसी जीव को मारना नही चाहिये।

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं

जीना सभी चाहते हैं मरना कोई नहीं चहता। तो फिर आज दुनिया में हिंसा इतनी क्यो मची हुई है? कल हमने इस पर विचार करते समय वताया था कि ६ कारणों से जीव हिंसा करने को तत्पर हो जाता है। वे ६ कारण कौन से है? उन्ही का आज यहां विवेचन करेंगे।

(१) दीर्घजीवी वनने के लिये जीव हिंसा करता है। अपने सुख के लिये मानव आज अनेक जीवो को मारने के लिये उद्यत हो जाता है। मेरी वीमारी दूर ही जायगी

तो मैं यज्ञ कराऊंगा। मुझे सन्तान का सुख मिल गया तो मैं बकरे की बलि चढाऊंगा, इस तरह स्वार्थपरायण सुख के लिये असहाय जीवों का बलिदान कर दिया जाता है।

अपनी आजीविका के लिये भागीदार का खून कर देना जिससे सारा का सारा पैसा मुझे ही मिल जाय, दूसरा कोई हिस्सा बंटानेवाला न रहे, मूर्ख मनुष्य तुच्छ स्वार्थ के लिये ऐसा पाप भी कर बैठते हैं।

गाय, बैल, घोडा आदि जानवर जब तक स्वस्थ रहे और काम दे, तब तक तो उन्हे पाला जाय है परन्तु जैसे ही वे बीमार या वृद्ध-असहाय हो जाते हैं, कुछ लोग उन्हे मार डालते हैं। यह कैसा जघन्य अपराध है उनका ? गाय दूध दे वहां तक तो वह मां है, पर जैसे ही उसने दूध देना बंद किया कि उसे कसाई को सौप आते हो,? मनुष्य मानवता का खून कर राक्षस बन जाता है और उस गाय माता को मरवा डालता है।

कितना घोर पाप आज मनुष्य कर रहा है ? क्रुम लेधर के जूते आज जो पहने जाते है पता है वे कैसे बनाये जाते है ? गरम गरम उकलता हुआ पानी जीवित भैंसों और पाडो पर डाला जाता है। जब उनकी चमडी लाल लाल हो जाती है तब उसे खीच ली जाती है। वही चमडा क्रुम लेधर कहा जाता है। जिसके जूते पहन कर आप लोग फूले नहीं समाते हो! जरा सोचिये तो सही कि उसमे कितने मूक प्राणियो का बलिदान छुपा हुआ है। क्या मरे हुए जानवरों के चमडे से बनाये हुए जूते काम नही देते है? जो तुम क्रुम लेधर का इस्तेमाल करते हो ? अहिसा के पुजारियो आज तुम्हारी कैसी हालत हो गई है ? इसका भी तुम्हे भान नही है। लोग आज ऐसी ही हिंसक वस्तुओ को अधिक पहनते हैं इसीलिये वे बनाई जाती है। अगर आप ऐसी चीजों का उपयोग ही न करें तो ऐसी चीजो का निर्माण अपने आप बंद हो सकता है। बहिनें जो हाथ मे कोमल चमडे के पर्स रखती है, पता है, वह चमडा कहा से निकाला जाता है ? बकरी के गर्भस्थ बच्चे का चमडा निकालकर ऐसे पर्स बनाये जाते हैं। कितना घोर पाप है यह ? भगवान महावोर के अनुयायी इन चोजो का उपयोग कैसे कर सकते है ?

पूजा के लिये भी त्रस जीवों की हिसा की जाती है। काली माता और पोर पैगंम्बर के नाम पर पाडा और बकरा चढाया जाता है।

पुराने जमाने में राजा लोग बकरे और पाडे को मारा करते थे। एकही झपाटे में तलवार से उनका सिर उड़ा देते थे और उसके रक्त से तिलक किया करते थे। वढ़वाण का किस्सा है। वहा के राजाने भी पाडा मारने का विचार किया। वढवाण के सेठ डाया जेठा ने जब यह सुना कि राजा हिंसा करने जा रहा है तो सारे बाजार मे हडताल करवा दी। राजा की सवारी निकली तो एक आदमी भी उसमे शरीक न हुआ। राजाने उसे बुलाया तो उसने कहा-राजन् ! आप यह हिंसा क्यो कर

रहे है ? दूसरे जीवों की आत्मा को पीडा पहुंचाना पाप है। वे अबोध हैं तो क्या ! सुख दुःख तो उन्हें भी होता है न ? आपको तिलक जितना रक्त चाहिये और उसके लिये मूक जानवर पर तलवार चला देना कहां का न्याय है ? बढवाण के राजा पर डाया जेठा के वचनों का इतना असर हुआ कि उसने अपने राज्य में जानवरो की हिंसा ही बंद करवा दी। आज भी बढवाण में हिंसाबंदी कानून का अमल हो रहा है।

लीवर के इंजेक्शन भी प्राणियो को मार कर बनाये जाते है। जैनियों के अस्पतालो मे तो उनका उपयोग नही हो रहा है ? दान देने वाले भी कभी कभी बहाव मे आकर दान दे देते है। वे यह नही सोचते कि मैं क्या कर रहा हूं ? कही मेरे दान से हिंसा को प्रोत्साहन तो नही मिलने जा रहा है ?

आप वोट देने जाते है तो यह सोचते है कि मुझे वोट किसको देना चाहिये ? तब फिर दान देते समय यह क्यो नही सोचते कि मै जो दे रहा हूं वह बराबर समझ कर दे रहा हूं या हिंसा में ही हाथ बंटा रहा हूं ? मै जैन हूं। त्रस जीव की हिंसा का त्यागी हूं। मै हिंसा कर नही सकता, करा नही सकता और न अनुमोदन ही कर सकता हूं। आपके पहले व्रत मे स्पष्ट निर्देश है कि 'करूं नही करावु नही, मनसा वायसा कायसा', तब फिर आप त्रस जीव की हिंसा में भागीदार कैसे बन सकते है ?

कई लोग बालो के लिये जीवो की हिंसा करते है। चमरी गाय के बालों से भगवान पर चामर उडाये जाते हैं। ढोल नगारो का चमडा भी जीवित जानवरो का होता है। पवित्र स्थानों मे भी आज हिंसक वस्तुएे उपयोग मे ली जाती है। यह सब धर्मका मजाक नही तो क्या है ?

सच्चा धर्म तो अहिंसा मय है। वहां पाप को कोई स्थान नही है। लेकिन आज तो धर्म के नाम पर झगडे चल रहे है। मत मतान्तर बहुत बढ़ते जा रहे हैं। सिद्धात कोई समझता नही है। सब अपनी अपनी मनमानी करने में लगे है। ४ और ५ की सम्वत्सरी के लिये झगड रहे है। यह सब धर्म का उपहास नही तो क्या है ?

कई लोग वंदन पूजन और समारभ के लिये भी हिंसा करते हैं। लडके की शादी हुई है तो चाय पार्टी तो देनी चाहिये न ? कुछ लोग मद्य मास खिला पिला कर भी मेहमानो का स्वागत करते है। राजुल की शादी के निमित्त कितने पशु पक्षियों को वाडे मे बांध कर रखा गया था ? यादवों की खातिरदारी के लिये ही तो उन्हे पकड़ कर लाया गया था। लेकिन जब उन्होने नेमिनाथ को आते हुए देखा तो पुकार कर उठे:—

प्राण बचाओ प्राण बचाओ,
प्रभुजी अमारा प्राण बचाओ।
जान तमारी आवे भले पण
जान अमारा शीदने जलावो। प्राण बचावो।

नेमिनाथ भगवान ने पशुओकी यह करुण पुकार सुनली। एक तरफ जान (बरात) आ रही है और दूसरी तरफ जान जा रही है। जिसको तुम मार रहे हो उसको क्या तुम जीवित कर सकोगे ? हिंसा महा दुखदायी है। इस लोक और परलोक में भी दुखी होना पड़ता है। भगवान नेमिनाथ से पशुओ का यह दर्द नही देखा जाता है। उन्होने सोचा-मेरे निमित्त यह सब हिंसा होने वाली है। मुझे विवाह नही करना है। सारथी ! रथ को लौटा दो !

धीमे धीमे जान पाछा पगला भरवा लागी।
ध्रुस के २ रडती राजुल पालव धरवा लागी।
पाछा नव जाशो प्रीतम पाछा नव जाशो।
मांडवडे थी आवी मोहन पाछा नव जाशो।

तोरण पर आकर वापस मत जाइये। क्या मुझमे कोई कमी है सो आप लौट रहे हैं ? राजुल विनती करती है, पर नेमिनाथ रुकते नही लौट जाते है।

लाख लाख कीधा उपायरे राजुल व्हेनी
तोरण थी वर पाछा जाय
मांडवे थी जान पाछी जाय रे
राजुल व्हेनी मांडवे थी जान पाछी जाय।

नेमिनाथ के हुक्म से जिन मूक पशु पक्षियो को वाडे में बांध कर रखा गया था, उन्हें छोड़ दिया जाता है। नेमिनाथ अपने बहुमूल्य आभूषणो को उतार देते हैं और लौट जाते हैं। राजुल कहती है—

पशुना पोकारे एनुं कालजु कोराणुं
नारीनुं अंतर नही रे ओलखाणुं
आवो अन्याय केम थाय रे—राजुलव्हेनी,

राजुल कहती है—नाथ ! पशुओ की आवाज तो तुमने सुनली, पर मेरी आवाज तुम क्यों नही सुन रहे हो ? यह कैसा न्याय है आपका ? जो मुझे छोड कर चले जा रहे हो ?

नेमिनाथ ने लौटकर वर्षी दान देना शुरू कर दिया। रोज ३।। घंटे तक वे दान देते रहे। एक वर्ष मे ३ अरब ८८ करोड ८० लाख सोनैयों का दान दिया। जो भी तीर्थंकर होते हैं, इसी तरह वर्षी दान देते है। भिखारी ही नहीं बड़े २ राजा महाराजा भी लेने के लिये आते हैं। उनका दान पंक्ति वद्ध दान होता था। आज की तरह उछालु दान नही होता था। बारह महीनों तक नेमिनाथ दान देते रहे और उधर राजुल विलाप करती रही। राजुल की मां उसे समझाते हुए कहती है तू रोती क्यों है ? नेमिनाथ जैसे कई वर मैं तेरे लिये ढूंढ लाऊंगी। अभी तेरा विगड

ही क्या गया है। माता का वचन सुन राजुल कहती है–

तने विनवुं छुं माडी तारा पग मां पडी
हवे नही रे ओढुं हुं बीजानी चुंदडी
मारे कहेवुं शुं मावडी तने घडीघडी – हवे।
बीजा ना मींडोल नथी मारे बांधवा
बीजा कोई देव ने नथी रे आराधवा
नवली दुनिया नी मने केडी जडी – हवे।

मां ! यह तुम क्या कह रही हो ? मैने तो नेमिनाथ को ही चाहा है। स्त्री का पति तो एक ही हुआ करता है। मैनें तो अपना सर्वस्व उन्हें अर्पण कर दिया। अब और किसको तू देख रही है ? मुझे दूसरा कोई नहीं चाहिये। राजुल भी नेमिनाथ के पद्चिन्हों पर चल पडती है। कैसी अपूर्व जोडी थी दोनों की ! दुनिया के इतिहास में ऐसी जोडी कही दिखाई नही देती है।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि अपना दिखावा करने के लिये भी लोग जीवों की हिंसा कर बैठते है।

कई लोग जन्म मरण का चक्कर मिटाने के लिये हिंसा का सहारा लेते है।

परन्तु याद रखिये, जहा हिंसा है वहा धर्म नही रह सकता है। धर्म तो अहिंसा मे ही है। अहिंसा परमो धर्मः। कुरान शरीफ मे तो पेड परसे दातुन तक काटने की मनाई की गई है। तो क्या उसके अनुयायी गाय और बकरे को मार सकते है ? अतः धर्म को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। जो लोग अहिंसा का पालन करते है वे कभी दुखी नही होते है। वे ही मोक्ष के अधिकारी भी बनते हैं।

ता. ४–७–६८ शुक्रवार

[९]

धर्म का स्वरूप समझाते हुए कहते है–धर्म अहिंसा संयम और तप रूप है। जहां २ हिंसा है वहां २ पाप है। जहा असंयम है वहा भी पाप है। जहा इन्द्रिय लोलुपता है, विषय कषायो के प्रति राग है, वहा पाप है। जिन्होने अपने जीवन मे अहिंसा संयम और तप का आचरण किया है उनका ही कल्याण हुआ है और भविष्य मे भी होगा।

अपने समान दूसरो को भी समझना अहिंसा है। सम्यक्तया नियम मे रहना संयम है ! संयम १७ प्रकार का बताया गया है :–

पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, अजीवकाय पेहा उप्पेहा, पमज्जणा परिठावणिया मन, वचन, काया।

असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करना संयम है । पाचों इन्द्रियों का निग्रह करना संयम है । संयमी जीव अपनी आंखों को चारों तरफ घुमाता फिराता नही है । चलता है तो नीची नजर रखकर चलता है, किसी को खराव नजर से नही देखता है । आत्मा अरूपी है, वर्ण गंध रस से रहित है अत: वह इन्द्रियो से अगम्य है । आंख उसे देख नही सकती है । इन्द्रियां रूपी पदार्थ को ही ग्रहण करती है । आंख भी रूप को देखती है और उसमे मोहित हो जाती है । उस पर नियंत्रण करना संयम है ।

नरेन्द्र अपने कमरे में पढ़ रहा है । एक रूपवती औरत आभूषणो से सज्ज हो उसके कमरे से गुजरती है । नरेन्द्र उसे देखता है । पढ़ने की किताब में उसका मन नही लगता, वह बार २ उसी औरत को देखने लगता है ।

आखो को भी राग– रंग बड़ा प्रिय लगता है, तडक, भडक और गाना वजाना इन्द्रियो को प्रिय लगता है । सिनेमा तो आजकल इस वीमारी को और ज्यादा बढ़ा रहे है । छोटे २ बालक भी सिनेमा देखकर अपनी आदते बिगाड लेते हैं । जैनियों को तो सिनेमा देखना ही नही चाहिये । उससे संस्कार बिगडते ही है । अगर आप अपने बच्चो को सुसस्कारित रखना चाहते हो तो उनको सिनेमाओ से दूर रखो, उसके नजदीक भी मत जाने दो ।

नरेन्द्र जिस औरत को देख कर पढना भूल गया, वह क्या था, हाड मास का एक पिंड ही तो था–

मांस रुधिर सम मल दुर्गंधि
नर्क समान नठारु ।
तु तेने कंचनमय माने
आवडुं शुं अंधारूं ।
पोपट तन पींजर नहीं तारु, अंते उडी जवानुं परबारू । पोपट . ।

इस शरीर मे हाड-मास और रुधिर भरा पड़ा है । देखते ही घृणा होती है । फिर क्यो आख उठाते हो औरतो के प्रति ? औरतो के पोछे कई लोग जान भी गवा देते है, जहर खा लेते है ।

जैसे आग मे घी डालने से आग बुझती नही, द्विगुणित होकर चमकती है उसी तरह इन्द्रियां भी रस लौलुपता को ओर उसकी पूर्ति होने पर दुगुने रूप से आकर्षित होती है । अत: इन्द्रियो को वश मे रखना चाहिय । उन पर कठौर नियंत्रण रखना चाहिये ।

पाचो इन्द्रियो के विषय काम विकार पैदा करने वाले है । उनके वशीभूत न होकर आत्मा को व्रह्म मे लीन करना ब्रह्मचर्य कहा गया है । इसके विपरीत शव्द, रूप, रस, गंध मे रसिक होना अव्रह्मचर्य है । वाह्य तडक-भडक मौज-शोक और रूप

[illegible] बैठे है। यह सब [illegible] का ही [illegible] है।

नरेन्द्र की आंखों में भी उस औरत का रूप [illegible] हो गया। लेकिन उसको [illegible] थी। उसने कहा — धिक्कार है मेरी आंखों को जो उस हाड़ मांस के [illegible] में [illegible] हो रही है? आंख अपना धर्म भूल रही है अतः उसको सजा मिलनी ही चाहिये। वह रसोईघर में जाता है और मिर्चों लाकर अपनी आंख में डाल लेता है। आंखें उसकी लाल लाल हो जाती है। बोर्डिंग के दूसरे लड़के उससे पूछते हैं— नरेन्द्र यह क्या हो गया तुम्हारी आंखों को? चलो डाक्टर के पास चलकर दिखा आवे। नरेन्द्र ने कहा—डाक्टर के पास जाने की जरूरत नहीं है। यह तो मैंने अपने हाथ से ही आंखों की यह हालत बनाई है। लड़कों ने पूछा ऐसा क्यों किया? नरेन्द्र ने कहा— एक औरत को देखकर मेरी आंखें बिगड़ गयी थी अतः उसी की सजा मैंने इनको दी है। जानते हैं यह नरेन्द्र कौन था? स्वामी विवेकानंद ही वह नरेन्द्र था। ब्रह्मचर्य के प्रति जिसकी ऐसी दृढ़ निष्ठा होती है वही ऐसा कर सकता है।

भगवान ने कहा है ब्रह्मचर्य तो मेरु पर्वत के समान है—

गिरिणां यथा राजते मेरु सानु,
सुराणां सुरेन्द्रो नराणां नरेन्द्रो,
जिनानां जिनेन्द्रो ग्रहाणाञ्च चन्द्रो,
व्रतानां तथा राजते ब्रह्मचर्यम्।

पर्वतो में श्रेष्ठ जैसे मेरु पर्वत है, देवताओं में इन्द्र, मनुष्यों में राजा, [illegible] में तीर्थंकर और ग्रहों में चन्द्रमा जैसे श्रेष्ठ है, वैसे ही सब व्रतों में श्रेष्ठ [illegible] है। अतः ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। साहित्य भी वैसा ही पढ़ना चाहिये जिससे कि इसको पोषण मिले। आज [illegible] गन्दे साहित्य से तो दूर ही रहना चाहिये।

दूसरी स्त्रियों को देखना पाप है। [illegible] और दुनिया में भी बदनामी होती है।

परस्त्रि प्रसंगाद् [illegible] दोषो,
[illegible]।
[illegible],
कदाचित् न कार्यो परस्त्रि प्रसंगो।

नरक में भी इसका फल भोगना पड़ता है। [illegible]

करोगे तो उसका फल भी भोगना ही पडेगा । बुद्धिमानी तो यही है कि पाप किया ही न जाय, जिससे फल भुगतने की वारी ही न आवे । कर्म करते समय सजग रहना चाहिये । यह तो अपने हाथ की बात है। फल तो मिलने वाला ही है, उसे रोका नहीं जा सकता ।

संसाररूपी वन महीं जे अवनति मां लइ जती।
ते वासनानी जाल प्यारा तोड संयम जोर थी।

अतः इन्द्रियो के गुलाम मत बनो । उन्हें वश मे रखो और ब्रह्मचर्य का पालन करो । मन को चंचल मत रहने दो । जिसने मन को जीत लिया समझलो उसने सारा संसार जीत लिया है ।

मनुष्य सद्‌गुण से शोभा पाता है, आभूषणो से नही । अगर आपको सचमुच पाप से निवृत्ति लेनी है तो दिखावा बंद कर दो । जड के प्रति आकर्षण कम करो, चेतन को समझो । बाह्य तडक-भडक में क्या है ? वेश्या खूब सजी सजाई हो, फिर भी वह वेश्या ही है । उसे कौन नमस्कार करेगा ? नमस्कार तो सद्‌गुणों को ही किया जाता है। दुराचार को कोई नमस्कार नही करता है । शील ही सच्चा भूषण है, उसी की रक्षा करनी चाहिये । दुश्शील की कोई कीमत नही है । यह कहावत प्रसिद्ध है कि–

धन गया कुछ नही गया,
स्वास्थ्य गया—कुछ गया,
चारित्र गया सब कुछ चला गया,

इसीलिये ज्ञानी कहते है :–

भवना किनारे आवी नैया झुकावी
सुकानी बनीने प्रभू आओ मारी व्हारे
'सुनंद' कहे छे प्रभु एक तूं आधार छे। जी.
सारुं जीवन खोयुं रंग अने राग मां
दिवसो बितावी दीधा खोटी खोटी बात मां
हवे दुख थाये पस्तावानो ना पार छे—
जीवनना राहे मलता पथिको नो साथ छे।

हमे मानव जीवन का उत्तम भव मिला है । पशु पक्षी मे विवेक नही होता । वे मां-बाप, पुत्र, पुत्री किसी मे भी नही समझते है । इसका विवेक मनुष्य में ही होता है। वह अपना हिताहित, प्रेम–अप्रेम, खाद्य–अखाद्य सब कुछ समझता है । फिर भी जो इस विवेक को छोडकर बुरी बातो मे जीवन गवा देता है वह अपना यह अमूल्य भव हार जाता है ।

विवेक के अभाव में आज तो धर्म के बजाय धन ही जीवन का ध्येय बन गया है। लेकिन क्या धन तुम्हारी रक्षा कर सकेगा ? धर्म का पालन करोगे तो वही तुम्हारी रक्षा भी कर सकेगा।

एक भाईसे वातचीत मे पूछा--सामायिक करते हो या नही ! उसने कहा -- समय ही नही मिलता है no time धन के लिये समय है, बातो के लिये समय है, पर सामायिक के लिये समय नही है। क्या धन तुम्हारा उद्धार कर सकेगा ? आखिर उद्धार तो सामायिक से ही होगा। अतः अनर्थदंड को छोडकर अपने समय का सदुपयोग करो, वरना फिर पछतावा ही हाथ लगेगा।

देवलोक मे देवताओ के लिये भोगो की कमी नही होती है। फिर भी भोगोके प्रति उनकी इतनी आसक्ति रहती है कि वे तिर्यंचो के साथ भी उनका रूप धारण कर भोग भोगनेको तैयार हो जाते है। मनुष्य भी कामवासना के वशीभूत हो तिर्यंच पशुओ के साथ संभोग करने को उद्यत हो जाता है। यह अध.पतन का ही मार्ग है। सयमी पुरुष ही अपना जीवन उन्नत बना सकता है।

पानी मनुष्य का जीवन है। पानी न हो तो गृहिणियो का जीना दूभर हो जाय। पानी की कीमत क्या है ? यह तो जो प्यासा होता है वही समझ सकता है। इसी तरह धर्म का मूल्य भी मरणासन्न व्यक्ति ही समझ पाता है। सारी जिन्दगी मौज शौख मे गवां देने वाला जव अन्त समय आता है तो धर्म को याद करता है। तब उसे धर्म की कीमत समझ मे आती है। पानी बेकार न जाय इसके लिये आजकल बांध वनाये जाते है। इसी तरह व्रतनियमो के भी बाध बांधोगे तो धर्म टिकेगा और इन्द्रिया भटकेगी नही। ब्रह्मचर्य का पालन होगा और जीवन मे एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव होगा। स्वामी विवेकानद की स्मरण शक्ति कितनी तेज थी। वे एक लाईन पढने की तरह पुस्तकका सारा पृष्ठ एक साथ पढ़ लिया करते थे। यह शक्ति ब्रह्मचर्य से ही उन्हे प्राप्त हुई थी। श्रीमद् राजचन्द्र की स्मरणशक्ति भी अपूर्व थी। वर्षो पूर्व पढा हुआ पत्र भी यथावत् वे सुना दिया करते थे। ब्रह्मचर्य से ऐसी अद्भुत शक्ति का आत्मा मे प्रादुर्भाव हो जाता है।

शक्तिका संचय करो, ब्रह्मचर्य का पालन करो, इन्द्रियो के वशीभूत मत वनो, मन को वश मे रखो और सयमपूर्वक जीवन यापन करोगे तो आपकी नाव डुवेगी नही, पार हो जायगी।

जो लोग धर्म का शरण ग्रहण कर लेते है, काम भोगो के प्रति उनको आसक्ति धीरे २ कम होती चली जाती है और एक दिन वे मुक्ति-पथ के पथिक वन कृतकृत्य हो जाते है।

ता. ५-७-६८

[६]

त्रैलोक्य प्रकाशक, विश्व की विरल विभूति भ. महावीर ने जगत का स्वरूप समझाते हुए कहा है–हे मानव ! सुखी होना है तो धर्म का पालन कर। धर्म ही तेरा उद्धार करनेवाला और मोक्ष देने वाला है।

धर्म कैसे किया जा सकता है ? इसको समझाने के लिये आज ज्ञातासूत्र के १४ वें अध्ययन का प्रारंभ किया जा रहा है। ग्यारह अंगसूत्रो मे ज्ञाताजी का छठा नम्बर है। उसका उपदेश स्वयं भगवान् महावीरने दिया है। भगवान् महावीर का जीवन वडा संघर्ष मय रहा है। उन्होने १२॥ वर्ष और १५ दिन तक घोर तपस्या की थी। उन्होने अपने साधक जीवन मे केवल ३४९ बार आहार ग्रहण किया था और शेष दिनो में चौविहार उपवास किया था। ९ बार ४ मास का उपवास किया, १२ बार अट्ठम तप, एक बार ६ मासिक तप यानी १८० चौविहार उपवास, एक बार ५ मास और २५ दिन का प्रसिद्ध अभिग्रह युक्त उपवास। भद्रपडिमा भी भगवान् ने की थी। कमसे कम छट्ठ का तप और अधिक से अधिक ६ मास की तपस्या भगवान ने की थी। कैसी घोर तपस्या थी उनकी ? इतनी कठिन तपस्या करके उन्होने अपने कर्मो को नष्ट किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। पुच्छिस्सुणं मे भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है :

पुठो वमे धुणइ विगयगेहिं,
न सिण्णिहिं कुव्वइ आसुपन्ने
तरिउं समुद्दंच महामवोघं,
अभयं करे वीर अणंत्त चक्खू।

भगवान् पृथ्वी की तरह समभावी थे। जैसे पृथ्वी पर कोई मल-मूत्र डालता है या उसे खोदता है तो वह समभावपूर्वक सब को सहन करती है, किसी पर भी रुष्ट नही होती। उसी तरह भगवान भी सभी प्राणियों पर समभाव रखते थे। वे अनार्य देश मे गये, लोगो ने उन्हे गालियाँ दी, लाठियो से प्रहार किया, कानों मे खीले भी ठोके, फिर भी वे समभावी वने रहे, किसी के प्रति रुष्ट नही हुए।

साधक जीवन की चर्या वडो कठिन होती है। साधुओ की चर्या देखिये, जव वे आहार लेने जाते है तो चुपचाप जाकर खडे हो जाते है, सूझता हो तो ग्रहण कर लेते है और असूझता हो तो छोडकर चल देते है।

जहा दुम्मस्स पुप्फेसु भमरो आवीयइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ. सोय पीणेइ अप्पयं।

जैसे भवरा पुष्प से रस लेता है और उड जाता है वेसे ही मुनि भी भंवरे की तरह थोडा २ प्रासुक आहार ग्रहण करते है। वे आवाकर्मी या उद्देशी आहार भी ग्रहण

नही करते हैं। गाय जैसे घास चरती है तो मूल को नही तोडती, ऊपर ऊपर से घास खा लेती है वैसे ही साधु भी आहार मे से कुछ ग्रहण कर लेते है, सबका सब वे नहीं ग्रहण करते। उनकी गोचरी गऊ गोचरी कही जाती है। वे गरीब और अमीर का भेद नही करते, सब के यहां आहार लेने जाते हैं :—

"उच्च नीच्च मज्झिम कुलाइं घर सामुदाणिस्स"

भोजन के लिये वे ऊंच नीच घर नही देखते है।

श्रावक भोजन करते समय साधुको आहार देने की भावना कर सकता है, उनके लिये भोजन बनाना मिश्र दोष है। उनके निमित्त से बनाना आधा कर्मी दोष है। जिससे पाप ही होता है। ठाणांग सूत्र मे कहा है कि जो श्रावक ऐसा पाप युक्त आहार बहराते है वे दीर्घजीवी नही बनते, अकाल में ही वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं अतः साधुको सदोष आहार नही देना चाहिये।

बीमार के लिये, गर्भवती स्त्री के लिये या मेहमान के लिये जो भोजन बनाया गया है, वह अगर बचा हुआ हो तो साधु उसमे से ले सकता है, अन्यथा नहीं।

साधुता कोई आसान चीज नही है। सुख-सुविधा का वहा ख्याल नही रखा जाता है। यह पथ कटकाकीर्ण है, जहां कदम कदम पर काटे मुँह वाये खडे रहते हैं। जो शूर वीर होते है वे ही इस मार्गपर चल सकते ह, कायरों का काम नही है।

जे उ संगाम कालम्मि नायासूर पूरंगमा।
नो ते पीट्ठ मुवेयन्ती किं परं मरणं सिया।

लडाई में जाने वाला वीर योद्धा मौत से नही डरता है। वह या तो विजयी होकर लौटता है या युद्ध मे ही मर जाता है। मुनियो का मार्ग भी ऐसा ही है। कायर मनुष्य मुनि-धर्म को निभा नही सकते है।

आज कल तो साधुओ को भी डिग्रियां प्राप्त करने की चाह पैदा हो गई है। समझने के लिये भाषा-ज्ञान जरूरी है, पर इसके लिये डिग्रिया (पदवियां) प्राप्त करना आवश्यक नही है। भगवान ने तो कहा है—बंधन से मुक्त होने को कला ही साधुओ को पढनी चाहिये।

'सा विद्या या विमुक्तये' शेष विद्या तो आजीविका का साधन होती है। ज्योतिष आदि विद्याऐं ऐसी ही है। भगवान महावीर के समय मे भी इन विद्याओं का काफी बोलबाला था। स्वयं गोशाला ज्योतिषशास्त्र मे बडा पारंगत था। वह लोगो को लाभ-अलाभ, सुख दुख और जीवन-मरण की बाते बताया करता था, व्यापारियो को व्यापार मे तेजी-मंदी बताया करता था। आपको भी ऐसा ही गुरु चाहिये न? जो आपको लाभ की बात बताया करे। दुनिया मे तो लाभ बताने वाले गुरु की ही ज्यादा पूछ होती है। यही कारण है कि गोशालक की भी बडी पूछ होती थी। उस जमाने मे भी उसके

११ लाख श्रावक थे। जब कि भ. महावीर के १ लाख और ४९ हजार ही श्रावक थे। लेकिन याद रखिये सत्य सत्य है, वह त्रिकाल मे भी रहने वाला है। असत्य विनाशी है वह चिरकाल तक बना नहीं रह सकता। अतः गोशालक का पंथ धीरे २ मटियामेट हो गया–११ लाख अनुयायियों में से आज एक अनुयायी भी उसका नही रहा, जब कि भगवान का धर्म आज भी शोभायमान हो रहा है।

भगवान महावीर ने अपने जीवन में कम कष्ट सहन नही किये थे। यों कहना चाहिये कि कष्ट सहने के लिये ही वे निकले थे :–

सामे ढीने ऐने दुखडाने नोतर्या
जेरी जंतुए एहना अंगे अंग कोतर्या
देहने दुभावनार प्रत्येक जीवने दीधा अभयना—दान
जंगल नी केडीये जोगी बनीने पेला
चाल्या रे जाय वर्धमान....

चौवीसवे तीर्थंकर भ. महावीर का जीवन देखिये, वह कैसा अपूर्व जीवन था? उनका पुरुषार्थ कितना उग्र था? उनका निर्वाण तो निश्चित था ही, फिर भी कितने घोर परिषहो का उन्होंने मुकाबला किया? अपने शरीर सुख की किंचित् मात्र भी उन्होने परवाह नही की थी। लेकिन आज आप क्या कर रहे हैं? कोहिनूर हीरा जैसा अमूल्य जैनधर्म आपको मिला हुआ है। शरीर सुख के पीछे आप उसे भूलते चले जा रहे हो, यह कहां की बुद्धिमानी है। काया तो मिट्टी मे मिल जाने वाली है। आत्मा अनादि है उसका ख्याल करो, साथ तो वही चलने वाली है। एक देह की रक्षा करोगे तो अनत देह खडे हो जायंगे। श्रीमद् राजचन्द्र कहा है–

छूटे देहाध्यास तो नहि कर्ता तु कर्म।
नहि भोक्ता तुं तेहनो, अेज धर्म नो मर्म।
अेज धर्म थी मोक्ष छे तुं छे मोक्ष स्वरूप।
अनंत दर्शन ज्ञान मय अव्याबाध स्वरूप।

देहाध्यास– शरीरासक्ति छोडो और समझो कि मै सच्चिदानंद हूं–मै पर नही हू. स्व हू! अगुली मे अंगूठी है या अंगूठी में अंगुली कुछ भी कहो पर दोनों भिन्न भिन्न है। आत्मा शरीर से भिन्न है उसे शरीर मत समझो। शरीर नाशवान है उसका मोह क्यो करते हो? ऐसी दशा कब प्रकट होती है? गीता मे कहा है–

आसक्त नही जे क्यांय मल्ये क्यांय शुभाशुभ।
न करे हर्ष के द्वेष, तेनी प्रज्ञा थई स्थिर।

आसक्ति रहित, शुभ और अशुभ मे, हर्ष और शोक में जो समभाव रखता है, राग द्वेष नही करता उसे स्थितप्रज्ञ कहा गया है। आचाराग मे भी कहा है–

तम्हा पंडितए न हरिसे न कुप्पे

जो सुख और दुख मे समभाव रखे वही पंडित है।

रूपी पुद्गलों पर मोह करना पागल पन है। मल मूत्र से भी कोई राग करता है? भोग भी एक गटर है, उसमें आसक्त मत बनो।

निरखी ने नव यौवना लेश न विषय निदान।
गणे काष्ट नो पुतली ते भगवान समान।

ब्रह्मचारी को भगवान के समान कहा गया है। आपको भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

शक्कर की चासनी में चीटी चली जाय तो रस लौलुपता में वह वहां फंस जाती है। कोशिश कर के निकलती भी है तो फिर उसी में फंस जाती है। यो फंसती है और निकलती रहती है इसी तरह कामांध पुरुष भी व्याधिग्रस्त होते रहते है- दवा लेते है ठीक होते है, और फिर वही काम करने लग जाते है। गर्भावास की प्राणांत पीडा का अनुभव कर के भी बहिनें उससे बचती नहीं है- काम भोग से विरक्त नही होती है। वासनाओके प्रति इतना लगाव होना अधःपतन का ही कारण होता है।

विषय वासना में यह अमून्य भव मत गवा बैठो। यह भव हाथ से चला जायगा तो पर भव में क्या होगा? कर्म तो अपना फल दिये बिना छोडेंगें नही। कुछ लोग ऐसे भी है जो यह कहते है- 'पर भव कोणे दीठां' पर भव किसने देखा है? जो कुछ है यही मजा कर लो, आगे की कौन जानता है? बंधुओ! जो यह कहते हैं वे यह नहीं समझते कि तुम कहा से आये हो? क्या तुम मिट्टीसे पैदा हुए हो और मिट्टी में ही मिल जाने वाले हो? जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य और जो मरेगा वह जन्म भी लेगा ही। जब तक कर्मो का चक्कर मिटेगा नहीं तब तक जीने और मरने का चक्कर भी मिटने वाला नही है। अतः परभव तो है ही उसे अस्वीकार नही किया जा सकता।

कुछ लोग ऐसे भी है जो इस भव के लिये तो साधन कर लेते हैं- जब तक जीएंगे आजीविका का साधन स्थिर कर लेते है, बाल बच्चो का भी निर्वाह उससे होता रहता है। वे यह नही जानते कि आत्मा तो नित्य है, वह केवल इस भव तक ही सीमित नही है, परभव भी उसके लिये है। अतःपरभव सुधारने का भी प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

समुद्र मे मछलियां रहती है। मनुष्य भी उसमें चला जाता है- नाव या जहाज में बैठकर। परन्तु वह उसमे रहना नही चाहता, समुद्र से पार होना चाहता है, जब कि मछलियां उससे बाहर निकलना नही चाहती। ज्ञानी और अज्ञानी जीव में भी यही अन्तर होता है। अज्ञानी जीव मछलियों की तरह संसार स

को छोडना नही चाहता है जव कि ज्ञानी जीव संसार से . विरक्त होना चाहता है। बताइये आप क्या चाहते है। संसार में रहना चाहते है या उससे वाहर निकलना चाहते है।

संसार का स्वरूप समझ कर भी जो संसार मे उलझे रहते है उनका उद्धार कैसे हो सकेगा? शरीर की शोभा बढाने के लिये सोना पहना जाता है। लेकिन क्या कभी आपने सोचा भी है कि यह शरीर क्या है? सोना क्या है? मिट्टी ही तो है। मिट्टी पर मिट्टी चढ़ाने की क्या कीमत है? चेतन के सामने उसकी कीमत नगण्य है। लेकिन ऐसा आप थोडे ही सोचते है। भगवान तो ३० वर्ष की उम्र में ही ससार से विरक्त हो गये थे, पर आप तो अभी तक संसार मे पड़े हुए हैं सिद्धान्तो के प्रति सच्ची आस्था हो तो जीवन पलटते देर नही होती है।

शरीर स्वास्थ्य की बात चलती है तो अक्सर लोग कहा करते है:—गेस हो जाती है। पेट मे ऊपरा ऊपरी डाले चले जा रहे हो और फिर कहते हो गेस हो जाती है? पेट को भी आराम करने दो। मील के वोइलर को भी सप्ताह मे एक दिन छुट्टी दी जाती है, तो आप भी पेट को एकदिन की छुट्टी क्यो नही दे देते? सप्ताह में एकदिन उपवास कर लिया करो तो गेस जैसी कोई बीमारी पास मे नही आ सकेगी। है आपकी तैयारी उपवास करने की? जब तक देहभाव मौजूद रहता है तक तब वैराग्य आ नही सकता। वहा आरोग्य भी रह नही सकता। अत: संबुज्झह: स्व और पर को समझो—शरीर और आत्मा को पहचानो:।

व्हार रुडी वली बदबो अंदर, बदबो अंदर होय रे..
काया छे पीजरुं रे—अेनीशुंये म रामत होय....
जे ते अभक्ष वस्तुओ ग्रही ने, काया नचावे तेम करीने रे,
रात्री न जोई दिवस न जोयो, भटक्यो भान ने खोय...अेनीशुंय...

ज्ञानी कहते है शरीर के पीछे पागल मत वनो। यह तो हाड—मास का पिजरा है। मल—मूत्र का खजाना है। इसके पीछे मत दोडो। वैराग्य वढाओ विषय वासनाओको छोडो, तभी तुम्हारा उद्धार हो सकेगा।

भगवान ने अपने शरीर को कैसा कष्ट पहुचाया था? कितना कठिन तप उन्होने किया था? छह महीने तक निराहार रहना, पानी भी न पीना, कितनी कठोर साधना थी उनकी। शरीर को तो जैसा तुम रखोगे वैसा ही उसे रहना पड़ेगा। यह तो अपने हाथ की वात है। पुरुपार्थ प्रवल होना चाहिये। चाहो तो आप भी महावीर का अनुसरण कर सकते हो।

ज्ञाता सूत्र का १४ वां अध्ययन तेतली पुत्र का कल से वर्णन किया जायगा। भगवान द्वारा प्ररूपित इस अध्ययन मे अपूर्व भाव भरे हुए है। जो उसे सुनेगे और सुनकर जीवन मे उतारेगे तो उनका कल्याण होगा।

ता. ६-७-६८

[७]

भगवानने सिद्धान्त बताये हैं। त्रिकालाबाधित तत्त्वों को सिद्धान्त कहा जाता है। ऐसे महान सिद्धान्तो के प्ररूपक भगवान कैसे थे? यह भी जान लेना आवश्यक है। भगवान की कथनी और करनी एक जैसी होती है। उनकी साधना सामायिक से शुरु होती है और यथाख्यात चारित्र से पूर्ण होती है। केवल ज्ञान होने से पहले वे उपदेश नही देते है।

पेला पोते आचरे पछी दीये उपदेश
वंदु ऐवा संतने जेने अहं भाव नहि लव लेश।

ऐसे सन्तो को ही नमस्कार है जो पहले अपने आचरण में उतारते हैं और फिर उपदेश देते हैं। सम्पूर्ण अकषायी होने पर ही केवलज्ञान प्राप्त होता है। केवलज्ञानी लोकालोक को हस्तामलकवत् जान सकता है। भगवान महावीर ऐसी ही थे। उन्होने जैसा जाना वैसा ही कहा, कहने योग्य ही कहा–अधिक नही कहा। नंदी सूत्र में कहा है–

जेय तत्थ पन्नवणा जोगे से भासइ तित्थयरा जो प्ररूपणा करने योग्य होता है, केवली उसे ही बताते है। वे देखते तो अनंत है, उन सब का कथन वे अपनी सारी जिन्दगी मे भी नही कर सकते। अतः जो कथन योग्य होता है वही वे कहते हैं। उनका उपदेश जिन्होने सुना वे श्रुतज्ञानी हो गये। कितना माहात्म्य है उनके उपदेशो का?

श्रुतज्ञान को छोडकर शेष चारो–मति अवधि, मनपर्यय और केवल ज्ञान मूक होते हैं। वोलने की शक्ति श्रुतज्ञान में ही होती है। भगवान जो भी वोलते हैं, वह सूत्र रूपही होता है। उसमे कही संशय को स्थान नही रहता।

केवलीय पडिपुन्नं नेया उयं संशुद्धं सल्लकत्ताणं
सिद्धिमग्गं, मुक्तिमग्गं निज्झायमग्गं निव्वाणमग्गं सव्वदुक्खाणपहीणमग्गं

केवली का ज्ञान पूर्ण होता है, उनके द्वारा कथित मार्ग ही न्याय संगत होता है। उनकी वाणी परस्पर श्रृंखला वद्ध होती है। उनका मार्ग ही शुद्ध है। वही संशय रहित और मोक्ष प्रदायक है। ऐसा मार्ग सद्भाग्य से आपको मिला है। फिर

आप प्रमाद मे क्यों पड़े हो? नीद को तिलाजलि दो और उस पथ पर आगे बढ जाओ। विश्वास के साथ अग्रसर हो, आपका कल्याण निश्चित है।

पर भाव में पड़कर सारी जिन्दगी व्यतीत कर दी है। स्व को जाना ही नही है। इसीलिये संसार मे भटक रहे हो। जिस दिन स्व मे स्थित हो जाओगे उस दिन सारा ससार तुम्हे फिका दिखाई देने लगेगा।

खाने के लिये सुदर भोजन बनाया गया है। थाल सजा कर आपके सामने रख दिया गया है। उस समय कोई घृणा जनक बात कहे तो आप उसे झट कह देगे कि खाने के समय ऐसी बाते मत करो। इसी तरह जो ज्ञानी पुरुष होते है– स्व में जिन्होने अपनी आत्मा स्थित करली है उनको भी सांसारिक बातो से घृणा हो जाती है। पर की बातो मे उन्हें आनद नही आता है। आपको किस से आनंद आता है? सामायिक करके भी आप पर का ध्यान तो नही करते है?

अन्य स्थाने कृतं पापं धर्म स्थाने विमुच्यते।
धर्म स्थाने कृतं पापं वज्र लेपो भविष्यति।

जिस स्थान पर पाप छोडे जाते है, वही तुम पाप करने लग जाओ तो फिर पाप छोडने कहा जाओगे? नदी पर कपडे धोने गये, पर मैले ही लेकर आ गये तो उन्हे साफ कहा करोगे? कई पौषध में भी विकथा करने लग जाते है–

एक बैठी आलस मरडे, बीजी उंघे बैठी।
नदि मां थी नीकली ने जई दरिया मां पेठी।
आज मारे एकादशी रे नणंदल मौन धरी मुख रहिये

पौषध मे सोना और जग कर भी विकथा करने का क्या काम है? पौषध तो २४ घंटे तक आत्म ध्यान करने की एक उत्कृष्ट क्रिया है। एक मजदूर अपने कंधे पर बोझ उठाता है। थक जाता है तो दूसरे कंधे पर ले लेता है। उपवास की क्रिया भी ऐसी ही है। उपवास हम अपने लिये करते है। मेहमानो के लिये नही। मजदूर के कंधों की तरह उपवास भी हमारे लिये पहला विश्राम स्थान है। लेकिन जब मजदूर थक जाता है तो बोझा नीचे उतार कर रख देता है और विश्राम करने लग जाता है। इसी तरह जब आप सामायिक करते है तो १८ पापो का बोझा नीचे उतार कर रख देते है। यह दूसरा विश्राम स्थल है।

पौषध मे २४ घंटे का चारित्र ग्रहण किया जाता है, यह तीसरा विश्राम है। पौंषध कर के पानी पीना या धन का ग्रहण करना योग्य नही कहा जा सकता है। अगर तुम वैसा नही कर सकते हो तो फिर पौषध करने का लाभ ही क्या है? इसीलिये ज्ञानी पुरुष कहते है कि जो भी तुम पच्चक्खाण लो, पहले उसे पूरी तरह समझो और फिर उस पर दृढ़ता के साथ कायम रहो। जो व्यक्ति अपने व्रत के प्रति

वफादार रहते हैं वे ही अपनी आत्मा का उद्धार कर सकते है। पौषध आत्मा का ३ रा विश्राम स्थल है जहा २४ घंटे तक १८ पापो से विरक्ति लेकर आत्म भाव का पोषण किया जाता है। ऐसा पौषध जो करते है वे २७ अरब ७७ करोड ७० लाख ७७ हजार ७७० पल्योपम का नरक का आयुष्य कम कर देते है। मासखमण की तपस्या से भी पोषध की क्रिया विशेष महत्त्व पूर्ण है। मासखमण पहला विश्राम है, जव कि पौपध तीसरा विश्राम है।

इससे कर्मो की महान निर्जरा होती है। पौषध मे बैठा हुआ व्यक्ति न तो चार तरह की—स्त्री कथा, भात कथा, देश कथा, राजकथा-कथा कर सकता है और न आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की कामना ही कर सकता है।

एक वार विष्ठा के कीडे—से भवरे की दोस्ती हो गई। भंवरे ने कहा—चल, आज मै तुझे अपने साथ वगीचे मे घुमा लाता हूं। यहा विष्ठा मे क्यो पडा है? वहा मैं तुझे तरह २ के फूलो की सुगध से मस्त बना दूगा। भवरा उसे वगीचे मे ले जाता है और विविध फूलो के रस का पान कराता हुआ पूछता है—वोल, अच्छा लगता है या नही? कीडे ने उत्तर दिया—मुझे तो कुछ भी अन्तर नही लग रहा है। विष्ठा की ही बास यहा भी आ रही है। भवरे ने सोचा— आखिर वात क्या है? उसने उसका मुह देखा तो विष्ठा की गोली दबी हुई थी, सुगंध आवे भी तो कैसे? जव उसने वह गोली दूर की तो फूलों की सुवास से वह मस्त हो उठा। आपका हाल भी कही ऐसा तो नही है। उपाश्रय मे आकर भी गृहस्थाश्रम की गोली साथ ले आओ तो धर्म की सुवास आपको कैसे आसकेगी? आप निश्चिन्त होकर जिनवाणी सुनेंगे तो उससे जो आनंद आवेगा वह वड़ा अद्भुत होगा—

पडिपुण्ण चित्ता सुणेह

फोन आता है तो आप उसे बराबर सुनते है—स्थिर मन होकर सुनते है। तो फिर व्याख्यान आप स्थिर होकर क्यो नही सुनते? इधर-उधर मन को क्यो घुमाते है? स्थिर चित्त से सुनेगे तो उसका फल भी आपको अवश्य मिलेगा।

चौथा विश्राम संथारा है। '**अपच्छिम मरणांतिय संलेहणा**........' १८ पाप ४ आहार एक शरीर यो २३ का त्याग कर नौ कोटि से यह सथारा ग्रहण किया जाता है। जो जीव संथारा ग्रहण कर लेते है उन्हे इह लोक या परलोक की इच्छा भी नही रहती है। जल्दी मरने की या काम भोग की इच्छा भी नही होती है। जीवन पर्यन्त तृष्णा का त्याग कर देना संथारा है। मासखमण तप मे तो ३१ वे दिन पारणा करने की आशा रहती है, परन्तु सथारा जीवन पर्यन्त का होता है, फिर भले ही वह एक दिन का ही क्यों न हो?

उसका अपना महत्व है। जैन दर्शन में उसकी बडी महिमा गाई गई है।

बाजार में जो भी नई चीज देखते हैं आप उसे घर मे ले आते हैं। भंडोपकरण बसाने में भी विवेक रखना जरूरी है। उन साधनो से जब तक अपना स्वामित्व नहीं हटाया जाता तब तक उनसे जो क्रिया होती रहेगी, उसका पाप साधन बसाने वाले को भी लगता रहेगा।

एक हिरन को किसी ने बाण मारा और वह मर गया। उसके चमडे से गेंद बनाया। गेद से लडके खेलने लगे। उससे कई जीव-कीडे-मकौडे मर जाते है। इस पाप क्रिया में जिस हिरण का चमडा है, वह ममता लेकर मरा है, अतः उस हिरन को भी ५ क्रिया लगती है। शिकारी को और खेलने वाले को तो तीव्रतर क्रिया लगती ही है।

काइयाः–अहिगरणीया पाउसीया पारितावणीया पाणा इवाइया.

ऐसे पाप आपको तो नहीं लगते हैं। इसका भी कुछ हिसाब लगाया है? जीवन में आपने कितने कारखाने खोले है? उन्हे चालू रखकर मर गये तो उनका परम्परागत पाप आपको भी लगता रहेगा। संथारा करने से यह पाप फिर चालू नहीं रहता है।

अफीमची अफीम खाते है और नशा करते है। बेभान हो अग्नि के बजाय प्रकाश के प्रतिबिंब से वे बीडी सुलगाने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन वह अग्नि थोडे ही है जो बीडी सुलग जाय। वह तो प्रतिबिब है। इसी तरह आप भी सच्चे श्रावक हो या श्रावक के प्रतिबिम्ब मात्र हो? अगर सच्चे श्रावक हो तो स्वानुभव क्यों नहीं करते हो? पर मे ही क्यो भटक रहे हो? वर्षो के वर्ष बीत गये, धर्म सुन रहे हो, फिर भी वही के वही घाणी के बैल की तरह खडे हो। यह कैसा श्रावकपन है आपका? ज्ञानियों के वचन में आपकी श्रद्धा नहीं हुई है, उसे मजबूत करो, उसका अनुसरण करो, वही सच्चा मार्ग है उसी मे आत्मा का कल्याण निहित है—

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्धवीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।

जिसने मोह जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया। लेकिन जो मोह में डूबे हुए है उनका क्या? वे अपने आप अपना अहित कर रहे है। ज्ञानी कहते है, तू अकेला है, तेरा कोई नहीं है। और तू किसीका नही है, फिर मोह क्यो कर रहा है। अगर यह सूत्र हृदय मे बैठ जाय तो फिर कोई पाप कर्म कर सकता है क्या?

यह मेरा शत्रु है, यह मेरा मित्र है, ऐसा राग द्वेष फिर नही हो सकता।

आत्मा ही कर्मो का कर्ता है, खुद ही अपने कर्मो का भोक्ता है, अपनी गति अपने ही हाथ में है, लेकिन हमने अभी तक सत्मार्ग की प्रतीति नही की है, इसीलिये हमारी ऐसी स्थिति हुई है। द्वेष छोडने का सभी कहते है, पर राग को छोड़ने का केवल जिन शासन ही कहता है। राग है वही द्वेष भी है। अतः राग के वशीभूत मत बनो। जैन शासन अजोड़ है, भगवानने तो निस्पृही बनकर ही उपदेश दिया है, वहाँ अनुभव पहिले है, कथन बाद मे।

सरोवर में पानी भरा हुआ है। पानी ही पानी नजर आता है, पर वह गहरा कितना है, यह तो लकड़ी से देखा जाता है, तब पता लगता है। इसी तरह सभी दर्शन ज्ञान की तो बाते करते है, पर वह ज्ञान पूर्ण है या अपूर्ण, यह तो ज्ञान की लकड़ी से ही जाना जा सकता है।

अन्यमत मे शास्त्र पठन का भी मेहनताना तय किया जाता है। कही भागवत बांचना हो तो पहले यह पूछा जाता है कि महाराज आप क्या लेंगे। जैनियो के साधु तो कुछ नही लेते है। वे तो निस्पृही होकर उपदेश देते है। अन्य मत मे उपदेश के बाद आरती उतारी जाती है, जिससे रुपया इकठ्ठा किया जाता है, जैन दर्शन मे ऐसा कुछ नही किया जाता। जहाँ स्पृहा है, वहाँ निस्पृह उपदेश कैसे संभव हो सकता है?

एक राजा था। जो रोज धर्म कथा सुना करता था। एक दिन राजाने पडित से पूछा, पंडितजी, तुम मुझे रोज कथा सुना रहे हो, पर मुझे वैराग्य क्यों नही होता है। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न का समाधान अगर आपने ७ दिन में नही किया तो मै तुम्हारा घर नीलाम करा दूंगा। पंडित घबरा गया। अब क्या किया जाये? मारे चिन्ता के वह परेशान रहने लगा।

चिन्ता बड़ी अभागिनी–तिहूँ जगत को खाय।
जीवता चढ़ावे चाक पर मुवा नर्क ले जाय।

चिन्ता और चिता मे केवल एक बिन्दी का ही फर्क है। चिता तो केवल मुर्दे को ही जलाती है, परन्तु चिन्ता तो जीवित को ही जलादेती है।

चिन्ता तुराणी–नहि सुखः निद्रा,
क्षुधा तुराणी, नहि बलः तेजाः
कामातुराणी नहि भय लज्जा
अर्थातुराणि नहि सज्जन बंधवा

चिन्तातुर मनुष्य को सुख की नीद भी नही आसकती है। पडित की भी नीद गायब हो गई। दिन और रात चिन्ता मे ही डूबा रहने लगा। उसके लड़के

ने जब यह देखा, तो पूछा–पिताजी, आप चिन्तातुर क्यो दिखाई देते हो। पंडित बोला–बेटा तू अभी बच्चा है। तू क्या समझेगा ? लड़का बोला, कहिये तो सही, आखिर बात क्या है ? पडित ने राजा की बात कह सुनाई। अगर राजा की बात का ७ दिन में समाधान नही किया जायेगा, तो अपना घर नीलाम हो जायगा। लडका बोला:–बस, इतनी सी बात है। आप राजा से कह दे कि इसका उत्तर मेरा लडका देगा, अब आप चिता छोड दीजिये। सब ठीक हो जायेगा। ७ वां दिन आया, राजा ने पडित से पूछा–क्या जवाब लाये हो ? पंडित बोला, मै क्या जवाब दू, इसका जवाब तो मेरा लडका ही देगा। लड़का खड़ा हुआ और उसने हाथ जोडकर राजा से कहा: उत्तर देने मे कही अविवेक हो जाय, तो आप मुझे माफ करदे। उसकी सजा न दे, तो मै उत्तर दे सकता हूँ। राजा ने वैसा ही लिख कर दे दिया। लडके ने दो रस्सी मगवाई। उसने एक खम्भे से राजा को बाधा और दूसरे खम्भे से अपने पिता को। फिर राजा से कहा– आप मेरे पिता को छुडाइये। अपने पिता से भी कहा–आप राजा को छुडाइये। दोनो ने उत्तर दिये–हम तो बधे हुये है, एक दूसरे को कैसे छुड़ा सकते है ? लड़के ने कहा–मै खुला हूँ (बंधन मुक्त हूँ) मै आप दोनो को छोड़ सकता हूँ।

बंधे को बन्धा मिले कैसे दिये छुडाय।
बंधे को छूटा मिले, पल में दिये छुड़ाय।

बंधन मे रहते हुये प्राणी बंधन मुक्त नही हो सकते। जो बधन मुक्त रहता है, वही बधन मुक्त कर सकता है। आप अपने राजपाट के बधन मे बधे हुये है। मेरे पिताजी गृहस्थ के बधन से बधे हुये है। दोनो एक दूसरे को बधन मुक्त नही कर सकते। जो बधनो से मुक्त है, वही दूसरो को भी बधनो से मुक्त कर सकता है।

सूयगडांग सूत्र मे भी पुडरिक कमल का बडा सुदर उदाहरण दिया गया है। उस कमल को लेने के लिये चार आदमी चारो दिशाओ से आते है और तालाब मे कूद पड़ते है। सब कीचड़ मे फस जाते है। कमल को कोई नही ले पाता। पांचवा मुनि आता है। जिसकी वृत्ति राग द्वेष वाली नही है।

उदारस्य तृणं वित्तं सूरस्य मरणं तृणं
विरक्तस्य तृणं भार्या निस्पृहस्य तृणं जगत।

निस्पृही के लिये सारा ससार तृणके समान है। उस मुनि ने किनारे पर खड़े होकर देखा कि वे चारो आदमी कामासक्त थे। अत: कमल को कैसे पा सकते थे। जो अफीमची है, वह अफीम कैसे छुड़ा सकता है ? जो बीड़ी पीने वाला

है वह दूसरों का बीडी पीना कैसे छुडा सकता है? बंधनो से मुक्त तो वही कर सकता है, जो इन सब बंधनो को सदैव के लिये छोड चुका होता है। जिनको पूजा और धन चाहिये, वे क्या दूसरो को बंधनों से मुक्त कर सकेंगे?

आरम्भें नत्थि दया–मिहिला संगेण नासई बंभं

संकाए समत्त नासई, पवज्जा अत्थ गहणं च'

हिंसा में दया नही रह सकती, जहाँ स्त्रियो का साथ हो वहाँ ब्रह्मचर्य नही रह सकता। शंका से समकित नष्ट हो जाती है, अर्थ ग्रहण से साधुत्व का नाश होता है। अतः जो मुक्त है, इन बंधनो से परे है, वही दूसरो को बंधनों से मुक्त कर सकता है।

जिनेश्वर भगवान का मार्ग ही तरणतारण का मार्ग है। वही आत्मा का उद्धार करने वाला है। जो इस मार्ग का अनुगमन करेंगे। वे ही आत्म कल्याण कर सकेंगे।

[हे मुनियों! लोक समान पुष्करणी–वावडी है, कर्म रूपी उसमे जल है, काम भोग रूपी उसमे काई–सेवाल है, जन पद उसमे छोटे कमल हैं और बडे राजा महान पुडरिक कमल है। अन्यतीर्थियों–क्रिया वादी, अक्रियावादी, विनय-वादी, अज्ञानवादी–ये ४ पुरुष है, जो चारो दिशाओ से आकर फस जाते है। धर्म रूप भिक्षु है, धर्म तीर्थ रूप किनारे पर खडा है, धर्मकथा रूप शब्द करते है और पुडरिक कमल का ग्रहण किया वही निर्वाण रूप है।]

सोमवार ता. ७–७–६८

[८]

ज्ञातासूत्र के १४ अध्ययन–तेतलीपुत्र का अधिकार शुरु किया जा रहा है। जंवुस्वामी हाथ जोडकर, नमस्कार कर सुधर्मा स्वामी से कहते हैं। जंबु स्वामी चेले थे और सुधर्मा स्वामी गुरु। दोनो गुरु चेलो की यह जोडी भी महान् थी। जंबु स्वामी १६ वर्ष की वय मे नव परिणित ८ स्त्रियो को और ९९ करोड धनराशि को त्याग कर मुनि बने थे। उनके साथ प्रभव आदि ५०० चोर भी साधु बने थे। ऐसे महान् पुरुष होने पर भी उनका विनय कैसा अपूर्व था? भगवान ने कहा है :–

विनय थी वस्तु वरे वस्तु विनय स्वरूप ।

जे नर विनय चूकिया ते पडिया भव कूप ।

विनय ही मोक्ष सुख का दाता है। विनय से ही ज्ञान और चारित्र मिलता है। संसार में भी विनयवान पुत्र ही पिता की सम्पत्ति का मालिक होता है। विनयवान वह ही मानू

की प्रियपात्र होती है। घड़ा भी जब नमता है तभी पानी से भरता है। उसी तरह विनयवान ही कुछ प्राप्त कर सकता है। जंवु स्वामी अपने दोनों हाथ जोडकर अंजलि भरकर सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं, आपके साता है, क्या मैं प्रश्न पूछ सकता हूं ? कितना विनय ?

सोना नरम होता है तभी उसमें नगीना फिट हो सकता है-जड़ा जा सकता है। अगर सोना कडक ही बना रहे तो उसका आभूषण नहीं वन सकता। इसी प्रकार जो नम्र बनते हैं वे ही ज्ञान के अधिकारी वन सकते हैं।

ठाणांग सूत्र मे ३ प्रकार के मनुष्यों को ज्ञान नहीं देने का कहा गया है—

१ क्रोधी मनुष्य को-ज्ञान नही देना चाहिये। जिसके दिमाग में गरमी चढ जाती है वह उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता। क्रोधी मनुष्य अस्थिर रहता है अतः वह उपदेश श्रवण नही कर सकता है।

२ अविनयी – जो अविनीत है वह भी उपदेश के योग्य नही है। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान ने अविनीत के १४ लक्षण वताये है –

१ अभिक्खणं कोही – बार बार क्रोध करने वाला
२ पवन्धं च पकुव्वई – दीर्घकाल तक क्रोध करनेवाला
३ मेत्तिज्जमाणो वमई – मित्रता का नाश करने वाला
४ सुयं लद्धूण मज्जइ – ज्ञान का अभिमान करनेवाला
५ अवि पावपरिकरवेवी– अपना पाप – दोष दूसरों पर डालने वाला
६ मित्तेसु कुप्पई – मित्रो– स्वजनों पर क्रोध करनेवाला
७ सुपियस्सावि मित्तस्स– मित्रोकी भी पीठ पीछे नींदा करने वाला
८ पइणवाई—असंबद्ध बोलनेवाला।
९ दुहिले – द्रोही।
१० थद्धे– अहंकारी।
११ लुध्धे – रस लौलुपी।
१२ अनिग्गहे – अजीतेन्द्रिय
१३ असंविभागी– बांट कर नही खाने वाला
१४ अवियते – अविश्वासी।

ऐसा अविनीत शिष्य गुरु की आज्ञा में न ीं रह सकता है। वह ज्ञान पाने का अधिकारी नही वनता अतः उसे मोक्षपद कभी भी प्राप्त नही हो सकता है। लेकिन जंवुस्वामी कैसे विनयवान है ? इनके गुणोंका वर्णन करना भी आसान नहीं है। वे निरहंकारी, प्रियभाषी, अविनय के १४ दोपों से रहित और १४ सद्गुणों के धारक है। गुरु के

हृदय में विनय से ही शिष्य अपना स्थान बना सकता है। शिष्य तो कई हो सकते हैं, पर गुरु के हृदय में अपना स्थान बना लेना आसान काम नहीं है।

जो क्रोधी है, अविनीत है, रस का प्यासा है, उन्हें ज्ञान नहीं दिया जा सकता है। उनको दिया हुआ ज्ञान वे पचा नहीं सकते हैं। अतः भगवान ने विनयी को ही ज्ञान देने का कहा है।

उत्तराध्ययन सूत्र में भ. ने कहा है—
पणीयं भत्तपाणं तु खिप्पं मय विवड्ढणं।
बंभचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए।

जिसको ब्रह्मचर्य का पालन करना है, उसे मादक पदार्थों का सेवन छोड़ देना चाहिये। तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाले पदार्थों का ब्रह्मचारी सेवन नहीं करते हैं।

इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिये भी तप की आवश्यकता है। लेकिन आज तो तप के प्रति भी लोगों की भावना कम होती जा रही है। रोज सुबह उठते ही चाय और गांठिये चाहिये। आटा चाहे जैसा सड़ा-गला हो, कंदोई गरमागरम गांठिये बना रहा है, यह देखकर आप ले लेते हैं, यह आपकी रस लोलुपता नहीं तो क्या है? कम से कम चातुर्मास पुरता तो बाधा ले लो कि घर से बाहर की बनी हुई आटे की किसी भी चीज का उपयोग हम नहीं करेंगे।

भगवानने तो स्पष्ट कहा है कि रस लोलुप आत्मा ज्ञान का पात्र नहीं होता है। अतः जिह्वा को वश में रखो-उसे रस-लोलुप मत बनने दो। तप का आचरण करो। यही आपकी आत्मा का उद्धार कर सकेगा।

क्रोधी, अविनयी और रस लोलुप को ज्ञान नहीं देना चाहिये। इसके विपरीत जो अक्रोधी है, विनयवान है और तपस्वी है उसे ज्ञान देना चाहिये। ये तीनों ज्ञान पाने के हकदार कहे गये हैं।

जंबुस्वामी का विनय कैसा था? नमस्कार मंत्र के प्रति उनकी श्रद्धा कैसी थी? उनके नमस्कार मंत्र का प्रभाव तो देखिये –

हजारों मंत्र शुं करशे
मारो नवकार बेली छे – मारो
जगत रुठी ने शुं करशे।
मारो नवकार बेली छे –

नमस्कार मंत्र के प्रति उनकी कितनी अटूट श्रद्धा थी। ५०० चोर जो गठड़ी बांधकर भागनेवाले थे वे वहां के वहां स्थिर हो जाते है। एक कदम भी आगे नहीं जा सके लेकिन आज आपको ऐसी श्रद्धा कहां है?

ध्वस्तोऽन्य मंत्रैः परमेष्टि मंत्र :
कुशास्त्र वाक्यैर्निहतागमोक्ति : ।
कर्तुं वृथा कर्मकुदेवसंगा
दवांछिहिनाथ मति भ्रमो मे ।

मति विभ्रम से मैंने आज चितामणि रत्न तो फेक दिया है और कांच के टुकडे को ही रत्न समझ कर पकड लिया है ।

नमस्कार मंत्र तो अनादि सिद्ध मंत्र है । गणधर देव भी जिसका कथन सूत्र के आरंभ मे करते हैं । यह मंत्र सब पापों का नाश करनेवाला है 'सव्व पावप्पणा सणो' पापो को उदय मे ही नही आने देता है । इसकी आराधना से रोगी निरोगी हो जाता है, पागल अच्छा बन जाता है। और मन चिंतित कार्य पूरे होजाते हैं । इसकी शरण छोडकर जो दूसरे मंत्रों का सहारा लेते है वे फिर जंजाल मे ही फंस जाते है । जंजाल से मुक्ति दिलाने वाला तो यही महामत्र है ।

अज्ञानी को आगम की बाते अच्छी नहीं लगती है। आप्त पुरुषों द्वारा कही गई ज्ञान की बाते उसे नीरस जान पडती है ।

निर्दोष नरनुं कथन मानो तेह जेनें अनुभव्युं ।

भगवान की निर्दोष वाणी ही आगम है ।

आ – आप्त– अरिहंतों द्वारा कथित

ग – गणधरों द्वारा गुंफित

म – मुनियों द्वारा अनुमोदित जो है वह

आगम है । जिसमे कथन कम और रहस्य अधिक भरे पड़े है । जिनका विश्लेषण किया जाय तो अनंतकाल तक भी पार न आवे । लेकिन आज आप शास्त्र कहा पढ़ते है ? प्रति दिन एक पृष्ठ भी पढ लिया जाय तो उससे आपका जीवन पलट सकता है ।

जैसे रोज सुबह उठकर आप अखबार पढ़ने लग जाते हो, वैसे ही आगम का एक पृष्ट भी पढने की आदत डाल दो तो आपका कल्याण हो सकता है ।

आगम ही एक सहारा है जिससे मनुष्य संसार से तिर सकता है । श्रावकको साधुका आधार होता है और साधु को आगम का–सूत्र का। पतंग को धागे का सहारा रहता है तब तक तो वह आकाश मे उडती रहती है, लेकिन जैसे ही धागा टूटा कि वह नीचे गिर जाती है । इसी तरह साधु भी सूत्र के आधार पर ऊंचा चढता है, जैसे ही उसने आधार छोड़ा कि उसका पतन अवश्यंभावी है ।

दो पतंग आपस मे टकराती है तो कच्चे धागे वाली कट जाती है और मजबूत धागे वाली आकाश मे उडती रहती है । जैनदर्शन के सामने भी कई मत-मतान्तर

आते हैं– पर अनेकान्त का धागा इतना मजबूत है कि वह किसी से भी परास्त नहीं होता है। सर्वत्र विजयी ही रहता है।

आगम ही हमारे उद्धारक है। उन पर श्रद्धा रखोगे तो आपका उत्थान अवश्य होगा।

आगम हमारे बहुमूल्य रत्न हैं, उनकी हिफाजत करो, उन पर श्रद्धा करो; समझो–समझने की कोशिश करो, जहा समझ में न आवे वहां भी यह कहो कि –

तमेव सच्चं निशंकं जं जिणोंहि पवेदितं।

हे जिनेश्वर देव! आपने जो कहा है वही सच्चा है, मेरी शक्ति अधुरी है, मैं उसे बराबर समझ नही पा रहा हूं। सत्य तो जैसा आपने देखा है वैसा ही है।

शास्त्रन दिव्य नयन तु जाण
ऐमां विस्तारे छे साचा प्रमाण
भव्यता भाली रे शास्त्रमां हो–
तत्व मने मल्युं रे शास्त्र मां
सत्य मैं तो शोध्युं रे शास्त्र मां हो...

धर्म का मूल बड़ा गहरा है–उस मूल को सीचो। पत्तों को सीचने से क्या होगा? मूल सीचोगे तो धर्म टिका रहेगा, वह फलेगा–फूलेगा और एक दिन आप भी उसके फल का रसास्वादन कर सकोगे।

धर्म दुनिया मे रहेगा तो सुख मिल सकेगा! जहां सद्‌गुण है वहां धर्म है, जहां दुर्गुण है वहां धर्म नही हो सकता। अतः सद्‌गुणो का प्रसार करो। सच्चे धर्म को और सच्चे देवो को समझो। जो धर्म के नाम पर भोग चाहे, वलिदान मागे वे सच्चे देव कैसे हो सकते है?

कोई योगिणी भोगिणी भोग मांगे
कोई रुद्राणी छागना होम मांगे
इसा देव देवी तणी आस राखे
तदा मुक्तिना सुखने केम चाखे?

सच्चे देव तो जिनेश्वर देव ही है, जो न डराने के लिये हाथ में तलवार रखते हैं, न वलिदान की चाहना करते है, न भोग की कामना करते है और न प्रतिष्ठा की चाहना ही करते है। वे तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। किसी भी प्राणी को वे कष्ट देना नहीं चाहते। उन पर श्रद्धा करो। आपका वेडा पार हो जायगा। जम्बू स्वामी की कैसी अडौल श्रद्धा थी? उन पर अवस्थापिनी विद्या का कुछ भी असर नहीं हुआ। चोरों का सरदार प्रभव जम्बू स्वामो के पास आता है और कहता है मै आपको ताला खोलने की और निद्रा लाने की विद्या वता सकता हू, आप मुझे अपनी स्थंभिनी विद्या बता दें।

जम्बू स्वामी कहते हैं—मुझे तुम्हारी विद्या नहीं चाहिये । मैं तो अपना नवकार मंत्र जानता हूं, तुम्हें भी सीखना हो तो मेरे गुरु के पास चलो, वे तुम्हें भी यह सिखा सकते हैं ।

५०० चोर भी जंबू स्वामी के उपदेश से चोर मिटकर साधु हो जाते हैं । कहिये, कितना प्रभाव था उनका ? चोरो में भी संगठन कितना जबरदस्त होता है ? जब प्रभव ने अपने साथियो से कहा कि मेरी इच्छा तो संयम लेने की है तो सभी चोर भी इसके लिये तैयार हो गये । लेकिन आपका संगठन कैसा है ? कोई इधर जा रहा है तो कोई उधर जा रहा है । अगर ५ श्रावक और ५ साधु भी सच्चे दिलसे संगठित हो जायं तो वे सारे समाज को बदल कर रख सकते हैं ।

यहा आने का तो आप लोगों पर कोई टैक्स नही लगता है, फिर आप इसका प्रचार क्यो नही करते हैं कि लोग अधिकाधिक संख्या में यहां आ सके । आज देर कैसे हो गई तो जबाब मे आप कहते हैं—मेहमान आ गये थे । तो उसे भी साथ में ले आना था न ? वह भी धर्म के दो बोल सुन लेता तो लाभ ही होता । लेकिन ऐसी धर्म दलाली आप कहां करते हैं ? जो लोग धर्म पर चलेगें, जीवन मे धर्म का आचरण करेगें उनका कल्याण अवश्य होगा ।

ता. ८-७-६८

[९]

परिपूर्ण ज्ञान से भगवान ने जो देखा वही उन्होंने हमारे कल्याण के लिये बताया है । उनके बताये हुए सिद्धान्त ही आगम कहे जाते हैं ? ज्ञान के बिना आगम भी आपका उद्धार नही कर सकते । अंधे के लिये दीपक की रोशनी का क्या लाभ ? इसी तरह पहले दृष्टि शुद्ध करोगे तो आगम भी आपका उद्धार कर सकेगें ।

आज आषाढी १४ है । धर्म की मौसम आज से शुरु होती है । आप धर्माचरण करोगे तो धर्म आप से दूर नही रहेगा । वह आपका उत्थान अवश्य करेगा । यह संभव नही कि कल्पवृक्ष के पास जाकर भी तुम भूखे ही रहो ? वह भाग्यहीन ही कहा जायगा जो रत्नचिन्तामणि को फेंक कर कांच के टुकडे को ग्रहण करेगा । कामधेनु जैसी गाय हो और फिर भी घर मे दरिद्रता रहे तो यह किसका दोष कहा जायगा ?

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जो वीतराग का स्मरण करते हैं उनकी सेवामे कामधेनु, कल्पवृक्ष और रत्न चितामणि रत्न भी सदैव उपस्थित रहते है । उसको देव, दानव और मानव सभी नमस्कार करते है । आवश्यकता है शुद्ध मन से उनका ध्यान करने की—प्रार्थना करने की । बिजली के दो तार-नेगेटिव और पोजिटिव जब तक जुड नहीं जाते है तब तक बिजली पैदा नही हो सकती है । इसी तरह जब हृदय के तार ईश्वर से

एकाकार नही हो जाते हैं तब तक प्रार्थना भी अधुरी ही रहती है। वह आत्म–ज्योति को प्रकट नहीं कर सकती है।

मन और चक्षु इन्द्रिय को वश में करने से ही ऐसा संभव हो सकता है। ये दोनों इन्द्रियां ऐसी है जो सामने जाकर वस्तु को पकड़ती है। इनको काबू में करो। अगर ये दोनो वश में हो जाय तो साधना सफल हो सकती है।

कोशिश करने से यह हो सकता है। यह कोई असंभव बात नही है। महापुरुषों ने इनको वशमें किया ही है। सुधर्मा स्वामी भी ऐसे ही थे। वे भगवान महावीर स्वामी के ५ वें गणधर थे। जिन्होने ५० वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ली और ५० वर्ष तक उसे पाली, यों १०० वर्ष तक वे जीवित रहे।

भगवान के ११ गणधर थे। उनमें इन्द्रभूति गौतम सब से बड़े थे। जब लोग यज्ञ छोडकर भगवान की सेवा में पहुंचने लगे तो इन सब गणधरों ने, जो कि पहले कर्मकांडी ब्राह्मण पंडित थे, देखा कि ऐसा कौनसा इन्द्रजाली आया है जो देवलोक से भी देवताओं को अपने पास आकर्षित कर रहा है? उसे देखना तो चाहिये, आखिर वह कौन है? यह सोच कर इन्द्रभूति गौतम सब से पहले भगवान के पास जाते हैं। दूर से उन्हें आते देखा तो भगवान ने कहा–गौतम! अपना नाम सुनकर गौतम चौंक पड़ते है। सोचते है–मेरा नाम कैसे जान लिया? मन ही मन समाधान भी करते है, मैं तो प्रसिद्ध हूं–मेरा नाम कह दिया तो क्या हुआ? मेरे मन में जो संशय है उसे बतादें तो मै इनको गुरु मान सकता हूं। दूसरे ही क्षण भगवान ने कहा– गौतम! तेरे मन मे जो संशय हो गया है, उसका अर्थ यह नही, ऐसा होता है। यह सुनकर तो गौतम पानी पानी हो गया। उनका मन सरल था। वे भगवान के चरणो मे नतमस्तक हो गये। गौतम फिर अपने यज्ञ मे नही लौटे, वे भगवान के ही शिष्य बन गये।

जैसे खेत साफ सुथरा हो और उसमे बीज बोया जाय तो फल लगेगा ही। वैसे ही मन भी हमारा शुद्ध रहा, हृदय में सरलता रही तो सद्‌गुणों का संचार अवश्य हो ही जायगा।

श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है–

मंद विषय ने सरलता सह आज्ञा सुविचार
करुणा कोमलतादि गुण प्रथम भूमिका धार।

दुनिया में कही भी चले जाइये, दर्शनीय चीजों को देखने की भी फीस देनी पडती है। सिनेमा जाओ, म्युजियम देखो या और कोई, फीस तो देनी ही पडती है। लेकिन हमारे पास आने की फीस, वैसी फीस नही है। हमारी फीस है– विषय की मंदता करो, सरल बनो, माया को छोड़ो, कपट को छोडो, हिंसा और झूठ को छोडो। जीव को

गिराने वाली माया है। माया ने ही भगवान मल्लिनाथ को स्त्री वेद में डाल दिया था। मल्लिनाथ अपने पूर्व भव में छह राजाओ के साथ तपस्या करते थे। मल्लिनाथ वडे थे अतः तप करने में भी बडा रहना चाहते थे। समान तप करने से तो सबको समान फल मिलेगा, फिर मै वडा कैसे रह सकूंगा ? यह मान पोषने के खातिर उन्होने माया की तो उसका फल उन्हे स्त्री वेद मे मिला। तीर्थंकर बनें, पर स्त्री रूप में। यह माया का ही फल था।

आत्मा का दूसरा कोई शत्रु नही है, वस्तुतः आत्मा ही आत्मा का दुश्मन है —

नथी कोई शत्रु मारे आ दुनिया में
खरा दुश्मनो मारा दिलमां छुपाया।
लडतो रह्यो छुं निरंतर झझुमी
छतां दुश्मनो तो जरीना जीताया।
कलेजे पडचा छे एवा कांईक कांणा
केम करी गाऊं हुं तो प्रभु तारा गाणा।
जीवन मां मच्या छे ऐवा रे धींगाणा— केम—

अभी तक तो मै दूसरों आदमियों को ही अपना दुश्मन समझ कर उनसे लोहा लेता रहा, पर आज मुझे मालूम हुआ है कि लडना तो मुझे अपनी आत्मा से ही है, क्योकि सच्चे दुश्मन तो मेरे दिल में ही छिपे हुए हैं। उन्हे निकालने के लिये तो सच्चा पुरुषार्थ चाहिये —

जोर करीने जीतवुं खरे खरुं रण खेत।
दुश्मन छे तुज देहमां चेत चेत नर चेत।
गाफल रहिश गमारतुं फोगट थइश फजेत।
हवे जरूर हुशियार थई चेत चेत नर चेत।

बाहर तेरे कोई दुश्मन नही है। वे तेरा कुछ भी विगाड नही कर सकते। जब तक तेरा पुण्य प्रवल है तव तक तेरा कोई बिगाड नहीं कर सकता। पुण्य की टाकी जव तक भरी हुई है तब तक तुम्हारे यहा जाहोजलाली भी है। सच बात तो यह है कि पुण्यही तुम्हे सुखी रख रहा है। स्वयं सेठ तो दो शब्द भी सभा मे उठ कर नही वोल सकता, पर उसके यहा नौकरी करने वाला वैरिस्टर हो तो यह क्या पुन्य का खेल नही है? वहा होशियारी काम नही देती है। यह सव खेल पुण्याई का ही है।

लेकिन आज आपको अपने पुण्य पर भी भरोसा नही रहा है इसीलिये आज आप नही करने योग्य काम भी करने लग गये हो। व्यापार में झूठ वोलते हो और यह समझते हो कि झूठ वोले विना तो पैसा इकट्ठा हो ही नही सकता।

यह गलत समझ है आपकी। जैसे किसी को क्रोध आ जाता है, यह उसका स्वभाव कह सकते हो, पर क्रोध किये बिना चलता नही है यह मान लेना गलत बात है। क्रोध आत्मा का विभाव है, उसे नहीं करना चाहिये, फिर भी जीवन में इस से न बच सके तो यह उसकी कमजोरी है, पर वह उसे करने योग्य नही समझता है अतः वह सम्यग् दृष्टि है। सोचना उसका सही है अतः वह कभी न कभी चारित्र में भी उतार ही लेगा।

लेकिन जो विपरीत मान्यता वाला है और यह कहता है कि उसके बिना तो चलता ही नही है, वह मिथ्या दृष्टि है, उसका उद्धार त्रिकाल मे भी नही हो सकता है। वह मूल पर ही कुठाराघात करता है अत. १८ पाप उसके लिये खडे हो जाते है, वह इनसे बच नही सकता। उसका पतन अवश्यभावी है। लेकिन सम्यग्दृष्टि जीव मूल को आबाद रखता है अतः वह कभी न कभी देर-अबेर अवश्य फूलेगा फलेगा-यह निश्शंशय है। अतः ज्ञानी कहते है कि पहले शुद्धि करो-हृदय की शुद्धि करो तभी उसमे सद्गुणो का आविर्भाव हो सकेगा।

जो चोरी करता है वह तो पकडा ही जाता है। चाहे जैसा गुप्त काम करो पर पकडने वाले तो पकड ही लेते हैं। यहां बच भी गये तो पर लोक मे तो पकडे ही जाओगे। लेकिन जो बुरा काम कर के भी उसे बुरा समझता है वह एक दिन उस काम से अवश्य विरक्त हो सकेगा। क्योकि उसमें हित और अहित को समझने का विवेक अभी शेष है। अतःज्ञानी कहते है।-जहा तक आत्मा मे सम्यग्दर्शन प्रकट नही होता वहा तक भव की परंपरा कम होने वाली नहीं है। आनंदघनजी कहते है—

समकित साथे कीधी सगाई।
सपरिवारशुं गाढी
मिथ्यामति अपराधण जाणी
घर थी बाहिर काढी हो।
हो मल्लिजिन अे अब शोभा सारी।

सगाई तो लडके और लडकी के साथ होती है, पर जैसे सारे कुटुंब में सगाई से संबंध बढ़ जाते है, वैसे ही समकित से सगाई करने पर अनेक गुणों के साथ सबध हो जाता है। समकित आने पर अनेक गुण अपने आप वहा आ जाते है। अतःसमकित को प्राप्त करो। समकित विना जीव अधिक से अधिक नववे ग्रैवेयक तक जा सकता है, सम्यग्दर्शन के विना नौ पूर्व की विद्या भी अविद्या हो जाती है। कितना महत्व है उसका? जब तक आत्मा मे मिथ्यात्व रहता है, आत्मा कभी भी आगे नही बढ़ सकता है।

एक कसाई ने ५६ रु. में एक गाय ली और उसे कत्तल कर उसके मांस से ३५ रु. कमाये। कहिये, यह रुपये उसे पुन्य से मिले या गाय काटने से मिले हैं? रुपये उसे पुण्य से मिले हैं—लेकिन निमित्त उसका गाय मारना है। कसाई होते हुए भी आज वह सुख सुविधा से जी रहा है—और दूसरी तरफ नीति—धर्म का आचरण करने वाला रोटी के लिये भी फां फां मार रहा है, यह क्या बात है? इसका उत्तर देते हुए शास्त्रकार कहते हैं —

जो भूतकाल का पापी है वह वर्तमान में धर्माचरण करते हुए भी दुख को भोग रहा है, क्योंकि उसका पुण्य का खजाना खाली हुआ पड़ा है। और जो भूतकाल का पुण्यशाली है— परन्तु वर्तमान में जो पापाचरण कर रहा है उसका पुण्य का खजाना भरा पड़ा है अत:वह पाप करते हुए भी सुख का उपभोग कर रहा है। लेकिन वर्तमान का पापी भविष्य में दुखी होने वाला है जब कि वर्तमान का धर्मी भविष्य मे सुखी बनने वाला है। यह तो दो और दो चार जैसी सीधी साधी बात है। याद रखिये मिथ्या दर्शन से सकाम निर्जरा नहीं होसकती है, वह तो सम्यग्-दर्शन से ही होती है। समकित आने पर सम, संवेग, निर्वेद अनुकम्पा और आस्था जैसे गण अपने आप आत्मामे प्रवेश करने लगते हैं।

एक सेठ के घर में चोर आया। सेठ ने उसे देख लिया, पर चोर के हाथ में छुरी थी अत: सेठ घबरा गया, कुछ बोला नहीं। चोर सेठ के घर में गया। सब सामान खुला पड़ा था लेकिन चोरने उसे नहीं छुआ। वह तो एक कचरे वाले मकान में जाता है और वह कचरा टोपले मे भर कर बाहर ले आता है। सेठ उसे देखता है तो खुश होता है। बिना पैसे का आदमी सफाई करने वाला मिल जाय तो अच्छा ही है न? सेठ के घर की तरह आपकी आत्मा में भी अनेक सद्गुणो का खजाना भरा पड़ा है, कोई क्रोध रूपी चोर आपके खजाने को लूटने आ जाय और वह गुणों के बजाय आपके दुर्गुणो का कथन कर उन्हें चुरा ले जाय तो आपको उस पर नाराज क्यो होना चाहिये? वह तो आपके मन का कचरा बिना पैसे लिये ही साफ कर रहा है। है न खुशी होने जैसी बात? फिर आप अपनी नीदा करने वाले से नाराज क्यों होते हैं? वह आपके गुण थोडे ही चुरा रहा है, ले तो अवगुण ही रहा है न?

चातुर्मास की आज से शुरुआत हो रही है। कहीं २ तो लोग आज से सम्वत्सरी तक लगातार प्रतिक्रमण करेगें। आप वैसा नही कर सको तो यथाशक्ति ज्ञान, तप और चारित्र धर्म की आराधना करो, चार मास तक ब्रह्मचर्य का पालन करो, खान —पान की सीमा निर्धारित करो, अभक्ष्य खाना वंद करो, वाहर की सडी-गली वस्तु नही खाने का नियम ग्रहण करो—ऐसा त्याग तो आप कर सकते है न?

त्याग वैराग्य न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान
अटके त्याग वैराग्यमां, तो भूले निज भान,

अतः तप-त्याग के महत्व को समझोगे और धर्माचरण में मन को स्थिर करोगे तो आत्मा का उत्त्थान होते देर नहीं होगी।

कई लोग कहते है -रोज २ मिच्छामि दुक्कडं कहना और फिर वही पाप करते जाना यह कैसा प्रतिक्रमण है? वर्ष भर में एक बार ही प्रतिक्रमण कर लेना क्या बुरा है?

जो लोग ऐसा कहते हैं वे प्रमादवश ही ऐसा कहते है। प्रमाद भी एक ऐसा दुर्गुण है जो आत्मा के उत्थान में बाधक बनता है।

समझ लीजिये दो मकान हैं-एक रोज साफ किया जाता है और दूसरा एक वर्ष में केवल एक बार साफ किया जाता है। कहिये, आप किस में बैठना पसंद करेगें! रोज साफ करने से जैसे मकान स्वच्छ रहता है-कूडा-कचरा उसमें जमा नही होता, वैसेही प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने से भी मन स्वच्छ बनता है और पापों से आत्मा अशुद्ध नही बनती। अतः प्रतिक्रमण से तो आत्मा की रोज सफाई होती है। भूल वश जो पाप रोज हो जाते हैं, उनके प्रति सावधानी तो रखनी ही चाहिये। लेकिन यदि तुम प्रतिक्रमण करोगे ही नहीं तो ये विचार भी आपको कैसे आवेगें? अतः प्रतिक्रमण करने से तो लाभ ही होता है-पापों की सफाई ही होती है। जो लोग रोज प्रतिक्रमण करते हैं उनकी आत्मा ही सरल बनती है। और सरल मानस ही गुणग्राही बन सकता है। उसी के हृदय में दया और दान की लहरें भी उछाला मारा करती है।

जीवनलाल नामक एक गृहस्थ है, जो टी. बी से बीमार है। उपचार में जो कुछ घर में था सब साफ हो गया। स्त्री और एक जवान लडकी यों तीन आदमी ही घर में है, पर गुजारा कैसे हो? नौकरी तो कभी की छूट गई थी। घर में एक टक खाने का भी नहीं रहा। उसके दुख का भो कोई ठिकाना था? बाप रोने लगा। लडकी ने कहा पिताजी, रोते क्यों है? रोने से काम चलने वाला नहीं है। मन को मजबूत रखिये, और धीरज से कष्टों का मुकाबिला करिये, जीना है तो परिस्थिति से तो जूझना ही होगा। मैंने सुना है-सेवा मंडल के प्रमुख पुरुषोत्तम काका बहुत अच्छे आदमी है, आप कहे तो मै उन्हे बुला लाऊं? वे हमारे लिये कोई न कोई उपाय अवश्य कर देगे। लडकी गई और काका को बुला लाई। उन्होने जीवन को देखा तो पूछा-कहो भाई कैसी तबियत है? जीवन बोला-६ महीने का किराया चढ़ गया है, मकान मालिक रोज हैरान कर रहा है, घर में एक टक खाने का भी नहीं है। काका, अब मैं कहां जाऊं! औरत मुझे

छोड़ कर जा नही सकती और यह लडकी जवान है–उसे कहा भेजूं ! इतना कह कर वह तो फूट फूट कर रोने लगा। पुरुषोत्तम भाई को घर की हालत देखकर ही सब पता चल गया। उन्होंने जीवन को शांत किया और पूछा–तुम्हारा कोई सगा–संबधी भी यहां है क्या ?

जीवन ने कहा–हा, काका–घनश्याम मेरा चचेरा भाई है।

घनश्याम, वह तो लखपती सेठ बना हुआ है, क्या उसको तुमने खबर नही दी है ?

जीवन ने कहा–काका, उसकी क्या बात पूछते हो, वह तो अपने नाम को मरता है, मुझे देने से उसका नाम थोडे ही होता है ? वह मुझे क्या देगा ?

पुरुषोत्तम भाई ने अपनी जेब मे जितना भी रुपया था जीवन को दे दिया और कहा–मै तुम्हारे मकान का किराया भी चुका दूगा। मकान मालिक आवे तो उसे मेरे पास भेज देना। मै फिर तुम्हारे पास आऊंगा। तुम घबराना नही, सुख और दुख तो जीवन मे आते ही रहते है। हिम्मत से काम लोगे तो गाडी पार हो जायगी। यह कह कर वह लौट गये।

जीवन के लिये पुरुषोत्तम भाई ने कुछ चदा इकट्ठा किया। इसके लिये वे एकदिन घनश्याम के पास भी पहुच गये। बड़ी देर बाद उनकी सेठ से मुलाकात हो सकी। सेठ ने काका तो देखा तो पूछा–कहिये, आज किसका चिट्ठा लेकर आये है ? आपका तो काम ही यही है। काकाने कहा–जीवनलाल को तो आप जानते होगे !

सेठ–कौन जीवन ! जो उस झौपडी में रहता है, वह ?

काका–हा, वह, उसको टी. बी. हो गई है। ६ महीने से घर मे पड़ा है, खाने को एक टक का भोजन भी नही है। असहाय एक औरत और लडकी है, उसकी कुछ मदद आप अवश्य कीजिये। घनश्याम सेठ ने जवाब दिया–उसको कितनी बार दे चुका है, बार-बार मै कितना दे सकता हूं ? बंधुओ ! झूठ बोलने मे पैसे थोडे ही लगते है। मनुष्य का मानस आज इतना निर्दयी क्यो बन गया है कि वह एक गरीब की सहायता करने में तो कष्ट अनुभव करता है जब कि अपनी मान–प्रतिष्ठा के पीछे पानी की तरह रुपया बहा देता है।

घनश्याम कहता है–काका, आज तो बहुत जरूरी काम से मुझे बाहर जाना है, फिर कभी आना, इसके लिये बात करेगे।

पुरुषोत्तम भाई सेवा भावी व्यक्ति थे. उन्होने जीवनलाल के लिये किसी भी तरह घूम–फिर कर योग्य व्यवस्था कर दी।

दो सप्ताह बाद फिर पुरुषोत्तम भाई घनश्याम सेठ के यहां पहुच गये।

सेठ के पास २ डाक्टर खड़े थे और उनके शरीर की जांच कर रहे थे। सेठ को सर्दी हो गई थी और डाक्टर उनका एक्सरे करवा रहे थे। घंटे भर मे सेठ के २००–३०० रु. पूरे हो गये। काका को देखकर सेठ ने समझ लिया कि यह पीछा छोडने वाला नहीं है। उसने मुनीम से कहा–११ रु. काका को दे दो। पुरुषोत्तम भाई! जीवन से कहना कि वह इन रुपयो का मुझे हिसाव वताये कि किसमें उसने खर्च किये है? पुरुषोत्तम भाई रुपये लेकर जीवन के पास जाते हैं और देते हुए कहते है–जीवन, तेरी बात ठीक थी। घनश्याम ने बडी मुश्किल से तुम्हारे लिये ११ रु दिये हैं। यह कैसी विचित्र बात है कि जहा देना चाहिये वहा कोई देता नही है और जहा मान प्रतिष्ठा मिलती है वही सब देने को तैयार रहते हैं।

कुछ दिनों वाद सामने से एक नाम और प्रतिष्ठा के भूखे आदमियों का जुलूस आ रहा था, जिसका नेतृत्व घनश्याम जैसे सेठ कर रहे थे और दूसरी तरफ सामने से जीवन लाल की अन्तिम यात्रा का जुलूस निकल रहा था जिसका नेतृत्व पुरुषोत्तम भाई जैसे सेवक कर रहे थे। एक तरफ मानवता का उपहास किया जा रहा था तो दूसरी तरफ मानवता की उपासना की जा रही थी। कितना अन्तर था भावना का?

तू नित नवला भोजन खावे,
नित महेफिल मां रंग उडावे,
अन्न विना त्यारे कोई गरीव नो
लाडकवायो प्राण गुमावे,
भूख्यानी अनुकम्पा ना तारुं दिल वलोवे!
दुखडा देखी जगना जो तारुं दिल ना रोवे!

याद रखिये, अगर आप एक स्वधर्मी भाई की भूख नही मिटा सकते –अनुकम्पा नही कर सकते तो तुम्हारी भक्ति, भक्ति नही कुभक्ति है–श्रद्धा कुश्रद्धा है–। जीवन मर गया, पर घनश्याम को उसका विचार भी नही आया कि उसकी औरत और लडकी का क्या होगा? समय का कोई भरोसा नहीं है, आज ठीक है तो कल कैसा होगा? यह कोई नही जानता। अतःगरीबों के प्रति सदैव सहानुभूति रखो–अनुकम्पा कर यथाशक्ति सहयोग देने की भावना रखो। दैवयोग से घनश्याम की एक महीने बाद तो ऐसी हालत हो गई कि जीवन से भी वह गई गुजरी स्थिति में आ जाता है। बंधुओ? समय किसी को कहकर नही आता। जो अपनी जिन्दगी का मजा ले लेता है, उन्हीं का नाम इतिहास में अमर हो जाता है। दानवीर जगडूशाह, भामाशाह, खेमादेदराणी जैसे शूरवीर दानवी

को आज भी आदर के साथ याद किया जाता है। अतःज्ञानी कहते है।

धर्म करो तमे प्राणिया धर्मथकी सुख होय।
र्म करंता जीवने दुखिया न दीठा कोय।

धर्म करने से कोई दुखी नही होता है। जंबू स्वामी ९९ करोड सोनैया त्याग कर मुनि बने थे। वे सुधर्मास्वामी से क्या पूछते है? यह यथावसर आगे कहा जायगा।

ता. ९-७-६८

[१०]

ज्ञातासूत्र के १४ वे अध्ययन तेतलीपुत्र का अधिकार चल रहा है। कथन करने वाले भ. महावीर है और रचना करने वाले गणधर। गुण को धारण करने वाले गणधर कहे जाते है। सुधर्मास्वामी भगवान के ५ वे गणधर थे। वे कैसे थे? उसीकी चर्चा करते हुए शास्त्रकार कहते है–वे जाई संपन्ने–जाति सम्पन्न थे–मातृपक्ष से सम्पन्न थे, कही भी किसी को दोष नही लगा हुआ था। कुल से भी वे सम्पन्न थे। पितृपक्ष भी उनका निर्दोष था। जैसे कई रोगो के जन्तु वंशपरंपरागत भी होते है वैसे ही जाति और कुल भी वशपरम्परागत होते है। जिनकी जाति और कुल मे ठेठ से कोई दोष नही होता उन्हे ही जाति सम्पन्न और कुल सम्पन्न कहा जाता है।

सत्सग और कुसंग से भी अच्छा बुरा बना जा सकता है। एक तोते के दो बच्चे थे। एक चोर के यहा पलता है और दूसरा योगी के यहा। चोर ने अपने तोते को बुरी बाते सिखाई। लोगो को देख कर वह गालियां दिया करता था। जब कि योगी का तोता आनेवालो का आदर करता था–स्वागत करता था। मधुर–मधुर श्लोको का पाठ करने लग जाता था। दोनो तोते भाई भाई–थे, पर संस्कार दोनो के अलग २ थे। अतः एक की बात सुनने मे तो आनंद आता था, जब कि दूसरे की बात सुनना कोई नही चाहता था। यह संगति का ही प्रभाव है।

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्तिजन्तवः
तस्मात् तदेव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता।

प्रिय वाक्य बोलने से हर एक सन्तुष्ट होता है। दोनो वचन एक ही है लेकिन एक वचन ऐसा है जिसे सुन कर खून गरम हो जाता है और एक ऐसा होता है जिसे सुनकर गरम खून भी ठंडा हो जाता है।

परिमित असंदग्ध संपूर्ण व्यक्तने स्फुट :
परिचित अनुद्वेगी भाषाने संयमी वदे।

बोलते समय वहुत सोच कर बोलो, परिमित बोलो–अर्थयुक्त बोलो, मनको अप्रिय लगे वैसी भाषा मत बोलो, संशयकारी और मार्मिक वचन भी मत बोलो। ऐसी स्पष्ट और सीधी सादी भाषा ही संयमी पुरुष बोलते है। लेकिन जो संस्कारहीन होते है वे बोलने मे विवेक नही रखते है और कंटक जैसे वचन बोलते है। इस तरह बोलने से भी ऊच और नीच जाति का पता चल जाता है।

चार आदमी साथ मे बैठकर जुआं खेल रहे थे। पुलिस ने उन्हे पकड लिया। अपराध समान था, फिरभी राजा का दड समान नही था। उनमें से एक सेठ का लडका था। राजाने उससे कहा–तुम सेठ के लड़के होकर जुआ खेलते हो, और फिर ऐसे लोगो के साथ? लडका अपने किये पर पछताने लगा। भविष्य में नही खेलने की प्रतिज्ञा ली। राजा ने उसे छोड़ दिया।

२ पुरोहित का लडका था। राजाने कहा–तुम ब्राह्मण के लडके होकर जुआ खेलते हो! सुना नही, पांडवो का जुआ खेलने से कैसा वुरा हाल हुआ था?

रमता जुगारे राज्य हय गय रथ बधुं हारी गया,
अति दुष्ट दुर्योधन तणे सति द्रौपदी कबजे थया।
पतिओ छतां खेंच्या सभामां चिर सति द्रौपदी तणा,
पुरुषोतणा अविचार थी संकट लह्या सतीए घणा।

पाडव जुए मे सव हार गये। हारा हुआ जुआरी दुगुना खेलता है। पांडवों ने सव कुछ हारकर द्रौपदी को भी दाव पर लगा दिया। द्रौपदीने एक वार कहा था कि–

अंधे जाया अंध हुआ द्रौपदीना वेण छूट्या
कुरु क्षेत्रे जंग हुआ वेण कुवेण मां
वचन वदे सज्जनो ने वचन वदे दुर्जनों
वेण कुवेण मां मोटु अंतर छे

अधे को तो अंधे ही पैदा होते है। इन्ही वचनो ने द्रौपदी को जुए के दाव पर लगाया था। पांडव द्रौपदी को भी दाव पर लगा कर हार गये। यह वात आज की नही चौथे आरे की है। पांडव चरम शरीरी थे उसी शरीर से मोक्ष जाने वाले थे–फिर भी ऐसी भूल कर वैठे थे तो आज के युग की तो वात ही क्या है?

हारी हुई द्रौपदी को खीच कर सभा मे लाया जाता है। द्रौपदी कहती है—

केश तो ग्रही ने लाव्या सर्वे राजा जोई रह्या।
अहंकारीने नावो दया रे प्रभुजी आवो आ समे।

पांडव सुन रहे हैं, पर उनका मुह बंद है। दुर्योधन कहता है द्रौपदी, तू मेरी गोदमे बैठ! द्रौपदी कहती है—तेरी गोदमे तो भीम की गदा ही बैठेगी। पांडवो का खून गरम हो जाता है, पर वे कर कुछ नही सकते। हारे हुए हैं।

दुर्योधन के हुक्म से दुश्शासन उसकी साडी खीचता है और निर्वस्त्र करने की कोशिश करता है, पर उसमें सतीत्व था, शील धर्म ने उसकी रक्षा की। यह जुआ का ही परिणाम था। आज भी जुए का रोग बहुत बढ गया है। सरकारी प्रतिबध होने पर भी लोग चोरी चोरी जूआ खेलते रहते है।

राजाने पुरोहित के लडके को १०० रु का दड देकर छोड़ दिया।

३ मुसलमान का लडका था। राजाने उससे कहा–तेरा बाप तो नमाज पढ़ने वाला है। चाहे जहां हो और चाहे जैसी स्थिति मे हो वह नमाज अवश्य पढता है। उनको अपनी धर्मक्रिया पर कितना दृढ़ विश्वास होता है। लेकिन आपको तो मुह पर मुखवस्त्रिका बांधने मे भी लज्जा महसूस होती है। आप दोनो समय रेडियो सुनने के तो आदी बन गये हो, पर सामायिक और प्रतिक्रमण करना नही चाहते हों। शाम को चौपाटी जाकर हवा खाने से ताजगी नही आयेगी, ताजगी तो प्रतिक्रमण करने से आत्मा मे पैदा हो सकेगी।

दीवाल मे कही तड पड जाय तो उसी समय सीमेट लगा देने से वह ठीक हो जाती है। वैसे ही दोष होते ही प्रतिक्रमण कर लो तो आत्मा अशुद्ध नहीं बन पाती है।

राजाने कहा, जिसका बाप नमाज पढता है उसका लड़का जुआ खेलता है? उस पर एक हजार रु. का दड कर राजाने उसे छोड़ दिया।

४ लडका कौली का था–राजाने उसे गधे पर बैठाकर देशनिकाला दे दिया। उसे अपने काम पर शर्म नही थी। वह निर्लज्ज था अतः राजाने उसका काला मुंह करके देश से बाहर निकलवा दिया। चारों लडके जुआ खेले थे। दोष सबका समान था फिर भी राजा का न्याय सबके लिये समान नही था। अतः एक मनचले सरदारने राजा से कहा–राजन्! आपका यह न्याय ऐसा क्यो है? सबको समान सजा क्यो नही दी? राजाने कहा–जाओ, तुम जाकर पता करो कि दुख किसको अधिक हो रहा है?

सेठ का लडका घर जाकर भी रो रहा था। उसे राजा के कथन से पश्चाताप हो रहा था। पुरोहित का लड़का भी शर्मिंदा था। मुसलमान का लडका सोच रहा था कि भविष्य मे फिर कभी जुआ खेलते पकडा जाऊंगा तो और अधिक दंड देना पडेगा। लेकिन कौली का लडका तो गधे पर बैठ कर भी खुश था। उसका मुंह काला किया हुआ था, फिर भी वह लज्जा का अनुभव नही कर रहा था।

निर्लज्ज नर लाजे नहि करता कोटि धिक्कार।
नाक कपायु तो कहे अंगे ओछो भार।

निर्लज्ज को शर्म नही होती। लज्जाहीन व्यक्ति पुनः वही पाप करता रहता है।

जो साधु बनने वाला है और वैरागी है उसको आप पढाते हैं, लिखाते है—अच्छा खाना खिलाते है, वही अगर महीना बाद साधु बन कर चला जाय तो आप उसे जातिवान कहेगे या कुलवान? याद रखिये जाति सम्पन्न व्यक्ति ही दीक्षा को सुशोभित कर सकता है।

एक सेठ के चार लडके थे। तीन की शादी हो गई थी। तीनों की बहुऐं गांव की थी। पर थी खानदान कुटुबों की। चौथा लडका नवनीत अच्छा पढा लिखा और सुंदर था अतः एक दिन सेठ के बडे लडके को राज्य के दीवान ने बुलवाया और अपनी लडकी तारामती के साथ नवनीत का सबंध करने का प्रस्ताव रखा। सेठ के लडके ताराचंद ने दीवान सा.से कहा—दीवान सा. आप जैसो से संबध करना तो हमारा अहो भाग्य ही होगा, परन्तु फिर भी मै अपने पिता जी से पूछ कर ही आपको उत्तर दे सकूगा। ताराचंद घर आकर सेठ से यह बात कहता है। सेठ कहता है, अपने घर मे दीवान सा. की लडकी नही चाहिये।

ताराचंदने कहा—दीवान सा. बडे आदमी हैं, उनकी लडकी लेने मे हमको एतराज क्यो होना चाहिये? बोल, नवनीत तेरी क्या इच्छा है? लडकी पढी लिखी और होशियार भी है। नवनीत भी तैयार हो गया तो सेठ की क्या चलती? बहुमत संबध के पक्ष में था अतः सबंध तय हुआ और शादी भी सानंद सम्पन्न हो गई। सेठ के घर मे नई बहू आ गई। वह सुन्दर भोजन बनाकर सब को खिलाने लगी। लडके कहते—देखा, पिताजी, ऐसा खाना आपकी दूसरी बहुऐ थोडे ही बना सकती है? कितना अच्छा खाना बनाती है? यो सब नई बहू की तारीफ किया करते थे।

एक दिन सेठ उदास होकर बैठ गये। लडकों ने पूछा—आज आप उदास क्यो बैठे है? सेठने कहा—दुकान मे ५० हजार रु. का घाटा हो गया हे। इज्जत आबरू का सवाल खडा हो गया है। ५० हजार मिले तो इज्जत रहेगी नही तो सब मिट्टी में मिल जायगी।

रुपयो के लिये लडके दीवान साहब के पास जाते है, पर वहा से एक पैसा भी नही मिलता। खाली हाथ लौट कर आ जाते है। सेठ कहता है, तुम्हीं तो कहते थे सगे बडे है—पर देख लिया आज तुमने, वे तुम्हारी इज्जत की भी प० नही करते है।

सेठ ने अपनी बहुओ को बुलाया और कहा—आज मुझे तुम्हारे गहनों की जरूरत है—तुम दे दोगी तो इस घर की इज्जत रह जायगी, नही तो आबरू जाते देर न लगेगी। यह सुनते ही तीनों बहुओने अपने २ आभूषण उतार कर सेठ के सामने रख दिये, पर चौथी नई बहू तारामती अपने बाप के घर रवाना होने लगी। सेठने कहा—मै तो यहा गहने माग रहा हूं और वह अपने बाप के यहा जाने को तैयार हो रही है? मेरी इज्जत का भी उसे ख्याल नही है। नवनीतने भी उसे समझाया पर वह नही मानी। उसने अपने गहने सेठ को देने से इन्कार ही कर दिया। सेठ की परीक्षा पूरी हो गई। उसने अपने लडको को कहा—देखो, उस कौने मे रुपये गडे हुए हैं। तुम खोद कर निकाल लो, लडकों ने खोदा तो ५० हजार रुपये मिल गये। सेठने सब के आभूषण वापस लौटा दिये और कहा—देख लिया दीवान का और उनकी लडकी का हाल? उन को तुम्हारी इज्जत प्यारी नही है, उन्हे तो तुम्हारा धन प्यारा था? जो व्यक्ति कुल सम्पन्न होता है उसकी सन्तान भी कुलीन होती है। अतः लडकी लेते और देते समय जाति और कुल दोनो देखने चाहिये। जिसकी आखो मे शर्म नही उसके साथ संबध नही करना चाहिये।

सुधर्मास्वामी ऐसे ही जाति और कुल सम्पन्न थे। व्रत—नियमो पर दृढ रहने वाले थे। जो अपने धर्मपर दृढ़ रहते है वे तो यही कहते हैं कि—

कुंथु नाथ प्रभु मारे ऊपर जावुं छे.
अेरंडा ना बी नी माफक ऊपर जावुं छे।
मानव मेदान मां जंग मचावी
कर्म शत्रु ने दूर हटावी
निर्मोहीने निर्वीकारी बनी जावुं छे
निर्लेप तुंबीनी माफक ऊपर जावुं छेः।

मानव—मैदान मे कर्मो के साथ युद्ध करके उन्हे परास्त कर विजयी बनने की यह रगस्थली है। मै तुम्बे के माफक निर्लेप बन कर ऊपर जाना चाहता हू। यह १४ वे गुणस्थान की स्थिति बता रहे है। जैसे अग्नि का धुआ ऊपर ही जाता है, और बाण निशाने की तरफ ही जाता है, वैसे ही मुझे भी मुक्ति धाम की तरफ जाना है। ज्ञान और चारित्र की साधना से मोक्ष प्राप्त करना है।

बधुओ! सुधर्मा स्वामी चार ज्ञान और १४ पूर्व के धणी थे। वे क्या कहते है। यथावसर कहा जायगा।

ता. १०—७—६८

[११]

ज्ञातासूत्र के प्रणेता सुधर्मास्वामी कैसे थे? इसका वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है कि वे जाति-सम्पन्न थे। कुल सम्पन्न थे और वल सम्पन्न थे। जाति और कुल यानी मातृपक्ष और पितृ पक्ष दोनो उनके उज्ज्वल छे-कलंक रहित थे, कही कोई लांछन या दूषण नही था। पहले के जमाने में खानदानी भी सद्गुणों से समझी जाती थी लेकिन आज तो खानदानी का माप पैसों से किया जाता है। जिस के पास पैसा होता है उसे ही खानदानी समझा जाता है। जब कि सुसंस्कारी व्यक्ति ही खानदानी समझा जाना चाहिये, फिर चाहे वह गरीव ही क्यो न हो? सस्कारो के वीज सर्व प्रथम घरसे ही डाले जाते हैं। माता और पिता के ही संस्कार वालक पर असर डालने है, जो उन पर जीवन पर्यन्त रहते है।

गर्भस्थ वालक भी सस्कारो को ग्रहण करता है। भगवती सूत्र मे गौतम-स्वामी भगवान से पूछते हैं। भगवन्! गर्भस्थ वालक मर कर कहा जाता है?

भगवान कहते है-गर्भस्थ वालक मर जाय तो १५ घर मे-१० भवनपति १ वाणव्यतर १ ज्योतिपी, १ नरक और २ देवलोक मे-भी जा सकता है।

गौतम पूछते है--गर्भस्थ वालक २ देवलोक में कैसे जा सकता है? वह कुछ धर्म-कर्म तो कर नही सकता है?

भगवान कहते हैं--गर्भस्थ जीव की मा व्याख्यान सुनने जाती है तव उस जीव की भी वीर्य लब्धि प्रवल होती है, वह भी सुनते २ जड चैतन का विज्ञान समझने लग जाता है। इस तरह वह स्व-पर का भेद जान जाता है। वह जीव अगर मर जाय तो मर कर दूसरे देवलोक मे उत्पन्न होता है।

गौतम पूछते है-गर्भस्थ जीव नरक मे कैसे जाता है?

भगवान कहते है- एक राजाकी रानी अपने महल के छत पर मंजन करती है। सामने से वह दूसरे राजा की सेना को आते हुए देखती है तो चिल्लाती है- जल्दी सेना तैयार करो, सामने से दूसरे राजा की फोज आ रही है। महल मे वैठा हुआ राजा यह सुनता है। उसके पास में वैठी हुई दूसरी रानी भी यह सुनती है। उनका गर्भस्थ वालक भी जब यह सुनता है तो सोचता है- मेरे राज्य पर दूसरा कौन चढाई करने आया है? मै अभी उसे मार भगाता हूं, वह अपने आत्म-प्रदेशो को शरीर से वाहर निकालता है और उन सैन्य समूह मे जाकर लडाई करता है। उनकी लब्धि वैक्रिय रहती है अत. उसे कोई देख नही सकता है. पर वह औदारिक शरीर वालो को मार डालता है। वैक्रिय शरीरी

होने से उसे कोई नही मार सकता। गर्भवती रानी देखने के लिये महल पर चढ़ती है। सामने से एक बाण आता है और रानी के पेट में लगता है। इससे वह गर्भस्थ जीव मर जाता है। उसकी वैक्रिय क्रीडा समाप्त हो जाती है। वह जीव मर कर पहली नरक में जाता है।

अतःज्ञानी पुरुष कहते हैं—सुसंस्कार भी पुण्य से हो मिलते है। झूठ न बोलना चोरी न करना, पर वस्तु को लेने की इच्छा न करना, ऐसे गुण सुसंस्कारों से ही आते हैं।

कुछ औरते तो ऐसी होती है कि चोरी चोरी आदमी की जेब से पैसे चुरा लेती है और अपनी गुप्त सम्पत्ति एंकत्रित करती है। जहां मां का ऐसा हाल हो वहां उसकी सन्तान संस्कारित कैसे हो सकेगी? अतः जैसा काम माता पिता करते हैं उसका प्रभाव उनकी सन्तानो पर भी अवश्य पडता ही है।

उपाश्रय में प्रभावना होती हो तो उपाश्रय पूरा भर जाता है। यह कैसी भावना है आपकी? धर्म सुनने के लिये आना चाहिये या धर्मार्थ दी गई चीज को लेने के लिये? एक लड़का दो बार प्रभावना लेकर घर आता है। मां पूछती है तो कहता है-प्रभावना दो बार लेली है। मां समझाती है-प्रभावना दो बार नही लेनी चाहिये। धर्मार्थ बांटी गई वस्तु को लेने की भी इच्छा क्यो होनी चाहिये। प्रभावना ही है तो कुछ ले सकते हो। ऐसा विचार सुसंस्कार से ही पैदा हो सकता है। आप अपनी वस्तु तो संभाल कर रखे और उपाश्रय की चीज का दुरुपयोग करे या बेदरकारी से उपयोग करे तो यह कहा की बुद्धिमानी है? संस्कार अच्छे होने पर ही अच्छी बातो के प्रति मन आर्कषित होता है, अन्यथा अच्छी बाते भी बुरी लगने लगती है।

उपाश्रय मे आकर आप दान लिखा जाते है और फिर वह रुपया लेने के लिये आपके पास भैयाजी चक्कर लगाते है। यह कैसी बात है? दान देकर उघराणी क्यों कराना चाहिये? देना है तो तत्काल क्यो नही दे देना चाहिये? दो दिन की देरी भी क्यो करनी चाहिये?

बाप मर गया है, पर ५० हजार का धर्मादा कर गया है—५ हजार पुत्री को २५ हजार औरत को १० हजार साली को—यह क्या धर्मादा है? १० हजार तीर्थयात्रियो के लिये आने-जाने का किराया देने के लिये निकाला है, यह कैसा धर्मादा है? धर्म के नाम पर आजकल ऐसी सौदेबाजी बहुत हो रही है, जो कि योग्य नही है।

बुद्धिमान पुरुष तो यहां तक कहते है कि जहा तक हो सके पराई वस्तु का उपयोग नही करना चाहिये। पालनपुर के मणिभाई, जो कि वढ़वाण के दीवान

रानी खाना तैयार कर लेती है। राजा पूछता है–खाने का सामान कहा से लाई? रानी ने कहा–आप मजदूर बन सकते हैं तो मैं मजदूरी नहीं कर सकती हूं क्या? मैंने भी पडौसियो का काम किया है और उसीसे यह सामान लाकर भोजन बनाया है। कहिये, कैसे उच्च संस्कार थे उनके?

राजा कहता है १००० मोहरो का कर्ज तो सामने खडा है। कल का वायदा भी पूरा होने वाला है। विश्वामित्र तो आकर खडे हो जायंगे। तब क्या करेंगे?

रानी कहती है–मै आपकी अर्द्धांगिनी हूं, आधे सौनेया मै कमाऊंगी और आधे आप कमा कर दे देना। बंधुओं! सत्य के खातिर हरिश्चन्द्र और तारामति बिकने को तैयार हो जाती है। सत्य के लिये उन्हे यह भी मंजुर था। परन्तु अपना वचन जाने देना वे नही चाहते थे। एक ब्राह्मण आया और वह घरमें काम–काज करने के लिये तारामति को ५०० सोनैयो में खरीद कर ले गया। साथ में रोहित भी मा के साथ हो लिया। तब ब्राह्मण ने कहा–क्या यह लडका भी साथ चलेगा? रानीने कहा–हा, मेरे साथ ही रहेगा, परन्तु आपके सिर पर इसका खर्च नही पडेगा। मै अपने खाने मे से ही इसका निर्वाह करूंगी। बंधुओं, धर्म की भी कसौटी होती है। सोने को भी अग्नि मे जलना पडता है। तभी उसका रूप निखरता है। जब रानी ब्राह्मण के साथ चल दी तो राजा के दिल पर क्या गुजर रही होगी? लेकिन धन्य है उसके सत्य को, मुह से एक शब्द भी नही निकाला। सत्य कभी मिटता नही है, हजारो वर्ष हो गये पर आज भी हरिश्चन्द्र की कथा बडे आदर से आप सुनते है। यह सत्य का ही प्रभाव है।

रानी सुबह से शाम तक ब्राह्मण के घर काम करती है। ब्राह्मण का लडका रानी पर कुदृष्टि करता है, पर रानी अपनी नजर ऊपर नही उठाती, वह तो पैर का अगूठा देखकर ही जबाब दे देती है। जो ब्रह्मचारी होता है वह निर्लज्ज नही होता, वह अपनी रक्षा आप करता है। जैसे खेत की रक्षा बाड करती है वैसे ही ब्रह्मचर्य की रक्षा भी उसकी बाड करती है। ब्रह्मचर्य की नो बाड कही गई है। सब से पहली बाड है–रक्षा पंक्ति–अकेली स्त्री अकेले पुरुष से बात न करे। लेकिन आज क्या हो रहा है? आज तो पुरुष पर स्त्री से हाथ मिलाता है, एक पुरुष दूसरी स्त्री का चुंबन करता है, यों खुले आम संस्कृति के नाम पर विकृति फैल रही है। ऐसी संस्कृति को अमेरिका मे ही रहने दो, उसे यहा मत लाइये, इससे तो आत्मा का पतन ही होगा। ब्रह्मचर्य का हनन ही होगा। रानी अपने काम से काम करती है। किसी से कुछ बोलती नहीं, काम हुआ कि अपने मकान में चली जाती है।

ब्राह्मण का लडका सोचता है–रानी को अगर कुछ लालच दिखाया जायगा तो वह मेरे प्रति आकर्षित हो सकेगी। वह कहता है–तुम अपने बालक का गुजारा कैसे करती हो? लो, यह पैसे अपने पास रखो–उसे कुछ खिलाना–पिलाना। रानी कहती है–मेरा बालक बाहर की कोई चीज नही खाता–उसका गुजारा मेरे भोजन से ही हो जाता है। वह रानी को साडी लाकर देता है, पर रानी उसे नही लेती। धनवान आदमी गरीबो को फंसाने का उपाय करते हैं। इसीलिये बाईबल मे ईसाने कहा है कि–सूई के छेद मे से ऊट का निकल जाना आसान है, पर धनवान पुरुष का स्वर्ग मे जाना असंभव है–कामभोगों से जब तक इन्सान बचते नही है तब तक उनका उद्धार सभव नहीं है।

ब्राह्मण का लडका ब्राह्मण कुल मे जन्म लेकर भी आज वह पर स्त्री की चाहना कर रहा है। रावण का भी सर्व नाश इसीसे हुआ था। दुनिया मे वह इतना बदनाम हो गया कि आज भी कोई व्यक्ति अपनी सन्तान का नाम रावण रखना नहीं चाहता। कहिये, उस रावण को रामने मारा या काम ने! पर स्त्री-सीता के पीछे उसने अपने आपको बर्बाद कर दिया।

वह ब्राह्मण पुत्र भी रानी पर मोहित हो जाता है। वह कहता है–तुम्हारी धार्मिक वृत्ति मुझे बहुत अच्छी लगती है। दुपहर मे घर मे शान्ति रहती है, मैं उस समय रामायण का पाठ करूगा, क्या तुम भी उसे सुनोगी? कभी कभी मनुष्य वासनापूर्ति के लिये धर्म का भी सहारा लेता है। क्योकि मनुष्य के मन मे जब शैतान पैदा हो जाता है तो उस समय साधुकी साधुता भी चली जाती है।

ब्राह्मण पुत्र पूछता है–क्या तुम रामायण सुनोगी? रानी उसकी इच्छा समझ लेती है। वह कहती है–मै सुनने से तो अपने आप पढना अच्छा समझती हू। आपको सुनाना ही है तो अपनी पत्नी को सुनाइये, अपनी मा को सुनाइये मैंने तो रामायण सुन रखी है। ब्राह्मण पुत्र को यह सुनते ही क्रोध आ गया। उसने देखा कि रानी ऐसे माननेवाली नही है। अब तो इसे कष्ट पहुचाना चाहिये, तभी यह मेरे पास आवेगी। वह रोज उसके भोजन की जाँच करने लगा। थाली में ६ रोटी है तो ४ रोटी ही उसे देने लगा। रानी उसमे से भी दो रोटी खाती और बचा हुआ अपने पुत्र रोहित को खिला देती। बेटा कहता–मां, तू दो रोटी खाती है इससे तेरा पेट थोडे ही भरता होगा। अब मैं भी बड़ा हो गया हूं–जंगल मे जाऊंगा और फल फूल तोडकर अपना गुजारा कर लूगा। माता की आज्ञा से रोहित भी अब जंगलो मे जाने लगा। ब्राह्मण पुत्र रोहित को पैसे देकर फुसलाना चाहता है, पर रोहित कहता है–मुझे पैसे नही चाहिये, मैं तो मेहनत कर कमाना जानता हूं।

पहले के जमाने में मेहनत कर उपार्जन करना और उससे उदर पोषण किया जाता था। जब कि आज मेहनत कम और आराम ज्यादा करने के लोग आदी हो गये है। एक अमेरिकन पत्रकार हिन्दुस्तान से वापिस अपने देश लौटा तो वहा उससे पूछा गया कि भारत में तुमने क्या देखा? तो उसने उत्तर दिया, मैंने वहा के लोगो को आलसी ही ज्यादा पाया, एक घर मे ५ आदमी हैं तो उनमें से ४ आराम करते है और १ मेहनत कर उन सबका गुजारा चलाता है। हकीकत मे बात ऐसी ही है। इसीलिये नेहरुजी ने कहा कि आराम हराम है। भगवान ने भी आलसी साधुओ को पापश्रमण कहा है। जो साधु खा-पी कर सो जाता है उसे भगवान ने पाप श्रमण कहा है। संमयं गोयम मा पमायए।

ब्राह्मण पुत्र रानी को और रोहित को भी वश मे करने का प्रयत्न करता है, पर वह हार खा जाता है। रानी ब्राह्मण से कहती है—आपका यह लडका मुझे बुरी नजर से देखता है, यह ठीक नही है। मै बिक कर आई हू, पर मेरा भी अपना धर्म है, उसको आच नही आनी चाहिये। ब्राह्मण अपने लडके को उलाहना देते हुए रानी से कहता है—भविष्य में तुम्हे ऐसी शिकायत करने का मौका नही आयेगा।

जो संस्कारी व्यक्ति होते हैं, वे न्याय नीति का धन ही ग्रहण करते है। वे अन्याय का एक पैसा भी लेना नही चाहते है।

आज दो पैसे चुराने वाले को तो पुलिस से पकड़ा दिया जाता है, पर सफेद गादी पर पडे हुए उन अजगरो को आज कोई नही पकड सकता, जो पूरे का पूरा हजम कर जाते है।

जो मुसलमान हज करने मक्का मदीना जाते हैं और हज कर वापस लौट आते है, वे फिर जीवन भर झूठ नही बोलने की प्रतिज्ञा करते है।

आपके अणुव्रत भी आपको क्या शिक्षा देते है? पर आज उन पर आपको विश्वास कहां रहा है? अन्यथा जीवन में आप उनका अमल नही करने लग जाते?

जो मिलता है, वह तो पुण्य का फल है। पाप का फल तो कडुवा है। पुण्य है तो सुख है। पुण्य ही मानव को सुखी बनाता है। पुण्य हीन का तो पैसा भी चला जाता है। आया और गया यह तो पुण्य का ही प्रभाव है। कर्म को मानने वालो? कर्म को समझ कर नये कर्म नही बाधोगे तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा। अनीति का एक दाना भी पेटमे चला जाय तो वह बुरा फल ही देने वाला है। पुन्य की टाकी पूरी हो जाने पर कुछ मिलने वाला नही है। अतः श्रावक बन कर इतना तो करो—जहा अंतो तहा बाहयो:—अंदर और बाहर से शुद्ध बनो, स्फटिक रत्न जैसे निर्मल बनो—धर्म वही टिकता है।

सुधर्मा स्वामी ऐसे ही पुण्य शाली थे। वे जाति और कुल सम्पन्न थे। वे वल सम्पन्न भी थे। उनके दीव्य गुणो का वर्णन यथावसर आगे किया जायगा।

११-७-६८

[१२]

ज्ञाता सूत्र के प्रवक्ता सुधर्मा स्वामी कैसे थे? इसका वर्णन किया जा रहा है। वे जाति और कुल से सम्पन्न थे। मातृपक्ष और पितृपक्ष दोनो उनके उज्ज्वल थे। अव तीसरा विशेषण उनके लिये कहते है—वे वल से भी सम्पन्न थे। वल दो तरह का होता है, आत्मिकवल और शारीरिक वल। आध्यात्मिक वल उनका इतना दृढ था कि वे अपने निश्चय से टलते नही थे—मेरु की तरह अडोल रहते थे। व्रत और नियमो मे स्थिर रहते थे, जिन्हे इन्द्र भी चलायमान नही कर सकता था। ऐसा उनका आध्यात्मिक वल था।

शारीरिक वल मे भी वे वलवान थे—वज्र ऋषभ नाराच संहनन वाले थे। वज्र के समान उनकी हड्डिया थी। जिसको ऐसा सहनन होता है वह अपार शक्तिशाली होता है। तत्वार्थ सूत्र मे उमास्वाति ने कहा है—

उत्तम संहननस्येकाग्र चिता निरोधो ध्यानानुत्तरम्

उत्तम संहनन वाला ही लम्बे समय तक ध्यान, उकडासन, पद्मासन, वीरासन आदि कर सकता है। आज तो आप ४० लोगस्स का ध्यान भी नही कर सकते है, इसलिये वह २० लोगस्स का कर दिया गया है। क्योंकि शरीर वल कमजोर हो गया है। ध्यान मे भी शरीर थक जाता है। धर्म मे तो थकावट आ जाती है। पर दुकान मे आप कितनी मेहनत करते है? कपडे के थान के थान उधेडते—बुनते रहते है, पर वहा थकावट महसूस नही होती है और प्रतिक्रमण मे आज्ञा लेते २ ही थकावट महसूस करने लग जाते हो, यह कैसी वात है? याद रखिये, विधि से किया गया धर्म ही फलीभूत होता है। अविधि से किया गया काम कभी कभी मौतका भी कारण वन जाता है।

प्यास लगी है, तालाव सामने है, उसकी सीढियो पर से उतर कर अपने हाथ से पानी पी कर अपनी प्यास वुझाई जा सकती है। यो विधिसर पानी पीकर आदमी अपनी जान वचा सकता है, परन्तु अगर वह प्यास वुझाने के लिये सीधा तालाव मे ही कूद जाय और उसमें डूव कर मर जाय तो वह क्या उसका प्यास वुझाना कहा जायगा? विधि और अविधि में यही अन्तर है। एक से जान वच जाती है तो दूसरे से जान भी चली जाती है। पानी विना ऊँने

जीवन टिकता नही है वैसे ही धर्मवाणी श्रवण किये विना भी जीवन निभाया नही जा सकता है। जिनेश्वर देव की वाणी भी विधिसर ग्रहण करने पर ही फलदायी होती है।

साधक गुरु के समीप जाता है तो–
अहो कायं काय संफासं

गुरु के समीप आकर **अणुजाणाह** आज्ञा दीजिये, वह उनके चरण का स्पर्श करता है और अपना सिर लगा कर **अप्पकिलंताणं**–अल्प अशातना भी हुई हो तो क्षमा चाहता है।

जत्ता भे जवणी जंच भे इस तरह ३ आवर्त करता है। ६ पहले और ६ बाद में यो कुल १२ आवर्त करके गुरु को वदना करता है। आप जो तिक्खुत्तो से वंदना करते हैं उसमे भी ३ बार प्रदक्षिणा की जाती है। तीन बार बायें से दायें कान तक प्रदक्षिणा कर **वंदामि, नम्मंसामि–सक्कारेमि, सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि** कह कर विधि पूर्वक वंदना की जाती है। गुरु वंदना की भी यह विधि बताई गई है। उत्तराध्यायन सूत्र के २९ वें अध्ययन में भगवान से गौतमस्वामी ने पूछा है कि–हे भगवन्! विधि युक्त वंदन करने से जीव को क्या लाभ होता है?

वन्दणऐणं भन्ते जीवे किं जणयइ ?

भगवान कहते है–

वन्दणऐणं नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निवंधयइ, सोहगंचणं अपडिहय आणाफलं निवत्तेइ, दाहिण भावं चणं जणयइ !

विधिसर वदन करने वाला जीव नीच गोत्र का क्षय कर ऊंच गोत्र का बंध करता है। आदर भाव प्राप्त करता है। बार बार बोलना भी उसका प्रिय लगता है।

एक आदमी ऐसा है कि, जो सभा मे वोलने खडा होता है तो लोग उसे सुनना नही चाहते। और दूसरे व्यक्ति को जबरदस्ती बोलने का कहा जाता है, दोनो के बोलने मे कितना भेद है? एक बोलता है तो मुह से फूल झरते है–वाणी मधुर होती है, सुनने का मन होता है। ऐसा व्यक्ति भले ही उम्र में कम हो, पर वाणी में विवेक हो, वुद्धि मे बडा हो तो वही वड़ा कहा जाता है। उसके सामने ६० साल का वुड्ढा भी छोटा है–

सात वेंतना सर्व जन, कींमत अक्कल तूल
सरखा कागल हुंडी ना, पण आंक प्रमाणे मूल

दिखने मे मनुष्य सभी समान होते है, पर बुद्धि से ही उनकी कीमत होती है। नौकर नौकर है और बैरिस्टर बैरिस्टर। एक महीने मे १०० रु. कमाता है और दूसरा एक घटे मे १०० रु. कमाता है। यह बुद्धि का ही कमाल है।

एक आदमी मर जाता है, उसे उठाने वाला भी नही मिलता है और दूसरा आदमी मर जाता है तो उसके लिये सारा गाव शोक विव्हल हो उठता है। गाधीजी मरे तो सारी दुनिया शोक मे डूब गई थी। यह किसका प्रभाव है?

आनंद पूछे परमानंद ने माणसे माणसे फेर ।
एक लाखे लाभे नहि. एक तांबियाना तेर

अत.ज्ञानी कहते है वंदन का ऐसा शुभ फल मिलता है। वह पुरुष नीच गोत्र मे नही जाता, ऊच गोत्र मे ही पैदा होता है। महापुरुषो को वंदना करना भी पापो से छुटकारा पाने जैसा है। जो लोग ऐसे महापुरुषो का सहारा लेते है वे एक दिन इस ससार से अवश्य पार हो जाते है।

भक्तामर स्तोत्र मे आचार्य मानतुग ने कहा है——

नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ:
भूतैर्गुणै: भुंवि भवन्तमभिष्टुवन्त:
तुल्या भवन्ति भवतों ननु तेन किंवा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।१०।

हे तीन भुवन के भूषण रूप प्राणियो के नाथ! आपके गुणो का स्तवन करने वाला भक्त आगे चलकर आप जैसा बन जाय तो इसमे कोई आश्चर्य नही है। क्योकि दुनिया मे भी सेठ अपने नौकर को अपने समान बना देता है, तो आप अपने नौकर को—भक्त को अपने समान बना दे इसमे क्या आश्चर्य है।

ऐसे ही भगवान के भक्त सुधर्मास्वामी भी है। वे जिन नही, पर जिन सरीखे है। उनके गणधर है। उन्ही से ज्ञान लिया है। वे महा बलवान थे। उनका शरीर रचना भी बडी भव्य और दीव्य थी।

आज तो बल प्राप्ति के लिये भी लिवर एक्स्ट्रेक्ट के इंजेक्शन लिये जाते है। जीवित प्राणियो को मार कर उनकी दवाये बनाई जाती है और फिर ताकत के लिये उनका सेवन कराया जाता है। कई बदाम का हलुवा खाते है और शक्ति बढाते है। शक्ति के लिये घी—दूध का भी सेवन किया जाता है। पर वे यह नही जानते कि शक्ति कहां है? आत्मा तो अनन्त शक्तिमान है। यह एक समय मे १४ राजलोक मे घूम कर आजाती है। वह अनंत वीर्यशाली है, परन्तु वीर्यान्तराय कर्म बीच मे पड़ा हुआ है, जो शक्ति को रोक कर रखता

है। उसका जिस परिमाण मे क्षयोपशम होता है उतना ही आत्मा शक्तिशाली वनता है और शरीर मे भी ताकत आती है।

पहले के साधु तो रस हीन आहार करते थे। दही—दूव—घी आदि का त्याग कर देते थे। ऐसा रुक्ष आहार करने वालो मे भी ताकत कितनी थी? आपतो सरस आहार करते है, ऊपर से ताकत की दवाऐ भी खाते है, फिर भी आपकी ताकत कितनी है? कोई एक धक्का मारे कि आप अपना संतुलन घुमा बैठते हो यह भी कोई ताकन है तुम्हारी? सच्ची शक्ति तो ब्रह्मचर्य मे है। मुनि ब्रह्मचर्य का पालन करते है अतः नीरस आहार करते हुए भी उनकी शक्ति अपूर्व होती है। जो मन मे भी कुविचार नही आने देते, उसके शरीर मे तो वह आवेगा ही कैसे? मन रूपी पहरेदार सतर्क रहता है, वह शरीर में खराब विचार आने ही नही देता है। ब्रह्मचर्य का भाव जिसके हृदय मे जगमगाता रहता है वह कभी दुर्वल नही वनता, उसकी शक्ति सदैव अपरिमित रहती है। वे कभी विटामिन की गोलिया नही खाते। ब्रह्मचर्य ही उनका टोनिक है। टी वी. वाला आदमी कही भी जाय, कैसी ही कीमती दवा खाय, पर वह ब्रह्मचर्य न पाले तो उस का कोई इलाज नही है। ब्रह्मचर्य ही परमौषधि है:—उसका सेवन करो, आप सब बीमारी से बच सकोगे और आप मे अपूर्व ताकत का सचार हो जायगा।

भाप जब इकट्ठी हो जाती है तो बड़े बडे इजिनो को भी चला देती है। परन्तु जब वहीं बिखेर दी जाती है तो एक सूई जैसी नाचीज को भी उठा नहीं सकती है। इसी तरह वीर्य को भी सिचित करोगे तो अपार शक्ति आप में पैदा हो जायगी। उसे नष्ट कर दोगे तो कमजोर हो जाओगे।

ब्रह्मचारी की शक्ति अपूर्व होती है—उसे देव दानव और मानव सभी नमस्कार करते है।

देव दाणव गन्धवा, जक्ख रक्खस्स किन्नरा
बंभयारि नमंसन्ति दुक्करं जे करंतिते।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना तलवार की धार पर चलने जैसा है। उसके पालन से वचनसिद्धि जैसी कई लब्धियां प्राप्त हो जाती है। मुह से जो भी वचन कहे वह सिद्ध हो जाता है। उसकी काया भी पवित्र हो जाती है। कोई रोगी उसका शरीर स्पर्श कर ले तो रोग मुक्त हो जाता है।

ग्रंथ मे पेथडकुमार का वर्णन आता है। पेथडकुमार ब्रह्मचारी था। उसके पास कुछ नही था। गाव गाव फेरी करके अपना निर्वाह करता था। एक वार उस गांव मे मुनिराजों का पधारना हुआ। पेथडकुमार भी धर्मोपदेश सुनने गया। मुनिराज उपदेश दे रहे थे;—

वीर हिमाचल से निकसी
गुरु गौतम के मुख कुंड धरी।
मोह महाचल भेदी करी,
बहु रंग तरंगन से उछरी।

ऐसी द्वादशांगी वाणी का प्रवाह चल रहा था। पेथडकुमार ध्यान से सुन रहा था। व्याख्यान पूरा हुआ। मुनिराज लोगो को नियम दिलाने लगे। लोगो ने पेथडकुमार से भी नियम लेने का कहा। वह सोचता है, क्या नियम लू ? एक बोला–सोचता क्या है, परिग्रहका परिमाण कर ले–१० हजार से ज्यादा नही रखने का नियम ले ले। दूसरा बोला १० से क्या होगा, अभी तो इसकी शादी भी करना है, ५० हजार का नियम ले ले। तीसरा बोला एक लाख से ऊपर का नियम करले। उससे ज्यादा हो जाय तो धर्मादा कर देना।

पेथड कहता है–क्यो मेरी मजाक कर रहे हो ? मेरे पास तो ५ रु. भी नही है और तुम लाख से ऊपर की बाधा मुझे दिला रहे हो ?

उनमे से एक ने समझाते हुए कहा–यह कोई बात नही है, आज तुम्हारे पास नही है। पर कल हो भी सकता है। यह कौन जानता है कि तेरी हालत ऐसी ही रहने वाली है ? अतः परिमाण करने मे क्या है ? भाग्य में होगा तो मिल ही जायगा।

पेथडकुमार १ लाख की बाधा ले लेता है। आपको कितने की बाधा लेनी है ? अरे, यह तो निवृत्ति का मार्ग है। दुनियादारी से छुटकारा पाना है तो परिग्रहका परिमाण अवश्य कर लेना चाहिये। पेथड १ लाख का नियम ले लेता है। धीरे धीरे वह घी का व्यापार करने लगा। एक दिन एक ग्वालिन घी का मटका लेकर पेथड के यहां आई और घी का वजन करा कर दूसरा सामान लेने आगे चली गई। लौटते समय पैसे और मटका लेने का कह गई। पेथड ने मटके का घी अपने बर्तन मे डाला और खाली मटका वापस बाहर लाकर रख दिया। ग्वालिन अपनी इंडोली भी घी के मटके के साथ ही रख गई थी। उस पर मटका रखते ही मटका फिर घी से भर गया। पेथडने देखा–यह क्या जादू है ? अभी तो मैंने बर्तन खाली किया था। फिर से कैसे भर गया है ? आखिर बात क्या है ? बनिया तो था ही। स्वभाव से ही बनिये होशियार तो होते ही हैं। उस इंडोली मे चित्रवेली थी। चित्रवेलि का यह गुण होता है कि उस पर जिस किसी वस्तुका बर्तन रखा जाता है भरा ही रहता है, खाली कभी नही होता। पेथड इसे समझ गया–उसने अपना बर्तन रख कर भी देख लिया। फिर क्या था, भाग्य मे जब आना लिखा होता है तो छप्पर फाडकर भी आता है

पेथडने वह इंडौली अपने पास रखली और बदले में नई इंडौली ग्वालिन के बर्तन पर रख दी। थोडो देर बाद ग्वालिन बाजार से लौट कर आई। उसने अपने बर्तन का बजन कराया, घी के पैसे लिये और अपनी फटी हुई इंडौली के बदले नई इंडौली लेकर खुशी खुशी अपने घर रवाना हो गई।

इधर पेथडके घर लक्ष्मी आ गई। उसके घी के बर्तन अब खाली नहीं रहते। खाली बर्तन उस इंडौली पर रखते ही घी से भर जाते थे। अब रुपयों की पेथड को क्या कमी रही। कुछ ही दिनों मे वह तो लखपती बन गया। एक लाख से ऊपर नही रखने का उसने नियम लिया हुआ था अतः वह धर्मादा भी खूब करने लगा। गरीबो की भी बहुत मदद करने लगा। इससे उसका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया। राजाने भी उसे अपना मंत्री बना दिया। यह सब किसका प्रताप था? उसको यह दृढ़ विश्वास था कि यह धर्म का ही प्रताप है—व्रत नियम का ही प्रभाव है अतः वह गुरु के पास गया और श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कर लिये।

धन जोबन ने ठकुराई, साथे मले विवेक।
चारे मली संगे रहे अर्थ करे अनेक।

बंधुओ! जिसके पास धन, यौवन और सत्ता हो तो वह अनर्थ करते देर नही करेगा, परन्तु जिसके पास ये होते हुए भी विवेक है तो उसका क्या कहना? वह अनेक सुदर काम कर सकता है। पेथड ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का भी नियम ले लिया।

गांधीजीने भी ३२ वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचर्य का नियम ले लिया था। जिसने ब्रह्मचर्य पाला, उसके सामने तो देवता भी नतमस्तक हो जाते है। गांधीजी के ब्रह्मचर्य के तेज के सामने अंग्रेजी सल्तनत ठहर न सकी और आखिर में उन्होने भारत को आजाद करा ही दिया। यह किसका बल था? ब्रह्मचर्य का ही तो बल था।

जो सदाचारी होता है उसे सभी लोग चाहते है, दुराचारीको कोई नही चाहता। सती स्त्री फटी हुई साडी पहनकर भी क्यों न रहे, लोग उसका आदर ही करते है। लेकिन वैश्या १६ श्रृंगार करके भी क्यों न बैठी हो लोग उसे घृणा की नजरो से ही देखते है। महत्व श्रृंगार का नही; सदाचार का ही है।

पेथडकुमार अब श्रावक बन जाता है। व्रत—नियम बराबर करता है। धर्म—कार्य मे वह कभी व्यवधान नही करता। धर्म पहले करता है और धंधा या नौकरी बाद मे समझता है। लेकिन आज आप क्या समझते है? धंधा पहले, धर्म पीछे देखा जायगा। तभी तो आप धर्म में अग्रसर नही होने पा रहे है।

पेथड ब्रह्मचारी था उसे कई लब्धियां अपने आप प्राप्त हो गई। गांव मे किसी को बुखार आ जाय, पेथड का कपडा उसे ओढा दो तो उसका बुखार उतर जाय। यह तो मामूली बात थी। एकदिन राजा की रानी के पेट मे इतने जोर का दर्द होने लगा कि वह मारे कष्ट के परेशान हो गई। इतने मे एक दासीने कहा—पेथडमंत्री का कपडा ले आओ तो रानी का दर्द मिट सकता है। रानी ने कहा—जा, जल्दी जा, देखती क्या है, कपडा लेकर जल्दी आ जा, मै तो दर्द के मारे मरी जा रही हूं। दासी पेथड की धोती लेकर आती है और रानी को ओढा देती है। दूसरे ही क्षण रानी का दर्द गायब हो जाता है। रानी स्वस्थ हो बैठ जाती है। राजा आता है, पेथड की धोती देखता है तो भूल वश क्रोधित हो जाता है और पेथड को जेल मे बंद करवा देता है।

बंधुओं! सच की भी कसौटी तो होती ही है, अन्यथा दुनिया को सत्य का ज्ञान कैसे हो सकता है?

सतीया जन रे हो सतनी सूलीये विंधाय
रुडा रंग मां रंगाय ऐना गुण रे हो गाया
केम रे गवाय—सतीया

सत्यवान सत्य की शूली पर चढाये जाते है लेकिन उनका रंग फीका नही पडता है। वह रंगतो मजीठिया रंग होता है जो धोने पर भी नही उतरता। धर्मी पुरुष का भी हाल ऐसा ही होता है। वे शरीर रहते अपना धर्म नही छोडते है। पेथड जेल मे भी पौषध करता है—सामायिक और प्रतिक्रमण करता है।

कोई पुष्पे करी पूजे आनंद छे रे लोल
कोई धुड नाखी ध्रुजे आनंद छे रे लोल
भले शकुन थाय सारा आनंद छे रे लोल
भले लाकडा ना भारा आनंद छेरे लोल

जो आत्मार्थी है वे पूजा और नीदा मे भेद नही मानते है। शकुन, अपशकुन, उनके लिये एक है— वे जेल और महल में भी कोई अन्तर नहीं समझते। वह सम्यग्दृष्टि पेथड भी जेल मे आनंद का अनुभव करता है। इतने में राजा का हाथी पागल होता है। वह काबू मे नही आता है—चारो तरफ हाहाकार मच जाता है— अब क्या करे? लोगो ने कहा—पेथड मंत्री को बुलावो, उसका कपडा हाथी पर डालदो तो उसका पागलपन मिट जायगा। राजाने पेथड का कपडा मंगवा कर हाथी पर डलवाया तो हाथी वहीं खडा हो गया, उनका तूफान समाप्त हो गया, हाथी का पागलपन मिट कर शांत हो गया। राजा को भी अपनी भूल का ज्ञान हो गया। उसने पेथड से जेल में जाकर क्षमा मांगी और

उसे बंधन मुक्त कर अपने घर भेज दिया। बंधुओं, यह सब ब्रह्मचर्य की शक्ति का ही परिणाम था।

टंकारा में दयानंद सरस्वती का जन्म हुआ था। वे बाल ब्रह्मचारी थे। एक दिन वे नदी में नहाने गये हुए थे। पीछे से राजाने दो पहलवानों को उनसे लडने के लिये भेजा। दयानंद उन्हे देखते है तो कहते हैं–तुम लडने आये हो, लड़ कर क्या करोगें--कही हड्डी–पसली टूट जायगी, तो जीवन बेकार हो जायगा, ताकत का माप ही करना है तो लो यह टुआल और इसका पानी निचौड कर दिखाओ। दोनों पहलवान हाथ से उसे दबाते है, पर पानी की एक बूद भी वे निकाल नही पाते है। तब दयानंद ने उसे अपने हाथ में लिया और निचौडा तो पानी की धारा बह निकली। यह ब्रह्मचर्य का बल था। जो लोग उसे अब्रह्म में नष्ट कर देते है उनके शरीर मे वैसी ताकत कहां से पैदा हो सकती है?

डाक्टरों ने हिसाब लगाया है कि मनुष्य एक दिन में एक सेर खुराक खाता है। महीने में उससे ४ सेर खून बनता है। उस रक्त से २ तोला वीर्य बनता है, जो एक बार के संभोग मे ही नष्ट हो जाता है। फिर तो वह मनुष्य, मनुष्य न रह कर मुर्दा हो जाता है। अतः वीर्य की रक्षा करो, वह शरीर का राजा है। उसके संग्रह से शरीर मजबूत बनेगा, उसकी ताकत बढेगी, चित्त एकाग्र बनेगा और आत्मा धर्म मार्ग पर अग्रसर हो सकेगी।

सुधर्मा स्वामी ऐसे ही बलशाली थे। उनमे और भी महान गुण थे, जिनका वर्णन यथा समय आगे किया जायगा।

ता. १२–७–१९६८

[१३]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। वे रूप सम्पन्न थे। रूप भी दो तरह का होता है। आध्यात्मिक और शारीरिक। सदाचार आध्यात्मिक रूप है और शरीर से तेजस्वी होना, स्वस्थ होना, रूप रंग से सुंदर होना यह शारीरिक रूप है। सुधर्मास्वामी दोनों ही तरह से रूपवान थे।

परदेशी राजा केशिस्वामी की शरीराकृति देख कर मोहित हो गया था। सोचता है कितनी सुन्दर आकृति है? क्या खाते होगें? चित्त प्रधान कहता है– राजन्! यह तो शाकाहारी है, मुनि हैं– रूक्ष आहार करने वाले हैं। ब्रह्मचारी है। यह जो तेज दिखाई पड़ रहा है वह ब्रह्मचर्य का ही तेज है।

जो शीलवान होता है वह रूपवान भी होता है या जो रूपवान होता है वह शीलवान भी होता है ऐसा कोई नियम नही है। भगवान ने ठाणांग में बताया है।

एक शीलवान है, रूपवान नहीं।
एक रूपवान है, शीलवान नहीं।
एक शीलवान भी नही, रूपवान भी नहीं।
एक शीलवान भी है रूपवान भी है।

मनुष्य पुण्य के उदय से रूपवान होते है, परन्तु शीलवान बनने के लिये तो पुरुषार्थ करना पडता है। पुण्य के प्रभाव से मनुष्य रूपवान होता है जब कि सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की आराधना करने से शीलवान बना जा सकता है। एक का आधार पुण्य है तो दूसरे का पुरुषार्थ। मनुष्य को जब पुण्य का उदय होता है तभी उसे धर्म के साधन प्राप्त होते हैं। रूपवान भी चारित्र के अभावमें अपनी दुर्गति कर लेते हैं। वेश्या क्या करती है? अपना रूप और सौन्दर्य बेचकर नरक मे जाने का मार्ग ही तो खुला करती है? शरीर क्या है? अनंत पुद्गल परमाणु का पिंड ही तो शरीर है। जो शरीर है वह तू नही है। शरीर तो दृष्टा है, तूं ज्ञाता है, अतः ज्ञाता ज्ञेय से भिन्न है। जैसा कि श्रीमद्ने कहा है—

जे दृष्टा छे दृष्टिनो जे जाणे छे रूप।
अबाध्य अनुभव जे लहे, ते छे जीव स्वरूप।
छे इन्द्रिय प्रत्येकने, निज निज विषयनुं ज्ञान।
पांचे इन्द्रियना विषयनुं पण आत्माने ज्ञान।

जो देखने वाला है वह आत्मा है, जो रूप को जानता है। लेकिन जो दिखाई दे रहा है, वह तू नही है। आत्मा (ज्ञाता) ज्ञान द्वारा ज्ञेय—वस्तु को जानता है। यहां ज्ञेय जो वस्तु है वह आत्मा से भिन्न है लेकिन ज्ञान और ज्ञाता (आत्मा) दोनों एक है। उनमे भेद नही है। जैसे गुण से गुणी अलग नही हो सकते— शक्कर से मीठास अलग नही हो सकती, अग्नि से उष्णता, पानी से शीतलता अलग नही हो सकती, वैसे ही आत्मा से ज्ञान भी अलग नही हो सकता है। आचारांग सूत्र मे कहा है।

"जे आया से विन्नाया. जे विन्नाया से आया,
जेण वि जाणई से आया।"

आत्मा ही ज्ञान है, ज्ञान ही आत्मा है, दोनों अभेद है। शरीर से आत्मा का संयोग होता है। जिसका संयोग होता है उसी का वियोग भी होता है। देह से

आत्मा निकल सकता है, पर आत्मा से ज्ञान अलग नहीं हो सकता। क्योंकि ज्ञान और आत्मा का तादात्म्य संबंध होता है। संयोग का वियोग तो हो सकता है, पर तादात्म्य संबंध कभी अलग नही हो सकता। आत्मा का स्वरूप अनंतज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप मय है। देह जड़ है। रूप में मोहित होकर जैसे पतंगे अपना जीवन नष्ट कर देते हैं, वैसे ही पुरुष भी स्त्री के पीछे पागल हो अपना धर्म और जीवन गंवा बैठते हैं।

एक गांव मे जादजी भाई नामक सेठ रहते थे। बडे न्याय-नीति पर चलनेवाले सद्गृहस्थ थे। प्रामाणिक जीवन व्यतीत करते थे। दुकान मे एकही भाव रखते थे। कोई भी आये, कोई भेदभाव नही रखते थे। सच्चा व्यवहार करते थे। गाव में इनकी प्रतिष्ठा भी बहुत थी। गांव का राजा भी उनको आदर देता था। फिर भी स्वार्थवश कुछ लोग उनसे ईर्षा करते थे। मन ही मन जलते थे और उन्हे बदनाम करने का जाल बिछाया करते थे। लेकिन जो सम्यग्दृष्टि होते है, वे दूसरों को सुखी देख कर दुखी नही होते, न ईर्षा ही करते हैं। वे तो यही समझते है कि जैसा बोया है वैसा ही वे फल पा रहे हैं। पुण्य का फल तो मिलने वाला ही है। जो पुण्य शाली होते है उनको कोई तकलीफ नही पहुंचा सकते है।

जादवजीभाई को परेशान करने के लिये ४ बदमाश राजा के पास जाते हैं और कहते है-अपने गाव मे जादवभाई जैसा कोई भाग्यशाली नही है। राजाने भी जादवजी भाई की तारीफ ही की। लेकिन आपको अभी तक यह मालूम नही है कि जादवजी भाई अच्छा माल तो अपने पास रखता है और खराब आपको भेजता है। राजाने कहा---ऐसी बात तो नही है। मेरे यहा तो उसका अच्छा माल ही आता है।

बदमाशो ने कहा-राजन्! आप हमारी बात समझें नही हैं। उसके घर मे एक ऐसा सुंदर नारी-रत्न है कि वैसा तो आप के महलों मे भी नही है। वैसी सुदर औरत तो आपके यहां शोभा पा सकती है, जादवजी के यहां नही।

राजा भी कामुक था। वह चाहता तो बदमाशो को दबा सकता था, परन्तु वह तो इसमे रस लेने लगता है। राजा अब उसकी फिराक मे रहने लगा। नीतिकार कहते है।

भार्या रूपवती शत्रु.

रूप मे मोहित रावण सीता को उठा ले गया और अपना सर्वनाश कराया। कीचक द्रौपदी पर झपटा पर भीम की गदा से मारा गया। ऐसे कई पुरुष रूप मे मोहित हो अपनी जान गंवा गये।

सीता संतापी रावण रोलायो,
द्रौपदी दुभावी दुर्योधन दुभाणो
कीचक सोये ये पापनी हुताशमां रे
तारा पापे पीडाशे तारी काया
पाप भारा तुं बांध मां लुंटारा रे तारा पापे ....

कामी पुरुष पाप तो कर लेता है, पर उसका फल वडा भयंकर होता है, यह वह नही समझता। राजा भी काम के वशीभूत हो पागल हो जाता है। जादवजी की औरत को कव मै देखू और अपनी बनाऊं इसी का वह ध्यान करता रहता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में नमिराजर्षि इन्द्र से कहते हैं—

सलं कामा विसं कामा, कामा आसी विसोवमा.
कामे भोए पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइं.

काम भोग शल्य जैसे हैं। वाण जहा चुभता है, वहा चैन नही पडता है। काम भोग विष की तरह है। जहर से जैसे आदमी मर जाता है वैसे ही काम भोग का भी जहर आदमी को चढ जाता है। चमार क्या देखता है? चमडा ही देखता है न? आप भी सगाई करते हैं तो क्या देखते है? रूप क्या देखते हो? गुण देखो। राजा भी रूप में पागल वन जाता है। हर समय उसका ध्यान इसी वात में रहता है। मौका देख कर उसने जादवजी भाई को वुलाया और कहा—अपने मोदी खाने के लिये अनाज चाहिये। इस वार तुम्ही खुद वाहर गाव चले जाओ और अनाज लेकर लौट आओ। जादवजी भाई कहते है—राजन्! मेरे जाने का कोई कारण नही है, मेरे मुनीम वड़े होशियार है, वे सव तरह से जानकार हैं। मेरा दुकान छोड कर निकलना मुश्किल है, आप आज्ञा दे तो मैं अपने मुनीम को भेज कर मंगवा दू। राजा ने क्रुद्ध होकर कहा—क्या तुम मेरी आज्ञा का पालन करना नही चाहते? क्या तुम नही जानते कि मैं कौन हूं? कल ही चले जाना वरना ठीक नही होगा।

जादवजी भाई घर लौट आये। पत्नी ने पति को उदास देखा तो पूछा—क्या वात है? राजाने क्यो वुलाया था? जादवजी भाईने कहा—राजा मुझे वाहर गाव भेज रहा है। कही न कही दाल मे काला जरूर है। राजा की नीयत मुझे अच्छी नही लग रही है।

स्त्री कहती है—भले आदमियो पर मुसीबतें आती ही हैं। हो सकता है मेरे रूप की प्यास राजा को लगी हो? पर आप निश्चिन्त रहें, मैं अपने शील की रक्षा स्वयं कर लूगी। जादवजी वाहर गाव चले जाते हैं। राजा प्रसन्न हो जाता

है। सेठानी भी भविष्य की आशंका से सजग हो जाती है। दिन बीता, रात हो गई। पापी-निशाचर तो रात में ही निकलते है। राजा भी महल से निकल कर जादवजी भाई के घर पर आता है और द्वार खटखटाता है।

सेठानी दरवाजा खोलती है और कहती है-पधारिये, पधारिये, आपके पधारने से मेरा घर पवित्र हो गया। कहिये कैसे पधारना हुआ?

राजाने सेठानी को देखा और उसके मधुर वचन सुनें तो प्रसन्न हो उठा। बोला-मैंने अब तक तो तुम्हारे रूप-सौदर्य के लिये सुना ही सुना था, आज देखता हूं तो सचमुच तुम बहुत सुन्दर हो। कई दिनों से मैं तुम्हारा प्यासा हूं। आओ मेरे पास आ ओ, और मेरी प्यास को बुझावो। सेठानी कहती है-राजन्! जल्दी मत कीजिये। अभी तो आप आये है, बैठिये आपकी प्यास भी शात हो ही जायगी। मैं अभी आपके लिये दूध लेकर आती हूं। राजा आतुर हो बैठ जाता है। सेठानी ने पहले ही सब व्यवस्था कर रखी थी। उसने काच के बढ़िया पाच रंग के पांच प्याले लिये और सब में थोडा थोडा दूध भर कर राजा के सामने रख कर कहा-लीजिये, पहले आप दूध तो पी लीजिये। दूध ज्यादा नहीं था, एक प्याले में भी आ सकता था, परन्तु फिर भी सेठानी ने उसे ५ प्यालों में डाल कर राजा के सामने रखा। उसे देखकर राजाने पूछा-दूध ५ प्यालों में डाल कर क्यों लाई हो? यह तो आप पियेगें तभी समझ सकेगें! सेठानी ने उत्तर दिया।

राजा एक एक कर ४ प्यालो का दूध पी जाता है। सेठानी पूछती है-कहिये, दूध का स्वाद कैसा लगा। राजा कहता है-प्यालों का रग अलग अलग है, पर दूध का स्वाद तो एक जैसा है। उसमें कोई अन्तर मुझे दिखाई नही पडता है। क्या यह आप ठीक कह रहे है। सेठानी ने प्रश्न किया?

हां; मै बिल्कुल ठीक कह रहा हूं। दूध के स्वाद में कोई अन्तर नहीं है।

तो आप समझते क्यों नही है? औरत औरत भी दूध जैसी एक है, रूप रंग प्याले जैसा है, उससे कोई अन्तर नही पडता। आप तो हमारे पिता तुल्य हैं- गांव के मालिक हैं, पिता ही अपनी पुत्रियो पर ऐसी कुदृष्टि करेगा तो दूसरो का क्या हाल होगा? फिर क्या था! राजा का मोह दूर हो गया। उसका पागल पन हवा में उड गया। वह सत्य को समझ चुका था। सेठानी ने कहा—

बहार रुडी वली बदबो अंदर, बदबो अंदर होय रे,
अेनी शुंय मरामत होय.
काया छे पींजर रे, अेनी शुंय मरामत होय :-

शरीर ऊपर से सुंदर दिखाई देता है, पर अंदर तो मल-मूत्र ही भरा पडा है। चमडे पर मोहित होने वालों! तनिक इसका विचार तो करो कि तुम क्या

करने जा रहे हो? तुम्हारा नाम मात्र का सुख कहीं अनंत दुखों को आमंत्रित तो नही कर रहा है—

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा
पगाम दुक्खा अणिगाम सुक्खा।
संसार मोक्खस्स विपक्ख भूया.
खाणी अणत्थाण उ काम भोगा।

काम भोग अनर्थ की खान है, आत्मा के भयंकर शत्रु हैं। उन पर लुब्ध मत बनो। अपनी आत्मा को पहचानो। अगर राजा ही मार्ग भूलेगा तो प्रजा कहां जायगी? आदमी भूल कर सकता है, पर जो भूल को सुधार देता है वह मानव नही देव बन जाता है। जो भूल सुधार न सके वह तो पशु से भी गया गुजरा है।

भव सागर ना मारा तुट्या सुकानो।
आंधी आवी साथे लईने तूफानो।
मारी मति गई मुंजाई, मनडुं अहीं तही अथडाय,
भूल्या जीवने उपकारी हे ज्ञानी गुरुजी,
जोयो नहीं में जग मां सार, रझल्या लईने माथे भार,
भूल्या जीवने उपकारी हे ज्ञानी गुरुजी....

इस भव सागर में मैंने नैया तो बढा दी है, पर सामने तूफान है, नाव का खिवैया चला गया है, नाव रास्ता भूल गई है। मेरो बुद्धि भी भटक गई है, उस समय कौन याद आता है? क्या भोग याद आवेंगे? उस समय तो धर्म ही याद आता है। राजा को भी सुशीला जैसी सेठानी मिली। उसने कहा—मैं आपको डूबने नही दूंगी। धर्म को समझों, वही तुम्हे मार्ग बताने वाला है। राजा धर्म समझता है और सेठानी के पैरों मे नतमस्तक हो जाता है। मा, मुझे क्षमा करो, मैं तो बदमाशो के चंगुल में फंस गया था, तुमने मुझे बचा लिया मै तो पाप के गर्त मे जा रहा था, तुमने मेरा उद्धार कर दिया। राजा आदमी भेज कर जादवजी को बुलाता है। बदमाशो को दंड देता है और सेठानी का बहुमान करता है।

सुच्चिणा कम्मा सुच्चिणा फला भवन्ति
दुच्चिणा कम्मा दुच्चिणा फला भवन्ति

अगर तुम अच्छा काम करोगे तो अच्छा फल मिलेगा और बुरा काम करोगे तो फल भी बुरा ही मिलेगा।

सेठानी मे रूप और शील दोनो थे इसीलिये वह राजा को भी समझा-बुझा कर मार्ग पर ला सकी। सुधर्मास्वामी भी ऐसे ही गुणवान थे। सुन्दर शरीर

वाले और लज्जा सम्पन्न थे। पाप से घृणा करने वाले थे। पाप मे पडते नहीं थे और न किसी को गिरने देते थे। ऐसे वे लज्जाशील थे।

लेकिन आज तो लज्जा को ताक मे रख दिया गया है। न खाने में शर्म, न चलने मे, न रहने मे और न पीने में शर्म अनुभव की जाती है। सर्वत्र निर्लज्जता का ही बोल बाला दिखाई दे रहा है। भगवान ने तो पहले ही कह दिया है कि ५ वे आरे मे लज्जा नही रहेगी।

आज कल की वेष भूषा का क्या कहना? उपाश्रय मे फेशन का क्या काम है? यहां तो सादे वस्त्र धारण करके आना चाहिये। तडक–भडक वाले वस्त्र पहन कर नही आना चाहिये। सच पूछा जाय तो आज कल की वेष–भूपा भी ऐसी हो गई है कि जो लडके–लडकियो को निर्लज्ज बना देती है। ऐसे वस्त्र परिधान करना जिनसे शरीर के गुप्त अग भी खुले दिखाई दे यह कैसी फैशन है? इसे हम सस्कृति कहें या विकृति? विचारणीय बात है?

अगर आपको सचमुच अपनी संस्कृति प्यारी है, और लज्जा को भूषण बनाना है तो ऐसी निर्लज्ज वेष भूषा को तिलाजलि देनी ही होगी।

लज्जा भी मनुष्य का एक भूपण है। सुधर्मास्वामी भी लज्जावान थे। वे महापुरुष थे। आगे उनके गुणो का यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. १४–७–६८

[१९]

ज्ञाताधर्मकथा के प्रणेता सुधर्मास्वामी के गुणो का विवेचन करते हुए शास्त्र-कार कहते है कि वे ज्ञान, दर्शन और चारित्र से सम्पन्न थे। वे चार ज्ञान-मति–श्रुत, अवधि और मनपर्यवज्ञान के धारक थे। १४ पूर्व के वे ज्ञाता थे।

ज्ञान ही मनुष्य के दीव्य–चक्षु है। ज्ञान–हीन मनुष्य पशु तुल्य होता है। आज सरकार भी गाव गाव मे स्कूल खोल कर शिक्षा का प्रचार कर रही है। लेकिन यह लौकिकज्ञान है। इसका महत्व उतना नही है जितना कि लोकोत्तर ज्ञान का महत्व है। सुधर्मा स्वामी का ज्ञान लोकोत्तर ज्ञान था। वे स्व और पर की बात जानते थे। वे जड़ और चेतन के स्वरूप के ज्ञाता थे। आज के वैज्ञानिक शरीर मे आत्मा डालने का प्रयत्न कर रहे है। लेकिन वे यह नही जानते कि जो जड़ है वह तीन काल मे भी चेतन नही हो सकता है। और जो चेतन है वह तीन काल मे भी जड़ हो नही सकता है।—

जड ते जड त्रण काल मां चेतन चेतन भाव।
कोई कोई पलटे नहीं, छोडी आप स्वभाव।

अपना अपना स्वभाव छोड़कर कोई भी द्रव्य दूसरा नही बन सकता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, पुदगल और काल ये ५ द्रव्य अजींव है–जड़ है। इन्हें स्व और पर का बोध नही हो सकता है। केवल जीवास्तिकाय ही एक ऐसा है जो स्व–पर प्रकाशक चेतन द्रव्य है। स्व और पर का ज्ञाता केवल आत्मा ही है। जड़ में यह शक्ति नहीं है।

अभिगय जीवाजीव पुण्य पावास्रवसंवर निज्जरा बंध मोक्ख कुसला।

जीव–अजीव, पुण्य–पाप आस्रव–संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नव तत्व हैं, जिन्हे जानना बहुत जरूरी है, अन्यथा आप जीव और अजीव की पहचान ही नही कर सकेगे।

जीव अनादि से है और अनंतकाल तक रहने वाला है। उसका नाश कभी नही होगा। कर्म भी अनादि से है और सारी दुनिया कार्मण वर्गणाओ से भरी पड़ी है–एक इंच जमीन भी उससे खाली नही है। जीव जब विभाव मे जाता है–कषाय करता है तब वह अपने कार्य के अनुरूप कर्मवर्गणाओ को ग्रहण कर लेता है। जैसा कि तत्वार्थ सूत्र मे कहा है —...

सकषायाज्जीवो कर्मणो योग्यान पुद्गलानादत्ते बंधः

अगर जीव अपने स्वभाव से विभाव में नही जावे–कषाय न करें तो उससे कर्म वर्गणाऐ चिपक नही सकती है। जीव अपने विकारों से ही कर्मों से लिप्त होता है। यहां यह प्रश्न खड़ा हो सकता है कि कर्म जीव को ही क्यो लगते है ? अजीव को क्यो नही लगते ? इसका समाधान करते हुए बताया गया है कि जैसे लोहा चुवक से खीच जाता है, मिट्टीके ढेले को या चादी के टुकडे को चुवक खीच नही सकता, क्योकि उनमे खिचाने की शक्ति नही है। यह शक्ति लोहे में ही है, जिसे चुवक खीच लेता है। इसी तरह कार्मणयोग वर्गणा मे खिचाने की शक्ति है, उसे जीव के विकार अपने पास खीच लेते है– उससे चिपक जाते हैं। अजीव मे यह शक्ति नही होती अत.कर्म उसे नहीं लगते हैं।

सूखे कपडे पर धूल पड जाय तो वह उठा कर झाडने से साफ हो जाती है, पर वह कपडा घी से चिकना हुआ हो तो धूल के कण निकलते नही, कपडे से चिपक जाते है, वैसे ही जीव के साथ कर्म भी चिपक जाते हैं, जिन्हे निकालने के लिये भी पुरुषार्थ करना पड़ता है। जैसे घी का कपडा गरम पानी से धोकर साफ किया जाता है, वैसे ही जीव के साथ चिपके हुए उन कर्मो को भी तप–वैराग्य रूपी गरम पानी से साफ करना पडता है, तभी आत्मा शुद्ध बनता है।

कर्म जो करता है वही उसे भोगता भी है—

"कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि'

किये हुए कर्मों को भोगे विना मोक्ष नहीं होता। कर्म भी दो तरह के बताये गये है—१ निद्धत कर्म—ये कर्म ऐसे है जो आत्मा के साथ चिपक तो जाते है, पर तप-त्याग से नष्ट किये जा सकते है। इसी जन्म में उनसे छुटकारा भी पाया जा सकता है।

२ निकाचित कर्म—ये कर्म आत्मा के साथ मिल कर एक रूप हो जाते हैं, जिनका फल भोगे बिना उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता है। ये निकाचित कर्म कहे जाते है। शेर के मुंह में जाने से बचा जा सकता है, पर इन कर्मो के फल से बचा नही जा सकता। महान त्यागी भ. महावीर भी इनसे नही बच सके—

महान त्यागी महावीर प्रभुने उससर्ग नडेलो.
भरवाडे कान मां खीला खोड्या त्यारे
निजनो दोष गणेलो।
कर्म नो रे कोयडो अलबेलो ......!

एक रात में एक नही २० उपसर्ग भगवान को सहन करने पडे थे। वे भी मनुष्यो द्वारा नही, देवताओ द्वारा दिये गये थे। भगवान ध्यान मे खडे थे। एक ग्वाला उन्हे अपने बैल सौप कर चला गया। वापस आकर देखा तो बैल वहां नही थे। भगवान से कहा—मेरे बैल कहा गये है? बोलता क्यो नहीं है? भगवान को भी वह अपशब्द बोलता है और बैलो को ढूंढने के लिये इधर—उधर चला जाता है। थोडी देर बाद घूम कर आता है तो बैल वही खडे हुए दिखाई देते है। ग्वाला कहता है—मेरे बैलो को छिपाने वाला चोर यही है। इसको इसके काम की सजा तो मिलनी ही चाहिये। यह कह कर उसने भगवान के कानो में लोहे के कीले ठोक दिये।—

खीला खोडाणारे (२) वीरना कानमां
ओलो भूल्यों भरवाड रे बेभानमां—खीला

कान मे एक छोटा सा तिनका भी चला जाय तो कितनी पीडा होती है? ग्वाले ने भगवान के कानो मे लोहे के कीले गाड दिये, कितनी असह्य वेदना भगवान को हुई होगी? परन्तु भगवान के कर्म ही ऐसे थे। वे निकाचित कर्म थे। जिनका फल भोगे विना छुटकारा नही था।

भगवान जव अपने पूर्व भव मे त्रिपृष्ठ वासुदेव के रूप मे थे तव यह ग्वाला उनके यहां शैय्यापालक था। एक दिन महलो मे रंग राग की महफिल चल रही थी। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने शैय्यापालक से कहा कि जव मुझे नीद आने लगे तो तुम यह महफिल वंद कर देना। शैय्यापालक उस राग-रग की महफिल मे इतना आसक्त वना कि राजा सो कर भी उठ गया पर महफिल बंद

की जिन्दगी बचा दी, आप जितना पैसा लेना चाहे मुझसे ले सकते है। मैं आपका उपकार भूल नहीं सकता।

महात्मा ने कहा—मुझे पैसा नही चाहिये, वह मेरे किस काम का है? साधु होकर भी कौडी का मोह रखे तो उसका मूल्य कौडी जितना भी नही रहेगा। तुम चाहो तो किसी अच्छे काम मे अपना रुपया खर्च कर सकते हो।

सेठ का लडका अब पूर्ण स्वस्थ हो गया। वह नमक नही खाता है। वह यह जान लेता है कि नमक मेरे लिये मौत है। क्या आप भी विषय—कषाय को मौत नही समझते हो? फिर आप उससे बचने का उपाय करते हैं या उसी मे फंसने का? बडी मुश्किल से यह मानव भव मिला है। उसे सुधारने का प्रयत्न करो, धर्म का आचारण करो। सासारिक सुखों को पाकर भी उन में आसक्त मत बनो, उदासीन रहो। यही तो सम्यग् दृष्टि जीव का लक्षण है——

सम्यगदृष्टि जीवडा करे कुटुंब प्रतिपाल।
पण अंतरसे न्यारा रहे, ज्युं धाय खिलावे बाल।

सम्यगदृष्टि जीव कुटुम्ब का पालन करते हुए भी अदर से अलिप्त रहता है। जैसे कि धाय माता बालक को दूध पिलाती है, पर यह समझती है कि यह मेरा नही है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि जीव भी अपने कुटुम्ब के साथ रह कर भी अलग रहता है।

दुकान का नौकर दुकान की आय को अपनी नही समझता, वैसे ही सम्यग् दृष्टि जीव भी धन—वैभव पर अपना स्वामित्व नही मानता, वह तो उसका ट्रस्टी बन कर जीवन यापन करता है। भरत ने राम की पादुका राजसिहासन पर रखी और स्वय सेवक बन कर राज—काज चलाते रहे। सम्यग्दृष्टि जीवो का हाल भी ऐसा ही होता है। इससे विपरीत मिथ्या दृष्टि जीव यह समझता है कि—

मिथ्या— दृष्टि जीवडा करे कुटुंब प्रतिपाल।
पण अंतर से वलग्या रहे, ज्युं माय खिलावे बाल।

माता बालक के साथ आसक्त बनी रहती है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव भी संसार में मोहित बने रहते हैं। सम्यग्दृष्टि मे अलिप्त भाव रहता है जब कि मिथ्यादृष्टि उसमे फंस जाता है।

जो रसायन उस साधुने सेठ के लडके को दी थी उसको खाकर लडका स्वस्थ हो गया। २० वर्ष निकल गये, उसे सर्दी, जुकाम तक नही हुआ। एक दिन कुछ ऐसा कारण हुआ कि घर मे कोई नही था। सेठ, सेठानी और वह आदि सब बाहर गये हुए थे। घर में केवल सेठ का लडका ही था। उसने नौकर

ने कहा—सेठ, इन बरनी में केले के वेफर पड़े हैं. चाय के साथ पड़े हैं आ। कई वर्ष हो गये, नमक खाना मेरे लिये मना है. पर इतने से नमक में क्या हो जायगा? १० वर्ष हो गये नमक छोड़े. आज तो थोड़ा खाकर देखूं? वह वेफर खा लेता है। जैसे ही नमक उसके पेट में जाता है—वह बीमार पड़ जाता है। पेट दुखने लगता है. हालत उनकी खराब हो जाती है। सेठ और सेठानी आते हैं, लड़के की हालत देखते है तो नौकर से पूछते हैं—क्या खाया था इसने? सेठ को जब यह पता चलता है कि इसने वेफर खा लिया है तो वह भागा भागा महात्मा के पास पहुंचता है और उन्हें लेकर घर आता है। महात्मा लड़के को देखते हैं तो कहते हैं—बस, अब यह आधे घंटे का मेहमान और है, जो पुण्य दान-पुण्य करना हो कर लो, अब यह बच नही सकता। आखिर लड़का मर जाता है। बंधुओं! आज हमारी हालत भी इससे भिन्न नहीं है। जब हालत खराब होती है तब तो भगवान को याद करने लग जाते हैं, पर ठीक होने पर फिर वही करने लग जाते हैं।

दुख मां सौ हरिने भजे,सुख मां भजे न कोई.
जो सुख मां प्रभु ने भजे, तो दुख काये को होई।
सुख ने माथे शिला ढलो, विसरी गया जे राम।
बलिहारी जे दुखतणी, के पले पले याद आवे जे राम

ज्ञानी जन दुख को ही निमंत्रित करते है। क्योंकि उससे भगवान याद आते है। सुख में भगवान को कौन याद रखता है? सुख मे तो आदमी यह समझता है कि—

पैसों मारो परमेश्वर, वैरो मारो गुरु।
छोकरो मारो शालिग्राम, पछो कोनी सेवा करूं?

सब मेरे घर में है। लेकिन याद रखिये भूल करने की सजा जीव को मिलती ही है।

पाप को आने से रोकना सवर है। ऊपर जो नव तत्व बताये है, उनमें सवर, निर्जरा और मोक्ष ये तीन आदरने योग्य है—ग्रहण करने योग्य हैं—और तीन-पाप, आश्रव और बंध छोडने योग्य हैं, लेकिन आप आज क्या कर रहे हैं? कही उल्टा तो नही कर रहे है—छोडने योग्य को ग्रहण तो नहीं कर रहे है? याद रखिये कर्मों का फल तो मिलने वाला ही है।

भगवान के कानो मे ग्वाले ने खीलें ठोकी, पर भगवान ने उसे भी अपना ही दोष माना। उन्होंने कहा—इसमें उस बेचारे का कोई दोष नहीं है। यह तो मैं अपने किये का ही फल भोग रहा हूं। भगवान को भी कर्मों ने नहीं

छोड़ा और इतने महान–कष्ट उन्होने सहे तो हम किस खेत को मूली है। अत: सचेत हो जाइये। जागृत बनिये। गफलत मे मत पडे रहिये, वरना आत्मा के विभाव, चोर वन कर आपका माल चुरा ले जायगे और आपको दुर्गति मे डाल देगे। सरकार भी पुलिस को इसीलिये तैनात रखती है कि प्रजा मे कोई चोरी न कर सके। हम भी भगवान महावीर के सिपाही है–हमारा काम भी आपको जागृत रखने का है–सचेत बनाने का है, अगर आप जागृत न बनेगे तो याद रखिये नुकशान आप का ही होगा। आत्मा के लुटेरे आपका ही माल लूट ले जायंगे—

तारी आत्मिक लक्ष्मी लुंटाय छे।
अेनी फरियाद क्यांय नही थाय,
जागजे, जाग जे जीवडा जागजे रे–
तारी मूडी मफत मां जाय–जागजे...

आत्मा के षट्–रिपु–राग, द्वेष– क्रोध, मान, माया, लोभ आध्यात्मिक सम्पत्ति को लूटने वाले है। उनसे सावधान रहो। त्यागी सन्त महात्मा भी यही ढीढोरा पीटते है कि तुम जागृत रहो– जो आत्मा प्रमाद को छोड़ कर इस मार्ग पर आरूढ़ होगी वे ही अपना कल्याण कर सकेगी।

ता. १५–७–६८

[१६]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन चल रहा है। भगवान के ११ गणधर थे, जिनमे से ९ गणधर तो उनकी मौजूदगी मे ही मोक्ष चले गये। पीछे २ रहे– गौतम और सुधर्मास्वामो। गौतम बडे थे, फिर भी भगवान के पाट पर वे नहीं आये, और सुधर्मास्वामी ही क्यो आये? यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है। भगवान का जब निर्वाण हुआ था, तब उसी रात गौतमस्वामो को भी केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त हो गया था। वे भी सर्वज्ञ सर्वदर्शी वन गये थे अत: भगवान के पाट पर गौतम स्वामी नही आ सके। सुधर्मास्वामी छद्मस्थ थे, चार ज्ञान के धारक थे, केवली का सहारा लेते थे अत:वे ही पाट पर विराजे। केवली, केवली के पाट पर कभी नही आते है। पाट पर तो छद्मस्थ ही आते है। जो केवली तो नही, केवली सरीखे होते है। केवली और छद्मस्थ में यही अन्तर होता है। केवली किसी का सहारा नही लेते जब कि छद्मस्थ को केवली का सहारा लेना पड़ता है।

भगवान ने जो कहा उसे सूत्र रूप मे गुफित कर सुधर्मास्वामी ने ही हमारे सामने रखा है। वे महा ज्ञानी थे। ज्ञान–दर्शन और चारित्र से सम्पन्न थे। जब

आत्मा का कषाय भाव मिटता है तो आत्मा ज्ञानवान बनता है। जितना २ कषाय भाव मिटता जाता है, उतना २ आत्मा शुद्ध होता जाता है।

जैसे गंदे पानी में कोई वस्तु पड़ जाय तो वह दिखाई नहीं देती है, पानी साफ हो तो पड़ी हुई वस्तु भी दिखाई पड़ जाती है। वैसे ही आत्मा भी जब कषाय रूपी कीचड़ से ढक जाती है तो वह अशुद्ध बन जाती है। लेकिन जब वह तप-त्याग रूपी नीर से साफ कर दी जाती है तो वह भी निर्मल बन जाती है।

अतः ज्ञान प्राप्ति के लिये सबसे पहले कषायों को दूर करना चाहिये। क्रोध, मान, माया और लोभ को दूर हटाना चाहिये।

आचारांग में कहा है—

लोयंच पास विफंदमाणें

क्रोध से मनुष्य आकुल-व्याकुल रहते हैं। क्रोध आत्मिक सम्पत्ति को नष्ट कर देता है। क्रोध मे जो लोग जान गवा देते है वे मर कर सर्प योनि में जन्म धारण करते हैं। चडकौशिक सर्प पहले साधु ही तो था। क्रोध का ही परिणाम था कि वह मर कर चण्डकौशिक जैसा भयंकर विषधर बना। जिसका विष १२ कोस तक व्याप्त रहता था। यह क्रोध का ही परिणाम था।

हमारे मे भी यह क्रोध है या नही? क्रोध की मात्रा ज्यादा रहती है तो कर्मो का निविड बंध होता है। जैसे लड्डू मे घी ज्यादा हो तो वह आसानी से नही छूटता-चिपका रहता है, वैसे ही क्रोध की मात्रा ज्यादा रही तो कर्मो का स्निग्ध बंध हो जाता है, जो आसानी से अलग नही होता है। कर्म बंध भी चार प्रकार से होता है-१ प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश। प्रकृत्ति और प्रदेश बंध मन, बचन और काया के योग से होते है जब कि स्थिति और अनुभाग बंध कषायो की तीव्रता से होते है।

कषाय नी उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद अंतर दया, ते कहिये जिज्ञास।

ज्ञानी समझते है कि जो होने वाला है-वह तो होगा ही, रुकने वाला नहीं है। उस पर क्रोध करने से क्या लाभ? पैसो का नुकसान तो फिर भी सरीखा किया जा सकता है, पर क्रोध करने से आत्माका जो नुकसान हो जायगा वह थोडे ही आसानी से दूर हो सकेगा!

एक सेठ बड़ा क्रोधी स्वभाव का था। घर में सब उससे डरते थे। साग मे नमक ज्यादा गिर जाय तो सारा घर आसमान पर उठा लेता था। दुकान पर बैठता तो नौकर घबराते थे। यो कोई भी उसके पास बैठने को तैयार नहीं होता था। कई मनुष्य तो ऐसे होते है जिनके पास बैठने की इच्छा होती है, पर

क्रोधी के पास रहना कोई नही चाहता। वह आकृति से भले ही मानव होता है, पर प्रकृति से तो दानव ही होता है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है—

सच्ची बात को भी क्रोध युक्त कहना सत्य नहीं असत्य है। इसीलिये कहा है –

सत्यं वद, प्रियं वद, न ब्रूयात सत्यमप्रियम् सत्य और प्रिय बोलो । अप्रिय सत्य भी मत बोलो। स्वर्ण को तो सभी चाहते है लेकिन क्या कोई गरम २ सोने को अपने हाथ मे लेना चाहेगा ? इसी तरह सत्य भी प्रिय होगा तभी वह रुचिकर लगेगा, कटु सत्य कोई सुनना नही चाहता।

जैसे एक डाक्टर शरीर का खराब हिस्सा ओपरेशन द्वारा बाहर निकाल कर शरीर को स्वस्थ बना देता है वैसे ही हमारे हृदय में भी जो दुर्गुण आ गये है उन्हे बाहर निकाल कर हृदय को शुद्ध बना लेना चाहिये। बुराई और कही नही, हमारे मन मे ही है।–

बुरा बुरा सब कोई कहे, बुरा न दीसे कोय ।
जो घट शोधुं आपनुं तो मुझ सा बुरा न कोय ।

मनुष्य को सारी दुनिया खराब लगती है, पर खुद कैसा है? यह कोई नही देखता। आंख दूसरे को ही देखती है। आंख में एक छोटा सा तिनका भी पड़ जाय तो वह उसे नही देख सकती, वह तो दूसरे से ही निकलवाना पडता है। इसी तरह हम भी दूसरे का दोष ही देखते है, अपना नही। इसीलिये हम संसार में भटक रहे है। जिस दिन हम अपना दोष देखने लग जायगे उसी दिन से हमारा संसार मे भटकना भी बंद हो जायगा।

मनुष्य जो भी करता है किसी न किसी प्रयोजन से ही करता है। बिना प्रयोजन कोई भी कुछ नही करना चाहेगा। आप डाक्टर से दवा लेते है, पर दवा से कोई फायदा न हो तो कब तक लेते रहेगें? इसी तरह आप उपाश्रय में रोज आते है। घर के बहुत से काम छोड़कर आते है, पर जिस लिये आते है वह प्रयोजन अगर सिद्ध न हो तो आपका आना भी सार्थक कहा जा सकता है क्या?

आत्म–मैल को धोने के लिये उपाश्रय में आया जाता है। आपने उपाश्रय मे आकर कितने दुर्गुण निकाले है ! इसका भी हिसाब लगाया है अब तक?

वह क्रोधी सेठ अपने घर मे खाना खा रहा था। अचानक उसी घर में एक मुनिराज भी भोजन के लिये पधार गये। सेठ की मांने आदर के साथ भोजन वहराया, पर वह सेठ तो खाने में ही लगा रहा। साधुने पूछा–वह कौन है? मांने कहा–मेरा लडका है।

साधु इस घर से परिचित थे। बोले—तुम मुझे नही जानते, पर मैं तुम्हे जानता हूं। तुम्हारे पिताजी तो हर साल उपाश्रय में आकर अट्ठाई किया करते थे, पर तुम तो दिखाई भी नही देते हो। क्या बात है? फुरसत नही मिलती है क्या?

सेठ बोला—दुकान पर दूसरा कोई आदमी नही है अतः फुरसत ही नही मिलती है। साधुने कहा—व्याख्यान सुनने का समय न हो तो दर्शन करने जितना समय तो निकालना ही चाहिये। दर्शन करने से भी आत्मा का मल दूर हो जाता है। सन्त तो आते—जाते रहते है—वे कही टिक कर नही रहते। उसकी शोभा तो चलते फिरते रहने मे ही है—

स्त्री पियर नर सासरे संयमियो स्थिर वास,
एता होय अलखामणा, जो रहे एक वास।

उपाश्रय मे कोई भी संत हो कमसे कम दर्शन तो करना ही चाहिये। कमसे कम इतना नियम तो जरूर ले लो।

सेठ १ मास के लिये नियम ले लेता है। अब वह रोज उपाश्रय में आता है और दर्शन कर दुकान पर चला जाता है। कभी २ मागलिक भी सुन लेता है। क्या आपको भी अपना मंगल करना है? दुनिया मे केवल चार वस्तुऐं ही मंगलकारी है—

अरिहत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररुपित धर्म यही मंगल है। जो इसका शरण ले लेता है उसका अजर—अमर पद हो जाता है।

एक दिन साधुजी एक भाई से कह रहे थे—

कोह वसट्टेणं भन्ते जीवे किं जणयई ?

क्रोध के वशीभूत बने हुए जीव को क्या नुकशान होता है?

इतने मे वह सेठ भी आगया और वह भी इसे सुनने लगा।

साधुजीने कहा—क्रोध के वशीभूत हो आदमी अपनी कर्म प्रकृतियो को अधिक गाढ बना लेता है। असातावेदनीय कर्म को बारबार वह बाध लेता है। क्रोधी मनुष्य ८४ लाख जीव योनियो मे चक्कर खाता रहता है।

क्रोध आख के मोतिया जैसा है। जैसे आंख मे मोतिया आ जाता है तो आख से दिखाई नही पडता है, वैसे ही क्रोध भी ज्ञान को ढंक देता है। इससे आत्मा स्वयं भी तडफडाता है और दूसरो को भी दुखी बनाता है।

क्रोधी को रोग भी हो जाते है। सिर चक्कर खाने लगता है, पित्त उठ जाता है। यो वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक नुकशान करने लगता है।

आचाराग में कहा है—

जे कोहदंसी से माणदंसी, जे माणदंसी से मायादंसी, जे मायादंसी से लोभ दंसी, जे लोभदंसी से पिज्जदंसी, जे पिज्जदंसी ते दोसदंसी, जे दोसदंसी से मोहदंसी, जे मोहदंसी से गब्भदंसी, जे गब्भदंसी से जम्मदंसी, जे जम्मदंसी से मारदंसी, जे मारदंसी से नरयदंसी, जे नरयदंसी से तिरियदंसी, जे तिरियदंसी से दुक्खदंसी

बुद्धिमान मनुष्य क्रोध का दमन करते हैं, क्रोध का दमन करने से राग–द्वेष, मान, माया, लोभ आदि का दमन करते है। मोह का दमन करते हैं। इससे वे गर्भ मे नही आते अतः वे मृत्यु का दमन करते हैं। वे नरक तिर्यंच आदि के दुखो को भी प्राप्त नही होते हैं। एक क्रोध चला जाय तो उपरोक्त १३ अनर्थ अपने आप चले जाते हैं। और उसके होने पर इन १३ वोलो का लश्कर भी मौजूद रहता है।

सेठने साधुजीकी वात सुनी तो विचार करने लगा—मैं तो क्रोध से ही भरा पडा हू। मेरी प्रकृति तो वड़ी खराब है। क्रोध तो मेरा शत्रु है, जिसे मैं आज तक पालता पौपता रहा हू। सेठ को आज कुछ भान होता है।

एक वचन ए सद्गुरु केरुं
जो बेसे दिलमांय रे प्राणी।
नर्कगति मां ते नहि जावे,
एम कहे जिनराय रे प्राणी।
साधुजीने वंदना नित नित कीजे।

आज मैं क्रोध नही करूगा। मन ही मन वह यह प्रतिज्ञा लेकर घर आता है। मा खाना परोसती है। दाल मे नमक डालना आज भूल ही गये थे। बहू ने समझा, सासू ने डाल दिया होगा और सासूने समझा बहू ने डाल दिया होगा। सेठ चुपचाप खाकर दुकान पर चला जाता है। खाना भी वह पूरा नही खाता है, पर पूछे कौन कि क्या वात है? सब उसके स्वभाव से डरते है। न सेठ ही कुछ कहता है। मां खाने वैठी तो मालूम हुआ कि दाल मे नमक तो डाला ही नही है। मा समझ गई कि लडका आज भूखा चला गया है, पर वोला कुछ नही, इससे उसके जीवन में कुछ परिवर्तन हुआ दिखाई देता है। मा इधर सोच मे पड़ जाती है। उधर सेठ दुकान पर चला जाता है। मन मे कोई वुरे विचार नही है। आज तो उसे ज्ञान रूपी सागर से सच्चे मोती मिल गये थे।

जोता रे जोता अमने जडीया रे साचा सागर नां मोती.

ई रे मोतीडारे हां...हां संतो भाई कोई लावो गोती।
अेनो बनूं हुं तो दास रे साचा......

सद्गुरु का एक वचन हो कोई सुन ले तो नरक का दरवाजा बंद हो जाता है। धन्य है उन साधु महात्मा को जो स्वाध्याय मनन कर के सीधी सादी भाषा मे उपदेश देकर जनता का कल्याण कर देते हैं।

मां दुकान पर जाकर सेठ से कहती है-बेटा, आज तू ने खाना पूरा नही खाया है, चल अब खाले। मैने दालमें नमक डलवा दिया है। सेठ को आज पता चला कि माता का प्रेम कैसा होता है? सेठ घर आता है और खाना खाता हैं। आज के भोजन में उसे जो मिठास आया वैसा पहले कभी नहीं आया था। यह किसका महत्व था? सत्संग का ही महत्व था।

सुधर्मास्वामी ने भी कषायों को मंद कर दिया था। पानी की लहर जैसा भी उनका क्रोध नही था। वे कषायो पर आंशिक विजय प्राप्त कर चुके थे। जो लोग कषायों को जीतेगे उनकी आत्मा का भी अवश्य कल्याण होगा

ता. १६-७-६८

[१७]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं-वे ज्ञान-दर्शन चारित्र सम्पन्न थे।

ज्ञान जीव का मुख्य गुण है। निगोद से लेकर पचेन्द्रिय मनुष्य तक ज्ञान सब मे होता है। जो जीव है, वह ज्ञान रहित नही होता। निगोद जैसे जीवो मे भी ज्ञान का सूक्ष्म प्रकाश रहता ही है।

साधक गुरु मे पूछता है—अगर किसी मे ज्ञान ही न हो तो उसे क्या कहा जायगा।

गुरु ने कहा—उसे जड कहा जायगा। जो चैतन है, वह ज्ञान शून्य हो नही सकता। नदी सूत्र मे कहा है कि-

अक्खरस्स अनंत भागो निच्चुग्घाडियो

अक्षर के अनन्तवा भाग जितना भी निगोद जैसे जीवो मे ज्ञान रहता ही है। वे सर्वथा ज्ञान रहित नही होते। जैसे सूर्य पर बादल आ जाते है तो सर्वथा अधकार नही हो जाता, वैसे ही ज्ञानावरणीय कर्म का प्रबल उदय होने पर भी जीव सर्वथा ज्ञान से शून्य नही होता है। क्योंकि जीव का स्वभाव ही ज्ञान है।

उपयोगो लक्षणं जीवस्य

जीव का लक्षण ही उपयोग है—जो जीव रहित मुर्दा है उसमें ज्ञान नहीं होता। उसे चाहे जैसा पहनाओ। मारो, काटो, अग्नि में जलाओ कुछ नही होता। क्योंकि वह जड है। जो जड़ है वह सुख दुख का ज्ञाता नहीं है। यह मेज-टेवल कुर्सी भी वैसी ही है—जड है। इन पर कुल्हाडी चलाओ या पालिस करो दोनों एक समान है। जीव ही सुख दुख का ज्ञाता है। शरीर में जब तक जीव है तब तक वह भी चलता –फिरता है—सुख दुख का अनुभव करता है । जीव गया कि शरीर भी जड हो जाता है। अत:सुख—दुख का ज्ञाता जीव ही है।

अज्ञान का आवरण जितना जितना कम होता जाता है उतना उतना जीव को विशेष ज्ञान होता जाता है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से आत्मा निर्मल होता जाता है।

ज्ञान ५ है—मति—श्रुति अवधि, मनपर्यय और केवल ज्ञान।

पहले के दो—मति ज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान है। शेष तीनों ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान है। अवधि और मनपर्यय ज्ञान देश प्रत्यक्ष है जब कि केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

मति और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान कहे गये है। दूसरों की सहायता जो से ज्ञान होता है, वह परोक्ष कहा जाता है। मति और श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है अत: ये परोक्षज्ञान कहे गये है।

छाछ खट्टी है या मीठी है? नमक खारा है और शक्कर मीठी है, इसका ज्ञान रसनेन्द्रिय—जीभ द्वारा किया जाता है। जीभ जड़ है, पर उसके निमित्त से आत्मा ज्ञान करती है अत: यह परोक्षज्ञान कहा गया है।

इसी तरह ऊपर से कुछ गिरा, आवाज आई—श्रोतेन्द्रिय द्वारा आत्मा ने जाना कि उपर से पत्थर गिरा है। रूप का ज्ञान आखो द्वारा किया जाता है। सुगंध या दुर्गंध का ज्ञान घ्राणेन्द्रिय—नाक द्वारा किया जाता है। कहीं सीरा वन रहा है, प्रत्यक्ष में तो दिखाई नही पड़ रहा है, पर सुगंध आ रही है, नाक द्वारा उसका ज्ञान कर लिया जाता है।

टंडी या गरम हवा का शरीर से स्पर्श हुआ, मच्छरने काटा तो यह ज्ञान स्पर्शेन्द्रिय द्वारा होता है। नोइन्द्रिय-मन, इन्द्रिय नहीं है। मन द्वारा भी ज्ञान होता है। सोचना, मनन करना, स्मरण करना यह ज्ञान मन द्वारा ही होता है।

मतिज्ञान श्रुतज्ञान सहित ही होता है। उसके २८ भेद है। श्रुतज्ञान के १४ भेद कहे गये है। द्वादगागी का समावेश श्रुतज्ञान में ही होता है। अत: श्रुतज्ञान का भी वहुत वड़ा महत्व है।

जैन कहला कर भी अगर आपको नव तत्व का नाम नहीं आता हो, सामायिक और प्रतिक्रमण न आता हो, तो क्या आप जैन कहलाने के हकदार बन सकते है ? आज आवश्यकता है जैनशालाकी तरह श्रावक शाला चलाने की। जिससे कि लोगों को तत्व का ज्ञान कराया जा सके। ज्ञान के अभाव में ही आज समाज की हालत छिन्न-भिन्न हो रही है। ज्ञान का अधुरापन ही अनेक मत-मतान्तरो को पैदा करता है। हिताहित का निर्णय न कर सकने के कारण ही लोग उनकी बातों में आ जाते हैं। जैनदर्शन के जानकार कभी ऐसे मत-मतान्तर में नही फंसते। वे तो यह जानते है कि जैनदर्शन केवली प्ररुपित दर्शन है, वह अधुरा नहीं, पूर्ण दर्शन है। आवश्यकता है उसे समझने को। आज तो ज्ञान के साधन भी बहुत हो गये है। लायब्रेरी से कीमती साहित्य भी पढ़ने को मिल सकता है। पर आज कितने लोग उस साहित्य को पढते है ? सब लोग दैनिक पत्र-पत्रिकाओं को ही पढने आते है। सर्वज्ञ के ग्रंथ तो कोई नही पढता। इसके बिना आत्मा में ज्ञान का प्रकाश कैसे हो सकेगा ?

वस्तु के स्वरूप को यथार्थ जानना ज्ञान है। त्यागी गुरु द्वारा नवतत्वों के स्वरूप को समझना और उस पर श्रद्धा करना सम्यगदर्शन है। सब से पहले ज्ञान है-बाद मे दर्शन, चारित्र और तप है। ज्ञान के बिना शेष सभी बेकार हो जाते है। ज्ञान होता है तभी तीनो की कीमत है।

एक बार एक सासूने बहू से कहा-मैं आती हूं। तुम जरा घर से अंधेरा दूर कर देना। बहू सूपडा लेकर अधकार को भगाती है, पर वह दूर नही होता. तब वह लकडी उठा कर मारती है। इससे घर मे पडे हुए सब बर्तन फूट जाते है, पर अंधेरा दूर नही होता है। सासु आती है तो घर का हाल-बेहाल देख कर पूछती है-यह क्या हुआ ? वर्तन कैसे फूट गये है ? बहू कहती है-मैंने अधेरे को बहुत मारा, पर वह निकलता ही नही है। सासु बहू की मूर्खता समझ गई। उसने दीपक जलाया तो अंधकार गायब हो गया। बहू मे ज्ञान ही नही था तो अधेरा कैसे दूर करती ? ज्ञान के बिना आत्माका अंधकार भी दूर नही होता है।

अंधकार छाया हुआ है, रस्सी पड़ी है, साप समझ कर आप डर जाते हैं, लाईट की तो आपकी भ्राति मिट जाती है-डर निकल जाता है और उस रस्सी को हाथ मे लेकर आप फेक देते है। क्योंकि सर्प की भ्रांति अब मिट जाती है। अत.ज्ञानी कहते है- जहां भ्रांति है वहा भव का भ्रमण चालू ही रहता है। भ्राति जैसा कोई भयंकर रोग नही है——

आत्म भ्रान्ति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान।

दीवो करो दीवो करो तमे दिलमां दीवो करो
हां रे तमे काम ने क्रोध परिहरो—तमे:

वाह्य दीपक से क्या होगा ! सच्चा ज्ञान—दीप तो हृदय में जलाना होगा। आत्म ज्योति प्रकट करोगे तभी आत्मा प्रकाशित वन सकेगी।

रवि रवि करता रे रजनी नही टले रे जी,
पण अंधारूं तो अर्क उग्या थी रे जाय
रुदे रवि उग्यो रे गुरुगम ज्ञान नो रे जी
त्यारे अेनु जडपणुं रे मटी जाय......
समज्या विनानुं रे सुख नहि जीवने रे....३

अंधेरी रात मे कोई यह कहे कि सूर्योदय हो गया है तो कहने मात्र से ही अंधेरा मिट नही सकता है। वह तो सूर्योदय से ही मिट सकेगा। वैसे ही गुरु से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उस ज्ञान—सूर्य से ही हृदय का अंधकार मिटाया जा सकता है। तभी जड और चैतन का स्वरूप समझ में आता है। अतःज्ञान की जरूरत तो सवसे पहले है।

शरीर सुविधा के लिये आप हजारों रुपया खर्च कर देते हो, पर ज्ञान प्राप्ति के लिये क्या करते हो ? आंख दिखाने के लिये डाक्टर के पास जाते हो, ओपरेशन कराते हो, समय भी निकालते हो, पर अज्ञान को दूर करने के लिये आज आप कुछ भी न करो तो यह कैसी वात है ?

ओपरेशन कराते समय आप अपना शरीर डाक्टर को समर्पित कर देते हो। वह चाहें जहा से काट—छांट कर लेता है। ऐसा हो समर्पण आप अपना गुरु के पास क्यो नहीं कर देते ? वे जो कुछ भी कहेगें अपने लाभ के लिये ही कहेगें। ऐसा विश्वास जव तक पैदा नही होगा तव तक उनसे ज्ञान कैसे प्राप्त किया जा सकेगा ?

सुधर्मा स्वामी महान ज्ञानी थे। वे जिन नहीं, पर जिन सरीखे थे। उनमें और भी कई विशिष्ट गुण थे, जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. १७–७–६८

[१८]

सुधर्मा　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　है कि वे ज्ञान
सम्पन्न थे।

कर्म

जिसकी स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम की कही गई है। ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति तो ३० कोडाकोडी सागरोपम की ही है। फिर भी सब से पहले इसे ही लिया गया है। इसका कारण यही है कि ज्ञान आत्मा का मुख्य गुण है। जब तक आत्मा में ज्ञान का प्रकाश नही होता तब तक अज्ञान मिटता नही है। सब से बडा दुख अज्ञान ही है। अन्य दुख उसके सामने तुच्छ है। आत्मा की अज्ञानावस्था ही दुख का कारण है।

श्रीमद्ने कहा है—

जेह स्वरूप समज्या विना. पाम्यो दुख अनंत।
समजाव्युं ते पद नमु श्रीसद्गुरु भगवंत।

अनंत दुख प्राप्त करने का कारण स्व स्वरूप को नहीं जानना ही है। ज्ञान हो जाय तो अनंत दुख मिट कर सुख मिल जाता है। अज्ञानही सबसे बडा दुख है, वही अनेक दुखो को पैदा करने वाला है। उसके स्वरूप का जिसे ज्ञान हो जाता है वह स्वयं अपना मालिक होजाता है। आत्मा का अखूट खजाना उसे मिल जाता है, जिसके सामने दूसरे खजाने तुच्छ लगने लगते है :–

आतम ज्ञान बिना नर भटके
कोई मथुरा कोई काशी
मोहे सुन सुन आवत हांसी........

आत्मा का ज्ञान नहीं होने से ही जीव यत्र–तत्र भटकता फिरता है। जो जहा नहीं है वह वहां कैसे मिलेगा ? भगवती सूत्र में कहा है कि–

अत्थि तं अत्थि तं परिणमई
नत्थि तं नत्थि तं परिणमई

अस्ति नास्ति नहीं हो सकता और नास्ति अस्ति नही बन सकता। यह संभव नही कि फिटकरी मिश्री हो जाय और मिश्री फिटकरी हो जाय।

इसी तरह सुख भी आत्मा मे है, जड मे नहीं। अतः जडके पीछे मन दौडो–संसार के सुख झूठे है, भ्राति है। उसी का फल यह संसार है। अतः अपने आपको जानो और उसे जानने के लिये कही भी बाहिर जाने का बंद करो। वह कही नही तुम्हारे अंदर ही है—

नहि ग्रंथ मांहि ज्ञान भारव्युं ज्ञान नहि कवि चातुरी।
नहि अन्य स्थाने ज्ञान भारव्युं ज्ञान नहि भापा ठरो।
नहि मंत्र तंत्र ज्ञान भाख्या ज्ञान ज्ञानी मां कल्गे ।
जिनवर कहे छे ज्ञान तेनें सर्व भव्यो सांभल्गे।

श्रीमद् कहते है–ग्रथ में ज्ञान नही है–पुस्तक भी जड है, वह ज्ञान नही करा सकती। अगर वह ज्ञान करा सकती तो सवका ज्ञान एक समान दिखाई देना चाहिये। ज्ञान तो क्षयोपशम से होता है। जिसका जैसा क्षयोपशम उसको वैसा ही ज्ञान भी होता है। भाषा भी जड है, मंत्र–तंत्र भी ज्ञान नही है। ज्ञान तो आत्मा मे ही है। वह अन्यत्र कही नही है–

आप आपमें रमी रह्योने वंध्यों तू आपो-आप
जिसको तूं ढुंढत फिरे सो तें आपो-आप

आत्मा स्वयं वंधता है, स्वयं छूटता है, आत्मा खुद ही अपने को ढूढता है। भाव से विभाव मे जाता है। वह अन्यत्र कही नही जाता, अपने अंदर ही समाया रहता है। उसे बाहर क्यो ढूढते हो।

जगदीशने जोवा माटे दशेदिशा आथड्या
जागी ने जोयुंतो अे तो घटमां जड्या।
अमे भवना मुसाफिर भूला तो पड्या
क्यां रे जवुं तुं ने क्यां जई रे चड्या.. अमे...

जगदीश को देखने के लिये दशो दिशाओ मे घूम आये, पर वह कहीं भी दिखाई नही दिये, पर जैसे ही जागृत होकर देखा तो वह हृदय में ही दिखाई दिये। आप भी जागृत वनो, कषाय की नीद में क्यो सो रहे हो? नीद छोडो और जागो, आत्मा तो तुम्हारे अंदर ही छिपा पड़ा है, उसे पहचानों। इस तरह ज्ञान से ही आत्मा का स्वरूप पहचाना जा सकता है।

उत्तराध्ययन मे कहा है–

नाण संपन्नेणं भन्ते किं जणयई

ज्ञान सम्पन्न होने से जीव को क्या लाभ होता है?

भगवान ने कहा है–

नाण सम्पन्ने जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ नाण संपन्नेणं चाउरन्त संसार कन्तारं न विणस्सइ।

ज्ञान से सभी वस्तुओं का ज्ञान होता है। ज्ञान सम्पन्न जीव चार गति रूप संसार में परिभ्रमण नही करता है। ज्ञानी और अज्ञानी मे कितना अंतर हो जाता है। ज्ञानी के लिये चार गतियो के दरवाजे वद हो जाते ... पांचवा मोक्ष द्वार खुल जाता है, जव कि अज्ञानो के लिये मोक्ष द्वार ... चारो गतियो के द्वार खुले रहते है।

जहा सूइ ससूत्ते पडियावि न विणस्सई।
तहा जीवे ससूते संसारे न विणस्सई।

लडका आ रहा है और साथ में एक लाख रुपया भी ला रहा है, कितनी खुशी की बात है? वह आनंद अकथनीय है। मुंह से कहा नही जा सकता। ऐसा ही आनंद स्वानुभव का भी होता है। स्व संवेदन में जो सुख है वह अकथनीय है, उसे तो अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसके सामने स्वर्ग के सुख भी तुच्छ दिखाई देते हैं। आत्मानंद का अनुभव तो अलौकिक होता है।

चेतन मे ही आनंद का गुण है। जड मे वह त्रिकाल मे भी नही हो सकता। सुख अपने अंदर ही है, बाहर नही है, फिर आप उसे बाहर क्यों ढूढ रहे हो?

है हाजर को दूर करत है दूर की आश निराशी।
कहत कबीरा सुनो भाई साधु घट मे ही मिले अविनाशी। मोहे.
पानी में मीन पियासी, मोहे सुन सुन आवत हांसी।–

ज्ञानी कहते है जो पास मे है उसे दूर कर रहे हो और दूर समझ कर उसे लेने जाते हो, पर निराशा ही हाथ लगती है। कबीर कहते है वह तो घट मे ही छिपा हुआ है उसे बाहर कहां ढूढते हो? मछली पानी मे रह कर भी प्यासी रहती है यह कितने आश्चर्य की बात है?

आवश्यकता है आज दृष्टि ठीक करने की। अनादि काल से दृष्टि विपरीत हुई पड़ी है। वह पर वस्तु को ही ग्रहण कर रही है। उस ओर से उसे हटाओं और स्व की तरफ उन्मुख करो। तभी सासरिक बंधनों से मुक्ति मिल सकेगी।

सहु साधन बंधन थया रह्यो न कोई उपाय।
सत साधन समज्यो नहि त्यां बंधन शुं जाय।

सत्साधन के अभाव में बंधनों से विमुक्ति कैसे हो सकेगी? भ्रांति को मिटाने के लिये सद्गुरु के पास जाना चाहिये और उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये। इसीसे ज्ञान मिलेगा और आत्म तत्व की पहचान हो सकेगी। मार्ग बताने वाले तो सद्गुरु ही है। उन पर पूर्ण श्रद्धा रख कर ही हम आत्म तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

जंगल मे मोटर चली जा रही है, उसमें कई वयोवृद्ध और बुद्धिमान आदमी बैठे है, पर मोटर रास्ता भूल गई है। उसे अपना गन्तव्य मार्ग दिखाई नही देता। इतने में सामने से एक १२ वर्ष का लड़का दिखाई देता है। मोटर में बैठे हुए आदमी सब बड़े हैं और लडका छोटा, पर वे मार्ग भूल गये हैं जब कि लडका मार्ग जानता है अतः उससे पूछने में शर्म क्यों आनी चाहिये? उन्होंने उससे रास्ता पूछा। लडका साथ चल कर रास्ता बताता है और मोटर को सही

रास्ते पर लाता है। अतः अज्ञान अवस्था मे जो ज्ञानी है उसका विश्वास करना ही चाहिये। जिसने वह मार्ग देखा है वही यह कह सकता है कि यह मार्ग सच्चा है। उस पर विश्वास रखोगे तभी वहा तक पहुंच सकोगे। भगवान के मार्ग पर भी ऐसा ही विश्वास करना होगा, अन्यथा विश्वास हीन क्रियाऐ करने से तो एक इच भी उस मार्ग पर आगे नही बढ सकोगे। सच्ची श्रद्धा होने पर ही आत्मा का कल्याण होता है।

भगवान पर विश्वास रखो। उनके सिद्धान्तों पर विश्वास रखो। उनमे शंका-कुशका मत करो। गुरुओ से उनको समझो और फिर भी समझ मे न आवे तो यही कहो कि आपने जो कहा है वही सच्चा है। उनमे सन्देह न करना ही सभी दुखो से मुक्त होने का राज मार्ग है।

मोक्ष अपनी आत्मा मे ही है। दूसरा कोई भी उसे लाकर देने वाला नही है। जो पुरुषार्थ करते है वही उसे प्राप्त भी करते है। लीली पीपल को भी घिसते घिसते वर्धमान पीपल वनाई जा सकती है तो आत्मा की शक्ति प्रकट क्यो नही की जा सकती? पुरुषार्थ द्वारा ज्ञान भी प्रकट हो सकता है और पूर्ण वन सकता है।

भगवान का ज्ञान तो पूर्ण ज्ञान था—केवल ज्ञान था। लेकिन उनका उपदेश श्रुतज्ञान कहा जाता है। अतः हमारा श्रुतज्ञान तो शुद्ध होना ही चाहिये। अगर हमारे मति और श्रुत दोनों ज्ञान सच्चे होगे तो वे अपने आप केवल ज्ञान को खीच लावेगे। सुधर्मा स्वामी का ज्ञान ऐसा ही शुद्ध ज्ञान था। उनमे और भी विशिष्ट गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. १८-७-६८

[१९]

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। उससे ही स्व समय और पर समय का ज्ञान होता है।

सम+य, सम—एक साथ, य—ज्ञान और चारित्र में परिणमन करना, समय कहा जाता है। जब जीव ज्ञान, दर्शन और चारित्र में परिणमन करता है तव वह स्व समय में कहा जाता है। लेकिन जव वह विषय—कपाय और इन्द्रियों मे परिणमन करता है तव वह पर समय में कहा जाता है। परभाव से संसार वढता है और स्वभाव से संसार घटता है। अतः स्वसमय में ही रहने का प्रयत्न करना चाहिये। हेय, ज्ञेय और उपादेय को समझकर चलना चाहिये। यह सब विवेक से ही

जाना जा सकता है। विवेक को दसवा निधान कहा गया है। धर्म भी विवेक में ही है। वह कहीं बाहर नही पैदा होता है—

धर्म वाडीये न नीपजे, धर्म हाटे न वेचाय।
धर्म विवेके नीपजे जो करीये तो थाय।

आचारांग सूत्र में भी कहा है कि

नेव गामे नेव रण्णे, गामे अदुवा रण्णे,
धम्म माथाणह पवेदितं, माहणेण मतिमया।

गाव मे हो या जंगल में हो, जहा विवेक है वही धर्म भी है। स्व में आना और पर को छोडना ही विवेक है।

मनुष्य भी तीन तरह के कहे गये हैं।-

१ **वृत्ति (इच्छा) आधीन**
२ **विचार आधीन**
३ **विवेक शील**

१ वृति—कुछ लोग ऐसे होते है जो इच्छाओं के दास बने रहते है। सेठ, राजा, नेता आदि वनने की इच्छा करते रहते है। लेकिन इच्छाएँ भी कभी किसी की पूरी हुई है? लवण समुद्र में १४ लाख ५६ हजार ९० नदिया गिरती है, फिर भी वह भराता नही है। इच्छाऐ भी इसी तरह पूरो नही होती है। इच्छाहु आकास समा अणतिया, इच्छाऐ आकाश के समान अनत हैं, एक पूरो होती है कि दूसरी इच्छा खडी हो जाती है। भोग भोगने मे भी दुख है और भोग तृप्ति न होने पर भी दुख होता है। अत. यह वेग जो ससार की तरफ चल रहा है उसे मोड कर सवर की तरफ कर दिया जाय तो उसकी गति प्रगति मे वदल जायगी। गति और प्रगति मे यही अन्तर है। गति चारो दिशाओ मे होती है जव कि प्रगति निश्चित दिशा में होती है। लक्ष्य को तरफ चलने से ही मार्ग की दूरी कम होती है और साधना की भी सिद्धि होती है—

ज्यांलगी आतमा तत्वचिंत्यो नहि त्यां लगी साधना सर्व काची।
घाणीना बैलनो पंथ घटतो नथी, साधना समजणे थाय साची।

बैल घांणी मे जुता रहता है। दिन और रात चलता रहता है, पर रहता वही का वही है। ऐसी ही स्थिति आपकी भी तो नही हो रही है? सामायिक और प्रतिक्रमण करते हुए भी अगर आप आगे नही वढ सकें तो यह प्रगति थोडे ही कही जा सकती है?

भोगो का सुख तो क्षणिक है, शाश्वत सुख तो आत्माका है। फिर आप किसको प्राप्त करना चाह रहे है? चाहते तो सभी शाश्वत सुख को ही है, पर प्रयत्न हमारा क्षणिक सुख के लिये हो रहा है। सारी दौड–धूप उसी के लिये की जा रही है। अतः उस मार्गको बदलना होगा। स्व की पहचान करनी होगी और परको छोडना होगा। आत्मा की शक्ति अपूर्व है। सत्ता में तो सिद्ध अवस्था मौजूद है, आवश्यकता है उसे प्रकट करने की। आज आत्मा अपना घर ही भूल गया है। जब वह अपने घर में आवेगा तभी उसका उत्थान संभव है अन्यथा सांसारिक सुखों मे तो दुख ही दुख भरा पडा है।

आप मकान वनाते हो तो उसका पाया (नीव) कितना गहरा करते हो। ताकि उस पर ७ मंजिल भी चढाई जा सके। लेकिन क्या कभी आपने यह भी सोचा है कि आपका जीवन का पाया कितना गहरा है?

सात मालना महेल चणाव्या.
फरनीचर छे न्यारूं,
सात वेंतनो साथरो तारो.
बीजुं बधुं परवारूं, वधारे तेमां शुं तारूं ?

सात मजिल का महल बनाया है, उसमे नई फैशन का फरनीचर भी लगाया है, लेकिन वह क्या शाश्वत रहने वाला है? एकदिन मिट जाने वाला है। लेकिन आत्मा का घर तो अविनाशी है। मोक्ष अनत सुखो का खजाना है। उसको प्राप्त करो। कर्मो के फंदो से वचो, नही तो वे नरक, तिर्यच और निगोद जैसे भयंकर दुखो मे डाल देगे। जो भाव तुम्हारी गति विगाडे दे और दुखो का समूह खडा कर दे, उस विभाव को दूर करो। पर समय मे न जाना और स्व समय मे टिकने से ही आत्मा का उत्थान होता है।

कर्मो की गति वड़ी विचित्र है। वह एक दिन मे करोडपति को भिखारी और भिखारी को करोडपति वना देता है। कर्म का सिनेमा कभी वंद नही रहता, चलता ही रहता है। अपना ही जीवन आप देखिये, पहले क्या थे, और अव कैसे है? भविष्य मे क्या हो जायगे इसका पता नही है। अतः धर्म का आचरण करो, हृदय मे उसे उतारो, दृढ श्रद्धा पैदा करो–प्रगति की शुरुआत होने लग जायगी। गति को प्रगति मे वदल देना ही आत्मोत्थान की निशानी है।

आपको कहा जाना है? मोक्ष मे जाना है न? तो उसके मार्ग पर चलना चाहिये। आप तो चल रहे है दुनिया के मार्ग पर। उससे मोक्ष कैसे मिल सकेगा? अतः रास्ता वदलिये और सही मार्ग पर कदम वढाइये, एक दिन आप भी मोक्ष तक अवश्य पहुंच जायंगे।

२ कुछ लोग ऐसे भी है जो विचार ही विचार किया करते है। सन्त महात्मा जो कहते है वह बात तो सच्ची लगती है, पर क्या करें? कुछ हो नही पाता है। यो वह विचार तक ही सीमित रह जाते है, कर कुछ नही सकते।

३ कुछ मनुष्य ऐसे होते है जो विवेक शील होते है— हेय–ज्ञेय और उपादेय को समझ कर चलते है। वे एक दिन अपनी मंजिल पर अवश्य पहुंच जाते है —

धीरे २ पंथ कपाशे आवशे कोई दिन आरो,
ते दिन मलशे साचो किनारो, त्यां लगी जावुं दूर मुसाफिर
जावुं छे तारे दूर–दूर काल करे मजबूर . . . मुसाफिर जावुं । . . .

रास्ता दूर है, पर धीरे धीरे वह दूरी कम होगी ही। चले हैं तो मार्ग कम होने वाला ही है। दिशा तय हो गई है, उस पर चलना प्रगति है। प्रगति हुई कि गति मिट जाती है–चक्कर मिट जाता है। संसार का मार्ग अलग है और मोक्ष का मार्ग अलग है। दोनो भिन्न भिन्न है। आपको किस मार्ग पर चलना है? जिस पर चलना है उसी का मार्ग पकडना चाहिये। मोक्षकी इच्छा करते हुए संसार के मार्ग पर चलोगे तो मोक्ष कहा से मिल सकेगा?

भगवान के कथन पर विश्वास रखो। दुनियादारी में आप औरत, नौकर और व्यापारी पर विश्वास कर लेते हो तो भगवान के सिद्धान्तो पर विश्वास क्यो नही करते? उन पर विश्वास कर चलोगे तो आपको अपनी मंजिल अवश्य मिल जायगी। सुखी होने का यही मार्ग है। ध्येय की तरफ बढना प्रगति है। नही तो स्थिति घांणी के बैल की तरह ही रहेगी।

मन बड़ा चचल है। उसकी गति कभी बंद नही रहती। उसे नियंत्रित करो, एक ही दिशा में उसे मोडो, विकारी भावो मे जाने से उसे अटकाओ और ज्ञान–दर्शन–चारित्र–समता, सत्य एवं विवेक की पटरी पर उसे चलाओ तो आपका विकास निश्चित है। पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान मे आना प्रगति है। अभवि जीव भी भटकते २ एक इंद्रिय से पंचेन्द्रिय तक आ जाता है। अनंत-काल तक जीव निगोद में रहते है। एक शरीर आश्रित अनेक जीव रहते है। ऐसी निगोद अवस्था ज्ञान की विराधना करने से ही प्राप्त होती है। अतःज्ञान की विराधना मत करो। इन्द्रियों के वशीभूत मत वनो, विचार ही विचार मत करो, विवेकी वनो और स्व मे स्थिर हो जाओ, प्रगति अवश्य होगी। जीव जैसे ही पर भाव से विरक्त वनता है वैसे ही उसकी प्रगति शुरु हो जाती है। गति का अटकना ही प्रगति का शुरू होना है।

वम्वई में दंगा हुआ। लोग अपने अपने देश मे भगने लगे। एक भाई दिल्ली

रवाना हुआ। उसकी औरत कहती है—वर्षों से हम वम्बई मे ही रह रहे है, लाखो रुपये कमाये है उसे छोडकर आप दिल्ली जा रहे है, वहा क्या करेगें? वहा कौन अपना होगा? फिर भी आप खुश क्यो है? मुझे तो वडा दुख हो रहा है।

भाई कहता है—तू देखना तो सही कि वहां मेरा कैसा स्वागत होता है? कितने ही यार-दोस्त मुझे स्टेशन पर लेने आवेगें। मैंने यहा रहते हुए भी उनकी सहायता की है—मै अपने देश को भूला नही था। जो भी आता था सब की यथायोग्य सेवा करने से चूकता नही था अतः मुझे वहा जाने में भी खुशी ही हो रही है।

पास मे ही एक व्यक्ति और वैठा था, वह भी दिल्ली जा रहा था, पर उदास होकर वैठा था। उसने कहा—जाना तो मुझे भी दिल्ली है, पर मैं यह सोच कर दुखी हो रहा हूं कि वहां मैं किसके यहां जाऊंगा! जो मेरे है उनको भी मैंने कभी याद नही किया था। सहायता पहुंचाना तो दूर, वम्वई आने पर मैं उनसे वोलता तक नही था! ऐसी स्थिति मे वे मेरी मदद कैसे कर सकेगे?

उसी डिब्बे मे दो पुलिस भी थे जो एक चोर को दिल्ली जेल में रखने के लिये ले जा रहे थे। यो तीनो दिल्ली जा रहे थे, पर हालत तीनों की अलग अलग थी।

आप भी सोचिये, आपको कहा जाना है? और उसके लिये क्या तैयारी कर रहे है?

वृत्ति (इच्छा) के आधीन जन की स्थिति चोर जैसी है। उसे जेल के सीखचों मे ही वद रहना पडेगा। इच्छाओं के वशीभूत होकर लोग महा भयंकर कर्मो का उपार्जन कर लेते है। टिकिट लेकर आज लोग जूनागढ मे यह देखने जाते है कि सिह पाडे को कैसे मारता है? लेकिन यह भी सोचा है कि उनसे कर्म कैसे वंधेगें? घोर निकाचित कर्म ही उनसे वंधते है।

पाडा वधा हुआ है और शेर खुला हुआ। वह जब पाडे को मारता है तब क्या दशा होती होगी? यो हंसते-खेलते जो जीव पाप का भारा बांधते हैं उन्हें चोर की तरह नरक के सीखचों मे ही वंद होना पडता है। आप भी क्या कर रहे हैं? कहीं चोर जैसी स्थिति तो होने वाली नहीं है?

दूसरा वर्ग भिखारी का है, जिसने कभी अपने भाई-बन्धुओं की मदद नहीं की। वह भी दुखी है।

तीसरा वर्ग [illegible] मनुष्यों का है—जो सुख और दुख में [illegible]

नही छोड़ते है। जो अपना और दूसरों का भी हित देखते है। वे सर्वत्र मान सम्पादन करते है।

एक दिन शरीर मे भी ऐसा ही हुल्लड (दगा) होने वाला है। वृद्धावस्था आई कि बीमारी हमला कर देगी और शरीर में दंगा मच जायगा। परलोक जाने की तैयारी करनी पडेगी। तब पछताने का मौका न आवे इसके लिये विवेक का सहारा लो। जो जिन्दगी बच गई है उसी को सफल बना लो तो आपको अन्त मे पछताना नही पड़ेगा। लोभ मे मत पडे रहो, वह कभी मिटने वाला नहीं है

लाभ थायने लोभ वधी जावे
लाख मां थी बे लाख क्यारे थाये।
आशा तृष्णा बलवंत ऐनो आवे नहि अंत
मोह ममताना हिंचके झुल्या झुल्या दुख मां डुल्यारे
डूल्या, तमे भक्ति ना पंथडा भुल्या—हाय— हाय हाय आखा जीवन मां
हाय—हाय —हाय—।

ज्ञानी कहते है देश से परदेश में आये तब साथ में क्या लाये थे? केवल लौटा और रस्सी लेकर ही आये थे न? लेकिन आज कितना हो गया है? किसीने नौकरी की, किसीने धंधा किया और रुपये कमाये, हजारो—लाखों कमा लिये——अब तो सन्तोष करो। जिसके हृदय मे धर्म के प्रति प्रेम नही है उसे सन्तोष कहा से होगा?

लोभ ने आदमी को बेभान कर दिया है। उसे व्याख्यान सुनने की भी फुरसत नही मिलती है। मोह और ममता की भूख इतनी बढी हुई है कि वह धर्म के प्रति आकर्षित भी होने नही देती है। धन बढ़ता है उतना ही लोभ भी बढता है। लेकिन याद रखिये धन एक दिन चला जायगा। वह टिकने वाला नही है। वह आता है तो दुखी करता है और जाता है तो महादुखी करता है। अतः उसके पीछे मत पडो। सन्तोष ही सच्चा धन है, वही सुख भी देता है——

सन्तोषी सदा सुखी।
असन्तोषी महा दुखी।

लोग तो पैसो में सुख समझते है, पर पैसे वालो को तो नीद तक नही आती है। रात की २ बज जाती है पर आखों में नीद नहीं आती। तो आप स्वाध्याय क्यों नही करते? नमस्कार मंत्र का जाप ही कर लिया करो तो कितना अच्छा रहे? भगवान ने तो १२॥ वर्ष तक नीद नही निकाली थी और आपको भी नीद नही आती है तो आप भी भगवान की तपस्या का आसानी से अनुकरण कर सकते है। पर ऐसा कौन कर सकता है? जो जड से नाता तोड चुका होगा

है वही धर्म—कर्म मे मन लगा सकता है, धर्माचरण कर सकता है। जड सुख की कामना करने वाले आत्म सुख की पहचान नही कर सकते। जिन्हे तुम सुखी समझ रहे हो वे तो महा दुखी है। सुख धन मे नही, धर्म मे है—सन्तोष मे है। उसका पालन करो तभी वह प्राप्त हो सकेगा।

स्व समय में आना और पर समय से निवृति लेना ही सुख मे आने का राजमार्ग है।

ऐसी श्रद्धा रखनेवाला ही जीव अपना कल्याण कर सकेगा।

ता. १९–७–६८

[२०]

सुधर्मा स्वामी भगवान के ५ वे गणधर थे, जो कि भगवान के पाट पर विराजे। वे ही भगवान की वाणी के सर्व प्रथम उपदेशक है। वे अपने योग्य शिष्य जंबू स्वामी को उपदेश दे रहे है। वर्षा पहाड पर होती है तो बेकार जाती है लेकिन वही जब उपजाऊ भूमि पर होती है तो फलद्रुप होती है। इसी प्रकार सुयोग्य शिष्य हो तो गुरु की ज्ञान—गंगा भी फलदायी होती है। खेत मे पानी होने पर बीज बोया जाता है तो वह अनेक गुणा फल देता है, इसी प्रकार योग्य शिष्य को दिया गया ज्ञान भी अनेक जीवो का उद्धार कर देता है। भगवान की वाणी सुधर्मा स्वामीने सुनी और वही हम को सुनाई। भगवान की वाणी कैसी है?

वीर तारी वाणी अमृतनी धारा।
हे री रमण पी रह्या प्रेमे पीनारा
रे नमुं छु तारा त्याग ने रे।
वीर तारा शासनना मूल्य मोंघा रे, नमुं छुं...
सत्य संयम नी केडी नव चुक्या
हेरी मोटा भूप तारा चरणो मां झुक्या रे, नमुं छुं...

महावीर की वाणी पीयूषधारा थी—उसका जिसने पान किया वे अमर हो गये, संसार सागर से तिर गये। परन्तु जिसको इसमें अचल श्रद्धा हो जाती है वे भी अपना संसार सीमित कर लेते हैं, एक दिन उनका भी निस्तार निश्चित हो जाता है। यही सम्यक् दर्शन है। देव गुरु और धर्म पर श्रद्धा रखना व्यवहार सम्यक् दर्शन है जब कि तदनुसार जानकर अनुभव करना निश्चय सम्यक् दर्शन है।

धुआं से [illegible] का दर्शन कर कर उसका अनुमान करना [illegible] ज्ञान है लेकिन [illegible] अनुभव कर जानना निश्चय ज्ञान कहा जाता है। [illegible] [illegible] कहा जाता है।

भगवान का ज्ञान ऐसा ही पूर्ण ज्ञान था। उन्होने पहले जाना और फिर उपदेश किया अतः वह हृदय को स्पर्श करने वाला है—। सूयगडाग में कहा है—

सेवारिया इत्थि सराई भत्तं, उवहाणवं दुक्खयट्ठयाए।

लोगं विदिता आरं पारंच, सव्वं पभूवारियं सव्ववारं।

उन्होंने अपने जीवनमे अहिंसा, सत्य, आचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन किया और तदनंतर दुनिया को उपदेश दिया। भक्तामर स्तोत्र मे भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है ।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांग नाभिः
नीतमनागपि मनोन विकार मार्गम्।
कल्पांतकाल मरुता चलिता चलेन
कि मंदराद्रि शिखरं चलितं कदाचित्।

भगवान की स्तुति करते हुए भक्त कहता है—इसमें आश्चर्य की क्या बात है? भगवान के पास स्वर्ग से देवागनाऐ सज—धज कर आती थी, फिर भी उनके मन मे विकार भाव पैदा नही होता था। मन की एक पर्याय भी चलायमान नहीं होती थी। कितना ब्रह्मचर्य पर काबू रहा होगा उनका? ब्रह्मचर्य स्थिर होता है तभी मन स्थिर बनता है। आज कल तो सिनेमा और फोटू देख कर भी मन चलायमान हो जाता है। लेकिन भगवान का मन देवांगनाओं को देख कर भी चलायमान नही होता। आप उन्ही के पुत्र है। आपका ब्रह्मचर्य भी इतना ही प्रबल है क्या? चाहे जैसा प्रसंग क्यों न आवे, सौटच का सोना बने रहने की तैयारी आपकी न होगी तब तक आप भगवान के पुत्र कहलाने के हकदार कैसे बन सकते है?

भगवान के गुण ऐसे ही नही गाये जाते है। जब वे पूर्ण बनते है तभी उन्हे भगवान कहा जाता है। प्रलयकाल मे जब हवा चलती है तो उससे सारी दुनिया मे उथल—पुथल हो जाती है। परन्तु उस समय भी मेरु पर्वत अविचल रहता है, वह चलायमान नही होता है। इसी तरह भगवान भी अविचल रहते है। देवागनाओ का रूप लावण्य देख कर भी उनके मन मे विकार नही आते, क्योकि उन्होने विकारो को ही जीत लिया होता है। सुधर्मास्वामी ऐसे ही भगवान के शिष्य है। उनकी वाणी भी भगवान की ही वाणी है। वे जिन नही पर जिन सरीखे ही थे।

वाणी तो घणेरी पण वीतराग तुल्य नाहीं।

वाणी तो दुनिया मे बहुत है, पर वीतराग वाणी के समान अन्य कोई वाणी नही है।

नीबू को देखने से भी मुह में पानी छूटने लगता है। लेकिन उसे चूसने में जो स्वाद अनुभव होता है उसमें और देखने मे वड़ा अन्तर होता है। इसी तरह जो वाणी सुनता है और दूसरा सुनकर अनुभव भी करता है उन दोनों का रस भी अलग अलग होता है। जो अनुभव करता है उसका मजा तो वही जानता है।

जब तक ज्ञान अधूरा होता है तब तक ही उसमें अहकार की उछल कूद होती रहती है–अधूरा घडा ही छलकाता रहता है। लेकिन जब ज्ञान पूर्ण बन जाता है तब तो वह अखंड आनद का खजाना बन जाता है।

जहा ज्ञान होता है, जिज्ञासु वहा अपने आप पहुच ही जाते है। शक्कर चीटियो को आमंत्रण नही देती, वे तो विना बुलाये ही शक्कर के पास आ जाती है। इसी तरह गुण पिपासु भी गुणीजन के पास अपने आप आ जाते हैं।

मलीने कीडियो ज्यारे ढगलो खांडनो जोता
पछी बीजा पदार्थो ए नथी गमता –नथी गमता।
दीपक नी ज्योतमां ज्यारे पतंगियों भान भूले छे।
बीजा–अे धम पछाडाओ नथी गमता-नथी गमता–आत्मानु–
आत्मानुं भान थाता भोगो नथी गमता–नथी गमता।

शक्कर को छोडकर जैसे चीटिया दूसरे पदार्थ की तरफ नही जाती है, वैसे ही जिसे आत्मा के गुणो– सत्य, सरलता, विवेक, विनय–से प्रेम हो गया है वे विषय कषाय की तरफ नही जाते हैं। भगवान ने इन्हीं गुणो को अपनाया था इसीलिये उनके चरणों मे वडे वडे राजा–महाराज और चक्रवर्ती भी नमस्कार करते थे। यह त्याग का ही महत्व था। लेकिन आज तो आप भोग की ओर जा रहे है, भोग की इच्छा कर रहे है। यह कैसी बात है ?

पतंगा दीपक की लौ देखता है तो उसमें अपने शरीर की आहुति दे देता है। शिष्य भी गुरु के सामने अपने शरीर को समर्पित कर देता है। आणाकांक्षी शिष्य गुरु की सेवा मे सतत तैयार रहता है। आज्ञांकित और आणाकांक्षी में तो थोडा भेद होता है। आज्ञांकित –आज्ञा में रहने वाला–के हृदय में अरुचि की भावना भी पैदा हो सकती है, जबकि आणाकांक्षी मे अरुचि होती ही नही है। वहा तो गुरु की रुचि ही अपनी रुचि होती है। सारा जीवन ही गुरु चरणों में अर्पित कर दिया जाता है। इसीलिये कहा है –

आणाकांक्षी पंडिए

आज्ञाकारी शिष्य ही पंडित होता है।

सुधर्मा स्वामी और जम्बूस्वामी भी ऐसे ही गुरु शिष्य थे। दोनों ही उत्तम ज्ञानी थे। गुरु शिष्य पाकर खुश थे तो शिष्य गुरु पाकर खुश था। दोनों ही [illegible]

भगवान का ज्ञान ऐसा ही पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने पहले जाना और फिर उपदेश किया अतः वह हृदय को स्पर्श करने वाला है–। सूयगडाग मे कहा है–

सेवारिया इत्थि सराई भत्तं, उवहाणवं दुक्खयट्ठयाए।

लोगं विदिता आरं पारंच, सव्वं पभूवारियं सव्ववारं।

उन्होने अपने जीवनमें अहिंसा, सत्य, आचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन किया और तदनंतर दुनिया को उपदेश दिया। भक्तामर स्तोत्र मे भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांग नाभिः

नीतमनागपि मनोन विकार मार्गम्।

कल्पांतकाल मरुता चलिता चलेन

कि मंदराद्रि शिखरं चलितं कदाचित्।

भगवान की स्तुति करते हुए भक्त कहता है–इसमें आश्चर्य की क्या बात है? भगवान के पास स्वर्ग से देवांगनाऐ सज–धज कर आती थी, फिर भी उनके मन में विकार भाव पैदा नही होता था। मन की एक पर्याय भी चलायमान नहीं होती थी। कितना ब्रह्मचर्य पर काबू रहा होगा उनका? ब्रह्मचर्य स्थिर होता है तभी मन स्थिर बनता है। आज कल तो सिनेमा और फोटू देख कर भी मन चलायमान हो जाता है। लेकिन भगवान का मन देवांगनाओं को देख कर भी चलायमान नही होता। आप उन्ही के पुत्र हैं। आपका ब्रह्मचर्य भी इतना ही प्रबल है क्या? चाहे जैसा प्रसंग क्यो न आवे, सौटच का सोना बने रहने की तैयारी आपकी न होगी तब तक आप भगवान के पुत्र कहलाने के हकदार कैसे बन सकते है?

भगवान के गुण ऐसे ही नही गाये जाते है। जब वे पूर्ण बनते है तभी उन्हें भगवान कहा जाता है। प्रलयकाल मे जब हवा चलती है तो उससे सारी दुनिया मे उथल–पुथल हो जाती है। परन्तु उस समय भी मेरु पर्वत अविचल रहता है, वह चलायमान नही होता है। इसी तरह भगवान भी अविचल रहते है। देवागनाओ का रूप लावण्य देख कर भी उनके मन मे विकार नही आते, क्योकि उन्होने विकारो को ही जीत लिया होता है। सुधर्मास्वामी ऐसे ही भगवान के शिष्य है। उनकी वाणी भी भगवान की ही वाणी है। वे जिन नही पर जिन सरीखे ही थे।

वाणी तो घणेरी पण वीतराग तुल्य नाहीं।

वाणी तो दुनिया मे बहुत है, पर वीतराग वाणी के समान अन्य कोई वाणी नही है।

वडी अपूर्व थी। गुरु शिष्य का ऐसा सुदर जोडा दुनिया के इतिहास मे कही भी दिखाई नहीं पड़ता।

आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं ते साचा गुरु होय।
बाकी कुलगुरु कल्पना, आत्मार्थी नही जोय।

जहा आत्म ज्ञान होता है वही मुनि पना रहता है। ५ समिति और ३ गुप्ति के लिये जिसने अपना जीवन अर्पित कर दिया, वहीं सच्चा गुरु होता है। लेकिन आज तो गुरुओ की भी वाढ आ गई है। हर एक अपनी २ मान्यता का दम भरता है और अपना चेला वनाने की फिराक मे रहता है।

एक वार एक औरत किसी साधु के पास गई। साधुने उसके गले मे अपनी कंठी वाध दी। औरत गरीव थी उसके पास केवल आठ आने के पैसे थे। साधु ने वे ही दक्षिणा मे ले लिये। साधु ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—

पुत्रवान भव, धनवान भव, आयुष्मान भव। औरत समझी नही। वोली—यह क्या कहा है आपने? साधुने कहा—मै तुझे पुत्रवान और धनवान होने का आशीर्वाद दे रहा हूं। औरत नमस्कार कर अपने घर चली गई। चार महीने वाद फिर वह आई और साधु से वोली—तुमने तो मुझे वहुत से आशीर्वाद दिये थे, परन्तु उनमे से एक भी सच नही हुआ। ऐसा झूठा आशीर्वाद देते हो? लो अपनी यह कंठी और ला ओ मेरी अठन्नी।

वंधुओ! कहने का मतलब इतना ही है कि समकित भी हवा मे उडने वाली चीज नही है। वह तो श्रद्धा का विपय है, आत्मा का गुण है। सम्यग्ज्ञान मे श्रद्धा होती है तभी सम्यगदर्शन होता है। सातप्रकृति का सम्पूर्ण क्षय होने पर ही क्षायिक समकित आती है, जो फिर नष्ट नही होती है। उसे जैन परिभापा मे सादी अनंत कहा जाता है।

सात प्रकृति का उपशम होने पर जो समकित आती है उसे उपशम समकित कहते है। उसकी स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की होती है। उपशम समकिती जीव मिथ्यात्व मे भी जा सकता है। क्षयोपशम समकित वाला जीव मिथ्यात्व की प्रकृति को उदय मे नही आने देता है। प्रदेश उदय मे लाकर नष्ट कर देता है। वह क्षयोपशम समकित कही जाती है। इसकी स्थिति ६६ सागरोपम की कही गई है।

ऐसा सम्यग् दर्शन अपने पुरुपार्थ से ही होता है, किसी के कान मे फूंक मारने से या गले में कंठी डाल देने मात्र से नही हो जाता।

सम्यग्दर्शन स्व की चीज है, पर की नही। जव यह होता है तभी ज्ञान भी सम्यग् कहा जाता है। सच्ची श्रद्धा होने पर ही ज्ञान भी शुद्ध वनता है। सम्यग् दर्शन जव आत्मामे पैदा हो जाता है तो आठ कर्मो मे से आयुष्य कर्म को

छोडकर शेष ७ कर्मो की प्रकृतिया सीमित होकर अंतो क्रोडाक्रोडी सागरोपम की हो जाती है। सम्यग्दर्शन की कितनी बडी महिमा है यह ?

सम्यग्दर्शन के अभाव मे ही लोग आज अनेको देवी –देवताओ के यहा मारे-मारे फिरते है। लेकिन क्या वे तुम्हारो रक्षा कर सकेगे ? द्वारका जली तो कौन देवता उसे बचा सका ? जब कि द्वारका तो देवताओने ही बसाई थी ? पाप का उदय होता है तो कोई उसे बचा नही सकता। शभू जैसा चक्रवर्ती भी समुद्र मे डूब गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती की सेवा मे १६ हजार देव हाजिर रहते थे, फिर भी रोग फैला तो कोई उसे बचा नही सका। अतः शरीर की क्या हिफाजत कर रहे हो। वह तो भस्म हो जाने वाला है। रोगो का घर है। आत्मा की संभाल करो। साथ तो आत्मा ही आनेवाला है।

क्या आपने कभी सोचा है कि शरीर मे रोग क्यो होते है ? यह हमारे पापो का ही फल है। हिंसा ही दुख–दर्द की जननी है। दूसरे की हिंसा करना–छह काय की हिंसा करना–इसीसे शरीरमे बीमारी का दर्द पैदा होता है। यह शरीर तुम्हारा मित्र नही दुश्मन है, फिर क्यो इसकी दवा कराते हो ? रोग आता है तो भगवान की याद आती है, सहज पाप से छुटकारा पाने का मौका मिलता है तो उसका उपचार क्यो कराते हो ?

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने रोग पैदा होते ही दीक्षा ग्रहण कर ली थी। उनका उपचार भी नही कराया। रोग भी एक नही, १६ रोग एक साथ पैदा हुए थे। लेकिन उन्होने दीक्षा धारण कर ली और उन रोगो की वेदना को ७०० वर्ष तक सहन करते रहे। उनको तो भावना से ऐसी लब्धियाँ प्राप्त हो गई थी कि वे अपने थूक से भी उन रोगो को मिटा सकते थे, पर उन्होने वैसा नही किया और उनकी वेदना को समभाव पूर्वक सहन करते रहे। महान वेदना सहन करते हुए उन्होने अपने कर्मो की महा निर्जरा कर दी। अल्पवेदना और महानिर्जरा माता मरुदेवी को हुई थी जिसने दो घडी मे ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया था और वह भी हाथी पर बैठे हुए। सर्वार्थसिद्ध के देवताओको अल्प वेदना और अल्प निर्जरा होती है। महावेदना और अल्पनिर्जरा सातवी नरक के जीवो को होती है। सनत्कुमार चक्रवर्ती और गजसुकुमाल की वेदना महावेदना थी और निर्जरा भी महानिर्जरा थी।

रोग वेदनीय कर्म है, वह कडवा लगता है। शरीर प्रिय होने से रोग अप्रिय लगता है। लेकिन जिस दिन शरीर का राग भाव नष्ट हो जाता है उस दिन से रोग भी अप्रिय नही लगता है। गजसुकुमाल अग्नि मे जल रहे थे, पर भगवानने [illegible]–

सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिनिव्वायन्ति

गजसुकुमाल का आत्मा [illegible] हो रहा है, कर्मो से [illegible]

बडी अपूर्व थी। गुरु शिष्य का ऐसा सुंदर जोडा दुनिया के इतिहास मे कही भी दिखाई नहीं पडता।

आत्माज्ञान त्यां मुनिपणुं ते साचा गुरु होय।
बाकी कुलगुरु कल्पना, आत्मार्थी नही जोय।

जहा आत्म ज्ञान होता है वही मुनि पना रहता है। ५ समिति और ३ गुप्ति के लिये जिसने अपना जीवन अर्पित कर दिया, वहीं सच्चा गुरु होता है। लेकिन आज तो गुरुओ की भी वाढ आ गई है। हर एक अपनी २ मान्यता का दम भरता है और अपना चेला वनाने की फिराक में रहता है।

एक बार एक औरत किसी साधु के पास गई। साधुने उसके गले में अपनी कंठी बांध दी। औरत गरीव थी उसके पास केवल आठ आने के पैसे थे। साधु ने वे ही दक्षिणा में ले लिये। साधु ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा——

पुत्रवान भव, धनवान भव, आयुष्मान भव। औरत समझी नही। बोली–यह क्या कहा है आपने? साधुने कहा–मैं तुझे पुत्रवान और धनवान होने का आशीर्वाद दे रहा हूं। औरत नमस्कार कर अपने घर चली गई। चार महीने बाद फिर वह आई और साधु से बोली–तुमने तो मुझे वहुत से आशीर्वाद दिये थे, परन्तु उनमे से एक भी सच नही हुआ। ऐसा झूठा आशीर्वाद देते हो? लो अपनी यह कठी और ला ओ मेरी अठन्नी।

वधुओ! कहने का मतलव इतना ही है कि समकित भी हवा मे उडने वाली चीज नही है। वह तो श्रद्धा का विषय है, आत्मा का गुण है। सम्यग्ज्ञान मे श्रद्धा होती है तभी सम्यगदर्शन होता है। सातप्रकृति का सम्पूर्ण क्षय होने पर ही क्षायिक समकित आती है, जो फिर नष्ट नही होती है। उसे जैन परिभाषा मे सादी अनत कहा जाता है।

सात प्रकृति का उपशम होने पर जो समकित आती है उसे उपशम समकित कहते है। उसकी स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त की होती है। उपशम समकिती जीव मिथ्यात्व मे भी जा सकता है। क्षयोपशम समकित वाला जीव मिथ्यात्व की प्रकृति को उदय मे नही आने देता है। प्रदेश उदय मे लाकर नष्ट कर देता है। वह क्षयोपशम समकित कही जाती है। इसकी स्थिति ६६ सागरोपम की कही गई है।

ऐसा सम्यग् दर्शन अपने पुरुषार्थ से ही होता है, किसी के कान मे फूंक मारने से या गले में कंठी डाल देने मात्र से नही हो जाता।

सम्यग्दर्शन स्व की चीज है, पर की नही। जव यह होता है तभी ज्ञान भी सम्यग् कहा जाता है। सच्ची श्रद्धा होने पर ही ज्ञान भी शुद्ध वनता है। सम्यग् दर्शन जव आत्मामे पैदा हो जाता है तो आठ कर्मो मे से आयुष्य कर्म को

छोडकर शेप ७ कर्मो की प्रकृतियां सीमित होकर अतो क्रोडाक्रोडी सागरोपम की हो जाती है। सम्यग्दर्शन की कितनी वडी महिमा है यह ?

सम्यग्दर्शन के अभाव मे ही लोग आज अनेको देवी –देवताओ के यहा मारे-मारे फिरते है। लेकिन क्या वे तुम्हारो रक्षा कर सकेगे ? द्वारका जली तो कौन देवता उसे वचा सका ? जव कि द्वारका तो देवताओने ही वसाई थी ? पाप का उदय होता है तो कोई उसे वचा नही सकता। शभू जैसा चक्रवर्ती भी समुद्र मे डूब गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती की सेवा में १६ हजार देव हाजिर रहते थे, फिर भी रोग फैला तो कोई उसे बचा नही सका। अतः शरीर की क्या हिफाजत कर रहे हो। वह तो भस्म हो जाने वाला है। रोगो का घर है। आत्मा की संभाल करो। साथ तो आत्मा ही आनेवाला है।

क्या आपने कभी सोचा है कि शरीर मे रोग क्यो होते है ? यह हमारे पापो का ही फल है। हिंसा ही दुख–दर्द की जननी है। दूसरे की हिंसा करना– छह काय की हिंसा करना–इसीसे शरीरमे बीमारी का दर्द पैदा होता है। यह शरीर तुम्हारा मित्र नही दुश्मन है, फिर क्यो इसकी दवा कराते हो ? रोग आता है तो भगवान की याद आती है, सहज पाप से छुटकारा पाने का मौका मिलता है तो उसका उपचार क्यो कराते हो ?

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने रोग पैदा होते ही दीक्षा ग्रहण कर ली थी। उनका उपचार भी नही कराया। रोग भी एक नही, १६ रोग एक साथ पैदा हुए थे। लेकिन उन्होंने दीक्षा धारण कर ली और उन रोगो की वेदना को ७०० वर्ष तक सहन करते रहे। उनको तो साधना से ऐसी लब्धियाँ प्राप्त हो गई थी कि वे अपने थूंक से भी उन रोगो को मिटा सकते थे, पर उन्होने वैसा नही किया और उनकी वेदना को समभाव पूर्वक सहन करते रहे। महान वेदना सहन करते हुए उन्होंने अपने कर्मो की महा निर्जरा कर दी। अल्पवेदना और महानिर्जरा माता मरुदेवी को हुई थी जिसने दो घडी मे ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया था और वह भी हाथी पर बैठे हुए। सर्वार्थसिद्ध के देवताओको अल्प वेदना और अल्प निर्जरा होती है। महावेदना और अल्पनिर्जरा सातवी नरक के जीवो को होती है। सनत्कुमार चक्रवर्ती और गजसुकुमाल की वेदना महावेदना थी और निर्जरा भी महानिर्जरा थी।

रोग वेदनीय कर्म है, वह कडवा लगता है। शरीर प्रिय होने से रोग अप्रिय लगता है। लेकिन जिस दिन शरीर का राग भाव नष्ट हो जाता है उस दिन से रोग भी अप्रिय नही लगता है। गजसुकुमाल अग्नि से जल रहे थे, पर भगवानने कहा–

सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिनिवायन्ति

गजसुकुमाल का आत्मा शिथिल हो रहा है, कर्मो को नष्ट कर

रहा है। कुछ साधक ऐसे भी थे जो सिह के मुह मे दवाये जा रहे थे फिर भी केवल ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। कुछ को समुद्र में फेंका जा रहा था, कुछ को घांणी में पीला जा रहा था, फिर भी वे केवल ज्ञान में रमण कर रहे थे। कहिये, उनकी भी पूर्व तैयारी कैसी रही होगी ? और आपकी तैयारी आज कैसी है ? जबतक शरीर के प्रति आसक्ति है तव तक आत्म कल्याण कभी भी संभव नहीं है।

सुधर्मा स्वामी श्रद्धाशील थे– दर्शन सम्पन्न थे। जिनका दर्शन शुद्ध होगा उनका ही उद्धार हो सकेगा।

शनिवार ता. २०–७–६८

(२१)

सुधर्मास्वामी ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम्पन्न थे। वे चार ज्ञान के धणी थे और क्षायिक समकित वाले थे। जहा श्रद्धा होती है वही ज्ञान भी शुद्ध होता है। जैन दर्शन मे समकित को वोधिवीज कहा गया है, जो शिवपद देने वाला है।

अबोहिं परियाणामि–
बोहीं उपसंपजामि–

जैनदर्शन में बोधिबीज समकित की वडी विशेषता है। उसके विना जीव अनंत काल तक दुनिया मे भटकता ही रहता है।

वस्तु अनंत धर्मात्मक है। एक वस्तु में अनेक धर्म होते है। आत्मा में भी अनंत गुण है :—भाव, विभाव, सत्य, विवेक विनय, चरित्र, तप, अगुरुलघुत्व आदि। इन अनन्त गुणो को धारण करने वाला जो धर्मी—आत्मा है, उसे जानना ही ज्ञान है। स्याद्वाद या अनेकान्तवाद उस ज्ञान को जानने की ही एक शैली है। इसे सप्तभगी भी कहते है। क्योंकि स्याद्वाद ७ तरह से वस्तु का ज्ञान करता है–

१ स्यात् अस्ति
२ स्यात् नास्ति
३ स्यात् अस्ति नास्ति
४ स्यात् अवक्तव्य
५ स्यात् अस्ति अवक्तव्य
६ स्यात् नास्ति अवक्तव्य
७ स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य

यह सप्तभंगी कही गई है जिसमे अनेक धर्मो का समावेश हो जाता है।

स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से आत्मा मे अस्ति है और पर द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव से आत्मा मे नास्ति है। जड मे जडकी अपेक्षा से अस्ति है, चैतन में

चेतन की अपेक्षा से अस्ति है दूसरे द्रव्य की अपेक्षा से नास्ति है। मै चैतन हूं, जड पर मै अपना अधिकार कैसे जता सकता हूं ? पेट में दुखता है या सिर दुखने लगता है तो आत्मा विह्वल हो उठता है। लेकिन ज्ञानी कहते है, जो पर है वह मेरा नही है, उससे तू दुखी क्यो होता है ? पर पर है और स्व स्व है यह भेद विज्ञान जो समझ लेता है वही ज्ञानी कहा जाता है।

आपका पडौसी लाख रुपया कमावे या लाख रुपया घुमावे, जैसे उसमें आपको रज या खुशी नही होती, वैसी ही हालत शरीर की भी समझनी चाहिये। शरीर भी पडौसी जैसा है, उसे अपना मत समझो। वह तो अनित्य और अपवित्र है—

इमं शरीरं अणिच्चं असुइ असुइ संभवं।
असासया वासमिणं दुक्खकेसाण भायणं।

यह शरीर तो अनित्य है — अशुचि मय— अपवित्र है। मृगा-पुत्र की मा कहती है— बेटा ! तू दीक्षा लेने की बात करता है, पर तेरा शरीर कोमल है— शीत ऊष्ण परिषह तू कैसे सहन कर सकेगा ? तेरा शरीर उस योग्य नही है। मां शरीर पैदा करती है अतः उसे उसी की चिन्ता रहती है। लेकिन मृगापुत्र कहता है—

असासए सरीरम्मि रइं नोवल भामहं।
पच्छा पुराव चइयव्वे, फेण बबुय सन्निभे।

यह शरीर अनित्य है, पानी के बुलबुले के समान है, कभी भी विश्वासघात कर बैठेगा— दगा देने वाला है। कोई भागीदार तुम्हारे साथ विश्वासघात कर चला जाय तो क्या दुबारा आप उसको रखना चाहेगे ? शरीर भी ऐसा ही विश्वास-घाती भागीदार है, उसका आप भरोसा क्यो कर रहे हो ?

शरीर की हिफाजत आप कितनी करते हो ? घी-दूध खिला कर उसे पुष्ट करते हो, वस्त्र भी कीमती पहनाते हो, पलग, कुर्सी, रेडियो और एअर कंडीसन भी रखते हो और उसकी सुविधा का खयाल करते हो, बहुमूल्य आभूषण-हीरा जवे-रात, सोने, चादी के धारण कराते हो, फिर भी याद रखो वह विश्वास योग्य नही है। कभी भी दगा दे देगा। अखबार हाथ मे रह जायगा, बनी हुई चाय पी भी नही सकोगे और शरीर जवाब दे देगा। इसलिये तो भगवानने कहा है—

इमं शरीरं अनिच्चं

यह शरीर अनित्य है, अशुचिवाला है। हाड-मास मज्जा रुधिर और मल-मूत्र से भरा पडा है। तुम उसमे मोहित क्यो हो रहे हो ?

कल उपवास करना है, यह सोचकर शाम को गरिष्ठ भोजन करते हो, सुबह हुई कि पेट मे भूख मालूम होने लगती है— उपवास का विचार आयंबिल में आ जाता है। धीरे धीरे एकासना का विचार आ जाता है। इतने चाय तो पीने को

मिल जायगी ! इस तरह आत्मा का तो विचार तक नही आता है और हरदम शरीर का ही खयाल रहता है। लेकिन याद रखिये शरीर तो नौकर है। आत्मा सेठ है। नौकर कही सेठ पर सवार न हो जाय। इसका ध्यान रखना। सेठ को तो सेठ ही रहना चाहिये। शरीर तो पुद्गल परमाणुओ का पिड है। उसमे क्यों लुब्ध होते हो ? वह तो वर्ण, गध रस और स्पर्शवाला है जब कि आत्मा अमूर्त है। वह शरीर नही बन सकता। जड चैतन एक नही बन सकता। फिर क्यो एक बना रहे हो ? भ्रम वश आज ऐसा ही हो रहा है इसीलिये शरीर मे दर्द होता है तो दुख का अनुभव किया जा रहा है। शरीर से ममत्व भाव छोडेगे तो दुख का अन्त आ सकेगा।

मेरा कुछ नही है। पैसा भी मेरा नही है। लेकिन आज तो पैसे के लिये ही झगडे हो रहे है। भाई भाई, पिता-पुत्र, स्त्री-बच्चे सब पर पैसो का भूत सवार हो रहा है और आपस मे लडाई–झगडा करा रहा है। यह कैसी अज्ञानता है ? अतः धर्म को समझो ! सच्चा साथी धर्म ही है, उसी का साथ पकडो, वरना चौरासी के चक्कर मे फेक दिये जाओगे। जीवन मे समता और सहिष्णुता को अपनाओ। दुनिया दारी के झगडे अपने आप मिट जायगे और आत्मा धर्म की ओर अग्रसर बन सकेगी।

लालचद सेठ के पास लाखो की सम्पत्ति थी। औरत भी सुदर थी जहा पुण्य का प्रभाव हो वहा कमी किस बात की हो सकती है ?

उच्चसु संगत धर्मसु प्यारी, पुत्र सुपुत्रने वेण वसु नारी।
घर मां होय संपदा निरोगी काया, आ षट बोल तो पुण्य पसाया –।

पुण्य का प्रभाव था। घर मे सब आनंद मंगल था। सगति भी अच्छे लोगो की थी। घर मे सब श्रावकोचित व्यवहार था।

पहले के श्रावक ऐसे होते थे कि पुत्र के योग्य होते ही उसे अपना व्यापार धंधा सौप देते थे और स्वयं निवृत्त हो धर्म ध्यान मे लग जाते थे। कमल जैसे कीचड मे रहकर भी उससे लिप्त नही होता, वैसेही पहले के श्रावक भी अपने लडके को कारोबार संभला कर संसार से अलिप्त हो जाते थे। ऐसे श्रावक आज कहा मिलते है ? भगवान के १० श्रावक ऐसे ही थे। वे सब प्रतिमाधारी श्रावक थे। साधुओ की तरह गोचरी लाते थे। अन्तर इतना ही था कि वे स्वजाति मे जाकर भिक्षा लेते थे जब कि साधु के लिये स्वजाति का बधन नही होता। सूझता आहार ही वे लेते थे। चूल्हे पर चावल रखे हुए है तो वे नही लेते थे। जो चूल्हेसे नीचे उतर गया है वही चीज वे ग्रहण करते थे। हाथ मे खुली डाडी का ओघा रखते थे। कोई उन्हे साधु समझ लेता तो वे कहते– मै श्रमणोपासक हू, साधु नही हू। मुझे भिक्षा दोगे ? क्या आज आप भी ऐसे श्रावक बनने को तैयार है ? भगवान के दसो श्रावको

को एक मास का सथारा आया और वे मर कर पहले देवलोक मे गये। वहा से वे महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगे और मोक्ष मे जावेगे।

भगवान महावीर के कैसे श्रावक थे? और आज आप कैसे श्रावक है? आज आप परिग्रह वढा रहे है या कम कर रहे है? अपरिग्रह को धारण क्यो नही करते? आशा का भी कभी अत होता है?

आशा डूंगर जेवडी मरवुं पगला हेठजी
धन संची २ कांई करो करो वैद्यनी वैठजी
भूल्यो मन ममरा तू क्यां भम्यो?

आशा पर्वत जैसी है और मृत्यु किसी भी क्षण आनेवाली है, उसको कोई वचा नही सकता। मौत का कोई सोल्युशन भी नहीं है। सोना-और चादी को तो जोडा भी जा सकता है, पर मौत को आज तक कोई जोड नही सका। आयुष्य टूटा कि फिर वह सधता नही है। अतः धर्माचरण करो। वहीं अंधकार मे प्रकाश करनेवाला है।

लालचंद भाई की पत्नी लक्ष्मीबेन उदार स्वभाव की नही थी। कोई मेहमान घर मे आता तो खाना पकाने मे भी उसे झंझट मालूम देता था। घर की शोभा कैसे वढे? यह तो औरतो के ही हाथ मे है। मेहमान आये और औरत खाना न वनावे तो घर की शोभा कैसे वढ सकती है?

सयोग से सेठ की पत्नी मर गई और पीछे दो साल का छोटा वालक छोड गई। सेठने दूसरी शादी की। यह वहू अमीर घराने की थी। उसने आते ही घरका रग ढग वदल दिया। रोज १० आदमियों का रसौडे में खाना वनने लगा। सेठ से कहलाती कि जो भी वाहर से व्यापारी आवे उन सवको अपने घर खाने के लिये लावे। कोई गरीव भाई भी मिल जाय तो उसको भी घर भेज दे। मुझे दो-तीन आदमी का खाना वनाने मे मजा नही आता। जितने भी आदमी आवे सव को घर लेते आवें, मुझे खाना वनाने मे तनिक भी सकोच नही होगा। क्या ऐसा सेठानी आपके यहा भी है? अपना पेट भरा कि सव का भर गया, ऐसा मत समझो। दूसरो का भी पेट भरो। पैसा सव यही रह जाने वाला है। लेकिन मोह आपका कहा छूटता है?

लालचंद भाई की नई पत्नी हेमलता सेठानी अपने यहां अनेक भाइयों को खिलाती-पिलाती है। आनेवाले भी खुश हो जाते है। उन्हे वह मान पूर्वक और प्रेम पूर्वक खिलाती है।

एक दिन सेठ को वाहर गाव जाना होता है। सेठानी सेठ के कपडे वाधकर तैयार रखती है। सेठने पूछा खाने का भी कुछ रखा है न? सेठानी कहती है आपके खाने का डिब्बा (टिफिन) तो पहले से ही वहा भेज दिया गया है। सेठ घोडे पर बैठ

कर उस गाव मे पहुंचता है। जाते ही गांव के लोग सेठ का स्वागत करते है और अपने यहां भोजन का आग्रह करते है। सेठ तीन दिन उस गांव मे रहा पर खाना खिलाने वालो की लाईन सी लगी रही। कोई चाय के लिये आग्रह करता तो कोई नाश्ते के लिये। चौथे दिन सेठ जब घर लौटा तो सेठानी से पूछा तुमने जो टिफिन भेजा था वह तो मुझे वहा नही मिला? सेठानीने कहा तो क्या आप इतने दिन भूखे रहे थे? सेठने कहा—नही! भूखे रहने का तो कोई कारण ही नही था। मैं तो ३ दिन ही वहां रहा, अगर ३० दिन भी रहता तो भी लोगो का आग्रह पूरा नही कर पाता। बड़े प्रेम से वे मुझे खाना खिलाते थे। सेठानीने कहा—वही तो मेरा टिफिन था! तभी तो कहा है—

खा गया सो खो गया
दे गया सो ले गया।
रख गया झक मार गया

बंधुओं! आपको भी इसी तरह अपरिग्रह व्रत का पालन करना चाहिये।

लक्ष्मी बेन मरी और हेमलता बेन आई तो सेठ का घर ही बदल गया। सेठ भी उदार और सेठानी भी उदार। सोने में सुहागा मिल गया। लक्ष्मीबेन जो अपने २ वर्ष के लडके को छोड गई थी उसका हेमलता सेठानी ने अपने पुत्रकी तरह ही पालनपोषण किया। मा की कमी लडके को मालूम न होने दी। समय पर खिलाना, पिलाना, स्कूल भेजना और रात में समय पर सुलाना, सब देख-भाल करती थी। सेठका काम भी यथा समय तैयार रखती थी। घर का सब काम व्यस्थित तरीके से शांति पूर्वक हो जाता था। किसी को भी बोलने का मौका नहीं मिलता था। लडका बड़ा होता है, कुछ २ अपना और पराया समझने लगता है। एकदिन वह अपने ननिहाल गया। वहा औरतें उससे पूछती है— तेरी नई मां कैसी है? तुझे कैसा रखती है? लडका कहता—मेरी मां बहुत अच्छी है, मुझे बहुत प्यार करती है। उनमें से एक कहती है— ध्यान रखना, नई मां है, अभी तो प्रेम बता रही है, पर आगे जाकर तुझे भिखारी न बना दें। सेठको खुश कर सब जमीन-जायदाद अपने नाम पर न करवाले। इसका भी ध्यान रखना। अब तू भी बड़ा हो गया है। इस तरह औरते बच्चे के कोमल हृदय में जहर का बीज डाल देती है।

बंधुओं? ऐसा जहर घोलना भी भयंकर पाप का कारण होता है। दो मिले हुए दिलो को तोडना भी भयंकर पाप—कर्म बंधन का निमित्त बनता है। दो औरतें आपस में मिलती है तो इधर उधर की बाते करने लग जाती हैं। स्थानक में पौषध करके भी दुनियादारी की बाते करने लग जाती है। लेकिन इसका भी फल बहुत

वुरा होता है। किसी की नीदा करना या प्रेम तुडवाना भी पाप है। मनुष्य को सदैव इससे बचते रहना चाहिये।

उस लडके के दिमाग मे भी यह वैठ गया कि मेरी मा मुझे भिखारी कर देना चाहती है। कुछ दिनो बाद लडका अपने घर आता है। उसका बरताव देख कर सेठानी समझ जाती है कि लडके के दिमाग मे कुछ भ्रम घुसा दिया गया है। लेकिन वह अपनी तरफ से कुछ कहती नही है। उसका व्यवहार तो पहले जैसा ही रहता है। उसमे कोई परिवर्तन नही होता। एक दिन लडका स्कूल गया तो देरी से घर आया। मां राह देखते देखते थक गई। जब वह आया तो मा ने कहा बेटा, आज इतनी देरी कैसे हो गई ?

लडके के दिमाग में तो भूत भरा हुआ ही था। वह बोला– मुंह से तो तुम प्यार बताती हो, पर भीतर से मुझे भिखारी बनाने का सोच रही हो ? मैं कही भी जाऊं तुम्हे क्या काम है ?

मा सुनकर हैरान हो गई। पर मुंहसे कुछ नही बोली। आग मे घी डालने से आग वुझती नही भभकती ही है। वह यह समझ कर चुप रही कि इसको किसीने समझा दिया है – मेरे दिल मे तो ऐसा कुछ भी नहीं है। सहनशील औरत ही ऐसा विचार कर सकती है। हमारी वहिनो मे भी क्या ऐसी सहन शीलता है। सासु दो वाते भी बहू को कठिन कह दे तो बहू घासलेट का डिब्बा ढूढने लग जाती है ! आज की स्थिति तो सचमुच वडी विचित्र हो गई है।

पजाव–केशरी पूज्य काशीरामजी म. तीन वाते कहा करते थे–कमखाना, गमखाना और नम जाना। भर पेट मत खाओ; सहनशील वनो और नम्र रहो, जीवन मे ऐसा आदमी कभी भी निराश नही होगा। वह सासुका कहना न माने, संस्कारित न हो तो धनी घर की बेटी भी क्या काम की ? गरीब की लडकी संस्कारित हो तो वही उससे वडी है। दुख को सुख मे परिणत करने की कला जिसके पास है वह कभी दुखी नही हो सकता। हेमलता सेठानी ऐसी ही थी। उसने सोचा– मैं कुछ भी कहूंगी तो लडका फिर कुछ वोलेगा अतः चुप रहना ही ठीक है। सेठ भी घर मे आये तो उनको भी यह नहीं कहा।

लडका वडा हो कर वी. ए. पास हो गया। उसने अपनी इच्छा से ही एक लडकी से शादी भी कर ली। न वाप को पूछा न मा को। वह उसको लेकर घर आता है। पर मा कुछ वोलती नही है। वह सेठानी के पाव छूती है। लडका लड़ाई करने को तैयार रहता है, पर मां कुछ नही वोलती। वह वहू को आशीर्वाद देती है, अखंड सौभाग्यवती हो। पूछती है नाम क्या है तेरा ?

वह कहती है– मालती !

सेठानी अपने काम मे जुट जाती है। लडका लडने का मौका देखता है, पर सेठानीने तो मौन धारण कर लिया है। जहा मौन रहता है वहा कलह नही होता है।

मालती सेठानी से कहती है– मां मैं भी साथ में काम करना चाहती हूं। लेकिन मुझे रसोई बनाना नही आता। मेरी मा बचपन में ही मर गई थी। मुझे कोई सिखाने वाला नही रहा। अब आप ही मेरी मा है। क्या आप मुझे सिखादेगी ?

सेठानी कहती है– जरूर सिखाऊंगी, तुझे न सिखाऊगी तो और किसे सिखाऊंगी।

रसोई के बाद सेठानी भरत-गूथण करती तो वह भी उसके पास बैठ कर सीखने लग जाती। यो सारा दिन बहू सासू का काम में निकल जाता था। रात में लडका मालती से कहता– तुझे सारे दिन मा काम कराती रहती है, मुझे यह अच्छा नही लगता। मै मा से कह दूंगा कि वह तुझ से काम न करावे। मालती कहती है– खबरदार जो तुमने मा से ऐसा कहा तो ? मैं खुद ही मा से काम सीखती हू, मा मुझ से कुछ नही कहती है। तुम्हे तो मालूम ही है कि मेरी मा बचपन में ही मर गई थी। अब यही मेरी मा है। उससे न सीखूगी तो किससे सीखूगी ! लडका मन मसोस कर रह जाता है और कहता है– तुम दोनो तो एक हो गई हो। मैं क्या करूं ? जैसा तुझे ठीक लगे वैसा कर। सासू और बहू मा बेटी की तरह रहती है। किसीको असंतोप नही। मन मे केवल यही बात खटकती थी कि लडके के विवाह में कुछ खर्च करने का विचार था, वह न हो सका। लेकिन बहू सस्कारित है, यह सोच कर सेठ और सेठानी को भी दुख नही था।

एक साल बाद शादी की वर्ष गाठ आती है। दोनों सुबह उठ कर माता-पिता से आशीर्वाद लेने की तैयारी करते है। लडका कहता है– पहले पिताजी को नमस्कार करेंगे, मा को बादमे। सेठ अखबार पढ रहा है। लडका सेठ को नमस्कार करता है। सेठ कहता है– बेटा, पहले मा को प्रणाम करना चाहिये फिर मेरे पास आना चाहिये। पहले मा फिर बाप। स्नेह का शत प्रतिशत हिस्सा मा के हृदय में रहता है। बाप के हृदय मे तो उसका चौथाई हिस्सा भी नही रहता। पिता के कहने से लडका मा को प्रणाम करता है। वहू भी पाव छूती है। मा पुत्र के हाथ में एक लिफाफा देती है। दोनो अपने कमरे मे आते हैं। मालती कहती है देखो तो जरा मा ने क्या भेट दी है ? लड़का कहता है– दिये होगे सौ रुपये। मालती कहती है– जरा कवर खोलकर तो देखो। हेमू लिफाफा खोल कर देखता है तो हैरान हो जाता है। उसमे तो सेठ की सारी सम्पत्ति का हेमू के नाम पर वसीयतनामा किया हुआ था। मालती कहती है– सब कुछ तुम्हे दे दिया, और क्या चाहिये ? लडका उसी समय मां के पास आता है और पैरों में पड़कर रोता हुआ कहता है, मा, मुझे माफ कर दो,

पर्याय का काट देना अतिचार छेपोपस्थानीय चारित्र है और दोष न लगने पर भी चार ६ महीने बाद यह निरतिचार छेदोपस्थानीय चारित्र दिया जाता है।

छेदोपस्थानीय चारित्र ५० करोड सागरोपम तक भी टिक सकता है।

३ परिहारविशुद्धि चारित्र की साधना अकेले नही की जा सकती। इसकी आराधना करने वाले ९ व्यक्ति होने चाहिये। जो ९ वर्ष की उम्र मे दीक्षित होकर २० वर्ष तक संयम की साधना करते है और नव पूर्व का ज्ञान प्राप्त करते है। बाद मे वे नौ ही साधु गुरुकी आज्ञा से परिहारविशुद्धि चारित्र वीकार करते है। जिसमे छहमास तक ४ साधु तपस्या करते है, ४ सेवा मे रहते है और १ व्याख्यान देते है। ६ मास बाद जो ४ साधु सेवामे रहते है वे तप करते है और तप करने वाले साधु सेवा मे रहते है और एक व्याख्यान देते है। फिर ६ मास बाद व्याख्यान बाचने वाला साधु तप करता है, एक साधु व्याख्यान देता है और शेष ७ सेवा मे रहते है। ग्रीष्म ऋतु मे एकंतर तप शीतऋतु मे छट्ठतप और चौमासे मे अट्ठम तप करते है। यों १८ मास तक यह तप किया जाता है।

इस उत्कृष्ट चारित्र तप के पच्चक्खाण तीर्थंकर या उनसे दीक्षित गौतम स्वामी जैसे ही दे सकते है। प्रशिष्य इसका प्रत्याख्यान नही करा सकते। यह कमसे कम २०० वर्ष तक रहता है। और अधिक से अधिक दो पूर्व करोड तक रह सकता है। जब कि छेदोपस्थानीय चारित्र कमसे कम २५० वर्ष और उत्कृष्ट ५० लाख करोड सागर तक रहता है। परम्परा से भी चलता रहता है। उसमें व्यवधान नही आता। भगवान ऋषभदेव का शासन ५० लाख करोड सागर तक चला। कितना लम्बा काल था वह ?

१ सागर=१० करोडाक्रोडी पल्योपम के होता है। १ पल्योपम कितना होता है ? इसकी अनुयोगद्वार सूत्र से यह उपमा बताई गई है—

चार कोस लम्बा और चौडा एक कुआ हो, ७ दिन तक के जुगलिये के बालो को एकत्रित कर उसके बहुत बारीक टुकडे करे और उससे उस कुए को भर दे। उस पर ८४ लाख हाथी, घोडे और पैदल यो चक्रवर्ती की सेना निकल जाय, पर वह दबे नही। ऐसे कुए में से १०० वर्ष बाद एक २ बाल निकाले। ऐसा करते २ जब वह कुआ खाली हो जाय तो उस काल को एक पल्योपम कहा जाता है। ऐसे १० क्रोडाक्रोडी कुए खाली हो तब १ सागरोपम कहा जाता है। भगवान ऋषभदेव का शासन ५० लाख करोड सागर तक रहा। कितना लम्बा और प्रभावशाली वह धर्मकाल रहा होगा ? इसका अंदाजा हम इसीसे लगा सकते है कि जब भगवान ने संथारा किया तब १० हजार साधुओं ने भी उनके साथ संथारा किया था।

भगवान ऋषभदेव के शासन से जब साधु अजितनाथ के शासन में आते है तब वे ५ महाव्रत के बजाय ४ महाव्रत वाले हो जाते है। वे ५ से मिटकर जब ४ महाव्रत वाले होते है तभी उनका मोक्ष होता है। अजितनाथ का समय धर्म साधना की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट काल माना जाता है। उनके समय मे ९ हजार करोड साधु थे। ९ करोड केवली थे और १७० तीर्थंकर थे। (एक महाविदेह क्षेत्र में ३२ विजय है ऐसे ५ महाविदेह क्षेत्र में १६० विजय है। जिनमे १६० तीर्थंकर थे — ५ भरत मे और ५ इरवत मे यो कुल मिलाकर १७० तीर्थंकर अजितनाथजी के समय मे थे।) इतनी उत्कृष्ट संख्या और किसी तीर्थंकर के समय में नही थी।

भगवान अजितनाथ से पार्श्वनाथ तक के समय मे साधु ४ महाव्रत के ही धारक होते थे। महाविदेह क्षेत्र मे भी ४ महाव्रत ही होते है। वहां चारित्र भी ३ ही—सामायिक, सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात चारित्र ही—होते है। छेदोपस्थानीय और परिहार विशुद्धि चारित्र वहां नही होते है।

४ सूक्ष्मसंपराय चारित्र—यह चारित्र १० वां गुणस्थान वाले साधक को होता है। इसका साधक मोहनीयकर्म की २७ प्रकृतियो को तो नष्ट कर देता है, फिर भी उसमे संज्वलन लोभ की मात्रा बनी ही रहती है। वह तो यथाख्यात चारित्र मे जाकर ही मिटती है। यह भी दो तरह का बताया गया है। उपशम वाला और क्षपकश्रेणी वाला। उपशम श्रेणी वाला नीचे भी जा सकता है जब कि क्षपक श्रेणी वाला नीचे नही जाता। यही इसमे अन्तर है।

५ यथाख्यात चारित्र—जब तक कषाय का एक छोटा सा कण भी शेष रहता है तब तक यथाख्यात चारित्र नही होता है। सकषाय भाव में १० गुणस्थान रहते है। ११, १२, १३, १४ वे गुणस्थान में कषाय की मात्रा नही रहती। कषाय की मात्रा जितनी कम होगी आत्मा उतनी ही शुद्ध बनेगी।

सूक्ष्मसम्पराय चारित्र से ही यथाख्यात मे आना पडता है। यह चारित्र वीतराग को ही होता है। जहा कषाय का लेश मात्र अंश भी नही होता। यह भी दो तरह का होता है—

छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र।

और केवली यथाख्यात चारित्र।

११, १२ गुणस्थान छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र का है और १३, १४ गुणस्थान वीतराग केवली यथाख्यात चारित्र का है। इससे ऊंचा चारित्र और गुणस्थान और नही हो सकते है। सिद्ध अवस्था मे चारित्र नही होता है। वहां तो केवल ज्ञान और केवलदर्शन ही रहता है। सिद्धो के कर्म नही रहने अतः चारित्र भी [illegible] नही रहता। चारित्र सशरीरी को ही होता है। सिद्धो मे भी [illegible]

चारित्र तो रहता है। ज्ञान और दर्शन मे टिके. रहना निश्चय चारित्र कहलाता है।

चारित्र ही कोहीनूर हीरा है।

उसको प्राप्त करो, जीवन मे उतारो तभी उसकी कीमत है। चारित्र ही जीवन का घडवैया है। चारित्रशील मानव का ही जीवन आदर्श होता है। पुरुषार्थ से ही चारित्र निर्मल बनता है। अपने प्राणो का बलिदान देकर भी विवेकवान पुरुष चारित्र नही जाने देते है।

धन चला जाय तो समझो कुछ नही गया है।
स्वास्थ्य चला जाय तो समझो कुछ चला गया है।
लेकिन चारित्र गया कि समझ लो सब कुछ चला गया है। अतःचारित्र को नही गंवाना चाहिए।

आप पौषध मे बैठे हो, और बाहर गाव के मेहमान आ जाय तो आप क्या सोचने लग जाते हो? नौकर को बुलाते हो और उनकी व्यवस्था करने का आदेश देते हो, खाने पीने के लिये कहते हो। लेकिन क्या पौषध मे ऐसा किया सकता है? अन्यथा फिर पौषध ही क्या रहा? अगर कोई साधु भी उनकी व्यवस्था मे हिस्सा लेता है या कहता है तो यह भी ठीक नही है। इससे उसके साधुत्व की हानि ही होती है। कोई साधु बन कर भी जत्र मंत्र करे–नफा–नुकशान बतावे तो वह फिर कैसा साधु है? नौ कोटि से साधना करने वाला साधक यह सब कैसे कर सकता है? भगवान ने तो स्पष्ट कहा है–

न हु से समणाउच्चन्ति

उन्हे साधु नही कहा जा सकता है। जो चारित्रवान होते है वे किसी से डरते नही है। साधुओं के भी अपने नियम है उन्हें छोडकर वे शिथिल नही बन सकते। सारी दुनिया को छोडकर वे साधु बने है तो अपने नियमो को कैसे तोड सकते है? साधु न कोई चीज खरीद सकता है। न कोई दूसरो की चीज अपने पास रख सकता है। सामने से आकर कोई दे भी तो वह नही ले सकता और न किसी को कह कर वस्तु दिला ही सकता है। साधुको तो अपने नियम मे ही रहना चाहिये। जिस साधु ने अपने नियम छोड दिये या चारित्र छोड दिया वह आपको क्या दे सकेगा? जिसके पास चारित्र है वही दूसरों को देने का भी हकदार बन सकता है। ज्ञानी कहते है कि चारित्रशील मनुष्य बलिदान हो जाना पसंद करेगा पर अपना चारित्र न जाने देगा। चारित्र में तो थोडी सी शिथिलता भी सहन नही की जा सकती है। क्योंकि —

लेश ऊपर थी पग लथड़े तो
आवी भूतल भोंय पड़े छे!
भूल जरा जबरु दुख दे छे
अनुभवियो ऐमज उचरे छे-भूल।

सीढी पर खडा हुआ पुरुष थोडी सी भूल करे तो नीचे जमीन पर आ गिरता है। मामूली सी भूल भी भयंकर दुख पहंचाने वाली बन जाती है। अतः संयम में-चारित्र मे तो भूल अक्षम्य ही मानी जानी चाहिये। आपको ज्ञात ही है कि पुडरीक सातवी नरक मे पहुच गया। वर्षों का चारित्र उसने ढाई दिन मे लुटा दिया। यह कितना त्वरित पतन था? संयम में शिथिलता आना ही पतन का मार्ग है। फिर वह कहां जाकर रुकेगी, कुछ कहा नही जा सकता। अतः बुद्धिमानी तो इसी मे है कि चारित्र मे शिथिलता आने ही न दी जाय।

आजकल कई लोग कहते हैं- लाउड स्पीकर मे साधुओं को बोलने में क्या है? सब को बराबर सुनाई पडता है, और धर्म की प्रभावना भी होती है।

मै पूछती हू आप लोग साधुओं के चारित्र-पालन मे सहायक बनना चाहते हो या उनके पतन में मददगार होना चाहते हो? अगर उनके चारित्र को अक्षुण्ण रखना चाहते हो तो फिर उन्हे कुमार्ग पर चलने को प्रेरित क्यो करते हो? साधु को तो अपने नियमो में ही बंधा रहने दो, उसमें दखल मत करो। नही तो उनका पतन तुम रोक नही सकोगे। आज तो तुम उन्हे लाउडस्पीकर मे ही बोलने का कह रहे हो, पर कल तुम उन्हे सीधे होटलो मे भी चलनेका कहोगे। ५ माले चढना और उतरने मे तो समय लगता है, शक्ति भी लगती है, खडे हो जाइये लिफ्ट में, इसके क्या पाप है? आपके लिये थोडे बनाई है, इसमे तो हम लोग उतरते चढते हैं। आज आप भी आगये तो क्या हर्ज है? और कल सिनेमा देखलो तो क्या हर्ज है, कुछ न कुछ जानने को ही मिलेगा न? पखा और बिजली भी हमने अपने लिये लगाये है साधु भी उनका उपयोग कर लें तो उसमे क्या पाप है?

इतना ही नही धर्म प्रचार के लिये अगर साधुको एरोप्लेन में बैठकर लदन भी जाना पडे तो आपको इन्कार नही करना चाहिये क्योंकि वे वहा जो व्याख्यान देंगें उससे हजारो लोग शाकाहारी बनेंगे, धर्म का कितना प्रचार होगा। अत. दकियानूसी विचारो को छोडकर प्रगतिशील विचारों को धारण करना चाहिये।

बंधुओं! इस तरह के विचार आज कल बहुत बढ़ते जा रहे हैं। जो ठीक नहीं है। वीतराग का धर्म आचार प्रधान धर्म है, संवरमय धर्म है उसे आस्रव की ओर क्यों खींच रहे हो? हमारे उपाश्रय धर्मस्थानक हैं—धर्म स्थानक

नही । नाम तो आप धर्मस्थानक रखते हो और कर्म सब अधर्म के करना चाहो तो ये धर्मस्थानक कब तक इस रूप में रह सकेगें? विचारणीय प्रश्न है। धर्म-स्थानक मे तो धर्म ही किया जा सकता है। अधर्म की कोई बात वहा नही की जा सकती। आप तो श्रावक है, कई बातो मे आप खुले हुए है, पर साधु तो छ काया का प्रतिपालक है—उसे पाप मे आप क्यो घसीट रहे हो ? उसे तो अपने धर्म मे ही रहने दो। धर्मस्थानक को सुख का साधन मत बनाओ, इसे तो निरंजन—निराकार आत्म तत्व का परिचायक ही रहने दो। यहा आकर तो आदमी को शरीर से भी विरक्ति भाव लेना चाहिये । जब कि आप उन्हे आसक्ति भाव में रखने का प्रयत्न कर रहे हो, शीत और ऊष्णसे बचने का तरीका निकाल रहे हो। यह कैसी विचित्र बात है? प्रगतिवाद के नाम पर आज आप अधर्म को ही आमंत्रित कर रहे हैं। याद रखिये इससे धर्म का उत्थान नही पतन ही होगा। आपको मालूम होना चाहिये कि पहले देवलोक मे भी एक ऐसा विशाल सभा-भवन बना हुआ है, जहां देवताओ की धर्म सभा हुआ करती है। वहा भी ऐसा नियम है कि धर्मसभा में बैठा हुआ कोई भी देवता मैथुन का सेवन नही कर सकता है। आपके उपाश्रय क्या है? धर्म के ही तो स्थान है। उसे आप पाप—स्थान क्यो बना रहे हो? लाउडस्पीकर तो दूर, उपाश्रय मे बिजली की घडी भी नही होनी चाहिये। पर किसको कहे? कौन हमारी सुनता है? सब प्रगति के नाम पर अंध प्रवाह मे बहे चले जा रहे हैं। लेकिन याद रखिये यह बहाव बहुत खतरनाक है। इसे रोका नही गया तो परिणाम खराब ही आनेवाला है।

मै तो सीधी सी बात कहती हू, जो आश्रव के कारण है उनको उपाश्रय मे स्थान मत दो। धर्म की शुद्ध हवा ही यहां रहने दो। महीने मे एक आध दिन भी कोई आवेगा तो उसे उपाश्रय की ताजगी ही यहा मिलेगी। वह उसकी आत्मा मे क्रांति मचा देगी। कुछ साधु उपाश्रय मे आकर भी बी. ए, एम. ए. का कोर्स पढते है। यह भी ठीक नही है। साधु बनकर लौकिक विद्या का पठन-पाठन क्यो करना चाहिये? पढ़ना ही है तो स्व का ज्ञान करो—आगमो का दोहन करो और उस अमूल्य तत्व की पहचान करो जिसके लिये तुम साधु बने हो, संसार छोड़कर आये हो। जिस साधु सस्था पर समाज जीवित है— जिसका यही एक सहारा है— उसको तो शुद्ध ही रहने दो। वह शुद्ध रहेगा तो समाज भी शुद्ध रह सकेगा। उपाश्रय तो ज्ञान भवन है, आगम की ही बात यहा कहनी चाहिये। दूसरी कोई भी बात यहा कही या सुनी नही जानी चाहिये।

जैनदर्शन पूर्ण दर्शन है। दुनिया का कोई भी दर्शन उसका मुकाबला नही कर सकता। अणु और परमाणुओ का जितना विशद और स्पष्ट चिंतन जैन

दर्शन में मिलता है उतना दुनिया के किसी भी दर्शन मे नही मिलता। फिर भी कुछ लोग सर्वधर्म समभाव की बाते किया करते हैं। वे अन्य धर्मो के साथ हमारे धर्म की भी तुलना किया करते है। अगर उन्हे साधारण सा नियम भी यह मालूम हो जाय कि तुलना हमेशा समान धर्म के साथ ही की जाती है, असमान धर्म के साथ नही, तो वे अपनी भूल समझ सकते है। रुपये की तुलना रुपये से की जा सकती है अठन्नी से नही। जैनदर्शन पूर्ण दर्शन–सोलहआनी रुपया जैसा है उसकी तुलना अठन्नी जैसे किसी भी दर्शन से नही की जा सकती। हमारा दर्शन तो अजोड है, कोई उसका मुकाबला नही कर सकता।

आज कल तो उपदेश देना भी आसान बन गया है। लगता ऐसा है कि श्रोता से वक्ता अधिक हो गये है। कल का साधु आज पाट पर बैठकर व्याख्यान देने लग जाता है। यह परिपाटी भी आज सुधार मागती है। वाणी स्वातंत्र्य भी आज बढ़ गया है। परन्तु जब तक ज्ञान परिपक्व न हो जाय तबतक बोलने की स्वतंत्रता नही मिलनी चाहिये। सूयगडांग मे भगवान ने कहा है।

जहा दिया पोयमपत जायं, सावासगा पविउं मन्नमाणा।
तमचा इयं तरुणमपतजायं ढंकाइ अव्वतगमं हरेज्जा।

चिडिया अपने अडे को सेती है और जब वह बच्चा बनता है तो अपनी चोच से उसे खिलाती है। पंख न आवे तब तक वह अपने घोसले में ही रखती है। पख आने पर भी वह परिपक्व न हो जाय तब तक उसे उडना भी सिखाती है। चिडिया न हो और वह अपरिपक्व पंख वाला बच्चा अगर उडकर बाहर चला जाता है तो कौए आदि पक्षी उसको पकड कर मार डालते हैं। इस तरह जैसे परिपक्वता रहित बच्चा मृत्यु को प्राप्त करता है वैसे ही अपूर्ण ज्ञानी भी उपदेश देने योग्य नही होता है।

उपदेश देना आसान मत समझो। भगवान ने तो कहा है कि अगर कही भी साधुने उत्सूत्र प्ररूपणा कर दी तो वह सीधा मर कर एकेन्द्रिय में चला जाता है–निगोद मे पहुच जाता है। कितना बडा खतरा है? जहाज चलाने वाला ही सो जाय तो यात्रियो की जान जोखम मे आ जाती है। इसी तरह उपदेशक को भी सावधान रहना पडता है। उसे तो यही देखना चाहिये कि समाज धर्म मे आगे कैसे बढता है। धर्माचरण कितना हो रहा है? धर्म का प्रहरी बन कर उसे धर्मोद्योत करना चाहिये।

लेकिन आज तो धर्म भी दिखावे की चीज बन गया है। यह तो अपने जीवन में उतारने की चीज है, दिखाने की नही। जो मिथ्यात्व अपने दिमाग में घुस गया है उसे निकालो और धर्माचरण करो, व्याख्यान न सुन सको तो, स्वाध्याय करो,

माला फेरो, पर मिथ्यात्व मे मत जाओ। वरना तुम अपनी आत्मा का अध:पतन ही कर बैठोगे।

धर्म का प्रभाव चारित्र सम्पन्न साधु ही बढा सकते है। सुधर्मास्वामी ऐसे ही चारित्र सम्पन्न थे।

आज कल एक बुराई यह भी फैलती जा रही है कि व्रत नियमों को ग्रहण कर उन्हें फिर तोड दिया जाता है। छोटे २ बच्चे भी नियम ले लेते है—ऐसी आदत डालना अच्छा है, पर उनके माता पिता आगे चलकर उनको तुडवा देते हैं। यह बात अच्छी नही है। नियम लो तो उन पर दृढ रहना चाहिये। नियम लेना और तोडना आसान मत बनाओ। लेकिन आज तो यही हो रहा है। तभी तो साधु बन कर भी लोग भाग जाते हैं। संयम की साधना में कायरता मत लाओ। यह मार्ग तो शूरवीरो का है, महावीर के अनुयासियों का है, उसे कायरों का मत बनाओ। नियम लो तो इस भावना के साथ लो कि जब तक दम में दम रहेगा हम नियम का भग नही होने देगें। चाहे प्राण भी क्यों न चले जाय, पर धर्म को हम न जाने देगे। ऐसा दृढ निश्चयी ही चारित्रवान होता है और उसको ही चक्रवर्ती जैसे राजा भी नमस्कार करते हैं।

वंदे चक्री तथापि न मले मान जो....अपूर्व......

जो आत्मा चारित्र का इतनी दृढता से पालन करेगी वे ही मुक्ति मार्ग पर आगे वढ़ सकेगी।

मंगळवार २२–७–६८

[२३]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है वे ज्ञान दर्शन और चारित्र से सम्पन्न थे। जिसके जीवन मे चारित्र सुदर होता है उसी का जीवन प्रशस्त होता है। जिसने अपने मन मे विकार का एक अंश भी पैदा न होने दिया हो वही दुनिया के सामने अपनी खुली छाती करके चल सकता है। दूसरे का जीवन बिगाडने वाले, भोगो में आसक्त वन दूसरो को लोभ लालच देकर पतन के मार्ग पर ले जाने वाले, अपना सिर ऊचा कर कभो नहीं चल सकते है।

हम कैसे है? यह तो आत्म निरीक्षण द्वारा ही जाना जा सकता है।

रुवे रुवे भर्या पाप प्रभुजी मारा रुवें २ भर्या पाप रे।
किण विध हवे हुं उगरुं प्रभु शरण, ग्रहचु में आजरे।
शरण ग्रहचु में आज प्रभुजी मारा शरण] ग्रहचुं में आजरे।
मारी वेडली ने वुडवा ना दीयो प्रभु शरण ग्रहचुं में आज।

जिस जीवन में सच्चारित्र नही होता वह जीवन जीवन नही कहा जा सकता। जीवन के नाम पर केवल खोखा ही होता है।

एक आदमी शरीर से सुदर हो, पर नाक न हो तो उसकी क्या कीमत है? मनुष्य चाहे जितना सुदर या धनवान हो उसके जीवन मे चारित्र की सुवास न हो तो उसका कोई मूल्य नही है।

एक सेठ था। पहले वह वहुत गरीब था, पर वम्वई में आकर वह वहुत पैसे वाला बन गया। पैसा प्राप्त करना आज कोई वडी बात नहीं रही है। वेश्या के पास भी पैसा वहुत होता है। चोरी करो, भेल-सेल करो, नकली दवाइयाँ वनाओ और असली कह कर बेचो-पैसो का ढेर लग जायगा।

एक कम्पनी ने सर्प दंश के इजेक्शन वनाये और दूसरे ने उसकी नकल कर नकली इजेक्शन वना कर वाजार मे वेचना शुरु किया। कम्पनी के इंजेक्शन असली होने से महगे विकते थे और ये इजेक्शन काफी सस्ते थे अतःसभी सस्ते इजेक्शन ही लेना पसंद करते थे। कम्पनी को आखिर विवश होकर अपना यह धधा वद कर देना पड़ता है। जो कम्पनी नकली माल वनाती थी अव वह वहुत रुपया कमाने लग गई। वाजार मे कोई भी उसका प्रतिद्वदी नही रहा था। इस तरह काले काम करने से कम्पनी का सेठ वहुत पैसा कमा लेता है। लेकिन इस तरह की कमाई भी सुख देगी या दुखो को ही आमंत्रित करेगी यह कौन जान सकता है?

एक दिन सेठ के लडके को ही सर्प काट लेता है। सेठ मोटर लेकर पहले वाली कम्पनी के ओफिस मे जाता है और सर्पदश का इजेक्शन मागता है? मैनेजर कहता है-हमने तो इंजेक्शन वनाना कभी का बंद कर दिया है। आप ही ने तो हमारी कम्पनी को नुकशान पहुंचाया है। आप तो खुद अपने यहा यह इंजेक्शन वना रहे है? फिर आप इसे क्यों ढूढ रहे है?

सेठने कहा-मेरे यहां तो नकली इजेक्शन वनते है, असली तो इसी कम्पनी मे वनते थे।

पैसे पूरे लेकर भी वह नकली दवा वेचता था। उसीका यह परिणाम था कि उसका जवान लडका मर गया।

यह सेठ भी गाव से आया था तव कुछ नही था, लेकिन ऐसा धधा हाथ लग गया कि पैसा वहुत इकट्ठा हो गया। पैसों के साथ २ मौज शौक भी बढ़ता गया। औरतो की तरफ आकर्षित होने लगा। लोभ लालच देकर उनका शील भंग करने लगा। पैसो का तो वल था ही-औरतो के दलाल भी सेठ के यहा आने-जाने लगे और सेठ की इच्छा पूरी करने लगे। रस्ते चलते हुए किसी स्त्री के

स्पर्श हो जाय और उस स्पर्श में भी कुभाव मन मे पैदा हो जाय तो यह भी पाप कहा गया है। तब फिर जो लोग हंसते –खेलते जान–बूझ कर ऐसा पाप करते हैं, पर–स्त्री सेवन करते है उनको कितने घोर कर्मो का उपार्जन होता होगा? इसका फल तो उन्हे तभी मालूम पडेगा जब कि नरक के परमाधार्मिक देवता गरम २ लोह–नारी खड़ी रख कर उनसे कहेगे कि लो इसका स्पर्श करो, तुमको तो परनारी से दुनिया मे बहुत प्रेम था, यहां तुम्हे इससे प्रेम करना पड़ेगा। उस लोह–नारी के स्पर्श से उन्हे जो असह्य वेदना होती है, उसका तो वही अनुभव कर सकते है।

सेठ का संबंध एक विधवा स्त्री से हो जाता है। और उससे एक बच्चा भी उसे पैदा होता है। विधवा लडके को बड़ा करती है, लोक लज्जा को सह कर भी उसे पढ़ाती–लिखाती है। जब वह बड़ा हो गया तो सेठ से कहती है–यह आपका ही लड़का है, इसे अपने यहां ही किसी काम पर रख लीजिये। और कही जायगा तो बदनामी भी होगी अतः जैसा भी काम हो इसे रख लें।

सेठ ने भी सोचा बात तो ठीक है। मेरा पाप प्रकट हो जायगा तो बदनामी तो होगी है। वह उसे अपने यहा नौकर रख लेता है। पर मन में सेठ के वह लडका हर दम खटकता रहता है। सेठ उसे मारने का उपाय सोचता है। लडका मशीने साफ करता था। एकदिन वह मशीन साफ कर रहा था कि सेठ ने बटन चालू कर दिया, फिर क्या था? लडका मशीन में आकर मर गया।

दूसरा आदमी यह सब देख रहा था, पर कहे कैसे? कहीं नौकरी चली जाय तो! बेचारा कुछ नही बोला। लडके की मा को पता चला तो वह दौडी हुई आई और छाती पीट कर रोने लगी। सेठ ने कहा–लडका तो मर गया है, अब तू क्यो रोती है? रोने से भी वापस तो नहीं आ सकता। ले मैं तुझे ५ हजार रुपया देता हूं, रोना बंद कर और रुपये लेकर घर चली जा।

माँ रोती हुई कहती है–मुझे रुपये नही चाहिये। मुझे तो मेरा लडका चाहिये-उसे दे दो सेठ, उसे दे दो। जिसके लिये मैंने लोक लज्जा सहन को और पाला पोषा क्या आज वह भी मुझे छोड़कर चला गया!!

जिस आदमी ने लडके को मशीन मे मरते हुए देखा था उसने बुढिया से आकर सच्ची बात कह दी। सेठने ही मेरे लडके को मारा है – यह सुनते ही बुढिया पागल हो गई। वह इधर उधर घूमने–फिरने लग गई। सेठ को मोटर आ रही थी, बुढ़िया रास्ते से गुजर रही थी, मोटर से टकरा गई। ड्राइवर उसे गालिया देता है, बुढिया खडो होकर मोटर में सेठको बैठे हुए देखती है तो कहती है–नालायक देखता क्या है? तू ही मेरे लडके का हत्यारा है।

सेठ घर आया, इतने में तो समाचार मिलता है कि सेठ का लड़का स्कूटर के एक्सीडेंट से मर गया है। बदला यहीं का यही मिल जाता है। गरीब का लडका मारने वाले को अब पता चलता है कि लडके का मरना कैसा होता है? अब तक तो वह उस बुढिया को पागल समझ रहा था, पर अब वह अपनी भी हालत वैसी ही समझ रहा है। उसे अब खाना पीना भी अच्छा नही लगता। सेठ की हालत खराब हो जाती है। सेठानी समझाते हुए कहती है—जैसा कर्म हमने किया है वैसा ही हमे भोगना भी पडेगा। हमारा धर्म जैन है, कर्म मे हमारा विश्वास है अतः शोक करने से कुछ फायदा नही है। आप मेरा कहा मानिये और उपाश्रय मे चले जाइये, वहा हमारे सन्त—महात्मा विराजते है, उनकी वाणी सुनेगें तो धर्म का मर्म आपको सुनाई देगा और उससे आपका दुख भी कम हो जायगा। सेठ सेठानी के कहने से उपाश्रय में आता है। साधु वाणी सुनता है—

तुलसी हाय गरीब की कबहु न खाली जाय।
मुआ ढोर का चाम से लोह भस्म हो जाय।

साधु कहते है—मरे हुए पशु के चमडे से भी लोह भस्म हो जाता है तो गरीब की हाय बेकार कैसे जा सकती है? अतः गरीब को मत सताओ, किसीका धर्म मत लूटो, लोभ या लालच दिखाकर किसी के शील पर प्रहार मत करो। अपने पाप को छिपावो मत, उसे प्रकट करो और पश्चात्ताप की भट्टी मे सुलगादो। तुम्हारे पाप इसी भव में मिट सकते है।

सेठ को जो चाहिये था वह मिल गया। अब तो वह रोज रोज व्याख्यान सुनने आने लगा। मन ही मन सोचता है। मैंने कितने पाप किये है? उनमे छुटकारा कैसे मिलेगा?

गुणीनो कीधो खार प्रभुजी में नो गुणीतो कीधो खार रे।
अछता आल ओढाडीया प्रभु शरण ग्रह्यु में आज।

व्याख्यान सुनकर सेठ घर जाता है। व्याकुल हो जाता है। छाती उसकी भर आती है, आखो मे पानी दिखाई देता है। सोचता है—मै बड़ा पापी हूँ। गुरुने कैसा समझाया है? सेठानी पूछती है—आज क्या हो गया है? डाक्टर को बुलाने भेजूं? सेठ कहता है—नहीं, डाक्टर मेरी बीमारी को क्या समझेगा? मेरी बीमारी तो मेरे गुरुने समझ ली है। वही इसे दूर करने का मार्ग भी बता देंगे।

सेठ की तबियत बहुत खराब हो जाती है। सेठानी डाक्टर को बुलाती है। डाक्टर आता है और सेठ की जाच करता है। सेठ को बुखार बहुत चढा हुआ है। इन्जेक्शन और गोली देने का कहता है। सेठ कहता है—मुझे कुछ नहीं चाहिये।

जो मुझे चाहिये था वह मुझे मिल गया है। मेरे डाक्टर तो उपाश्रय में बैठे है। जाओ उन्हे बुलाकर लाओ। वे ही मेरी बीमारी मिटा सकते हैं।

आपका उपाश्रय क्या है? भव रोग मिटाने का दवाखाना ही तो है। गुरु डाक्टर है और सिद्धान्त इंजेक्शन तथा दवा है। जब मनुष्य का अंतिम समय आता है, तभी यह याद आता है कि—

साहू शरणं पवज्जामि
केवली प्ररूपित दया धर्म का शरणा

सेठने कहा—साधुजीको बुलावो और मुझे सथारा करवा दो—

आरे अवसरीये जेने सद्‌गुरु सेविया रे
सद्‌गुरु सेव्या तेना टलीया अंधेरा रे–आरे—
इंगलाने पींगलाने सुसुमणा सेवता रे
अध्यवसाये घाट घडायरे सोभागीलाल ....आरे..

सेठ मौत के सामने संग्राम करने लगता है। वह अपने जीवन की आलोयणा करता है। जीवन को देखता है कि मैंने क्या २ काम किये है? बुरे कामो के लिये निदणिया-पश्चाताप करता है। लेकिन गर्हणा—साधुके समक्ष कबूल करना अभी बाकी है। सेठानी साधुजी को बुलाकर लाती है। सेठ गुरु को देखकर हाथ जोडता है और कहता है—मैंने आजतक किसीसे कुछ कहा नही है, सबने मुझे अच्छाही समझा है, पर मैं कैसा हूं यह तो मैं ही जानता हूं। मेरी पत्नी भी मुझे राम जैसा मानती है। आप मेरी बात सुनकर जो भी प्रायश्चित्त देना चाहे दे और फिर मुझे संथारा करादे।

रे पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी उतर्यु रे।
पापी तेमां डूबकी दईने पुन्यशाली बने छे।

पश्चात्ताप का झरणा वहने लगता है। सेठ कहता है मेरे पास कुछ नही था, पैसा मिला तो उससे मैंने वहुत पाप किये, कई स्त्रियो का शील भग किया, विधवा स्त्री को भी न छोडा, उसके लडके को भी मैंने मार दिया। मुझे मेरे दुश्चरित्र से घृणा नही हुई, और उस अनाथ लडके को मैंने मशीन मे पील दिया? ऐसे घोर काम मैंने किये है। मुझे प्रायश्चित्त देकर आजीवन संथारा करवा दीजिये।

साधुजी आलोचना कराते है, जिसे वह ध्यान पूर्वक सुनता है। उस विधवा बाई की भी वह व्यवस्था करता है ताकि वह भीख मांगती न फिरे और आराम से जीवन गुजार सके। अन्त मे यह सथारा ग्रहण कर खुशी २ इस देह का त्याग कर देता है।

गुरु के ८ दिन के व्याख्यान ने सेठ का जीवन ही वदल दिया।

उसने अपने पापो की आलोचना की । आप भी अपने पापो की आलोचना करो । कभी कोई ऐसा पाप किया हो, झूठ बोला हो, व्यभिचार किया हो, पर स्त्री के प्रति कुदृष्टि की हो, लडाई झगडा किया हो तो याद करो और हृदय से उसको दूर करो । जैसे आप अपने आभूषणो को साफ करते हो, घर के वर्तन भी साफ करते हो, वैसे ही अपनी आत्मा को भी साफ रखना चाहिये । कभी कोई पाप उस पर लग जावे तो उसको साफ करना चाहिये । शुद्ध आत्मा की भावना तो सदा यही रहा करती है कि–

अनशन के सिद्धवट हो प्रभु आदि देव घट हो,
गुरुराज भी निकट हो, जब प्राण तनसे निकले।
ऐसी दशा हो भगवान जब प्राण तनसे निकले।

ऐसी दशा कव आती है ? खाली बोलने से क्या होता है ? धर्म को जीवन मे उतारोगे तो यह दशा भी प्राप्त हो सकेगी । आत्मा वलवान होता है तभी यह दशा मिलती है । जिसका चारित्र सवल होता है वही ऐसा कर सकता है । सथारा लेना साधारण आदमी का खेल नही है । अतः चारित्र को मजवूत करो । चारित्र है तो सव कुछ है और चारित्र ही नही है तो जीवन मे कुछ नही है । जीवन निस्सार हो जाता है । चारित्र ही कोहीनूर हीरा है । उसे स्फटिक जैसा वनाये रखो– कालिमा का कलक मत लगने दो, आपका उद्धार निश्चित है । सुधर्मास्वामी ऐसे ही चारित्र सम्पन्न महापुरुष थे। उनके गुणो को यथावसर और भी आगे वर्णन किया जायगा ।

ता. २३–७–६८

[२४]

सुधर्मास्वामी चारित्र सम्पन्न थे । उत्तराध्ययनसूत्र मे भगवान से गौतम स्वामी पूछते हैं –

चरित्त सपन्नयाएणं भन्ते जीवे किं जणयइ ?
चारित्र सम्पन्न जीव को क्या लाभ होता है ?

भगवान कहते है–

चरित्तसम्पन्नयाएणं जीवे शेलेसी भावं जणयइ । सेलेसी पडिवन्नेय अणगारे चतारि केवलि कम्मं से खवेइ तओ पच्छा सज्झइ वुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वायंति सव्व दुक्खाण मन्तं करेइ ।

चारित्र सम्पन्न आत्मा शैलेशी भाव प्राप्त करता है । शैल–पर्वत, ईश–राजा–

पर्वतों का राजा मेरुपर्वत की तरह वह अडौल– अकम्प अवस्था प्राप्त करता है। चार शेप रहे अघाति कर्मो को नष्ट कर वह सिद्ध दशा को प्राप्त करता है।

औदारिक शरीर तो कई वार ग्रहण कर छोडा भी जा सकता है। परन्तु कार्मण शरीर जब तक नही छोडा जाता तब तक आत्मा का मोक्ष नहीं हो सकता है। मोक्ष कोई ऐसी चीज नही है जो खाते–पीते मौज–शौक करते हुए प्राप्त हो जाय। मोक्ष के लिये तो प्रवल पुरुषार्थ चाहिये तभी वह प्राप्त हो सकता है। शैलेषी भाव आनेपर चार अघाति कर्म और तीन शरीर–औदारिक, तेजस और कार्मण छूट जाते है और आत्मा शुद्ध-बुद्ध, निरजन-निराकार हो जाती है। नारियल में पानी रहता है तब तक गोला काचली से चिपका रहता है, पानी सूखा कि काचली से गोला अलग हो जाता है। इसी तरह आत्मामें भी राग और द्वेप का पानी रहता है तब तक वह संसार से चिपका रहता है। जब वह सूख जाता है तभी आत्माका मोक्ष होता है।

रागोय दोषो विय कम्मवीयं
कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति।
कम्मं च जाइ मरणस्स मूलं
दुक्खंच जाइ मरणं वयन्ति।

राग और द्वेष ये दो ही कर्म के बीज है। इनसे ही संसार का संचालन होता है। ये भाव कर्म है जिनसे ८ द्रव्य कर्मो का बंध होता है। कर्मो का मूल राग और द्वेष ही है। अत: मूल को नष्ट करने का प्रयत्न करो। शेष कर्म अपने आप नष्ट हो जावेगें। राग और द्वेष का पानी सूख जाने पर आत्मा कर्मो से चिपका हुआ नही रहता है। आपका आत्मा भी कषायो से चिपका हुआ है, उसे दूर करोगे तभी मोक्षका द्वार मिल सकेगा। जाना तो आपको भी वही है न ?

कुंथु नाथ प्रभु मारे ऊपर जावु छे
एरंडा ना बी नी माफक ऊपर जावु छे
सूत्रसिद्धान्तना भारे चणतर चणवाना,
महावीरकोलेज मां भणतर भणवाना,
शुद्धाचारी निर्विचारी बनी जवुं छे।
अग्निना घुमाडा माफक ऊपर जावुं छे।

भगवती सूत्र मे भगवान ने सिद्ध गति मे जाने वाले आत्मा की चार उपमा दी है– १ एरंडा का वीज जैसे पानी में ऊपर ही रहता है।

२ दीपशिखा– दीपक की लो हमेशा ऊपर ही रहती है।

३ लक्ष्यवेधी बाण– निशाने पर छोडा गया बाण सीधा ही जाता है।

४ निर्लेप तुम्बा– पानी में नही डूबता, ऊपर ही रहता है। इसी तरह सिद्ध दशा मे जानेवाली आत्मा भी निर्विकारी होकर लोक के अग्रभाग मे विराज़मान हो जाती है।

सिद्ध दशा कैसी है ? शास्त्रकार कहते हैं–

शिव— उपद्रव रहित, कल्याणकारी

मयल — अचल

मरुअ — रोग रहित

मणत — अतरहित

मक्खय — अक्षय

मव्वावाह — बाधा–पीडा रहित

अपुणरावित्ती — आवागमन रहित

देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही आना-जाना (गतागति) बना रहता है। सिद्ध तो जीवन और मृत्यु से रहित हैं। सिद्ध दशा का ऐसा ज्ञान आपको किस युनिवर्सिटी में मिल सकेगा ? महावीर कोलेज में ही इसका ज्ञान मिल सकता है। आज दृष्टिवाद का तो विच्छेद हो गया है। पूर्वधर अभी नहीं हैं। महावीर निर्वाण के १००० वर्ष बाद पूर्व ज्ञान का लोप हो गया। अभी तो ११ अंग ही शेष हैं। उन पर भी आपको श्रद्धा कहा रही है ? आपको तो संसार बढानेवाली चीजों पर ही मोह है। रूप और सौन्दर्य के अभिलाषी बने हुए हो। पर इसका फल क्या होगा ? यह भी मालूम है ? आत्माकी अधोगति ही इससे होगी। अत: अब भी सम्हलो और द्वादशांगी का ज्ञान करो। उसमे क्या कहा है ?

के अहं आसि – केवा इयो चुयो इह पेच्चा भविस्सामि–

मैं कौन था ? क्या हूं और मरकर कहा जाऊगा ? यह तो सूत्र सिद्धान्त पढने से ही पता चलेगा। कथा-कहानी की पुस्तको से यह समझा नही जा सकता। गाने बजाने और इन्द्रियों के पोषण से मोक्ष नही मिल सकता है। मोक्ष तो विवेक में है– विवेक युक्त चारित्र मे है।

धर्म बोलने मे नही, करने मे है। आप माला फेरते हैं, कुछ लोग सामायिक करते हैं, और समझ लेते हैं कि हमने धर्म कर लिया। क्या धर्म इतना ही है ? एक शिष्य गुरु से पूछता है।

सेज्जा दढा पाउरणम्मि अत्थि उप्पज्जई भोतुं तहेव पाउं
जाणामि जंवट्टई आउसुत्ति किं नाम काहामि सुएण भन्ते।

गुरुदेव, जब मैं संसार में था तब तो कोई मुझे पूछता भी नहीं था [illegible]

पर रहने का भी ठिकाना नहीं था। साधु बना कि बड़े २ आलीशान उपाश्रयो मे रहने को मिलता है। जहा जावे वहां बडा स्वागत सत्कार किया जाता है। आहार मे सुन्दर व्यंजन मिलते हैं। सुपात्र दान मिलता है, मन मानी चीजे भी मिल जाती है। कोई प्रश्न करता है तो मैं उसका समाधान भी कर देता हूं। अब मैं आगे पढकर क्या करूंगा ? सब कुछ तो मिल जाता है। अब काया को कष्ट देने से क्या लाभ है ?

खावा मली खीचडीने सुवामली सोड।
चेला पूछे गुरूने आमुक्ति के कांइ ओर।

मुक्ति यह नही, वह तो बहुत दूर है। उसके लिये तो मोह, माया, ममता और कषायों को दफनाना पडता है, तभी उसके दर्शन किये जा सकते है।

एक साधु रस (जीभ) का बडा लौलुप था। कहा मेहमान आये है और कहा अच्छा भोजन बन रहा है ? इसका वह ध्यान रखा करता था और समय पर पहुच जाया करता था। उसका श्रावक वर्ग भी ऐसाही था, जो उसे मददगार ही होता था। भगवानने तो कहा है कि साधुओ को रूक्ष आहार करने मे खेद नही करना चाहिये। रस युक्त आहार मे आसक्त नही होना चाहिये। जैसे बीमार कडवी दवा लेता है—उसका स्वाद नही लेता, झट गले मे उतार देता है। वैसेही भगवान ने धान्य को भी औषधि कहा है। वेदनीय कर्म की दवा कही है। भोजन को भी दवा की तरह ही ग्रहण करना चाहिये। उसमे लौलुप नही बनना चाहिये। लेकिन वह साधु तो रस लौलुप बन गया था। अच्छे २ घरों में ही वह जाता, जहां उसे सुदर आहार मिल जाता और उसकी लौलुपता शात हो जाती थी। जो श्रावक साधुओ की रस-लौलुपता को बढाने मे मददगार होते हैं वे श्रावक, श्रावक नही कहे जा सकते। श्रावक तो गिरते हुए को भी उठाता है। उठते हुए को गिराता नही है। अतः संयमियो को गिराओ मत। वे अपने मार्ग पर दृढता पूर्वक चल सके उसमे उन्हे सहायभूत बनो। पतन में सहयोगी मत बनो। ऐसा ज्ञान आत्मा मे कब आता है ? सूत्र सिद्धान्त पढ़ने से ही ऐसा शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

आज का विज्ञान वर्तमान काल की ही बात बता सकता है। ज्योतिष शास्त्र भविष्य की बात बताता है। इतिहास भूतकाल की बात बताता है। लेकिन हमारे शास्त्र तो तीनो काल की बातें बताते हैं। त्रिकालाबाधित तत्वोंका निरूपण करना सिद्धान्त है। तीन काल मे भी जड चैतन नही हो सकता और चेतन जड नही बन सकता। ऐसा अबाध्य सिद्धान्त आप पढना क्यो नही चाहते है ? पढाने वाला १ पाई भी नही लेना चाहता, फिर भी आप क्यों नही पढ़ते है ?

घर मे लडके को पढाने के लिए मास्टर रखोगे तो वह भी सौ रुपया लेता है। लेकिन आपको तो मुफ्त में पढ़ने को मिल रहा है। फिर भी कोई पढ़ने वाला न मिले तो यह किसकी कमजोरी कही जायगी ?

लडका स्कूल नही जाता है तो आप उसे जबरदस्ती भेजते हो। लडका रोता-रोता जाता है। पर जब उसकी पढ़ने में रुचि जागृत हो जाती है तब यदि माँने भोजन न बनाया हो तो वह भूखा भी स्कूल चला जाता है। तब उस पर जबरदस्ती करने की जरुरत नही होती। इसी तरह आप भी हमारी इस पाठशाला में जबरदस्ती आना शुरु करो। धीरे २ जब रुचि जागृत हो जायगी तब आप खुद चले आओगे। एक दिन की गैर हाजरी भी आपको अखरने लगेगी।

वह साधु, जो जिव्हा– लोलुप था, मर कर वाणव्यन्तर देव बनता है। आमतौर पर साधु मर कर वैमानिक देव होते है। परन्तु जो साधु, साधु बनकर भी इन्द्रियो के गुलाम बने रहते हैं वे साधुत्व की विराधना करने से वाणव्यन्तर देव बनते है। उसने जब अवधिज्ञान से यह जाना कि मैंने साधुत्व की विराधना की है, उसीसे मैं इस गति मे उत्पन्न हुआ हूं। मेरे जैसे दूसरे साधु भी कही पथ-भ्रष्ट न हो जाय अतः उन्हे मुझे सावधान करना चाहिये। यह सोच कर वह उसी गाव में आता है और गाव बाहिर एक मूर्ति बन कर खड़ा हो जाता है। मूर्ति के मुह से जीभ बाहर निकली हुई है। जिसे देखने के लिये गांव के लोग इकठ्ठे हो जाते है। मूर्ति मे से आवाज आती है– मैं इसी गाव में साधु था। जिह्वा के वशीभूत हो मैंने अपना संयम नष्ट कर दिया था। साधुत्व की विराधना करने से ही इस दशा को प्राप्त हुआ हूं। दूसरा कोई साधु ऐसा न बने, इसीलिये मैं यह जीभ बाहर निकाल कर खड़ा हूं।

सिद्ध दशा प्राप्त करने के लिये रस का त्याग करना ही होगा– मोह का त्याग करना ही पड़ेगा, अन्यथा मोक्षका द्वार खुल नही सकता।

चारित्र सम्पन्न आत्मा ही दीप शिखा की तरह ऊर्ध्व गति करने में समर्थ बनता है, वही निर्लेप तुम्बा की तरह संसार से अलिप्त हो सकता है। कर्म रहित जीव की स्थिति ऐसी ही होती है।

जो भव्य आत्माएँ अनास्थन सुख को छोड़ कर चारित्र में स्थित होते है वे ही उस अनन्त सुख को प्राप्त कर सकेंगे।

बुधवार ता. २८-३-६८

[२५]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है वे लाघव सम्पन्न थे। लाघव यानी हल्का-परिग्रह रहित–आसक्ति रहित या अपरिग्रह दशा को लाघव भाव कहते है।

दशवैकालिक सूत्र मे कहा है

जंपि वत्थंच पायं वा कम्बलं पाय पुच्छणं,
तंपि संजम लजट्ठा धारन्ति परि हरन्तिय।
नसो परिग्गहो वुत्तो नापुयत्तेण ताइणो,
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणो।

साधुओ को वस्त्र-पात्र की जरूरत होती है, रजोहरण, कबल आदि की भी जरूरत होती है। वे इन्हे संयम रक्षण के लिये ही धारण करते है। उन पर मूर्च्छा भाव लाना परिग्रह कहा गया है। भगवान ने वस्त्र-पात्र कंवल आदिको परिग्रह नही कहा है, परिग्रह तो उन पर आसक्ति रखने को कहा है।

सुधर्मास्वामी लाघव गुण से सम्पन्न थे यानी अपरिग्रही थे। जरूरत से भी कम रखते थे। लेकिन आज तो अधिकसे अधिक प्राप्त करने का विचार किया जाता है। परिग्रह भी एक भयकर रोग है जो आत्मा को पीडा पहुचाता रहता है। बुद्धिमान मनुष्य तो वही कहलाता है जो शरीर से वीमारी दूर रखता है। लेकिन आप तो वीमारी का शरीरमे सग्रह कर रहे है, यह कैसी बात है? आज कोई चतुर्थ व्रत का भग कर दे तो लोग उसकी तरफ अगुली उठाने लग जाते है। पर परिग्रही की तरफ आज कोई अंगुली नही उठाता, जब कि यह भी तो ५ वा महाव्रत है। कुशील सेवन की तरह परिग्रह का सेवन भी नीच गति मे ले जानेवाला है। अत. इसका भी त्याग करना आवश्यक है।

आपका परिग्रह भी आज इतना वढ गया है कि उसकी कोई सीमा नही रही है।

कुड कपटनी बाजी खेली
देशो देश मां चणी हवेली
अंत समये जावुं मेली
एकलो आव्यो अेकला जावुं।

ज्ञानी कहते है-आप नाना प्रपंच करके, गरीवो की हाय लेकर पैसा इकठ्ठा करते हो और देश विदेशो मे वंगले खडे करते हो, पर याद रखो छह खंडके स्वामी चक्रवर्ती भी इस दुनिया मे न रह सके तो तुम क्या रह सकोगे? एकदिन तो यह सव छोडकर चलना ही पडेगा। वंगले वगैरह सव यही रह जायंगे। फिर

मूर्च्छा भाव क्यो रखते हो ? परिग्रह तो पाप का मूल है— दुर्गति देनेवाला है । अतः पैसो के लिये दौडा दौडी मत करो । पैसो से मोक्ष मिलने वाला नही है और न उससे गुणस्थान की सीढियो पर ही चढा जा सकता है । अत उसके पीछे २ दौडना नादानी है ।

पैसा किस तरह अधिकसे अधिक मिले यही आज देखा जाता है । वह कहा से आता है ? कैसे आता है ? यह कोई नही देखता है । अनीति का धन कहा और कब चला जायगा तथा वह कैसी स्थिति पैदा कर देगा यह तो ज्ञानी ही जान सकते है । परन्तु इतना तो निश्चय समझिये कि आसक्ति रखने से आत्मा का पतन अवश्य-भावी है ।

घर मे वहू के हाथ से काच का प्याला फूट जाय तो सासू गुस्सा हो जाती है । काच का प्याला तो नाशवान है उसके लिये आत्मा को मलिन करना कहा की बुद्धिमानी है ? ऐसे ही पैसो के लिये भी आसक्ति नही रखनी चाहिये । पैसा की असक्ति तो नरक मे ले जाने वाली है । वह मोक्ष नही दे सकती । लेकिन फिर भी आज तो पैसेवालो का ही सम्मान होता है, आदर सत्कार होता है । लेकिन ज्ञानी की नजरो मे तो वह भी दुखी ही है । ज्ञानी उसे भी धन का दर्दी ही समझते है ।

जहा भी मूर्च्छा है वही परिग्रह है । शरीर पर आसक्ति रखना भी परिग्रह है । दशवैकालिकमे कहा है—

नायरन्ति ममाइयं

शरीरपर भी ममता नही करनी चाहिये । जो किसी चीज पर ममत्वभाव रखता है उसे २४ दडक मे घूमना ही पडता है । ये दडक आत्मा की अधोगति कर देते है ।

एक सेठ जगल मे जा रहा था । वहां वह एक साधु को ध्यानस्थ देखता है । भव्य रूप और निश्चिन्त अवस्था देख कर सेठ खडा हो जाता है ।

आज अगर बम्बई मे यह हुक्म हो जाय कि जल्दी बम्बई खाली करो तो कौन जल्दी करेगा ? आप या आपके साधु ? जिनको किसी तरह का परिग्रह ही नही वही जल्दी खाली कर सकेगा । साधु का तो शरीर भी अपना नहीं है । यह मुनि ध्यान में लीन है ।

सिंह सर्प भय निवारीने तजी पुद्गलनी आश
केवल समाधि आदरी, करी क्रोधादि नाश
मुनी रमे समभाव मा
छोडी दुनियानी आश, छोडी दुनिया ना फंद योगी रमे

मुनि तो समभाव मे रमते है । [illegible]
[illegible]

मा चाहे जिस रंग की साडी पहने, पर मा को लडका मा ही समझता है, जैसे वह वेष बदलने से मां नही मिट जाती, वैसे ही सर्प, सिह और मनुष्य मे भी वही आत्मा है, उसमे कोई अन्तर नही होता, केवल ऊपर की आकृति वदल जाती है। अतः मुनि किसी से भयभीत नही होते। क्योकि वे यह समझते है कि–

छेदोगे तो छेदाना भी पडेगा।
भेदोगे तो भेदाना भी पडेगा।
दुख दोगे तो भोगना भी पडेगा।

मुनि किसी को दुख नही देता है तो उसे क्यों कोई दुख पहुचाएगा ?

भगवान महावीर की अहिसा का ऐसा प्रभाव था कि सिह और वकरी एक घाट पानी पीते थे। विल्ली और चूहा भी साथ वैठते थे। जन्मजात वैर भी वे भूल जाते थे। भगवान के शरीर मे तो दूध ही दूध भरा हुआ था। माता के तो स्तन मे ही दूध होता है, पर भगवान का तो सारा शरीर दूध से भरा हुआ था। उनका वात्सल्य भाव कितना महान था ? माता तो केवल अपने लडके की ही अपने को मा समझती है, और उसी पर अपना वात्सल्य भाव रखती है, पर भगवान का वात्सल्यभाव तो सारी दुनिया के प्राणियो पर था अतः उन के सारे शरीर मे दूध भरा हुआ था।

ध्यानस्थ मुनि को देखकर सेठ के हृदय मे अपूर्व भाव पैदा होते है। वह वहा बैठ जाता है। मुनि ध्यान समाप्त करते है। सामने सेठ को वैठा हुआ देखते है तो योग्य पात्र समझ कर उसे कहते है—यह संसार नश्वर है। कोई भी चीज साथ मे आनेवाली नही है। अत. परिग्रह को छोडकर जीवन को हल्का वनाओ, तभी तुम्हारा कल्याण हो सकेगा।

एक सेठ मुनीम से पूछता है–मुनीमजी अपनी सब जायदाद कितनी है ?

मुनीम कहता है–आठ पीढी चले उतनी है। सेठ को फिकर हो जाती है, नौवी पीढी कैसे चलेगी ? सेठानी भी सेठ के साथ चिन्ता करने लगती है। इस तरह दोनो ही चिन्ता करने से वीमार हो जाते है। इतने मे ईश्वरभाई आता है। सेठ और सेठानी को पलग पर सोये हुए देखता है तो पूछता है–क्यो सेठजी ! तवियत तो ठीक है न ? सेठ कहता है–चिन्ता के मारे हम दोनो की तवियत खराव हो गई है। ईश्वर भाईने पूछा–आपको किस बात की चिन्ता हो गई है ? सेठने कहा–८ पीढी तक चले उतना धन तो मेरे पास है, पर नववी पीढी का क्या होगा ? यही चिन्ता सता रही है।

ईश्वर भाईने पूछा–सेठजी, आपके कितने लडके है ?

सेठने कहा–अभी तक तो एक भी नही है। ईश्वर भाईने कहा–सेठजी, अभी तो कल की पीढी का भी पता नही है और आप नौवी पीढी की चिन्ता कर रहे हैं? ऐसी व्यर्थ की चिन्ता करने से कोई लाभ नही है। यह सब गरीब बच्चे है उन्हे आप अपनी ही सन्तान समझो और उनका पालन पोषण करो। मरे बाद धन सब यहीं रह जाने वाला है। अतः मौका मिला है तो कुछ पुण्य भी अवश्य कमालो।

अतःज्ञानी पुरुष कहते हैं–तुम अपनी आत्मा का कल्याण करो। दुनिया में मत भटको और ईश्वर को भी याद कर लिया करो—

जगत ना नाथ ने जोया विना सहु धूल धाणी छे।
प्रभु निरख्या विना नयने उभी चोराशी खाणों छे।
थयुं शुं म्हेल बांध्याथी थयुं शुं हार गुंथ्या थी
थयुं शुं नाणुं वध्या थी रही जो भवनी घाणी छे!

आत्मा का उद्धार तो अपरिग्रह व्रत मे ही है। साधु ने गुणभद्र सेठ को यह उपदेश सुनाया तो सेठने कहा–महाराज, पैसे बिना तो काम चलता नही है। एक कदम भी पैसे के बिना आगे नही रखा जा सकता है। साधुने कहा–तुम्हारा पैसा नीति का है या अनीति का? द्रव्य का उपार्जन भी जरूरत से ज्यादा नही करना चाहिये। आवश्यकताएं कम करनी चाहिये और प्रामाणिकता से धधा करना चाहिये। अधिक तुम से न हो सके तो कम से कम अचौर्यव्रत का तो नियम ले लो। बिना आज्ञा कोई भी चीज नही लेना, चोरीका माल नही लेना और न्याय नीति पूर्वक धधा करना। सेठ मुनि से अचौर्यव्रत का नियम ले लेता है। कुछ दिन बाद वह ५०० गाडिया लेकर परदेश जाता है। सेठ घोडे पर बैठ कर रवाना होता है। गाडिया अपने मार्ग पर जाती है और सेठ पहाडी मार्ग से जाता है। घोडा उसका बहुत तेज था। कुछ ही समय मे वह एक भयानक जगल मे पहुच जाता है। सेठ घोडे पर बैठा हुआ चला जा रहा है। सामने उसे एक चमकती हुई वस्तु दिखाई पडती है। पास जाकर देखता है तो मणियों का हार दिखाई पडता है। सेठने देखा, पर अचौर्यव्रत का नियम होने से उसने उसे उठाया तक नही और आगे चल दिया।

सतीया सत ना छोडिये, सत छोडे पत जाय
सतनी बंधी लक्ष्मी फिर फिर गोया थाय।

सकूंगा ? प्यास बुझाने के लिये वह इधर उधर देखता है। सामने एक पेड पर लौटा लटका हुआ देखता है। सेठ वहा जाता है और पूछता है, यह लौटा किसका है ? कोई जवाब उसे नही मिलता है। इतने में पेड पर बैठा हुआ एक तोता बोलता है, यह लोटा तो वैद्यराजजी का है। इसमें पानी भरा हुआ है, आपको प्यास लगी है तो इसे पीकर अपनी तृषा शात कर सकते हो। सेठ कहता है वैद्यराज की आज्ञा बिना मै पानी नही पी सकता हूं। मुझे अचौर्यव्रत का नियम है। पानी के बिना मेरे प्राण भले ही चाले जायं, पर मै अपना नियम नही तोड सकता हूं। सेठ वहा से भी आगे चल देता है। सामने से विद्याधर आता है और सेठ के पैरो में पड कर कहता है, धन्य है आपको—धन्य है आपको।

सेठ पूछता है – आप कौन है ?

वह कहता है – मै विद्याधर हूं। आपने जिन साधुजी से अचौर्यव्रतका नियम लिया था, वे मेरे पिता थे। उस समय मै भी वहा उपस्थित था, पर अदृश्य था, मैंने आपकी परीक्षा लेने के लिये ही यह खेल रचा था। मणियो का हार मैंने ही रास्ते मे डाला था, घोडे को मुर्च्छित भी मैंने ही किया था और इस लौटे में पानी भी मैंने ही भरा था। पेड पर से बोलने वाला तोता भी मै ही था। आपने अपना व्रत भग नही किया और उस पर अटल रहे अतः मै आपको नमस्कार करता हूं। आप दृढ व्रती है। मै भी अब आपकी तरह चोरी नही करने का व्रत लेता हूं। मुझ पर कृपा करो और मेरा यह सब धन आप स्वीकार कर लो।

सेठ कहता है– मुझे धन नही चाहिये, मेरे पास जो है, मै तो उससे भी मुक्त होना चाहता हू।

विद्याधर कहता है—आप मेरे गुरु है, आपने ही मुझे सन्मार्ग बताया है अतः मेरी यह गुरु दक्षिणा तो स्वीकार करनी ही होगी।

विद्याधर सेठ को अपनी सम्पत्ति देकर अदृश्य हो जाता है। सेठ अपने घर लौटता है और उस धन के साथ अपना धन भी मिला कर सब गरीबो को बाट देता है और अपरिग्रह व्रत स्वीकार कर लेता है।

जो जीव ऊपर जाता है उसे हल्का होना ही पडता है। एरोप्लेन भी ऊपर उडता है तो उसमे अधिक भार नही ले जाया जा सकता है। इसी तरह आत्मा को भी ऊपर उठाना है तो उसे कर्मो के भार से हल्का करना ही पडेगा।

गुणधर सेठ ने जैसे अपना परिग्रह सर्वथा छोडकर सवर का मार्ग धारण किया वैसे ही आप भी परिग्रह से ममता छोडोगे, तभी आपका कल्याण होगा।

सुधर्मास्वामी ऐसे ही अपरिग्रही थे– लाघव गुण से सम्पन्न थे। और भी उनमें कई गुणथे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता २५–७–६८

[२६]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते हैं वे लाघव सम्पन्न थे—अपरिग्रही थे।

परिग्रह दुर्गति देने वाला है, वह यति धर्मरूप वट-वृक्ष को जला देनेवाला है, ब्रह्मचर्य व्रतका घात करने वाला है—गुणों का दुश्मन है। पाप का मूल है। सुधर्मास्वामी अपरिग्रही थे। जरूरत से भी कम रखने वाले थे।

आज मनुष्य की आवश्यकताएं कितनी बढ गई है? नयी २ चीजो का आविष्कार होता है कि वह उन्हे लेने की इच्छा करता है। मोटर का नया मोडल निकला कि पुरानी मोटर बेच कर नई ले लेता है। रेडियो, ट्रांजिस्टर, घडी आदि भी नई डिजाइन की लेने की इच्छा करता है। कपडे भी नये २ खरीदता है। इस तरह वह अधानुकरण करता है और परिग्रह को बढाता है।

जिसके बिना काम न चल सके, वह आवश्यकता है और उसकी पूर्ति करना भी उचित है। जैसे आंख से दिखाई कम पडता है तो चश्मे की आवश्यकता होती है। इसके लिये चश्मा लगाना चाहिये, यहा तक तो ठीक है, परन्तु चश्मे की फ्रेम बढिया होनी चाहिये, काच भी रगीन होने चाहिये ऐसा ममत्व पैदा करना परिग्रह है। वस्तु मे मूर्च्छा भाव जागृत करना परिग्रह है। फोन्टनपेन भी इसी तरह का एक परिग्रह ही है। सुविधा के लिये पेन रखना एक बात है, पर फैशन के लिये बढिया पेन रखना अनाचारही कहा जाता है।

कपडा पहनना जरूरी है, आज जिनकल्पी अवस्था धारण नही की जा सकती है। पहले के साधुओ मे शरीर बल अधिक होता था, दृढता तथा कठोरता भी ज्यादा होती थी। वैसी शक्ति आज नही है—

दुखे उद्वेग ना चित्ते, सुखेषी स्पृहना गई
गया राग भय क्रोध, मुनिते स्थिर बुद्धिनो।

चाहे जितना कष्ट आवे पर वे परवाह नही करते थे, मच्छर, डांस भूख—तृषा, शीत-उष्ण आदि का उपद्रव भी वे सहन करते थे। देह दुःखं महाफलं ऐसे जिनकल्पी साधु हुआ करते थे। लेकिन आज वह शक्ति नही रही है अतः वस्त्र धारण करने पडते हैं। लेकिन जब साधु वस्त्रों में भी आसक्ति भाव धारण कर लेता है तो वह परिग्रह का दोषी बन जाता है।

तरह है जिस पर कुम्हार ने मिट्टी का भार लाद दिया है। गधा बोझ से घबरा रहा है। तब कुम्हार उसे समझाने के लिये उस पर सवार हो जाता है और डंडे से मारकर चलाने लगता है। कुछ दूर जाने पर वह उतर जाता है। गधा समझता है कि बोझ उतर गया है और वह चलता रहता है। उसे यह नही मालूम कि बोझ तो उसकी पीठ पर ही लदा हुआ है। जैसे तैसे भी कुम्हार गधे से काम लेता है, वैसे ही शरीर से भी काम तो लेना ही चाहिये। उसको सुविधाका ज्यादा खयाल करोगे तो वह बीमार हो जायगा। दिन में दो बार भोजन की जरुरत है, पर आप कितनी बार उसे खिलाते पिलाते हो! सारे दिन भर आपका मुह तो चलता ही रहता है। तरह २ की तली हुई चीजें खाते रहते हो, तभी तो बीमारी घर किये रहती है। बीमारी को हटाने के लिये ऐसे इंजेक्शन और दवाएं लेते हो जिनको श्रावक ले भी नहीं सकता है। कइयों को डायबिटीज की बीमारी हो जाती है, उसे रोज इंजेक्शन लेना पडता है। उसके बजाय तो आप आयबिल कर लिया करो तो वह अपने आप मिट जायगी। तप ही सब बीमारियो का इलाज है। उसका आचरण करो जीवन मे कोई बीमारी नही होगी।

ठाणांग सूत्र मे बीमारी के भी ९ कारण बताये गये है:-

१ ज्यादा चलने से २ ज्यादा बैठने से ३ ज्यादा सोनेसे ४ ज्यादा जागने से ५-६ ज्यादा टट्टी पेशाब रोकने से ७ ज्यादा विषय- सेवन से ८ ज्यादा खाने से और ९ अप्रिय वस्तु से रोग पैदा होते है। अतः शरीर को तो हमेशा गुलाम ही बनाये रखो। ऐसा उसे मौका मत दो कि वह आत्मा पर सवार हो जाय। वरना सारा खेल ही वह चौपट कर देगा।

शरीर नाशवान है, वह एक दिन नष्ट होनेवाला है, काल के झपाटे में चक्रवर्ती जैसे राजा भी न बच सके तो तुम्हारी क्या ताकत है?

अहि स्थिर ठरीने ठाम नथी कोई रहेवानु
पुण्य पाप तणुं परिणाम सुखे दुखे सहवानुं
चक्रवर्ती जेवा चाल्या गया जेणा छ खंड फरती आणरे
काले बधा ना कर्या कोलिया जरूर मन मां जाण, नथी....

कोई स्थिर होकर यहा नही रह सकता। जन्म ही मृत्यु की निशानी है। जीव गर्भ मे आता है कि प्रतिक्षण मरता रहता है। दिन, मास और वर्ष के माध्यम से वह मर ही रहा है। आचारांग मे कहा है कि-

अमरायइ महासड्ढी अट्टे में तंतु पेहाए

कई मूर्ख लोग यह समझते है कि हम मरने वाले नही है, शरीर ही मै हूं, शरीर सुखी तो मै भी सुखी हू। शरीर गया कि मै भी मर जाता हूं।

अतः ज्ञानी कहते है कि आलसी मत बनो और सावधान बन कर भगवान को यादकरो।

आलस मां आयुष गया, दिन २ दोढा काम,

फाट्या रहेशे डाकला, पछी केदि भजशो भगवान।

आयुष्य घटता चला जा रहा है और प्रमाद बढता चला जा रहा है। तृष्णा की पूर्ति कभी होती नही है अतः ऐसी स्थिति मे आत्माको शाति कैसे प्राप्त हो सकेगी ?

कृपा शंकर नामक मास्टर बडे सीधे सादे और प्रामाणिक जीवन जीने वाले थे। सारी जिन्दगी ज्ञान–दान देने मे खर्च की, पर एक पैसा भी बदले मे लेना नही चाहा। वे टयूशन भी मुफ्त मे करते थे। जो कुछ नौकरी से मिलता था उसीसे अपना निर्वाह कर लिया करते थे। घर मे एक पत्नी और एक लडकी के सिवाय और कोई नहीं था। आज का अध्ययन और अध्यापन दोनो ही विचित्र दशा मे पहुच गये है। लडका स्कूल मे जाता है तो पुस्तको का बोझ उठा नही पाता है। इतनी पुस्तके उसे ले जानी पडती है। अध्यापक भी स्कूल मे कुछ पढाते नही है, टयूशनो के पीछे ही पडे रहते है। शिक्षा मे भी रिश्वत चल गई है। रिश्वत देकर लडके को पास करा दिया जाता है। फिजुल खर्ची बहुत बढ गई है। कपडे भी तरह २ के पहनने लग गये है। साधुओं मे भी कपडो के प्रति ममत्व भाव देखा जाता है। भगवान ने तो साधु के लिये ७२ हाथ और साध्वी के लिये ९६ हाथ वस्त्र का नियम रखा है। उसका कोई साधु उल्लघन करता है तो फिर वह साधु भगवान की आज्ञा मे कैसे माना जा सकता है ? निर्वस्त्र साधु नही रह सकता इसीलिये तो भगवान ने वस्त्र की मर्यादा तय की है। आचाराग मे कहा है—

मै शीत–ऊष्ण, डास, मच्छर आदि के परिषह को सहन कर सकता हू पर मै लज्जा के परिषह को सहन नही कर सकता हूं। अतः मै नग्न नहीं रह सकता हूं।

यह जिनकल्पी की बात है अतः भगवान ने उसे एक वस्त्र धारण करने की आज्ञा दी। उस साधु को एक के बजाय दो वस्त्रों की इच्छा नही करनी चाहिये। अन्यथा वह भी अपरिग्रह से हटकर परिग्रह मे आ जायगा। क्योंकि इच्छाएं बढाना और ममत्व भाव रखना ही परिग्रह कहा गया है।

आवश्यकताओ को सीमित करना, संग्रह न करना ही अपरिग्रह है।

यह मास्टर कृपाशंकर जरूरत से भी कम लेता था, टयूशन करता भी [illegible]

पीटता नही था। सब लडके मास्टर से बडे खुश थे। कोई भी लडका स्कूल से जाता तो रोने लगता था। एक मास्टर तो ऐसे होते है जिनसे बच्चे खुश रहते है और एक ऐसे होते है जिनसे बच्चे घृणा करते है– नफरत करते है–उनके पास जाने मे भी डर महसूस करते है। यों अच्छा और बुरा बनना भी अपने हाथ की बात है। ज्ञानी कहते है—

समझी ने आप सुधरीये दुनिया नहीं सुधराय।
पगमां पगररवां पहरियें दुनिया मढवा नहि जाय।

अपने आप को सुधारने का प्रयत्न करो, दुनिया को सुधारने की फिकर मत करो।

मार्ग भूलेला जीवन पथिकने
मार्ग चिंधवा उभो रहुं।
करे उपेक्षा अे मारगनी,
तो ये समता चित्त धरुं।

मार्ग भूले हुओ को मै मार्ग बताने वाला बनूं–पर वह उस मार्ग पर न चले तो मैं उस पर समभाव ही रखूं, क्रोध न करूं, यही विवेकी पुरुष का कर्तव्य होना चाहिये।

वह मास्टर सारे गाव मे लोक प्रिय हो जाता है। कुछ वर्षो बाद वह निवृत्त हो जाता है। अब उसे आधा वेतन ही मिलता है, पर वह उसमे भी अपना गुजारा चला लेता है। सन्तोषोहि प्रबलच सौख्यं–सन्तोषी आत्मा तो सुख का ही अनुभव करता है। मास्टर की लडकी बडी हो जाती है। विवाह करना आवश्यक है, पर दहेज देने के लिये पैसे कहा से लाये। कम से कम ५ हजार रुपये का सवाल है। वह कहा से लाये? बिना दहेज दिये शादी हो नहीं सकती है। अत. वह अपने ही पढाये हुए लडके जीवनलाल के पास जाता है, जो अब सेठ बना हुआ है, और कहता है–मुझे ५ हजार रुपये चाहिये, लडकी की शादी करनी है, मेरे पास तो कुछ नही है, बिना दहेज दिये लडकी की शादी नही हो सकती है, क्या तुम इसका प्रबंध कर दोगे? जीवनलाल मास्टर को बैठाता है और अपने दोस्त झीलू के पास जाकर कहता है–अपने मास्टर को ५ हजार रु. लडकी की शादी के लिये चाहिये, मै सोचता हू आधे रुपये तुम दे दो और आधे मै दे दू। अपने मास्टर है, ब्याज नही लेगे। चार–छ मास बाद वापिस रुपये वे हमको दे देगे। झीलू ने कहा हाहा जरुर देदो। मास्टर बडे सज्जन है तुम चाहो तो मुझ से ही ५ हजार ले जाओ और उनको दे दो। लेकिन जीवन लाल ने झीलू से ढाई हजार रुपया ही लिया ओर लेकर अपने घर पर आ गया।

मास्टर बैठे थे। जीवनलाल ने ढाई हजार रुपया अपने पास से निकाल कर ५ हजार रुपया मास्टर को दिया और स्टाम्प पर लिखा-पढी करवाली। मास्टर रुपया लेकर अपने घर आये और लडकी की शादी कर निश्चिन्त हो गये। चार-महीने निकले कि जीवनलाल मास्टर के पास आया और रुपयो की माग करने लगा। मास्टर ने कहा—भाई, अभी तो मेरे पास नही है, महीना भर बाद मै कुछ कर सकूगा। जीवनलाल महीना भर बाद फिर आ खडा हुआ। उसका तो व्याज कम हो रहा था। मास्टर ने उसे देखा तो वह समझ गया कि अब यह मानने वाला नहीं है। उसने कहा—भाई मेरे पास रुपये तो नही, है स्टेशन के पास जो मेरा प्लोट है वह मै तुम्हे दे देता हू। उसके बदले मे तुम अपने रुपये जमा कर लेना। वह जगह बहुत बडी थी। और मौके की भी थी। जीवनलाल ने यह बात मंजूर कर ली। मास्टर के सिर पर से बोझ हल्का हो गया। एक महीने बाद उस जमीन को तो जीवनलालने एक कम्पनी को ८० हजार रु मे बेच दी। खुशी २ वह अपने घर आता है और अपनी औरत से कहता है—आज तो कुछ सुन्दर भोजन बना कर खिला, ८० हजार रुपये कमा कर लाया हू। औरत ने पूछा—कैसे कमा कर लाये हो! जरा मुझे भी बताओ तो सही? जीवनलाल सारी बात कहता है। जिसे सुन कर औरत कहती है—यह रुपये तो मास्टर के है, तुम तो ५ हजार के ही हकदार हो, बाकी रुपये उन्हे दे आओ। ऐसे भले आदमी के रुपये हम रखने के अधिकारी नही है? मै अपने घर मे ऐसा पैसा रखने नही दूगी। जीवनलाल कहता है—इसमे से आधे तो झोलू के है। उसने भी तो ढाई हजार दिये थे। औरत कहती है—उसके रुपये उसे दे दो, पर मै तो अपना हिस्सा अपने घर मे रहने नही दूगी। आप अपना हिस्सा ढाई हजार लेकर बाकी रुपये मास्टर को दे आइये, मुझे ऐसा पैसा नही चाहिये। जीवनलाल झोलू के पास जाता है—रुपयों का थैला उसके हाथ मे ही है। झोलू जुआ खेल रहा है। जीवन को देखता है तो कहता है—क्यों जीवन कैसे आये हो? जीवन उसे अपने पास बुलाता है और सारी बात कह देता है। झोलू कहता है—मुझे तो ढाई हजार की बात याद ही नही रही है। बेचारे मास्टरने हमको [illegible] है—नमस्कार दिये है—वह रुपया न भी ले तो कोई बात नही है। जीवन कहता है—अरे, तू समझा नही है। मास्टर ने हमारे रुपयो के बदले मे अपना प्लोट हमें दे दिया था जिसकी कीमत ८० हजार रुपया आई है। आधे तुम्हारे है। यह ४० हजार रु. मै तुमको देने आया हू। झोलू बोला—नही, ये रुपये मुझे नही चाहिये, मास्टर को ही देदो, हम उनके रुपये कैसे ले सकते है? जीवन [illegible] से लेकर मास्टर के घर आता है। मास्टर [illegible] पाठ कर रहे थे—

आसवत नहि जे क्यांय, मल्ये कांय शुभाशुभ।
न करे हर्ष के द्वेष तेनी प्रज्ञा थई स्थिर।

मास्टरने दोनो को आसन पर बैठाया और पूछा क्यो कैसे आना हुआ?

जीवन बोला–हमने आपको ५ हजार रुपये दिये थे। उसके बदले मे आपने हमको अपना प्लोट दे दिया था। उसका हमे ८० हजार रुपया मिला है। वही रुपया हम आपको देने आये है।

मास्टर बोला–रुपये मुझे नही चाहिये, मैने तो तुम्हे दे दिया था अब उसका लाख भी आवे तो मेरा उस पर कोई अधिकार नही है। वह तो तुमको ही मिलना चाहिये।

जीवन कहता है–आप ५ हजार हमको देकर शेष ७५ हजार रुपया ले लीजिये। यह रुपया तो आपका ही है।

मास्टर कहता है–मुझे रुपये नही चाहिये। मै अपने हाल मे खुश हूं। एक लडकी थी उसकी शादी आपकी मदद से हो गई, अब क्या करना है?

पैसो तमने प्यारों छे पण, तेने कोई नथी प्यारूं,
बे घडी दिल ने व्हेलावेने त्रीजी घडीअे अंधारू,
सुखदुख नो साचो संगाथी, पैसो के प्रभु!
कोण तमने प्यारूं बोलो पैसो के प्रभु?
पत्थर जेवा पैसा ने सोना जेवा स्वामी–कोण–?

पैसा जड है, पर आज उस पर चैतन नाच रहा है, यह कैसी विचित्र स्थिति हो रही है? मास्टर ऐसा नही था। उसने कहा–यह रुपयो की थैली अपने साथ ले जाओ। इसमे रुपया नही सांप है। मास्टर की औरत कहती है–तुम्हारी तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है। खाने को तो घर मे दाना भी नहीं है, अभी कोयले का पैसा भी चुकाना बाकी है, और बाते कर रहे हो ज्ञान की। बेचारे देने ही आये है तो कम से कम ५ हजार रु. तो रख लो। मास्टर ने कहा–तू बीच मे मत बोल। मुझे पैसा नही चाहिये। अपना तो जैसा चल रहा है वैसा ही ठीक है। लडके भी आग्रह करते है, पर मास्टर अपने विचार से टस से मस नही होता। झीलू सोचता है, कहां ये और कहां हम! आकाश पाताल का अंतर है। हम लोग पैसो के लिये दिनरात पागल बने रहते है–जुआ खेलते है और यह मास्टर आई हुई सम्पत्ति को भी लात मार रहा है। मास्टर का उस पर इतना प्रभाव पडता है कि वह मास्टर से जुआ नही खेलने का नियम लेता है।

जीवन कहता है–आप अपने पास ये रुपये न रखना चाहे तो किसी सस्था मे दे दे–लेकिन हम इसे वापिस लेकर जाना नही चाहते।

आखिर वह रुपया गुप्त रूप मे विद्या—दान के लिये दे दिया जाता है।

जीवन मे अपरिग्रह का जो इतनी दृढता से पालन करते है वे ही अपनी आत्मा का भला कर सकते है।

सुधर्मास्वामी ऐसे ही अपरिग्रही थे। ममत्व भाव से रहित थे। उनमे और भी गुण थे, जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

शुक्रवार ता. २६–७–६८

[२७]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन चल रहा है। वे भगवान के ५ वें गणधर थे। गणधरो के ५२ गुणो से युक्त थे। अवगुण उनमे थे ही नही। वे क्रोध, मान, माया और लोभ को जीत चुके थे। शास्त्र में कहा है—

कोह विजयेणं भन्ते जीवे किं जणयई ?

क्रोध को जीतने से जीव को क्या लाभ होता है?

कोह विजयेणं भंतें जीवे, खंति जणयइ कोहो वेयणिज्जंकम्मं न वंधयइ, पुवंबद्धंच निज्जरई

क्रोध को जीतने से जीव को क्षमा भाव आता है। और पूर्व सचित कर्मो को वह नष्ट कर देता है।

क्रोध भी एक अवगुण है, जो नरक में ले जाने वाला है, आत्मा का पतन करने वाला और प्रीति का नाश करने वाला है। क्रोधी मनुष्य स्वयं भी जलता है और दूसरो को भी जलाता है। कोई आदमी हाथ मे अगारा लेकर दूसरे पर फेके तो जैसे पहले उसका हाथ ही जलता है, वैसे ही क्रोधी मनुष्य भी पहले अपनी आत्मा को ही मलिन कर देता है।

क्रोधी मनुष्य अपना और पराये का भान भी भूल जाता है। मा–बाप, भाई–बहिन–पत्नी–पुत्र को भी अपना नही समझता है।

एक श्रावकने गुरु से पूछा—कि विषम् किम् अमृतम् ?

विष क्या है और अमृत क्या है?

गुरु ने कहा—क्रोध विष है और क्षमा अमृत है। तू डरता क्यों है? मैं हूं वहां तक तुझे डरने की बात नहीं है, ऐसा आश्वासन देना अमृततुल्य है और मैं तेरा खून कर दूंगा, तू कहीं भी जा मैं तुझे छोडूंगा नहीं, ऐसा वचन कहना जहर उगलना है।

मन भर दूधपाक मे रत्ती भर जहर डाल दिया जाय तो जैसे वह खाने लायक नहीं रहता है वैसे ही एक आदमी मे गुण तो बहुत हो, पर [illegible]

महान दुर्गुण उसमें रहा हुआ हो तो वह भी संगति करने योग्य नही होता है।

संघ के कार्यकर्ता ईमानदार हो, पर क्रोधी हो तो वे भी मान सम्पादन नही कर सकते है। खटपटी स्वभाव वाला व्यक्ति भो संघ में हलचल पैदा कर देता है। उसके साथ दूसरे अधिकारियो की भी बदनामी होती है अतः अच्छे आदमी त्याग-पत्र देकर अलग हो जाते है। क्रोधी या दुर्गुणी आदमी के साथ कोई नही रहना चाहता। अतः ज्ञानी कहते है कि क्रोध विष है-उससे बचो, तभी सुखी हो सकोगे।

क्रोध क्यो पैदा होता है? इसके भी कुछ कारण होते है। पन्नवणा सूत्र मे कहा है -

१ अपने लिये क्रोध होता है

२ दूसरो के लिये

३ अपने और दूसरो के लिये क्रोध होता है।

४ खेत के लिये (खुली जगह के लिये)

५ मकान वगैरह के लिये

६ शरीर के लिये

७ भंड उपकरण-बर्तन आदि के लिये

८ निरर्थक बात के लिये

९ जानते हुए क्रोध करना

१० अनजाने क्रोध करना।

११ उपशान्त भाव से क्रोध करना।

१२ अशान्त भाव से क्रोध करना। सत्ताके बल से क्रोध करना।

१३ अनंतानुबधी क्रोध-ससार बढे वैसा क्रोध करना। आदि कारण क्रोध के बताये गये है?

१४ अप्रत्याख्यानी १५ प्रत्याख्यानी और १६ संज्वलन क्रोध से घर के मनुष्य भी दुखी हो जाते है। भाई-भाई मिटकर शत्रु बन जाते है।

कच्छ मे हाथीभाई और पदमसीभाई दो भाई थे। हाथीभाई बडे थे। वे रोज उपाश्रय मे आते थे। अष्टमी और चौदसको व्रत पौषध भी किया करते थे। पर स्वभाव उनका अच्छा नही था। व्याख्यान सुनते और धार्मिक क्रियाएँ करते हुए भी उनका क्रोधी स्वभाव मिटा नही था।

मन की तरंग मारलो बस हो गया भजन।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन!
आया कहां से कौन है तू, जायगा कहाँ ?
इतना ही दिल विचार लो बस हो गया भजन।

- ज्ञानी कहते है—अगर आपने अपनी आदत नही सुधारी तो स्थानक मे आकर व्याख्यान सुनना और सामायिक करना भी क्या अर्थ रखता है? अगर आपने अपनी आदत सुधारली तो समझलो आपने प्रभु का भजन कर लिया और अपनी सामायिक भी सफल कर ली। क्योकि आत्म सुधार ही सच्ची सामायिक है।

मै कौन हूं? शरीर मन, वचन मैं नही हू। मै तो चैतन देव आत्मा हू। कोई गाली भी देता है तो मुझे क्या? वह शरीर को ही देता है—जड को देता है, आत्मा तो उससे भिन्न है। शरीर तो पिजडे की तरह है। उसमे रहने वाला आतमराम—तोता उससे भिन्न है। पिजडा तोता नही और तोता पिजडा नही है। अत: जो गाली देता है, नाम को देता है, शरीर को देता है, मेरा तो न शरीर है, न नाम है, उससे मुझे क्या होने वाला है? मुझे अपने स्वभाव मे रहना चाहिये। दुनिया की हर वस्तु अपने २ स्वभाव मे रहती है। शक्कर अपने स्वभाव मे रहती है, मिर्ची अपने स्वभाव मे रहती है। वे अपना स्वभाव नही छोडती तो मुझे अपना स्वभाव क्यो छोडना चाहिये।

मोहम्मद साहब एक दिन तालाब मे नहा रहे थे। पास मे ही एक बिच्छु पानी मे गिर पडा था। मोहम्मद सा. ने उसे देखा तो हाथ मे उसे बाहर निकालने लगे। इतने मे बिच्छू ने डक मारा तो मोहम्मद सा का हाथ हिल गया और बिच्छू फिर से पानी मे जा गिरा। मोहम्मद सा ने फिर उसे निकाला। बिच्छू ने भी दुबारा और डक मारा। मोहम्मद सा. का हाथ कॉपा और बिच्छू फिर पानी मे गिर पडा। इस तरह तीन बार उन्होने निकाला और बिच्छू ने भी तीन बार डक मारा पर वे रुके नही। चौथी बार जब वे निकालने लगे तो पास मे खडे हुए आदमी ने कहा—जाने दो इसे, वह तुम्हे डंक मार रहा है और तुम उसे बचाते जा रहे हो?

मुहम्मद सा. ने कहा—बिच्छू का स्वभाव डंक मारने का है और मेरा स्वभाव दया का है। जब वह अपना स्वभाव नही छोड सकता तो मै कैसे अपना स्वभाव छोड दू?

हमारे शास्त्रों मे भी कहा है कि

अक्कोसेज्जा परे भिक्खु; न तेसि पडिसंजले।
सरिसो होइ बालाणं तम्हा भिक्खु न संजले ।।१।।
सोच्चाणं फरुसा भासा दारुणा गाम कंटगा
तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसीकरे ।।२।।

महान दुर्गुण उसमें रहा हुआ हो तो वह भी सगति करने योग्य नही होता है।

सघ के कार्यकर्ता ईमानदार हों, पर क्रोधी हो तो वे भी मान सम्पादन नही कर सकते है। खटपटी स्वभाव वाला व्यक्ति भी संघ मे हलचल पैदा कर देता है। उसके साथ दूसरे अधिकारियो की भी बदनामी होती है अतः अच्छे आदमी त्याग-पत्र देकर अलग हो जाते है। क्रोधी या दुर्गुणी आदमी के साथ कोई नही रहना चाहता। अतः ज्ञानी कहते है कि क्रोध विष है-उससे बचो, तभी सुखी हो सकोगे।

क्रोध क्यो पैदा होता है? इसके भी कुछ कारण होते है। पन्नवणा सूत्र में कहा है-

१ अपने लिये क्रोध होता है
२ दूसरो के लिये
३ अपने और दूसरो के लिये क्रोध होता है।
४ खेत के लिये (खुली जगह के लिये)
५ मकान वगैरह के लिये
६ शरीर के लिये
७ भड उपकरण-वर्तन आदि के लिये
८ निरर्थक बात के लिये
९ जानते हुए क्रोध करना
१० अनजाने क्रोध करना।
११ उपशान्त भाव से क्रोध करना।
१२ अशान्त भाव से क्रोध करना। सत्ताके वल से क्रोध करना।
१३ अनंतानुवधी क्रोध-ससार वढे वैसा क्रोध करना। आदि कारण क्रोध के बताये गये है?
१४ अप्रत्याख्यानी १५ प्रत्याख्यानी और १६ सज्ज्वलन क्रोध से घर के मनुष्य भी दुखी हो जाते है। भाई-भाई मिटकर शत्रु वन जाते है।

कच्छ मे हाथीभाई और पदमसीभाई दो भाई थे। हाथीभाई वडे थे। वे रोज उपाश्रय मे आते थे। अष्टमी और चौदसको व्रत पौषध भी किया करते थे। पर स्वभाव उनका अच्छा नही था। व्याख्यान सुनते और धार्मिक क्रियाऐं करते हुए भी उनका क्रोधी स्वभाव मिटा नही था।

मन की तरंग मारलो बस हो गया भजन।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन!
आया कहां से कौन है तू, जायगा कहाँ ?
इतना ही दिल विचार लो बस हो गया भजन।

ज्ञानी कहते है—अगर आपने अपनी आदत नही सुधारी तो स्थानक मे आकर व्याख्यान सुनना और सामायिक करना भी क्या अर्थ रखता है? अगर आपने अपनी आदत सुधारली तो समझलो आपने प्रभु का भजन कर लिया और अपनी सामायिक भी सफल कर ली। क्योकि आत्म सुधार ही सच्ची सामायिक है।

मै कौन हूं? शरीर मन, वचन मै नही हू। मै तो चैतन देव आत्मा हू। कोई गाली भी देता है तो मुझे क्या? वह शरीर को ही देता है—जड को देता है, आत्मा तो उससे भिन्न है। शरीर तो पिजडे की तरह है। उसमे रहने वाला आतमराम—तोता उससे भिन्न है। पिजडा तोता नही और तोता पिजडा नही है। अत जो गाली देता है, नाम को देता है, शरीर को देता है, मेरा तो न शरीर है, न नाम है, उससे मुझे क्या होने वाला है? मुझे अपने स्वभाव मे रहना चाहिये। दुनिया की हर वस्तु अपने २ स्वभाव मे रहती है। शक्कर अपने स्वभाव मे रहती है, मिर्ची अपने स्वभाव मे रहती है। वे अपना स्वभाव नही छोडती तो मुझे अपना स्वभाव क्यो छोडना चाहिये।

मोहम्मद साहव एक दिन तालाव मे नहा रहे थे। पास मे ही एक विच्छु पानी मे गिर पडा था। मोहम्मद सा. ने उसे देखा तो हाथ से उसे वाहर निकालने लगे। इतने मे बिच्छू ने डक मारा तो मोहम्मद सा का हाथ हिल गया और विच्छू फिर से पानी मे जा गिरा। मोहम्मद सा ने फिर उसे निकाला। विच्छू ने भी दुवारा और डक मारा। मोहम्मद सा का हाथ काँपा और विच्छू फिर पानी मे गिर पडा। इस तरह तीन वार उन्होने निकाला और विच्छू ने भी तीन वार डक मारा पर वे रुके नही। चौथी वार जव वे निकालने लगे तो पास मे खडे हुए आदमी ने कहा—जाने दो इसे, वह तुम्हे डक मार रहा है ओर तुम उसे वचाते जा रहे हो?

मुहम्मद सा. ने कहा—विच्छू का स्वभाव डक मारने का है और मेरा स्वभाव दया का है। जव वह अपना स्वभाव नही छोड सकता तो मै कैसे अपना स्वभाव छोड दू?

हमारे शास्त्रो मे भी कहा है कि

अक्को सेज्जा परे भिक्खु; न तेसि पडिसंजले।
सरिसो न्होइ वालाणं तम्हा भिक्खू न संजले। ।।१।।
सोच्चाणं फरुसा भासा दारुणा जाम कंटगा
तुसिणो ओ उवे हेज्जा, न ताओ मणसीकरे ।।२।।

कोई मनुष्य क्रोध करे, जोर २ से बोले, अपशब्द कहे—गालिया दे तब भी मुनि उन पर क्रोध नही करते है। वे अपने स्वभाव मे स्थिर रहते है।

आपका स्वभाव कैसा है? आप भी अपने स्वभाव मे स्थिर रहते है या नही? याद रखिये, जहा तक अपनी आदत न सुधरे वहां तक धर्म क्रियाओ का कोई फल मिलने वाला नही है।

एक गोदाम मे रुई की गाठे पडी हो और एक चिनगारी लग जाय तो वह जल कर खाक हो जाती है, वैसे ही क्रोध की अग्नि यदि हृदय मे भरी पडी है तो उससे आपकी धर्मक्रियाये भी जल कर खाक हो जाती है। अतः क्रोध को नष्ट कर देना चाहिये। तभी आत्मा उन्नत बन सकता है।

आपने देखा होगा—बडे २ कारखानो मे, मीलो मे यह लिखा रहता है कि बीडी पीना मना है। इसी तरह आपको भी अपनी दुकान और घर मे यह बोर्ड लगा देना चाहिये कि यहाँ क्रोध करना मना है। ऐसा आप तभी कर सकते है जब कि पहले स्वय सुधर जाय।

आज बहिने तपस्या करती है—अट्ठाई करती है, पर शाम को वहू की मा साता पूछने न आवे तो वह वहू से ही झगडा करने लग जाती है। यह कैसी तपस्या है? तपस्या करके भी अगर आदत मे सुधार न कर सको तो फिर वह क्या फल दे सकेगी? इस पर गभीरता से आपको विचार करना चाहिये।

जैसा सुनो वैसा ही जीवन मे आचरण भी करो। शास्त्र मे कहा है—

जं सोच्चा पडिवज्जन्ति तवं खंतिमहिसयं

व्याख्यान सुनकर तदनुसार जीवन मे आचरण करने वाला ही अपना उत्थान कर सकता है।

हाथी भाई रोज व्याख्यान सुनते थे, पर मन पर उसका कुछ भी असर नही होता था। एक दिन दोनो भाइयो ने मिल कर अपने घर का बटवारा कर लेना तय किया। सब चीज आधी आधी ले लो। एक खडिया (दवात) बचा, जिसके लिये खीचतान होने लगी। छोटाभाई कहता मै इसे रखूगा और बडा भाई कहता, नही, इसे तो मै रखूगा। जिद पर दोनो चढ गये। कोर्ट तक पहुच गये। वकीलो को रुपया लुटाया और दोनो एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। दोनो भाई दुश्मन बन गये। बोलना तो दूर, एक दूसरे को देखना भी पसंद नही करने लगे।

क्रोध प्रीति को नष्ट कर देता है। क्रोध से विनय का भी नाश होता है।

गुरु शिष्य को हितशिक्षा देते हुए कठोर वचन भी कह दे तो शिष्य को बुरा नही मानना चाहिये। क्योकि वह उसके भले के लिये ही कहते है।

लेकिन अगर शिष्य यह कहें कि–आप मुझे ही मुझे कहते है, उसको तो कुछ नहीं कहते और वह रुष्ट हो जाता है तो यह शिष्य का अविनय ही कहा जायगा।

भगवान ने तो स्पष्ट कहा है कि अगर साधक जीवन में भी किसी से झगडा हो जाय या मन मुटाव हो जाय तो उसे क्षमायाचना किये बिना दूसरा कोई काम नही करना चाहिये। यहा तक कि अगर शौच जाने की भी इच्छा हो तो उसके लिये भी भगवान ने आज्ञा नही दी है। दूसरी जगह भगवान ने साधु को यह आज्ञा दी है कि वह भयंकर वर्षा में भी शौच निवृत्ति के लिये जाना चाहे तो वाहर जा सकता है, परन्तु यदि किसी साधुने किसी के प्रति क्रोध किया हो तो उससे क्षमायाचना किये बिना वह शौच निवृत्ति के लिये भी वाहर नही जा सकता है। पहले उससे क्षमायाचना करे और वाद मे वह दूसरा काम करे। ऐसा स्पष्ट निर्देश भगवान ने साधुओं के लिये दिया है।

वह शिष्य गुरु से रुष्ट हो जाता है, पर गुरु तो गुरु ही होते है, वे उसके पास आते है। उन्हे आते देख शिष्य का कर्तव्य है कि वह भी खडा हो जाय, पर वह शिष्य खड़ा नही होता है। लेकिन गुरु समभाव मे रहते है। उनका कोई आदर करे या न करे, नमस्कार करे या न करे, इच्छा हो तो साथ मे भोजन करे या न करे, साथ मे रहे या न रहे, अपराधो की क्षमायाचना करे या न करे, पर गुरु अपना समभाव नही छोडते है। गुरु उस शिष्य से कहते है– हे शिष्य! हितशिक्षा देते हुए मेरे से कुछ कठोर शब्द कहे गये हों और जिनसे तुम्हे दुख हुआ हो तो मै क्षमायाचना करता हू। यह सुनकर शिष्य को भी क्षमायाचना करनी चाहिये, पर वह न करे तो भगवान कहते है–वह साधु वन कर भी विराधक हो जाता है और क्षमायाचना करने वाला आराधक। नमन मे तो गुण ही गुण है। जो नम्र वनता है वही ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। वृहत्कल्प मे कहा है—

से किमाहु भन्ते उवस्समं!
उवस्समं सारं सामण्णं

उपशम क्या है? उपशम ही चारित्र का सार है। क्षमा में धर्म रहा हुआ है। आप रोज तो प्रतिक्रमण मे वोलते हो–

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा वि खमंतु मे
मित्ति में सव्व भूएसु वेरं मज्झं न केणई।

कितना स्पष्ट निर्देश है! फिर भी अज्ञानी जीव समझते नहीं है। क्रोध की गाठ मन मे ऐसी वाध लेते है कि जीवन भर भाई से भाई भी बोलते

नही है? कैसी नादानी है? हाथी भाई रोज उपाश्रय मे आते है, पर वे अभी तक क्षमा को नही समझ सके कि क्षमा क्या चीज है? नाम तो हाथी था, पर गुण हाथी के कहा थे?

गणे नहि गंभीर जन, दुर्जन तणा अवाज।
श्वान भसे सो सामटा पण गणे नहि गजराज।

हाथी को देखकर कुत्ते भोके या कोई उस पर धूल उडाये, हाथी उस तरफ ध्यान नही देता है। वह तो सागरवर गंभीरा—सागर की तरह गंभीर होकर चलता रहता है। आप भी हाथी की तरह गंभीर बनो। मौन धारण करो। बने वहां तक कम बोलो। लडाई होने का कोई मौका ही नही मिलेगा। लडाई झगडा तो ज्यादा बोलने से ही होता है—

रजनु गज थाता नहि वार छे रे
डगले ने पगले घर्षण थाय—
संसार क्लेशनु केन्द्र स्थान छे।
चालता रगडा झगडा थाय
होली हैया मां भडभडतीबले रे
आंखु गृहजीवन होमाय—संसार क्लेशनुं।

संसार झगडे का केन्द्र स्थान है। बातका बतंगड बनते यहां देर नही लगती है। हजारो रुपया हाथी भाई और पदमसी भाई का पूरा हो गया, महीनो निकल गये, पर सार क्या निकला? जज ने फैसला दिया कि खडिया के दो टुकडे कर दिये जाय, एक बडा भाई ले ले, दूसरा छोटाभाई ले ले। बधुओ। तू तू और मै मै का हाल भी अजब है। जहा सस्कार अच्छे नही होते वही ये मानसिक बीमारियां घर किये रहती है। आवश्यकता है आज संस्कारो को सुन्दर बनाने की। लडकियो को आप विवाह शादी मे रुपया पैसा और आभूषण देते हो, उसके बजाय आप सुसस्कार दो तो वे ज्यादा सुखी बन सकती है।

पहले के समय मे संबंध को जीवन भर निभाया जाता था। एक बार सबध कर लिया तो फिर उसको तोडने का सवाल ही पैदा नही होता था। पर आज तो सबध करना और तोडना मामूली बात हो गई है। आज आप लडकियो को पढ़ाते है, उसमे भी आपकी भावना तो यही रहती है कि आगे चलकर अगर पति पत्नी मे न बनी तो लडकी अपने पैरो पर तो खडी हो सकेगी? विचारणीय बात यह भी है कि कही आज की पढाई ही तो इन बीमारियों की जड नही है? पति पत्नी जैसे आदर्श संबध की तो आज बात ही नही रही है। पाश्चात्य संस्कृति की यह हवा हमारे यहा भी ऐसी घुस गई है कि चाहे जब सबंध विच्छेद-

करलो। वहा की अच्छाइयो का तो हमने अनुकरण नही किया, पर बुराई को अवश्य ग्रहण कर लिया है। गाधीजी को आप जानते ही है। वे कितने पढे हुए थे—बैरिस्टर थे। लेकिन कस्तुरबा कितनी पढी हुई थी! फिर भी दोनों में मैल कैसा था? लेकिन आज क्या हो रहा है?

महेन्द्र शादी करके आता है। बहू माल—जेवर साथ में बहुत लाती है। सब पडौसी और संबधी देखने आते है। बहू को देखकर औरते महेन्द्र की मा से कहती है— बहू तो सुन्दर है बेन, माल भी बहुत लेकर आई है। महेन्द्र की मा कहती है— बहू कैसी है! यह तो अनुभव से ही मालूम होगा। रूप रंग अच्छा हो और गुण न हो तो जीवन में शान्ति कहां रहती है?

लडकी पढी—लिखी थी। उसे तो सासु का इतना सा वचन भी सहन नही हुआ। उसने महेन्द्र से कहा—मुझे आये तो देर भी नही हुई कि तुम्हारी मा तो मेरी बुराई ही करने लग गई है।

महेन्द्र पूछता है—मेरी मा ने ऐसा क्या कह दिया है? तेरी मा ने तो मुझे अपने पडौसियो की औरतो को इकट्ठा कर ऐसी २ गालिया दी है कि तू भी सुनेगी तो हैरान हो जायगी। मेरी मा तो सती जैसी है, फिर भी तेरी मा ने मुझे १२ बाप का बताया था?

मेरी मा ने तुझे ऐसा तो कुछ नही कहा है? तुझे मेरी मा की सेवा करनी पडेगी। बोल कर सकेगी न, नही तो यह रास्ता खुला पड़ा है—तुम अभी जा सकती हो?

महेन्द्र जैसे लडके घर २ में हो तो सासू—बहूका घर्षण ही पैदा न हो, पर आज ऐसे महेन्द्र कितने है? शादी करके आये नही कि मा से लडका कहने लग जाता है—मैं कह देता हूं मां, उसे कुछ कहना नही। सहनशीलता का अभाव ही इस बीमारी का कारण होता है। जहा सहनशीलता होती है वहा झगडा होने का प्रसंग ही नही आता।

हाथी भाई के झगडे का निकाल हो गया। जज ने आधा आधा खडिया दोनो को बांट दिया। झगड़े का फैसला तो हो गया पर मन की गाट नही मिटी। दोनो भाई एक दूसरे के दुश्मन जैसे ही बने रहे।

कुछ दिनों बाद हाथी भाई बीमार हो जाता है। चल फिर भी नही सकता। छोटे भाई पदमसी को जब यह मालूम होता है तो वह सोचता है—वे मेरे बड़े भाई है, पिता की जगह है, मैंने उनके साथ लड़ाई करके अच्छा नही किया

है, मुझे उनसे क्षमायाचना करनी ही चाहिये। वह तो अपने मन में पश्चात्ताप करता है। लेकिन हाथीभाई मुझ से बोलेगा या नही? यह जानने के लिये वह अपने मित्र को उनके पास भेजता है और अपने आने के समाचार कहलाता है। मित्र हाथीभाई से जाकर कहता है, पर हाथीभाई उसका नाम सुनना भी पसद नही करता। वह कहता है–मै उसका मुह देखना भी पाप समझता हू। मित्र आकर पदमसी से यह बात कह देता है। लेकिन पदमसी का दिल नही मानता। वह जाता है और हाथीभाई के पैरों मे सिर रख कर माफी मागता है। हाथीभाई मुह ढंककर सो जाता है, पर पदमसीभाई रोते हुए कहता है। भाई! मुझे माफ करो, हम दोनो भाई है, दुश्मन नही। छोटीसी बात को लेकर हमने क्रोध किया और मनमुटाव कर हजारो रुपयो का पानी कर दिया, पर सार कुछ नही निकला। आप बडे है, मेरे पिता तुल्य है, मुझे क्षमा कर दो। कहिये, इसमें गति किसकी बन रही है और किसकी बिगड रही है? भगवानने तो कहा है–जो क्षमायाचना करता है वही आराधक है, जो नही करता वह विराधक बनता है–उसीकी गति भी बिगडती है। उपशम ही चारित्र का सार है। भूल न करना अच्छा है, यह दैवी लक्षण है। भूल करना मानव का स्वभाव है, भूल उससे हो जाती है। भूल करके भी जो उसे सुधार लेता है वही महामानव बनता है। जो भूल पर भूल किये जाता है वह मानव नही दानव ही कहा जाता है। अत ज्ञानी कहते है कषायो के वशीभूत मत बनो। क्रोध के वशीभूत मत बनो।

क्रोध महा चंडाल ध्रुजावे छाती
क्रोध महा चंडाळ आंख करावे राती
क्रोध महा चंडाल न जाणे खार के कुडो
क्रोध महा चंडाल जाय नरक मां उंडो

अत: क्रोध को छोडो –आत्मा पर उसका मैल मत लगने दो। हमेशा निर्विकारी रहने का प्रयत्न करो–यही आत्मोत्थान का राजमार्ग है–

भला छो तो भला रहे जो बुरु थावा नहि देजो।
तमारा दुश्मनो नुं पण भला थइने भलु करजो।

सुधर्मास्वामी ऐसे ही थे–वे खुद भी अकषायी–अक्रोधी थे और दूसरो को भी उससे बचाने वाले थे। जो जीव क्रोध का त्याग कर क्षमा को धारण करेगे वे ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे।

२७–७–६८

[२८]

सुधर्मास्वामी गुणो के भंडार है, उनके गुणों का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते हैं कि वे जीय कोहे—क्रोध को जीतने वाले थे।

क्रोध आत्माकी दुर्बलता का प्रतीक है। जो आत्मा जितना कमजोर होता है उतना ही वह क्रोध। र्भ। होता है।

क्रोध सद्‌गुणो का घातक होता है। ज्ञानियो ने उसे नरक का द्वार कहा है—

हां रे क्रोध जाणो जमपुर केरुं बारुं
हां रे जाशे नरक मां क्रोध करनारूं—रे क्रोध कालो
हां रे क्रोध कालो रे क्रोध कालो
हां रे बहु समजीने क्रोधनुं मो वालो रे—क्रोध

क्रोधी मनुष्य मर कर नरक मे जाते है, सर्प बनते हैं और हिंसक प्राणियों के रूप मे जन्म लेते हैं। इस तरह वे नीच योनियो में ही उत्पन्न होते है। वैसे चारो गतियो मे कपायो की मात्रा विद्यमान रहती है, पर किस गति में उसकी मात्रा ज्यादा होती है उसका वर्णन करते हुए शास्त्र में कहा गया है—

नरक गति मे क्रोध की मात्रा ज्यादा होतो है।
मनुष्य गति मे मानकी मात्रा ज्यादा होती है।
तिर्यंच गति मे माया की मात्रा ज्यादा होती है।
देव गति मे लोभ की मात्रा ज्यादा होती है।

क्रोध का परिणाम नरक है अतः क्रोध से बचो। वह आता है तो सिर गरम हो जाता है और आखे लाल हो जाती है। उस समय बादाम का हलवा भी काम नही देता। अतः क्रोध से शारीरिक नुकसान तो होता ही है, आध्यात्मिक नुकशान भी बहुत होता है।

वैज्ञानिको ने क्रोध के भी फोटो लिये है। उन्होने एक बिल्ली को पहले बहुत मारा—पीटा और क्रुद्ध बना दिया, तदनंतर उसे दूध पिलाया और उसका एक्सरे लिया तो वह दूध भी उसके पेट में जाकर जहर के रूप मे परिणत हो गया और बिल्ली उससे बीमार हो गई। दूसरी बार वैज्ञानिकों ने बिल्ली को बडे प्रेम से खिलाया-पिलाया और फिर एक्सरे निकाला तो वही दूध उसके लिये अमृत हो गया। दूध उसके शरीर मे गया तो वह पोषक तत्व के रूप में परिणत हो गया। अतः क्रोध मानसिक बीमारी है। उससे शरीर भी निर्बल रहता है। ब्लडप्रेशर जैसी बीमारियां क्रोध के कारण ही शरीर मे उत्पन्न हो जाती है।

क्रोध चार तरह का कहा गया है—

१ अनंतानुबंधी क्रोध
२ अप्रत्याख्यानी क्रोध
३ प्रत्याख्यानी क्रोध
४ संज्वलन क्रोध

१ अनतानुबंधी क्रोध–जैसे पर्वत मे दरार पड जाती है तो फिर वह मिटती नही है। उसी तरह यह क्रोध भी आत्मा में आजीवन रहता है, जीवन पर्यन्त फिर जाता नहीं है। वीतराग धर्म मे तीव्रतम अरुचि रखना अनंतानुंबधी क्रोध कहा गया है।

२ अप्रत्याख्यानी क्रोध—जैसे तालाब का पानी सूख जाता है तो तालाब की मिट्टी मे दरारे पड़ जाती है, परन्तु वे वर्षा होने से जैसे वापिस मिट जाती है वैसे ही यह क्रोध भी आत्मा मे उत्पन्न होता है और मिट भी जाता है। इसकी अधिक से अधिक १२ मास तक की स्थिति होती है।

३ प्रत्यारख्यानी क्रोध—यह बालू-रेत की लकीर जैसा होता है। हवा आई कि बालू की रेखा मिट जाती है वैसे हो यह क्रोध भी आत्मा मे अधिक से अधिक ४ मास तक रह सकता है।

४ संज्वलन क्रोध–पानी की लकीर जैसा। जैसे समुद्र मे ज्वार और भाटा आता है और उससे एक लकीर सी पड जाती है, जो १५ दिन बाद ज्वार-भाटा आने पर वापिस मिट जाती है। उसी तरह यह क्रोध भी आत्मा में अधिक से अधिक १५ दिन तक रह सकता है।

ये चार तरह के क्रोध बताये गये है, इनमे से कौनसा क्रोध आप मे है? इसका भी विचार करिये। कोई भी काम अपने खिलाफ हो जाय कि आप क्रोध कर बैठते हो, पुत्र, पुत्री, स्त्री, वहू, अगर आपका कहा न माने तो आप क्रोध कर बैठते हो। लेकिन ज्ञानी कहते है यह ठीक नही है। आप निमित्त को दोष दे रहे हो, पर दोष तो आपका ही है, यह भूल क्यो रहे हो? उपादान तो आप स्वयं हो, इसको मत भूलो कि जैसे कर्म पहले किये है वैसे ही फल आपको मिल रहे है। अनादेय नाम कर्म का उदय होता है तो वचन का प्रभुत्व नही रहता है, उसको कोई सुनना भी नही चाहता। घर मे भी स्त्री, पुत्र –पुत्री कोई उसको नही सुनता, फलतः आप उन पर क्रोध करने लग जाते हो, यह ठीक नही है।

एक व्यक्ति संघ का काम करता है। दिन रात मेहनत करता है, पर उसे अपयश ही मिलता है तो इसे अयशोकीर्तिनाम कर्म का उदय समझकर शान्त ही रहना चाहिये। दूसरों का दोप नही देखना चाहिये। अपना दोप ही देखना चाहिये।

क्रोध अज्ञान से ही पैदा होता है। दो भाई है। दोनो न्यारे २ हो जाते है। एक धनवान हो जाता है तो दूसरा भिखारी बन जाता है। भाग्य की ही बात कही

जायगी। जिसने जैसा किया है वैसा ही फल मिल रहा है। नाटक में जैसे अलग २ पात्र होते है और सब अपना २ पार्ट करते है– कोई राजा वनता है, कोई मंत्री, कोई सिपाही तो कोई पुरोहित सब अपना २ पार्ट अदा करते है वैसेही यह ससार भी एक रंगमंच है, उसपर आकर आत्मा भी अपना २ पार्ट अदा कर रही है, जिसके जैसे कर्म है वैसे वे भोग रही है। जिसको आदेय नाम कर्म का उदय है वह नेता वन जाता है, उसकी बात सभी वडे प्रेम से सुनते है और जिसको अनादेय कर्मका उदय है उससे सभी घृणा करते हैं। कोई भी उसकी वात सुनना नही चाहता। इस तरह उपादान और निमित को समझो तभी ऐसा ज्ञान हो सकता है। अतःज्ञानी कहते है, पहले सिद्धांतो को समझो, क्रोध को छोडो, समता धारण करो तभी तुम आगे वढ सकोगे।

एक विद्वान लेखक था, जिसने ३० वर्ष को सतत मेहनत से एक डायरी तैयार की थी। घरमे उसके एक डायमंड नामका कुत्ता भी साथ मे रहता था। डायरी टेवल पर पडी थी, पास मे ही दीया जल रहा था। लेखक अपनी कुर्सी से उठा और अंदर चाय पीने गया। इधर कुत्ता उछल कर टेवल पर आया जिससे दीपक उलट गया और वह डायरी जल गई। लेखक वाहर आया तब तक तो वह जलकर राख हो चुकी थी। अपनी ३० वर्ष की मेहनत नष्ट हो गई, पर वह कुछ नही वोला, कुत्ते पर क्रोधित नही हुआ। वह केवल इतना ही बोला कि 'डायमंड तुझे क्या पता कि इसमें मेरी कितनी मेहनत थी? समता का कितना उच्चादर्श है? क्या आप मे भी ऐसी समता है? याद रखिये क्रोध को छोडे विना ऐसी समता नही आ सकती है। क्षमा ही वीर का भूषण है, उसे धारण करो। तभी आत्मा का उत्थान हो सकेगा।

भगवान कितने शक्तिशाली थे? फिर भी उन्होने क्षमा धारण की। नीच पुरुषो के कठोर वचन सहे। तरह २ के महान् परिषह सहन किये, पर समता से नही हटे, उस पर डटे रहे। और अपना कर्जा चुकाते रहे। जिसका भी वाकी था उसे हसते २ चुकाया। वीर पुरुष ही ऐसा कर सकते है, कायर तो छिपते फिरते हैं। याद रखिये यह मानव भव तो कर्जा चुकाने के लिये ही मिलता है, नया कर्जा करने के लिये नही। जो अपना कर्जा चुका देते है वे सेठ वन जाते है—स्वामी वन जाते है जो रख नही चुका पाते, ऊपर से नया कर्जा ले लेते है वे नौकर की तरह दुर्गति को प्राप्त होते है।

जो महापुरुष होते है वे शरीर की परवाह नही करते है। शरीर से चाहे चमडा उतारो या शरीरकी हड्डियो को घाणी मे पील डालो, पर वे क्रोध को अपने पास नही आने देते है, समभाव पूर्वक सब सहन करते है तभी तो वे मोक्ष प्राप्त करते है।

भगवान नेमिनाथ के शिष्य और देवकी के लाडले गजसुकुमाल का जीवन तो देखिये। कैसी सुकोमल काया! राजसी ठाठ वाट मे पला वह राजकुमार जिस दिन

नेमिनाथ के पास दीक्षित होता है उसी दिन उसके सिरपर पाल बाधकर सोमिल ब्राह्मण अग्नि के धधकते अंगारे रख देता है। कैसा भयंकर उपसर्ग ? जिस राजकुमारने कभी पैदल चलकर भी काटो का परिषह नही जाना, वही सिरपर धधकते हुए अंगारो को भी समभावपूर्वक सहन कर रहा है। मन मे खेद नहीं करते, अखड आनंदका झरना उनका सूखता नही। वे समझते है कि जलने वाला शरीर है— मुझे कोई जला नही सकता। ऐसे ही महापुरुष मोक्षको प्राप्त करते है।

हमारा शत्रु दूसरा कोई नही है। हम स्वय अपना विगाडते है, बुरा करते है। आत्मा ही आत्माका शत्रु है, अत. आत्म तत्व को पहचानो, क्रोध को छोडो और क्षमा का आचरण करो। क्रोधी मनुष्य स्वच्छंदी बन जाता है। श्रीमद् ने कहा है-

स्वच्छंद मत आग्रहतजी, वर्ते सद्गुरु लक्ष।
समकित तेने भांरव्यु कारण गणी प्रत्यक्ष।
मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय।
जातां सद्गुरू शरणमां अल्प प्रयासे जाय।

अपनी इच्छा मे मोक्ष नही है, मोक्ष तो भगवान के वताये हुए मार्ग पर चलने से ही मिल सकता है।

छन्दं निरोहेण उव्वेइ मोक्खं

जो साधक सद्गुरु का लक्ष्य समझ कर उस ओर अग्रसर होता है उसीकी अन्तर्ज्योति प्रकट हो जाती है और स्वच्छद प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। फिर वह कषायो को छोडता हुआ एकदिन अजर-अमर पथ का पथिक बन जाता है।

मताग्रह, दुराग्रह, कदाग्रह को जब तक नही छोड़ोगे तब तक आत्माका उत्थान नही हो सकता। सूत्र सिद्धान्तो मे रुचि पैदा करो, उन्हे सच्चा समझो और उन पर पूर्ण विश्वास करो, तभी समकित आ सकेगी और संसार का भी अंत हो सकेगा। तत्वार्थ सूत्र मे कहा है कि—

तत्वार्थ श्रद्धानम् सम्यक् दर्शनम्

तत्वो पर श्रद्धा रखना ही सम्यग् दर्शन है। समकित विना सकाम निर्जरा नही हो सकती है। यथार्थ श्रद्धा ही सम्यग् दर्शन है।

नौ तत्वो का ज्ञान गुरु से करना चाहिये। अपने आप करने से तो यथार्थ बोध नही हो पाता। कभी २ विपरीत ज्ञान भी हो जाता है अतः गुरु द्वारा ही तत्वो का ज्ञान करना चाहिये। तभी वह ज्ञान कहा जाता है।

रमेश करोडपति सेठ का लडका है। उसका पिता करोडो की जायदाद उसके लिये छोड गया। हजारो रुपयो की स्थायी आय वे छोड गये। ताकि लडके को कभी कोई कष्ट न आवे। इस तरह मनुष्य आज अपने लडके के लिये तो वहुत कुछ

कर जाता है, पर वह अपनी आत्मा के लिये कुछ नही करता। समझ लीजिये चार लडके है तो चारो को अपना २ हिस्सा देते है। धर्म को भी एक लडका समझ कर उसका भी भाग करना चाहिए। पर आज ऐसा कौन करता है? जब कि काम तो धर्म ही आने वाला है। याद रखिये, पुत्र तुम्हे सुख नही दे सकेगें, सच्चा सुख तो धर्म ही दे सकता है—

खेत वत्थुंहिरण्णं च, पसवो दास पौरुषं।
चत्तारिकाम खंधाणि तत्थ से उववज्जइ।

एक लडका जन्मते ही करोडपती कहलाने लगता है और एक भिखारी के यहा जन्म लेता है, यह क्या सूचित करता है? पुण्य की कमाई करो, पुण्य कमाओगे तो सुख मिल सकेगा। पैसा मिला है तो उसका सदुपयोग भी करो। कौन भाई आज दुखी है? कौन बीमार है? किसके पास अन्न-वस्त्र का भी ठिकाना नही है? यह देखो और उनकी मदद करो। उसी मे तुम्हारे धन की सार्थकता है। मरे बाद क्या होगा? यह कौन जानता है? जो अपने हाथ से दे जाता है वही अपने साथ भी ले जाता है।

वह सेठ करोडपती था, लाखो का दान उसने दिया था। गरीब भाई बहिनो की उसने सहायता की थी। धन प्राप्त करने पर भी अगर तुम गरीबो का दुख दूर न कर सको तो यह धन तुम्हारे किस काम का है? उससे तो जितना लाभ ले सको ले लो। इसी मे बुद्धिमानी है।

सेठ दीर्घदृष्टि वाला था। उसने गुप्त खजाना भी रखा था जिसका किसी को पता नही था। लेकिन उसके बारे मे उसने एक बही मे लिख रखा था।

रमेश पढ़ लिख कर बडा होता है। सेठ उसकी शादी कर देता है। कुछ दिनो बाद सेठ का स्वर्गवास हो जाता है। अब रमेश ही सारी सम्पत्ति का मालिक बन जाता है। गुड होता है तो मक्खिया भी अपने आप आजाती है। रमेश के यार-दोस्त भी उसके पास आने लगे और वे रमेश से फायदा उठाने लगे। कोई ५ हजार रुपया मागता है तो कोई दस हजार। रमेश मित्र समझ कर रुपये दे देता है। स्टाम्प पर भी नहीं लिखाता है। मित्रो की संगति उसे ऐसी मिली कि वह जुआं खेलने लग जाता है। घर मे किसी को भी पता नही कि रमेश कहा जाता है और क्या करता है? जुआ की आदत उसे ऐसी लग जाती है कि वह अपनी सारी जायदाद उसमे घुमा बैठता है। पास मे कुछ नही रहता है। यार-दोस्त भी अब उसके पास नहीं आते है। रमेश मुसीबत मे पड जाता है। उसने जिन मित्रो को रुपये उधार दिये थे, उनके पास जाता है और रुपये मागता है तो वे आना कानी करने लगते है— क्योंकि लिखा पढी तो कुछ की नहीं थी अत. एक पाई भी कोई उसे नहीं देता है।

आपत्ति के मुसीबत मां रडे सौ पगमां पडी,
थई जाये काम पछी ओलखाण कांइये नहीं।
एवी दुनिया नी चाल मां फसायो हुं येवली
मारामारा करी पस्तायो छुं हुं पेट भरी।

मुसीबत मे कौन किसकी मदद करता है? जव जरूरत होती है तभी लोग पैरों मे गिरते है; जरूरत पूरी हुई कि फिर उसको कोई नही देखता, यही दुनिया का हाल है।

रमेश पश्चात्ताप करता है, पर किये वाद पश्चात्ताप क्या काम का? वह सोचता है– मैंने मेरे वाप के नाम पर जुआ खेल कर कलक लगा दिया– वुरी संगति मे फंस कर अपना घर वर्वाद कर दिया–सारी सम्पत्ति वरवाद कर दी, अव क्या करूं? घर मे तो खाने का भी ठिकाना नही है! विचार करते २ उसे याद आया कि मेरे पिता यह कहा करते थे कि पानु फरे ने सोनु झरे–पुराने चौपडे (वहीखाते) वहुत पडे है उनको देखूं तो कही कुछ मिल सकता है। वह अपनी पुरानी वहियां टटोलने लगता है। देखते २ एक वही मे उस गुप्त खजाने की वात मिल आई। लिखा था–यहा से १ मील दूर शंकरजी के मंदिर के शिखर की छाया मे एक लाख मोहरो का चुरू गाड रखा है। उसे पौष सुदी १० को दिन मे १० वजे वाद खोद कर निकाला जा सकता है। सेठने पूरी विधि वही में लिख दी थी, पर रमेश को इसका ज्ञान नही हुआ। वह दूसरे ही दिन मजदूर को लेकर वहा पहुचा और मंदिर को खुदवा दिया, पर चुरू का कही पता न चला। विवश हो घर लौटा और सोचता रहा कि मेरे पिता कभी झूठ तो नही लिखते थे, फिर वह खजाना मुझे क्यो नही मिला?

वह अपने पिता के मित्र माणकलालभाई के पास जाता है और वह वही वताता है। माणकलाल भाई कहता है– तेरे पिता तो करोडपती थे, उनके पास ऐसे कई चुरू हो सकते है। रमेश कहता है– परन्तु काका मुझे तो चुरू वहा मिला नही है।

काकाने कहा–तू पौष सुद १० के दिन मेरे पास आना, अभी तेने जो खोदा है उसे ठीक करवा दे। उस दिन मै आकर खुदाई कराऊंगा। चुरू जरूर तुझे मिल जायगा।

रमेशने कहा–लेकिन काका मेरे पास तो एक पैसा भी नही है, मै कैसे उसे ठीक कराऊ! घर मे भी खाने के लाले पड रहे है।

माणकलाल भाई ने पूछा–वेटा, यह सव रुपया तुमने कहा घुमा दिया?

रमेश वोला–काका, वुरी संगति मे पड कर जुआ खेला और मारा घर वरवाद कर दिया। कुछ रुपया यार दोस्त हजम कर गये। अव वे देने को भी तैयार नही है।

काकाने अपने पास से कुछ रुपये दिये और रमेश उन्हें लेकर अपने घर वापस

लौट आया। उसने वह स्थान ठीक करवाया और पौष सुद १० का इन्तजार करने लगा। वह दिन आया कि रमेश गाडी लेकर काका के घर पहुंचा और काका को लेकर मंदिर पर पहुच गया। १० वजे बाद शिखर की छाया जहा पडती थी वहीं काका खुदाई करने को कहता है। ऊपर २ तो मिट्टी और पत्थर ही निकलते है। आप भी हृदय का मंथन करोगे तो ऊपर २ तो विकारो की मिट्टी ही दिखाई देगी, पर जब गहरे उतरोगे तो आत्मा का अखूट खजाना हाथ आ जायगा। गहरे उतरने का प्रयत्न करो, मोती तो गहराई में ही मिलते है। गुरु की आज्ञा मे जो इन सूत्र–सिद्धान्तो का अध्ययन करते है वे ही उस अखूट खजाने को प्राप्त करने मे समर्थ वनते है।

काका ने कहा–मिट्टी और पत्थरो को देखकर घबरा मत! तेरे बाप ने जो लिखा है वही सच है। चुरू यहा मिलना ही चाहिये। जरा गहरा खोदेगे तो वह अवश्य मिल जायगा।

सेठ का लडका अगर चौपडे नही देखता तो वह कगाल ही बना रहता। उसे यह गुप्त खजाना कैसे मिलता? हमारे पिता भगवान महावीर भी हमारे लिये चौपडे लिख गये है, उन्हे देखो, उसमें अखूट खजाना भरा पडा है, उसकी चावी आपको मिल जायगी तो आप भी रमेश की तरह धनवान बन जाओगे। सारे ससार के स्वामी वन जाओगे।

आज कल कई लोग विदेश जाते है और अमेरिका, इग्लैड पेरिस आदि देख कर आते है–

विलोक्यु फ्रांस ने इग्लांड वली जापान स्वीजरलॅंड
अमेरिकानुं न्युं इग्लांड नकामी दृष्टि ताणी छे।
जगत ना नाथने जोया विना सहु धूलधाणी छे।
प्रभु निरख्या विना नयने उभी चोराशी खाणी छे

आप सारी दुनिया देख आ ओ, पर आत्मा को न देखो तो वह सव देखना भी वेकार होता है। उससे क्या भला होने वाला है? जो जानने योग्य है उसे जानो, गुरु से उसकी पहचान करो तभी तुम्हारा हित हो सकेगा।

रमेश को खोदने पर मोहरो का घडा मिल जाता है। वह १०० मोहरे काका को देना चाहता है, पर काका कहता है, वेटा यह माल तेरा ही है, मुझे एक भी मोहर नही चाहिये। लेकिन मेरी इतनी वाते याद रखना कि अव से जुआ कभी नही खेलना, न नीच आदमियो की संगति करना। रोज उपाश्रय मे जाना और गुरुदेव के दर्शन कर लिया करना, वने उतना स्वाध्याय करना। अगर तू मेरी इन वातो का ध्यान रखेगा तो मुझे १०० मोहरो से भी ज्यादा आनद प्राप्त होगा। आप भी कुछ सीखनेका प्रयत्न करो। रोज २ उपाश्रय मे आते हो और व्याख्यान सुनते हो

तो जीवन मे भी उतारने का प्रयत्न करो। धर्म ही जीवन का सच्चा साथी है, यही तारने तिराने वाला है। जो जीव ऐसे पवित्र धर्म का शरण ग्रहण करेंगे वे ही अपना कल्याण कर सकेंगे।

ता. २८-७-६८

[२१]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते है कि वे मान को जीतनेवाले थे। जीय माणे।

जगत मे मान कषाय भी बहुत देखा जाता है। मान के वशीभूत आत्मा हिताहित को भी भूल जाता है।

मान को चार स्तंभ की उपमा दी गई है :—

१ अनन्तानुबंधी मान

२ अप्रत्याख्यानी मान

३ प्रत्याख्यानी मान

४ संज्वलन मान

पत्थर के स्तभ जैसा मान अनन्तानुबंधी मान कहा जाता है। पत्थर झुकाने पर भी झुकता नही है। वैसे ही अनन्तानुबंधी मान वाला भी यह समझता है कि मै कहता हूं वही सच है, सच मेरा है : ऐसा वह नही कहता। श्रीमद् रायचन्द्र ने कहा है कि मान का यह स्तंभ अगर दुनिया मे नही होता तो लोग यहीं मोक्ष प्राप्त कर लेते।

मानी पुरुष अपने को ही सब कुछ समझता है। अदर से भले ही खोखला हो, पर ऊपर से तो ऐसा दिखता है कि उसके जैसा कोई नही है। वह यह समझता रहता है कि मै चाहू तो संघ मे फूट पडा दू, चाहूं तो जाति में फूट पडा दू, ऐसा मै हूं। अनन्तानुबंधी मान ऐसा ही होता है।

हमारा जीव अनन्ती वार विष्टा का कीडा भी बना है। आज तुम मनुष्य भव पाकर गर्व अनुभव करते हों, पर उस समय तुम्हारा मान कहा चला गया था जब कि सारा दिन विष्टा में लिपटा रहना पडता था ? मानी जन उच्च गति के बजाय नीच गति मे ही ज्यादा जाते हैं।

आचाराग में कहा है—

हे गौतम ! असंख्य वार यह जीव उच्च गोत्र मे और ऊंच गति मे उत्पन्न हुआ है। अनेकवार यह जीव नीच गौत्र और नीच गति मे भी उत्पन्न हुआ है। अत: उच्च कौन ? नीच कौन ? आत्मा तो दोनों ही गति में एक है।

अच्छे २ कुटुम्बो मे भी आज जुआ खेलना, वैश्यावृत्ति करना, अखाद्य पदार्थ खाना आदि २ काम होते देखे जाते है। जैन कुटुम्ब मे जन्म लेकर भी लोग आज ओवल्टीन पीते है, जिसमे कि अँडो का रस मिलाया जाता है। केडवरी चोकलेट खाते है, उसमे भी अडे का रस मिलाया जाता है। पर अज्ञानी नही समझते कि मै क्या खा रहा हू ! क्या पी रहा हू ? श्रावक तो मद्य–मास के त्यागी होते है। वे मक्खन और शहद भी नही खाते है। क्योकि ये भी विगय कहे गये है। जिनका श्रावक को त्याग होता है। गौशाला, जो कि भगवान का विराधक था, उसके श्रावक भी विगय नही खाते थे। तो आप कैसे श्रावक हो ? अगर आपको भी श्रावक वनना है तो सर्व प्रथम महा विगय का तो त्याग करना ही होगा।

गौशाले के श्रावक वहु बीजी फल–अंजीर, उमरा वगैरह भी नही खाते थे। आप तो भगवान महावीर के श्रावक हो, आप इन्हे कैसे खा सकते हो ? आपको तो रात्रि भोजन का और कद–मूल खाने का त्याग होना ही चाहिये। श्रावक तो १५ कर्मादानो का भी सेवन नही कर सकता है। भगवान महावीर के श्रावक तो ऐसे होने चाहिये। लेकिन आज तो आप गौशाले के श्रावक जैसे भी नही रहे हो। वे भी शहद का सेवन नही करते थे, पर आज आप शहद पानी पीते हो, मक्खन खाने लग गये हो। डाक्टर ने कहा है शरीर मे ताकत नही है अत. कोडलीवर आईल (मछली का तेल) पीने लग गये हो, इस तरह आज आप आत्मा को भूलकर शरीर को सुखी वनाने के लिये अखाद्य का भी सेवन करने लग गये हो। हिसक चमडे का उपयोग करने लग गये हो, जो कि श्रावक के लिये शोभा नही देता है।

अच्छाई तो सादगी मे है। गाधीजी क्या पहनते थे ? खादी के वस्त्र तथा मरे हुए ढोरो के चमडे से बनाये हुए चप्पल ही वे पहनते थे।

एक वार अमेरिका से एक आदमी गाधीजी से मिलने आया। उसका ख्याल था कि गाधीजी वडे अपटुडेट ढग से पेंट–कोट–टाई और बूट मे रहते होगे। वह गाधीजी के आश्रम मे पहुंचा। सामने गाधीजी अपने हाथ मे घडा लेकर कुए पर पानी के लिये जा रहे थे। घुटनो तक धोती पहनी हुई थी। शरीर खुला था। उसने पूछा–गाधीजी कहा है ? मुझे उनसे मिलना है ? मै अमेरिका से आ रहा हू।

गाधीजीने कहा–वे कुए पर मिलेगे। चलो मेरे साथ, मै तुम्हे उनसे मिला दूगा। वह उनके साथ हो लिया। गांधीजी कुए पर पहुचे और पानी खीचने लगे। आगन्तुक ने कुए पर अन्य किसी व्यक्ति को नही देखा तो पूछा–गाधीजी कहा है ?

जल्दी बताओ। मुझे उनसे मिलना है? गाधीजी ने कहा—जिससे तुम्हे मिलना है, वह गाधी यही है। यह सुनकर तो वह आश्चर्य मे डूब गया। उसकी जो कल्पना थी वह धूल मे मिल गई। इतना बडा आदमी और अर्ध नग्न अवस्था मे—पानी भी खुद खीच रहा है? पर आज कल क्या हाल हो गया है? अंदर कुछ न हो पर दिखावा तो ऐसा किया जाता है कि जैसे दुनिया मे और कोई उस जैसा नही है——

केडे राखे जुडो ने चावीनो नहि पार।
पेटी मां तडाका मारे शोभा दीसे बार।
घरेणामां घडियाल ने शिरामण मां चा।
उभो उभो बीडी फूंके जाणे जमाल खां।

पहले के लोग दूध, दही और छाछ खाते थे, पर आज तो चाय की बीमारी ऐसी लगी है कि श्मशान मे भी चाय छूटती नही है। बीडी मुंह मे लगी ही रहती है। पिता—पुत्र को सिगरेट देता है, मेम और साहब दोनो सिगरेट पीते हैं। क्या फैशन चली है? आखो मे मोतिया और शरीर मे केन्सर न हो तो फिर क्या हो? लज्जा भी एक भूषण कहा गया है, पर आज तो उसे दूषण समझकर लज्जा का त्याग किया जा रहा है। जो जितना लज्जाहीन बन रहा है वह आज उतना ही सभ्य माना जा रहा है। कैसी विपरीत हालत आज हो गई है? श्रावक कहला कर भी मदिरा पान किया जा रहा है, अखाद्य का सेवन किया जा रहा है—चोरी—छुपे दवाइयो मे भी सेवन किया जा रहा है। यह सब क्या है? हमारी अज्ञानता ही है न? धर्म को न समझने से ही आज ऐसा हो रहा है।

धर्म करो तमे प्राणिया, धर्म थकी सुख होय।
धर्म करंता जीव को दुखिया न दीठा कोय।

धर्मी जीव कभी दुखी नही हो सकता। धर्मका त्याग करने से ही जीव दुखी होता है।

लोग कहते है, आज मंहगाई बहुत बढ गई है। घी आज १४ रु. कीलो बिक रहा है। कैसे कोई खावे? सच है; मंहगाई बढ गई है। पर धर्म की महगाई तो इससे भी अधिक बढ गई है। उसका क्या किया जाय? पहले के लोग कितने पौषध करते थे, कितनी तपश्चर्या करते थे, कैसे नियम से रहते थे, ब्रह्मचर्य का कैसा पालन करते थे, और आज आप कितना कर रहे है? आज साधु—भी कितने कम बनने लग गये है। यह महगाई कितनी बढ़ गई है, इस ओर भी आपने कभी ध्यान दिया है? खाने—पीने की चीजो की महगाई भले हो जाय, पर धर्म की—महगाई नही होनी चाहिये। क्षमा, दया, दान, न्याय, नीति

की उदारता बनाये रखो, उसमे महगे मत बनो। अन्यथा आत्मा का उत्थान कैसे हो सकेगा ?

जिसमे सुख नही है, अज्ञानी वही सुख समझता है। पैसे मे सुख नही है, स्त्री में सुख नही है, पर अज्ञानी और मोहाध पुरुप उसी मे सुख समझ लेते है और दुर्गति कर वैठते है। स्त्री का मोह दुख देने वाला है, नरक और तिर्यच गति मे ले जाने वाला है। गौशाले के श्रावक भी पर स्त्री सेवन से दूर रहते थे और उन्हे मा वहिन समझते थे तो भगवान के श्रावको का तो कहना ही क्या है ? उनका आदर्श तो उच्चतम होना ही चाहिये। पर आज आप कैसे हो ? इसको भी देखो। पर स्त्री को देख कर, उसमे मोहित होकर लोग आज भी पाप कर वैठते है। पर स्त्री का स्पर्श भी पाप वताया गया है, वहा उससे भोग भोगने की इच्छा करना कितना वडा पाप है ? इसीलिये भगवान ने स्वदार सतोप नामक ४ था व्रत कहा है। श्रावको को आजीवन इस व्रतका पालन करना ही चाहिये।

गोवर्धन भंगी रतनसी सेठ का वाडा साफ करता है। एक दिन वह अपनी नव-वधु को लेकर सेठ का वाडा साफ करने आता है। सेठ उसकी औरत को देखता है तो मोहित हो जाता है। ऐसी सुन्दर औरत और भगी के घर मे ? उच्चकुल मे पैदा होकर भी रतनसी सेठ भगी की औरत के पीछे पागल हो जाता है। वह गोवर्धन से कहता है—सुन, कल से वाडा साफ करने के लिये तू अपनी औरत को ही भेजना। अव से तेरे पगार मे ५ र वढा दिये जायगे। गोवर्धन तो खुश हो गया। खुशी २ घर गया और मा वापको भी यह शुभ समाचार कह सुनाया। उसके पडौसियो ने भी सुना तो मालती से कहा—सेठ को तो तेने पहली नजर मे ही वश मे कर लिया है। अव तेरा भाग्य वदलने वाला है, सेठ खुश हो गया तो वढिया २ साडिया पहनने को मिला करेगी ?

मालती सोचने लगी—यह सव क्या कह रहे है ? क्या वडे घर के सेठ भी नीच जाति की औरत के प्रति कुदृष्टि कर सकते है ? मालती समझदार औरत थी। नीच घर मे उत्पन्न हुई थी तव भी गीता और रामायण वह सुन चुकी थी। वह रोज सेठ का वाडा साफ करती और वापस घर लौट आया करती। कही ऊपर नजर करके भी नही देखती।

एक दिन सेठ ने उसे वुलाया—मालती ! यह सुनकर मालती घूघट निकाल लेती है और कहती है—हां सेठ सा, क्या हुकुम है ?

सेठ कहता है—घूघट क्यो निकालती है मालती ? आज तो जमाना पर्दा हटाने का है। ले, यह साटी ले जा और कल पहन कर आना।

मालती साडी लेकर घर चल देती है। सास देखती है तो वडी खुश होती है। मेरी बहू वडी भाग्यशाली है कि उसे तो आते ही सेठ ने नई साडी दे दी, पर मुझे तो कभी एक फटा कपडा भी नही दिया। सासु बोली—सेठने कुछ कहा भी है तुझे ?

मालती बोली—रोज साफ करने आया कर। वस, इतना ही सेठने मुझ से कहा था।

मालती दूसरे दिन सेठ के यहां जाती है। गोवर्धनने कहा—मालती, नई साडी पहन कर जा न? पर मालती ने कहा—नही, मुझे नही पहननी है, मैं अपनी साडी मे ही खुश हू। मालती ठीक समय पर पहुंच जाती है। सेठ भी तैयार वैठा था। मालती वाडा साफ कर रही थी कि सेठने आवाज दी—मालती! सफाई हो गई। मालती ने जबाब दिया—सेठ सा. अभी तो आधी हुई है। सेठने कहा—उसे छोड पहले अंदर की मोरी साफ कर दे, फिर वह साफ करना।

मालती जैसे ही अदर गई कि सेठने किवाड बंद कर दिये। मालती दरवाजा खोलने जाती है तो सेठ उसका हाथ पकड लेता है और कहता है—मालती, मैं तुझे चाहता हू। तू मेरी इच्छा पूरी कर, मैं तुझे मालोमाल कर दूगा।

मालती कहती है—सेठ आप भी कैसी वाते कर रहे है? कहा आप और कहां मैं। मेरी जाति क्या है और आप कौन है? इसका तो विचार करिये। मेरे जैसे तो आपके लडके है। थोडा बहुत तो खयाल कीजिये।

सेठने कहा—वकवक मत कर, आज तो तुझे मेरी इच्छा पूरी करनी ही होगी।

इतने मे तो मालती का पौरुप जाग उठा, उसने सेठ के मुह पर तीन चमाचे जड दिये। सेठ तो वही पछाड खाकर गिर पड़ा। कायर मे हिम्मत भी कितनी होती है? मालती ने दरवाजा खोला और सीधी अपने घर चली आई। सेठ का वाडा भी पूरा साफ नही किया। सासुने जव मालती को आते देखा तो पूछा—आज जल्दी कैसे आ गई? क्या सफाई नही की? मालती ने कहा—मुझे तुमने कहा भेज दिया? वह सेठ नही, राक्षस है, मेरे शरीर का प्यासा है, मैं वहा अव हर्गिज नही जाऊगी। मैने भी सेठ को आज यह वता दिया है कि दूसरो की औरतो पर वुरी नजर करने का क्या फल मिलता है?

सासुने पूछा—क्या किया तेने?

मालतीने कहा—मैने तीन चपत लगाये है सेठ के। अरे रे यह क्या किया तेने, सेठ हमारे मालिक है, उनकी खुशी मे ही हमारी खुशी है, नहीं तो हम भूखो मर जायगे। वहू, तू तो मेरे घर मे ऐसी आई है कि हमारी रोटी भी वंद करवा कर दम लेगी।

मालती कहती है—क्या सेठ की खुशी मे ही हमारी खुशी है? तो क्या मैं वैश्या वनू? यह मुझ से नहीं हो सकता। मै एक आदमी की औरत वनकर आई हू – गांव की वैश्या नही, जो सव को खुश करती फिरूं। मै कल से सेठ के यहां नही जाऊंगी।

कहिये, नीच गौत्र मे उत्पन्न होने पर भी मालती के सस्कार कैसे थे? उच्च शिक्षा के हिमायतियो? जरा अपने लडके लडकियो के संस्कारो की तरफ भी ध्यान दो। उच्च शिक्षण के नाम पर क्या तुम अपनी सतानो को कुसस्कारी तो नही वना रहे हो? शिक्षा को मै वुरा नही कहती, ज्ञान कभी वुरा नही होता, पर उसके साथ जो वुराइयां घर कर गई है उन्हे दूर करना चाहिये—सहशिक्षण भी उन वीमारियो का एक मूल कारण है। इन वीमारियो को दूर नही करोगे तव तक सुसंस्कार कैसे पैदा हो सकेगे?

मालती अपने धर्म पर दृढ रहती है, सासु गोवर्धन से कहती है–तेरी वहू क्या आई अपनी रोटी भी वद हो जायगी। वह तो सेठ को भी मार कर आई है? भगवान जाने सेठ हमारी नौकरी चालू रखेगे या छोड देगे। किसी भी तरह तू मालती को समझा और सेठ के पास जाने को राजी कर।

गोवर्धन भी मालती को समझाता है, पर मालती अपना शरीर वेचने को तैयार नही होती है। गोवर्धन उसे मारता है, सास, ससुर भी मारते हैं, पर वह अपने धर्म से डिगती नही। कहती है–तुम सव मुझे मार भी क्यो न डालो, पर मैं सेठ के घर पर अव जाने वाली नही हू। जिसे तुम सेठ कह रहे हो वह सेठ नही, राक्षस है, मेरे जैसी कितनी औरतो का उसने शील लूटा होगा।

मारने वाले थक गये, पर मालती नही थकी। रात हो गई थी। सव अपनी २ जगह सो गये। मालती अपने कमरे मे वैठी रही। गोवर्धन वाहर आकर खाट पर सो गया। उसने भी मालती को वहुत मारा है, तो वह उसके पास कैसे जा सकता है? मालती सोचती है–यह सव दोप मेरा ही है, मेरे माता पिता ने तो मेरी भलाई के लिये ही किया, पर मेरी किस्मत मे दुख ही लिखा हुआ था, तो सुख कैसे मिल सकता है? अव मुझे क्या करना चाहिये? मै अपने शील को सुरक्षित कैसे रखू? क्या आत्मघात कर लू? और क्या रास्ता रहा है? अपना धर्म वचाने के लिये वह अपने शरीर का वलिदान कर देना अच्छा समझती है।

भगवान ने आचारांग मे कहा है:—

हे गौतम! जव तुम्हारा मन संयम मे अस्थिर होने लगे तव तुम रूखे सूखे-कम खाओ, चार रोटी की जगह दो रोटी ही खाओ। इतने से भी वह वश मे न रहे तो घी, दूध, दही, शक्कर आदि का त्याग कर दो और रुक्ष आहार

का सेवन करो। रुक्ष आहार से भी मन मे काम–विकार शांत न हो तो खडे २ ध्यान करो। सारी रात ध्यान मे खडे रहो और इन्द्रियो को वश में करो। इतना करने पर भी मन वश में न रहे तो ग्रामानुग्राम विचरण करो, एक जगह मत रहो। इससे भी मन शांत न हो तो आहार का सर्वथा त्याग कर संथारा कर लेना चाहिये, पर काम रूपी शैतान के वशीभूत नही होना चाहिये।

आगे चल कर भगवान कहते है कि कोई आदमी शस्त्र से, जहर से या जल मे डूब कर, आग मे जल कर मर जाय तो यह उसकी अकाल मृत्यु ही कही जायगी। जिससे उसका अनंत जन्म–मरण बढता ही है, पर कोई स्त्री (या पुरुष) अपने शील के लिये—चारित्र के लिये फांसी खाकर भी मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो वह विराधक नही आराधक ही बनती है।

मालती ने अपने गले में फांसी बांधी और राम राम करते उसने अपने प्राण छोड दिये। सास सुसर राम राम सुन रहे थे, पर आया कोई नही। वे तो इसी पर तुले हुए थे कि कल तो मालती को हमारा कहना करना ही चाहिये। इस तरह वह मान के वशीभूत हो पडे रहते है। क्या करने जैसा है और क्या नही करने जैसा है? यह अज्ञानी नही सोच सकता है।

सुबह हुआ, सूरज निकल आया, पर मालती के घर का दरवाजा नही खुलता है। सास दरवाजा खट खटाती है। पर अंदर से कोई आवाज नही आती। आखिर दरवाजा तोडकर देखा तो मालती मरी पड़ी थी। गले मे फासी लगी हुई थी। सास, ससुर सब रोते–चिल्लाते है, पर अब क्या हो सकता था। मालती तो अपने शील की रक्षा में बलिदान हो चुकी थी। अतः ज्ञानी कहते है :—

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुदम्मो।
अप्पा दंतो सुही होइ असिलोए परत्थय।

आत्माको जीतो—यही विजय सच्ची–विजय है। जो उसको जीत लेता है वही इस लोक और पर लोक मे भी सुखी होता है।

वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण य
माहं परेहिं दमन्तो, बंधणेहिं वहेहिय।

ज्ञानी कहते है कि बंधन और वध के परावलंबी दुखों को भोगने से तो अच्छा है कि मैं अपनी आत्मा का संयम और तप से दमन करूं। स्वेच्छा से अपनी आत्मा का दमन करना अस्वेच्छा पूर्वक महान–दुखों को भोगने से अच्छा ही है। स्वेच्छा से अट्ठम का तप किया जाय तो उससे एक लाख वर्ष के नरक के पराधीन दुख मिट जाते है। अब आपको क्या चाहिये? इसका निर्णय स्वयं

करो और तदनुसार धर्माचरण भी करो। मन को स्थिर रख कर भजन करोगे तो भजन भी सार्थक हो सकेगा।

भजन तारा गया भगत साव अेले, भगत तारा भजन गया सहु अेले–
तनडु भले ने तारुं आसन वाले मनडु चडचु चगडोले
काम न आवे खरी वेलेः भजन तारा....

सिर पर तिलक करने से मनका मैल धुलता नही है। शुद्ध मन से भजन करो तभी मन का मैल साफ हो सकेगा। धर्म कोई दिखावे की चीज नहीं है। वह तो दिल से होना चाहिये।

दुनिया तने तो धर्मो माने काम तारा परमात्मा पिछाणे
टीला टपका करवा थी मन नां मैल धोवाये खरा ?

कोई तुम्हें एक दिन की जेल दे दे तो वह भी तुम्हे अच्छी नही लगती है। हजारो रुपया खर्च करके भी तुम जेल में जाना पसंद नही करते हो। क्योकि उससे वदनामी होती है, नाम पर कलंक का टीका लगता है। तो फिर इस संसार रूपी जेल मे क्यो पडे हुए हो ? उससे मुक्त होने का प्रयास क्यों नही करते हो ? यह जेल तो उस जेल से भी ज्यादा खराव है। इससे मुक्त होने का मार्ग ज्ञानियो ने हमें वताया है–अपनी आत्मा का ही दमन करो, दूसरों के अवगुण मत देखों, मान छोडों और गुणों को ग्रहण करो, यही ज्ञान का सार है। जो भव्य जीव ऐसा करेंगे वे ही अजर अमर पद प्राप्त कर सकेंगे।

सोमवार ता. २९-७-६८

[३०]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते है कि वे मान को जीतने वाले थे। मान कषाय के चार स्तंभ वताये गये है। उनमे पहला स्तंभ है अनन्तानुवधी मान। यह मान पाषाणस्तंभ जैसा है, जो कि नमता नहीं है। अपने को ही सच्चा समझता है। और तो ठीक, भगवान की भी भूल निकालने को तैयार हो जाता है। वह सूत्र सिद्धान्तो के भी विरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणा करने लग जाता है।

कसाई पापी होता है, पर उससे भी अधिक पापी उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाला होता है। कसाई तो पाडे, वकरे और गेटे को ही मारता है, पर यह तो आत्मा का ही हनन कर देता है। अनेक आत्माओ को विपरीत मार्ग पर चढा कर अनन्त संसार में भटका देता है।

आनंदघनजी ने कहा है—

पाप नहि कोई उत्सूत्र भाषण जिस्यों
धर्म नहि कोई जग सूत्र सरीखो।
सूत्र अनुसारे जे भविक किरिया करे,
तेहनु शुद्ध चारित्र परीखो—
धार तलवारनी सोहयली, दोह्यली:
चउदमां जिन तणी चरण सेवा ।

उत्सूत्र प्ररूपणा करने जैसा कोई पाप इस दुनिया में नहीं है और सूत्र-सिद्धान्त जैसा धर्म भी इस दुनिया में नही है, अतः सूत्रानुसारी वन कर जो भव्य जीव धर्म क्रियाऐं करते हैं वही शुद्ध चारित्रशील वनते हैं। उनका जीवन ही आदर्श जीवन कहा जाता है।

शरीर स्वस्थ हो, रगरूप भी अच्छा हो, पर मस्तिष्क ठीक न हो तो जैसे उसे पागल कहा जाता है, कोई भी उससे वात करना ठीक नही समझता। ऐसी ही हालत उत्सूत्र प्ररूपक की भी समझनी चाहिये। वह सामायिक-प्रतिक्रमण, पौपध, नवकार मंत्र का जाप वगैरह सब क्रियाऐ करता है, पर उसकी प्ररूपणा मिथ्या होती है, वीतराग धर्म के विरुद्ध होती है अतः वह निह्नव ही कहा जाता है। क्योंकि वह सत्य को छोडकर असत्य का ही प्रचार करता है।

सत्य तो तीनो काल मे सत्य ही रहने वाला है, वह असत्य कभी हो नही सकता। दो और दो चार ही होगे, अमेरिका और इग्लैड कही भी चले जाइये, चार ही कहे जायेगे। ५ हो नही सकते। भूत और भविष्य मे भी ५ वे नही वन सकेगे। चार ही रहेगे, ऐसा अबाध्य सिद्धान्त ही निर्दोष होता है। षट द्रव्य जो कहे गये है—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीवास्तिकाय-वे सभी अपने २ स्वरूप मे ही परिणमन करते है। एक दूसरे मे परिणमन वे नही कर सकते। दो द्रव्य मिल कर भी एक द्रव्य मे परिणमन नही कर सकते है। जीव अजीव नही बन सकता और अजीव जीव नही बन सकता। जो विपरीत प्ररूपणा कर है वह तो अनेक आत्माओ को डुवाने वाला बनता है अतः उसे कसाई से वुरा कहा गया है।

सूयगडांग सूत्र मे कहा है—

अदक्खू दक्खुवाहियं तं सद्दहसु अदक्खुदंसणा।
हंदि हु सुनिरुद्ध दंसणे मोहणिएण कडेण कम्सुणा।

हे अचक्षुवान ! वस्तु सामने पडी है, पर तुम उसे देख नहीं पा रहे हो तुम्हारी आत्मा तो तुम्हारे भीतर ही है, पर तुम उसे वाहर ढूढ रहे हो ? कोई पाव

पुरी जा रहा है तो कोई शिखरजी। कोई मथुरा तो कोई हरिद्वार। लेकिन वह वहां कैसे मिल सकती है?

बोले ते बीजो नहि परमेश्वर छे पोते।
पण अज्ञानी आंधलो अलगो रहीने गोते।

बोलने वाला और कोई नही वह स्वयं हैं—आत्मा ही परमात्मा है। लेकिन अज्ञानी उसे नही समझता। वह तो उसे बाहर ढूढता फिरता है।

एक छे ने बे कां भाल तारो ओटलो तुं का वाल
हुंने तुं जाय मरी—पाछल रहे अे हरी।

मै चैतन्य देव हूं। मेरी जाति के ही सभी प्राणी है। कीडी और कुंथवा मे भी वही आत्मा है। जीव मात्र मे समान गुण और समान प्रदेश है। आवरण को लेकर जीव छोटा बडा दिखाई पडता है। आत्मा तो देह से भिन्न सच्चिदानंद मयी है। शरीर वह नही है।

मै हूं तभी तक समाज का काम चलता है, मै न रहूंगा तो अंधेरा हो जायगा, ऐसा अभिमान करना भी ठीक नही है। मानी पुरुष नमन में भी शर्म अनुभव करता है। वह अपने पिता को भी नमस्कार नही करना चाहता। समझता है, मै तो बी. ए पास हू—मेरे पिता क्या पढे हुए है! वे तो पुराणपंथी है। यह मान कषाय ही है। यह जब मन मे आ जाता है तो शास्त्र भी शस्त्र बन जाते है।

तरवा लीधु तुं तुंबडुंरे तरता तोडी नांख्यो तार
अंते ओरतो रे करतां सुधरे शुं काम!

तुम्बडा तैरने का साधन है। लेकिन कोई उसका सहारा न ले और उसे बीच भंवर मे ही छोड दे तो उसकी क्या स्थिति होगी? तैरने वाला तुम्बडे के अभाव मे पानी मे ही डूब कर मर जायगा। वैसे ही सूत्र सिद्धान्त भी हमारे तैरने के साधन है—उनका सहारा लेकर जीव भवसागर से पार हो सकते है। अन्यथा वे भी भवसागर मे डूब जाते है—

मानादिक शत्रु महा निज छंदे न मराय।
जाता सद्गुरु शरण मां अल्प प्रयासे जाय।

शिक्षा जैसे २ बढती है वैसे २ जीवन मे नम्रता भी आनी चाहिये। ईमानदारी और प्रामाणिकता के सद्गुण ही ज्ञान मे आने चाहिये। अगर ये गुण न आवे तो समझलो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं मिथ्याज्ञान ही है।

६ वर्ष का लडका छोडकर उनका पिता गुजर गया। मा अकेली रह गई। जो कुछ पास मे था वह बीमारी मे खर्च हो गया। अब क्या करे? कहां जावें?

औरत ने सोचा पति तो मर गया है, और मैं ९ महीने तक घर के कौने में पडी रहूं तो काम कैसे चलेगा? वह अपने संबंधियों को बुलाती है और कहती है–मेरे पास कुछ भी नही है, जो कुछ था वह सब बीमारी में खर्च हो गया। अब तुम्ही मेरे सहायक हो। तुम कहो वैसा मैं करने को तैयार हूं। नौ महीने तक घर में बैठ कर मैं क्या करूंगी? यह सुनकर संबंधी भी आमने–सामने देखने लगते है। सहायता का समय आता है तो कोई आगे नही आता। क्योकि—

सुख ना साथी स्वार्थ साधवा, सगा बनी उभराय।
कोण पोतानुं कोण परायुं दुख मां सहु समजाय।
तूं वीर वीर पुकार छे स्वारथियो संसार।

जब पास में पैसा होता है तब तो सब आते–जाते हैं और संबंध भी अपना बताते है, पर दुख मे खबर लेने वाले कोई विरले ही निकलते है। अपना और पराया दुख मे ही मालूम होता है।

संबंधियोने झबकमा से कहा–तुम १। महीना तो घर में रहो, बाद में कहीं भी आ जा सकती हो। सवा महीने के लिये हम तुम्हारी व्यवस्था कर देगें।

वह घर में रह कर भी दूसरों का काम करती है। गुदडे सीना और अन्य गृहस्थी के काम कर दिया करती है और उससे अपना पालन–पोषण करने लगती है। जो लोग उसे कुछ मदद भिजवाते है, उनका आभार मान कर वापस लौटा देती है। अपने काम से ही अपना गुजरा चला लेती है। वह अपने लडके सुमन को स्कूल भेजती है और उसका पूरा ध्यान रखती है। किसी भी चीज की कमी उसे महसूस नही होने देती है। धीरे २ लडका बडा होता है और पढ़ लिख कर डोक्टर बन जाता है। उस दिन मां की खुशी का भी कोई पार रहा होगा? मां सोचती है–मेरा लडका डाक्टर बन गया है, अब मेरे भी दिन फिर जायगें–भाग्य मे कुछ सुख भी मिलने लगेगा। कई लोग संबंध करने के लिये आते है। सुमन शादी नहीं करना चाहता है, पर मा कहती है, बेटा, तुझे शादी की जल्दी नहीं है, पर मुझे जल्दी है, मैं तुम दोनों को देख लूगी तो मेरा भार हल्का हो जायगा।

आखिरकार नरोत्तमभाई की लडकी निर्मला के साथ सुमन की शादी हो जाती है। निर्मला बी. ए. पास है और उसे पति भी डाक्टर मिला है–फिर क्या चाहिये? वैसे ही निर्मला को पढाई का अहंकार था। और ऊपर से डाक्टर की पत्नी होने का विशेष अहंकार हो गया। करेला और नीम चढा जैसी बात हो गई। वह अपनी सासू से भी दब कर नही रहती। पति से दबने की तो बात ही नही थी। निर्मला की सुन्दरता में सुमन भी पागल हो जाता है और वह भी उसके कहने मे हो जाता है। निर्मला रोज अपनी नई २ फर्माइशे सुमन

को कहती है और सुमन भी उसे पूरी करता रहता है। आज हाथ घडी लाया तो कल ट्रांजीस्टर लाया, परसों मोती का हार तो तरसों हीरे की अंगूठी। यो उस पर ५ हजार रु. का कर्जा भी हो गया, पर वह मना नहीं करता। जो निर्मला कहती वह अवश्य लेकर घर आता। खाली हाथ कभी नही लौटता। सासु वेचारी चुपचाप पडी रहती है। निर्मला से सभी डरते रहते हैं।

ज्ञानी कहते हैं कि मान क्रोध को उत्पन्न करता है—

क्रोध थी मूढता आवे, मूढता स्मृति ने हरे।
स्मृति लोपे बुद्धिनाश, बुद्धि नाशे विनाश छे।

क्रोध से लज्जा चली जाती है और शठता आती है तथा एक दिन वह सर्वनाश का कारण वन जाती है।

निर्मला अपने उग्र स्वभाव से घर में तंग वातावरण बनाये रखती है और उसे वह अच्छा भी समझती है। ज्ञानियो ने इसे दर्शन मोह कहा है। मै जो कर रहा हू वही ठीक है, अन्यथा घर के लोग सीधे नही चलेगे और वखेड़ा खडा कर देगे। ऐसा समझना दर्शन मोहनीय है। दर्शन मोहनीय कर्म की स्थिति ७० करोडाक्रोड सागरोपम की कही गई है।

साधारण आदमी क्रोध करता है तो बाद मे उसे पश्चात्ताप भी होता है। परन्तु जिसे पश्चाताप न हो और जो उसे अच्छा समझे वह दर्शनमोहनीय कहलाता है। निर्मला का क्रोध ऐसा ही था। कोई उसे जवाव में कुछ कह देता तो वह अपना सिर पीटने लग जाती थी। अतः कोई उसे कुछ नही कहता था।

एक दिन एक भिखारिन आकर दरवाजे पर खडी हो गई और रोटी मागने लगी—वहिन तेरा भगवान भला करेगे, मुझे खाने को रोटी दे दे।

निर्मला उस पर क्रोधित हो जाती है और कहती है–चली जा यहां से, मै कुछ देने वाली नही हू।

भिखारिन भी जिद्दी थी। वोली–मै भी लिये विना हटने वाली नहीं हूं। दे दे न वहिन एक रोटी ?

द्वार पर कोई दीन दुखी भिखारी आ जाय तो उसकी सहायता करना भी मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिये। तुम देना चाहो तो दो, पर मुंह से तो उन्हे बुरा वचन मत कहो। गरीवो की हाय भी वुरी होती है। तुम्हारे महल खाली पड़े हो और उन गरीवो को कही रहने का ठौर न हो, ठड और पानी से वे ठिठुड रहे हो तो उन्हे अपने महल मे कही भी बैठने को जगह दे दोगे, तो इनसे वे खराव नही हो जायगे।

तारा महेलो खाली सडता, भूतडा त्यां जइ वासो करता
आश्रय माटे कंइक अभागी मानव जीवो पंथ रजलता
अढलक सुख नो स्वामी तुं मानवता जो खोवे--दुखिया--

आपको मालूम होगा कि विनोवाजीने भूदान की प्रवृत्ति शुरु की है। तुम्हारे पास अन्न ज्यादा है तो खाते खाते जो बच जाय उसका दान कर दो; कपडा ज्यादा है तो वह दे दो, अन्नदान वस्त्रदान दे दो। उससे भी गरीवो का भला ही होगा। लेकिन आज तो हमारी वहिने फटी हुई साडियो भी नही देती है, उनसे भी वे वर्तन लेने का मोह रखती है। वर्तनो की तुम्हारे यहां क्या कमी है? वह साडी किसी गरीव को दोगे तो उससे उसके दो--चार महीने गुजर जायगे। आगे के श्रावक तो ऐसे होते थे कि जो सदैव अपना द्वार खुला रखा करते थे। उनकी उदारता का तो नमूना भी दूसरा नही मिलता। ऐसे वे उदार थे--

उदारतानो ऊंचो नमुनो जेनी जोडीये हजुये नथी ए
स्वदेश रक्षण धर्म ने खातर द्रव्योनी रेलो जेणे रेली हती अे
एक दिन जैनो भारत वर्षनुं, भूषण थई ने शोभ्या हताअे।
रिद्धि सिद्धिथी भरपूर जैनो, शासनना वीर बन्या हताअे,

दानवीर जगडू शाह, वीर भामाशाह और खेमा देदराणी जैसे नर रत्न हो गये है, जिन्होने दुष्काल मे भी लोगो की मदद की। उनको मरे आज सैकडों वर्ष हो गये पर नाम उनका आज भी अमर है।

नाम रहंता ठाकरा नाणा नहीं रहन्त।
कीर्ति केरा कोटडा, पाड्या नहि पडन्त

उनकी जैसी उदारता आज कहा है? फिर भी कुछ लोग जीवन में उदारता बताते है, यह एक सद्गुण ही है। जिसका उन्हे लाभ तो मिलने वाला ही है। क्योकि सत्कार्य मे दिया गया दान कभी व्यर्थ नही जाता है।

वह भिखारिन द्वार से हटती नही है। निर्मला भी उसे कुछ देती नही है। सासु ने यह देखा तो सोचा-कही भिखारिन कुछ कर देगी तो वहू नाहक तकलीफ मे पड जायगी। वह उठी और रसोडे में से दो रोटी लेकर भिखारिन को देते हुए कहा--अव चली जा यहा से। भिखारिन रोटी लेकर चली गई, पर निर्मला अव सासु से ही झगडा करने लग गई। तुम्ही भिखारियो की आदत खराव करती हो, देते है इसीलिये वे लोग यहा आते रहते है। भिखारियो को आने नही देना चाहती हूं।

होने वाला नही है । एक रोटी उसे दे दो तो यहा कौन भूखा रह जाने वाला है ? तेरे पास तो आज सब कुछ है पर मेरे पास तो कुछ भी नही था, तब भी मेरे यहा से कोई भी भिखारी खाली हाथ नही जाता था, तो तू गरीबो को खाली हाथ क्यो जाने देती है ! क्या तेरे माता पिताने गरीबो की मदद करना नही सिखाया है ?

निर्मला यह सुनकर तो आग बबुला हो गई । वह अपने कमरे मे आई और उदास होकर बैठ गयी । सुमन आया । निर्मला को उदास बैठा हुआ देखा तो पूछा क्या बात है ? उदास क्यो बैठी हो ? खाना नहीं खाना है क्या ?

निर्मला कहती है—तुम्हारी माने तो आज मुझे ही नही मेरे माता-पिता को भी जी भर के गालिया दे डाली है । मै अब यहा एक क्षण भी नही रह सकती हू । सुमन भी औरत की बातो मे आ जाता है और एकपक्षी बात को सुन कर मा पर क्रुद्ध हो उठता है । उसे क्या मालूम कि उसकी मा ने उसके लिये कैसे २ दुख उठाये है ?

दीकरा काजे देव मनावे, मा बापो दिन रात ।
दीकरा मोटा थाता मारे, मा बापो ने लात (२)
तू वीर वीर पुकार छे स्वारथीयो संसार ।

सुमन पत्नी की बात सुनकर माता के पास जाता है और उसकी चोटी पकड कर कहता है, चल निकल जा मेरे घर से ! ऐसा क्या कह दिया तुमने निर्मला को कि वह आज मरणतुल्य है !

बधुओ ! जिस मा ने अपना खून पसीना एक कर बालक को पढाया लिखाया और योग्य बनाया, मेहनत मजदूरी कर दिनरात एक किया, वही लडका उसकी चोटी पकड कर यह कहे कि चल निकल जा घर से तो उसको कितना असह्य दुख हुआ होगा ?

मा कहती है— मै तो अभी तक तेरी इज्जत के खातिर ही जैसे तैसे यहा पडी हुई थी ! अब तुम दोनो अगर यही चाहते हो कि मै यहा से चली जाऊं तो लो, मैं अभी चल देती हूं । मेरे रहने से ही तुम्हे दुख होता है तो मै मा हू तुम्हे दुखी कैसे देख सकती हूं ? तुम सुखी रहो, तुम्हारे सुख मे ही मा का भी सुख समाया हुआ है । मा अपनी साडी लेकर चल देती है । डाक्टर यह भी नही पूछता कि कहा जायगी ? और कहां रहेगी ?

मा को क्या पता था कि शादी करके मेरा लडका ही मुझे घर से बाहर निकाल देगा ! औरतो के पीछे आज कई लोग अपने माता पिता का भी अपमान करते शर्म महसूस नही करते हैं ।

एक औरत रोज २ अपने पति को मरने का डर बताया करती थी । पति रुष्ट भी कहता कि वह आग मे जल जाने का कह दिया करती । एक दिन पति ने

सोचा आज जरा देखो तो सही इसके बोलने में सच्चाई कितनी है ? पत्नी रोटी बना रही थी । पति ने कहा – तुमने आज वह काम क्यों नही किया ? पत्नी जवाब में वही कहने लगी, मुझे कुछ नहीं कहना नही तो मैं आग में जल मरूंगी ।

पति बोला – तू रोज २ कहती ही कहती है– मरती तो है नहीं । लेकिन आज अगर तू खुद नहीं जल मरेगी तो मैं खुद तुझे मार दूंगा । यह कहकर उसने ज्यो ही चूल्हें में से अंगारे निकाले कि वह भाग खडी हुई । मरना कहा आसान होता है ? दूसरे दिन वह ठिकाने आ गई । फिर कभी उसने मरने का नाम नही लिया ।

लेकिन सुमन डाक्टर वैसा नहीं था । वह औरत का गुलाम बन गया था । उसने मां की तो बातही नही सुनी और औरत के कहने से अपनी मां को भी घर से निकाल दिया । बेचारी फिरसे मजुरी करके अपना पेट भरने लगी । रहने के लिये एक अंधेरी कोटडी किराये पर लेली ! दिन भर पडौसियो का काम करती और अपने दिन बिताने लगी । दूसरी औरतें कहती–मांजी, तुम्हारा लडका तो डोक्टर है, तुम क्यों यहा रहती हो और दिन भर मजुरी करती हो ? तबक मां कहती-भजन तो अकेले में ही अच्छा होता है । वह यह नही कहती कि लडके ने मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है ? आखिर मा ही तो है ! अकस्मात वह एकदिन बीमार हो जाती है, चल फिर भी नही सकती । लोग उसे सुमन डाक्टर के पास ले जाते हैं । सुमन अपने मरीजो को देख लेने के बाद उसे देखता है और दवा देता है । वह यह भी नही कहता कि तू घर चल । जैसे वह अपनी मां को पहचानता ही नही हो । आठ दिन तक दवा लेने से वह ठीक हो गई । नववे दिन उसने मां को दवा का बिल भी दे दिया । मा आश्चर्य में डूब जाती है । घर आकर वह सोचती है– दवाई का बिल तो उसे देना ही चाहिये, पर मेरा बिल भी तो अभी तक बाकी है । वह मैं भी उससे वसूल क्यों नही करूं ? यह सोचकर वह एक कागज लेती है और उस पर अपना नाम तथा पता लिख कर अपना बिल भी इस प्रकार बना लेती है–

मैंने तुझे ९ महीने तक गर्भ मे रखा उसका १० हजार रु.
मैंने तुझे जन्म दिया उसका १० हजार रु.
मैंने तुझे पढाया लिखाया और
शादी बनाई उसका १० हजार रु.

कुल ३० हजार रुपये का मेरा बिल है, उसमें से तू अपनी दवाई का रुपया काट कर बाकी रुपये मुझे मेरे पते पर भेज देना । यह कागज वह पडौसी के साथ डाक्टर को भिजवा देती है ।

डाक्टरने जब यह बिल देखा तो उसकी अक्ल ठिकाने आ गई । अब उसे होश आया कि मेरी मां ने मेरे लिये क्या किया और मैंने उसके साथ कैसा बरताव

किया है? पत्र में पता था ही। वह अपनी मोटर ले वहां पहुंचा और मा के पैरों में पड कर बोला – मा मुझे माफ करदे, मैंने तुझे अब तक समझा नही था। आज तू ने मुझे समझा दिया कि तू मेरी मां है? मेरे लिये तू ने कितने कष्ट सहन किये और इस योग्य बनाया, पर मैं कैसा कृतघ्न निकला कि तुझे दुख ही पहुंचाया–

लाखों कमाता हो भले, मा बाप जेना ना ठर्या
ए लाख नहि पण राख छे, ए मानवुं भूलशो नहीं,
भूलो भले बीजुं बधू, मा बापने भूलशो नहि,
अगणित छे उपकार अेना अह विसरशो नहि,

मां, मैं अपराधी हूं, मुझे माफ कर। औरत की बातों मे आकर मैंने तेरा अपमान भी कर दिया। अब मै कैसे इस पाप से मुक्त हो सकूगा? तेरा बिल चुकाने के लिये मैं अपनी चमडी के जूते बना कर भी तुझे पहनाऊं तो मै उससे उऋण नही हो सकता हूं। चल अपने घर चल। अब मै तुझे अपने से अलग नहीं कर सकता।

मा कहती है– तेरी औरत से भी पूछ कर आया है न? डाक्टर कहता है– अब मैं उसे ठीक कर दूगा। तू उसकी फिकर अब मत कर।

डाक्टर अपनी मा को लेकर घर आता है। निर्मला उसे देखती है तो कहती है– आज तुम्हें क्या हो गया है, सो इन्हे तुम वापिस ले आये हो?

डाक्टर कहता है– बस, अब तू एक शब्द भी मत बोल। निर्मला कहती है– तो क्या मै इनकी सुना करूगी? डाक्टर कहता है– हा, तुझे इसकी सेवा करनी पडेगी, बोल कर सकती हो तो ठीक, वरना चली जा यहा से?

निर्मला समझ जाती है कि अब मेरी दाल गलने वाली नही है। वह कहती है मैं कहा जाऊं? तुम्हारी मा है तो मेरी भी मा है। तुम्हारे साथ मै भी इनकी सेवा करूंगी। बंधुओ! दृष्टि बदली कि झगडा मिट जाता है। सब आनद से रहने लगते है। मान का कषाय रहता है तब तक ही जीव को हिताहित का भान नही होता है। वह हटा कि वह उसे समझने लग जाता है।

भगवानने अनन्तानुबंधी मान को पाषाण स्तभ की तरह कहा है,
अप्रत्याख्यानी मान को हड्डियो के स्तंभ जैसा कहा है।
प्रत्याख्यानी मान को लकडी के स्तभ जैसा कहा है।
सञ्ज्वलन मान को बेत की तरह कहा है।

जो भी इस मान कषाय को छोडकर सरल बनेगे वे ही सुधर्मास्वामी की तरह अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे।

मंगळवार ता. ३०–७–६८

[३१]

सुधर्मास्वामी का गुणानुवाद चल रहा है। शास्त्रकार कहते हैं वे जीय माये-माया को जीतने वाले थे।

छोटीसी कहावत है–

× जहां कपट वहां चपट
जहां कूड वहां धूल

माया मित्रता का नाश कर देती है। जैसा कि कहा भी है–

माया मित्ताणि नासई

वर्षो पुरानी दोस्ती भी कपट करने से नष्ट हो जाती है। दगा किसी का सगा नही। इस माया से हृदय में हीन भाव ही पैदा होते है। माया भी एक जाल है जिसमे मनुष्य फस जाते हैं। यह मायाजाल बहुत खराव होता है। मायावी जीव ऊपर से अलग रहता है और अंदर से अलग होता है।

बगलो हंस जेवो थाय, नित्य नीरे नावा जाय,
जईने उभो रे अेक पाय, चित्त मां माछला ने चहाय–आओने

बगुला हस जैसा ही सफेद होता है, ऊपर से सफेद पर अंदर से काला होता है। एक पैर ऊचा कर वह पानी मे खडा रहता है, मानो तपस्या कर रहा हो! पर जैसे ही मछली उछलती है कि वह अपनी चोच में पकड लेता है। अत: ज्ञानी कहते हैं–

उज्ज्वलता ने आदरो शरीर न करशो शाम।
बग जेवा ठग ना बनो, करो हंस ना काम।

मुंह से कहना क्या और करना दूसरा इसी का नाम माया है। मुंह से तो मीठे बनना और हृदय मे जहर भरा रखना माया है–

हैयुं हलाहल ने मध झरतो जीभडी
जवु होय जामनगर ने पहोंची जाये लिंबडी
डोबा ने डोबो कही कही बोलावाय नहि
वात बहार जाए रहया घरना
बीजा ने कहेवाय

ठाणांग में चार तरह के मनुष्य कहे

१ जैसा मन मे वैसा ही बाहर भ ... पहले नंव होते है, जो सवका ... प्त करते ... र भी ऐसे पुरुष थे। द्रौणाचार्य ... युद्ध ... धर्मराज पर विश्वास करते थे ... है ... थे,

सेना को वे गाजर—मूली की तरह काटते चले जा रहे थे। श्रीकृष्ण ने देखा, अगर द्रौणाचार्य को मारा नहीं गया तो ये पांडवों की सेना को शीघ्र ही समाप्त कर देगें। उन्होने युधिष्ठिर से कहा— अगर तुम द्रौणाचार्य को हराना चाहते हो तो तुमको थोडा झुठ तो बोलना ही पडेगा, नही तो तुम देख ही रहे हो, सारी सेना को वे अभी मार कर तुम्हे पराजित कर देगे। श्रीकृष्णने युधिष्ठिर को जैसे तैसे इसके लिये राजी कर ही लिया। द्रौणाचार्य का अपने लडके पर बडा प्रेम था, श्रीकृष्णने कहलाया कि अश्वत्थामा मर गया है। यह सुनते ही द्रौणाचार्य ने अपने शस्त्र नीचे रख दिये।

उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा-क्या वात है? सच २ वता, क्या अश्वत्थामा मर गया है?

युधिष्ठिर ने कहा— अश्वत्थामा हतो हत. फिर धीरेसे कहा—नरो वा कुजरो वा। ✗

श्रीकृष्ण के कहने से धर्मराजने इतना सा झूठ बोला, कपट किया उसका भी यह परिणाम हुआ कि उनका रथ जो कि जमीन से चार अगुल ऊपर चला करता था, वह जमीन पर चलने लग गया।

मायावी का कोई विश्वास नहीं करता। वह वाचाल भी होता है।

मायावी बहु वाचाल लुब्ध मानी असंयमी।
स्वार्थी अस्नेहनुं पात्र, पाप साधु गणाय ते।

उसे पाप श्रमण भी कहा जाता है। कोई साधु को नमस्कार करे और यह कहे कि आप का शरीर कितना कमजोर हो गया है, तपस्या वहुत करते होंगे, आपही तपस्वी है न?

साधु तपस्वी नही है, फिर भी यह उत्तर दे कि साधुतो तपस्वी होते ही है तो यह उसका मायाचार ही कहा जायगा। भगवानने ऐसे साधु को पाप श्रमण कहा है। ऐसा मायाचार करने से साधु भी महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है। दशाश्रुत स्कंध में महामोहनीय कर्म वध के ३० कारण वताये गये है.—

कोई जीव तपस्वी नही, फिर भी तपस्वी कहलावे, कोई जीव ब्रह्मचारी नही है फिर भी ब्रह्मचारी कहलावे तो वह महामोहनीय कर्म ही वाधता है।

अतवस्सीए जे केइ, तवेण पविकत्थई
सव्व लोय परे तेणे महामोहं पकुव्वइ
अबंभयारी जे केइ बंभयारीति हं वए
गद्दहेव्व गवां मज्झे विस्सर नयइ नदं।

गायों के बीच मे जैसे गधा दुर्गति प्राप्त करता है वैसे ही [illegible]

श्रमण भी अपनी दुर्गति कर लेता है । महामोहनीय कर्म की स्थिति ७० करोडा-क्रोडी सागरोपम की वताई गई है । मायावी जीव यह नही समझता कि ऐसा वोलने से वह अपना अहित ही करता है । थोकडे तो १५० पढ लिये, पर याद कुछ भी नही है और फिर भी वह पंडिताउपन का ढोग करे तो यह उसका मायाचार ही कहा जाता है ।

एक सेठ के यहां नई बहू आई । पास में ही एक मांजी रहती थी । सेठने मांजी से कहा-बहू नई है, उसे कुछ भी वनाना नही आता है, तुम इसे रोज रसोई वनाना सिखाया करना । मांजी बहू को सिखाती है । जो भी वात वह सिखाती है, वहू सीख कर यह कह देती है कि यह तो मुझे भी आता था । मैं अपने घर भी ऐसे ही बनाती थी । भाजी को यह अच्छा नही लगता था । रोज वह कुछ न कुछ वनाना सिखाती ही थी । कभी सिरा तो कभी श्रीखंड, कभी लड्डु बनाना तो कभी जलेबी बनाना । लेकिन बहू कह दिया करती, यह तो मुझे भी आता था । एक दिन सेठ के यहा मेहमान आये । सेठने दूध पाक बनाने के लिये बहू से कहा । बहू मां जी के पास पहुंची और बोली-मांजी आज दूध पाक बनाना है, जरा बताओ तो वह कैसे बनाया जाता है ?

मांजी ने कहा-- तुझे तो सव बनाना आता है ? फिर क्यों पूछ रही है ?

बहू ने कहा-- सेठजी की आज्ञा है तो उसका पालन तो करना ही चाहिये न ? वह अपनी अज्ञानता प्रकट नही करती, हालांकि उसे बनाना आता नही है ।

मांजी ने कहा-- देख, पहले दूध गरम कर लेना, फिर उसमे थोडा नमक डाल कर हिलाना, जब वह गाढा हो जाय तो थोडे चावल डाल देना और पका लेना-- यह दूध पाक हो जायगा । बहू बोली-हां, यह तो मै भी जानती थी । मैंने अपने घर भी ऐसे ही बनाया था ।

जो अज्ञानी होते है वे दूसरों का उपकार भी नही समझते है । आज अनार्य लोग भी कृपया कह कर कोई वस्तु मांगते है और लेकर Thank you धन्यवाद का शब्द भी कहते है । लेकिन हमारे यहा तो इतना विवेक भी नही है ।

वहू ने जैसा कहा था वैसा ही दूध पाक बना दिया । सेठ आकर देखता है तो हैरान हो जाता है ? यह कैसा दूध पाक ? नमक डालने से दूध तो फट गया था । ऐसा दूध पाक बनाने को किसने कहा था ? मां जी पास मे ही खडी थी । वह वोली-वहू को तो दूधपाक बनाना आता था । वह तो कहती थी कि मैंने अपने घर में भी ऐसा वनाया था । अब से अगर वहू सच्ची वात नही कहेगी तो मै कुछ भी सिखाने वाली नही हूं ।

अत: कपट मत करो, जो कुछ सीखना है सरलता से सीखो । न आता है तो उसे छुपाओ मत । अपनी अज्ञानता को छिपाना भी ठीक नही है ।

प्रौढ थयो ने पलीया आव्या, उंमर थई छे पचासजी,
वाणी ने वर्तन हजु जुदुरे भासे, क्यांक रही छे कचास,
मन तु तारुं आप तपास
हेजी तारा मायला ने तुं चकास-मन ।

उपाश्रय मे आते जाते आपने वर्षो निकाल दिये, कई संतो का परिचय किया, पर आज कितने आगे बढे हो ? या वही के वही रहे हो ? प्रौढ हो गये हो, सिर पर सफेद बाल आ गये हैं, फिर भी वाणी और आचरण मे सुमेल नही हो पाया है । माल जापान का है और आप बताते हो अमेरिका का । घी वेजीटेबल है और आप उसे शुद्ध बताते हो । मन की वृत्ति अदर और बाहर एक सरीखी नही रहती है । जैसे लाइट का फ्यूज उड जाता है तो अधेरा हो जाता है– नेगेटिव और पोजिटिव तार अलग हुए कि लाइट बंद हो जाती है, वैसे ही हमारी वृत्ति भी अंदर से मिली हुई नही है इसीसे यह विषमता नजर आती है । मुंह से आप अपनी निंदा करते भी थकते नही हो–

अधमाधम अधिको पतित सकल जगत मां हुं,
अे निश्चय आव्या विना साधन करशे शुं ?

पर दूसरा कोई आपको अधम कह दे तो आपका पारा कहा चढ जाता है ? अभी तो अपने आप को अधमाधम कह रहे थे और अब दूसरे ने कह दिया तो गुस्सा क्यो कर रहे हो ? आपकी बात ही तो वह भी कह रहा है । अत: ज्ञानी कहते हैं मन के अंदर और बाहर एक जैसे बनो, मन में अकषाय भाव पैदा करो, ज्ञान का प्रकाश अवश्य पैदा हो जायगा ।

किसी को पीलिया रोग हो जाता है तो सफेद भी पीला दिखाई देने लगता है। इसी तरह कषाय से भी सब विपरीत ही प्रतीत होने लगते हैं । अत: कषायों को छोडकर निर्विकारी अवस्था धारण करोगे तभी आत्मा अपने स्वरूप का ज्ञान कर सकेगी ।

सुधर्मास्वामी माया – कषाय से रहित थे । जो आत्मा सरल बनेगी और माया को जीतेगी उनका ही एक दिन कल्याण अवश्यंभावी है ।

बुधवार ता. २१–८–६८

(३२)

सुधर्मास्वामी मान और माया को जीतनेवाले थे।

मा + या मा=नही, या=जाना, जिस मार्ग पर नही जाना उसे माया कहते है। माया वहुत खराब होती है। क्रोध तो ऊपर से भी दिखाई देता है, पर माया तो दिखाई भी नही देती, वह तो छुप कर ही वार करती है। उससे वचना वहुत कठिन होता है इसीलिये माया को वहुत भयंकर कहा गया है।

मुख में राम और वगल मे छुरी रखना माया है। मायावी जन मुह से तो मीठे होते है और हृदय मे विष से भरे हुए होते है।

मायावी जन जो गुप्त रखने की वात होती है उसे खुली कर देता है और जो खुली रखने की वात होती है उसे गुप्त रखता है। पाप और अवगुणो को खुला करना चाहिये, पर उन्हें छुपा कर रखा जाता है। दान और पुण्य को गुप्त रखना चाहिये, उन्हे प्रकट कर दिया जाता है। यह कैसा विपरीत आचरण आज किया जा रहा है?

> पाप कीधा अघोरे छुपाव्या बहु
> पुण्य कीधानो देखाव कर्यो बहु
> भर्या अन्तर मां झेर
> बहार अमृत पण वेर
> अेवा कामो जीवन मां मे आचरिया
> शुंये शोभी रह्या छे जिनवरिया—
> पाप कीधा पछी पुण्य क्यांथी फले,
> दुख दीधा पछी सुख क्या थी मले
> चाल्यो नहि तारे पंथ, शिवरमणीना कंथ
> माफी मांगु हुं तारी जिनवरिया......शुं ये शोभी.

भयंकर पाप किये, कइयो का खाना हराम कर दिया, पीडा पहुचाई, पराया धन हजम कर गये, पर उन्हे तो छुपाकर रखा और पुन्य का दिखावा वहुत किया। हमने तो ५०० आयम्बिल किये। प्रति वर्ष अठ्ठाई करता हू, अठ्ठम पौषध तो कायम करता हू, ब्रह्मचर्य का भी पालन करता हू। इतने रुपयो का दान दिया है। क्या तुमने वह अखवार नही देखा? उसमे मेरे दान का विवरण प्रकाशित हुआ है। इस तरह आज दान का भी दिखावा वहुत किया जाता है। यह कीर्तिदान ही आज अधिक हो रहा है, गुप्त दान तो आज वहुत कम दिखाई देता है। कही २ मुनने

को जरूर मिलता है। नास्ति नही है। बहु रत्ना वसुधरा, आज भी ऐसे नररत्न है जो घर २ जाकर अपने भाई-बहिनो की खबर लेते हैं और चुपके से उसे मालूम भी न हो सहायता कर आते है। पहले के लोग छाछ मे भी रुपया या सोने की मोहर डाल दिया करते थे। ऐसा गुप्त दान ही सच्चा दान कहा जाता है। थोडा दान देना और सारी दुनिया मे ढीढोरा पीटना कीर्तिदान है। किसी गरीब की सहायता आप करते हैं, आपके पास अधिक है तभी आप उसे देते हैं, इसमे उस गरीब का तो कोई अपराध नही है। वह अभी दुखी है इसलिये आपका दिया ले रहा है। सुख और दुख तो धूप और छाया की तरह आते जाते रहते हैं। अतः दान देकर ढीढोरा पीटना ठीक नही है।

कुछ लोग ऐसे भी होते है, जो मुह से तो बडे मीठे बोलते है, पर अंदर से बडे कडुवे होते है। मुह से तो कहेगे जरूरत होने पर मेरे पास अवश्य आ जाना, इसमे शर्म नही करना। और अगर सचमुच उनके पास पहुच जाओ तो वे कहते हैं, अरे, भाई तुम थोडी देर से आये, अभी अभी मैंने सब दे दिये है। ऐसे लोग मायावी ही कहे जाते है।

एक सेठ था जिसके पास पैसा तो बहुत था, पर स्वभाव से बडा कृपण था। एकपाई भी किसी को देना नहीं चाहता था। कोई आदमी पाप तो करे और फल पुण्य का चाहे तो यह कैसे संभव हो सकता है। आपको आज पैसा मिला है और उससे आप गरीबो को लूटना चाहो, तो आगे पैसा कहां से मिलेगा ? पुण्य तो पुण्य से ही मिलता है, पाप से वह हर्गिज नही मिल सकता। वह सेठ भी ऐसा ही था। किसी को देना होता तो उसका पैसा भी वह देना नही चाहता। उसकी औरत भी ऐसी ही थी। एक दिन सेठानी अपने घरमे बैठी थी कि कुछ औरते उसके सामने से निकली। सेठानी ने पूछा—कहाँ जा रही हो ?

औरतो ने कहा—कुम्हार के यहा से कुछ वर्तन लाने जा रही है।

सेठानी ने कहा—चलो घूमना ही हो जायगा, मै भी साथ मे चलती हू। सेठानी भी औरतो के साथ चल दी। औरतो ने कुम्हार के यहा कई तरह के वर्तन देखे और जो पसंद आये पैसे देकर ले लिये। सेठानी को भी एक वर्तन वडा पसद आया, पर उसके पास पैसे तो थे नही, उसने कुम्हार से कहा—मुझे यह वर्तन चाहिये ! पर मै साथ मे पैसा नही लाई हू। कल भिजवा दूगी। कुम्हार बोला—कोई वात नही सेठानीमा ! आप तो सेठ है, आपके पैसे कहा जाने वाले हैं। मै आकर दुकान से ले लूगा। आप वर्तन ले जाइयेगा।

कुम्हार अपने पैसे लेने दुकान पर गया। सेठ ने देखा तो पूछा—क्या है भाई ! किसके पैसे लेने आये हो ? कुम्हार ने कहा—सेठानीजी एक वर्तन ले गई थी उसका एक रुपया चाहिये। सेठ रुपये के वजाय सडा हुआ [illegible]

को कहता है। कुम्हार बाजरा देख कर कहता है मुझे बाजरा नहीं चाहिये। पैसे जब देना चाहें देना, ऐसा बाजरा तो मेरा गधा भी नही खाता है।

कुम्हार सेठ के घर की तरफ से निकलता है। सेठानी ने उसे देखा तो पूछा तुम अपने पैसे ले आयें हो न? कुम्हारने कहा सेठानी जी, सेठ सा. तो रुपये के बजाय सडा हुआ बाजरा देने लगे, वैसा बाजरा तो मेरा गधा भी नही खाता है। आप की इच्छा हो तब मुझे पैसे भिजवा देना।

सेठानी को कुम्हार की बात चुभ गई। सेठ घर आया तो सेठानीनें कहा—कुम्हार को क्या कहा था आपने? सेठ—कुछ नही कहा, उसे बाजरा लेने का कहा था, पर वह कहता था ऐसा बाजारा तो मेरा गधा भी नही खाता है।

सेठानी—उसका माल तो अच्छा और मेरा खराब, कुम्हारने भी हमारी इज्जत का खयाल नहीं रखा? चाहे जो हो जाय ऐसा उपाय करना चाहिये कि वह कुम्हार अपने यहा मागने आवे और यह बाजारा उसे ही खाने को दिया जाय।

दोनों ने एक उपाय सोचा——यति जी को बुलाकर एक ऐसा यंत्र बनावे, जिससे अकाल पडजाय, पानी न हो, खाने को न मिले और वह कुम्हार विवश हो अपने यहा मांगने आवे और तब मैं उस के सिर पर टकौरा मार कर यह कहूं कि ले खा यह बाजारा, ऐसा जब हो तभी मुझे चैन पड़ सकता है।

सेठ यति जी को बुलाकर घर लाया। सेठानी ने कहा—आप चाहे जितना रुपया ले लें पर ऐसा यंत्र (तावीज) बना कर दें कि गाव में दुष्काल पड जाय।

यति कहता है—ऐसा आप क्यों करना चाहती है? सेठानी सारी बात कह देती है। मुझे तो उस कुम्हार से बदला लेना है। वह मेरे घर आवे और मैं उसे यह बाजरा दू।

यति कहता है—आप कोई दूसरा उपाय सोचो। इससे तो हजारो आदमी भूखो मर जायगे, सैकडों पशु बेमौत मर जायंगे।

लेकिन सेठानी न मानी। आखिरकार यतिजी ने एक मंत्र लिख कर दिया और कहा—इसको तुम हिरन के काले सीग में रखवा देना। जब तक यह मत्र उसके सीग मे रहेगा, दुष्काल ही बना रहेगा। देखना कही वह हिरन भाग न जाय, वरना १२ वर्ष का दुष्काल पड़ जायगा। सेठानी ने वैसा ही किया। हिरन को बाड़े मे बंद कर दिया। वर्षा ऋतु आई पर पानी नही बरसता है, बादल आते है और चले जाते हैं। पानी न बरसने से सब चीजे बहुत मंहगी होती चली जाती है। भयकर महगाई हो जाती है। गरीब लोग कैसे खरीद सकते है?

मा दिल्ली ते गढ थी उतर्या मोंघवारी मा
परवरिया गुजरात रे मोंघवारी मां.....

मा भूख भूख करता आवीयारे मौंघ वारी मां.
तारा शा करीये सन्मान रे—मो.

इधर दुष्काल पडता है, लोग भूखो मरने लग जाते है। उधर वह हिरन भी भाग जाता है। नदी, तलाव सब सूख जाते है। कुम्हार भी भूखों मरने लगता है। इधर सेठानी गरीबो को अनाज बांट रही है। कुम्हार भी एक दिन सेठानी के पास अनाज लेने आता है। सेठानी ने उसे देखा तो सिर पर टपला मार कर कहा—ले, जो बाजरा तेरा गधा भी नही खाता था वह अब तू खा। सेठानी कुम्हार को वही बाजरा देती है। सेठानी की बात पूरी हो गई। अपने मान को पोषने के खातिर ही उसने यह सब माया-प्रपच किया था। एक कुम्हार के खातिर उसने कितने भयंकर कर्मो का उपार्जन कर लिया। अतः ज्ञानी कहते है- मान कषाय को छोडो, कपट को छोडो और उदार बनो-सरल बनो। सुधर्मास्वामी ऐसे ही महागुणी थे। उनमे और भी कई गुण थे, जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

गुरुवार ता. १-८-६८

[३२]

सुधर्मास्वामी का गुणानुग्राम चल रहा है। वे चार ज्ञान और १४ पूर्व के स्वामी थे। आज जो द्वादशागी हमारे सामने है उसके रचयिता वे ही थे। उन्होंने हमे चार तरह से सूत्रसिद्धान्तो का ज्ञान कराया है—

द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और धर्मकथानुयोग। उनमे से अन्तिम धर्मकथानुयोग आसानी से समझा जा सकता है।

सुधर्मास्वामी माया को जीतने वाले थे। वे आत्मा मे किंचित मात्र भी माया नही आने देते थे।

माया संसार मे परिभ्रमण कराने वाली है। माया और भगवान दोनों एक साथ हृदय में नहीं रह सकते है। या तो ससार का ही स्मरण किया जा सकता है या भगवान का ही। दूध और दही, विष और अमृत जैसे साथ साथ नही रह सकते है, वैसे ही हृदय रूपी पात्र मे भी जगत और प्रभु, माया और राम दोनों साथ २ नही रह सकते है।

हृदय मे अमृत भरना है तो जहर को निकालना ही होगा। हर का स्मरण करना जरूर है।

भगवान महावीर को इन्द्र जालिया समझ कर गौतम आते है, पर भगवान ने जैसे ही उनकी शंकाओ का समाधान कर दिया वैसे ही वे भगवान को अपना गुरु समझ कर उनके पास दीक्षित हो जाते है और यह समझ लेते है कि भगवान ही केवली है—वे जो कहते है वही सत्य है। ऐसी सरलता जहां होती है वे ही अपना आत्म कल्याण कर सकते है।

सिधावदर में लाला भगत हो गया है। कोई भी उसके पास आता वह उसे अवश्य कुछ न कुछ दे देता था। एक वार वह अपनी दुकान पर वैठा हुआ था। उसका काका खाना खाने को घर गया था। इतने में चार साधु उधर से निकले। लाला भगत को देखकर उन्होने कहा—भगतजी, ठंड वहुत पड रही है, औढने को पास मे कुछ नही है। लाला भगतने दुकान मे से ४ औढने के चादर निकाल कर दे दिये। साधु खुशी २ चल दिये। दुकान के सामने वाला दुकानदार यह देख रहा था। उसने लाला भगत के काका को जाकर यह वात कह दी कि लाला तो साधुओ को कपड़ा वाट रहा है। अभी २ चार चद्दर साधुओ को दे दिये है। लाला भगत का काका भोजन कर घर से आया तो वोला, क्या यही काम करते हो? ऐसे तो मेरा दिवाला निकल जायगा। अभी तुमने चार चद्दरे किनको दे दी?

लाला भगत वोला—गुस्से क्यो हो रहे हो? अपनी चद्दरे गिन कर देख लो, मालूम हो जायगा।

चुगल खोर भी पास मे खडा था। उसने सोचा—अभी चोर पकडा जायगा और आज भगत की वेइज्जती हुए विना न रहेगी। लेकिन जब चद्दरे गिनी तो वे वरावर निकली। चुगलखोर भी चुप्प! यह कैसा चमत्कार! अभी अभी तो भगतने चार चद्दरे चार साधुओ को दी है। फिर भी चद्दरे वरावर।

कुछ दिनो वाद फिर कुछ साधु निकले। लाला भगत ने उन्हे दुकान मे आटा, दाल, घी, सव दे दिया। सामने के दुकानदार ने फिर चुगली की, पर माल देखा तो सव वरावर था। कैसी लब्धि थी उनकी? ऐसी लब्धि सरलता से ही प्राप्त होती है।

नित्य भरी जाये नीर तमारा, ने कोई ने नहि नकार
जगत आखुं भरी जावे, तोये खूटे नहि पाणीडानी धार
जेवो नानो वीरडो था जो रे, कुवो ऊंडो थाशो नहि रे।
चंदन घोडा थाजोरे, कुहाडो हदि थाशो नहि रे।

दान करते रहो, नहीं तो वह भी पडे २ वंद कुए के पानी की तरह खराव हो जायगी। पहले के श्रावक तो ऐसे होते थे कि अपने द्वार सैदव खुले रखते थे। उपासकदशाग में देखिये। जहां १० श्रावकों का वर्णन चलता है, लिखा है, अभंग द्वार।

दरवाजे सदैव खुले रहते थे और भावना मे कुछ भी अन्तर नही होता था।

वम्वई मे पानी की क्या कमी है? चारो तरफ समुद्र भरा पडा है? फिर भी पानी के लिये हा हाकार क्यो मची रहती है? समुद्रका पानी क्या काम आता है? काम तो वादल का पानी ही आने वाला है। वादल जव वरसते है तो अपना मुह काला रखते है, पर वरस कर सफेद हो जाते है। आप भी संग्रह करते है तव कैसे रहते है? क्यों नही देकर सफेद वन जाते है? आखिर तो सब यही रह जाने वाला है!

मे बांधेली म्हेलातो ने, दोलतनुं काले शुं थाश
अणधार्युं जावुं जो पडशे, परिवारनुं त्यारे शुं थाश.
सहुनु भावी सहुनी साथे अेनी चिन्ता शा माटे–
जो न आवे संगाथे तेनी माया शा माटे....!

मैंने इतने मकान बनाये, वाग वगीचे लगाये, दुकाने वनाई, इतना किराया आता है, यह चिन्ता करते रहते हो! पर आत्मा की चिन्ता कोई नही करता है। जो चीज साथ जानेवाली नही है उसकी चिन्ता क्यो करते हो? जो साथ जानेवाली है चिन्ता तो उसकी करनी चाहिये।

मानव भव मे ही कर्मो की निर्जरा हो सकती है। और किसी भव मे यह नही हो सकती। अत. मानव भव का लाभ उठाओ, सकाम निर्जरा करो, स्वाध्याय करो। ध्यान करो और आत्मा को कर्म रहित वनाने का प्रयत्न करो।

भगवान ने भी १२॥ वर्ष तक तप किया था तभी वे केवली वन सके।

प्रत्येक जीव ६ बोल लेकर तो आता ही है–गति, जाति, स्थिति, अवघेयणा, अनुभाग और प्रदेश, फिर चिन्ता क्यो करते हो? जिसकी जैसी स्पर्शना होगी वैसा ही होगा। आप देखते ही है कि कलका भिखारी भी आज सेठ वन जाता है।

एक सासु वहू को कहती है– यह तो लक्ष्मी जैसी है। वहू कहती है– मुझे लक्ष्मी मत कहो, लक्ष्मी तो व्यभिचारिणी है, दिन भर मे सत्तर धणी करती फिरती है, एक नोट दिन मे कितनो के पास जाता है? लक्ष्मी तो चपला है– अतः मुझे लक्ष्मी न कहना। पर आज तो आप लक्ष्मी के नाम से खुश होते है। वह तो घर २ फिरने वाली है– उससे खुश क्यो होते है?

माया अे तो काली कुत्ती, संसारी ना घरमा सुती ।
संसारीकरे पूजा ने स्तुति, मस्तराम कहे भागने डुती ।

लोग तो आज लक्ष्मी की पूजा करते है । उसकी क्या पूजा करना ! नसीव में होगी तो मिल जायगी, नही तो पूजा करने से भी क्या होगा ? वाप की पूजी भी आप रख सकोगे या नही ? कौन जानता है ? अत. माया मे मत फसो, उसे छोडने का प्रयत्न करो, तभी आत्मा ममता रहित हो सकता है ।

संसार मे अहार, भय मैथुन, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि १० संज्ञा भरी पडी है, जिसमे जीव रचा-पचा रहता है– तल्लीन रहता है । अकस्मात मृत्यु हो जाय तो आप वीमा भी करा लेते हो, पर मरे वाद वह तुम्हारे क्या काम का ? जिन्दगी मे जितना वन सके अपने हाथ से दान दे दो, वही तुम्हारे साथ आनेवाला है– शुद्ध दान की महिमा वहुत वड़ी है । एक खीर के दान से ही शालिभद्र जैसा सेठ वना फिर भी श्रेणिक को नाथ सुनकर वोल उठा–

अब तो करणी करशुंजी, पंचविषय परिहरशुंजी
पाली संयमजी, नाथ सनाथ थशुं सही जी

निष्काम भाव से दिया गया दान अपूर्व फल देने वाला होता है । पर जो उसमे फसता नही वह चाहे जव उसमे से निकल सकता है । निदान करके फल पाने वाला उसमे फसा रहता है और दुर्गति भी प्राप्त कर लेता है । ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने निदान किया था तो चक्रवर्ती वन कर भी नरक मे ही गया । अतः निदान करके कोई भी धर्म करणी नही करनी चाहिये । अन्यथा नरक मे ही जाना पड़ेगा ।

मनुष्य जन्म लेता है तो नग्न रहता है–मरता है तो नग्न ही जाना पडता है, फिर ममता क्यो कर रहे हो ? अतः ज्ञानी कहते है ममता छोडो–छोडोगे तो हल्के वनोगे, नही तो भारी ही रहोगे, ऊपर नही जा सकोगे ।

साधु को भगवान ने पक्षी की उपमा दी है–

सउणि जह पंसु गुण्डिया विहूणिय धंसयंई सियं रयं ।
अेवं दविओ वहाणवं कम्मं खवइ तवस्सी माहणे ।

जैसे पक्षी पख फडफड़ा कर उसे हल्के वना लेता है और फिर उड जाता है वैसे ही आपको भी परिग्रह का त्याग कर हल्का वन जाना चाहिये ।

उघाडी आंखे ने पांखे उडजे हवा मां
व्योमना विहारी तारा न होय नीचा धामा
ऊंचोरे ऊंचो रे हंसा नीचो नीचो जा मां
नीचो नीचो जा मां हंसा नीचो नीचो जा मा. . .

दान करते रहो, नही तो वह भी पडे २ बंद
हो जायगी। पहले के श्रावक तो ऐसे होते थे
थे। उपासकदशांग मे देखिये। जहा १० श्रावकं
अभग द्वार।

दरवाजे सदैव खुले रहते थे और भावना
था।

वम्वई में पानी की क्या कमी है? चारो तर
भी पानी के लिये हा हाकार क्यो मची रहती है? स
है? काम तो वादल का पानी ही आने वाला है।
अपना मुंह काला रखते है, पर वरस कर सफेद हो
करते है तव कैसे रहते है? क्यो नही देकर सफेद ह
सब यही रह जाने वाला है!

मे बांधेली म्हेलातो ने, दोलतनुं काले शुं
अणधार्यु जावुं जो पडशे, परिवारनुं त्यारे
सहुनु भावी सहुनी साथे अेनी चिन्ता शा
जो न आवे संगाथे तेनी माया शा माटे . .

मैंने इतने मकान वनाये, वाग वगीचे लगाये, दुकाने
आता है, यह चिन्ता करते रहते हो! पर आत्मा की चिन्ता
जो चीज साथ जानेवाली नही है उसकी चिन्ता क्यो करते हो
है चिन्ता तो उसकी करनी चाहिये।

मानव भव मे ही कर्मो की निर्जरा हो सकती है। और कि
हो सकती। अत. मानव भव का लाभ उठाओ, सकाम निर्जरा करो
ध्यान करो और आत्मा को कर्म रहित बनाने का प्रयत्न करो।

भगवान ने भी १२।। वर्ष तक तप किया था तभी वे केवल

प्रत्येक जीव ६ वोल लेकर तो आता ही है–गति, जाति, स्थि
अनुभाग और प्रदेश, फिर चिन्ता क्यो करते हो? जिसकी जैसी स्प
ही होगा। आप देखते ही है कि कलका भिखारी भी आज सेठ वन ज

एक सासु बहू को कहती है– यह तो लक्ष्मी जैसी है। वहू क
लक्ष्मी मत कहो, लक्ष्मी तो व्यभिचारिणी है, दिन भर मे सत्तर धणी कर
एक नोट दिन मे कितनो के पास जाता है? लक्ष्मी तो चपला है– अत.
कहना। पर आज तो आप लक्ष्मी के नाम से खुश होते है। वह तो छ
वाली है– उससे खुश क्यो होते है?

करो, मेरी गिलौडी भर गई है । मैने कई भगत देखे है, पर तुम जैसा तो आजही देखा है ।

सरल आदमी को ही ऐसी लब्धियां मिला करती है । सरल आदमी अपनी मृत्यु का भी पता कर लेता है ।

दिगसर गाव में एक हरिजन था । उसने अपनी मृत्यु की तिथि तथा समय वता दिया था । सव संवंधी उसके आ गये थे । जिस दिन वह मरने वाला था उस दिन वह सुवह से घूम फिर रहा था । लोगों ने कहा-यह कैसे आज मर जायगा? उसकी औरत ने कहा–तुम अकेले क्यो जा रहे हो ? मुझे भी साथ ले चलो न ? हरिजन ने कहा–चल तू भी साथ चल, दोनों साथ वैठ गये और भजन करने लगे । ठीक १२ वजी कि दोनो की मृत्यु हो गई । जिसकी आत्मा सरल होती है उसे ही ऐसा ज्ञान हो सकता है ।

नेगेटिव साफ होता है तो फोटो भी साफ आता है । इसी तरह मन शुद्ध-सरल होता है तो होनेवाली घटना का उसे पता चल जाता है ।

मुनिश्री माणकचदजी म. के शिष्य निहाल चंदजी थे । दीक्षा लिये ३ मास ही हुए थे । राणपुर के उपाश्रय मे ऊपर वैठे २ स्वाध्याय कर रहे थे । इतने मे तो प्रकाश हुआ और एक देवता सामने आकर कहने लगा– आज से ४ दिन वाद आपकी मृत्यु होने वाली है– अत: सावधान रहना । नीचे साधुजी वैठे थे । प्रकाश की रेखा देखी तो पूछा–क्या हुआ ?

निहालचदजी ने कहा– मुझे संथारा करा दे । महाराजने कहा– तुम तो अभी-युवक हो–रोग का निशान भी नहीं, संथारा क्यों करना चाहते हो ।

रातमें उन्हे फिर स्वप्न आता है । सुवह मुनिश्री से फिर वे कहते हैं– मुझे संथारा करवा दीजिये । मुझे देव ने कहा है कि मेरी मृत्यु सन्निकट है । मुनिश्री ने संघ की आज्ञा से संथारा करा दिया । तीन दिन वाद मुनिश्री का स्वर्गवास भी हो गया । माना जाता है सभी हृदय मे ऐसी सरलता आती है । और भविष्य भी स्पष्ट दिखाई देने लग जाता है ।

न

ट

है– व्योम विहारी है, तू अपनी ज्ञान दर्शन रूपी आखे खुली रख और चारित्र की पांखो से ऊपर उडता चल, नीचे मत जा।

आपको भी ज्ञात है कि आत्मा का स्थान तो सिद्ध शिला पर है। यहा के लिये तो आप प्रवासी है– रहवासी नही है? फिर क्यो ममता कर रहे हो?

लाला भगत को बोलना भी शुद्ध नही आता था, फिर भी उसका हृदय सरल था– साफ था।

वर्तन पर कलाई कराना हो तो पहले वर्तन को साफ कर उसकी चिकनाई दूर की जाती है तभी उस पर चमक आती है। चिकनाई रहती है तो कलाई नही होती। ऐसे ही वोध भी उसीको होता है जिसके हृदय मे राग द्वेप की चिकनाई मिट जाती है। जव तक राग–द्वेप का मैल रहता है तव तक आत्मा में प्रकाश प्रकट नही हो सकता है।

दीवाल साफ करोगे तभी रग-रोगान भी उस पर चमक पैदा कर सकता है। इसी तरह हृदय को भी साफ वनाओगे तो उसमे आत्मा का प्रकाश प्रकट हो सकेगा। अत: कुछ न कुछ अवश्य करो, घाणी के वैलकी तरह ही घूमते मत रहो। स्व को समझो– परको छोडो। पीजडा नया है, रोटी के लोभ मे चूहा उसमे वंद हो जाता है, पर चूहा उसमे रहना नही चाहता, उससे छूटना चाहता है। ऐसी वृत्ति भी आप मे कहां है? चूहा भी स्वतंत्र रहना चाहता है, पर आप परतंत्र क्यो वने हुए हो? स्वतंत्र बनो–अपना स्वरूप पहिचानो और उस मार्ग पर वढ चलो। मार्ग सही है तो आप एकदिन मोक्ष तक अवश्य पहुच जाओगे।

लाला भगत अपने यहा सदाव्रत शुरु कर देता है। कोई भी आदमी उस गाव से भूखा नही जा सकता। एक दिन एक बावा वहां आ निकला। लोगो की भीड लगी हुई थी। उसने पूछा– इतने लोग यहां जमा क्यो हुए है। लोगो ने कहा– लाला भगत का रसौडा चलता है, कोई भी आदमी यहा से भूखा नही जा सकता है। आप भी जाइये। बाबा ने कहा–मुझे भोजन नही करना है। मेरे पास यह गिलौडी है, इसको घी से भर दो, मेरा काम हो जायगा।

लोग कमंडल भर कर घी ले आये। बाबाने गिलौडी नीचे रख दी– घी डाला जा रहा है, पर वह भरती ही नही है। दो कोठी घी खाली हो गया। लोग हैरान हो गये। क्या बात है? लालजी भगत को बुलाओ, यह तो कोई चमत्कार लगता है।

लाला भगत आकर बाबा को नमस्कार करते है और कहते है– आपने वडी कृपा की। घी का कमडल अपने हाथ मे लेते है और गिलौडी मे घी की धारा शुरू करते है। कमडल भगत के हाथ मे है और गिलौडी नीचे पडी है। तीन चार घटे तक घी की धारा अजस्र रूप से चालू ही रहती है। वह वावा कहता है, वस करो भगत, वस

करो, मेरी गिलौडी भर गई है। मैंने कई भगत देखे है, पर तुम जैसा तो आजही देखा है।

सरल आदमी को ही ऐसी लब्धिया मिला करती है। सरल आदमी अपनी मृत्यु का भी पता कर लेता है।

दिगसर गांव मे एक हरिजन था। उसने अपनी मृत्यु की तिथि तथा समय वता दिया था। सव संबंधी उसके आ गये थे। जिस दिन वह मरने वाला था उस दिन वह सुवह से घूम फिर रहा था। लोगो ने कहा-यह कैसे आज मर जायगा? उसकी औरत ने कहा—तुम अकेले क्यो जा रहे हो? मुझे भी साथ ले चलो न? हरिजन ने कहा—चल तू भी साथ चल, दोनों साथ वैठ गये और भजन करने लगे। ठीक १२ वजी कि दोनो की मृत्यु हो गई। जिसकी आत्मा सरल होती है उसे ही ऐसा ज्ञान हो सकता है।

नेगेटिव साफ होता है तो फोटो भी साफ आता है। इसी तरह मन शुद्ध-सरल होता है तो होनेवाली घटना का उसे पता चल जाता है।

मुनिश्री माणकचदजी म. के शिष्य निहाल चंदजी थे। दीक्षा लिये ३ मास ही हुए थे। राणपुर के उपाश्रय मे ऊपर वैठे २ स्वाध्याय कर रहे थे। इतने मे तो प्रकाश हुआ और एक देवता सामने आकर कहने लगा— आज से ४ दिन वाद आपकी मृत्यु होने वाली है— अतः सावधान रहना। नीचे साधुजी वैठे थे। प्रकाश की रेखा देखी तो पूछा—क्या हुआ?

निहालचदजी ने कहा— मुझे सथारा करा दे। महाराजने कहा— तुम तो अभी-युवक हो—रोग का निशान भी नही, संथारा क्यो करना चाहते हो।

रातमे उन्हे फिर स्वप्न आता है। सुवह मुनिश्री से फिर वे कहते हैं— मुझे सथारा करवा दीजिये। मुझे देव ने कहा है कि मेरी मृत्यु सन्निकट है। मुनिश्री ने संघ की आज्ञा से सथारा करा दिया। तीन दिन वाद मुनिश्री का स्वर्गवास भी हो गया। माया जाती है तभी हृदय मे ऐसी सरलता आती है। और भविष्य भी स्पष्ट दिखाई देने लग जाता है।

सुधर्मास्वामी की आत्मा भी ऐसी ही सरल थी। तभी तो वे जिन नहीं पर जिन सरीखे कहे जाते हैं। उनमे और भी कई गुण थे जिनका [illegible] वर्णन किया जायगा।

गुरुवार ता. [illegible]

[३४]

सुधर्मास्वामी जीय माये-- माया को जीतने वाले थे । जीवन में गुण होते हैं तभी उसकी कीमत होती है । लोहा जबतक कुशल कारीगर के हाथ में नही जाता तव तक उसकी कीमत नही होती है । लेकिन जव छोटा सा टुकडा भी घिस कर कारीगर द्वारा घडी का रूप ले लेता है तव उसकी कीमत कितनी वढ जाती है ? इसी तरह पत्थर की भी मूर्ति वना दी जाती है तव वह कीमती हो जाता है । ठीक इसी तरह मानव जीवन प्राप्त कर के भी जो हृदय में गुणों का उपार्जन नही करे तो ऐसे जीवन की भी कोई कीमत नही होती है । मानव जीवन की कीमत तो गुणों को एकत्रित करने में ही रही हुई है ।

अनंतकाल से जीव मोह मे पड़ा हुआ है । कोई सत्पुरुष भाग्य से मिल जाते है तो वह अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

एक आदमी था, जो जंगल में जा रहा था । चलते २ मार्ग भूल गया । भयंकर जगल में वह चोरो के झुड मे फंस जाता है । चोरो के साथ रहते २ वह भी उसके कार्यो को करने लग जाता है । यद्यपि उसकी इच्छा नहीं होती है तव भी जबरन उसे वह काम करना पडता है । कुछ समय बाद उसे एक सज्जन पुरुष का सम्पर्क होता है जिससे वह पुनः अपने मार्ग पर चलने मे समर्थ बनता है । इस तरह मोह कर्म भी जीव से जबरन अपना कार्य करा रहा है । महान् पुण्य से हमे यह दुर्लभ भव मिला है जिसमें हमे सद्धर्म की चर्चा सुनने को मिल रही है । ऐसे त्यागी महात्माओ के सम्पर्क से ही आत्मा धर्म की ओर अग्रसर होती है ।

पर भाव रहना दुख है और स्व. भाव मे आना सुख है । भौतिक पदार्थों का आकर्षण जब तक मन से न हटे तव तक वीतराग मार्ग पर आगे नही वढा जा सकता है ।

मशीन सुदर हो पर उससे उत्पादन न किया जाय तो उससे क्या लाभ ? इसी तरह आपको आज साधन तो सभी प्राप्त हुए है, पर आप उन्हे पाकर भी वीतराग मार्ग पर न चले तो इसमे उन साधनो का क्या दोप है ? उन साधनो से तो आपको आत्म भाव मे आगे आने का प्रयत्न करना चाहिये । तभी वे सार्थक वन सकते हैं ।

संसार मे रह कर धर्म ध्यान किया जा सकता है, पर संसारी वनकर धर्मध्यान नही किया जा सकता । संसारी रह कर वीतराग मार्ग पर चलना असंभव है। आचारांग मे कहा है--

पास माणो रूवाई पासई

मनुष्य इस संसार मे पुद्‌गलों की ओर ही आकर्षित होता है, जहा भी उसे

अच्छा दिखाई देता है, वह उसे लेने की कामना करता है। और उसकी प्राप्ति में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। लेकिन ज्ञानी कहते हैं अपने जीवन को ऐसे ही मत घुमा बैठो वरना फिर पछताना ही शेष रहेगा।

जापान का सेठ युचीदाताई बडा धनवान व्यक्ति था। लेकिन स्वभाव का बडा तेज था। घर में सब लोग उससे डरते थे। एक आदमी स्वभाव का अच्छा होता है तो सब उससे प्रसन्न रहते हैं। आम को देखते ही घर में लडके उछलने लग जाते हैं। हमारा जीवन भी ऐसा ही होना चाहिये। दूसरा आदमी हमको देखकर खुश हो, ऐसा हमारा जीवन होना चाहिये।

धन कमाना भाग्य की बात है, पर अपना जीवन सुंदर बनाना तो अपने हाथ की बात है। धन भाग्य में होगा तो मिलेगा, पर पुरुषार्थ करोगे तो धर्म अवश्य प्राप्त किया जा सकता है।

युचीदाताई बाडा क्रोधी था। एक दिन उसे बाहर गांव जाना था। नौकरसे जूते मंगाये। नौकर पानी बरस रहा था अतः जूते बाहों मे दबा कर लाया, इससे जूतों में सल पड गये। सेठ को क्रोध हो आया। उसने वही जूता नौकर को मार दिया। नौकर गिर पडा, सिर से खून बहने लगा, पर सेठने परवाह नहीं की। वह दूसरा जूता पहनकर बाहर चल दिया। नौकर की बेहोशी दूर हुई तो वह खड़ा होता है और सेठ का घर छोड़कर चल देता है। अब वह नौकरी करना नही चाहता। वह सेठसे बदला लेना चाहता है। मै गरीब हूँ सेठ से मुकाबला कैसे कर सकूगा? यही सोचते २ उसे एक उपाय नजर आता है।

सम्पत्तिका गर्व करना भी ठीक नही है। विचारवान तो यही सोचता है कि

हूं जाणू छुरे या संध्या इकपल मां विखराई जशे।
मन गमता रंगों के बदले अंधारी शाम छवाई जशे।
तो ये शाश्वत सुख मेलववा पोकार हृदय नां नां उठे
अकलावे या संसार मने. . . ।

जहा तक पुण्य है वही तक यह सम्पति है। जैसे ही पुण्य समाप्त हुआ कि सम्पत्ति भी रहने वाली नही है।

युचीदाताई बौद्ध धर्मी था। वह नौकर भी बौद्ध भिक्षु बन जाता है। सोचता है एक न एक दिन तो सेठ के पास जाने का मौका मिल ही जायगा। तब मैं अपना बदला सेठ को मार कर ले ही लूंगा।

वह भिक्षु बनकर अभ्यास करता है और धीरे २ वह आचार्य बन जाता है।

लेकिन मन में वदले की भावना मिटी नहीं है। वह हर समय अपने पास एक तेज धारवाली छुरी रखता है– ताकि कभी भी मौका मिल जाय तो वह सेठ का खून कर सके।

सेठ एक मंदिर वनवाता है, जिसका उद्‌घाटन करने के लिये वह इस आचार्य को आमंत्रित करता है। आचार्य छुरी लिये मंदिर मे आता है। सव कार्यक्रम तय हो जाते है। लोगों का आना - जाना भी मिट जाता है। केवल सेठ और आचार्य ही रह जाते है। अभी कोई नहीं है, मै अपना वदला असानी से ले सकता हूं। यह सोचकर भिक्षु अपना हाथ छुरी की ओर ले जाता है। लेकिन उसी समय उसे विचार आता है–मै कौन हूं ? आज आचार्य माना जाता हूं। सेठ को मारे वाद लोग मुझे क्या कहेगें ? उसके विचारों में परिवर्तन हो जाता है। सेठ भिक्षु के सिर मे घाव देख कर पूछता है-आप तो अहिसा के अवतार है–फिर आपके सिर मै यह घाव कैसा है ?

साधु कहता है– इसका उत्तर आज नही कल सभा के वीच में ही दिया जायगा।

दूसरे दिन भिक्षु ने मंदिरका उद्‌घाटन करते हुए कहा– वर्षों पहले मै इन्ही सेठ के यहा नौकरी करता था, सेठ ने मुझे जूते से मारा था और मै वदला लेने की भावना से कल तक सेठ के जीवन का प्यासा बना हुआ था। यह साधु वेप धारण कर के भी मै छुरी इसीलिये रखता था कि सेठ से वदला ले सकू। कल जब मैं यहां आया और छुरी पर हाथ रखा कि मेरी भावना मे परिवर्तन हो आया। सोचा, क्या यही मेरे ज्ञान का सार है ? मेरी भावना बदल गई। मै आज अपने इस पाप का प्रायश्चित लेता हूं और अवसे इस वेष की सच्ची आराधना करने की प्रतिज्ञा ग्रहण करता हूं।

सेठ भी प्रतिज्ञा लेता है कि मै अव किसी पर क्रोध नही करूंगा। यों दोनों का जीवन सुधर जाता है : माया जव तक हृदय मे घर किये रहती है तव तक हृदय पवित्र नही वन सकता है।

जीवन से जव माया जाती है और सरलता आती है तभी वह उन्नत वनता है। जो जीव इन्द्रियो की अधीनता छोडकर स्वतंत्र वनेगे और ममत्व का त्याग करेगे वे ही मोक्ष के अधिकारी वन सकेगे।

ता. ३–८–६८

[३९]

सुधर्मास्वामी कैसे थे।? इसीका वर्णन चल रहा है। वे क्रोध, मान और माया को जीतने वाले थे।

क्रोध प्रीति का नाश करने वाला है—

कोहो पीई पणासेइ माणो विणय नासणो।

माया मित्ताणी नासेइ लोहो सव्व विणासणो।

क्रोध से प्रीति का, मान से विनय का, माया से मित्रता का और लोभ से सर्वगुणो का नाश होता है। यह चार कषाय चंडाल चौकडी कही गई है। जब तक ये रहते है तब तक मोक्ष नही हो सकता है।

क्रोध का निवास मस्तिष्क मे रहता है।

मान का निवास गर्दन मे रहता है।

जहा मान वहां ज्ञान नही हो सकता। ज्ञान होता है तो मान वहा नहीं रह सकता है।

माया का निवास हृदय मे रहता है।

लोभ का निवास सारे शरीर मे रहता है।

सुधर्मास्वामी लोभ को भी जीतने वाले थे।

मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियां कही गई है। उनमे लोभ सबसे बाद मे जाता है। आज दुनिया मे जो पाप बढ़ रहा है उसका कारण भी लोभ ही है।

मार्गानुसारी के ३५ गुण बताये गये है। उनमे १ गुण न्याय सम्पन्न द्रव्य प्राप्त करना है।

मार्गानुसारी सम्यक्त्वी नही होता है, लेकिन मानवता को समझने वाला होता है अतः उसे मार्गानुसारी कहा है। उसका भी पहला गुण है न्याय सम्पन्न द्रव्य प्राप्त करना।

आप तो श्रावक है आपके पास जितना द्रव्य होगा वह सभी न्याय से उपार्जित किया हुआ ही होगा? क्या यह सच है?

षट द्रव्य क्या है? द्रव्य और पर्याय का संबंध क्या है? निमित्त और उपादान कारण क्या है? ये बाते तो बहुत आगे की है। अभी तो नींव का भी ठिकाना नहीं है तो आगे की बात करने से क्या लाभ होगा?

जैन दर्शन मे अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त ये तीन गुण मुख्य माने गये है। लेकिन आज इनमे से अपरिग्रह को तो देश निकाला दे दिया [illegible] लग रहा है।

इमं च में अत्थि इमंच नत्थि इमं च मे किच्च–मियं अकिच्चं
तमेव मेवं लालप्पमाणं हराहरं तिति कहं पमाओ

मेरा जन्म क्यो हुआ है? क्या कर रहा हूं? आहार संज्ञा का पोपण तो तीर्यंच भी करता है। क्या उसका सेवन करने के लिये यह मानव भव मिला है? मैथुन संज्ञा पशुओ मे भी होती है। तो फिर मानव में अन्तर क्या है? शरीर मे क्या है? हाड चाम मास मज्जा और रुधिर के सिवाय और क्या है? फिर भी ज्ञानियो ने तो कहा है––

दुल्ल हे खलु माणुसे भवे चिरकालेण सव्वपाणिणं
गाढा य विवग कम्मुणो, समणं गोयम मा पमाए।

मनुष्य भव बडा दुर्लभ है। अनेक जीव उसके उम्मीदवार है, पर चुनाव बहुत कम जीवो का ही होता है। पन्नवणा सूत्र मे कहा है कि गर्भज मनुष्य सब से कम होते है। मनुष्य जन्म की महत्ता कुछ कम नही है। भगवान महावीर की जब सर्व प्रथम धर्म देशना हुई थी उस समय वहां एक भी मनुष्य नहीं था अतः वह भी एक आश्चर्य ही कहा गया। धर्म सुन कर तदनुसार आचरण करने की शक्ति मनुष्य मे ही है और किसी भव मे यह संभव नहीं है। अतः जो नही प्राप्त किया है उसे प्राप्त करने की कोशिश करो। इस मनुष्य भव को यो ही मत जाने दो!––

लभन्ति विमला भोए लभन्ति सुर संपया।
लभन्ति पुत्त मितंच एगो धम्मो न लभइ।

अनंतीबार जीव ने स्त्री भोग भोगे है, देव और तिर्यच भव में भी भोग भोगे है। संसार मे भी यही किया है। चार संज्ञा का ही सेवन करते रहे हो अतः अब सचेत हो जाओ और धर्म का आचरण करो। वह नही किया इसीलिये यह भव चक्र बना हुआ है।

मनुष्य ही मोक्ष का अधिकारी है। दूसरे किसी भी भव से मोक्ष प्राप्त नही किया जा सकता है। मानव की सिह राशि है, मोक्ष की भी सिह राशि है। सिह राशि को सिह राशि मे ही जाना है। पर बीच मे दो सिह और पडे है। वे है मान और मैथुन उनको परास्त करना जरूरी है। तभी मोक्ष मे पहुचा जा सकता है।

आज तो आदमी मैथुन संज्ञा के पीछे सब कुछ भूल जाता है। लेकिन याद रखिये जहां काम वहा राम नही, जहा राम वहा काम नही रह सकता। विपय ही कषायो के जनक है–पैदा करने वाले है। अचारांग मे कहा है–

जे गुणे, से मुलठाणे, मुलठाणे से गुणे

जहा पाच इन्द्रियो के विषय है वहा संसार है, जहा ससार है वहा विपय भी है। दोनो मे अविनाभाव संबंध है। ससार बाहर नही हृदय मे है, आसक्ति मे है। स्त्री–पुत्र परिवार छोडकर भी जो आसक्ति नही छोडते है वे साधु भी मुनि वेप पहन लिया तो क्या, संसार मे ही विचरण करते है।

प्रतिभा का होना एक बात है और गुण का होना दूसरी वात। पुण्य के उदय से प्रतिभा मिल जाती है। पर गुण तो पुरुषार्थ से ही मिलते है।

सुधर्मास्वामी प्रतिभा और गुण दोनो से सम्पन्न थे। तभी वे स्व–पर उद्धारक थे।

२ एक ऐसे होते है जो प्रतिभा सम्पन्न तो हों, पर गुण सम्पन्न न हो। ऐसी आत्मा भी दुर्गति को ही प्राप्त करती है।

३ प्रतिभा सम्पन्न नही है, पर गुण सम्पन्न है—जैसे कि हरिकेषि मुनि। जाति से चाडाल थे, फिर भी गुण सम्पन्न थे। अतः उनका भी मोक्ष हो गया।

४ जो प्रतिभा सम्पन्न भी नही और गुण सम्पन्न भी नही होते है वे जीव दुर्गति मे ही पडे रहते है।

हमको तो गुणवान वनना है। विपयो को दूर करने से ही गुणवान वना जा सकता है। श्रीमद् राजचन्द्रने भी कहा है कि–मुमुक्षु वनने के पहले ससार की सुख कामना दूर करो। इच्छाओ से ही कषाय खडे होते है। अतः इच्छाओं का निरोध करो–संसार अपने आप छूट जायगा।

जीतेन्द्रिय वनो, विपयो को छोड़ो, कषाय अपने आप छूट जायगा। लोभ पाप का वाप है। वह जव आता है तो सव गुणो को नष्ट कर देता है।

सुधर्मास्वामी ने यह लोभ कपाय भी जीत लिया था। उनमे और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

शनिवार ता. ३–८–६८

[३६]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है वे लोभ को भी जीतने वाले थे। शास्त्र मे कहा है—

लोहो सव्वविणासणो

का गुण है, वह भी अनन्त है। गुण अनन्त है तो दुर्गुण भी अनन्त कहे गये है। वस्तु संख्याता है। आयुष्य संख्याता है, पर इच्छाएे अनन्त है, लोभ अनन्त है, तो सन्तोष भी अनंत है। अनन्त को अनन्त से ही जीता जा सकता है। अन्य दर्शनो में भी कहा गया है —

अंगं पलितं गलितं मुंडं दशनं विहिनं जातं तुंडम
वृद्धो याति गृहित्वा दंडं, तदपि न मुंचत्याशा पिंडम्
भज गोविन्दम् भजगोविन्दम्, गोविन्दं भज मूढ मतेः

हे मूढमति! ईश्वर का भजन कर। तू लक्ष्मी का दास हो रहा है, पर वह तुम्हारी होने वाली नही है, फिर क्यो दिन और रात उसके पीछे पागल हो रहा है?

कालाकाल समुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी
आलुंपे विलुंपे सहसाकारे विणीविट्ठचित्ते

लक्ष्मी के पीछे जैसी दौड़ धूप तुम्हारी रहती है वैसी अगर आत्म–गुणो के पीछे हुई होती तो तुम्हारा भव चक्कर ही मिट गया होता। जो चीज तुम्हारे साथ आने वाली नही है उसके लिये अन्धानुकरण करना कहां की बुद्धिमानी है? भगवान ने तो कहा है—

नो लोग सेसणंचरे।

तू लोकेषणा मत कर। कुमति को छोडना है और सुमति को पाना है तो देखादेखी छोड दे। देखादेखी करना ही है तो यह क्यो नही करते कि अनेक जीव मोक्ष मे चले गये है मै भी क्यो न वहा जाऊ? वे मासखमण का तप कर रहे, तो मै भी क्यो न करू। वह रोज ४ सामायिक करता है तो मै भी क्यो न करूं? ऐसा अनुकरण क्यो नही करते हो। जब कि प्रारब्ध आधीन वस्तुओ का अनुकरण तो करने लग जाते हो। वे तो भाग्य के आधीन है–मिलने वाली होगी तभी मिलेगी। अत.उनका अनुकरण मत करो। ज्ञानी कहते है–शरीर क्षीण हो गया है। चमडा सिकुड गया है, बाल सफेद हो गये है, परलोक की नोटिस आ गई है–आंखो से दिखाई नही पडता है–शरीर धूजता है–मुह से लार पडती है–बुढाया आ गया है।

काला भम्मर केस केवा हता–फांकडा
रंगआ कोने पलटाव्या रे आवाघडपणाना दहाडला
न्होता जोताने क्यांथी आव्यारे आवाघडपणना दहाडला।

इन्द्रियो का तेज कम होता जा रहा है अतः संभल जाओ, सावधान बनो। धर्म को भी आपने बुढापे के लिये रख छोडा है, जवानी मे धन और बुढापे मे धर्म।

याद रखो जो धन तुम इकट्ठा कर रहे हो वह तुम भोग भी सकोगे या नही? निश्चित नही है। पर यह तो निश्चित है कि धर्म तुम्हारे साथ आने वाला है–फिर उसमे प्रमाद क्यो कर रहे हो? धर्म तो जवानी का ही है भगवान ने भी कहा है–

जरा जाव न पीडेइ वाही जाव न वट्ढइ
जाव इन्दीया न हायन्ति ताव धम्मं समायरे ।

जहां तक बुढापा न आया हो, इन्द्रियां शिथिल न हुई हो; वहा तक धर्म कर लो, फिर वह होने वाला नही है। धर्म की मौसम तो यही युवावस्था है– मेहनत इसी अवस्था मे हो सकती है–तप–त्याग भी हो सकते है। बुढापा किसने देखा है, उसका क्या भरोसा है? अतः ज्ञानी कहते है—

समयं गोयम मा पमायए
समय मात्र का भी प्रमाद मत कर

धर्म की मौसम शुरु हो गई है। पर्यूषण भी आ रहे है। अपनी २ तैयारी करलो। बाजार में जब तेजी चलती हो उस समय व्यापारी नीद भी नही लेते है। अपना माल बेचने की ही चिन्ता रखते है, पर कोई व्यापारी सो जाय तो आप उसे क्या कहेगे? मूर्ख ही कहेगे न? इसी तरह आपकी भी तेजी आ रही है, वह अठ्ठाई कर रहा है तो आप भी करो। तेजी मे कुछ न कुछ लाभ अवश्य कमालो, नही तो फिर सिर पर हाथ धर कर पछताना ही रह जायगा।

सूई और कैंची भी हथियार कहे जाते है, पर कोई योद्धा उन्हे लेकर युद्ध भूमि मे नही जाता है? हथियार तो तलवार ही है। हाथ मे तप रूपी तलवार लो और कर्म शत्रुओ का दल नष्ट कर डालो—

तव नाराय जुत्तेण भित्तुण कम्म कंचुयं
मुणि विगय संगामो भवाओ परीमुच्चई,

कर्मो से लडाई करो–मैने ही तुम्हे विभाव भाव मे खडे किये है। मै ही तुम्हे स्वभाव भाव मे खत्म भी कर दूगा।

आत्मा मे अनन्त गुण और शक्ति भरी पडी है, जो आवरण आया हुआ है, उसे दूर करो, वह है तभी तक अंधकार है। आत्मा मे तो ऐसा प्रकाश है कि उसके सामने हजारो सूर्य भी ठहर नही सकते। भगवान ने तो कहा है जैसा मै हूं वैसे ही तुम भी हो, पुरुषार्थ करो–तुम भी मेरे जैसे बन सकते हो।

सूर्य प्रकाश देता है, जो उसमे देख सकता है वही उसका ज्ञान ले सकता है। पदार्थ है, प्रकाश भी है पर आंख न हो तो वे क्या काम के हो सकते है? इसी तरह सूत्र सिद्धान्त भी है, पर पुरुषार्थ न करो तो उससे ज्ञान क्या हो सकता है? अतः तदनुसार पुरुषार्थ तो करना ही चाहिये।

एक गांव में नट आये–ढोल बजा कर खेल करने लगे–गाव का राजा और रानी भी देखने आये।

नटो के साथ एक १० वर्ष की लडकी भी थी, वह नृत्य करने लगी। सब लोग उसका नृत्य देखकर आश्चर्य करने लगे। राजा भी बहुत खुश हुआ। पर रानी के मन मे किसी भी तरह का कौतुहल पैदा नहीं हुआ। राजाने पूछा–क्या वात है? लडकी का नृत्य तुम्हे कैसा लगा? रानी वोली–इसमें क्या आश्चर्य है। अभ्यास से सव कुछ सीखा जा सकता है। आश्चर्य तो देखने वालो को ही हो रहा है, क्या खेल करने वालो को भी इससे आश्चर्य हुआ है? अभ्यास से सव कुछ सीखा जा सकता है।

कुछ दिन वाद महलो मे एक भैंस के बच्चा पैदा हुआ। रानी भैंस के बच्चे को लेकर रोज ७ माले चढती और उतरती थी। १२ मास बाद जब वह वडी होकर भैंस बन गई तो रानी ने राजा से कहा–मुझे एक आश्चर्य जनक बात आपको बतानी है। राजाने अपनी सभा वुलाई। रानीने भैंस को लाकर वहां खडा कर दिया। सभा को संवोधित कर रानी ने कहा–इस भैंस को उठा कर कौन ऐसा वीर आदमी है जो ७ माले ऊपर जाकर वापस नीचे आ सकता है? यह सुनकर कुछ पहलवान आगे आये, पर वे भैंस को उठा नही सके। राजाने कहा–यहां तो कोई ऐसा आदमी नही है जो इसे उठाकर ऊपर ले जा सके। तब रानी उठी और प्रतिदिन की भाति वह भैंस को उठा कर ७ माले पर ले गई और वापस नीचे आ गई। यह देख कर सब लोगो को वड़ा आश्चर्य हुआ। दरबारी सब तालिया बजाने लगे। राजाने कहा–रानीजी, तुमने तो गजब कर दिया। रानी ने कहा–इसमें क्या आश्चर्य है? कोशिश से सब कुछ किया जा सकता है।

आत्मा तो कभी वूढा होता नही है। सूर्य तो हर समय कही न कही चमकता ही रहता है। यहा नही तो दूसरी जगह। उसी तरह आत्मा भी मरता नही है, देह बदलता रहता है, देही बदलता नही है–

जूनुं ओढणियुं छोड़ीने हंसलाए नवुं ओढणीयुं ओढ्युं।

इनो इ हंसलोने ओढणीया करता चीतर चीताराए दोयुं–आ हससाए

पुराना वस्त्र फटता है तो नया वस्त्र धारण करते हो और खुश भी होते हो। फिर तुम शरीर बदलते समय रोते क्यों हो? जब तक चौरासी का चक्कर रहेगा नया नया शरीर धारण करना ही पडेगा। जव तक राग द्वेष का तेल है तब तक घांणी मे पिलाना ही पडेगा–ऐसा प्रयत्न करो कि तेल ही न रहे, पिलाना अपने आप वंद हो जायगा। राग–द्वेष मिटे कि चौरासी का चक्कर ही मिट जायगा।

कपाय का तेल है वहां तक तो पिलाना भी पड़ेगा ही। अतः अभ्यास करो और कपाय को छोडो—क्रोध को छोड़ो, लोभ को छोडो। वैसा प्रयत्न करो।

घर मे लडका वड़ा हो गया है, पर आपका कहना नही मानता है तो आप उस पर क्रोध मत करो। समझो यह मेरे कर्मो का ही दोप है, उसका नही। दो लडके है—एक शांत है, दूसरा तूफानी है। दोनो के अपने २ कर्म है, उनको वैसा २ फल भी अवश्य मिलेगा ही।

एक आदमी सघ मे दिन रात काम करता है, पर फिर भी उसे यश नही मिलता है और दूसरा केवल आकर यह कह कर चला जाता है कि अमुक काम ऐसा कर लेना, वह यश का भागी वनता है—इसमे एक का पुण्य प्रवल है और एक का अप्रवल हे, यही समझना चाहिये। इस तरह उपादान और निमित्त को समझ कर अपना काम करते रहना चाहिये। कर्म प्रकृति मे १२० का वंध १२२ का उदय और सत्ता १४८ की रहती है। वंध के हेतु तो ५ है—मिथ्या, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग-इनका सेवन करने से तीर्थकर नाम गोत्र का उपार्जन नही किया जा सकता है।

अतःज्ञानी कहते है सम्यक्त्व के सद्भाव में तीर्थ की सेवा करने की जब प्रवल भावना पैदा होती है तभी—वह ऐसा कह सकता है—

सर्वं जीव करूं शासन रसी

और इसी भावना मे वह तीर्थकर नाम गोत्र का उपार्जन भी कर सकता है।

हमारा शासन क्या समझाता है? अन्य दर्शनी तो नर्क से डरते है। वे मानते है—किसी को दुख दोगे तो नरक मे जाना पड़ेगा। कपट करोगे तो तिर्यंच-गति मे जाना पड़ेगा। यो वे दो गति से ही डरते है। लेकिन जैन दर्शन कहता है, तुम चारो गति से डरो। हमको तो ५ वी गति मोक्ष मे जाना है। नरक और तिर्यंच गति ही भयकर नही है। देव और मानव गति भी भयकर है। नारकी

आज लिंवडी सम्प्रदाय के पूज्य गोपालजी स्वामी की तिथि है। वे जैतपुर के मूलचंदभाई के मंजले लडके थे। ९ वर्ष के वे थे। गाव में खेल रहे थे। हेमचन्द्रमुनि आहार लेने जा रहे थे। गोपालजी ने उन्हे देखा तो एवन्तामुनि की तरह उनकी अंगुली पकड कर अपने घर ले आये और आहार-पानी वहराया। वापिस मुनि के साथ उपाश्रय तक पहुंचाने भी आये।

अनार्य मुल्क मे भी सहयोग करने की भावना रहती है, पर आज तो आपको फुरसत ही नही है। कोई यह पूछ ले कि उपाश्रय कहा है? तो हाथ से दिखा दोगे कि उस मार्ग से चले जाओ, पर साथ मे चलने को तैयार नही होगे।

मानवता दान देने में नही है, मानवता तो अपने हृदय मे होनी चाहिये।

दुःखडा देखी जगना जो तारुं दीलनारोवे
फोगट तारी भक्ती अेनुं फलकांइं ना होवे

किसी भी दुखी को देखकर हृदय मे अनुकम्पा पैदा न हो तो यह कैसी मानवता है आपकी? मुनियो को भी आज घर मैयाजी बताते है। क्या बात है? आपको तो फ़ुर्सत कहां है? पर याद रखिये साधुजी की सेवा करने से तो तीर्थंकर गोत्र बंधता है।

गोपाल जी मुनिश्री के साथ उपाश्रय तक आता है। मुनिश्री ने पूछा-तेरा नाम क्या है? गोपाल। तुझे सामायिक आती है। नही, मुझे नवकार मंत्र आता है।

साधु और क्या पूछेगा? जो माल उसके पास है। उसीके बारे मे तो पूछेगा?

जैन शाला मे आज कौन आता है? क्या पढाते हो? कौन नही आता? यह कौन पूछता है? जैन शासन का पाया अस्पताल चलाना नही-जैन शाला ही है, इसे मत भूलना। अस्पताल मे दान का प्रवाह बहा देना कोई महत्व नहीं रखता, महत्व तो नीव मजबूत करने में है। लडको को तो सामायिक भी नही आती है और पिता शास्त्र पठन कर रहा है। जिसका पिता अठ्ठाई करता है उसका लडका खटमल मारने की दवा छिडकता है और अंडे का रस पीता है। यह सब क्या है? अस्पतालो को चलाने से पहले जैन के सस्कारों को मजबूत करो। नीव मजबूत होगी तो ऊपर महल भी बनाया जा सकेगा। पर नीव ही कमजोर रही तो क्या होगा? श्रावक के घर मे तो धर्म की चर्चा होनी चाहिये। जीव-अजीव-पुण्य-पाप की बातें होनी चाहिये, पर आज तो पैसा पैदा करने की ही बाते सोची जाती है। तभी तो क्रोध, मान, माया का झगडा हर जगह

चलता रहता है। तत्वों की जानकारी हो तो क्रोध आते ही शांत किया जा सकता है।

हेमचन्द्रमुनि गोपाल से कहते है। तू सामायिक सीखना चाहे तो मैं तुझे सिखाऊंगा। जो मुमुक्षु होता है उसे निमित्त भी मिल ही जाते है। गोपाल मुनिश्री से सामायिक सीखता है। पक्खी का दिन आया, वह भी उपवास करके उपाश्रय में बैठ जाता है। मां ढूढती हुई उपाश्रय में आती है – कहती है–खाना नही खाना है। कितनी देर हो गई है। गोपाल कहता है–मैंने तो आज उपवास कर लिया है। मां कहती है–तेरे से उपवास नही होगा, चल घर चल, अभी तेरी उम्र ही क्या है? बालक कहता है :–

मातारे माता तमे जाणजोरे
मेंकरीया पच्चक्खाणारे कांइ–में
ते तो रे ते तो सीर साटे सहीरे

बालक दृढ रहता है, मां विवश हो घर लौट जाती है–। मुनि श्री तो विहार कर जाते है, पर गोपाल का वैराग्य बढता रहता है। गोपाल ९ वर्ष का ही था, पर वह यह समझ चुका था कि सर्व विरति सामायिक बिना धर्म की आराधना नही हो सकती है। हीरा लाख रुपये का हो, पर उसे ले कौन सकता है? साधारण आदमी का काम थोडे ही है?

गोपालने घर जाकर कहा–मुझे तो दीक्षा लेनी है। मा कहती है– महाराज विहार करेंगे कि वैराग्य भी विहार कर जायगा। लेकिन हुआ इससे विपरीत ही। गोपाल दीक्षा के लिये हट करने लगा। जब चारो गति पर निर्वेद आता है तभी वह जीव दीक्षा लेता है। जिसे संसार में राग है, वह दीक्षा नही ले सकता। साधु होना आसान बात नही है। गोपाल का वैराग्य देख कर उसके पिता को भी वैराग्य हो जाता है। उसकी मा गोपाल के पिताजी को कहती है–तुम इसे समझाते क्यों नही हो।

आज लिवडी सम्प्रदाय के पूज्य गोपालजी स्वामी की तिथि है। वे जैतपुर के मूलचंदभाई के मंजले लडके थे। ९ वर्ष के वे थे। गाव में खेल रहे थे। हेमचन्द्रमुनि आहार लेने जा रहे थे। गोपालजी ने उन्हें देखा तो एवन्तामुनि की तरह उनकी अंगुली पकड कर अपने घर ले आये और आहार-पानी वहराया। वापिस मुनि के साथ उपाश्रय तक पहुचाने भी आये।

अनार्य मुल्क में भी सहयोग करने की भावना रहती है, पर आज तो आपको फुरसत ही नही है। कोई यह पूछ ले कि उपाश्रय कहा है? तो हाथ से दिखा दोगे कि उस मार्ग से चले जाओ, पर साथ मे चलने को तैयार नही होगे।

मानवता दान देने मे नही है, मानवता तो अपने हृदय मे होनी चाहिये।

दुःखडा देखी जगना जो तारुं दीलनारोवे
फोगट तारी भक्ती अेनुं फलकांइं ना होवे

किसी भी दुखी को देखकर हृदय मे अनुकम्पा पैदा न हो तो यह कैसी मानवता है आपकी? मुनियो को भी आज घर भैयाजी बताते हैं। क्या बात है? आपको तो फ़ुर्सत कहां है? पर याद रखिये साधुजी की सेवा करने से तो तीर्थंकर गोत्र बंधता है।

गोपाल जी मुनिश्री के साथ उपाश्रय तक आता है। मुनिश्री ने पूछा-तेरा नाम क्या है? गोपाल। तुझे सामायिक आती है। नहीं, मुझे नवकार मत्र आता है।

साधु और क्या पूछेगा? जो माल उसके पास है। उसीके बारे मे तो पूछेगा?

जैन शाला मे आज कौन आता है? क्या पढाते हो? कौन नही आता? यह कौन पूछता है? जैन शासन का पाया अस्पताल चलाना नही-जैन शाला ही है, इसे मत भूलना। अस्पताल मे दान का प्रवाह बहा देना कोई महत्व नही रखता, महत्व तो नीव मजबूत करने में है। लडको को तो सामायिक भी नही आती है और पिता शास्त्र पठन कर रहा है। जिसका पिता अठ्ठाई करता है उसका लडका खटमल मारने की दवा छिडकता है और अंडे का रस पीता है। यह सब क्या है? अस्पतालो को चलाने से पहले जैन के संस्कारो को मजबूत करो। नीव मजबूत होगी तो ऊपर महल भी बनाया जा सकेगा। पर नीव ही कमजोर रही तो क्या होगा? श्रावक के घर में तो धर्म की चर्चा होनी चाहिये। जीव-अजीव-पुण्य-पाप की बातें होनी चाहिये, पर आज तो पैसा पैदा करने की ही बाते सोची जाती है। तभी तो क्रोध, मान, माया का झगडा हर जगह

चलता रहता है। तत्वों की जानकारी हो तो क्रोध आते ही शांत किया जा सकता है।

हेमचन्द्रमुनि गोपाल से कहते है। तू सामायिक सीखना चाहे तो मैं तुझे सिखाऊंगा। जो मुमुक्षु होता है उसे निमित्त भी मिल ही जाते है। गोपाल मुनिश्री से सामायिक सीखता है। पक्खी का दिन आया, वह भी उपवास करके उपाश्रय मे बैठ जाता है। मां ढूढती हुई उपाश्रय में आती है – कहती है–खाना नही खाना है। कितनी देर हो गई है। गोपाल कहता है–मैंने तो आज उपवास कर लिया है। मा कहती है–तेरे से उपवास नही होगा, चल घर चल, अभी तेरी उम्र ही क्या है? बालक कहता है :–

मातारे माता तमे जाणजोरे
मेंकरीया पचक्खाणारे कांइ–में
ते तो रेते तो सीर साटे सहीरे

बालक दृढ रहता है, मां विवश हो घर लौट जाती है–। मुनि श्री तो विहार कर जाते है, पर गोपाल का वैराग्य बढता रहता है। गोपाल ९ वर्ष का ही था, पर वह यह समझ चुका था कि सर्व विरति सामायिक बिना धर्म की आराधना नही हो सकती है। हीरा लाख रुपये का हो, पर उसे ले कौन सकता है? साधारण आदमी का काम थोडे ही है?

गोपालने घर जाकर कहा–मुझे तो दीक्षा लेनी है। मां कहती है– महाराज विहार करेगे कि वैराग्य भी विहार कर जायगा। लेकिन हुआ इसके विपरीत ही। गोपाल दीक्षा के लिये हट करने लगा। जब चारो गति पर निर्वेद आता है तभी वह जीव दीक्षा लेता है। जिसे ससार मे राग है, वह दीक्षा नही ले सकता। साधु होना आसान वात नही है। गोपाल का वैराग्य देख कर उसकें पिता को भी वैराग्य हो जाता है। उसकी मा गोपाल के पिताजी को कहती है–तुम इसे समझाते क्यो नही हो!

पिता कहता है–क्या समझाऊं! उसका रास्ता वुरा नही है। वह जो कहता है, सच कहता है–संयमी जीवन ही मोक्ष का मार्ग है। मै खुद भी उसके साथ जाना चाहता हूं। मां कहती है–यह क्या? तुम भी लडके का पक्ष ले रहे हो! और स्वयं भी दीक्षा लेने की वात कर रहे हो? पिता और पुत्र दोनो हेमचन्द्रमुनि के पास जाते है। दीक्षा की प्रार्थना करते है। उस समय गोपाल की उम्र १० वर्ष की थी। सन् १८५५ में उनकी दीक्षा हुई थी। सौ साल हो गये, फिर भी उनका जीवन–आदर्श आज भी कायम है। गोपालजी ने १० वर्ष की अवस्था मे दीक्षा धारण की। वाल दीक्षा के विरोधी उस समय नही थे। आज वाल दीक्षा

आज लिवडी सम्प्रदाय के पूज्य गोपालजी स्वामी की तिथि है। वे जैतपुर के मूलचंदभाई के मंजले लडके थे। ९ वर्ष के वे थे। गांव में खेल रहे थे। हेमचन्द्रमुनि आहार लेने जा रहे थे। गोपालजी ने उन्हे देखा तो एवन्तामुनि की तरह उनकी अंगुली पकड कर अपने घर ले आये और आहार-पानी बहराया। वापिस मुनि के साथ उपाश्रय तक पहुंचाने भी आये।

अनार्य मुल्क मे भी सहयोग करने की भावना रहती है, पर आज तो आपको फुरसत ही नही है। कोई यह पूछ ले कि उपाश्रय कहां है? तो हाथ से दिखा दोगे कि उस मार्ग से चले जाओ, पर साथ मे चलने को तैयार नही होगे।

मानवता दान देने मे नही है, मानवता तो अपने हृदय मे होनी चाहिये।

दु:खडा देखी जगना जो तारुं दीलनारोवे
फोगट तारी भक्ती अेनुं फलकांइं ना होवे

किसी भी दुखी को देखकर हृदय मे अनुकम्पा पैदा न हो तो यह कैसी मानवता है आपकी? मुनियो को भी आज घर भैयाजी बताते है। क्या बात है? आपको तो फ़ुर्सत कहां है? पर याद रखिये साधुजी की सेवा करने से तो तीर्थंकर गोत्र बंधता है।

गोपाल जी मुनिश्री के साथ उपाश्रय तक आता है। मुनिश्री ने पूछा-तेरा नाम क्या है? गोपाल। तुझे सामायिक आती है। नही, मुझे नवकार मत्र आता है।

साधु और क्या पूछेगा? जो माल उसके पास है। उसीके बारे मे तो पूछेगा?

जैन शाला मे आज कौन आता है? क्या पढाते हो? कौन नही आता? यह कौन पूछता है? जैन शासन का पाया अस्पताल चलाना नही-जैन शाला ही है, इसे मत भूलना। अस्पताल मे दान का प्रवाह बहा देना कोई महत्व नही रखता, महत्व तो नीव मजबूत करने में है। लडको को तो सामायिक भी नही आती है और पिता शास्त्र पठन कर रहा है। जिसका पिता अट्ठाई करता है उसका लडका खटमल मारने की दवा छिडकता है और अंडे का रस पीता है। यह सब क्या है? अस्पतालो को चलाने से पहले जैन के संस्कारो को मजबूत करो। नीव मजबूत होगी तो ऊपर महल भी बनाया जा सकेगा। पर नीव ही कमजोर रही तो क्या होगा? श्रावक के घर मे तो धर्म की चर्चा होनी चाहिये। जीव-अजीव-पुण्य-पाप की वातें होनी चाहिये, पर आज तो पैसा पैदा करने की ही बाते सोची जाती है। तभी तो क्रोध, मान, माया का झगडा हर जगह

चलता रहता है। तत्वों की जानकारी हो तो क्रोध आते ही शात किया जा सकता है।

हेमचन्द्रमुनि गोपाल से कहते है। तू सामायिक सीखना चाहे तो मैं तुझे सिखाऊगा। जो मुमुक्षु होता है उसे निमित्त भी मिल ही जाते हैं। गोपाल मुनिश्री से सामायिक सीखता है। पक्खी का दिन आया, वह भी उपवास करके उपाश्रय मे बैठ जाता है। मां ढूढती हुई उपाश्रय मे आती है – कहती है–खाना नही खाना है। कितनी देर हो गई है। गोपाल कहता है–मैंने तो आज उपवास कर लिया है। मा कहती है–तेरे से उपवास नही होगा, चल घर चल, अभी तेरी उम्र ही क्या है? बालक कहता है :–

मातारे माता तमे जाणजोरे
मेंकरीया पचक्खाणारे कांइ–में
ते तो रे ते तो सीर साटे सहीरे

बालक दृढ रहता है, मां विवश हो घर लौट जाती है–। मुनि श्री तो विहार कर जाते है, पर गोपाल का वैराग्य बढता रहता है। गोपाल ९ वर्ष का ही था, पर वह यह समझ चुका था कि सर्व विरति सामायिक विना धर्म की आराधना नही हो सकती है। हीरा लाख रुपये का हो, पर उसे ले कौन सकता है? साधारण आदमी का काम थोडे ही है?

गोपालने घर जाकर कहा–मुझे तो दीक्षा लेनी है। मां कहती है– महाराज विहार करेगें कि वैराग्य भी विहार कर जायगा। लेकिन हुआ इसके विपरीत ही। गोपाल दीक्षा के लिये हट करने लगा। जव चारों गति पर निर्वेद आता है तभी वह जीव दीक्षा लेता है। जिसे ससार मे राग है, वह दीक्षा नही ले सकता। साधु होना आसान वात नही है। गोपाल का वैराग्य देख कर उसके पिता को भी वैराग्य हो जाता है। उसकी मा गोपाल के पिताजी को कहती है–तुम इसे समझाते क्यो नही हो!

पिता कहता है–क्या समझाऊं! उसका रास्ता वुरा नही है। वह जो कहता है, सच कहता है–संयमी जीवन ही मोक्ष का मार्ग है। मै खुद भी उसके साथ जाना चाहता हूं। मां कहती है–यह क्या? तुम भी लडकें का पक्ष ले रहे हो! और स्वयं भी दीक्षा लेने की वात कर रहे हो? पिता और पुत्र दोनों हेमचन्द्र-मुनि के पास जाते है। दीक्षा की प्रार्थना करते है। उस समय गोपाल की उम्र १० वर्ष की थी। सन् १८५५ में उनकी दीक्षा हुई थी। सौ साल हो गये, फिर भी उनका जीवन–आदर्श आज भी कायम है। गोपालजी ने १० वर्ष की अवस्था मे दीक्षा धारण की। वाल दीक्षा के विरोधी उस समय नहीं थे। आज वाल दीक्षा

का विरोध क्यो किया जाता है? जब कि भगवान ने तो ९ वर्ष के लडके को भी केवल ज्ञान का अधिकारी कहा है, तब फिर वह दीक्षा का अधिकारी क्यों नही कहा जा सकता? यों तो ४० वर्ष की उम्र में दीक्षा लेने वाला भी दीक्षा छोड कर भाग जाता है। भुक्त भोगी तो स्वाद लेकर आता है। वह छोडकर भी जा सकता है, पर जो बाल ब्रह्मचारी है, उनका संयम तो अपूर्व ही होता है।

गोपालजी मुनि महापडित थे। उनके पास रह कर माणकचंद्रजी म. जादवजी म. जसराजजी म. हीराचदजी म. आदि मुनिराज ज्ञान सीखते थे और साथ ही चातुर्मास करते थे।

मोरवी मे जब सर्वधर्म परिषद हुई थी तो उसमे श्री रवजी और गोपालजी स्वामी ने जैनधर्म का झंडा फहराया था और यह साबित किया था कि जैनधर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। संख्या से हमको खुशी नहीं है, भले ही ५ आदमी ही क्यों न हो, पर जैनत्व की छाप डालने वाले हों तो वे ही बहुत है। ऐसे श्रावकों को देखकर ही हमको भी खुशी होगी। खाली लेबल लगाने से क्या होता है? जब कि अंदर माल ही न हो'

गोपालजी स्वामी के शिष्य पूज्य मोहनलालजी म. थे। पू. मणिलालजी म. जैन आगम के बेरिस्टर जैसे थे।

गोपालजी स्वामी १४ वर्ष तक धोलेरा में गुरु के साथ स्थिरवास रहे। वे प्रखर व्याख्याता, शास्त्रज्ञ और सेवाभावी सन्त थे। १७ वर्ष की उम्र में वे सायला गये थे। सेठ लल्लुभाई वहां एक ब्राह्मण को चर्चा करने लाये। हेमचन्द्र स्वामी ने गोपालजी को बुलाया और कहा—यह ब्राह्मण भाई जो भी प्रश्न पूछे उनके उत्तर देना। ब्राह्मण ने सोचा यह छोटासा साधु मेरे सवालों का क्या उत्तर देगा? ब्राह्मण ने एक साथ १७ प्रश्न पूछे। गोपालजी स्वामी के पूछा—और भी कोई प्रश्न पूछना बाकी है? ब्राह्मणने कहा—नही। तब गोपालजी स्वामी ने क्रमशः एक २ प्रश्न का ऐसा समाधान किया कि वह ब्राह्मण सुन कर धन्य—धन्य बोल उठा। उसने कहा—इस छोटीसी उम्र में आपने इतना अगाध ज्ञान कहा से प्राप्त किया है?

गोपालजी स्वामी ने कहा—गुरु कृपा—फिर तो ब्राह्मण रोज आने लगा और गोपालजी स्वामी से ज्ञान—चर्चा करता रहता था। गोपालजी स्वामीने दीक्षाऐं भी बहुत दी। अन्त में सन् १९४८ वैशाख सुद ११ को उनका स्वर्गवास हुआ।

उनके नाम से ही आज उनका सम्प्रदाय चल रहा है। हम भी उनकी सम्प्रदाय के ही है।

ऐसे पवित्र पुरुष के गुणो का अनुकरण कर जो जीव ब्रह्मचर्य आदि गुणो का पालन करेगे वे अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे।

ता. ४-८-६८

[३७]

संसार सागर से तिरने का आज हमारे पास केवल एकही साधन है–वीतराग की वाणी। अनेक बार हमने पहले भी इसे सुना होगा, पर सुनने से ही क्या होता है जब तक कि उस पर अमल न किया जाय ! यही कारण है कि अनंत पुद्‌गलपरावर्तन हो गये, काल गुजर गये पर वाणी का यह महत्व हमने नही समझा। केवली के पास जाकर भी हम कोरे ही रह गये। कल्याण मंदिर में कहा है—

आकर्णितोऽपिमहितोऽपि निरिक्षितोपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोसि भक्त्या।
जातोस्मि तेन जन बांधव दुखपात्रं
यस्मात क्रिया प्रतिफलन्ति न भाव शून्याः।

हे भगवान ! आपको मैंने कई वार सुना होगा, देखा होगा, पर जिस भाव से देखना या सुनना चाहिये था, वैसा नही किया, इसीलिये मैं संसार में घूम रहा हूं। स्व और पर का भेद समझ लेने पर ही जीव आगे बढता है और अपने संसार को भी घटा सकता है।

जन्म और मरण से जब तक जीव घवराता नही है, तब तक वह वीतराग की शरण मे नही जाता है। वाह्य सुखो मे ही वह तल्लीन वना रहता है। अपनी वाह वाही और यश पाने की इच्छा मे ही दिन रात एक किया करता है।

एक सेठ के एकाएक लडकी है। शादी मे वह बहुत खर्च करता है। वरातियो के स्वागत सत्कार मे किसी वात की कमी नही आने देता। वरात आई और गई–पर लडकी का बाप हंस कर नहीं बोलता, अपना मुंह चढाया ही रहता है तो उसका यह सब खर्च करना भी क्या अर्थ रखता है? इसी तरह जो आत्मा वाह्य सुख के पीछे ही पडा रहता है, अन्तर्मुखी सुख को नहीं पहचानता उसका जीवन भी व्यर्थ चला जाता है।

सुधर्मास्वामी आध्यात्मिक गुणो के स्वामी थे। उनके पास गुणों का अखूट खजाना था। उनका रूप रंग और शरीर ही ऐसा था कि देखते ही मन खुश हो जाता था। राजा श्रेणिक अनाथीमुनि को देखते ही खुश हो गया था। कसा भव्य रूप ! कैसी क्षमा और कैसा तेज ! चेहरा ही मनुष्य की प्रकृतियो का प्रतिविम्ब है।

सुधर्मास्वामी ऐसे ही गुणो के स्वामी थे। वे जीय लोहे–लोभ को भी जीतने वाले थे।

जब तक क्रोध, मान, मांया और लोभ रहता है तब तक संसार भी रहता है। उनको नष्ट करने से ही संसार घटता है—

जहा दड्ढाणं बीयाणं न जायन्ति पुण अंकुरा
कम्म बीएसु दड्ढेसुं न जायन्ति भवांकुरा।

बीज नष्ट कर देने से जैसे अकुर पैदा नही हो सकते, वैसेही कर्म—बीज का नाश कर देने से संसार ही मिट जाता है, फिर उसे संसार में पैदा होना नही पड़ता है।

लेकिन आज तो संसार में रह कर ही लोग धर्म करना चाहते हैं। संसार से विमुख होना कोई नही चाहता। भगवान ने तो कहा है।

संसार मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ काममोगा

संसार में रह कर मोक्ष की आराधना नही की जा सकती। आपको मानव भव में जो साधन मिले है उनका सदुपयोग करो, तभी उनकी सार्थकता है। संगीत के वाद्ययंत्रों की तरह विचार वाणी और आचार में एक रूपता पैदा होगी तभी आत्मा का उत्थान हो सकता है। अन्यथा वह संभव नही है।

आसक्ति कम करते जाना ही लोभ को जीतने का मार्ग है।

एक फेरिया रोज फेरी कर के पुराने कपडो को खरीदा करता था। एक दुकानदार उसे देखता था। उसे देख कर वह सोचता—बेचारा गरीब है, मै इसकी और किसी तरह मदद न कर सकू तो रेजगारी देकर ही इसे कुछ सहायता करूं। घर से कितना जल्दी यह निकल जाता है!

एक दिन यह फेरिया उस दुकानदार के घर पर ही पहुंच गया। उसकी पत्नी ने १० सेर कपड़े दिये और बदले में १० आना देकर वह चला गया। दुकानदार खाने को आया तो उसने कहा—मैंने तो आज पुराने कपडे १० आने में बेच दिये है। वही फेरिया जो रोज आता है, सब ले गया। दुकानदार ने कहा—बेचारा गरीब है, उससे तुमने १० आने क्यों लिये? हमारे वे फटे कपडे क्या काम के थे? ऐसे ही दे देना था। स्त्री बोली—मैंने जबरन थोडे ही दिये थे। उसी ने अपनी इच्छा से लिये है।

कुछ दिनो बाद वही फेरिया उस मार्ग से आ निकला। दुकानदार ने उसे बुलाया और पुराने कपडे देने को अपनी औरत से कहा। फेरिया ने उसका वजन किया और ५ आना देने लगा। दुकानदार ने कहा—मुझे पैसे नही चाहिये भाई, तुम ऐसे ही इन्हे ले जाओ। फेरिये ने कहा—मै भिखारी नही हूं, मजुरी करके अपना पेट भरता हूं। मुझे मुफ्त मे तुम्हारे कपडे नही चाहिये। देना हो तो ये ५ आना ले लो और मुझे ये कपडे दे दो।

दुकानदार ने पूछा–तुम रोज इतने सवेरे क्यो आया करते हो ?

फेरिया बोला—मेरे तीन लडके है–औरत मर गई है। उनको वापस खाना बना कर भी खिलाना पडता है अतः जल्दी अपने काम पर चल देता हूं ताकि वापस अपने घर जल्दी पहुंच जाऊं। मेरा गुजारा मेरे धधे से हो जाता है, फिर मै आपसे मुफ्त मे कपडे क्यो लू ? वह ५ आना डाल कर चल देता है। ऐसा व्यक्ति ही धीरे २ लोभ को छोड सकता है। लोभ तो पाप की परम्परा ही वढाने वाला है। अतः ज्ञानी कहते है यदि तुम्हे संसार से विरक्त होना है तो अपनी गति–विधि वदलो–ससाराभिमुखी न बन कर आत्माभिमुखी बनो तभी तुम्हारा ससार कम हो सकेगा।

वर्षो से एक व्यापारी धधा करता है –अगर उसमें नफा नही, नुकशान ही होता है तो बुद्धिमान व्यापारी उस धधे को छोडकर दूसरा कर लेता है। फिर आप नुकशान का धधा क्यो कर रहे हो ! ससार मे आना–जाना कम नही होता है तो उससे विमुक्त होने का मार्ग क्यो नही ग्रहण करते हो ?

सुधर्मास्वामी ऐसे ही महापुरुष थे। उनके गुणो का जो अनुसरण करेगे वे भी अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे।

अर्था भासन्ति अरिहा
निउणा गुथन्ति गणहरा ?

अरिहन्त जो उपदेश देते है–गणधर उनको सूत्र रूप मे गूथते है। सुधर्मास्वामी ऐसे ही ५ वे गणधर थे जो कि अनेक गुणो के स्वामी थे। उनके गुणों का ही यहा वर्णन चल रहा है–शास्त्रकार कहते है कि वे लोभ को जीतने वाले थे।

लोभ आत्मा का महान शत्रु है। उसको संतोप से ही जीता जा सकता है। साधुको भी लोभ होता है–मेरे इतने शिष्य बने–इतने आदमी व्याख्यान मे आते है, इतनी तपस्याऐ होती है। साधुजी का संयम लूटने वाले यह भी उनसे पूछते है कि हमने अट्ठाई की है, उसके उपलक्ष मे क्या भेट दे ? साधु को ऐसी वातों से क्या मतलव है ? साधु तो धर्म का उपदेश दे सकता है, वाकी प्रपंच से उसे क्या काम है ? भगवान का मार्ग ऐसा नही है। मान के खातिर वहां संयम नही वेचा जा सकता है। यश-कीर्ति का लोभ भी साधुको क्यों होना चाहिये ? कई आचार्य भी मर कर नरक मे गये है, चौदह पूर्वी निगोद मे पडे है – चार ज्ञान के स्वामी भी पृथ्वी, पानी मे वैठे है। इस तरह वे आत्मा का घोर अधःपतन ही कर देते है। अतःज्ञानी कहते है।

गिही संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहुहि संथवं

गृहस्थ का संग मत कर, साधु का संग कर। गृहस्थ का संग करने से तो साधु का पतन ही होगा।

लडका अमेरिका जाता है तो मांगलिक सुनने आते हो। क्यों भला? ज्यादा धन कमा कर लावे इसीलिये न? साधु तो आपको ऐसे डिब्बे में बैठा देता है कि अगर आपमे ताकत है तो सीधे पहुंच सकते हो—बीच में कही भी गाडी बदलने की जरुरत नही है। नारकी, देव और तिर्यंच गति से तो वहां सीधा नही पहुंचा जा सकता है। परन्तु समकिती जीव मनुष्य भव में अगर उत्कृष्ट आराधना करता है तो उसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ऐसा संयोग मनुष्य भव के सिवाय अन्य किसी भी भव मे नही मिल सकता है।

पैसा ही सब कुछ नही है, सच्ची वस्तु तो आत्मा है। द्रव्य, गुण और पर्याय मे मोक्ष प्रकट करना है। जिसे यह करना है उसे तो पर-पर्याय का लोभ छोडना ही होगा। जीवन-मरण का यह रोग तो अनंतकाल से चल रहा है—

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्यु
नान्य:शिवशिवपदस्य मुनीन्द्र पंथा:।

हे भगवान! जो तुम्हे सम्यकतया प्राप्त कर लेता है वह मृत्युजय बन जाता है—मृत्यु को भी जीत लेता है। दूसरा कोई भी ऐसा पवित्र मार्ग नही है।

कितना उत्कृष्ट जैन शासन आपको मिला है? फिर भी आपको उसका बहुमान न हो तो क्या कहना चाहिये?

आज आप अपनी आध्यात्मिक क्रियाओं को भी भौतिक वस्तुओं से लुटा रहे हो—

५ सामायिक करने वाले को	१ काच का कटोरा
अट्ठमतप " "	१ थाली
पौषध " "	१ सेर शक्कर का पुडिका—

यह उन क्रियाओ की हंसी मजाक उड़ा रहे हो या उनका बहुमान कर रहे हो?

एक बार अकबरने बीरबल से कहा—बीरबल तुम मेरे यहा नौकरी करो—।

बीरबल ने कहा—आप खुश रहोगे वहां तक तो ठीक, जिस दिन नाराज हो जाओगे उस दिन मेरी तो मौत हो जायेगी।

बादशाह—ऐसी बात नही होगी। कभी ऐसा मौका ही क्यो आने दिया जाय कि आपस मे कुछ मतभेद हो जाय।

बीरबल ने कहा—फिर भी कभी मौका आ जाय तो एक शर्त मेरी आपको माननी पडेगी—वह यह कि बीच मे मैं जिसे पंच बनाऊं, वह जो फैसला देगा

उसे आपको भी मंजुर करना होगा। बादशाह ने सोचा—ठीक है। प्रजा सब मेरी ही है—मेरे खिलाफ कौन फैसला दे सकेगा? वीरबल की शर्त बादशाह ने मंजुर कर ली। अब वीरबल बादशाह के यहा ही रहने लगा। ९–१० साल हो गये। कुछ लोगों ने बादशाह से शिकायत की—जहापनाह! वीरवल तो खजाने का १० लाख रुपया हजम कर गया है। बादशाह को यह पता चला तो उसने बीरबल से कहा—तुम्हें दंड भरना पडेगा। तुमने खजाने का १० लाख रुपया चुराया है। बीरवल ने अपनी शर्त कह सुनाई। बादशाह ने कहा—ठीक है—तुम अपना आदमी ले आओ—वही तुम्हे दड भी देगा।

बीरवल भंगीयों की बस्ती में गया और एक हरिजन नेता को ले आया। बादशाह ने उससे कहा—वीरवल खजाने का १० लाख रुपया खा गया है उसे तो दंड मिलना ही चाहिये।

रात को उस हरिजनने अपने मोहल्ले के सभी भंगीयों को इकटठा किया और कहा—बीरबल ने खजाने से चोरी की है। उसे क्या दंड देना चाहिये?

एक बोला दो वीस रु. का दंड दे दो—दूसरा बोला—३ वीस का। सरदार बोला—५ वीस रु. का दंड दे दो—जीवन भर फिर खडा न हो सकेगा। दूसरे दिन उसने बादशाह से आकर कह दिया कि बीरबल पर १०० रु. का जुर्माना किया गया है। बेचारा बादशाह सिरपर हाथ देकर रह गया। बीरबल ने १०० रु. का दंड भर दिया। बेचारा हरिजन क्या जाने कि १० लाख कितना होता है? इसी तरह जो लोग जैन दर्शन समझते नहीं है उन्हे ही तुम न्यायाधीश बना दो तो वे क्या फैसला करेगे? पैसा ज्यादा होने से कोई धर्मातमा नही बन जाता है? जो जिस के योग्य है उसे वैसा ही समझो। हीरे का मूल्य तो जवेरी ही जान सकता है—हर एक थोडे ही समझ सकता है? जैसे कोई हीरा खरीदना है तो साथ में दलाल भी रखता है ताकि कही फंस न जाय। इसी तरह जैन दर्शन को आप न समझ सको तो बीच मे दलाल रख लिया करो। सन्त महात्मा दलाल का ही काम करते है— वे तुम्हें सत्यासत्य का भान करा देगें। वे ही तुम्हें सच्चा मार्ग बता सकेगे। अन्यथा उल्टे रास्ते चले जाओगे तो पतन अवश्यंभावी है। उत्सूत्र प्ररूपणा की कि सीधे एकेन्द्रिय में चला जाना पडेगा। जिसकी नीयत ठीक नही है वही यह कहता है कि दूसरे क्या कहते है? मै कहता हूं वहीं ठीक है। भगवान ने तो स्पष्ट कहा है कि —

सदहामि पतियामि रोयेमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि

मैं जो कहता हूं उसे तुम पहले कसौटी पर कसो और फिर उसे मानो!

मे तो हिसाका कथन किया गया है। मनुस्मृति मे तो यहा तक लिखा है कि जो यज्ञ मे मारे गये जानवर का मास नही खाते, उन्हे २१ पशुओं के अवतार लेने पडते है। वैश्या और सती दोनो को एक कैसे माना जा सकता है? सोना सोटचका ही वने रहो – नकली मत वनो और न उसकी तरफ आकर्षित ही हो। सिद्धान्त तो सिद्धान्त ही हैं। त्रिकाल में भी असत्य नहीं हो सकते। ऐसे सिद्धान्तों के ही प्रणेता सुधर्मास्वामी थे। उनके जीवन में लेशमात्र भी लोभ कषाय नहीं था। उनमे और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

सोमवार ता. ५–८–६८

[३८]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। जो महापुरुष होते हैं उनके गुणों का ही अनुकरण किया जाता है। सुधर्मास्वामी लोभ को जीतने वाले थे।

परिग्रह–चारों तरफ से वध जाना–घेरा जाना–परिग्रह है। परिग्रह दो तरह का होता है—वाह्य और आभ्यन्तर। वाह्य परिग्रह ९ प्रकार का होता है–(१) खेत (२) वत्थु–ढंकी हुई जमीन (३) हिरण–सुवर्ण–सोना–(४) चादी (५) धन–(६) धान्य ७–८–दुपद–चौपद–मनुष्य और ढोर (९) कुविय–फर्नीचर–भडोपकरण—वर्तन आदि ये सभी वाह्य परिग्रह कहे गये है।

आभ्यन्तर परिग्रह १४ प्रकार का कहा गया है।

९ कषाय–हास्य–रति अरति–भय, शोक, दुगछा स्त्रीवेद–पुरुषवेद और नुपंसकवेद, क्रोध, मान, माया, लोभ एव १४ वा. मिथ्यात्व । ये १४ आभ्यन्तर परिग्रह कहे गये हैं। वाह्य परिग्रह छोड कर भी अगर साधु १४ आभ्यन्तर परिग्रहों को न छोडे तो वह साधु नही कहा जा सकता है।

अनादि काल से यह जीव मिथ्यात्व में प्रवृत्ति कर रहा है—

इसकी जड ही नष्ट कर दी जाय तो–मूलं नास्ति कुत.शाखा–तत्व की सच्ची श्रद्धा हो सकती है। वस्तुको वस्तु रूप मे मान्य न करना, हेय को उपादेय और उपादेय को हेय मानना मिथ्यात्व है। समकित आये विना मोक्ष नही हो सकता है। सम्यग्दर्शन ही मूल पाया है। सम्यग्दर्शन होने पर ही श्रावक और साधु वना जा सकता है। सम्यग्दर्शन यानी सच्ची दृष्टि। जिसकी दृष्टि शुद्ध है उसका ज्ञान भी शुद्ध होता है, उसका चारित्र भी निर्मल होता है। लेकिन जिसकी दृष्टि विपरीत होती है उसका ज्ञान और चारित्र भी अशुद्ध ही होता है।.

बडी २ नदियो में पानी के साथ वड़े २ पत्थर भी वहते २ गोल हो

सच्चा सोना तो सोना ही रहने वाला है। परन्तु आज कल तो सच्चे के पीछे-नकली माल भी चलने लग गया है।

एक राजा के पास एक जौहरी हीरा लेकर आया। राजाने उसकी अपने जौहरियो से परीक्षा करवाई। कोई उसे एक हजार का कहता, कोई दो हजार का, तो कोई पांच हजार का कहता। किसी का समान मत नहीं था अत: राजाने कहा ८ दिन के अंदर इस हीरे का सही मूल्य नही वताया तो मै सव को जेल में वैठा दूगा। एक युवक जौहरी चिन्तित हो गया। उसके वूढे पिता ने पूछा—चिन्ता क्यो कर रहा है? उसने हीरे की वात कह दी। वृद्ध पिता ने कहा—उस दिन तू मुझे ले चलना, मै उसकी कीमत करूंगा।

नियत दिन सव जौहरी दरवार में हाजिर हुए। सवसे वद्ध जौहरी को देख कर राजाने कहा—तुम इस हीरे की कीमत करो।

जहां न पहुंचे रवि
वहां पहुंचे कवि
जहां न पहुंचे कवि
वहां पहुंचे अनुभवि।

वृद्ध जौहरीने हीरा देखा और कहा—राजन्! यह हीरा नहीं मिश्री है—इसके ऊपर तो कारीगरी कर रखी है।

राजाने पूछा—यह कैसे जाना तुमने?

जौहरी—अनुभव से। हीरा पर मक्खी नहीं वैठती, पर इस पर तो मक्खी बैठने को ललचा रही है। दूसरे सब जौहरी देखते रह गये। किसीने ३ हजार तो किसीने ५ हजार की कीमत की थी, पर वह तो शक्कर की डली थी। इस तरह जिसे नकली और असली का ज्ञान होता है वह तो उसकी पहचान कर लेता है, पर जिसे ज्ञान नही होता वह भ्रम मे ही रह जाता है और नकली को ही असली मान कर अपना पतन कर वैठता है।

इसी तरह जो तत्वो का जानकार होता है वह तो—

साधु को कुसाधु नही मानता है
कुसाधु को साधु नही मानता है
जैनको अजैन नही मानता है
अजैन को जैन नहीं मानता है, और

तत्वातत्व का निर्णय कर लेता है। वह भ्रम मे नही रहता। जिसे यह तत्व-ज्ञान नही होता वही भ्रम मे रहता है। पीला-पीला सब सोना समझने लगता है, पर यह ठीक नही है। सब धर्मो को समान कहना भी ऐसा ही है। वेदों

मे तो हिसाका कथन किया गया है। मनुस्मृति में तो यहा तक लिखा है कि जो यज्ञ में मारे गये जानवर का मांस नही खाते, उन्हे २१ पशुओं के अवतार लेने पडते है। वैश्या और सती दोनो को एक कैसे माना जा सकता है? सोना सोटचका ही बने रहो – नकली मत बनो और न उसकी तरफ आकर्षित ही हो। सिद्धान्त तो सिद्धान्त ही है। त्रिकाल मे भी असत्य नही हो सकते। ऐसे सिद्धान्तों के ही प्रणेता सुधर्मास्वामी थे। उनके जीवन मे लेशमात्र भी लोभ कषाय नही था। उनमें और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

सोमवार ता. ५–८–६८

[३८]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। जो महापुरुष होते है उनके गुणो का ही अनुकरण किया जाता है। सुधर्मास्वामी लोभ को जीतने वाले थे।

परिग्रह–चारो तरफ से बंध जाना–घेरा जाना–परिग्रह है। परिग्रह दो तरह का होता है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य परिग्रह ९ प्रकार का होता है–(१) खेत (२) वत्थु–ढंकी हुई जमीन (३) हिरण–सुवर्ण–सोना–(४) चादी (५) धन–(६) धान्य ७–८–दुपद–चौपद–मनुष्य और ढोर (९) कुविय–फर्नीचर–भंडोपकरण—बर्तन आदि ये सभी बाह्य परिग्रह कहे गये है।

आभ्यन्तर परिग्रह १४ प्रकार का कहा गया है।

९ कषाय–हास्य–रति अरति–भय, शोक, दुगंछा स्त्रीवेद–पुरुपवेद और नुपंसकवेद, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं १४ वा. मिथ्यात्व। ये १४ आभ्यन्तर परिग्रह कहे गये है। बाह्य परिग्रह छोड कर भी अगर साधु १४ आभ्यन्तर परिग्रहो को न छोडे तो वह साधु नही कहा जा सकता है।

अनादि काल से यह जीव मिथ्यात्व मे प्रवृत्ति कर रहा है—

इसकी जड ही नष्ट कर दी जाय तो–मूलं नास्ति कुतःशाखा–तत्व की सच्ची श्रद्धा हो सकती है। वस्तुको वस्तु रूप में मान्य न करना, हेय को उपादेय और उपादेय को हेय मानना मिथ्यात्व है। समकित आये विना मोक्ष नही हो सकता है। सम्यग्दर्शन ही मूल पाया है। सम्यग्दर्शन होने पर ही श्रावक और साधु बना जा सकता है। सम्यग्दर्शन यानी सच्ची दृष्टि। जिसकी दृष्टि शुद्ध है उसका ज्ञान भी शुद्ध होता है, उसका चारित्र भी निर्मल होता है। लेकिन जिसकी दृष्टि विपरीत होती है उसका ज्ञान और चारित्र भी अशुद्ध ही होता है।.

बडी २ नदियो मे पानी के साथ बड़े २ पत्थर भी बहते २ गोल हो

जाते है—शालिग्राम बन जाते है। वैसे ही यह जीव भी अनन्त भवों में चक्कर खाते खाते बादर, सूक्ष्म १,२,३,४, इन्द्रिय, संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय में घसीटाते २ यथाप्रवृत्तिकरण मे आ जाता है। यथाप्रवृत्तिकरण के भी दो भेद है—सामान्य और विशेष। सामान्य यथाप्रवृत्तिकरण मे आया हुआ जीव वापिस लौट भी सकता है—अनंत संसार मे भटक सकता है। जैसे महल के द्वार पर सिपाही खडा रहता है और वह अदर विना आज्ञा के प्रवेश नही करने देता है वैसे ही सम्यक्त्व के महल मे भी दर्शनावरणीय कर्म सिपाही बनकर खडा रहता है—वह अदर आने नही देता है। पहले तो कभी ऐसे भाव भी पैदा नही होते थे, पर अब ये भाव तो आने लगते है कि चलो अंदर चल कर देखें तो सही—सम्यक्त्व का महल अंदर से कैसा है? मिथ्यात्व युक्त कषाय के वशीभूत जीव में ऐसे भाव भी नही पैदा होते हैं। नमिराजर्षि को ब्राह्मण वेष में इन्द्र कहता है—

हिरण्ण सुवण्ण मणिमुत्तं कंसं दूसंच वाहणं ।
कोसं वढावइत्ताणं तओ गच्छसि खत्तिया ।

हे क्षत्रिय! अभी तुम इतना काम करते जाओ, सोना—चांदी मणि—माणक, कासा—आदि धातुओं से अपना भंडार भर दो ताकि तुम्हारे कुटुम्बीजनों को आगे चल कर कष्ट न हो, फिर तुम दीक्षा धारण करना।

आप भी आज ऐसा ही कर रहे है?

जहा लाहो तहा लोहो—लाहालोहो पवड्ढई ।

लाभ से लोभ भी बढता चला जा रहा है—विदेशो मे भी ओफिस खोलते चले जा रहे हो। पर जरा यह तो बतावो कि धन से भूख मिटती भी है या वह बढती ही चली जा रही है न?

लाभ थायने लोभ वधी जाये
लाख मांथी बे लाख क्यारे थाये
आशा तृष्णा बलवंत, तेनो आवे नहि अन्त
मोह ममता ना २ हिचके झुल्या २ दुख मां डुल्या रे
डुल्या तमे भक्ति ना पंथडा भूल्या
देश परदेशे मोटा मनाणा, तेमां साचु कहो शुं कमाणां!
वध्यो दोरने दमाम रह्यु करवानुं काम थई फोगटिया २
फूलणजी फूल्या—फूल्या दुखमां डुल्या रे डुल्या, तमे भक्तिना पंथडा भुल्या।

ज्ञानी कहते है—जैसे २ लाभ होता है वैसे २ लोभ भी बढता चला जाता है अतः सम्यक्त्व के आंगन (महल) मे प्रवेश कैसे किया जा सकता है? प्रवेश फी (शुल्क) तो सब जगह होती है। म्युजियम देखने जाओ या नाटक—सिनेमा, प्रवेश फी तो

देनी ही पडती है। इसी तरह सम्यग्दर्शन की भी फीस है–६९ करोडा करोडी सागरोपम तक के कर्मो को क्षय कर जो जीव अन्तोकरोडाकरोडी मे प्रवेश कर लेता है वही सम्यग्दर्शन के महल मे प्रवेश पाने का हकदार बनता है।

उपाश्रय मे आना आज अप्रिय लगता है। उप–पास–समीप, आश्रय–निवास करना, आत्मा के समीप निवास करना उपाश्रय है। पर आज उपाश्रय मे आने के वजाय उद्घाटन करने मे या मकान की नीव डालने के कार्यक्रममे मानव आनंद का अनुभव करता है। जहां जाना चाहिये, वहा तो वह नही जाता, पर जहा नहीं जाना चाहिये वहा खुशी २ जाता है। तब फिर आत्मा का उत्थान कैसे हो सकता है?

वाणी विचार और आचार मे आज सुमेल कहां रहा है? एक आदमी एक जगह खादी के गुणग्राम गाता है, तो दूसरी जगह वही मीलो की उद्घाटन क्रिया मे पहुच कर उसके गुणगान करने लग जाता है। यह सब क्या है? दुनियामे हमारा देश ही एक ऐसा देश है जहा से मांस भी बाहर विकने जाता है। लोग कहते है–इडिया का मास अच्छा होता है। शास्त्र मे वर्णन आता है–परदेशी राजा सवासेर चिडिया (चकला) की जीभ का आहार किया करता था। इस तरह वह कितने चकले रोज मारता होगा? आज भी कितने मेढक रोज मारे जाते होगे! उनका भी कोई हिसाब है? ऐसे लोगो को आप वोट देते हो तो उस हिसा मे क्या आप भागीदार नही बनते हो?

अज्ञान और मोह दो ऐसे सिपाही तैनात है जो समकित के द्वार तक पहुंचने नही देते है।

बहिने शोक प्रदर्शित करने के लिये काली साडियां पहन कर जाती है, और फिर कही विवाह मे जाना हो तो वे ही रंगीन चमकदार साडिया पहन कर जाती है। यह सव नाटक नही तो क्या है? ससार एक नाटक है, जिसकी तृष्णा कभी मिटती नही है। सात पेढी तक का धन सग्रह करके क्यो रखते हो? आत्मा की खुराक अलग है, मन की खुराक अलग है और शरीर की खुराक भी अलग है। आत्माकी खुराक सच्चारित्र है–ज्ञान दर्शन चारित्र ही आत्मा का भोजन है। मन का भोजन सुविचार है। जो आदमी आध्यात्मिक खुराक लेता है वह दिव्यता प्राप्त करता है। जो आदमी सुविचार की खुराक लेता है,–वह मानवता प्राप्त करता है। पर जो आदमी शरीर को हृष्ट पुष्ट वनाता है–स्नो पाउडर लगा कर चमकाता है वह तो पाशविकता ही वढाता है। सोचिये आज आप कौनसी खुराक ले रहे हो? क्या शरीर को ही तो नही खिला रहे हो? आध्यात्मिक खुराक आत्मा को दो वहीं सच्चा मार्ग है।

औरतें बाजार में जाती है तो पाकिट खाली करके आती हैं। उनको क्या फिकर होती है। फिकर तो आदमी को है। तृष्णा इतनी क्यो रखती हो? जो नई साडी दीख जाय वही लेने की इच्छा क्यो रखती हो? व्रत ले लो, इच्छाएँ अपने आप दब जायगी–रोज की यह हायहाय अपने आप खत्म हो जायगी। इच्छाओ का निरोध करना ही इच्छाओ को रोकने का रामवाण उपाय है। नमि-राजर्षि ने इन्द्र को जवाब देते हुए कहा—

सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे, सियाहु केलास समाअसंखया,
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छा हु आगास सभा अणंतिया

सोने–चादी के असख्य पर्वत भी खडे क्यो न कर दिये जायं परन्तु लोभी आदमी की लोभ वृत्ति कभी पूरी नही होती है। क्योकि इच्छाऐ तो आकाश की तरह अनन्त है। अत: उनका निरोध करो, सन्तोष धारण करो, यही आत्मोत्थान का अमोघ उपाय है।

आज केशवलालजी म. की तिथि है। उन्होने १७ वर्ष की उम्र मे दीक्षा ली थी। वे देशलपुर (कच्छ) के निवासी थे। बचपन मे ही मा मर गई थी। पिता भी कुछ वर्षो वाद मर जाते है। बडे भाई के साथ वे बम्बई आये और दुकान करते है। बडे भाई को बम्बई का पानी अनुकूल नही आता है और उसे जलंधर की बीमारी हो जाती है। वे भाई को रखने के लिये देशलपुर आते हैं। वहा भाई की सब व्यवस्था कर के वापस बम्बई आने का विचार करते हैं। तब भाई कहता है–यहा आया ही है तो महाराजश्री का व्याख्यान तो सुन कर जा।

बडे भाई की आज्ञा मानकर केशवलालजी दूसरे दिन उपाश्रय में व्याख्यान सुनने जाते है। जिन्दगी मे उन्होने यह पहला व्याख्यान सुना था जिसे सुनते ही उनका अन्तर्मन जागृत हो उठा। स्वाति नक्षत्र मे सीप का मुह खुला रहता है। जो सीप उछल कर वह बूद ग्रहण करती है उसीका मोती कीमती होता है। मोती तो और भी कई होते हैं, पर उसका मुकाबला वे नही कर सकते है—

मोती मोणीया केवाय, ते तो पाणीथी मपाय:
भांगे कदिना संधाय, मोटा मूल्य थी वेचाय
आवो ने आतमराय आपणज्ञान भीजीये।

केशवलालजी म. ने श्यामजी स्वामी का व्याख्यान सुना तो वह उनके हृदय में घर कर गया। बम्बई जाने की भावना अब गौण बन गई। भाई ने पूछा, व्याख्यान कैसा लगा? उन्होने कहा—बहुत अच्छा।

धर्म का रंग कुछ ऐसा लगा कि एकही दिन में उन्होने मुनिश्री से सामायिक सीखली। प्रतिक्रमण ८ दिन में पूरा कर लिया। अब वे श्यामजी स्वामी के साथ ही विहार करने लगे। संगे संबंधी कहने लगे—कुटुम्ब का पालन करना है या साधुओ के साथ ही विहार करना है? केशवलालजी उत्तर देते—मुझे तो अब यही अच्छा लगता है, मै अब संसार मे रहना नही चाहता। उनकी स्मरण शक्ति बहुत तेज थी। ६ मास में ही उन्होने ७५ थोकडे कंठस्थ कर लिये थे। बडे भाई का भी स्वर्गवास होगया। मां बाप पहले ही मर चुके थे। संसार की असारता का भान उन्हे हो चुका था। वे एक पल भी अब संसार मे रहना नही चाहते थे। बम्बई आये और दुकान का सब सामान बेचकर वापस देशलपुर चले गये। जो कुछ रुपया मिला था अपनी नई मा को देकर उन्होने १७ वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण कर ली।

संसार दावानल दाहनीरं
संमोह धूली हरणे समीरं।
माया रसा दारण सारसीरं
नमामि वीरं गिरि सारधीरं।

संसार रूपी दावानल से वे बच निकले और पूज्य मोहनलालजी म. के शिष्य बने। शास्त्राभ्यास किया। गुरु महाज्ञानी थे—सिद्धान्तों को समझने वाले थे। उनकी मोहनमाला प्रश्नोत्तर आज भी सर्वत्र पढी जाती है। उनसे उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। कई सूत्र उन्हे मुखाग्र थे। संस्कृत भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। पठन—पाठन के सिवाय अन्य कोई काम उन्हे अच्छा नही लगता था।

केशवलालजी म. जीये वहां तक किसी को भी एक पत्र तक उन्होने नही लिखा था। ऐसे निष्पृह और सरल आत्मा थे।

उनके कुछ व्याख्यान—संग्रह— 'संवुज्झ किं न वुज्झह' और उदायन राजा का वर्णन—छहजीव का अधिकार—प्रकाशित भी हो गये हैं। जिनको पढने से आत्म तत्व का सच्चा स्वरूप समझ मे आने लगता है।

छोटा हो या वडा, वच्चा हो या वूढा. सव को एक समान समझकर शंका समाधान किया करते थे। इतने ज्ञानी होते हुए भी ज्ञान का अहंकार उनमे नही था। कई श्वेताम्वर साध्वियां भी उनसे ज्ञान प्राप्त करने आती रहती थीं। उनका शास्त्राभ्यास इतना ऊंचा था कि सुनते २ लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे।

अंतिम समय में जब वे बीमार हो गये थे—देह की बीमारी उन्हे हो गई थी, डाक्टरों ने उन्हे चलने—फिरने की भी मनाई कर दी थी, पर वे डोली में नही बैठे और धंधुका से लीवडी पधारे। लीवडी से वढ़वाण आये।

कुसुमवाई को दीक्षा देने वे वढ़वाण केम्प में आने वाले थे और विहार भी कर दिया था, पर बीच मे ही दिल का दौरा होने से उन्हे वापस वढवाण उपाश्रयमें ले जाया गया। वे चाहते हुए भी दीक्षा मे न आ सके। १९ दिन तक उन्होंने भयंकर बीमारी का सामना किया। फिर भी वे अपने आसन पर पद्मासन लगा कर ध्यान करके बैठ जाया करते थे। अन्तिम दिन जब लीवडी के संघवी प्रेमचंदभाई महाराज श्री के पास खडे थे तब मुनिश्रीने कहा—

अनन्त गुणी आतमा करे निजनिज गुणनुं काम।
जो समझे आ जीवडो, सरे पोतानुं काम।

उनका अंतिम उपदेश था

सत स्वरूपी आतमा उत्पाद् व्यय ध्रुव युक्त।
समझे कोई विरला थई जाये भव मुक्त।

कैसी अपूर्व उनकी साधना थी। मृत्यु में अभी ५ मीनिट बाकी है—मुनि श्री कहते है—

वेदुं छुं निज आतमा, बाकी सघलु फोक
छुटी जाय आ देहतो, नहि कांई हर्ष के शोक।

थोडी देर बाद तो वे अपना नश्वर देह छोड कर चले जाते है। स्थिर बुद्धि साधु के जो गुण बताये गये है—

दुखे उद्वेग ना चित्ते, सुखोनी झंखना गई।
गया राग भय क्रोध, मुनि ते स्थिर बुद्धिनो।

उनमे थे। ऐसे महान—पुरुष का मरण देखना भी भाग्यशालियो का काम है। वे सचमुच कोहिनूर हीरे की तरह थे। आतम तत्व के सिवाय और कोई बात वे करते नही थे। ज्ञान चर्चा मे वे कभी थकते नही थे। ऐसे महान आत्मा के गुणो का जो भव्यजीव अपने जीवन मे अनुकरण करेगे वे ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगें।

मंगळवार ता. ६–८–६८

[३९]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते हैं वे लोभ को जीतने वाले थे। लोभ के चार भेद किये गये है—

अनन्तानुबंधी लोभ

अप्रत्याख्यानी लोभ

प्रत्याख्यानी लोभ

सज्ज्वलन लोभ

लोभ आत्मा का पतन करने वाला है। शास्त्र में कहा है—

दुक्खं हयं जस्स न होइ लोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हुओ जस्सकिंचणाई।

आपको क्या चाहिये? सुख या दुख? सुख चाहिये तो लोभ को छोडो। जिसको लोभ नही होता वही दुख को दूर कर सकता है। विष्ठा के कीडे से लेकर देवलोक के देवता भी सुख चाहते हैं। दुख कोई नही चाहता। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि दुख न चाहने पर भी दुख के कारणो को कोई छोडना नही चाहता। बबूल बो रहे हो और काटे नही चाहिये, यह कैसे संभव हो सकेगा? काटे नही चाहिये तो बबूल बोना बंद कर दो, काटे अपने आप नही रहेगें। इसी तरह यह जीव भी अनत काल से सुख की इच्छा करता आ रहा है, पर वह मिलता नही है। सुख के बदले दुख ही प्राप्त करता रहा हैं। इसका कारण अज्ञान ही है। वह अब तक यह समझा नही है कि सुख क्या है और दुख क्या है? दुख को मिटाने के लिये आज पैसा एकत्रित किया जा रहा है। लोग समझते है पैसा है तो सुख है। यह समझना ही गलत है। मूल में ही भूल हो तो जोड-बाकी सही कैसे होगी?

अज्ञानी और मिथ्यात्वी जहां सुख समझ रहे है वहा सुख नही है। वे पर पदार्थ मे सुख मान रहे है यही उनकी भूल है—

जेह स्वरूप समझ्या विना, पाम्मो दुख अनन्त।
समझाव्यु ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवन्त ।

जिसका स्वरूप समझा नही है——नव तत्वो का-जीव अजीव का स्वरूप जाना नही है, इसीसे मैंने अनन्त दुख प्राप्त किये हैं। जीव ही सुख-दुख का जानकार होता है-अजीव उसे नही समझ सकता। वह स्व-पर का ज्ञायक नही होता। अजीव को चाहे मारो-काटो या जलावो उसे किंचित मात्र भी दुख नही होता है। लेकिन चैतन स्व-पर का ज्ञाता होता है-। शरीर मे जब तक वह

रहता है, शरीर की कीमत होती है, चैतन गया कि शरीर मुर्दा हो जाता है–मिट्टी हो जाता है।

शीत, ऊष्ण का ज्ञान आत्मा ही करता है। जिसने आत्मा को पहिचाना नही, वही शरीर–साधन का खयाल रखता है। जिसने आत्मा को पहचान लिया है, वह शरीर–साधन की चिन्ता नहीं करता है।

जीवन में अर्थ की भी आवश्यकता रहती है। इसका सर्वथा निषेध नही किया जा सकता है। परन्तु संग्रह वृत्ति खराब है। वह जीव को चिरकाल तक पाप मे डुबाये रखती है। अनन्तानुबंधी लोभ के वशीभूत जीव सारी दुनिया का धन अपने घर मे इकट्ठा करने की इच्छा रखता है। जो कुछ भी नया दिखाई दिया, लेने की इच्छा करना अनंतानुबंधी लोभ है। स्व को भूल कर पर पदार्थ को लेने की महत्वाकाक्षा रखना अनंतानुबंधी लोभ है। आचारांग में कहा है—

जेण सिया तेण नो सिया

जिसे तुम सुख समझ रहे हो वही तुम्हे दुख देने वाले बनेगें। परदेशी राजा की रानी सूर्यकान्ता राजा को कितनी प्रिय थी, पर वही राजा को दुख देने वाली भी बनी।

एक जौहरी अपने गांव से दूसरे गांव पैदल जा रहा था। पहले के लोग तो पैदल ही एक गांव से दूसरे गांव आया जाया करते थे। लेकिन आज तो आधा मील चलने मे भी थकावट महसूस होने लग जाती है। इसका क्या कारण है? आज संयम का अभाव हो जाने से शरीर की ताकत कम हो गई है। दूसरी बात पौष्टिक तत्व भी नही मिलता है। आज दूध, दही और घी तो गायब ही हो गया है। उनकी जगह चाय आ गई है। इस व्यसन से पर्वो की आराधना भी नही हो सकती है। हिंद की प्रजा आज व्यसन और फैशन में मरी जा रही है। व्यसन से बीमारियां बढी है और फैशन से दरिद्रता। बीमारियां बढी तो डाक्टर भी बढे–अस्पताल भी बढ़े पर दर्द कम नहीं हुए। क्योकि बीमारीके कारण भी बढते गये है–होटल भी बेशुमार हो गये है। जहां खाने–पीने का भी कोई हिसाब नही है। साधुसाध्वीजी आहार लेने जाते है तब मालूम पडता है कि ये श्रावक है या और कोई है? कांदा–बटाटा–और लहसून घर मे दिखाई देते है। क्या कोई श्रावक कहला कर इनका उपयोग कर सकता है?

तिर्यंच गति में आहार संज्ञा ज्यादा होती है। पशु जैसा–तैसा भी आहार खा जाता है। लेकिन आप तो मनुष्य है, श्रावक है—आपका आहार तो सात्विक-

[illegible] चाहिये।

आज ब्रह्मचर [illegible] नही है। पहले के जमाने में

गर्भवती बाई से ३ साल तक अब्रह्म का सेवन नही किया जाता था। लेकिन आज ऐसा कोई नियम नही रहा है अतः शारीरिक शक्ति भी कम होती जा रही है।

लालटेन में जब तक तेल रहेगा तभी तक वह प्रकाश दे सकेगा, तेल के अभाव में वह बुझ जावेगा। इसी तरह इस शरीर में भी जब तक ब्रह्मचर्य का तेल रहता है बह सक्षम रहता है–ब्रह्मचर्य के अभाव मे वह भी क्षीण हो जाता है।

जौहरी पैदल चला जा रहा है। बीच मार्ग में उसे एक आदमी हांफता हुआ आता दिखाई देता है। जौहरी पूछता है–घबरा क्यो रहे हो भाई? क्या बात है? वह आदमी कहता है—घर में पैसा था नही, लोगो से उधार लेकर व्यापार किया। उसमे नुकशान हो गया। लोगो का देना है–मेरे पास यह हार है, इसे बेच कर जो भी दो–चार आना उनको दे सकूं, दे दूंगा। यह कहकर उसने वह हीरे का हार जौहरी को बताया। जौहरी ने हार को देखकर पूछा–इसका कितना रुपया लेना है?

वह बोला–जो भी आ जाय? वैसे यह हार तो एक लाख रु. का है।

जौहरी उसे २५ हजार रु. मे खरीद लेता है। ७५ हजार रु. का उसे लाभ होता है। यह सोचकर वह तो खुशी २ उस गाव पहुच जाता है।

गांव मे ढोल बज रहा था। उसने पूछा–यह क्यों बज रहा है? लोगोने कहा–रानीका हार गुम हो गया है, जिसके पास भी वह मिल जायगा उसे राजा फांसी पर चढ़ा देगा। यह सुन कर उसे कितना दुख हुआ होगा? कहां ७५ हजार का फायदा सोच रहा था और अब २५ हजार भी घर से जा रहे है? पकडा जाय तो मौत की सजा ऊपर से मिलने वाली है। जिस वस्तु से वह सुख अनुभव कर रहा था उसीसे अब वह दुख महसूस करने लगा। जौहरी वापस लौटता है और एक कुए मे वह हार डाल कर निश्चिन्त हो जाता है। सिपाही उसकी तलाशी भी लेते है तो वह खुशी खुशी सब बता देता है।

ऐसी ही जांच–पडताल अगर आपके यहां भी हो तो आपका क्या हाल हो? न्याय–नीति से धंधा करने वाले को तो किसी तरह का डर नही होता है, पर जो लोभ के वशीभूत हो चाहे–जैसे भी धन इकट्ठा करने की सोचता है उसकी तो बुरी दशा ही होती है।

अनंतानुबंधी लोभ किरमची रंग जैसा कहा गया है। किरमची का रंग धोने से भी जाता नही है, वैसे ही यह लोभ भी आजीवन मिटता नही है।

जो आत्मा लोभ के वशीभूत न हो उसे जीतेंगे वे ही सुखी हो सकेगें।

बुधवार ता. ७–८–६८

[४०]

सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है वे लोभ को जीतने वाले थे।

सन्तोषो हि प्रबलं च सौख्यं, सौख्येनकृत्वा भवतीति धर्म
धर्मेणकृत्वा भवतीति मोक्षो मोक्षैर्जिनेरुक्तमनन्त सौख्यम् ।

सतोषी सदा सुखी, तृष्णालु महा दुखी।

संतोष ही सब से बडा सुख है। जिसकी तृष्णा विशाल है, वह दरिद्री है, भिखारी है।

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा—आयुष्य घटता जाता है, पर तृष्णा कभी कम नही होती है—ठाणांग मे कहा है—

एक वस्तु ऐसी होती है जो बढती ही रहती है।

एक वस्तु ऐसी होती है जो घटती ही रहती है।

एक वम्तु ऐसी होती है जो बढती भी है और घटती भी है।

एक वस्तु ऐसी होती है जो बढती भी नही और घटती भी नही।

जो सदैव बढती रहती है वह तृष्णा है। बच्चा बूढा हो जाता है—पर तृष्णा बूढी नही होती। आयुष्य घटता रहता है, पर तृष्णा बढती ही रहती है।

(२) आयुष्य घटता ही जाता है, वह बढता नही है?

भगवान का आयुष्य पूरा होने वाला है। इन्द्र कहता है—भगवान! अभी तो भस्मग्रह चल रहा है, दो घटे आयुष्य बढा दीजिये।

भगवान ने उत्तर दिया—देवराज, यह कभी न हुआ है और न कभी होगा—न भूतो न भविष्यति। आयुष्य कोई भी बढा नही सकता। चाहे जिस डाक्टर को बुला लो और चाहे जैसी कीमती दवा भी मगालो, पर आयुष्य को बढाने मे कोई समर्थ नही है। न कोई उसे घटा सकता है और न कोई उसे बढा सकता है। आयुष्य तो दिनप्रतिदिन घटता ही जाता है—

'आयुष्य केरी दोरी ज्यां तुटशे
डाक्टर ने वैदो पाछाज पडशे
पड्या रहेवाना अे दवाना रे बाटला—बाटला दवाना
जवानो समय आव्यो जवाना जवाना
जवाना जवाना अेतो थवाना रवाना रे
थवाना रवाना।

मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता। इन्द्र भी रोक नही सका तो दूसरों की क्या ताकत है?

पतग की डोरी टूटी कि वह कही न कही चली जाती है। वैसेही आयुष्य की डोरी भी टूटी कि तुम्हें कोई बचा नही सकेगा। पू. केशवलालजी म. कहा करते थे :–

आयु देह रक्षा करे, प्रारब्ध करे पोषण ।
दोनुमिल रक्षा करे हम भजे निरंजन नाथ।

आयुष्य बलवान है तो वह देह की रक्षा करेगा ही। भले ही ७ माले से गिर जाओ पर आयुष्य बलवान है तो वह बच जाता है। लेकिन आयुष्य नही है तो चलते चलते ही मौत आ जाती है। जैसा कि आप रोज ही सुनते और देखते हैं कि अमुक भाई चलते चलते ही मर गया, अमुक सोया तो फिर उठा नही। जब तक घडियाल मे चावी है तव तक वह चलती रहती है। चाबी खतम हुई कि घडियाल बंद पड जाती है। ऐसा ही हाल हमारे शरीर का भी है।

भाग्य देह का पोपण करता है। वालक जन्मा भी नहीं कि करोडपती वन जाता है। याद रखो, भाग्य मे होगा तो वह मिलेगा ही। और भाग्य में न होगा तो मर भी जाओ तव भी वह मिलने वाला नही है।

एक्को सयं पच्चणुहोई दुक्खं, कतारमेव अणुजाइकम्मं

आत्मा के साथ तो शुभाशुभ कर्म ही जाते है। और कोई नही जा सकता। रुपया तुम छुपा कर क्यो रखते हो, वह साथ जाने वाला नही है। साथ तो कर्म ही जावेगा।

हीरा माणेक ने अमे प्रभु गणी पूजीया रे
पथराओ थईने अे तो पंथे नड्या।
अमे भवना मुसाफिर भूल्या रे पडया
क्यां रे जवुंतुने क्यां जइ रे चड्या. .अमे ...

हीरा, माणक, रत्न आदि को तिजोरी मे वद कर रखते हो, ऊपर से दिन रात उसकी चौकीदारी भी करते हो। सोना तो तिजोरी में सो जाता है, पर उसकी चौकीदारी आदमी करता रहता है।

सोना तूं तो वडा हरामी
तूं सोता वडी नींद में हम को चौकीदार बनाया।

पैसे को ही आज भगवान समझा जा रहा है।

पैसो मेरो परमेश्वर मैं पैसाका दास

और–सर्वेगुणा काचनमाश्रयन्ति, पैसे वाला ही आज गुणी भी माना जाता

है। यों पैसा ही आज सब कुछ माना जा रहा है। पर भगवान ने तो इसे बेडी कहा है। इस बेडी को फेंक दो, वरना वह तुम्हें ऐसा फंसा देगी कि उससे छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जायगा।

भाग्य का भरोसा करो। नसीब में होगा तो कही भी मिल जायगा। उसके लिये हाय-हाय और भागम भाग क्यों कर रहे हो! पैसा सुखी नही करता, वह तो ज्यादा दुखी ही बनाता है। जिसको सन्तोष होता है वही धर्म का पालन कर सकता है।

एक आदमी सही करके ही हजारो रुपया कमा लेता है जब कि दूसरा सुबह से शाम तक मेहनत करता है, फिर भी उसे मुश्किल से दाल रोटी ही मिल पाती है। मेहनत तो वह तुम्हारे से बहुत ज्यादा करता है फिर भी उसे कम क्यों मिलता है और तुम्हें अल्प मेहनत में ही ज्यादा क्यो मिल जाता है? यह सब प्रारब्ध का ही खेल है। प्रारब्ध प्रबल होता है तो भिखारी भी राजा बन जाता है। इस तरह शरीर शरीर का काम करता है; प्रारब्ध-प्रारब्ध का काम करता है; वह किसी के रोकने से रुकता नही है। तब फिर आत्मा क्या करे? आत्मा निरंजन नाथ का स्मरण करे। पर आज इसके लिये समय कहां है? आप के पास तो No time है। पेट में दुखता हो या आख में मोतिया आ गया हो तो डाक्टर के पास जाने के लिये तो आपके पास समय है, पर धर्माचरण करने के लिये समय नहीं है। यह कैसी बात है? कर्म तो धर्म से ही नष्ट होते हैं। धर्म से ही पर भव सुधरता है और भव भव का फेरा मिटता है। सच्चा खजाना तो धर्म ही है। सत्य,-शील, दान, दया, करुणा, सन्तोष आदि ये सच्चे रत्न हैं। उनकी रक्षा करो। ये कोई लूट न ले जायं इसकी हिफाजत रखो। हम तुम्हारे चौकीदार हैं, जगा रहे हैं-जागृत रहो-कोई तुम्हारा अमूल्य खजाना लूट न ले जाय—

अमूल्य अवसर अेले जाशे।
पाछल थी पस्तावो थाशे
जागे नहि ते जुतिया खाशे
उठो हवे ऊंघ करो अलगी
शास्त्रना वचने रहो वलगी——उठो—

यह अमूल्य अवसर मिला है-अगर जागृत न बनोगे तो नुकशान ही उठाओगे। अतः भाव नीद्रा छोडो और मुनियों की तरह सतत जागृत बनो।

निशा जे सर्व भूतोनी तेमां जागृत संयमी।
जेमां जागे बधा भूतो, ते ज्ञानी मुनीनी निशा।

दुनिया सोती है तब मुनि जागते रहते है। जब दुनिया जगती है तब वे सोते रहते है। मुनियों की ऐसी स्थिति होती है। मनुष्य भव मिला है। यह यों ही चला जायगा तो आगे कौनसी गति मिलेगी! कौन जानता है। मनुष्य भी वनोगे तो अनार्य वन जाओगे। यह कुल और यह धर्म थोडे ही मिलने वाला है। अतः जागृत वनो और धर्माचरण करो। अपनी बुराइयों को ढूंढो और उन्हे दूर करो, पर नीदा मत करो। देखना ही है तो अपनी भूल देखो। अपने अवगुण खुद न देख सको तो गुरु के समीप जाओ। वे तुम्हें अपने अवगुण बतावेगे। उन पर विश्वास रखो। वे तुम्हारा अहित नही होने देगे।

संसार दुख का घर है, उसमें लीन मत बनो। धर्म मे जागृत वनो और पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ से ज्ञान, दर्शन और चारित्र मिलता है। गुरु भी पीछे रह जाता है और चेला पुरुषार्थ करता है तो आगे बढ जाता है।

गौतम स्वामी एक लकडहारे को दीक्षित कर अपने साथ लाते है। वह भगवान को देख कर चिल्लाने लगता है। गौतम स्वामी उसे समझाते है–चिल्ला मत, वे तो अभय देने वाले भगवान है, उनसे भयभीत मत वन। लकड-हारा मुनि भगवान के पास आता है और उपदेश सुनता है तो अपनी भूल समझ कर पश्चात्ताप करता है। मैंने अपनी मूर्खता से केवली भगवान की अवज्ञा कर दी? इसका पश्चात्ताप करते करते ही वह केवली वन जाता है। गौतम पीछे और चेला आगे बढ जाता है। अतःगुण सम्पन्न वनो। गुणो का सचय करने से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। उत्तराध्ययन मे कहा है—

सव्व गुण संपन्नयाएणं भन्ते जीवे किं जणयइ?
सव्वगुण सम्पन्नयाएणं जीवे अपुणरावत्ति जणयइ।
अपुणरावत्ति पत्तए यणं जीवे सारीरमाणसाणं दुक्खाणं नो भागी भवइ।

सर्वगुण सम्पन्न–होने से जीव को क्या लाभ होता है। भगवान कहते है–सर्वगुण सम्पन्न होने से जीव शारीरिक या मानसिक दुखो का भागी नही वनता है। जन्म–मरण मिट जाता है। अतः अपने अवगुणो को दूर करो और गुणों का संचय करो—

वैराग्य भावो नी वेणु वगाडी
अनित्य भावो नित्य जगाडो
रमण ले तु जग विसारी
अमीर हो या महा भिखारी

बिना धरम को तरी शके ना..–अमीर हो...

मोक्ष की रुचि करना वैराग्य है। चारो गति पर अरुचि पैदा होना निर्वेद है। वैरागी इन्द्रियों को जीतने वाला होता है। आत्मा में दृढ वैराग्य न हो तो वह इन्द्रियों के विषयो की ओर आकर्षित होती है। कल दीक्षा लेनी है, आज सिनेमा देख आवें, आज आखिरो बार बीडी पीले, कल से तो वह छोडनी ही है, ऐसा सोचने वाला वैरागी नही है। अभी उसका वैराग्य कच्चा है। सच्चा वैराग्य प्रकट होता है तभी आत्मा का कल्याण होता है। वैरागी आत्मा दीक्षा में सुख मानता है, लडके की शादी मे नही।

पद्मावती रानी श्रीकृष्ण से कहती है–मैं दीक्षा लेना चाहती हूं। आपकी आज्ञा हो तो मैं उसे स्वीकार करूं?

श्रीकृष्णने कहा–जाओ, जल्दी करो, दीक्षा लेनी ही है तो देरी क्यो करनी चाहिये?

क्या आप ऐसा कह सकते है? आप के घर मे कोई दीक्षा लेना चाहे तो क्या उसे खुशीखुशी इस कार्य में प्रोत्साहन दे सकते है? श्रीकृष्णने स्वयं दीक्षा नही ली, पर उन्होने दीक्षाऐं दिला कर धर्म की दलाली बहुत की जिससे उन्होने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया। उन्होने द्वारिका मे यह एलान करा दिया था कि जो भी दीक्षा लेना चाहे खुशीखुशी ले सकता है, उसके घर की सारी व्यवस्था मैं करूंगा। दीक्षा में साधक बनना भी महान पुण्य का काम है। इसी तरह दान देने मे भी अन्तराय नही देना चाहिये। अपने हाथ से जितना दे दिया जाय उतना ही अच्छा है। दान देने की स्थिति न हो तो दिलाना या अनुमोदन करना भी अच्छा है। श्रीकृष्ण महाराज ने स्वयं दीक्षा न लेकर दूसरो को दीक्षाऐं दिलाई तो उसीसे उन्होने तीर्थंकर नाम कर्मका बंध कर लिया। कितना महान–फल कहा गया है! आप भी चाहो तो ऐसा कर सकते हो।

मनुष्य भव मिलना सुलभ है, पर आर्यपना मिलना दुर्लभ है। मक्खी, मच्छर और खटमल मारने का विचार करते हो, यह आर्यत्व नही है। जैनत्व तो बहुत दूर की बात है। जैन के यहां तो ऐसी दवाऐं भी नही हो सकती। न वह बेच ही सकता है। जैन को ऐसा काम करना शोभा नही देता। जैन का आत्मा तो अनुकम्पा वाला होता है। जैन की दया तो अपूर्व होती है।

मेघकुमार ने हाथी के भव मे ३ दिन तक अपना पैर ऊपर उठा रखा था। यह सोच कर कि नीचे बैठा हुआ खरगोश कही दब न जाय! तिर्यंच में भी इतनी दया है तो आपमें कितनी होनी चाहिये? वह हाथी मर कर श्रेणिकराजा का पुत्र–मेघकुमार बनता है। कितना महान पुण्य–फल उसे मिलता है दया का–?

श्रेणिक राजा का पुत्र होना और भगवान महावीर की वाणी सुनने का अनमोल लाभ मिलना। मेघकुमार भगवान की वाणी सुन कर साधु बन जाता है। सब से छोटा साधु होने से उसका नबर सबसे अन्त मे सोने का आता है। एक ही रात मे साधुओ के आवागमन से वह दुख अनुभव करने लगता है और सुबह होने पर वापस अपने घर चल देने का विचार करता है। भगवान तो सर्वज्ञ थे–सब की बात जानने वाले थे। सुबह होते/ ही उन्होंने मेघकुमार को बुलाया और कहा–तूतो एक रात में ही घबरा गया और साधुत्व को छोडकर जाने का विचार करने लग गया? तेंने अपने पूर्वभव मे, जब तू हाथी के रूप मे था, ३ दिन तक एक पैर ऊपर रखकर भी खरगोश के प्राण बचाये थे। उस कष्ट को याद कर। आज की रात का कष्ट तो उसके सामने कुछ भी नही है। कहिये, मेघकुमार की जीव दया कैसी थी? और आपकी कैसी है? रात मे नीद न आवे तो मच्छर मारने लग जाते हो? यह महान पाप का कारण है। अपने सुख के लिये दूसरे जीवो को मारना पाप है। मेघ–कुमार ने अपनी भूल का पश्चात्ताप किया और अपना जीवन साधुओ की सेवा मे समर्पित कर दिया।

अत.ज्ञानी कहते हैं पर–द्रव्य मे फंसे मत रहो। धन दुर्गति देने वाला है। एक सेठ ३ दिन तक तिजोरी मे ही बंद पडे रहे–३ दिन बाद वे बाहर निकाले गये। इस तरह धन के पीछे लोग सर्वनाश कर बैठते हैं। लोभ नाश का कारण है और सन्तोष ही सुख का आधार है। अत:लोभ को छोडकर सतोष धारण करोगे और धर्माचरण करोगे तो अनत सुखो का खजाना मोक्ष को प्राप्त कर सकोगे।

ता. ८–८–६८

[४१]

सुधर्मास्वामी के गुणो का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है–। वे इन्द्रियो को जीतने वाले थे।

इन्द्रिया ५ है–श्रोतेन्द्रिय, चक्षुन्द्रिय, घाणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय।

पंचेन्द्रिय जीवो को पाच इन्द्रिया मिलती है। जीव रूपी तालाव मे इन्द्रियो द्वारा कर्म रूपी पानी लाया जाता है। इन्द्रिया एक साधन है, जो जड है। आत्मा के अभाव मे वे किसी का ज्ञान नही कर सकती है। आंख से दिखाई देता है, पर मुर्दा देख नही सकता। मुर्दे को भी सभी इन्द्रियां होती है, पर आत्मा चला जाता है तो वह अपना काम नही कर सकती है। चैतन के अभाव में वे कुछ

जान नही सकती है। क्योंकि वे जड़ हैं। जड द्वारा प्राप्त सुख संयोग या वियोग करता है क्योकि वह अपेक्षा जनित होता है। आत्मिक सुख ही सच्चा सुख होता है, उसमें पर की अपेक्षा नही होती, स्व अपेक्षा से होने वाला आत्मिक सुख ही सहजानंद-पूर्णानंद-सच्चिदानंद कहा जाता है। जड मे सुख नहीं है, फिर भी आत्मा भ्रांति वश इन्द्रिय जनित सुखो के पीछे भागता फिरता है। यह अज्ञान का ही फल है। शास्त्र मे तो कहा है—

जो सरल आत्मा है, वह तो यह समझता है कि वर्ण, गंध, रस और स्पर्श जनित सुख मेरा पैदा किया हुआ नही है। वह तो कर्माधीन सुख है। लेकिन आध्यात्मिक सुख आत्म जनित सुख है। जिसने एक वार इस सुख का पान कर लिया उसे फिर दूसरा सुख पसंद नही आता है।

पर का सुख स्वाधीन नही होता। जीभ पर शक्कर रखो तो उसका स्वाद जीभ को आता है या आत्मा को? आत्मा ही स्वाद का अनुभव करता है और वही उसका ज्ञान भी करता है। क्योकि आत्मा ज्ञानमय है—चैतनामय है। जीभ जड है और जड पदार्थ ज्ञान नही कर सकता है। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि जव जड मे सुख नही है तो फिर उसके पीछे क्यों पड रहे हो? अज्ञानवश ही जीव ऐसा कर रहा है। आत्मा का आत्मा को विश्वास नहीं है। ज्ञानी तो कहते है तेरा सुख तुझ में ही है—उसे वाहर कहां ढूढ रहा है? स्वभाव से पर-भाव में जाना—इन्द्रिय सुख पाना भूल है—भ्रम है, एक तरह का यह भी व्यभिचार ही है।

कान से सुंदर गीत सुनना, और उसमें आसक्त हो जाना, आंख से रूप को देखना और उसमे मोहित हो जाना, कान और आंख का मैथुन ही है। नाक से सुगंध लेना और उसमे मोहित होना नाक का मैथुन है। फूल तो नश्वर है—आज खिला है तो कल मुरझा जाने वाला है। पर—पदार्थ मे राग या द्वेष करना यही वंध है। जीभ से सरस आहार करना और उसमें लौलुपता रखना जीभ का व्यभिचार है।

वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा देखना बुरा नही है, पर उसमें आसक्त नहीं होना चाहिये। सुंदर पदार्थ मे राग और असुदर मे द्वेष करना ही पाप के मूल कारण है—

रागो य दोषो बीय कम्म बीयं

राग और व्देष ये दो ही कर्म—वंध के कारण है। भगवान ने जिन्हे छोड़ दिया उनको आप आदर क्यो दे रहे हो! भगवान ने तो कर्म शत्रुओं को छोड़ दिया था, तव आप उससे प्रीति कैसे कर सकते है? एक औरत अपने पति के शत्रु से प्रेम करे—बातें करे तो क्या उसका पति उससे खुश रह

सकता है ? तो आप भगवान के शत्रुओं से प्रेम क्यो कर रहे हो ? उन्होने जिन्हे छोड दिया उन्हें आप भी छोडने का प्रयत्न क्यों नही करते हो ?

खडग विषय ना अधवच आवे
मोह तरंगे मन अकलावे
करवा जीवन नैया पार साहस करजो धीमे धीमे
विषय छे! वसमी जगनी वाट,
पगला भरजो धीरे धीरे।

ज्ञानी कहते है—यह जीवन नैया इस पार से उस पार ले जानी है। कही बीच मे डूब न जाय इसकी सावधानी रखना। विषय रूपी तलवार रास्ता रोके खडी है। पांच इन्द्रियो के २३ विषय और २५२ विकार है – जिनसे बचकर चलना है। उधर मोह की तरंगे भी उछाले मार रही है। उनसे भी सावधान रहना है। साहस करोगे तो नैया किनारे पहुच जायगी। डूबना और तैरना तुम्हारे हाथ में ही है। ५ इन्द्रियां भगवान के भी थी और आपके भी है। उन्होने सदुपयोग किया तो मोक्ष मे जा विराजे और हम दुरुपयोग कर रहे है तो संसार मे भटकते फिर रहे है।

अनादिकाल से जीव मिथ्यात्व में पडा हुआ है। वहां से निकल कर जब वह सम्यग्दृष्टि होता है तभी उसका ज्ञान, दर्शन, और चारित्र शुद्ध हो सकता है। ऐसे सम्यक्त्वी जीव को संसार के सुख तृणवत् लगते है—

रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो.
अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे!

आत्मा के स्वरूप को जिसने समझ लिया है वे इन्द्रियो के आधीन नही होते है। इन्द्रियों के दास अज्ञानी ही होते है। नूरजहां और जहागीर का इतिहास आपको मालूम ही है। नूरजहां के सौंदर्य मे जहांगीर इतना पागल हो गया था कि उसको छोड कर वह कही जाता नही था। हर समय उसीके ध्यान में रहता था। रूप मे फंसा हुआ आदमी ऐसा अज्ञानी हो जाता है। वह स्त्री को ही सुख का साधन मान बैठता है। भगवान ने तो कहा है—इन्द्रिय सुख जैसे जैसे भोगते जाते हो, तृप्ति नही होती है, भोगेच्छा ही बढती जाती है। उत्तराध्ययन में कहा है—

जहा दवग्गीपउरिन्धणे वणे
समारुओ नोवसमं उवेइ।

एविन्दियागीवि पगाम भोइणों
नवम्भयारिस्स हियाय कस्सई ।

जंगल मे आग लगी हो, तेज हवा चल रही हो और उस में कोई घासलेट डाल दे तो जैसे आग अधिक भडक जाती है वैसे ही इन्द्रिय रूपी अग्नि को भी चाहिये जो देते जाओ तो वह कभी तृप्त नहीं होती है—उसकी भूख भी वढती ही जाती है। अत: इन्द्रियो को अपनी खुराक मत दो। याद रखिये, विपयों के सेवन से आत्मा का पतन होता है—उसे नरक के असह्य दुख सहन करने पडते हैं और उन्हे छोडने से मोक्ष या देवगति प्राप्त होती है।

सच्चा सुख सर्वार्थसिद्ध मे भी नही है। इन्द्र से भी मुनि ज्यादा सुखी है—क्योकि उनको आध्यात्मिक सुख है। जव कि इन्द्र को इन्द्रियो का सुख है—पराश्रित सुख है—मुनियो की तरह स्वाश्रित सुख नही है।

देवताओ की मृत्यु निकट आती है तव वे रोने लगते है। अपने आगामी भव का विचार कर के वे दुखित होते हैं। सोचते है—हमे मल-मूत्र और गर्भाशय मे ९ मास तक उल्टा रहना पडेगा। इसके ध्यान में वे अपने भुक्त सुखो को भी भूल जाते है।

देवताओ के सुखो के सामने आपके सुख तो तुच्छ हैं। फिर भी आपको उन्हे छोडते दुख होता है तो देवताओ को कितना अधिक दुख होता होगा?

इन्द्र से इन्द्राणी रुष्ट होती है तो इन्द्र घवरा जाता है। मदारी के पास जैसे बंदर नाचता रहता है वैसे ही कामासक्त जीव औरतो के सामने नाचते रहते है।

वासुदेव जैसा महान पराक्रमी नरवीर भी नारी के सामने किकर बनकर रहता है।

इन्द्राणी इन्द्र का मुकुट गिरा देती है तो वह उसके ही पैर पर गिरता है। इन्द्र उसका पैर दबाते हुए कहता है—तुम्हारे पैर मे चोट तो नही आ गई? यो इन्द्र जैसा पराक्रमी भी स्त्री का गुलाम बन कर रहता है।

एक दिन पार्वती को विचार आया—शंकर दिनरात तपस्या करते रहते है। जरा देखू तो सही उनका ध्यान कैसा है? कही वे ढोग तो नही कर रहे है?

पार्वती भीलनी का रूप धर कर आई। शंकर मृगचर्म पर वैठे ध्यान कर रहे है। आंखे आधी खुली हुई है! भीलनी के पैरो से पायल की मधुर आवाज आती है। शंकर आखे खोलते है तो सामने अप्सरा की तरह सुदर भीलनी को देखते है। पूछते है—तू कौन है? यहा क्यो आई है?

रुम झुम करती निसरी भीलडी तप छोडाववा आवीजी
आंखडी खोली पूछे महादेवजी कोण पुरुष घर नारीजी,

भील घर नाती भील घर धोती, भील घर मोतीडा परोवतीजी,
मेरा भील थी पडी विखुटी, जंगल मां हूं शोधूंजी—रुम झूम...
तमारे महादेवजी दोदो राणी, त्रीजीने शुं करशोजी
त्रीजी नारी घर मां लेता घरमां धोखा थाशे जी—रुम झूम...

भीलनी ने कहा—मै भीलनी हू—अपने पति भील को ढूढने आई हू।

शंकरने कहा—तू भील को क्यो ढूढ रही है? तू उसको छोड और मेरी वन जा। मै तुझे रानी वना कर रखूगा—भीलनी यह सुनकर हंस पडी और वोली—मुझे तुम्हारे से डर लगता है। माथे पर ये देखो कितनी जटा है? गले मे सर्प लटक रहे है?

शकर—तू मेरी वन कर रहेगी तो मै इन्हे हटा दूगा और सिर पर पगड़ी धारण कर लूगा। भीलनी—लेकिन तुम्हारे तो दो औरते है फिर मुझे कहा ले जाओगे।

शकर—पार्वती को तो उसके पीयर भेज दूगा। गगा तेरी सेवा मे रहेगी।

जिनका वैराग्य कमजोर होता है वे ही पर को देख कर स्व को भूल जाते है—

निराहारी शरीरीना टले छे विषयो छतां
रस रही जतो तेमां ते टले पेखता परं।
प्रयत्नो मां रहे तोअे, शाणाए नरनावहें
मनने इन्द्रियोमस्त वेग थी विषयोभणी।
योग थी ते वशे राखी, रहेवुं मत्परायण
इन्द्रियों संयमे जेनी तेनी प्रज्ञा थई स्थिर।

योग से ही इन्द्रियो को वश मे किया जा सकता है। आत्मा के साथ जुडना उपयोग है। जव वह आता है तो इन्द्रियों का उपयोग हट जाता है। ऐसा स्थित प्रज्ञ पुरुष ही आत्मा का उद्धार कर सकता है।

कई लोग यात्रा करने जाते है तो वहा पर स्त्री को देख कर मोहित हो जाते है। तो क्या वे यात्रा करने जाते है या नरक का मार्ग अपने लिये खुला करने जाते है?

शंकरजी भी भीलनी के रूप मे मोहित हो गये। वे उसे अपनी वनाने के लिये आजीजी करने लगे? भीलनी कहती है—एक शर्त है, अगर तुम उसे पूरी कर दो तो मै तुम्हारी वन सकती हू—

मारो भील तो थै थै नाचे
तमे नाचो शीव शंकर जी

नाची नाची शीव मने रिझावो
बनुं तमारी दासीजी.....
एक हाथ शीवे मस्तक धरियो, दूसरो धरियो केडेजी
डमरु लई शीव नाचवा लाग्या
जोई रह्या....नरसैयाजी.....

शंकर–क्या शर्त है?

भीलनी–तुम नाचो और मुझे प्रसन्न करो। मेरा भील तो मुझे नाचकर खुश करता है–तुम भी वैसा करो तो मैं तुम्हारी बन जाऊंगी।

शंकर नाचने लगते हैं। उधर भीलनी अपने असली रूप मे पार्वती बन कर कहती है–क्यों! भीलनी चाहिये न? ऐसा ही हाल आज संसारी जीवों का भी हो रहा है। अगर सच्चा सुख चाहिये तो ज्ञानी कहते हैं जीतेन्द्रिय बनों–इन्द्रियों को अपने वश मे रखो। नाम तो जीतेन्द्र रखते हो पर काम उल्टे करते हो–नाम तो योगेश रखते हो, पर काम पराई औरतो को देखने का करते हो तो इस तरह नाम को क्यो बदनाम करते हो? सुधर्मास्वामी जीतेन्द्रिय थे। उनका इन्द्रियो पर पूर्ण काबू था। ५ इन्द्रिय ४ कषाय और एक दुष्ट आत्मा पर जो विजय प्राप्त कर लेता है वही सच्चा विजेता होता है। सुधर्मास्वामी ऐसे ही विजेता थे। उनमे और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. ९–८–६८

[४२]

सुधर्मास्वामी इन्द्रियों को जीतने वाले थे। इन्द्रियां जब बेभान बनती है तो विपरीत मार्ग पर ले जाती है। इन्द्रियो का विजेता ही आत्म साधना कर सकता है। अतः इन्द्रियों के गुलाम मत बनो।

अनादि काल से जीव ने परवशता स्वीकार कर रखी है अतः उसे ज्ञानियों की बात अच्छी नही लगती है। विभाव को छोडकर आत्मा भाव मे आजाय तो उसका उत्थान हुए बिना नही रहता। भाव से विभाव में आना संसार बढाना है।

एक सेठ की स्त्री कुशील है, वह उसकी कीमत नही करती है, पर सेठ उसकी इज्जत करता है। जिस पर–पुरुष से वह प्रेम करती है, सेठ उसको लेकर सेठानी के पास आता है और उन दोनों की रीत क्रीडा देखकर खुश होता है। तो आप उस सेठ को पुरुष कहेंगे या नपुंसक? ऐसे ही जो मनुष्य इन्द्रियों का गुलाम बन कर उनका कहा मानता है–तदनुसार चलता है तो उसे भी आप क्या

कहेगें? आत्मा स्वयं विषयों का सेवन करावे तो वह भी नपुसक ही हुआ न? शास्त्र मे कहा है—

सततं मूढे धम्मं नाभिजाणइ

ऐसे मूर्ख धर्म को नही जान सकते है। अतः इन्द्रियों के गुलाम मत वनोः—

पुत्र तणा पुत्रो थया ने वरस गया वन बहार
तजवो जोइये तेहने विषय तणो वहेवार
पुत्रना परिवार मांहे लज्जामणुं लागे
अेवी इच्छाओने उपदेश थी निवारता जजो
निवारता जजो ग्रंथी गालता जजो
मन विषय विकार थी नित्य वारता जजो

जिसके घर पुत्र के भी पुत्र हो गये है और उम्र ५० से भी ऊपर हो गई है, फिर भी अगर तुम विकारो को न छोडो तो क्या फिर मरे वाद उनको छोडोगे?

जहागीर नूर जहा के प्रेम में पागल होकर राज—काज भी भूल जाता है। तव एक फकीर उसे समझाने आता है। जहागीर नूरजहा के साथ वगीचे में बैठा है। सामने से फकीर को आते हुए देखता है तो वादशाह खडा हो जाता है और फकीर को सलाम करता है। फकीर की आंखे नूरजहां के चेहरे से हटती नही है। वादशाह कहता है—आप क्या देख रहे है? फकीर वोला—अव तक जिस रूप के वारे मे सुना ही सुना था, आज उसे मैं अपनी आखो से देख रहा हूं। लेकिन उसमे आश्चर्य जनक कुछ नही है? हाड-मास और चाम का ही संयोग है। ऐसी क्या विशेषता नूरजहां में है कि जो तुम राज्य का काम भी भूल गये हो? प्रजा की तरफ ध्यान भी नही देते हो? जवानी में फूल खिल उठता है—यौवन का उभार निखर आता है, पर वही वुढापे मे गल जाता है। अतः हे राजन! तू पागल क्यो वना हुआ है?

जहागीरने उत्तर दिया—आप फकीर है, आप रूप की परीक्षा नही कर सकते। मेरे लिये तो दुनिया का सारा सुख इनमे है। जहागीर पर फकीर के उपदेश का भी कुछ असर नही हुआ।

हम भी कही आपको फकीर की तरह तो उपदेश नही दे रहे है? आप भी मानने वाले तो हो नही। फकीर की तरह हम भी चल देगे। पर याद रखना इस शरीर पर जव तक चमडा है तव तक ही यह सुरक्षित है—वरना तो कुत्ते और गृद्ध भी इसे रहने न देगे। शरीर तो असारवत है। आचारग में कहा है—

इमं शरीरं अध्रुवं अणिच्चं असासयं, चओवचइयं विपरीणाम धम्मयं

यह शरीर अध्रुव है, अनित्य है, घटता बढता रहता है, अतः इससे तो जितना लाभ ले सको ले लेना चाहिये।

पांचे सिंहण छुटी फरे रे जोता लागे विकराल
भय मोटो छे अेनो अति, अेनी राखो संभाल।
सरकस आव्युं छे आज शहेर मां

शहर में सरकस आता है तो लोग उसे देखने जाते हैं। पर तुम्हारे शरीर मे जो सरकस है, उसे क्यो नही देखते हो? शरीर रूपी तंवू में मान के खीले गडे हुए है। भिन्न २ रूप मे आत्मा वहा खेल कर रहा है–! पीजडे मे ५ शेर-नियाँ–पाच इन्द्रिया–है जो खुली फिर रही है। उससे सावधान रहना। वे बड़ी विकराल है। पिजडे में जो सिंह वंद रहता है उसे तो तुम खाना भी पूरा नही देते हो, पर इन्हे तो तुम मुह मागा भोजन दे रहे हो। पानी की जगह दूध पिला रहे हो। पर याद रखना वे तुम्हारी होने वाली नही है। सुबाहुकुमार की श्रीमन्ताई तो अपूर्व थी। सेवा मे सैकडो दास दासी हाजर रहते थे। ५०० रानिया अहर्निश तैयार रहती थी, फिर भी वे सब को छोडकर साधु वन गये थे। तुम्हारे पास तो एक ही है, वह भी नही छोड सकते तो क्या उत्थान कर सकोगें। गन्ने का ऊपरी भाग खारा होता है। मूल मीठा था, तब तक तो ठीक था, पर अब तो उसे छोडो, अब क्यो उसमे फसे पडे हो?

चाम चूंथ्या मुक्ताफल मुकी
झेर पीधा अमीरसने छोडी
खाधु घास छोडीने वनराई
आ सारी उमर गई ललचाई
अे भूल हवे मने समझाई
सारी उमर गई ललचाई

ज्ञानी कहते है–तू तो हंस जैसा है–मुक्ताफल चुनने का स्वभाव छोडकर चमडे को छू रहा है। तू तो सच्चिदानन्द है, अमृत को छोडकर विप कैसे पी सकता है?

वीतराग की वाणी अमृत रस तुल्य है। उसे छोडकर तुम जहर का पान कर रहे हो, सत्पुरुष जो भोजन परोस रहे है, उसे छोडकर तुम विपय मे मजा मान रहे हो। यह तुम अपनी बाल–लीला क्यो कर रहे हो? भोगो को क्यो नही छोड देते। उसकी तृप्ति कभी होने वाली नही है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता

अपनी ६४००० रानियो से भी ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती तृप्त न हो सका और मर कर नरक मे गया। इसके विपरीत चित्त मुनि ने मिली हुई भोग सामग्री भी ठुकरा दी और त्याग मे ही सुख समझा। शाश्वत सुख भोग मे नही त्याग में ही है।

विषय से पेट भरता नही है। तीन दिन तक भूखे रहो तो आखो के सामने अंधकार छाने लगता है। परन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करो तो कोई तकलीफ नहीं होती। उससे तो शरीर मे शक्ति आती है। ब्रह्मचारी को तो देवता भी नमस्कार करते हैं। देवावि तं. नमंसंति। तपो मे श्रेष्ठ तप ब्रह्मचर्य है। वह मोक्ष का द्वार भी खोल देता है।

एक विषय ने जीततां जीत्यो सब संसार।
नृपति जीतता जीतीयो दल पुर ने अधिकार।
विषय रूप अंकुर थी टले ज्ञान ने ध्यान।
लेश मदीरा पान थी छाके जेम अज्ञान।

विषय के अकुर जहां भी फूटते है, वहा न ज्ञान रहता है, न ध्यान। जहां सुख नही है फिर भी उसमे सुख दिखाई देने लगता है। मदिरा पीकर आदमी जैसे बेभान हो जाता है वैसे ही मोह को भी मदिरा की उपमा दी गई है। मोह रूपी मदिरा का पान करने से ज्ञान-ध्यान नष्ट हो जाते हैं। जो इस मोह पर विजय प्राप्त कर लेता है वह सब कुछ जीत लेता है। वह्मचर्य के पालन से अनेक गुण अपने आप आत्मा मे आ जाते है। इसीलिये ब्रह्मचर्य की शास्त्रो में अपूर्व महिमा गाई गई है।

आज दो महापुरुषो की जन्म तिथि है-१ लीवडी सम्प्रदाय वे आचार्य अजरामरजी म. और २ पू. सूरजवाई स्वामी की। दोनो ही विभूति वाल ब्रह्मचारी थे। सूरजवाई स्वामी धोलेरा के निवासी कस्तूरभाई की सुपुत्री थी। जैसा नाम वैसा ही उनका चारित्र भी प्रकाशमान था। १० वर्ष की उम्र मे जब वह उपाश्रय मे मुनि दर्शन को गई तो मुनि श्री हेमचन्दजी ने उनको देख कर कस्तूर भाई से कहा-यह लडकी वडी पुण्य शाली है, आगे चल कर जहा भी जायेगी अपना नाम पैदा करेगी। तुम इसकी शादी मत करना। लेकिन सगाई तो छोटी उम्र मे ही हो गई थी। सगाई होते ही सामने वाले के यहा तो काम होना शुरु हो गया। अतः वे शादी की जल्दी करने लगे। कस्तूरभाई ११ वर्ष की उम्र में शादी करने की तैयारी करते है। वहां तो सूरज वाई कहती है-दुनिया मे मैंने तो सभी को अपना भाई बना लिया है। क्या भाई के साथ बहिन की शादी हो सकती है? मैंने तो उनसे शादी कर ली है—

ऋषभ जिनेश्वर प्रितम माहरो रे.
और न चाहु रे कंथ
रिज्यो साहेब संग न परिहरे रे
भांगे सादि अनंत—ऋषभ—

भगवान के साथ मैंने संबंध कर लिया है, और किसी के साथ मुझे संबंध करना नही है। मुझे तो अखंड सौभाग्य चाहिये—

परणुं तो प्रितम प्यारो, अखंड सौभाग्य मारो
रांडवानो भय टाल्यो रे..
मोहन तारा मुखडानी माया लागी..

सूरजबाई ने कहा—मैं अब शादी नहीं करना चाहती। लडकी का जवाब सुनकर पिता तो आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने वर पक्ष को भी सूचना भिजवा दी कि लडकी शादी नही करना चाहती है। व्याही सोचता है १० वर्ष की लडकी वैराग्य की बाते करती है? यह कैसे संभव है? साध्वियों ने उसे भरमा दिया होगा। वे एक युरोपियन भाई को लेकर आये और सूरज बाई से पूछा—क्या तुम शादी नहीं करना चाहती हो?

सूरज बाईने उत्तर दिया—मुझे शादी नहीं करनी है—मैं तो यह संसार छोडना चाहती हूं। संसार रूपी उंडो कुवो, पड्यो ते मुवो। संसार में रह कर सर्वविरती (श्रमणधर्म) की आराधना नहीं हो सकती। मुझे तो सर्वविरती की आराधना करनी है।

युरोपियन साहब ने पूछा—तू दीक्षा क्यों लेना चाहती है?

सूरज बाईने कहा—आप भी प्रभु प्रार्थना करते हैं न! सप्ताह मे एक दिन भी तो करते ही हैं। मैं सारी जिन्दगी प्रभु प्रार्थना में लगाना चाहती हूं? संसार मे रहना ही नही चाहती हूं।

यह सुनकर वह साहब बोला—इस बाई को अब मत रोको, इसको प्रार्थना करने दो। उस मार्ग पर आप न जा सको तो इसको क्यों रोकते हो? वैराग्य सच्चा था, नही तो ११ वर्ष की लडकी ऐसा कैसे बोल सकती है?

कुंकुबाई स्वामी ने लग्न करके भी ब्रह्मचर्य पाला था। पति को भी भाई बना कर रखा। जिन के सान्निध्य में देवता भी हाजिर रहते थे। ऐसे कुंकुबाई स्वामी और गोपालजी स्वामी के सान्निध्य में उनकी दीक्षा हुई थी। सूरज-बाई स्वामी ने केवल एकही दीक्षा देने का नियम लिया था और वह एकही दीक्षा थी हमारी गुरांणी दिवाली बाई स्वामी की। सूरज बाई स्वामी का अवसान कब होगा? यह दिवाली बाई स्वामी जानती थी। जीवन में एकदिन भी डाक्टर का

हाथ नही छुआ था। अंतिम समय में संथारा कर सब का त्याग कर दिया था। देहाध्यास छूट जाय तो और क्या बाकी रहता है?

वांकानेर में १२ बजा नही कि सारे उपाश्रय में सुगंध ही सुगंध फैल गई। आधा शरीर गुलाब के फूल जैसा बन गया। सुगंध का पान कर लोग अपने आप उपाश्रय की ओर दौड आये! सं. १९७१ की बात है। हमारा तो जन्म भी नही हुआ था। जैसा गुरांणी से सुना वैसा आपको भी सुनाया है। सूरजबाई स्वामी का ऐसा प्रभाव था कि उनको आते देखते तो साधु भी सावधान हो जाते थे। ऐसे प्रभावशाली वे थे।

अजरामरजी स्वामीने अपनी माता के साथ दीक्षा ली थी। बचपन मे जब वे पढने जाते थे तो गोसांईजी उनसे कहते—अगर तू मेरे यहां आया करेगा तो मैं तुझे अपनी गादी पर बैठा दूंगा। गोसाईजीने देखा—यह लडका बडा भाग्यशाली है। अगर हाथ मे आजायगा तो मेरी गादी का नाम कर देगा। लेकिन अजरामरजी कहते—मुझे गादी नही चाहिये। मैं तो साधु बनना चाहता हूं। दीक्षा लेकर वे सूरत की तरफ अभ्यास करने जाते हैं।

रास्ते मे एक श्रीपूज्य डोली में बैठकर आ रहे थे। उन्होंने रास्ते मे चलते हुए पैरो के चिन्ह देखे तो बोल उठे—यह कौन महापुरुष इधर से गया है? इसके पैर मे तो कमल चक्र है। श्रीपूज्य ने अजरामरजी को देखा तो पूछा—आप कहां जा रहे है? उन्होने कहा पढने की इच्छा से सूरत जा रहे हैं। उन्होने कहा—आपको मैं पढाऊगा—आप जैसो को पढा कर तो मुझे भी खुशी ही होगी। उन्होने अजरामरजी स्वामी को संस्कृत पढाई। शास्त्र का ज्ञान करने वे पू. हुक्मीचंदजी म. के पास अहमदाबाद पधारे। शास्त्रज्ञान उन्होने पू. हुक्मीचंदजी म. से सीखा।

पूज्य अजरामरजी स्वामी के समय ३०० साधु थे, जिनमें अजरामरजी स्वामी का ज्ञान पहले नंबर का था।

साधुओ मे शिथिलाचार देख कर उन्होंने १९ नियम बनाये। चतुर्विध संघ का एक सम्मेलन हुआ जिसमे उन्होने वे १९ नियम रखे। जिन पर वहा चर्चा हुई। सम्मेलन मे कई साधु बड़े थे। उन्होने कहा—छोटे साधु क्या नियम बनावेंगे? अजरामरजी ने कहा—ये नियम मैंने नही भगवान महावीर ने बनाये है। इसमें छोटे-बडे का सवाल नही है। पालने का सवाल है। लेकिन कइयो को वे न रुचे। अतः यहीं से बोटाद, सायला, गोंडल, चूडा, बरवाला आदि सम्प्रदायें हो गई। ३०० साधुओं में से अजरामरजी स्वामी के पास बहुत कम साधु रह गये।

पर उन्होंने अपना आचार शिथिल नही होने दिया। उन्होंने ४५ शिष्यों को दीक्षा दी और धर्म का प्रचार किया।

ऐसे महान–पुरुष की आज तिथि है। उनके गुणों को यादकर जो आत्मा अपने जीवन मे अनुकरण करेगे उनका जीवन भी प्रशस्त वन सकेगा।

शनिवार १०–८–६८

[४३]

अनंत ज्ञान के सागर भगवान महावीरने १२॥ वर्ष तक घोर तपस्या कर केवलज्ञान प्राप्त किया और तदनंतर दुखी जगत को सुख का मार्ग वताया।

मानव ही उपदेश का पात्र है। देवता और नारकी भी मनुष्य की तरह संज्ञी होते है, पर वे जीवन मे धर्म को उतार नही सकते है। जीवन में तो उसे मानव ही उतार सकता है अतः भगवान ने मानव को ही लक्ष्य कर उपदेश दिया है।

साधन अच्छा होना चाहिये, तभी साध्य भी सफल होता है। चित्रकार चित्र सुंदर वना सकता है, पर भीत स्वच्छ न हो तो वह चित्र कैसे वना सकेगा? लिखने वाले के पास स्याही न हो तो वह कैसे लिख सकेगा ? देवता और नारकी के पास भी आगे बढ़ने का साधन नही है। वह केवल मानव के पास ही है। १४ गुणस्थान तक मानव ही पहुंच सकता है। अतः उसी को लक्ष्य कर भगवान ने उपदेश दिया है।

भगवान ने जो उपदेश दिया सुधर्मास्वामी ने उसे सूत्र रूप में गूथा और हमारे सामने रखा है। यहा सुधर्मास्वामी के गुणों का वर्णन चल रहा है। शास्त्रकार कहते है वे जीतेन्द्रिय थे। इन्द्रियों को जीतने वाले थे।

जीव अनतकाल से इन्द्रियो का पोषण करता रहा है। सच्चा सुख इन्द्रियों को जीतने मे है। जिसने ५ इन्द्रिया जीत ली वही सारे ससार को भी जीत सकता है।

इन्द्रियो का सुख पराया सुख है। ऐसा सुख अस्थायी रहता है। जैसे कोई साधारण आदमी शादी के मौके पर दूसरो के गहने लाकर पहनता है तो इससे वे गहने उसके नही हो जाते है। इसी तरह आज जो सुख दिखाई दे रहा है वह पुण्य जनित सुख है, एक दिन तो उसे वापस सौप देना है। अत. उसमे आसक्त मत वनो। पर–पर है उसको अपना मत मानो। इन्द्रिय–सुख के परिणाम हम आखो से विपरीत भी देखते है, फिर भी हम उनसे विरक्त नही वनते, यह कितने आश्चर्य की वात है?

अनादिकाल से जीव पराधीनता मे पडा हुआ है। लेकिन ज्ञानी कहते है—तुम सावधान वनो, पुद्गल तुम्हारे होने वाले नही है। उसमे आसक्त मत वनो। सुख पैसे मे नही है। एक धनवान का लडका वीमार है—केन्सर हो गया है। वातानुकूलित कमरा है, फिर भी वह पीडा से चिल्ला रहा है। यह सव क्या है? वाह्य सुख अन्तरसुख नही दे सकता। कर्म का खेल विचित्र है, उसको भोगे विना छुटकारा नही है। सच्चा सुख तो आत्मा मे है। वही शाश्वत सुख है।

एक समय का सेठ आज भिखारी वन जाता है, यो जगत और शरीर दोनों का स्वभाव समझोगे तो वैराग्य हुए विना नही रहेगा।

अमृतलाल सेठ वम्वई आये तो पास मे कुछ नही था, नौकरी की, ७० रु. मिलने लगे। वह प्रामाणिक था, सेठ खुश हो गया, उसने पगार वढा दिया। धीरे धीरे वह भी लखपती वन गया, अलग अपनी दुकान कर ली. रहने को मकान भी ले लिया। सेठ का मित्र शान्तीलाल एक दिन सेठ से कहता है—भाई, सारे दिन व्यापार-धधे मे ही फंसे रहते हो, किसी दिन उपाश्रय मे जाकर सन्तो के दर्शन भी कर लिया करो। पर वह कहता—फुर्सत ही कहा मिलती है? जव भी फुर्सत मिलेगी धर्म कर लेगे। अभी तो कमाने के दिन है। दोस्त की वात उसके गले नही उतरती है। वह तो पैसो को ही परमेश्वर समझता है। ७० रु पगार वाले के पास आज ७० लाख हो गये तव भी उसे सतोप कहा है? अव वह करोडपति होना चाहता है। ३० लाख ही तो वाकी है। उसका दोस्त शातीभाई कहता है—अव तो सतोप रख! अव क्यो ज्यादा उथल पुथल करता है? लेकिन सेठ को सन्तोप नही। वह दुकान पर वैठा है, इतने मे एक ज्योतिपी उधर से निकला। सेठ ने उसे वुलाया और पूछा—मै करोडपति कव वनूगा! जरा देख कर वताओ। ज्योतिपीने भूतकाल की दो वाते कही, वे वरावर मिल गई तो सेठ को विश्वास हो गया। यो आज ज्योतिपियो पर तो विश्वास कर लिया जाता है, पर ज्ञानियों की वातो पर आज विश्वास नही रहा है। ज्योतिपी देखते देखते चुप हो गया। सेठ ने कहा—क्या वात है? वोलते क्यों नही? ज्योतिपीने कहा—अव कल वताऊगा। सेठने सोचा कुछ न कुछ गडवड अवश्य है। वह न माना और ज्योतिपी से वोला कहिये, क्या वात है? सच सच वताइये, मै करोडपति कव वनूगा? ज्योतिपी वोला—आप करोडपति तो वन जावेगे पर आज से आठ दिन वाद आपको जवर-दस्त घात आने वाली है। अगर आप उससे वच गये तो करोडपति हो जाओगे। सेठ तो यह सुनकर भयभीत हो गया। नौकर और यार दोस्त भी सेठ को समझाते है, ज्योतिपी की वातो पर विश्वास मत करो. जो भाग्य मे होना है वही होगा,

एक संत रोज प्रवचन दिया करते थे, जिसको सुनने कई लोग आया करते थे। वे कहते–हिसा का त्याग कर अहिसा का पालन करना दुष्कर है। असत्य का त्याग कर सत्य वोलना कठिन है, चोरी का त्याग कर अचौर्य व्रत लेना कठिन है–परन्तु अब्रह्म का त्याग कर ब्रह्मचर्य का सेवन करना तो दुष्कर दुष्कर और महान दुष्कर है। भगवानने उत्तराध्ययन मे भी कहा है।

विरइ अबम्भचेरस्स, काम भोग रसन्नुणा।
उग्गं महव्वयं घोरं, धारेयव्वं सुदुक्करं।

अहिसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह का पालन करना दुष्कर है, पर ब्रह्मचर्य का पालन करना तो अति दुष्कर है। लेकिन सत के शिष्य को यह दुष्कर शब्द का तीन वार उच्चारण करना अच्छा नही लगता। कुछ समय वाद गुरु का स्वर्गवास हो जाता है। और वह जवान शिष्य पाट पर आता है। वह भी रोज व्याख्यान देता है। पर गुरु की तरह दुष्कर–दुष्कर–अति दुष्कर नही कहता। वह तो दुष्कर कह कर ही चुप हो जाता है।

एक दिन ऐसा हुआ कि उसी गाव मे एक सेठ और सेठानी में झगडा हो गया। सेठने सेठानी को घर से वाहर निकाल दिया। रात का समय था। अतःरात मे कहा जाय? वेचारी सेठानी भयभीत हो गई। कहा जाने से मेरा शील सुरक्षित रह सकेगा? इसका विचार करते हुए वह उस आश्रम मे आती है और दरवाजा खटखटाती है। साधु रात मे भी प्राणायाम कर रहा था। देखा तो वाहर औरत खडी है। उसने पूछा, यहा क्यो आई हो? यहा स्त्रीको आने का अधिकार नही है। सेठानी वोली–आज मुझ पर कृपा कीजिये, और कही जाने का स्थान नही है। पति ने मुझे घर से निकाल दिया है। कल मै सुवह होते ही यहा से चली जाऊगी। केवल आज रात भर रहने दीजिये।

साधु ने अपना कमरा उसे दे दिया और खुद मदिर मे चला गया। जाते जाते यह कहता गया कि वहिन अदर से साकल लगा देना, कोई कहे तव भी न खोलना। यह कह कर वह तो मदिर मे जा वैठा। पर मन तो वडा चचल है। उसे अव चैन कहा? सोचता है–यहा अव दूसरा कौन है! मै और वह दोनो ही है। क्यो न आज उसके साथ अपनी इच्छा पूरी कर लू? यह सोच कर वह दरवाजा खटखटाता है। वाई कहती है– कौन? उसे नीद नही आई थी। वह तो पश्चात्ताप कर रही थी कि आज मैंने सतोष रखा होता तो घर से वाहर होने का यह मौका नही आता।

साधु कहता है दरवाजा खोलो, यह तो मै हूं। सेठानी उत्तर देती है– दर-

वाजा अब नही खुलेगा। साधु–मुझे अपनी पुस्तक लेनी है। अभ्यास करना है। नहीं तो कल व्याख्यान कैसे दे सकूंगा?

सेठानी–कुछ भी हो मैं दरवाजा अब नही खोल सकती। साधु के मन में विकार जोर करता है। मन से अब वह वचन में आता है और साधु आजीजी करने लगता है, बाई को मीठी मीठी बातें कह कर फुसलाना चाहता है, उसे लोभ भी देता है।

बंधुओं! देवता और तिर्यंच के भव में मनुष्य ने क्या नहीं किया है? एक भव में अनेक देवियों का भोग किया, फिर भी मनोकामना पूरी नहीं हुई। विषय में आधीन जीव अपना सर्वस्व घुमा बैठता है। भगवान ने तो अपना श्वास भी व्यर्थ नही जाने देने का कहा है—

श्वासोश्वास नी कींमत नव आंकी
जीवन चौपडे करीन वाद बाकी
नावी ईश्वर नी याद समय कीधो बरबाद
थई फोगटिया–२ फूलणजी फूल्या–दुखमां

कब हमारा श्वास बंद हो जायगा? यह कौन जानता है? अतः पर में मत जाओ। अपने जीवन की बही देखो, वह काली है या सफेद? इसका विचार करो। हमने अब तक अपना जीवन कैसा जीया है? अपना सिर ऊंचा करके चलने जैसा जीवन जीया है या सिर नीचा करके चलने जैसा?

ऊपर से अच्छे दिखाई देते हो, पर अंदर से [illegible] हो! [illegible] जान सकते हो?

बुरा काम करते समय आप यह समझते हो [illegible] है। पर यह क्यों भूल जाते हो कि अनंत तीर्थंकर तो [illegible] नजरों से तुम कही भी नहीं बच सकोगे। अतः उनक[illegible] की यह कविता आपने भी नही पढ़ी है?

भोंमा पेसी भोंयरे करीये कांई बात
घडिये मन मां घाटते जाणे जग नो तात।

तीर्थंकरो की नजरो से कोई बच नही सकता। व[illegible] मे कोई नही है अतः यहां तो मैं चाहूं जैसा कर सकता [illegible] है, वह अपना शील अखंड रखना चाहती है। साधु कह[illegible] नही तो मैं दरवाजा तोड कर अंदर आ जाऊगा। बंधुओ [illegible] स्त्री और पुरुष को तो एकात में मिलना ही नही [illegible] को भी एक पाट पर नही बैठना चाहिये।

साधु चिल्लाता है, पर सेठानी दरवाजा नही खोलती। साधु मकान के ऊपर चढता है और कवेलु हटाकर ऊपर से नीचे कूदने की कोशिश करता है। पर बीच में ही वह सिर से उसमें फस जाता है—नीचे आ नहीं सकता। यो वह ऊपर ही लटकता रह जाता है—न ऊपर जा सकता है और न नीचे ही आ सकता है। इतने में तो मुर्गेने आवाज दी। बाई ने समझा सुबह होने वाला है। उसने दरवाजा खोला और अपने घर की राह ली। घर आकर पति से क्षमा मागी और रोती हुई बोली—आज रात में मुझ पर जो बीती है वह तो मै ही जानती हू। भविष्य मे मै कभी आपसे झगडा नही करूंगी। सेठने सेठानी को अपने घरमें रख लिया। उधर आश्रम मे लोग व्याख्यान सुनने पहुंचे तो साधुजी का कही पता नही था। दरवाजा बाहर से बंद था। एकने खोल कर देखा तो साधु ऊपर लटका हुआ था। दो चार आदमी ऊपर गये और साधुजी को वहा से निकाल कर नीचे लाये। लोग कहने लगे—आप तो महान तपस्वी हैं। ऐसा उग्र ध्यान करते हैं?

ज्ञान ना मोटा गोला गबडावे ने पोथीयुं राखे पासजी,
माने बेन तो मुखे थी बोले, जीवडो भरखे घास
मनतुं तारूं आप तपासजी, हे जी तारा
मायला ने चकाश————मन——

साधु मन से तो मां बहिन बोलता है, पर अदर से मन उसका क्या कहता है? यह तो वही जान सकता है? साधुको याद आया—मेरे गुरु जो दुष्कर-दुष्कर बोलते थे वह बिल्कुल ठीक कहते थे। अनुभव से आज उसे यह समझ मे आ गया। व्याख्यान के पाट पर बैठ कर उसने कहा—

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसी विसोवमा।
कामे य पत्थमाणा अकामा जन्ति दोग्गइं।

काम-विकार तो शल्य है—सर्प की तरह हैं, मनसे इच्छा करने वाला भी दुर्गति मे चला जाता है तो भोगने वाले का तो कैसा बुरा हाल होता होगा?

उसने कहा—बंधुओ, मेरे गुरुदेव जो कहते थे कि ब्रह्मचर्य का पालन करना अति दुष्कर है, यह मैंन आज समझा है। तुम मुझे महात्मा समझ रहे हो, पर मैं महात्मा नही शैतान हूं। मेरी वात सुनोगे तो तुम को भी आश्चर्य हुए विना नही रहेगा। यह कह कर उसने रात की सारी घटना कह सुनाई। वह वाई अपने शील मे दृढ़ थी, अन्यथा मेरा तो अव.पतन ही हो जाता। भाग्य से मैं तो ऊपर ही फस गया और नीचे नही कूद सका। आप उसे ध्यान कह रहे हो पर वह ध्यान नही था— उस मार्ग से मैं तो अपना पाप करने जा रहा था। गुरुदेवने जो दुष्कर-दुष्कर कहा है वह यथार्थ है। मुझे अपने किये पर घोर

वाजा अव नही खुलेगा। साधु–मुझे अपनी पुस्तक लेनी है। अभ्यास करना है। नहीं तो कल व्याख्यान कैसे दे सकूंगा?

सेठानी–कुछ भी हो मैं दरवाजा अव नही खोल सकती। साधु के मन में विकार जोर करता है। मन से अव वह वचन में आता है और साधु आजीजी करने लगता है, वाई को मीठी मीठी वातें कह कर फुसलाना चाहता है, उसे लोभ भी देता है।

वंधुओ! देवता और तिर्यंच के भव में मनुष्य ने क्या नही किया है? एक भव में अनेक देवियों का भोग किया, फिर भी मनोकामना पूरी नही हुई। विषय मे आधीन जीव अपना सर्वस्व घुमा वैठता है। भगवान ने तो अपना श्वास भी व्यर्थ नही जाने देने का कहा है—

श्वासोश्वास नी कींमत नव आंकी
जीवन चौपडे करीन बाद बाकी
नावी ईश्वर नी याद समय कीधो बरबाद
थई फोगटिया–२ फूलणजी फूल्या–दुखमां

कव हमारा श्वास वंद हो जायगा? यह कौन जानता है? अतः पर में मत जाओ। अपने जीवन की वही देखो, वह काली है या सफेद? इसका विचार करो। हमने अव तक अपना जीवन कैसा जीया है? अपना सिर ऊंचा करके चलने जैसा जीवन जीया है या सिर नीचा करके चलने जैसा?

ऊपर से अच्छे दिखाई देते हो, पर अंदर से कैसे हो! यह तो आप ही जान सकते हो?

वुरा काम करते समय आप यह समझते हो कि दुनिया मुझे देख नही रही है। पर यह क्यो भूल जाते हो कि अनंत तीर्थंकर तो आपको देख रहे है। उनकी नजरों से तुम कहीं भी नहीं बच सकोगे। अतः उनकी शर्म तो रखो। क्या बच्चों की यह कविता आपने भी नही पढ़ी है?

भोंमा पेसी भोंयरे करीये कांई बात
घडिये मन मां घाटते जाणे जग नो तात।

तीर्थंकरो की नजरो से कोई बच नही सकता। वह साधु सोचता है, आश्रम में कोई नही है अतः यहां तो मैं चाहूं जैसा कर सकता हूं। लेकिन सेठानी दृढ है, वह अपना शील अखंड रखना चाहती है। साधु कहता है–दरवाजा खोल दे, नही तो मैं दरवाजा तोड कर अंदर आ जाऊंगा। वंधुओ! एकात वुरी चीज है। स्त्री और पुरुष को तो एकांत मे मिलना ही नही चाहिये। भाई और वहिन को भी एक पाट पर नही वैठना चाहिये।

साधु चिल्लाता है, पर सेठानी दरवाजा नहीं खोलती। साधु मकान के ऊपर चढता है और कवेलु हटाकर ऊपर से नीचे कूदने की कोशिश करता है। पर बीच में ही वह सिर से उसमें फंस जाता है—नीचे आ नहीं सकता। यों वह ऊपर ही लटकता रह जाता है—न ऊपर जा सकता है और न नीचे ही आ सकता है। इतने मे तो मुर्गेने आवाज दी। बाई ने समझा सुबह होने वाला है। उसने दरवाजा खोला और अपने घर की राह ली। घर आकर पति से क्षमा मागी और रोती हुई बोली—आज रात में मुझ पर जो बीती है वह तो मै ही जानती हू। भविष्य में मै कभी आपसे झगडा नही करूंगी। सेठने सेठानी को अपने घरमें रख लिया। उधर आश्रम मे लोग व्याख्यान सुनने पहुचे तो साधुजी का कही पता नही था। दरवाजा बाहर से बंद था। एकने खोल कर देखा तो साधु ऊपर लटका हुआ था। दो चार आदमी ऊपर गये और साधुजी को वहा से निकाल कर नीचे लाये। लोग कहने लगे—आप तो महान तपस्वी हैं। ऐसा उग्र ध्यान करते है?

ज्ञान ना मोटा गोला गबडावे ने पोथीयुं राखे पासजी,
माने बेन तो मुखे थी बोले, जीवडो भरखे घास
मनतुं तारूं आप तपासजी, हे जी तारा
मायला ने चकाश————मन——

साधु मन से तो मां बहिन बोलता है, पर अदर से मन उसका क्या कहता है? यह तो वही जान सकता है? साधुको याद आया—मेरे गुरु जो दुष्कर—दुष्कर बोलते थे वह बिल्कुल ठीक कहते थे। अनुभव से आज उसे यह समझ में आ गया। व्याख्यान के पाट पर बैठ कर उसने कहा—

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसी विसोवमा।
कामे य पत्थमाणा अकामा जन्ति दोग्गइं।

काम-विकार तो शल्य है—सर्प की तरह हैं, मनसे इच्छा करने वाला भी दुर्गति मे चला जाता है तो भोगने वाले का तो कैसा बुरा हाल होता होगा?

उसने कहा—बंधुओ, मेरे गुरुदेव जो कहते थे कि ब्रह्मचर्य का पालन करना अति दुष्कर है, यह मैंने आज समझा है। तुम मुझे महात्मा समझ रहे हो, पर मैं महात्मा नही शैतान हूं। मेरी बात सुनोगे तो तुम को भी आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा। यह कह कर उसने रात की सारी घटना कह सुनाई। वह बाई अपने शील मे दृढ थी, अन्यथा मेरा तो अव.पतन ही हो जाता। भाग्य ने मैं तो ऊपर ही फंस गया और नीचे नही कूद सका। आप उसे ध्यान कह रहे हो पर वह ध्यान नही था— उस मार्ग से मैं तो अपना पाप करने जा रहा था। गुरुदेवने जो दुष्कर—दुष्कर कहा है वह यथार्थ है। मुझे अपने किये पर बार

पश्चात्ताप हो रहा है। सचमुच मैंने घोर अपराध किया है। यों वह पश्चात्ताप करता है और पुनः अपने मार्ग पर स्थिर हो जाता है।

जो आदमी भूल नही करता वह देवता है, पर जो भूल कर के भी सुधार लेता है वह मानव रहता है। और जो वार वार भूल करते ही रहते है वे पशु तुल्य होते हैं।

सुधर्मास्वामी ऐसे ही जीतेन्द्रिय थे। मन, वचन और काया से इन्द्रियों को जीतने वाले थे। उनमे और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

रविवार ता. ११-८-६८

[४९]

सुधर्मास्वामी समता के सागर, गुणो के आगर, रत्न चिन्तामणि जैसे, कामधेनु अमृतरस समान थे। जिन्होने इन्द्रियों को वश मे किया था। जिन्हें न तो जीवन से मोह था और न मृत्यु से भय।

जीवन जीना है तो संयम मय जीवन जीओ। उसी जीवन की कीमत है। संयम हीन जीवन की कोई कीमत नही है। साधु जीता है तव भी लाभ है और मर जाता है तब भी उसे लाभ ही है। परलोक से उसे भय नही लगता। भय तो उसे ही लगता है जिसने दूसरो का वुरा किया हो, अपनी आत्मा को ठगा हो। साधु किसी का वुरा नही करता, न अपनी आत्मा को ही ठगता है अतः उसे मृत्यु से भी भय नही होता। अतः अपना जीवन सुधारो। जिसका जीवन सुधर जाता है उसका मरण भी सुधर जाता है।

आप अपना जीवन कैसा जी रहे हो? यह तो आप अपने हृदय से पूछो। आपका जीवन देव, दानव या मानव तुल्य है, यह तो आप खुद ही जान सकते हो। अगर तुम्हारा जीवन उज्ज्वल होगा तो तुम्हारा नाम भी इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अंकित रहेगा।

जीवन तो हर एक आदमी जीता है। एक तरफ भगवान महावीर का जीवन था तो दूसरी तरफ गौशालक का भी जीवन था। गुजसुकुमाल और सोमल ब्राह्मण का भी अपना अपना जीवन था। गांधीजी का जीवन और गोडसे का भी अपना जीवन था। परन्तु दोनो के जीवन मे कितना महान अन्तर था? एक का जीवन उर्ध्वगामी था तो दूसरे का अधोगामि। भगवान महावीर का जीवन कहा और गोशालक का कहां?

गोशालाअे करी घेलछा, तेजो लेश्या छोडी,
संहारक ने करुणा करीने, दीधी शीखामण थोडी।
ओ करुणाना करनारा तारा जीवन रहस्यों न्यारा
ओ समता ना धरनारा......तारा.....

भ. महावीर पर गौशालाने तेजोलेश्या छोडी, पर उनकी कैसी अपूर्व करुणा दृष्टि थी कि भगवान ने गोशालक को कुछ नही कहा? अपनी आखो के सामने उसने भगवान के दो–साधुओ को जीवित जला डाला, पर भगवान ने उसे अपने मुंह से कटु वचन तक नही कहा। उस करुणा के सागर ने तब भी यही कहा कि–हे गोशालक तू! अब भी संभल जा! आज से आठवें दिन तेरी मृत्यु होने वाली है। मै तो १६ वर्ष तक इस दुनिया मे इसी तरह विचरने वाला हूं। कैसी सहनशीलता थी? जहां अहं का नाश हो जाता है वही ऐसी सहन शीलता आ सकती है। जिन्होने ऐसी क्षमा रखी, सहनशीलता रखी, तितिक्षा की, उन्ही का नाम इतिहास मे अकित है। देह चला जाय तो भले ही चला जाय, पर मै अपना धर्म नही छोड सकता। इसी का नाम जिवियास मरण भय विप्पमुक्के है। सुधर्मा-स्वामी ऐसे ही थे। जैन के साधु क्रोध, मान और माया को नष्ट कर देते है। वे मर जाना पसंद करते है, पर अपने गुणो को छोडते नही है। सच्चारित्र ही कोहिनूर हीरा है। चारित्र तो स्फटिक जैसा उज्ज्वल होना चाहिये। उसमे कही भी काला धब्बा नही होना चाहिये।

धर्म मार्ग पर उपसर्ग भी आ सकते है, पर उनसे घबराना नही चाहिये। मुनि गज सुकुमार का उपसर्ग कैसा था? उनके सामने हमारा दुख तो तुच्छ है। राम को १४ वर्ष का वनवास, सोने का भी ठिकाना नही, शीत, ऊष्ण का महान, परिषह! वैसा आपको तो दुख नही है? आपको सीता तो आपके ही पास है? फिर क्यो दुखी हो रहे हो? सुख और दुख तो अपने २ कर्मो के अनुसार आने ही वाले है।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि,

कर्म करते समय तो तुम खुश थे और अब भोगते समय दुख करते हो? कर्म किये है तो उन्हे भोगना तो पडेगा ही। अतः तैयार हो जाओ और कर्मो से युद्ध करो। लडाई मे उन्हे परास्त कर दो।

अप्पाण चेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण वज्झओ।

सच्ची विजय आत्मा को जीतने मे ही है। जब अन्तरात्मा बहिरात्मा को परास्त कर विजय प्राप्त करता है तभी उसे सच्चा सुख मिलता है। पर को मत देखो–स्व को देखो। लडके लडकियो की शादी मे सब कुछ देखते हो, सब

योग्य व्यवस्था करते हो, पर स्व को भूल जाते हो, उसकी तरफ दृष्टि नहीं करते हो। अतः ज्ञानी कहते है—

पोतानु घर पर जले ते तो पीडा टाल।
परनी तारे शी पडी तुं तारूं संभाल।

सारी दुनिया की टीका करने वालों, पहले अपना घर तो देखो। कहा से आये हो? कहां जानेवाले हो? मक्खन को देखो, छाछ को मत देखो। वर्तमान पत्र पढ़ने से आत्मा का भला होने वाला नही है। आत्मा का भला करना है तो सिद्धान्त पढो। जिसका एक शब्द भी असत्य नही हो सकता। त्रिकालज्ञानी की बात जब हृदय मे धारण करोगे तो तुम्हारा जीवन पवित्र हुए बिना नही रहेगा। दूसरा सब कुछ पढ़ना व्यर्थ है। आत्माका अखूट खजाना देखकर दृढ वैराग्य धारण करना शान्त रस है। आत्माको ज्ञान गुण से भूषित करने का विचार करना श्रृंगार रस है। कर्म नष्ट करने का पुरुपार्थ करना वीर रस है दुनिया के जीवों को दुखी देखकर अनुकम्पा करना करुण रस है। मन में आत्म अनुभव का उत्साह होना हास्य रस है। आठो कर्मो को नष्ट करने का विचार करना रौद्र रस है। शरीर की अपवित्रता का विचार करना विभत्स रस है। जन्म–मृत्यु के दुखो का चिन्तन करना भयानक रस है। आत्मा की अनंत शक्ति का चिन्तन करना अद्भुत रस है।

जब आत्मा मे सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र प्रकट होता है तब इस तरह नौ ही रसो का आत्मा रसास्वादन करने लग जाता है।

यों नौ ही रस आत्मा में समझे जा सकते हैं। आत्मा की शोभा गुण से है, पर से नही। अतः उसे गुणो से सुशोभित करो। जानते हुए भी जीव संसार में पडा रहता है, यह जानकर ज्ञानियो को हंसी आती है। कर्मो से लडना वीर रस है। काम, क्रोध, मान, माया से लडना, उन्हे हृदय में न आने देना वीर रस है।

जैसे कुत्ते को लकडी मार कर घर से निकाला जाता है वैसे ही कर्म को अपने हृदय मे नही आने देना चाहिये। लेकिन आज तो आप कर्म को आमन्त्रित कर रहे हो? मेहमान को कोई खुशीखुशी रखे तो वह जाने का नाम क्यो लेगा? उससे तो मुह फेरोगे तभी वह अपना रास्ता नापेगा। यही बात कर्म की भी है। उसे संभालोगे तो वह जाने का नाम क्यो लेगा!

भवोभव केरो माथे भारो
लईने भटकूं जनम जनम
जनम जनम भटकु छुं.
तोये मुझने आवे नहि शरम – मुझने०

तो ओ मुझने आवे नही शरम।
हीरो हाथमां हतो छतां ये
काच लईने राच्यो छुं
संत पुरुष नो संग तजीने,
रंग राग मां राच्यो छुं
अंगे अंग थी वरसी रह्या छे
अंगारा ओ गरम गरम......जनम जनम

इस जीव की दशा तो देखो। भव–भव से चौरासी मे भटक रहा है। कर्म का भारा लेकर वह अनन्त काल से भटक ही रहा है। उससे उगरने का मार्ग तो सद्गुरु ही वताते है।

मौलवी और गुसाई का पगला करावो तो सैकडो रुपया खर्च करना पडता है, पर तुम्हारे साधु तो कुछ नही लेते है। न पहले आने की सूचना ही देते है। वे तो अतिथि है, जिनके आने की कोई तिथि नही है। आ जाय और घर मे कुछ भी न हो तो श्राप भी नही देते है। मिले या न मिले समभाव मे ही रहते है।

एक दिन हम आहार लेने गये। देरावासी वाई को अट्ठाई थी। उसने हमको ५ रु. भेट देते हुए कहा–जहा भी आपको देना हो दे देना। हमने कहा–यह क्या देती हो? हमको रुपयो की भेट नही चाहिये। उसने कहा–हमारे साधु तो लेते है, आप क्यो नही लेते?

साधु होकर पैसा लेना? भगवान ने तो कहा है– साधु पैसा लेता है तो उसका साधुत्व ही नष्ट हो जाता है।

पवज्जा अत्थ गहणं च

जैन के साधु दूसरे साधुओ की तरह मंहगे नही पडते है। उन्हे न तो किराये के पैसे चाहिये और न हजामत के। वे तो सब काम अपने आप करते है।

सिकन्दर विश्व विजय करने जाता है। वह अपने गुरु (एरिस्टोटल) अरस्तु के पास जाता है और पूछता है–आपकी क्या आज्ञा है?

अरस्तु कहता है–हो सके तो जैन साधु को साथ में लेते आना।

सिकन्दरने कहा–इसमे कौनसी बडी बात है? मै सिकन्दर हूं। सारी दुनिया को जीतने जा रहा हू तो क्या जैन साधु को नही ला सकूगा?

सिकन्दर सिंध को जीतकर अपने देश लौटता है तो उसे अपने गुरु की बात याद आती है। उसने दो सैनिक जैन साधु को लाने के लिये भेजे। [illegible]

ढूंढते ढूढते एक जंगल में पहुंचे। वहां एक साधु ध्यान कर रहा था। ध्यान एकान्त में ही किया जा सकता है, शोर-गुल में ध्यान नही किया जा सकता है।

एकाकी विचरतो वली स्मशान मां
वली पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो।
अडोल आसन ने मन मां नहि क्षोभता
परम मित्र नो जाणे पाम्या योग जो।
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे।

मुनि तो एकांत में ही ध्यान करते हैं। चाहे ऊपर से सर्प चले जाय, सिह या वाघ आ जाय भूत-प्रेत भी क्यों न घूमते हो-तव भी उन्हे डर नही होता है। वे तो उन्हे भी अपना मित्र ही समझते है। वह भी मेरे जैसा ही आत्मा है। आत्मा को आत्मा से डर क्यो हो।

देह भाव क्षय होय ज्यां अथवा होय प्रशान्त
ते कहिये ज्ञानी दशा वाकी वाचा ज्ञान।

जीवियास मरणभय विप्पमुक्का की वात है। साधु को अपने जीवन का मोह नही होता और न मृत्यु का ही भय होता है। सुधर्मास्वामी ऐसे ही थे।

छोडी ने कामना सर्वे, फरे जे नर निष्पृही।
अहंता ममता मुकी, ते शांति पामे भारत।

गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो अनासक्त है, ममता रहित है वे ही निष्पृही होकर विचर सकते है। अह और ममता छोडकर ही वे शांति प्राप्त कर सकते है।

आपको भी शांति चाहिये तो इन गुणो को प्राप्त करो—शाति अवश्य प्राप्त होगी। केवल बोलने से शांति होनेवाली नही है।

तन मे शांति मन मे शांति
गाम नगर घर घर मे शांति

प्रभु शांति करो ———२———

सब जगह शाति चाहिये, पर वह होगी कब? अहंकार और ममत्व छोडोगे तभी वह प्राप्त हो सकेगी। हृदय में तो अंगारे भरे हो और मुह से शाति शांति बोलो तो वह कैसे मिल सकेगी?

आछे ब्रह्मदशा जेनी, पामे ना मोह मां पड़े।
अंतकालेय ते राखो ब्रह्म निर्वाण मेलवे।

इसी का नाम ब्रह्मदशा है। जं एगं जाणई से सव्वंजाणई एक आत्मा को

जाना कि सब को जान लिया। यही ब्रह्मदशा है। फिर वह मोह मे नही पडता है। उसे ही मोक्ष मिलता है।

वह मुनि ध्यान मे लीन है। आपको तो काउसग्ग मे मच्छर काट जाय तो शरीर खुजलाने लग जाते हो, पर ऐसा ध्यान उन मुनि का नही था। वे ध्यान मे लीन बने हुए थे। सैनिक खडे खडे थक गये। मुनि ने अपना ध्यान पूरा किया। सैनिकों ने उन्हे नमस्कार किया और कहा—आपको सिकन्दर बादशाह ने याद किया है ?

मुनि—सिकंदर कौन है ?

सिपाही कहते है—सिकन्दर सारी दुनिया को जीतने वाला एक बादशाह है। वह यहा से १ मील दूर अपना पडाव डाले हुए है। आप वहा पधारिये।

मुनि—सारी दुनिया पर विजय पाने वाले सिकन्दर ने क्या अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर ली है ? सिपाही ने कहा—आप उनके पास चलिये तो सही। वे जिन पर खुश हो जाते है, निहाल कर देते है।

मुनि—मुझे बादशाह की कृपा नही चाहिये। तुम तो अपने बादशाह से यही पूछना कि क्या तुमने पाच इन्द्रियां और मन को जीत लिया है ?

सिपाही लौट आये। सिकन्दर ने कहा-क्या जैन साधु नही मिले ? सिपाहियो ने कहा—वे मिले, पर उनका उत्तर है कि अगर बादशाह ने ५ इन्द्रिया और मन को जीत लिया है तो मै उनके पास आ सकता हू।

सिकन्दर ने कहा-क्या वे मेरा हुक्म नही मानते ? सिकन्दर स्वय मुनि के पास आता है और कहता है—मेरे गुरु ने तुमको बुलाया है, तुम कहो वैसे मैं आपको ले जाने के लिये तैयार हूं।

मुनि ने कहा—पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो ! क्या तुमने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है ? सिकन्दर ने क्रोधित हो कहा—मैंने बाते करने वाले कई देखे है। तुम चलना चाहते हो या नही ? हा या ना में जवाब दो। और मैं कुछ सुनना नही चाहता। क्या तुम्हे मालूम नही मैंने सारी दुनिया जीत ली है ?

साधु ने कहा—मैं तेरे साथ नही आ सकता हूं। सिकन्दर ने अपनी तलवार निकाली और कहा—तुमने मेरी तलवार नही देखी है, आपको चलना हो तो इज्जत के साथ चल दीजिये वरना इस तलवार से यही खत्म कर दूगा।

मुनि—मैं हर्गिज नही आऊंगा।

सिकन्दर ने अपनी तलवार मुनि के गर्दन पर वार करने के लिये उठाई कि मुनि ने कहा—तुम, तेरी तलवार मेरे शरीर के टुकडे कर देगी, मेरी आत्मा

के टुकडे नही कर सकेगी। तू जो देख रहा है, वह मै नही हू–जड शरीर है। मै तो आत्मा हूं–वह तू तीन काल मे भी नही मार सकता।

नैनं छिदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। मेरी आत्मा को तुम काट नही सकते, जला नही सकते, इस शरीर को मार सकते हो, काट सकते हो। खुशीखुशी मार लो, पर मेरा तू वाल भी वाका नही कर सकता।

सिकन्दर तो यह सुनकर अवाक रह गया। ऐसा तत्वज्ञान उसे कौन सुना सकता था? उसने अपनी तलवार म्यान मे रखी और वोला–जैन साधु तो सचमुच महान है।

लेकिन आज आप साधु को क्या समझ रहे है? जैसा आप चाहे वैसा साधु वोल दे तो ठीक है, लेकिन यह क्यो भूल जाते हो कि वे साधु है–श्रावक नही है। भगवान ने तो कहा है कि साधु ऐसा कुछ नही वोल सकता जिससे कि छह काय के जीवो की हिसा होती हो? होस्पिटल के लिये, वाढ पीडितो की सहायता के लिये या उपाश्रय वनाने के लिये भी वह कैसे आदेश दे सकता है? जव कि वह तो समभावी है। सिकन्दर मुनि से कहता है–तुम महान हो! वोलो क्या मागते हो? मै जो मागोगे देने को तैयार हूं।

मुनि–मै मागू वह तू क्या दे सकेगा?

सिकन्दर–मागो मै दूगा–जरूर दूगा

मुनि––जिसका तुम लेकर वापस दे न सको, वह मत लो।

किसी का जीवन तूं लेकर वापिस दे नही सकता तो उसे बंद कर दे।

सिकन्दर–यह तो लडाई वद करने की वात हुई। मेरी तलवार ही म्यान मे रखवा दी। साधु क्या मागेगा? अहिसा ही तो मांगेगा?

महावीर के हम सिपाही बनेगे।
जो रखा कदम फिर न पीछे हटेगे।

हम तो महावीर के अनुयायी बनेगे। आप कैसे अनुयायी है? क्या महावीरने छह काया की हिसा करने की आज्ञा दी है? लोगो को सुनाई नही देगा तो महा-सतीजी लाउडस्पीकर मे बोलेगे या नही? ऐसा विचार भी क्यो आना चाहिये? क्या हम घर जला कर बुझाने के लिये यहा आये है? कर्ज कर के करियावर (नुक्ता) करना कहा की बुद्धि मानी है? लाउडस्पीकर का प्रयोग हो या न हो जिसको सुनना है वह तो सुनेगा ही। शाति रखोगे तो सुन सकोगे। उसके लिये हमें अधर्म मे क्यो घसीटना चाहते हो? या तो आप हमारे मे आ जाओ या हमको तुम्हारे जैसा वना दो, यही खीचतान आज चल रही है। चित्तमुनि और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसी खीचतान चल रही है। पर मालूम है आपको ब्रह्मदत्त नरक में

गया और चित्तमुनि मोक्ष मे। मुनिने सिकन्दर से कहा—जो तुम किसी को दे नही सकते, वह तुम लेने के हकदार भी नहीं वन सकते। यह सुनकर सिकन्दर उनके पैरो मे पड गया।

गुरु ऐसा कीजिये, जैसा पूनम का चंद।
तेज करे पण तपे नहि, उपजावे आनंद।

सिकन्दर कहता है—सचमुच आज मैं कृतार्थ हो गया, राज्य जीतने से भी अधिक आनंद मुझे आज मिला है। उसकी लडाई वंद हो जाती है। वह अपने देश आता है। अरस्तु पूछता है—क्या तुम जैन साधु को नही लाये? सिकन्दर वोला—आपने तो कमाल कर दिया। मै जिस अहकार मे था वह तो उनके निकट जाकर समाप्त हो गया। मेरी तलवार भी वहा जाकर अटक गई। अरस्तु ने कहा वहा से कुछ लाया भी या यो ही खाली हाथ लौट आया? सिकन्दर ने कहा उनका एक नियम मैंने स्वीकार कर लिया—जो मैं दूसरों को दे नही सकता वह मैं लेने का भी हकदार नही हू।

अरस्तू बोला—वस, मै यही चाहता था।

सुधर्मास्वामी महान् गुणो के स्वामी थे। उनके गुणो का यथावसर वर्णन किया जायगा।

सोमवार ता. १२–८–६८

[४६]

ज्ञाता सूत्र का १४ वा अध्ययन शुरु किया जा रहा है। सुधर्मास्वामी अपने प्रियशिष्य जम्बू स्वामी से कह रहे है। जम्बू स्वामी ने १६ वर्ष की उम्र मे दीक्षा धारण की थी। उन्होने नव परिणित ८ स्त्रियो को छोडकर दीक्षा धारण की थी। वीस करोड सोनैयो का त्याग कर मुनि वने थे। उनके त्याग से प्रभावित होकर ५०० चोरो ने भी उनके साथ दीक्षा अंगीकार की थी। इतना ही नही ८ स्त्रियो के माता-पिता और स्वय जंबु स्वामी के माता पिता भी उनके साथ दीक्षित हुए थे। यो एकसाथ ५२७ दीक्षा हुई थी। कितना महान तेज रहा होगा जम्बू स्वामी का?

ब्रह्मचर्य उच्च कक्षा का जीवन है। वह अधोगति बंद कर मोक्ष में ले जाने वाला है। जो संसारी कुत्ते ह वे तो संसार मे ही भटकते रहते हैं। विधवाओं के भी पुनर्लग्न कराते हैं। सुधार के नाम पर आज कल बीमारी बहुत फैलने लग गई है। एक बालिका छोटी उम्र में ही विधवा हो जाय तो उसे अपने शील का पालन करना चाहिये, दैवयोग से उसे जो ब्रह्मचर्य [illegible]

मिला है उसे व्यर्थ नही घुमा देना चाहिये। लेकिन जो लोग उसका पुनर्लग्न करा देते हैं वे उसे पाप में ही ले जाते है।

जिसका आत्मा उच्च होता है वही ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। आप जौहरी के यहां हीरा खरीदने जाते हो तो जौहरी हीरा दिखाता है–एक हीरा एक लाख रु. का है, आप एक लाख रुपये वाला हीरा नही ले सकते हो, आपकी ताकत नही है कि आप उसे खरीद सको। लेकिन आप उसकी यह कह कर अवगणना तो नहीं कर सकते कि वह हीरा नही है। लेने योग्य सच्चा हीरा तो वही है, पर हमारी शक्ति नही है। इसी तरह व्रतों मे भी लेने योग्य व्रत तो सर्व विरति। (साधुपना) ही है, उसको ग्रहण करने की ताकत होनी चाहिये।

जिसको मुनि व्रत की पहचान नहीं होती वे ही उसकी नीदा करते हैं। एक भिखारी और हो गया, ऐसा कहना उनका अज्ञान ही है। क्या जम्बूस्वामी के पास धन नही था! उनके पास ९९ करोड सौनैया थे। तुम्हारे पास तो उतने कवेलू भी नहीं है। धन्य है उनके माता–पिता को जो इस मार्ग पर आगे आते है। इस मार्ग पर मैं नही चल सकता, यह मेरी कमजोरी है, मै पुण्य हीन हूं। पर जो इस मार्ग पर चलते है वे धन्य है। ऐसी अनुमोदना करने वाले भी महान निर्जरा के भागी बनते है।

जो यह मार्ग नही जानते वे नेता का बहुमान करते है। फिर भले वह सिगरेट पीता हो, अभक्ष्य का सेवन करता हो, उसका मान करेंगे, पर मुनि का नही करेंगे। मिथ्यात्व के नशे में वे कुसाधु को साधु और साधु को कुसाधु समझ बैठते है। इतना ही नहीं वे उसे २५ वां तीर्थंकर भी कह बैठते है। ज्ञानियो ने इसे सबसे बडा दोष–काक्षा दोष कहा है। झूठी बडाई सबसे बडा मिथ्यात्व है।

जो यह सत्य समझ जाते है वे तो मुनि बन जाते है, साधक बन जाते है। उनका लक्ष्य मोक्ष होता है, संसार की इच्छा नही रखते है। लेकिन आज तो लोगो की उल्टी समझ हो गई है। जिन के पास पैसा ज्यादा है वही बडा माना जाता है। फिर भले वह मदिरा पान करता हो या परस्त्री सेवन करता हो। चारित्र मे शून्य हो तो आप भले उसे बडा कहे पर हम उसे बड़ा नही कह सकते। नकली नोट बनाने वाले को सरकार क्या दड देती है? बेडिया पहना कर जेल मे डाल देती है। इसी तरह ज्ञानी कहते है–जो बनावटी गुरु को पूजता है वह भी अपने लिये नरक का द्वार ही खुला करता है।

हे जी गुरु मोह रुपी मोटो मोरिंग
करड्यो अमने भारीजी

अेना जेर चढ्या आठे अंग
तम विना कोण उतारेजी

मोह भी दो प्रकार का है-दर्शन मोह और चारित्र मोह। दर्शनमोह का विषधर इतना जबरदस्त है कि उसका जहर चढ़ जाता है तो गुरु ही उसका जहर उतार सकते है।

मिथ्यात्व तो शल्य है-काटा है, उसे निकालो नही वहां तक चैन नही होता है। वैसे ही मान, माया आदि भी निकले नही वहा तक आत्मा को चैन नही होता है। वह शल्य निर्ग्रन्थ मार्ग पर चलने से ही निकल सकता है। त्रिकाली ज्ञानी द्वारा कहा गया सिद्धान्त ही उस जहर को दूर कर सकता है।

अहो वाणी तारी प्रशम रस भावे नितरती
मुमुक्षुने पाती अमृत रस अंजली भरीभरी
अनादिनी मूर्च्छा विषतणी त्वरायी उतरती
विभावेथी स्थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणती।

भगवान की वाणी कैसी अपूर्व है! जिसमे प्रशम रसके झरने वह रहे है। अनंत भावो से भरी हुई है। कर्म-मल को दूर करने वाली है, उसके दुश्मन मत बनो। उसका अनुसरण करो, अनुमोदन करो और सर्वत्र उसे फैलाने का प्रयत्न करो। जिज्ञासु बनो। जिज्ञासु कैसे होते है।

कषाय की उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष

जिसके जीवन मे अपूर्व समता हो, मोक्ष के सिवाय और कोई अभिलाषा न हो। नवग्रेवेयक के सुख भी उन्हे नही चाहिये। यह भी वह संसार ही समझता है। वह तो ५ वी गति मोक्ष ही चाहता है।

भगवान का जीवन त्याग मय जीवन था। भोग मय जीवन वह नही था। जिसने जिसने त्याग किया है वही मोक्ष मे गया है। भोग मे पडे हुए जीव तो नरक मे गये है, निगोद मे गये है।

उच्च त्याग तुम न कर सको तो उसका निषेध तो कैसे कर सकते हो? ऊंची किस्म के कपड़े कोई खरीद न सके तो उसका अर्थ यह नही कि वह नही लेना चाहिये। तुम्हारी ताकत उसे खरीदने की नही है, पर चीज तो अच्छी रही है। लाख का हीरा लाख रुपये का ही होगा और कांच का टुकड़ा कांच का ही होगा। वह हीरा नही बन सकता। इसी तरह त्याग तो त्याग ही रहेगा। भोग उसका मुकाबला नही कर सकता। भोग उसके सामने तुच्छ है। मुनिपना दुर्लभ है। मुनि कोई उदास नही होते है। वे तो सदैव खुशी रहते है।

मिला है उसे व्यर्थ नही घुमा देना चाहिये। लेकिन जो लोग उसका पुनर्लग्न करा देते है वे उसे पाप मे ही ले जाते है।

जिसका आत्मा उच्च होता है वही ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। आप जौहरी के यहां हीरा खरीदने जाते हो तो जौहरी हीरा दिखाता है–एक हीरा एक लाख रु. का है, आप एक लाख रुपये वाला हीरा नही ले सकते हो, आपकी ताकत नहीं है कि आप उसे खरीद सको। लेकिन आप उसकी यह कह कर अवगणना तो नही कर सकते कि वह हीरा नही है। लेने योग्य सच्चा हीरा तो वही है, पर हमारी शक्ति नही है। इसी तरह व्रतों मे भी लेने योग्य व्रत तो सर्व विरति। (साधुपना) ही है, उसको ग्रहण करने की ताकत होनी चाहिये।

जिसको मुनि व्रत की पहचान नहीं होती वे ही उसकी नीदा करते हैं। एक भिखारी और हो गया, ऐसा कहना उनका अज्ञान ही है। क्या जम्बूस्वामी के पास धन नही था! उनके पास ९९ करोड सौनैया थे। तुम्हारे पास तो उतने कवेलू भी नही है। धन्य है उनके माता–पिता को जो इस मार्ग पर आगे आते हैं। इस मार्ग पर मै नही चल सकता, यह मेरी कमजोरी है, मै पुण्य हीन हूं। पर जो इस मार्ग पर चलते हैं वे धन्य है। ऐसी अनुमोदना करने वाले भी महान निर्जरा के भागी बनते है।

जो यह मार्ग नही जानते वे नेता का बहुमान करते हैं। फिर भले वह सिगरेट पीता हो, अभक्ष्य का सेवन करता हो, उसका मान करेगे, पर मुनि का नही करेगे। मिथ्यात्व के नशे में वे कुसाधु को साधु और साधु को कुसाधु समझ बैठते है। इतना ही नहीं वे उसे २५ वां तीर्थंकर भी कह बैठते हैं। ज्ञानियो ने इसे सबसे बडा दोष–कांक्षा दोष कहा है। झूठी बडाई सबसे बडा मिथ्यात्व है।

जो यह सत्य समझ जाते है वे तो मुनि बन जाते है, साधक बन जाते है। उनका लक्ष्य मोक्ष होता है, संसार की इच्छा नहीं रखते है। लेकिन आज तो लोगो की उलटी समझ हो गई है। जिन के पास पैसा ज्यादा है वही बडा माना जाता है। फिर भले वह मदिरा पान करता हो या परस्त्री सेवन करता हो। चारित्र मे शून्य हो तो आप भले उसे बडा कहे पर हम उसे बड़ा नही कह सकते। नकली नोट बनाने वाले को सरकार क्या दड देती है? बेडिया पहना कर जेल मे डाल देती है। इसी तरह ज्ञानी कहते हैं–जो बनावटी गुरु को पूजता है वह भी अपने लिये नरक का द्वार ही खुला करता है।

हे जी गुरु मोह रुपी मोटो भोरिंग
करडयो अमने भारीजी

जन्म मरण और जरा के बंधनो से मुक्त होने के लिये मुनि सहर्ष सयम लेते है। जबरदस्ती धर्म नही होता है।

मुनि मार्ग पवित्र है, उस पर चलो, चलावो और चलने को प्रेरित करो। किसी को उल्टे मार्ग पर मत चढावो।

मुनि तो भगवान महावीर के अनुयायी हैं। देश–देश विचरते हुए वे लोगो को सद्उपदेश देते है। शीत–उष्ण की परवाह न करते हुए भी वे भगवान का संदेश सुनाते है।

भद्रा का लाडिला एकाएक पुत्र जंबु कुमार संसार छोडकर सुधर्मास्वामी से दीक्षा ग्रहण कर लेते है। साथ मे उनके माता–पिता भी दीक्षा ले लेते है। जब एकाएक पुत्र संसार छोड रहा है तो माता–पिता उसमे क्यो पडे रहे? कहिये, वे माता–पिता भी कैसे पवित्र विचारो के रहे होगे?

नाव समुद्र मे जाती है। समुद्र नाव मे भर जाय तो क्या होगा? नाव डूव जायगी। यह संसार भी एक समुद्रकी तरह है। जिसमे सभी रहते है। तीर्थंकर, अरिहत और मुनि भी रहते है। पर उनकी नाव मे पानी नही रहता है अतः वे तिर जाते है। चौदहवे गुणस्थान वाले भी संसारी ही होते है। कर्म से युक्त दशा संसारी दशा ही होती है। पर जो अपनी नाव मे कर्म रूपी पानी नही आने देते है, वे ही अपनी नाव पार कर लेते है। जो पानी आने देते है वे डूव जाते है। यही ज्ञानी और अज्ञानी मे भेद होता है।

आपको तिरना है या डूवना है? कैसी नाव आपको चाहिये? छेद वाली या विना छेद वाली? भमका देख कर मत ललचाओ। ढाक का फूल ऊपर से वडा सुदर दिखाई देता है, पर उसका फल खा जाओ तो प्राण चले जाने का भय रहता है। एक नाव केवल आठ ही आना मे इस पार से उस पार पहुंचाती है–उसका दिखावा भी वढ़िया है। और दूसरी नाव २ रु लेती है तो आप किस मे बैठना पसद करेगे? सूयगडाग मे कहा है–

एवं तु समणा एगे, मिच्छदिट्ठी अणारिया
संसार पारकंखी ते, संसारं अणुपरियट्ट ति

जो नाव दिखने मे सुदर और सस्ती है वह बीच में ही डुबा देनेवाली है। उसका कुछ भी भरोसा नही है कि वह कहा तक पहुचा सकेगी? भगवान की नाव मे बैठना भले ही मंहगा पडे पर उसमे सब तरह से सलामती है–सुरक्षा है। नाविक कुशल है, वह बीच मे डुवाने वाला नही है। अतःज्ञानी कहते है अज्ञानी की नाव मे मत बैठो, अगर बैठ जाओगे तो वच कर निकलना मुश्किल ही होगा।

जहा असाविणी नावा, जाइ अन्धो दुरुहिया।
इच्छई पारमागन्तु अंतरा य विसियइ।

तपस्या मोह को दूर करने वाली जडी बूंटी है। उसका भी समय आ गया है। तैयार हो जाइये। भाव संग्राम के लिये तपस्या की जरूरत है। संयम रूपी नाव मे वैठना महंगा अवश्य है, पर उसी मे हमारी सुरक्षा भी है।

वीर वाणी का लियो लावा
भव सागर तरी जावा
संयम सुंदर नावा–भवसागर ०

संयम रूपी सुन्दर नाव है, जिसमे कपाय की एक वूद भी नही है। कर्मरूपी पानी को वंद करना संवर है। आश्रव निरोधो हि सवर। ऐसी नाव मे वैठोगे तो भवसागर अवश्य पार हो जाओगे।

दुनिया मे त्याग की तरफ जाने वाले कम और भोगकी तरफ जाने वाले सदैव से अधिक ही रहे हैं। एक समय मे मोक्ष मे अधिक से अधिक १०८ व्यक्ति ही जाते है। जव कि नरक मे असंख्याता और निगोद मे अनताजीव जाते हैं। मोक्ष मे जाने वाले तो सदैव कम ही होते हैं। चौथे आरे मे भी जीव नरक मे अधिक जाते हैं। वर्तमान की ही वात देखिये, आज विवाह संवंध कितने होते है और दीक्षाऐ कितनी होती है? खाने–पीने वाले कितने है और तपस्या करने वाले कितने है? सर्वविरति–साधु वनना साधारण आदमी का काम नहीं हैं। समुद्र के किनारे खडे रह कर ताली पीटने वाले मोती कैसे पा सकते है?—

तीरे उभा जुअे तमासा, ते कोडी नव पामेजोने

वीच समुद्र मे डुवकी लगाने वाले ही सच्चे मोती प्राप्त करते है। क्या आप ऐसा समझते हो कि इन तपस्या करने वालो को खाना नहीं मिलता है? इसीलिए ये तपस्या करते है। ऐसा मत समझो। कर्मो को नष्ट करने के लिये ही जीव सहर्ष तपस्या का अनुसरण करता है। चक्रवर्ती जैसो ने भी स्वेच्छा से दीक्षा धारण की है और मोक्ष मे गये है।

वली दशे चक्रवर्ती राज्य रमणी ऋद्धि छोड़
दशे मुक्ति पहोच्या कुल नी शोभा चोट
इण अवसर्पिणी मां आठ राम गया मोक्ष
वलभद्र मुनिश्वर गया पांचमें देवलोक।

लेकिन आप तो खाते–पीते मोक्ष जाना चाहते हो—
लड्डू भी खाना और मोक्ष मे जाना।

शूरवीर ही भगवान के मार्ग पर चल सकता है, कायर का यहा काम नही है। कोई कायर दीक्षा भी ले लेता है तो उसके लिये कहा है–तू उसको बडी दीक्षा मत देना, शिक्षा न देना, साथ मे आहार-पानी नहीं करना, साथ में भी नही रहना और लोच भी नही करना। इस तरह भगवान का मार्ग तो तलवार की धार पर चलने जैसा है। उस पर चलना कोई मामुली वात नहीं है।

१६ वर्ष के जम्वु स्वामी जो कि ८ स्त्रियो के पति थे– आजीवन ब्रह्मचर्य का नियम ले लेते ह। आज कल तो लोग नियम से भी चिढने लग गये हैं। पर याद रखिये नियम लिये विना उद्धार नही है। देवताओं को ३३ हजार वर्प वाद आहार की इच्छा होती है। लेकिन उनका निराहार रहना तप नही कहा जाता। प्रत्याख्यान का भी अपना महत्व है। प्रत्याख्यान किये विना निर्जरा नही होती है।

पचक्खाणेणं आसवदाराइ निरुम्भइ इच्छानिरोहं जणयइ

प्रत्याख्यान करने से इच्छा का निरोध होता है। आश्रव के द्वार वंद हो जाते है। कैद मे पडा हुआ आदमी क्या ब्रह्मचारी कहा जा सकता है? वीमारी मे कोई आदमी गरम पानी के सिवाय और कुछ न ले तो क्या वह मासखमण के तप वाला कहा जा सकता है? नही, वह तपस्वी नही कहा जा सकता। तप तो स्वेच्छासे करने पर ही होता है। अत: ज्ञानी कहते है– करो–करो–करो–। तपस्या में प्रमाद मत करो। तभी पार हो सकोगे।

आजकल तो तपस्या मे भी कुछ लोग छूट देने की वात करते है। वे कहते हैं– हम उपवास कर सकते,है पर चाय पीने की छूट होनी चाहिये। हम दीक्षा भी ले सकते हैं, पर हजामत करने की छूट मिलनी चाहिये।'

बंधुओं? छूट दी कि छूट शुरू हो गई। अगर छूट देने में लाभ होता तो भगवान ने वह पहले ही दे दी होती। वे तो सर्वज्ञ थे, सब कुछ जानने वाले थे–भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञाता थे। उन्होने छूट क्यो नही दी?

एक लडका मास्टर से कहता है– आप तो बहुत वैसे है। छोटी सी भूल के लिये भी मना करते हैं।

मास्टर कहता है– भूल तो भूल ही है। छोटी सी भूल भी भयंकर परिणाम ला सकती है।

एक दिन सव लडको को तैरने ले गये। मास्टर ने जान-बूझकर उस लडको को एक छेद वाली मशक बांध दी। सव लडके तैरने लगे, पर वह लडका मशक मे से हवा निकल जाने से डूबने लगा। चिल्लाता है वचाओ वचाओ। मैं डूव रहा हूं। लडके उसे वाहर निकालते है। मास्टर कहता है, क्या हुआ? तुम क्यो डूवने लगे, जव कि सभी लडके तैर रहे हैं। उसने देखा मशक मे छोटा सा छेद था जिससे हवा सव

निकल गई थी। उसे आज मालूम हुआ कि छोटी सी भूल भी कितनी खतरनाक हो सकती है ?

इसी तरह व्रत नियमो में छोटी सी छूट भी बड़ी छूट वन जाती है। हिन्दू धर्म मे एकादशी को व्रत रखा जाता है। उस दिन तुलसी के पत्ते पर आ सके उतने फलाहार की छट दी गई थी, पर आज वह छूट कितनी वडी वन गई है ? फलाहार नीचे आ गया है और पत्ता ऊपर आगया है। सैकडों रुपया एकादशी के फलाहार मे खर्च कर दिया जाता है। अतः संयम मे छूट नही मिल सकती। भगवान ने हमें छूट नही दी है। जो भगवान के उपदेश का पालन करेंगे वे ही मोक्ष मे जा सकेगें। अधिक से अधिक १५ भव मे तो वे मोक्ष पा ही लेगे। अत.विरति बनो, अविरति के गुणग्राम मत करो।

चक्रवर्ती भी त्यागी को नमस्कार करता है–हाथी से नीचे उतर कर भी वह मुनियो की चरण–रज अपने माथे पर चढाता है।

वंदे चक्री तथापि न मले मान जो –

ऐसे उत्कृष्ट त्याग मार्ग पर जो आत्मा चलता है वह एक दिन अवश्य मोक्षमें पहुच जाता है।

मगळवार ता. १३–८–६८

[४७]

सुधर्मास्वामी कहते हैं– हे जम्बू ! उस समय और उस काल मे तेतलीपुत्र नाम का नगर था।

यह अवसर्पिणी काल की वात है। अवसर्पिणी काल उतरता हुआ काल होता है जिसमे धर्म–कर्म का क्रमशः ह्रास होता हुआ चला जाता है। इससे विपरीत उत्सर्पिणी काल मे धर्म–कर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

अवसर्पिणी काल १० क्रोडाक्रोडी सागरोपम का होता है।

पहला आरा सुखमा सुखम
दूसरा आरा सुखम
तीसरा " सुखम दुखम
चौथा " दुखम सुखम
पाचवा " दुखम
छट्ठा " दुखमा दुखम

हम पाचवे आरे मे हैं। उत्सर्पिणी काल भी १० क्रोडाक्रोडी सागरोपम का होता है। यो यह कालचक्र २० क्रोडाक्रोडी सागरोपम का हुआ।

पहले आरे में मनुष्य की अवगाहना ३ गाऊ जितनी होती है।

२ आरे मे	मनुष्य की	अवगाहना	२ गाऊ	जितनी होती है।
३	"	"	"	१ " "
४	"	"	"	५०० धनुप जितनी और क्रोडपूर्व का आयुष्य होता है।
५	"	"	"	७ हाथ जितनी और १०० वर्ष से अधिक का आयुष्य होता है।
६	"	"	"	१ हाथ जितनी और २० वर्ष का आयुष्य।

धरती का स्वाद भी क्रमश: घटता जाता है—

१ आरे मे	पृथ्वी का	स्वाद	शक्कर जैसा	होता है।
२	"	"	मिश्री	"
३	"	"	गुड	"
४	"	"	सारेरि	"
५	"	"	थोडेरी	"
६	"	"	राख	"

इस तरह अवसर्पिणी काल मे मनुष्य की लंबाई चौडाई, शारीरिक शक्ति आदि मे ह्रास होता जाता है।

पहले आरे मे मनुष्य चने की दाल जितना आहार करते थे और फिर ३ दिन तक नही खाते थे। दूसरे आरे मे एक बोर जितना आहार करते थे और फिर २ दिन तक नही खाते थे। तीसरे आरे मे चमेली बोर जितना आहार करते थे और एक दिन छोडकर आहार करते थे।

चौथे आरे मे प्रतिदिन आहार करते थे, पर ३२ ग्रास से अधिक नही खाते थे। पाचवे आरे मे मनुष्य हर समय खाता ही रहता है। रात को भी चौविहार नही करता। छठे आरे में तो मानव की तृप्ति ही न होगी। इस तरह आहार मे भी क्रमश: परिवर्तन आता गया।

पहले आरे मे ३ पल्य का आयुष्य होता है। दूसरे मे २ पल्यका और ३ में १ पल्य का आयुष्य होता है। युगलिये मृत्यु से ६ महीने पहले ही अपना आयुष्य बाधते है। तब वह एक जोडा उत्पन्न करते है जिसका पोषण ४९ दिन तक ही वे करते है। फिर एक को छीक आती है और दूसरे को जम्भाई, यों दोनो पति-पत्नी अपना शरीर छोड़ कर मर जाते है। उनको कोई बीमारी नही होती। १० प्रकार के कल्प वृक्ष उनकी सेवा मे सदैव हाजिर रहते है—मुह से शब्द निकला नही कि वे वह वस्तु

हाजिर कर देते है। फिर भी उस आरे मे धर्म नही होता है। तीसरे आरे के अन्त मे भगवान ऋषभदेव हुए। १८ कोडाकोडी सागरोपम के वाद वे पैदा हुए। इतने लम्बे समय तक संसार मे जीव जैन शासन रहित रहते है। भगवान ऋषभदेव ही धर्म की शुरुआत करते है और चार तीर्थ की स्थापना करते है। धर्म की आदि करने से वे आदिनाथ भी कहे जाते है।

भगवान ऋषभदेव का जन्म हुआ तो सारे लोक मे प्रकाश हो गया— लोगस्स उज्जोयगरे। भगवान का जन्म होता है तो ६४ इन्द्र और ५६ दिक्कुमारियो का आसन हिल उठता है और वे उनका महोत्सव मनाने मेरु पर्वत पर एकत्रित होते है।

८३ लाख पूर्व तक वे संसार मे रहे। १ पूर्व ७० लाख करोड और ५६ हजार वर्ष का होता है।

एक लाख पूर्व शेष रहा तब उन्होने सयम लिया। एक हजार वर्ष वाद उन्हे केवलज्ञान हुआ। तब तक उन्होने कर्मो से युद्ध किया और विजेता वन कर जो अमृत प्राप्त किया वह हमको दे दिया। आप उसे हजम न कर सको तो यह कैसी नादानी है? भगवान की वाणी ही सच्ची है। वही मोक्ष प्राप्त कराने वाली है।

तीर्थकर विना कर्म नष्ट नही होते, ऐसी वात नही है। वे तो निमित्त मात्र होते है, उपादान तो अपना शुद्ध होना चाहिये। सूर्य उदित हुआ हो, पर उल्लू को न दिखाई दे तो उसमे सूर्य का क्या दोप है? जिसको साक्षात् तीर्थकरों का लाभ मिला, फिर भी वे तिर न सके तो उसमे तीर्थकर क्या कर सकते है? जो लोग उनसे दूर रहकर भी धर्मकी आराधना करते है वे भी तिर जाते है। तीर्थकर तो निमित्त है। पढना ही न आवे तो लायब्रेरी मे जाकर के भी वह क्या करेगा? सिखना तो हमको ही पडेगा। धर्म तीर्थ के प्रवर्तक तो हमको मिले है, पर हम सीखे नही तो वे क्या कर सकते है? मास्टर रखकर भी लडका न पढे तो मा-वाप क्या कर सकते है? अज्ञानी जीव आगे नहीं वढ सकता है।

जो जिनेश्वर का स्वरूप समझता है वही उसकी आराधना कर सकता है। भगवान के समय मे भी ३६३ पाखडियो के मत थे। तीर्थकरो का योग मिलने पर भी वे उनका लाभ न ले सके।

केवलि आगल रही गया कोरा
तन मन लग्या मीठाजी

अकर्म भूमि मे सव कुछ सुख था, पर धर्म नही था अत: उस सुख की [illegible] कीमत नही थी। १० तरह के कल्पवृक्ष वहा थे, पर धर्म न था अत: १८ कोडाकोडी सागरोपम तक कोई भी मोक्ष मे न जा सका।

धर्म के प्रवर्तक तो तीर्थंकर है, वही धर्म का मार्ग बताते है। [illegible]

सली हो, पर घिसने का साधन न हो तो आग प्रकट कैसे होगी ? इसी तरह उपादान और निमित्त दोनो का संयोग होता है तभी काम होता है । हमारी आत्मा को भी तीर्थंकर साधु या आचार्य का योग न मिले तो उसकी लायकात वैसी ही पडी रहती है, खिलती नही है ।

एक अभवि और अनंता भवी । भवी जीव अभवि से अनंत गुणा अधिक है । फिर भी वे मोक्ष से वंचित कैसे रह जाते हैं ? अब तक उन्होंने वह मार्ग स्वीकार नही किया अतः वे वैसे ही कोरे रह गये । अब भी अवसर है, मौका मिला है तो उससे फायदा उठालो । नही तो फिर चौरासी मे रखडना तो पडेगा ही ।

एक गरीब ब्राह्मण था । खाने – पीने का भी ठिकाना नही था । न पहनने को वस्त्र ही थे । हे दरिद्रता ! तुझे तो नमस्कार है । तेने तो मेरी दशा सिद्ध जैसी कर दी है ? सिद्ध भगवान सब को देखते है, पर उन्हे कोई नही देखता । वैसे ही मैं भी सबको देख रहा हू, पर मुझे कोई नही देखता । घर में २ लडके २ लडकिया १ औरत और १ मैं हू । गुजारा कैसे होगा ? वह आत्म घात करने का विचार करता है । आदमी जब चारो तरफ से निराश हो जाता है तो वह मरने को तैयार हो जाता है । ब्राह्मण भी मरने को तैयार होता है ।

बंधुओ ? आज दुनिया मे कितने भूखे है, नंगे है, कितने बाढ से बेघर बार हो गये है ? करुण दृश्य देखकर हृदय तडफडा उठता है । यह करुण दृश्य आज आंखों के सामने दिखाई दे रहा है । लेकिन इसमे दोष पानी का या नदी का नही है । अपने अपने कर्मो का ही है ।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थी

द्वारिका नगरी जलने वाली है । भगवान ने कहा-जहा तक इस नगरी में व्रत प्रत्याख्यान होता रहेगा तब तक इसका बाल भी बाका नही होगा । श्रीकृष्णने ढिंढोरा पिटाया–जिसको दीक्षा लेनी हो ले लो, मै उसके घरबार की संभाल करूंगा, उनका लेना देना सब मैं चुकाऊंगा । लेकिन इसका लाभ कितनों ने लिया ? यादव सब सुरापान मे मस्त हो गये और एकदिन द्वारिका जल कर राख हो गई ।

बंधुओ ! चेतो, चेतो, पानी आने वाला है। सूरत की बाढ़ कही यहा भी न आ जाय ! कौन जानता है ? आशा अब भी बलवान है। उसे छोडो और भविष्य की चिन्ता करो। क्या पता है भविष्य मे क्या मिलेगा ? वीतराग धर्म मिलेगा या नही ? अतः सावधान बनो।

ब्राह्मण के पास कुछ नहीं है, वह मरने के लिये एक पहाड पर पहुंच जाता है। जैसे ही वह नीचे गिरने का प्रयत्न करता है, पीछे से एक योगी उसे पकड

लेता है और कहता है—क्यो भाई मरने का विचार क्यों करता है? बड़ी मुश्किल से यह मानव भव मिला है उसे अपघात कर के नष्ट क्यो करना चाहता है?

बहु पुण्य केरा पुंज थी
शुभ देह मानव नो मल्यो
तोअे अरे भव चक्र नो
आंटो नहि अेके टल्यो।

महान पुण्य से यह भव मिलता है। फिर मर क्यो रहा है? ब्राह्मण वोला—मरने के सिवाय और कोई चारा नही है। घर मे खाने-पीने का ठिकाना नही, नौकरी-धंधा भी कुछ नहीं, घर मे जाऊं तो औरत कहती है क्या लाये? तव क्या करूं? योगी वोला—घवरा मत। मरने से तो उपाधि वढती ही है, घटती नही। उत्तराध्ययन मे कहा है।—

सत्थ गहणं च विसभक्खणं च,
जलणं च जल पवेसो य
अणायार भण्ड सेवी,
जम्म मरणाणि वंधन्ति।

जो जीव शस्त्र द्वारा, अग्नि मे जलकर, विप खा कर, या जल समाधि लेकर अपना आत्मघात करते है, वे अपना अनंत जन्म—मरण ही वढाते है। अगर तुम्हे मरना ही हो तो ऐसे मरो कि वह मरण तुम्हारा अंतिम मरण हो। योगीने ब्राह्मण से कहा—ऐसा पुरुपार्थ क्यो नही करता?

ब्राह्मण—क्या करू मुझे तो कुछ सूझता नही है। योगी—तेरा तो भाग्य ही ऐसा है—स्वर्ग से देवेन्द्र भी क्यो न आ जाय, पर तेरी किस्मत पल्टट नहीं सकती। ले, मै यह पारस मणि देता हूं। ७ दिन का समय है, इससे तू लोहे को छूअेगा तो वह सोना हो जायगा। याद रखना ७ वे दिन जव सूर्य डूव जायगा तव यह मणि मिट्टी का ढेला वन जायगी।

ब्राह्मण तो यह सुन कर खुश हो गया। आपको भी पारस मणि जैसा जैन धर्म मिला है, पर इसकी खुशी आपको कहा है? ७ दिन मे तो आप चाहे जितना धर्म कर सकते हो।

होता है। टैक्सी बीच में ही पंचर हो जाती है। अब वह क्या करे? आज का ही दिन बाकी है। टैक्सी वाले से वह कहता है–जल्दी करो, जल्दी करो! मुझे बहुत जरुरी काम है। टैक्सी वाला जब उसे अपने घर पहुंचाता है, तो सूर्य डूब जाता है और रात हो जाती है। योगी की दी हुई मियाद पूरी हो जाती है। वह पारस मणि को ढूढता है, पर वह तो मिट्टी का ढेर बन चुकी होती है। सारा लोहा वैसा ही पडा रह जाता है।

क्या आपको भी लोहे का सोना बनाना है?

मल्यो मनुष्य जन्म आ प्यारो,
तमे भक्ति हृदय मां धारो
कर्मो खपावी जनमो जनमना
जैन धर्म ने धारो
तक अमूली मली, भक्तिना करी, फंद मां पडी
जीवन दुखदाई।
मनुष्य जन्म आ सफल करीने महावीर ने गावो
हो–हो–हो– महावीरने ने गावो।
महावीर प्रभुना गुण सहु गावो,
जन्म सफल करवा–हो–हो–जन्म.....
जिन शासन देवतणा गुण गावो.
भवसिंधु तरवा हो, हो, भव।

बंधुओ। वह ब्राह्मण लोहा ही इकट्ठा करता रहा। उसमे ही उसने सारा समय निकाल दिया। अगर वह पारस मणि का स्पर्श भी करता जाता तो वह लोहा सोना बन जाता। पर वह तो सब साथ करना चाहता था। क्या आप भी ऐसा ही तो नही कर रहे ह? धर्म तो फिर कभी साथ मे कर लेगे, अभी तो पैसा इकट्ठा कर लेने दो!!

अमूल्य अवसर मिला है। व्रत और प्रत्याख्यान करने की मौसम चल रही है। नरक मे पड़ा हुआ जीव एक हजार वर्ष तक जो भयंकर कर्म–पीडा महसूस करता है, उतने कर्म एक उपवास करने वाला नष्ट कर लेता है। एक उपवास करो कि एक हजार वर्ष का नरक का आयुष्य कम हो जाता है। दो उपवास से एकलाख वर्ष का और तीन उपवास (अट्ठम) से करोड वर्ष तक का कर्मफल नष्ट हो जाता है। यह कोई कल्पित बात नही है। भगवान ने स्वयं भगवती सूत्र मे यह कहा है।

खाने बैठे हो, चार रोटी की भूख है, एक रोटी कम खा लो तो यह उणोदरी तप कहा गया है। इससे भी नरक का १०० वर्ष तक का कर्म-फल नष्ट हो जाता है। मासखमण तप का तो महान फल कहा गया है। कर्मो की निर्जरा के लिये तप करो, परलोक के स्वर्गीय सुखो की प्राप्ति लिये मत करो। कर्मो को नष्ट करने का यह रामवाण इलाज है। लोहे से सोना वनाने का मौका मिल रहा है। मौके का लाभ उठा लो, नही तो ब्राह्मण की तरह पछताना ही पडेगा।

यह तीसरे आरे की वात कही जा रही है। जिस समय भ. ऋपभदेव का जन्म हुआ था। उनका निर्वाण हुआ तव १० हजार साधुओ ने भी संथारा ग्रहण किया था। उस समय और उस काल मे तेतलीपुत्र नामक एक नगर था जिसका विशेप अधिकार आगे कहा जायगा।

गुरुवार १४-८-६८

(४८)

भ. महावीरने आत्मा को सम्पूर्ण वनाने की वात कही है। अनंतकाल व्यतीत हो गया, जीव अपने स्वरूप को समझा नही है, परतंत्रता को समझ न सका है। स्वतंत्र वनने का उसे विचार भी नही आया। आज १५ अगस्त है। आज के दिन भारत स्वतंत्र वना, पर इससे आत्मा स्वतंत्र नही वन जाती। देश को स्वतंत्रता तो मिल गई, पर फिर भी देश आज कितनी मुसीवतो मे से गुजर रहा है? कही वाढ आ रही है, खाने को नही मिल रहा है, वेकारी वढ रही है तो कही दुष्काल के वादल मंडरा रहे है?

सच्ची स्वतंत्रता तो अभी वहुत दूर है। चार गति मे रहना परतंत्रता है। उनसे मुक्त वनना ही सच्ची स्वतंत्रता है। सच्ची स्वतंत्रता तो सिद्ध दशा मे है।

मनुष्य जीवन वार वार मिलना कठिन है। देव, गुरु और शास्त्र-श्रवण का योग मिलना महान् दुर्लभ है। यह मौका चला जायगा तो फिर हाथ आनेवाला नही है।

एक अंधा एक गांव मे चक्कर लगा रहा है, घूमता जा रहा है। जहां वाहर निकलने का दरवाजा आता है वह अपना शरीर खुजलाने लगता है, यों वह दरवाजा निकल जाता है और वह घूमता ही रहता है। यही हाल चौरासी का भी है। घूमते घूमते

कुछ लोग आज कल ऐसा भी कहते हैं कि हमको तो अपनी रीति से समझाओ तो हम धर्म श्रवण कर सकते है।

विषय का सेवन भी होता रहे, मौज शौक भी करते रहे और धर्म भी हो जाय, यह त्रिकाल में भी संभव नही है। धर्म तो अहिंसा, सयम और तप में है, विषय के सेवन मे नही है। पैसों का अभिमान आज इतना बढ़ गया है कि आदमी अपना स्वभाव भी भूलता जा रहा है।

वर्षा अधिक हुई कि नदी मे बाढ आ जाती है, पर सागर कभी अपनी सीमा नही छोडता। उछलता है तब भी अपने मे ही समा जाता है। आप नदी की तरह हैं या समुद्र की तरह ? गरीबो के आसू पोंछने वाले हो या उन्हे अधिक रुलाने वाले हो ? विचार करोगे तो यह पता चल सकेगा।

ढाढर नदी है, उसमे बाढ आई है तो आसपास के झोपडे सभी बह जाते हैं। सैकड़ो मूक जानवर भी बह गये, बूढे और बच्चे भी बह जाते है। माधव और उसकी पत्नी लक्ष्मी एक वृक्ष पर चढ़ जाती है। माधो की भैंसे पानी मे बही चली जा रही है। जिनसे उसका गुजारा चलता था, वह सहारा आखों के सामने मिटता दिखाई देता है। लक्ष्मी रोने लगती है। माधो कहता है–रोना बंद कर, तू अपनी रक्षा कर। कुदरत का प्रकोप है, उसके सामने हम क्या कर सकते है ? तीन दिन तक बाढ़ रही, जिसे अपना समझा वह नष्ट हो जाय तो उसके लिये दुख करते हो, पर पडौसी का नुकशान हो जाय तो उसका दुख नही करते यह कैसी बात है ?

प्लेन में लडका गया है, एक्सीडेट हो गया, सारा प्लेन नष्ट हो गया तो मा रोती है। ममत्व का दुख है। राग का दुख है। रागी को ही दुख होता है। वीतराग तो यह सब देखता रहता है। तीनो कालों के भाव वे तो एक समय में ही देख लेते है। उनको क्या आश्चर्य ?

न वीयरागस्स करेन्ति किंचि

जहां राग है वहीं दुख है। माता रोती है। पडौसी समझाते है– सयोग की बात है, शान्त्वना देते है। पर मा बेसुध हो जाती है। बहिन रोती है। उस समय एक डाकिया तार लेकर आता है। तार रमेश का ही था। लिखा था–मै सहीसलामत हूं, उस प्लेन मे मैं जा नही सका। मेरी चिन्ता मत करना। मा पुत्र के शोक मे बेसुध थी, जीवित होने का तार सुनकर होश मे आ जाती है। अभी २ जो मृत्यु का असह्य दुख था वह सुख मे बदल जाता है। राग मोह मे परिणत हो जाता है। बाप मिठाई बाटता है। जिस घर मे अभी शोक था अब वहा चाय और पेडे बाटे जा रहे हैं। यह ससार का नाटक कितना विचित्र है ? बाप मुह मे पेडा रखता है कि उसे विचार आता है मेरा

रमेश तो वच गया, पर उसके जैसे ८० रमेश मर गये हैं । मैं यह क्या कर रहा हूं । मेरा वच गया तो क्या पराया तो मर गया है । उसका भी दुख क्यो न करूं ?

> दुखडा देखी जगना जो तारूं दिल ना रोवे
> फोगट तारो भक्ति अेनुं फल कांही ना होवे
> तुं नित नवला भोजन खावे, नित महेफिल ना रंग उडावे
> अन्न विना कोई गरीवनो, लाडकवायो प्राण गुमावे
> भूख्यानी अनुकम्पा ना तारूं दिल जो रोवे–दुखडा

जो आदमी दुखी है उन्हे देख कर अनुकम्पा करना यह समकिती का भी गुण है ।

आज गुजरात मे और राजस्थान में कैसी वाढ आ गई है ? लोगों को कितना नुक्शान हो गया है ? यह सव देखकर भी आपके जीवन मे परिवर्तन कहा हो रहा है ? आज इस होटल मे जाना है और कल उस होटल मे खाना है । क्या श्रावक इस तरह होटलो मे खाना खा सकता है ? उधर तो लोग भूखो मर रहे है और आप इधर महफिल उडा रहे है ?

वाढ कम होती है । लोग पेडो पर से नीचे उतरते है । सव घर-वार, अन्न, वस्त्र रहित हो गये । कहा जावे ? अहिंसा प्रेमी लोग कुछ दिन खाना खिला देगे । आखिर तो कुछ करना ही पडेगा । माधो और लक्ष्मी अहमदावाद आते है और वहा कान्तीलाल की मील मे नौकरी करते है । १५ रु. मासिक मिलता है । मजदूरों की मेहनत पर मजा करने वालो ? आज यहा मजा कर लो, पर परलोक मे तो इसका फल भोगना ही पडेगा । कर्मो ने छह खड के स्वामी को भी नही छोडा तो तुम्हारी क्या वात है ? याद रखिये कर्म फूल की शैया पर सोने वालो को भी कांटो की शैय्या पर सुला देता है ।

पति पत्नी दोनो सख्त काम करते है । पति १ साल काम करने से वीमार हो जाता है । माधो घर मे रहता है । लक्ष्मी घर का काम-काज कर मील मे काम करने जाती है । साथ मे ३ साल का एक लडका भी है। लक्ष्मी माधो का इलाज कराते २ थक जाती है । उसकी तबियत ठीक नही होती । बुखार शरीर से निकलता नही है ।

कुछ लोग आज कल ऐसा भी कहते हैं कि हमको तो अपनी रीति से समझाओ तो हम धर्म श्रवण कर सकते हैं।

विषय का सेवन भी होता रहे, मौज शौक भी करते रहे और धर्म भी हो जाय, यह त्रिकाल में भी संभव नही है। धर्म तो अहिंसा, संयम और तप में है, विषय के सेवन में नही है। पैसों का अभिमान आज इतना बढ़ गया है कि आदमी अपना स्वभाव भी भूलता जा रहा है।

वर्षा अधिक हुई कि नदी मे बाढ आ जाती है, पर सागर कभी अपनी सीमा नहीं छोड़ता। उछलता है तब भी अपने मे ही समा जाता है। आप नदी की तरह है या समुद्र की तरह ? गरीबों के आसू पोंछने वाले हो या उन्हे अधिक रुलाने वाले हो ? विचार करोगे तो यह पता चल सकेगा।

ढाढर नदी है, उसमे बाढ आई है तो आसपास के झोपडे सभी बह जाते हैं। सैकड़ों मूक जानवर भी बह गये, बूढे और बच्चे भी बह जाते हैं। माधव और उसकी पत्नी लक्ष्मी एक वृक्ष पर चढ़ जाती है। माधो की भैंसे पानी में बही चली जा रही है। जिनसे उसका गुजारा चलता था, वह सहारा आखो के सामने मिटता दिखाई देता है। लक्ष्मी रोने लगती है। माधो कहता है—रोना बंद कर, तू अपनी रक्षा कर। कुदरत का प्रकोप है, उसके सामने हम क्या कर सकते है ? तीन दिन तक बाढ रही, जिसे अपना समझा वह नष्ट हो जाय तो उसके लिये दुख करते हो, पर पडौसी का नुकशान हो जाय तो उसका दुख नही करते यह कैसी बात है ?

प्लेन मे लडका गया है, एक्सीडेंट हो गया, सारा प्लेन नष्ट हो गया तो मा रोती है। ममत्व का दुख है। राग का दुख है। रागी को ही दुख होता है। वीतराग तो यह सब देखता रहता है। तीनों कालो के भाव वे तो एक समय मे ही देख लेते है। उनको क्या आश्चर्य ?

न वीयरागस्स करेन्ति किंचि

जहां राग है वही दुख है। माता रोती है। पडौसी समझाते है– सयोग की बात है, शान्त्वना देते है। पर मा बेसुध हो जाती है। बहिन रोती है। उस समय एक डाकिया तार लेकर आता है। तार रमेश का ही था। लिखा था–मै सहीसलामत हूं, उस प्लेन मे मै जा नही सका। मेरी चिन्ता मत करना। मा पुत्र के शोक मे बेसुध थी, जीवित होने का तार सुनकर होश मे आ जाती है। अभी २ जो मृत्यु का असह्य दुख था वह सुख मे बदल जाता है। राग मोह मे परिणत हो जाता है। बाप मिठाई बाटता है। जिस घर मे अभी शोक था अब वहा चाय और पेडे बाटे जा रहे है। यह ससार का नाटक कितना विचित्र है ? बाप मुह मे पेडा रखता है कि उसे विचार आता है मेरा

रमेश तो बच गया, पर उसके जैसे ८० रमेश मर गये है। मै यह क्या कर रहा हूं। मेरा वच गया तो क्या पराया तो मर गया है। उसका भी दुख क्यो न करूं ?

दुखडा देखी जगना जो तारूं दिल ना रोवे
फोगट तारी भक्ति अेनुं फल कांही ना होवे
तुं नित नवला भोजन खावे, नित महेफिल ना रंग उडावे
अन्न विना कोई गरीबनो, लाडकवायो प्राण गुमावे
भूख्यानी अनुकम्पा ना तारूं दिल जो रोवे—दुखडा

जो आदमी दुखी है उन्हे देख कर अनुकम्पा करना यह समकिती का भी गुण है।

आज गुजरात मे और राजस्थान मे कैसी बाढ आ गई है? लोगों को कितना नुक्शान हो गया है ? यह सब देखकर भी आपके जीवन मे परिवर्तन कहां हो रहा है ? आज इस होटल में जाना है और कल उस होटल मे खाना है। क्या श्रावक इस तरह होटलो मे खाना खा सकता है ? उधर तो लोग भूखो मर रहे है और आप इधर महफिल उड़ा रहे है ?

बाढ कम होती है। लोग पेडो पर से नीचे उतरते है। सब घर-बार, अन्न, वस्त्र रहित हो गये। कहां जावे ? अहिसा प्रेमी लोग कुछ दिन खाना खिला देगे। आखिर तो कुछ करना ही पडेगा। माधो और लक्ष्मी अहमदावाद आते है और वहां कान्तीलाल की मील मे नौकरी करते है। १५ रु. मासिक मिलता है। मजदूरो की मेहनत पर मजा करने वालो ? आज यहा मजा कर लो, पर परलोक मे तो इसका फल भोगना ही पड़ेगा। कर्मो ने छह खड के स्वामी को भी नही छोडा तो तुम्हारी क्या वात है ? याद रखिये कर्म फूल की शैया पर सोने वालो को भी कांटो की शैय्या पर सुला देता है।

पति पत्नी दोनो सख्त काम करते है। पति १ साल काम करने से वीमार हो जाता है। माधो घर मे रहता है। लक्ष्मी घर का काम-काज कर मील मे काम करने जाती है। साथ मे ३ साल का एक लडका भी है। लक्ष्मी माधो का इलाज कराते २ थक जाती है। उसकी तवियत ठीक नही होती। वुखार शरीर से निकलता नही है।

धनवालो की मोटर विगड जाती है तो तत्काल ठीक करा ली जाती है, पर कोई नौकर वीमार हो जाता है तो क्या वे उसकी भी खवर करवाते है ? नौकर की खवर लेने वाले तो कोई विरले ही होते है। हमदर्द सेठ होगा तो नौकर भी उसका काम तन तोड कर करेगा। वरना तो टाईम हुआ नही कि चल देगा। फिर वह खडा रहना भी नही चाहेगा। आज के नौकरो की हालत भी ऐसी ही है।

एक दिन मील मजदूर हडताल कर देते है। लक्ष्मी अपने वालक को लेकर वाहर आ रही है। उसका लडका मोटर के नीचे आकर मर जाता है। लक्ष्मी चिल्लाती है—

मेरा लडका बचाओ, वह मोटर के नीचे आ गया है। मोटर खुद सेठ चला रहा था। वह सोचता है– मेरे हाथ से यह हत्या होगई है, मैं गुन्हेगार हूं। पुलिस जान जायेगी तो अभी मुझे बेडियां पहना देगी। लक्ष्मी रोती है। सेठ कहता है– तू रो मत, तुझे जो चाहिये लेले। लडका तो मर चुका है वह वापस आ नही सकता। मैं तुझे लडके के बदले मे ५ हजार रुपया देता हूं। इन्हे लेकर चुपचाप अपने घर चली जा। नही तो अभी पुलिस आजायगी तो परेशान कर देगी।

लक्ष्मी कहती है– सेठ, मुझे ५ हजार रुपये नही चाहिये। मुझे तो मेरा लडका चाहिये। मेरा पति बीमार है। मेरा एका एक लडका था वह भी तुमने मार दिया तो अब मैं क्या करूंगी? मेरे पति को अब मैं क्या जवाब दूंगी? लक्ष्मी बहुत रोती है, पर सेठ उसका दुख थोडे ही समझ सकता है? वह लडके का दाह सस्कार भी करा देता है। लक्ष्मी धीरे २ अपने घर आती है। माधो १०५ डिग्री के बुखार मे पडा है। फिर भी लक्ष्मी को देखता है तो पूछता है– तू अकेली आई है? लक्ष्मण कहा रह गया है? यह सुन कर तो लक्ष्मी रो पडती है? माधो पूछता है– क्या हुआ? रोती क्यो है? क्या लक्ष्मण कही घुम हो गया है?

लक्ष्मीने रोते रोते उत्तर दिया– सेठ की मोटर मे आकर वह तो मर चुका है। यह कहकर वह तो फूट फूट कर रोने लगती है?

माधो भी रोते हुए कहता है अरे, उसका एक बार मुंह तो मुझे दिखा दे। वह मुझसे पहले क्यो चला गया? जाना तो मुझे चाहिये था? लक्ष्मी कहती है– उसका तो अन्तिम संस्कार भी कर दिया गया है? माधो पुत्र शोक में और अधिक बीमार हो गया। वह अब बेभान रहने लगा। सन्निपात सा उसे हो जाता था। घर मे दूसरा कोई नही। न पास में कुछ पैसा ही बचा रहता है। लक्ष्मी सेठ के पास जाती है और कुछ रुपया उधार मांगती है। सेठ लक्ष्मी को देखता है तो कहता है– लक्ष्मी! तेरा पति भी हडताल पर उतरा है? हमारा कारखाना न होता तो तुम कभी के मर गये होते?

लक्ष्मी ने कहा– मेरा पति तो ६ महिने से बीमार है। लडके की मृत्यु के समाचार से तो वह पागल हो गया है। आज २० तारीख हो गई है। मुझे महीने का पगार चाहिये। मेरे पास दवा लाने के लिये भी एक पैसा नहीं है। अतः महरबानी कर मेरा वैतन मुझे दिला दीजिये।

सेठ कहता है– वैतन तो पहली तारीख को मिलेगा। उससे पहले वह नही मिल सकता। लक्ष्मी–मेरा लडका तो गया, मेरा पति भी जाने की तैयारी में है। आप से मैं अपना वैतन ही मांग रही हूं। वह मुझे मिल जायगा तो मै दवा का प्रबध कर लूगी।

लेकिन सेठ के हृदय में दया कहां थी? उसने कहा–एकबार कह तो दिया, वैतन अभी नही मिल सकता। चलीजा यहांसे, नहीं तो धक्का मारकर निकलवा दी जायगी?

लक्ष्मी–सेठ, वह बात याद करिये जब आप मुझे जेल के डर से ५ हजार रुपये दे रहे थे। आज आप मुझे मेरा वेतन भी नही दे सकते ? बंधुओ ! गरीबो को मत सताओ ! वरना उनकी हाय एकदिन तुमको भी खत्म किये बिना नही रहेगी ?

तुलसी हाय गरीब की कबहु न खाली जाय।

मुवा ढोरके चाम से लोहा भस्म हो जाय।

लक्ष्मी आफिस से बाहर निकल कर मार्ग मे आती है और जी भर कर वह रोती है। पर कोई पूछने वाला नही आता है। घंटे भर बाद वह चुप हुई तो सामने एक पठान का बंगला देखती है। वह वहां जाती है और पठान से कहती है– यह मेरा सौभाग्य-चिन्ह कंकण है। इसे लेकर १ आना मुझे दे दो। मैं वापस १ आना देकर यह कंकण ले लगी। पठान ने १ आना देकर चूडी लेली। कैसे आदमी होते है ? एक आना भी आज आदमी नही दे सकता है ? कीर्तिदान के लिये तो हजारों रुपया दे देते हो, पर सगे भाई का लड़का भूखा मर रहा है तो उसकी तरफ आज कौन देखता है ?

लक्ष्मी एक आनेका बरफ लेकर घर आती है और माधोके सिर पर मलती है। उससे उसका बुखार उतर जाता है। १ ता. को उसे वेतन मिल जाता है। लक्ष्मी कहती है अब हमको इस मील मे नौकरी नही करना है। जहा सेठ के दिल में नौकरों के प्रति तनिक भी हमदर्दी नही वहा, नौकरी करने से क्या लाभ ? दोनो नौकरी छोड देते हैं। जिन्हे काम ही करना है उसके लिये तो शहर मे काम की कमी नही होती। जिन्हे काम ही न करना हो वही मागते फिरते है ?

इतने मे तो शहर मे आग लग गई। लोगो ने कहा–कान्तीलाल सेठ का बगला जल रहा है। सेठ अदर ही रह गया है। चारो तरफ आग ही आग दिखाई दे रही है। कोई अदर जाकर सेठ को निकाल नही सकता है।

माधो सुनता है तो उसका खून गरम हो जाता है। मेरा मालिक जल रहा है और मैं खडा खडा देख रहा हूं। उसने बम्बावाले की निसरनी उठाई और उस पर चढ़ कर वह मकान मे कूद पडता है। गरीब और अमीर का हृदय देखिये। माधो सेठ को उठाकर बाहर ले आता है। सेठ बेभान है। लक्ष्मी राब बनाती है और माधो सेठ के मुंह मे डालता है। चार घटे बाद सेठ जागृत होता है तो देखता है यहा मैं कैसे आ गया? लक्ष्मी और माधो को देखकर पूछता है– माधो ! तेने मुझे कैसे बचा लिया ! मै तो मर ही गया था। माधो ! मुझे वे दिन याद आते है जब तेरी औरत पगार लेने आई थी और मैंने उसे वह भी समय पर नही दी थी। मै कितना क्रूर हू, पर तुम कितने दयालु हो ! मुझ जैसे निर्दयी आदमी को भी तुमने बचा लिया। अपनी जान की भी परवाह नही की। मै कहां और तुम कहां ! माधो ! बोल क्या चाहता है ? क्या कीमत मांगता है ? मैं सब कुछ देने को तैयार हू। माधो कहता है–मैं तो ७ महीने से आपके यहा काम

नही करता हू । पर मै कहता हू आप अपने मील के लोगो का वैतन वढाकर डेढा कर दीजिए । सेठ कहता है– यह तो तूं दूसरो के लिये माग रहा है, अपने लिये क्या मागता है ? माधो– मुझे कुछ नही चाहिये । मेरा काम तो चलता है । सेठ यह सुन कर तो आश्चर्य में डूब जाता हे ? सोचता है गरीव होकर भी कितना निस्पृह व्यक्ति है ?

उपकारी पर उपकार करना तो पशुता है । जानवर भी यह कर सकता है । कुत्ते को रोटी डालो तो वह भी तुम्हारी चौकीदारी कर देता है । जो अपकारी पर भी उपकार करता है यही सच्ची मानवता है । ऐसी मानवता जव पैदा होगी तभी इस आत्मा का कल्याण हो सकेगा ।

आज के दिन और नहीं तो इतना जरूर करना कि हो सके तो किसीका भला करना, पर बुरा किसी का नही करना ।

कान्तीलाल सेठ अपने घर के लिये रवाना होता है । जाते समय वह कहता है– यह लक्ष्मी वेन मेरी वहिन है, मै भाई हूं । राखी के निमित्त मै यह हीरे की अंगूठी इसे देता हूं । इसकी कीमत १० हजार रु. है । माधो अव कुछ वोल नही सका । यह तो भाई और व[illegible]न का व्यवहार था ।

वंधुओ ! मानवता पैदा करो ! तैतलीपुत्र नगर के लोग भी ऐसे ही थे । उसका विशेप अधिकार यथा समय आगे कहा जायगा ।

ता. १५–८–६४

[४९]

सुधर्मास्वामी जंवू स्वामी से कह रहे हैं, उस समय उस काल में तेतलीपुर नामक एक नगर था । यह अवसर्पिणी काल के चौथे आरे की वात हैं ।

समय समय अनंत वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि पर्यायें वदलाती रहती है । भ. महावीर के समय वह नगर था पर बाद मे वह वैसा न रहा । भगवान के समय राजगृही नगरी की कैसी शोभा थी ? पर आज उसे देखकर आश्चर्य होता है । भगवाने ने वहा १४ चातुर्मास किये थे । वह नगरी कैसी रही हुई होगी ? नालंदा की पाठशाला भी कैसी रही होगी ? पर आज तो वे अवशेष मात्र रह गये है । इसीलिये भगवान ने तेणं काल तेणं समएणं की वात कही है । उस नगरी में प्रमोद वन नामक एक उद्यान था जो कि ईशान कोण में स्थित था । वहां का राजा कनकरथ था । प्रजा का महान–पुण्य होता है तभी राजा भी न्याय-नीति धर्म वाला होता है और वह अपना खजाना प्रजा की भलाई के लिये ही वित-रीत करता है ।

आज गोकुलाष्टमी है। श्रीकृष्ण का जन्म दिन है। आज छुट्टी मना कर भी लोग उनको याद कर रहे है। महापुरुष जो होते है उनके गुणों को याद करने से भी आत्मा को महान-लाभ ही होता है।

जैन धर्म मे श्रीकृष्ण को वासुदेव माना गया है। वासुदेव महान-पराक्रमी और शूर-वीर माना गया है। तीन खंड की ऋद्धि-सिद्धी का उसे स्वामी कहा गया है। श्रीकृष्ण ने अपने पूर्व भव मे संयम की निरतिचारपूर्वक महान साधना की थी। जो भी वासुदेव होते है वे अपने पूर्व भव में साधु बनते ही है। जिसने उत्कृष्ट मुनि मार्ग की साधना की होती है वे ही वासुदेव बन सकते है।

ज्ञानी कहते है मुनि बनो और उत्कृष्ट तप करो, पर लोक या परलोक के सुखों की चाहना से तप मत करो। अपनी प्रशंसा के लिये भी तप मत करो। परन्तु एकान्त कर्मनिर्जरा के लिये ही तप का विधान किया गया है। स्वेच्छा से तप करो, अपनी वृत्तियों का सकोच करो। नारकी में अविरति है। केवल मनुष्य भव ही ऐसा है जिसमें भव भ्रमण मिटाने के लिये तप किया जा सकता है। ऐसा उत्कृष्ट तप करते हुए पुण्य का वंध तो अपने आप ही होता चला जाता है।

कोई किसान अपने खेत में अनाज बोता है, पर अनाज न होकर उसमें केवल घास ही हो तो उससे वह प्रसन्न नहीं होता। इसी तरह पुण्य भी घास की तरह है। अतः उसमे खुश होने की जरूरत नहीं है। पुण्य भी कर्म का ही लडका है। एक चडाल स्त्री के दो पुत्र साथ में पैदा हुए। एक का पोषण वह स्वयं करती है और दूसरे का पोषण एक सेठ के यहा होता है। सेठ के यहां पलने वाला लडका संस्कारित होता है-वह दूसरों को दुखी देखकर दया करता है मद्य, मांस का सेवन नहीं करता, सदाचार का पालन करता है। पर चंडाल के यहां पलने वाला लड़का कुसंस्कारी होता है-पाप करता है, दुराचारी और मदिरापान करता है। पुण्य और पाप भी इन दोनों लडकों के समान हैं। सेठ के यहा जिस लडके का पोषण हो रहा है उसके समान पुण्य है और पाप चंडाल के लडके के समान है। सातावेदनोय पुण्य प्रकृति है। शुभ नाम और ऊंच गोत्र आदि भी पुण्य प्रकृति ही है। चार अघाति कर्म मे पुण्य और पाप दोनो आते है। चार घनघाती कर्म मे केवल पाप प्रकृति ही आती है। पुण्य और पाप को समझाने के लिये शास्त्र में एक बहुत सुंदर उदाहरण दिया गया है। एक तलवार है। जिसकी धार पर शहद और अफीम लगी हुई है। शहद मीठा है और अफीम कडवीं। लेकिन दोनो का स्वाद लेते समय जीभ कट जाती है। पुण्य श। तलवार जैसा है जब कि पाप अफीम की तलवार जैसा। पुण्य से मन, व काया का सुख मिलता है। निरोगी शरोर सातावेदनीय कर्म से।

नही करता हूं । पर मैं कहता हू आप अपने मील के लोगो का वैतन वढाकर डेढा कर दीजिए । सेठ कहता है– यह तो तू दूसरो के लिये माग रहा है, अपने लिये क्या मांगता है ? मावो– मुझे कुछ नही चाहिये । मेरा काम तो चलता है । सेठ यह सुन कर तो आश्चर्य में डूब जाता है ? सोचता है गरीब होकर भी कितना निस्पृह व्यक्ति है ?

उपकारी पर उपकार करना तो पशुता है । जानवर भी यह कर सकता है । कुत्ते को रोटी डालो तो वह भी तुम्हारी चौकीदारी कर देता है । जो अपकारी पर भी उपकार करता है यही सच्ची मानवता है । ऐसी मानवता जब पैदा होगी तभी इस आत्मा का कल्याण हो सकेगा ।

आज के दिन और नहीं तो इतना जरूर करना कि हो सके तो किसीका भला करना, पर बुरा किसी का नही करना ।

कान्तीलाल सेठ अपने घर के लिये रवाना होता है । जाते समय वह कहता है– यह लक्ष्मी वेन मेरी बहिन है, मैं भाई हूं । राखी के निमित्त मैं यह हीरे की अंगूठी इसे देता हूं । इसकी कीमत १० हजार रु. है । मावो अब कुछ बोल नहीं सका । यह तो भाई और बहिन का व्यवहार था ।

वंधुओ ! मानवता पैदा करो ! तैतलीपुत्र नगर के लोग भी ऐसे ही थे । उसका विशेष अधिकार यथा समय आगे कहा जायगा ।

ता. १५–८–६४

[४९]

सुधर्मास्वामी जंबू स्वामी से कह रहे है, उस समय उस काल में तेतलीपुर नामक एक नगर था । यह अवसर्पिणी काल के चौथे आरे की बात है ।

समय समय अनंत वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि पर्यायें बदलाती रहती है । भ. महावीर के समय वह नगर था, पर बाद मे वह वैसा न रहा । भगवान के समय राजगृही नगरी की कैसी शोभा थी ? पर आज उसे देखकर आश्चर्य होता है । भगवाने ने वहा १४ चातुर्मास किये थे । वह नगरी कैसी रही हुई होगी ? नालंदा की पाठशाला भी कैसी रही होगी ? पर आज तो वे अवशेष मात्र रह गये है । इसीलिये भगवान ने तेणं काल तेणं समएणं की बात कही है । उस नगरी मे प्रमोद वन नामक एक उद्यान था जो कि ईशान कोण मे स्थित था । वहा का राजा कनकरथ था । प्रजा का महान–पुण्य होता है तभी राजा भी न्याय-नीति धर्म वाला होता है और वह अपना खजाना प्रजा की भलाई के लिये ही वितरीत करता है ।

आज गोकुलाष्टमी है। श्रीकृष्ण का जन्म दिन है। आज छुट्टी मना कर भी लोग उनको याद कर रहे हैं। महापुरुष जो होते हैं उनके गुणो को याद करने से भी आत्मा को महान-लाभ ही होता है।

जैन धर्म में श्रीकृष्ण को वासुदेव माना गया है। वासुदेव महान-पराक्रमी और शूर-वीर माना गया है। तीन खंड की ऋद्धि-सिद्धी का उसे स्वामी कहा गया है। श्रीकृष्ण ने अपने पूर्व भव मे संयम की निरतिचारपूर्वक महान साधना की थी। जो भी वासुदेव होते हैं वे अपने पूर्व भव मे साधु बनते ही हैं। जिसने उत्कृष्ट मुनि मार्ग की साधना की होती है वे ही वासुदेव बन सकते हैं।

ज्ञानी कहते हैं मुनि बनो और उत्कृष्ट तप करो, पर लोक या परलोक के सुखों की चाहना से तप मत करो। अपनी प्रशसा के लिये भी तप मत करो। परन्तु एकान्त कर्मनिर्जरा के लिये ही तप का विधान किया गया है। स्वेच्छा से तप करो, अपनी वृत्तियों का संकोच करो। नारकी में अविरति है। केवल मनुष्य भव ही ऐसा है जिसमे भव भ्रमण मिटाने के लिये तप किया जा सकता है। ऐसा उत्कृष्ट तप करते हुए पुण्य का बंध तो अपने आप ही होता चला जाता है।

कोई किसान अपने खेत मे अनाज बोता है, पर अनाज न होकर उसमें केवल घास ही हो तो उससे वह प्रसन्न नही होता। इसी तरह पुण्य भी घास की तरह है। अतः उसमे खुश होने की जरूरत नही है। पुण्य भी कर्म का ही लडका है। एक चंडाल स्त्री के दो पुत्र साथ में पैदा हुए। एक का पोषण वह स्वय करती है और दूसरे का पोषण एक सेठ के यहा होता है। सेठ के यहा पलने वाला लडका संस्कारित होता है-वह दूसरों को दुखी देखकर दया करता है मद्य, मास का सेवन नही करता, सदाचार का पालन करता है। पर चंडाल के यहा पलने वाला लडका कुसंस्कारी होता है-पाप करता है, दुराचारी और मदिरापान करता है। पुण्य और पाप भी इन दोनो लडकों के समान है। सेठ के यहा जिस लडके का पोषण हो रहा है उसके समान पुण्य है और पाप चंडाल के लडके के समान है। सातावेदनीय पुण्य प्रकृति है। शुभ नाम और ऊच गोत्र आदि भी पुण्य प्रकृति ही है। चार अघाति कर्म में पुण्य और पाप दोनो आते है। चार घनघाती कर्म में केवल पाप प्रकृति ही आती है। पुण्य और पाप को समझाने के लिये शास्त्र में एक बहुत सुंदर उदाहरण दिया गया है। एक तलवार है। जिसकी धार पर शहद और अफीम लगी हुई है। शहद मीठा है और अफीम कडवी। लेकिन दोनों का स्वाद लेते समय जीभ कट जाती है। पुण्य शहद की तलवार जैसा है जब कि पाप अफीम की तलवार जैसा। पुण्य मे मन, व काया का सुख मिलता है। निरोगी शरीर सातावेदनीय कर्म से

वीमार रहना असातावेदनीय कर्म का उदय है। यह पाप का फल है। कर्म किसी को भी छोडता नही है।

सातावेदनीय अर्थात्, अनुकूलता और असतावेदनीय अर्थात् प्रतिकूलता। अनुकूलता पुण्य है, प्रतिकूलता पाप है। पर दोनों ही संसाराभिमुखी है। दोनो से संसार वढ़ता ही है।

ज्ञाता और दृष्टा यह आत्मा का स्वभाव है। साता-सुख में आसक्त न होना और असाता मे दुखी न होना आत्मा का स्वभाव है। दोनों अवस्थायें क्षणिक है–नश्वर है। अतःज्ञानी कहते हैं तू अपने स्वभाव मे रह, परभाव में मत जा।

जव पुण्य का उदय होता है तो भिखारी भी धनवान वन जाता है और धनवान पाप के उदय से भिखारी वन जाता है। इसमें कोई आश्चर्य की वात नहीं है। यह तो शुभाशुभ कर्म का ही खेल है। आत्मा तो दोनो से भिन्न है। वह न तो आसक्त रहता है न दुखी ही होता है।

मुनिव्रत में रहते हुए श्रीकृष्ण ने अपने पूर्व भव मे यह निदान कर लिया था कि मैं आने वाले जन्म मे महान वलशाली व्यक्ति वनूं?

सव्वे वासुदेवा निदान करा

वासुदेव सभी निदान करने वाले होते हैं। निदान (नियाणा) करना भी ठीक नहीं है। इससे भी संसार वढता ही है।

कई लोग आयविल भी इसीलिये किया करते है कि उससे उनकी तकलीफ दूर हो जायगी, नौकरी मिल जायगी। ऐसी भावना से तप करना भी मिथ्यात्व है। कर्म क्षय करने के लिये तप करना ही सच्चा तप है।

इच्छा पूर्ति के लिये तप करना भी पाप का मूल है। सुख ज्ञान मे है, अज्ञान में नही। शरीर रहे या न रहे, उससे मै सुखी नही हो सकता, कुटुम्व का सुख भी मेरा नहीं है। मेरा दुख तो अज्ञान है। ज्ञान है उतना सुख और अज्ञान है उतना दुख। यही सुख और दुख का माप दड है।

जड और चैतन का भेद ज्ञान हो जाय तो सब दुख मिट जाता है। मैं तो अनंत गुणों का स्वामी हूं, शरीर पुद्गल का पिड है, मै उससे सुखी कैसे हो सकता हू? शरीर हल्का –भारी वनता है तो उससे मेरा क्या वनता विगडता है? मै शरीर थोडे ही हूं।

ईष्ट रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि प्रिय होना, नाम कर्म की ही प्रकृति है। सरस और प्रिय लगना भी दुश्मन का ही वाण है। उसमे भी नही फंसना चाहिये।

कोई तुम्हे गालिया भी दे तो उससे दुखी क्यो होते हो? साला कह दिया तो तुम्हारा क्या विगड गया? उसकी औरत तुम्हारी वहिन ही तो है? कोई अकर्मी कहे तो यह भी खुश होने जैसी वात है। अकर्मी तो भगवान होते है। १४ वे गुणस्थान से ऊपर जाने पर ही अकर्मी दशा होती है। अकर्मी कहना तो आशीर्वाद समान है। कई लोग मुनियोको भी गाली दे देते हैं। कहते है यह तो पडवाई है। मालूम है आपको पडवाई की स्थिति कितनी है? ७ वा गुणस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। पडवाई मैं क्या तीर्थंकर भी पडवाई थे। तीर्थंकर संसार में रहते हैं तब वे ४ थे गुणस्थान में होते हैं। दीक्षा लेते हैं तो ७ वे में जाते हैं। ७ वे की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। वहा से ६ मे आते है। पडवाई हुए या नही? जीव ६ ठे गुणस्थान में ७ वे से ही आता है। कोई जीव ७ वे गुणस्थान से ही आगे जाता है तो ८,९,१०,११ और १२ तक कही भी ठहर नही सकता है। क्योकि सब की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ही होती है। जब वह १३ वे गुणस्थान मे जाता है तब स्थिर हो सकता है। टिकने के स्थान तो ६ और १३ वां गुणस्थान ही है। अत: पडवाई भी गाली नही है। यथार्थ बोध होने पर ही ज्ञान होता है। अतः भगवान कहते है यह तो कर्म की बात है। मोक्ष का भाव कम होकर जब ससार का भाव बढ जाता है तभी जीव निदान करता है। श्रीकृष्ण भी साधु के भव से मर कर देवलोक मे जाते हैं और वहा से चव कर देवकी की कुक्षि मे पुत्र रूप मे पैदा होते है।

देवकी झरोखे मे बैठी है। एवंता मुनि आहार लेने आ रहे है। मासखमण का पारणा है, फिर भी स्वयं आहार लेने जा रहे है। श्रम करके जीने वाले को ही श्रमण कहा जाता है। बैठे रहने से श्रमण नही बना जा सकता है। आलसी श्रमण नही बन सकता।

आलस वधी ईर्षा वधी, वधतु वली अभिमान छे।
कारण बधानुं एज छे के अतिशय उरे अज्ञान छे।
बंधु आत्म समाधि में स्थिर बनो।
उठो वीर हवे मैदान पडो करो दूर समाजेजेह सड़ो।

आज आलस्य बढ गया है। पर्यूषण पूरे हुए नही कि सब धर्म–कर्म पूरे हो जावेगे? फिर तो कोई उपाश्रय मे आना भी पसंद नही करेगा। कई लोग कहा करते है तबियत ठीक नही है, क्या करे? यही प्रमाण है कर्म बाधने का। तबियत ठीक कैसे रहेगी? अतःज्ञानी कहते है तू प्रमादी मत बन। उठ, और कर्मो से युद्ध कर, उन्हे परास्त कर विजयी बन। कर्मो से लडने के लिये तो तपस्या करनी ही पडेगी।

तप भी आभ्यन्तर और वाह्य रूप से १२ प्रकार का कहा गया है–अनशन, उणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रस परित्याग, कायक्लेश, पडिसलेहणा, प्रायश्चित, विनय वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग। वाह्य तप आभ्यतर तप के निमित्त हैं। पौपध किया है तो सारे दिन सो जाने के लिये नही किया है। कर्मों से युद्ध करने के लिये किया है। स्व सवेदन –स्वरूप ज्ञान के लिये पौपध किया है। २४ घंटे तक आत्मा मे लीन वने रहना पौपध है। संसार के दरवाजे वंद कर दिये हैं तो फिर मत खोलो। घर में क्या हो रहा है? कहा की टपाल आई है? उससे क्या लाभ ? घर छोडकर आये हो और फिर भी आग से घवरा क्यो रहे हो?

घर ना सलग्या वन मा गया वनमां लागी लाय
वनथी जे भागो छूटया त्यां करड़यो कालो नाग।

प्रायश्चित करने यहां आये हो तो वही करो–पर की चिन्ता क्यों करते हो?

अतिमुक्त कुमार को देखकर कंस की पत्नी जीवदशा वोली–आओ देवरजी आओ। गाना गाओ तो मै पात्रा भर दूगी, फिर कही भीख मांगने की जरूरत नही रहेगी। यों वह उस साधु की आशातना करती है। मुनि ने देखा कंस की रानी जीवदशा यह कह रही है। दूसरी वार भी उसने यही कहा–मुनिने ध्यान नहीं दिया। जव उसने तीसरी वार कहा तो मुनि से रहा न गया। वे वोल उठे–सुन, तेरे पास जो यह वैठी हुई है उसका सातवा गर्भ जब तेरे पिता और पति को मारेगा तव तू मुझे गाना गाने के लिये वुलाना।

साधु का ज्ञान चाहे जैसा हो, पर वह मुह से कह नही सकता है। फिर भी मुनि से रहा नही गया। उन्होने कह ही दिया। ऐसा मुनि प्रायश्चित्त का अधिकारी होता है। जीवदशा तो यह सुन कर घबरा गई। मुनि का वचन कभी असत्य हो नही सकता। वह कंस के पास पहुची और सारी वात कह सुनाई। देवकी का ७ वा लडका मेरे पिता और तुम्हारी मौत का कारण बनेगा। अतः सातो प्रसूति अपने यहा ही होनी चाहिये। इसका वचन आप वसुदेवजी से ले लो। कंस वसुदेवजी के पास जाता है और उनकी खुशामद कर प्रसन्न करता है। वसुदेवजी कहते है– क्या मांगता है? जो इच्छा हो मांग ले? कंस कहता है– मेरी बहिन की सातो प्रसूति मेरे यहां ही होगी और आप भी मेरे यहां ही रहे। वसुदेवजी वचन वद्ध थे। उन्होने यह स्वीकार कर लिया।

दल फरे वादल करे, फरे उदधिना पुर
पण उत्तम वोल्या नवफरे, कदि पश्चिम उगे सूर:

रामायण में भी कहा है–

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाहि पर वचन न जाई।

कंस ने वसुदेव और देवकी को अपने महलों मे ही नजर कैद कर लिया।

रात में जब देवकी वसुदेवजी से मिली तो मुनि की बात उन्हें कह सुनाई। उसने पूछा—कंस को कहीं आपने कुछ वचन तो नहीं दे दिया है।

वसुदेवजी ने कहा – गजब हो गया, मैंने तो उसे तुम्हारी प्रसूति यहीं करने का वचन दे दिया है।

देवकी के ६ बालक कस ने मार डाले। यहां भी शास्त्रकार कहते है कि देवकी के छहों बालको को देवता सुलसा के यहा पहुचा देते है और वे सभी बालक चरम शरीरी जीव होते हैं—उसी भव में मोक्ष जाने वाले है। बदले मे उसके मृत पुत्र यहां ले आते हैं। कंस तो उन्हे देखता भी नही कि वे जीवित ह या मर गये है? उठाकर जमीन पर पछाड देता है।

सातवां गर्भ आता है। देवकी को ७ स्वप्न आते है। तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माता को १४ स्वप्न आते है। बलदेव की मा को ४ और माडलिक राजा की माता को १ स्वप्न आता है। देवकी समझ गई कि किसी महापुरुष का जन्म होने वाला है। गर्भ बढता है। वह छुपाया नही जा सकता। देवकी भयाकुल रहती है, गर्भ का क्या होगा? कैसे इसकी रक्षा होगी?

देवकी यशोदा से मिलती है और गर्भ परिवर्तन की बात पक्की करती है। यशोदा देवकी को वचन देती है कि तेरे लडके को मै जान देकर भी बचाऊगी। वसुदेवजी भी गोकुल में जाकर नंद का घर देख आते है। कस पहले से ही जगह जगह सिपाही तैनात कर देता है। उसके हृदय मे हर समय यही रौद्र ध्यान बना रहता है कि कब मैं उसे मारू और अपनी जान बचाऊ?

एक बार व्यासजी से लोगो ने पूछा—१८ पुराणों का सार क्या है? एक लाईन मे समझाइये।

व्यासजीने कहा—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।

अपनी आत्मा के समान ही दूसरो को भी समझो।

आधी रात मे देवकी को प्रसूति होती है। बच्चा पैदा होते ही रोने लगता है, पर यह रोता नही है। सिपाही भी सब नीद में सो जाते है। वसुदेव सिर पर पालना रख कर गोकुल की तरफ चल देते है। जेल के ताले एक एक कर खुलते जाते हैं। आगे चलते है तो जमुना पूरे जोग से वह रही है। उसे कैसे पार करे? लेकिन जैसे ही उस महापुरुष का स्पर्श होता है कि

जमुना भी रास्ता दे देती है। वसुदेव नंदके यहां पहुंचते है और वालक देकर वदले मे यशोदा की लडकी लेकर वापस मथुरा आ जाते है । जेल के दरवाजे पहले जैसे ही वंद हो जाते है । कैसा पुण्यशाली जीव था वह ?

सुवह हुआ, कंस आया तो, लडकी को देखकर कहता है– मुनि की वात तो असत्य निकली, यह तो लडकी पैदा हुई है । यह क्या मुझे मारेगी ? लेकिन जीवदशा के कहने से कंस उस लडकी की भी नाक काट देता है ।

गोकुल में श्रीकृष्ण वड़े होते हैं । ग्वालोके साथ खेलते है । रोहिणी का पुत्र वलभद्र उनके साथ रहता है और उनकी देखभाल करता है ।

इधर कस को चैन नही पडता । वह ज्योतिपियो से पूछता है– मेरी मौत किसके हाथ से होनेवाली है ?

जो कालीनाग को वश मे करेगा, तुम्हारी पुतना को मारेगा, तुम्हारी वहिन सत्यभामा का जो पति होगा उसी के हाथो तुम्हारी मौत होगी । वह अमुक दिशा में अभी वड़ा हो रहा है ।

कंस ने गौकुल मे अपने आदमी भेजे, पर वे पता न लगा सके । वह पुतना को भेजता ह, तो कृष्ण उसको वही मार देते है । श्रीकृष्णने काली नाग को भी नथ दिया, फिर भी कंस को उनका पता न चला । अव वह सत्यभामा के विवाह की तैयारी करता है । सोचता है यहां तो उसका पता चल ही जायगा । वलराम श्रीकृष्ण को स्वयवर मे चलने को तैयार करते है । यशोदा को बलराम कहते है– आखिर तुम दासी जैसी ही तो हो, हमको जाना जल्दी है और तुम धीरे २ काम कर रही हो । श्रीकृष्णने यह सुना तो कहा– मेरी मां को तुम दासी कहते हो ? बलराम कहता है, वह तुम्हारी मा नही है, तुम्हारी मां तो देवकी है, कंसने तुम्हारे ६ भाई मार डाले है । वसुदेव तुम्हारे पिता है । श्रीकृष्णको अपना भान होता है । उनका शौर्य जागृत हो जाता है । बलराम कहते है अभी जल्दी मत करो । समय आने वाला है । पहले सत्यभामा के स्वयंवर मे चलो । बलराम श्रीकृष्ण को लेकर वहा पहुंचते है । सत्यभामा श्रीकृष्ण के गले में वरमाला डाल देती है और श्रीकृष्ण वहा से रवाना हो जाते है। किसीको पता भी नही चलता कि सत्यभामा ने किस को वरमाला पहनाई है ?

कंस के सामने अब मौत मंडराने लगी । उसका पाप का घडा अव भर चुका था ।

एक भाई रोज आश्रम मे आता था । एक दिन वह उदास था । सचालक ने पूछा, आज उदास क्यो हो ? उसने कहा– मुझे ईश्वर पर विश्वास नही रहा है । न्याय-नीति पर चलते हुए भी मुझे खाने के लाले पड रहे है और अन्याय करनेवाले आज मौज कर रहे है ? यह कैसा न्याय है उसका ?

वह उसको नहाने के लिये नदी में ले जाता है। वह उसे नाक तक पानी मे गहरा ले जाता है तो वह चिल्लाने लगता है– बचाओ बचाओ मै डूब जाऊंगा। उसने उसे बाहर निकाला और पूछा – बोलो, कैसी मजा आई नहाने में? वह बोला-पानी पेट तक था तब तक तो ठीक था, पर नाक तक पानी आया कि मौत दिखाई देने लगती है।

संचालक ने कहा-तुम्हारे प्रश्न का उत्तर भी यही है। जहा तक पाप गले तक नही आ जाता तब तक मजा कर लो, उसकी सीमा पूरी हो जायगी कि वह भी मरे बिना नही रहेगा।

कंस तडफडाता है। श्रीकृष्ण बलराम के साथ मथुरा आते है। कस उनको मारने के लिये अपने पागल हाथी भेजता है, पर श्रीकृष्ण उन हाथियों के दात तोड कर भगा देते है। कंस अपने पहलवानो को भेजता है, श्रीकृष्ण उनको भी परास्त कर भगा देते ह। अब तो कस कृष्णको देखता है तो भाग् खडा होता है। जीवदशा पूछती है– जाते कहा हो?

कंस कहता है– मुनि की बात सच निकली, मेरा काल सामने आ गया है। कृष्ण महल मे जाते है। जीवदशा कहती है– खबरदार आगे बढे तो? कृष्णने कहा– मामी, रास्ता छोड दो, मामा से मिले बहुत दिन हो गये है, उनसे मिलने दो, तुम बीच में मत आओ, नहीं तो तुम्हारी भी खैर नही रहेगी। श्रीकृष्णने कस को देखकर कहा– मामा आओ, बहुत दिन हो गये आज तो भेट कर लो। यह कह कर उन्होंने कस को अपनी दोनो भुजाओं मे ऐसा दबा दिया कि उसकी हड्डी फसली एक हो गई। जीवदशा खड़ी खडी अपने पति की मौत देखती रही।

इसी तरह जरासंध को भी श्रीकृष्ण ने मार डाला था। वह भी प्रजा को बहुत हैरान किया करता था। उन्होने द्वारिका नगरी बसाई जिसकी रचना स्वयं देवताओ ने की थी। वे माता पिता के परम भक्त थे। इतने बडे महापुरुष होते हुए भो वे प्रतिदिन अपने माता पिता को नमस्कार किया करते थे।

वे एकबार भगवान नेमिनाथ को नमस्कार करने जा रहे थे। बीच रास्ते में उन्होने एक वृद्ध आदमी को इंटों का ढेर उठाते हुए देखा। आदमी बूढा था और इंटों का ढेर बहुत बडा था। यह बूढा कब तक इंटे उठाता रहेगा? यह सोचकर उन्हे दया आ गई और एक इंट उठा कर ऊपर रख दी। उनके पीछे पीछे उनकी विशाल सेना भी आ रही थी। उसने भी श्रीकृष्णका अनुसरण किया तो मिनटों में वे सब इंटे साफ हो गई। इस प्रकार वे दुखियों के प्रति महान् दयालु स्वभाव के थे। ऐसे ही वे

गुणग्राही भी थे। एकदिन इन्द्र ने उनकी प्रशसा स्वर्ग लोक मे भी की तो एक देवता उनकी परीक्षा लेने पृथ्वी पर आया। उसने सडी हुई कुतिया का रूप धारण किया। उसके सारे शरीर से दुर्गंध आ रही थी। श्रीकृष्ण उधर से निकले। उन्होने उसे देखा तो कहा—देखो, इस कुतिया के दांत कितने स्वच्छ है? कैसे वे गुणग्राही थे? हम तो आज दोष देखने के ही आदी हो गये है। जहा कही देखो आज आदमी मक्खी जैसा काम ही करते हैं। बुराई पर ही उनकी नजर जाती है। अच्छाई कोई नही देखता।

देवता ने जब श्रीकृष्ण की यह बात सुनी तो वह अपने असली रूप में उपस्थित हुआ और श्रीकृष्णको नमस्कार कर वापिस चला गया।

गायों के प्रति उनका कितना प्रेम था? आनंद श्रावक के पास ४० हजार गायें थी। कामदेव के पास ६० हजार गाये थी। आपके पास आज कितनी है? दूध दही की तो नादिया वहती थी। आज की तरह उस समय दूध वेचा नही जाता था।

दूध दही ना दरिया हता, भारतवर्ष मां घणा,
पण आ जमाना मां ज्यां जुओ त्यां वेजीटेबल थई गया।
भूलि धर्म पोताना पेटने खातर, मानवो कुडा थई गया।

अपनी माता का दूध तो तुम साल—दो साल तक ही पीते हो, पर जिस गो-माता का दूध सारी जिन्दगी पीते हो, उसको भी तुम कसाई के यहां भेज देते हो? यह कैसी बात है?

वम्बई पुण्यशाली नगरी मानी जाती है, पर पाप भी यहा कम नही होता है। पंचेन्द्रिय जोवो की हत्या यहा रोज कितनी होती है? सभलो! संभलो! श्रीकृष्ण की तरह आप भी धर्म दलाली करोगे तो आप भी अपनी आत्मा का कल्याण कर सकोगे।

मोक्ष का मार्ग तो एक ही है—

एक होय त्रण काल मां, परमारथ नो पंथ।
प्रेरे ते परमार्थ मां, ते व्यवहार संमत।

उसकी आराधना करो। आत्मा को समझो और उसे दीव्य वनाने का प्रयत्न करो।

श्रीकृष्ण ने १८००० साधुओ को नमस्कार किया। कैसा उत्कृष्ट भाव था उनका? जो आत्मा धर्म का स्वरूप समझ कर अपने जीवन मे उतारेगे वे ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे।

शुक्रवार ता. १६–८–६८

(५०)

तैतलीपुर नगर का राजा कनकरथ था, जिसके पास चतुरंगिणी सेना थी। छत्र और चंवर जिस पर मंडराते थे। अनजान आदमी भी यह देख कर राजा को जान सकता था। लेकिन आज तो ऐसी कोई पहचान नही रही है। ड्राईवर की जगह राजा और राजा की जगह ड्राईवर बैठ जाता है। कौन डाईवर और कौन राजा है? यह भी समझ सकना कठिन होता है। शास्त्र में राजा को चूलहिमवन्त की उपमा दी गई है। यह पर्वत सोने का है जो २४ हजार ९३२ योजन लम्बा है। सो योजन ऊचा है। यही पर्वत भरत क्षेत्र की रक्षा करता है। इसी तरह राजा भी प्रजा की रक्षा करता है। राजा को दूसरी उपमा सागर की दी गई है। वे समुद्र की तरह गंभीर होते हैं। नादियो मे वाढ आ जाती है, पर समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोडता है। समुद्र के गर्भ मे क्या होता है? –

रतन रुपाला दीये मोंघा मूल्य वाला रे,
अेरी ओलो दरीयो प्हेरे नहि मोतीडानी माला रे
उपकारी अेनो आतमा रेजी
अेरी ओला झाडवा पोताना फल नथी खाता रे
उपकारी अेनो आतमा रेजी. .

समुद्र मे मोती पडे है, जिसको चाहिये लेलो, वह उसकी कीमत नही मांगता है। उसमे डुवकी लगा कर कोई भी उसे निकाल सकता है। वदले मे वह कुछ मागता नही है। ऐसे ही तीर्थंकर देव और गुरुदेव भी हमको सदुपदेश देते है, वदले मे कुछ लेते नही है। उस वाणी को अपने जीवन मे उतारो यही हमारा निवेदन है।

क्या समुद्र कभी मोतियो की माला पहनता है? वृक्ष कभी अपने फल नही खाता। वह दूसरो को खिला कर ही सतुष्ट होता है। चाहे उस पर पत्थर फेको या लकडी से मारो, वृक्ष फल ही देता है। वृक्ष से भी कितना सीखने को मिलता है?–

कापे तोये कोप करे ना सामु बलतण दे छे रे मनवा,
झाड सिखामण दे छे।
जे जन ऊंचे पत्थरो फेंके तेने मीठा फल दे छे रे. .

वृक्षपर कोई पत्थर फेको या कुल्हाडी चलावो, वृक्ष उस पर क्रोध नहीं करता है, वल्कि जलाने को लकडी ही देता है। पहले के राजा भी वडे दयालु हुआ करते थे।

भावनगर के राजा तखतसिंहजी की सवारी निकल रही थी। गाव के सभी लोग उन्हे देखने के लिये सडक पर इकठ्ठे होने लगे। एक गरीव औरत का लडका भी अपनी मां से सवारी देखने के लिये कहता है। मां कहती है– सामने पेड पर से

कोटवडी (फलविशेष) तोडकर ले आ, मैं उसकी चटनी बना दूगी, तू उससे रोटी खाकर सवारी देखने चले जाना । लडका फल गिराने के लिये पत्थर फेकता है । वह पत्थर राजा को जाकर लगता है । सिर से खून की धारा निकल पडती है । चारों तरफ सिपाही जाच के लिये निकल पडते हैं, पत्थर किसने फेका है ! सिपाही उस लडके को पकड लेते हैं । वह घबरा जाता है । मां का एका एक लडका होने से मा भी साथ साथ रोती हुई आती है । सिपाहियो ने लडके को राजा के सामने लाकर खडा कर दिया । राजा ने पूछा – क्या तेने पत्थर फेंका था ?

लडका बोला– हा, पत्थर मैंने फेका था, पर आपको मारने के लिये नही, कोटवडी तोडने के लिये फेका था । मेरे घर मे कुछ नही है– शाक भाजी लाने को भी पैसे नही हैं । माने कहा कोटवडी फल ले आ, मैं चटणी बना दूगी, तू उससे रोटी खा लेना । उसी के लिये मैंने पत्थर फेका था ।

राजाने अपने प्रधान को बुलाया और कहा – प्रधानजी, पेड भी पत्थर मारने से फल देते हैं तो राजा को क्या देना चाहिये ? यह लडका जितना वजन उठा सके उतना इसे रुपया दे दो । कहिये, पहले के राजा भी कैसे होते थे ?

आज तो कोई तुम्हे एक गाली भी दे दे तो झगडा करने लग जाते हो, पत्थर से मार खा लेना तो दूर की बात है । बाईबल मे इशु ने कहा है– अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे तो तुम उसके सामने अपना दूसरा गाल कर देना । क्रोध को मार कर सहनशील बनने का कितना बड़ा सन्देश है ?

काढ क्रोध तुं समने सजीले
मान मणीधर मानो
वंचकता वंचीश नहि जराये
झूठ माया मां जामो . . रे
भज भाई सुनंदा स्वामी –

महापुरुष का क्रोध भी क्षणिक ही होता है । कोई माफी मांगले तो वे उसे भूल जाते हैं । क्षमाकर देते हैं ।

एक बार बलीचंची राजधानी का राजा इन्द्र मर गया तो राजधानी इन्द्र विहीन हो गई । दूसरा राजा किसको बनावे, इसके लिये देवताओ ने खोज शुरु की । ढूढते २ वे तामलीपूर नगर मे आये । वहा उन्होंने तामली तापस को देखा, जो छठ का तप करते हुए भी सूर्य ताप ले रहा था । पारणे के दिन वह तामली स्वयं नगर में जाता और थोडा पका हुआ चावल ले आता था जिसे २१ बार धोकर खा लेता था और फिर छठ्ठ का तप कर लेता था । ऐसा करते करते उसे ६० हजार वर्ष हो गये थे ।

भौतिक सुख की इच्छा से किया गया तप वाल तप कहा जाता है। तामली तापस का तप ऐसा ही था। शरीर से विल्कुल कृश हो गया था। उठते-बैठते और बोलते समय भी उसे कष्ट होता था। तव उसने पादोपगमन सथारा कर लिया। वृक्ष की तरह निश्चेष्ट हो जाना पादोपगमन संथारा कहा जाता है। टट्टी पेशाव की छूट वाकी वह कुछ नही कर सकता है। कितना दुष्कर तप वह कर रहा था? आप एक कायोत्सर्ग मे भी स्थिर खडे नही रह सकते, पर तामली तापस ६० दिन के संथारे मे पड़ा हुआ है। इतने मे वलीचची राजवानी के देव आते हैं और उससे कहते हैं— हे तपस्वी राज! आप महान् योगी है। आप हमारी राजधानी के इन्द्र वनने योग्य हो। आप यह निदान कर ले कि अगर मेरी तपस्या का कुछ फल हो तो मुझे बलिचची राजधानी का इन्द्रपद प्राप्त हो। आप वहां पधारोगे तो हम आपका स्वागत-सत्कार करेंगे। वे लोग अपने यहां की ऋद्धि सिद्धि का नाटक भी तामली तापस को बताते है। लेकिन तामली इतनी वात तो समझता था कि तप करना तो निष्काम भाव से ही करना चाहिये— किसी लोभ वश तप नही करना चाहिये अत. उसने निदान नही किया। वह निष्पृह ही वना रहा। देवता भी उसे लोभ दिखा कर विचलित न कर सके। आज आप कैसा तप कर रहे हो? लोभ वश तो कही तप नही कर रहे हो? अट्ठाई करोगे तो अमुक वरतन मिल जायगा। ऐसी भावना से तो तप नही कर रहे हो? याद रखो मरते समय कोई साथ आने वाला नही है।

सोना चरुडा अती घणा बीजानु नहि लेखुं
खोखरी हांडी रे अेना करम मां, अे तो आगल देखूं
एक रे दिवस अेवो आवशे।

कितना सामान पडा है? क्या साथ मे आनेवाला है? शरीर भी यहा रख कर जाना होगा? व्रत नियम और तप ही साथ आने वाले है। इनका सट्टा मत करो। तामली तापस ने भी निदान नही किया। वह मर कर ईशान देव लोक का इन्द्र वनता है।२८ लाख विमान का वह स्वामी वनता है। अगर वह निदान कर लेता तो असुर कुमार देवो का इन्द्र वनता। परन्तु निदान नही किया तो वह वैमानिक देवो का राजा इन्द्र वना। वलीचची राजधानी के देवो ने देखा कि जिसे हम अपना राजा वना रहे थे वह तो ईशानेन्द्र वन गया है तो वे उससे वैर लेने पृथ्वी पर आते है और तामली के वाये पैर को रस्सी से वाध कर इधर-उधर घसीटते हुए कहते है कितना वडा तपस्वी था? फिर भी मर कर ईशान देव लोक का इन्द्र वना, हमारी वात नहीं मानी तभी हम यह दुर्गति कर रहे है।

उधर ईशान देव लोक मे उनका महोत्सव मनाया जा रहा है। देवता तरह तरह

की सामग्री जुटा रहे हैं। एक देव ने तामली के शरीर को इस तरह घसीटाते देखा तो उसने वहां जाकर अपने राजा से कहा—हे इन्द्र महाराज ! आपके पहले के शरीर का तो वलिचंची राजधानी के देव अपमान कर रहे हैं। वे उसे रस्सी से बांधकर इधर-उधर घसीट रहे हैं। इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान। (विभंग ज्ञान) से देखा तो यह सच प्रतीत हुआ। उसे भी वदला लेने की भावना जागृत हुई। दृष्टि मिथ्या थी अतः क्रोध पैदा हुआ। सम्यग्दृष्टि होती तो वह यह समझ जाता कि शरीर तो जड़ है, उससे मेरा वुरा होने वाला नही है। लेकिन वह तो मिथ्या दृष्टि था। उसने तो वहा वैठे वैठे ही आख से तेजोलेश्या छोडी। ईशान देव लोक के नीचे ही वलिचंची राजधानी थी। असंख्याता योजन नीचे भी उसका ऐसा असर हुआ कि वलिचंची राजधानी जलने लगी, सभी चिल्लाने लगे— वचाओ— वचाओ, यह किसने हमारे पर क्रोध किया है ? सभी देवता अपने विभंगज्ञान से देखते हैं तो उन्हे ज्ञात होता है कि यह ईशानेन्द्र का हमारे पर कोप है। हमने उनके शव की आशातना की है उसी का यह फल है। हमको ऐसा नही करना चाहिये था। उन्होने हाथ जोडकर ईशानेन्द्र से कहा क्षमा करो— क्षमा करो, हम अपराधी हैं, हमको क्षमा करो। यह सुन कर ईशानेन्द्र का क्रोध शांत हो जाता है। आख ठंडी हो जाती है। उपसर्ग शांत हो जाता है। तेजोलेश्या जिस पर छोडी जाती है उसी को कष्ट पहुंचाती है, वीच मे वह किसी को नहीं छूती। इस तरह महान व्यक्ति का क्रोध भी शीघ्र शात हो जाता है। क्षमा मागने से वह मिट जाता है। लेकिन अज्ञानी का क्रोध इस भव मे ही नही पर भव मे भी नहीं छूटता है।

ईशानेन्द्र ने अपने ज्ञान से जाना कि मैंने अपने पहले भव मे ६० हजार वर्ष तक छठ्ठ का तप किया था, कहा वह मेरा तापस कर्म और कहा जैनधर्म की तपस्या ? दोनों मे कौन सी क्रिया ठीक है ? वह यह तुलना करता है और कहता है— तीर्थंकरों का मार्ग ही सच्चा है, वही आराधना करने योग्य है। अनादि काल से जीव मिथ्यात्व का पोषण करता रहा है। १८ वा पाप मिथ्यदर्शन शल्य सबसे वडा पाप है। शेष १७ पाप तो इसी का पोषण करते रहते हैं। १८ वां पाप नष्ट हो जाता है तो शेष १७ पाप भी अपने आप नष्ट हो जाते हैं।

राग द्वेष अविरति नी परिणति
चरण मोहना योद्धा
वीतराग परिणती परिणमता
उठी नाठा अबोधा हो मल्लिजिन

जैसे ही आत्मा से मिथ्यात्व गया कि समकित प्रकट हो जाता है। जैसे २० वर्ष की लडकी अपने घर का सब काम करती है, परन्तु विवाह हो जाने पर

वही लडकी अपने पिता के घर को अपना घर नही समझती, श्वसुर पक्ष को ही वह अपना घर मानने लगती है। इसी तरह समकित आ जाने पर भी आत्मा यह समझने लग जाता है कि यह घर मेरा नही है। मेरा घर तो सिद्ध शिला है। सम्यग् दर्शन होने पर ही ऐसा ज्ञान होता है। शास्त्रीय भाषा मे यही ग्रथि भेद कहा जाता है। मिथ्यात्व रूपी गाठ के-समकित मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय यों तीन हिस्से हो जाते हैं। समकित होने पर जीव ७० करोडाकरोडी सागरोपम से अन्तोकरोडाक्रोडी मे आ जाता है। सम्यग्दर्शन की शास्त्रो मे अपूर्व महिमा गाई गई है। अतः स्वसवेदन और स्वानुभवदशा प्रकट करो, सच्चा ज्ञान अपने आप पैदा हो जायगा।

विवाह होने पर जैसे लडकी अपने घर की चिन्ता करती रहती है वैसे ही समकिती जीव भी अपने घर की चिन्ता करता रहता है।

क्या आप-भी वैसी चिन्ता करते रहते हो? स्व को समझोगे और पर की चिता छोडोगे तभी आत्मा का कल्याण हो सकेगा।

क्यांथी शानेतुं आवीयो
अेनो करजे ख्याल रे हो जीवडा
साथे शुं लईने आवीयो
शुं लईने जानार — रे हो जीवडा
दीव्य स्वरूप थी जुदो पडीने
दीव्य ज्योति साथे लई ने
आव्यो फरवा काज. .रे हो जीवडा

मैं कौन हू? मन वाणी और देह से भिन्न मै जुदा आत्मा हूं। १० प्राण भी मैं नही हू। मैं तो चैतन्य, अनन्त ज्ञान दर्शन और चारित्र का भडार हूं।

उसको पूछो तो सही, वह कहा से आया है? क्या साथ मे लाया है? आये थे तो एका एक अकेले ही आये थे और जाओगे तब भी अकेले ही जाना पडेगा। फिर क्यो घेरा डाले पडे हो? क्यो इच्छाओ के दास बने हुए हो?

एक बालक अपने दादा से पूछता है— बाप्पा! क्या चाहिये? मरते समय भी आदमी से पूछा जाता है तुम्हारी क्या इच्छा है? बकरे को खूब खिला-पिला कर मोटा बनाया जाता है। उसको सब कुछ खाने की छूट होती है क्योंकि उसे तो मरना है, वह बचने वाला नही है। बलि का बकरा जो ठहरा! डाक्टर भी जो बीमार मरने-वाला होता है उसे सब कुछ खाने-पीने की छूट दे देते हैं। जो बीमार बच सकता है उसके लिये ही परहेज बताया जाता है— मरने वाले के लिये कोई परहेज नही है। हमें भी आशा है कि आप अभी संसार मे रहने वाले हो इसीलिये हम त्याग वैराग्य

के नियम बता रहे हैं। जिसका आयुष्य बाकी रहता है उसी को त्याग कराया जाता है। जिसको ऊपर जाना है उसे तो त्याग करना ही पडेगा।

लडका पूछता है-बाप्पा क्या चाहिये ? बापा कहता है एक करोड की ध्वजा चढानी है। बंधुओ ! क्या यह धन साथ में आनेवाला है ? साथ तो धर्म ही आवेगा। लडका कहता है बाप्पा आप परलोक जाने की बात कहते थे तो साथ में यह सूई भी लेते जाना, कभी पैर में कांटा लग जाय तो निकाल सकोगे।

दादा-बेटा, यह तो यही रह जायगी।

लडका- तो मैं तुम्हारे पैर मे चुभा दू, साथ मे चली जायगी।

दादा- यह शरीर तो जला दिया जायगा। इसकी तो राख हो जायगी, सूई कैसे साथ मे ले जा सकूगा ?

लडका- तो फिर वह करोड की ध्वजा कैसे साथ में ले जा सकोगे ?

बालक ने बूढे की भी आखे खोल दी। फिर तो उसने अपने यहां दानशाला खोल दी, जो भी आता खुशी २ वह सबको दान देने लगा। यो वह पर भव का भाता बांधने लगा।

तुमको भी मर कर परलोक में जाना है तो भाता बाध रहे हो न ? तुम कहां से आये हो और कहा जा रहे हो ? इसका भी कभी विचार किया है ?

विषम वाटे जवुं अेकलुं त्यां नथी कंदोई ना हाट।
वोलावो लेजो रुडा धर्म नो ते आवे पोतानी साथ।
बे गाऊ जावुं होय तो भातुं ल्यो छो साथ।
जावुं दूर देशावरे केम न समजो भ्रात।
फरतां फरतां माया मलता अेनी साथे वाते वलतां
प्रीतडी बांधी आज... रे हो जीवडा

चौरासी मे फिरते २ मानव भव मिल गया, माया मिली, माता-पिता, स्त्री पुत्र आदि की ममता भी मिली, उसी में फस गया। सामायिक का समय भी नही निकाल पाता ? कैसी विचित्र दशा हो गई है ?

नदी मे बाढ आ रही है, सामने ९ नाले आये, नदीका पानी उसमे बंट जाता है और उसका वेग आगे जाकर कम हो जाता है। इसी तरह आपकी माया भी स्त्री, पुत्र माता पिता आदि में बंट जाती है, अगर वह एक आत्मा मे ही लगी रहे तो कितना प्रचड वेग पैदा कर सकती है ? माया बंट जाती है तभी तो आत्मा भी अस्थिर बन जाती है। तभी आप यह कहते है कि सामायिक मे चित्त स्थिर नही रहता। स्थिर वह कैसे रह सकता है जब कि वह चारो तरफ बंटा हुआ है।

माया का विचार इतना गहरा हो गया है कि वह आत्मा को चैन नहीं लेने देता है। खाना खाते समय भी लडका याद आता है, सुपात्र दान का तो विचार भी नहीं आता । यह कैसी माया है ? जहा देखो वहा माया का ही राज्य दिखाई देता है ।

आ घर जावुं ते घर जावुं घर फरवाना जाजा
वलगणी जाजी वलगणा जाजा
वलग्यान वलगाडया रे संसारे संगपण जाजा ।

संसार की माया ने माया ही बढाई है । संवध वढते जा रहे हैं-मित्राचारी कितनी वढ रही है ? किसी वरात मे जाओ तो संवंधियों से ज्यादा तो मित्र हो जाते हैं । इस तरह दुनिया मे माया का ही राज्य दिखाई देता है ।

जहा प्रेम करना चाहिये, भगवान से प्रीति करनी चाहिये वह नही की तो उद्धार कैसे हो सकेगा ? धर्म ध्यान मे प्रवृत्ति करो । व्रत, नियम, तप, त्याग, विनय वैयावच्च आदि तप करो, वाल चेष्टा से दूर रहो । जिसका आत्मा धीर वीर और गंभीर होता है वही ऊची दशा प्राप्त कर सकता है ।

ईशानेन्द्र भगवान के पास जाता है और पूछता है– भगवन ! मैं भवि हूं या अभवि ! आराक हूं या विराधक ? चरम शरीरी हूं या अचरमशरीरी ? यो वह १२ प्रश्न पूछता है ।

भगवान उत्तर देते हैं– तू भवि है, आराधक है, चरम शरीरी है । इस भव के वाद तेरा मोक्ष निश्चित है । यह सुनकर तो वह हर्ष से विभोर हो गया । इस तरह जो जीव मिथ्यात्व को छोड कर सम्यक्त्व मे आवेगे, स्थिर वनेगे वे ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे ।

हलुकर्मी आत्मा को ही धर्म रुचिकर होता है । माया छोडेगे तो निर्मोही वनोगे और सच्चिदानद के स्वरूप को प्राप्त कर सकोगे ।

ता. १७–८–६८

[९०]

आगम वाणी की महिमा अपूर्व है। यहां ज्ञाता सूत्र का १४ वा अध्ययन चल रहा है। सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कह रहे है–उस समय और उस काल मे तैतलीपुर नगर था, जहा कनकरथ राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम पद्मावती था। जो रूप और लावण्य की खान थी। शीलवान और पति की आज्ञाकारिणी थी।

स्त्री की शोभा ब्रह्मचर्य ही है। अपने पति के सिवाय अन्य सभी को भाई

की तरह समझना शीलवान औरतों का धर्म कहा गया है। पद्मावती रानी ऐसी ही थी। पति के सुख में सुखी और दुख में दुख महसूस करने वाली वह थी।

ज्ञानी कहते है पतिव्रता नारी मिलना भी महान–पुण्य का काम है। रथ के दोनों पहिये समान न हो तो उसमें बैठने से खतरा रहता है। इसी तरह स्त्री और पुरुष दोनो मे सुमेल होना जरुरी है। तभी घर में शाति और सुख का अनुभव किया जा सकता है। पत्नी धर्म करती हो–उपाश्रय में जाती हो, और पति मदिरापान कर पर–स्त्री का सेवन करता हो तो क्या उस घर में शाति रह सकती है? पति–पत्नी का सुमेल होना भी पुण्य का काम है।

जिस घर मे यह सुमेल नही होता वहा क्लेश वना ही रहता है। पति वाहर से घर मे आता है, स्त्री उसके सुख–दुख को समझती नही और झगडा करने लग जाती है तो वहा कपाय भाव आये विना नहीं रह सकता। परस्पर विपरीत आचरण से ही कपाय समुद्घात होता है और तदनुरूप जीव अपना आयुष्य भी वाघ लेते है। कपाय की तीव्रता और मंदता ही हलके–भारी कर्म वंधनो का कारण होती है।

दूसरे देशो में घर के सभी व्यक्ति काम करते है, श्रम करके उपार्जन करते है। पर हमारा देश ही ऐसा है जहां एक कमाता है और १० आदमी पेट भरते है। आलस्य इतना अधिक वढ गया है कि घर मे रसोइया और घाटी (नौकर) न हो तो काम भी नही चल सकता है।

पहले के आदमी महीने में ६ पौपध किया करते थे। समय पर व्याख्यान सुना करते थे और फिर अपने २ काम पर लगते थे। परन्तु आज तो उठते ही मुंह में दातुन और हाथ में वर्तमान पत्र चाहिये? फिर नहा धोकर चाय–नाश्ता चाहिये। इसके वाद व्याख्यान मे आने का खयाल होता है। इस तरह आज पर की चिता अधिक होती जा रही है और स्व का कोई खयाल भी नहीं कर रहा है। सारे दिन भर का आप हिसाब लगावेगे तो यह मालूम हो जायगा कि आप सारे दिन पर की चिता में ही पड़े रहते है–स्व का विचार तक नही करते है। मोह और माया के जंजाल मे ही पडे रहते है। कुटुम्ब की चिन्ता करना अर्थ दंड है जव कि सारी दुनिया की चिन्ता करना अनर्थ दड है। इस तरह ठाणांग में दो दंड वताये गये है–अर्थ दंड और अनर्थ दंड। पर की चिन्ता से विमुक्त होने पर ही आत्मा सामायिक में स्थिर वन सकता है। लेकिन आज तो आत्मा अनादि काल से अपनी स्व सम्पत्ति लुटाते चला आ रहा है। वाढ आती है तो सव कुछ वह जाता है, पर आत्मा का कितना नुकशान होता है यह कोई नहीं देखता।

कर्म आत्मा के दुश्मन है, उनका आज तुम आदर कर रहे हो या तिरस्कार

कर रहे हो? घर में एक नौकर रखना हो तो क्या देखकर रखते हो? वह सदाचारी है या नही, चोरी की आदत तो नही है। यह सब देख कर ही रखते हो न? तब फिर आत्मा मे उसके शत्रुओ का प्रवेश क्यों होने दे रहे हो? आमत्रण दे देकर कर्म रूपी शत्रुओ को क्यो बुला रहे हो? ये विषय और विकारी भाव तो आत्मा को डुवाने वाले ही है।

अमुक की लडकी बडी हो गई है, उसकी फिकर तुम्हे क्यों हो रही है? यह अनर्थ दंड ही है। श्रावक तो संसार वृद्धि के कार्यो मे मौन ही रहता है।

वश कर जीभडी ताहरी, तु कां अनर्थादंडे
काज न सीझे आपणुं तो तुं शीदने मंड।

जीभ को वश मे करो। कई पाप अपने आप दव जायगें। लेकिन यह वश मे हो तव न! इतने रुपये कमा लिये, अभी तक एक मोटर नही ली? मोटर ले लो न? अमुक वगला खरीद लो, स्थायी आवक हो जायगी। विना मागे ही ऐसी सलाह देकर पाप के भागीदार क्यो वन रहे हो? यह सब अनर्थदड ही है। कर्म ही यह सब खेल रचाता है। आत्मा को वहिरात्मा ही बनाये रखता है। ममता हटती है तभी समता आती है। दोनो एक दूसरे के साथ रह नही सकती। अतः ममत्व को छोडो। जो कुछ मिल रहा है उसका भी परिमाण करो। परिग्रह भी पाप है अत. उसकी ममता मत करो। मूर्च्छा भाव कम होने पर ही आत्मा मे धर्म आता है अत. परिग्रहका परिमाण करो। पैसो के पीछे पागल मत वनो। यह मेरा, यह मेरा करते २ तो एक दिन सव कुछ छोडकर चल देना होगा। जो पर है वह स्व हो नही सकता। उनसे विरक्त वनो। विना पूछे भी लोग वगला वनाने की या कारखाना चलाने की तो सलाह दे देते है, पर सुकृत करने की सलाह कौन देता है? सदगुरु के सिवाय यह मार्ग दूसरा कौन वता सकता है। वे ही यह वता सकते है कि यह मार्ग तुम्हारा नही है, तुम पीछे लौट चलो, वहिरात्म दशा से उल्टे चलो, अन्तरात्मदशा मे आ जाओगे। पर से लौटकर स्व मे आना ही अन्तरात्म दशा है।

लक्ष्मी अने अधिकार वधता शुं वध्युं ते तो कहो,
शुं कुटुंव के परिवार थी वधवापणुं अे नय ग्रहो।
वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो।
अेनो विचार नहि अहो हो अेक पल तमने हवो.

आप लक्ष्मीपति हुए हो या लक्ष्मी दास? कुछ भी वनो, पर इनसे क्या होता है? संसार ही वढता है? घटता नही है। काम तो वह करो जिसने आत्मा का हित हो, उसका पतन न हो? अतः धर्म की आरावना क्यों नही करते हो?

सच्चा सुख स्वाधीनता में है पराधीनता मे नही। एक राजाने दूसरे राजा को अपने यहा कैद कर लिया। कैद में भी राजा को सब तरह की सुविधा मिलती है। किसी बात की उसे तकलीफ नहीं है, फिर भी वह उसे अच्छा नही समझता। क्योंकि बंधन तो आखिर बंधन ही है न? पराधीनता हो वहां सुख कैसे हो सकता है?

वह इस कैद से छूटने का इन्तजार करता है। क्या आप भी संसार की कैद से छूटने का इन्तजार कर रहे है? कही अधिकाधिक उसमे फसते तो नही जा रहे हैं?

केदियो केद थी छूटे बलदनुं धोसरुं छूटे
साचुं भान थता बंधन, नथी ममता नथी गमता।
आत्मानुं भान थाता भोगो नथी गमता नथी.....

कैदी कैद से छूटता है तो प्रसन्न हो जाता है। बैल भी छूटता है तो चैन की सास लेता है। इसी तरह आपको भी आपके लडके छुट्टी दे दे तो क्या आप चैन से रह सकते हो?

लडके अगर यह कहे कि अब आप दुकान पर मत आओ, उपाश्रय में ही धर्मध्यान करो, हम अपना काम चला लेंगे तो आपको कैसा लगेगा? बैल बूढा हो जाय तो पांजरापोल में ही भेजा जाता है न? आपको विरक्ति अच्छी नही लगती। उसको बुलाया, मुझे तो पूछा भी नही? इस तरह क्यो बेकार माथा मार रहे हो? सार उसमें कुछ नही है—सार तो यह है—

सारं दंसणं नाणं सारं तव नियम संजमंशीलं।
सारं जिणवरं धम्मं सारं संलेहणापंडिय मरणं।

सारभूत तो सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। तप-नियम मे रहना सारभूत है। शील पालना सारभूत है। जिनेश्वर का धर्म सारभूत है। अन्तिम समय मे संथारा कर पडित मरण प्राप्त करना सारभूत है। इस एक गाथा मे ही सार भूत तत्वो का समावेश कर दिया गया है। सारा ससार मिथ्या है, कहीं सार नही है।

असार छे संसार रे क्यांय शोध्यो जडे नहि साररे. आ असार
विभाव भावना गोरस रेड्या, राग द्वेषना नेतरा जोड्या।
ज्यां घमंड नो घमकार रे त्यां नवनीतनुं नहि नाम रे
क्यांय शोध्यो जडे नहि साररे.......

ज्ञानी कहते है ससार सार रहित है। क्या आपको भी ऐसा प्रतीत होता

है ? संसार का परिणाम क्या है ? राग–द्वेष की परिणति ही पैदा होती है। इसने यह किया और उसने ऐसा किया। इतना दिया और इतना देना बाकी है। यही भावना संसार मे रहती है।

एक आदमी सेठ के यहां रोज छाछ बनाता है। उसे जाडी छाछ मिलती है और दूसरो को पतली। एकदिन उसे विचार आया आज मै भी अपने यहां छाछ बनाऊगा और लोगो को बांटूगा। वह कुम्हार के यहां जाकर बर्तन लाता है और लोगो को छाछ ले जाने का आमत्रण देता है। बर्तन में पानी डालकर वह छाछ बनाने लगता है। गम–गम की आवाज आती है। वह अहकार की आवाज होती है। जहा घमंड होता है वहा नवनीत कहा से पैदा किया जा सकता है ?

वासनाओना विष थी भरेलो कषायना कलंके चढेलो,
ज्यां रंग राग मढ़ेल रे, ज्यां रंग मजीठीयो चढेल रे
क्यांय शोध्यो जडे नही सार रे। आ असार छे....

पानी को वह मथता है, पर माखन कहा से निकले ? पानी से भी कभी माखन निकला है ? इसी तरह ससार को मथते रहो, राग और द्वेष के नेत्र खोल कर घूमते रहो, घमड करते रहो, उससे सार क्या निकलने वाला है ? इससे ससार कम नही होता, वढता ही है। वह छाछ वनाने वाला अज्ञानी आदमी आशा ही आशा मे पानी को मथता रहता है, दूसरा आदमी छाछ लेने आया तो वह भी उसके साथ हो लिया मथने मे। इतने मे तो राई की टक्कर लगी और वर्तन ही फूट गया ? वह रोते हुए कहता है मेरी तो छाछ भी गई और नवनीत भी चला गया। गया क्या ? कुछ था ही नही तो जायेगा क्या ? इसी तरह लडका, लडकी, स्त्री, रुपया–पैसा आदि चला जाय तो अज्ञानी लोग रोने लगते है। लेकिन ज्ञानी कहते है तुम्हारा था ही क्या ! जो तुम रो रहे हो ? सव पर था चला गया तो क्या हुआ ? वह सोचता है सेठ के यहा तो मक्खन निकलता था, मेरे यहा क्यो नही निकला ? उसे यह पता नही कि सेठ के यहा तो दही था, तेरे यहा वह कहा है ? जहा धर्म है वही तत्व प्रकट होता है। जहा धर्म नही है वहा सारी मेहनत वेकार जाती है। ससार ऐसा ही है। वहा वासना का विष व्याप्त है। मोक्ष का मार्ग तो संकडा है जिसके दोनो तरफ वासना और लालसा की मोटी खाई है। कदम २ पर गिरने का डर है। फिर भी जो मोक्षार्थी है वह तो सामने नजर रख कर आगे कदम वढाते हुए वहां तक पहुच ही जाता है। कहिये आप भी मोक्षार्थी है या धनार्थी ? पैसा चाहिये, वस और कुछ नही। लेकिन याद रखिये, धन तो चक्रवर्ती भी छोडकर चले गये तो तुम अपने साथ क्या ले जा सकोगे ? मनुष्य भव मिला है, उसे हार गये तो पता नही कहा

मच्चा मुख म्वाधीनता में है पराधीनता में नही। एक रा को अपने यहां कैद कर लिया। कैद में भी राजा को सब त मिलती है। किसी बात की उसे तकलीफ नहीं है, फिर भी वह नहीं समझता। क्योकि बंधन तो आखिर बंधन ही है न? पराधी सुख कैसे हो सकता है?

वह इस कैद से छूटने का इन्तजार करता है। क्या आप की कैद से छूटने का इन्तजार कर रहे है? कहीं अधिकाधिक उसमे नही जा रहे है?

केदियो केद थी छूटे बलदनुं धोसरुं छूटे
साचुं भान थता बंधन, नथी ममता नथी गमता।
आत्मानुं भान थाता भोगो नथी गमता नथी.....

कैदी कैद से छूटता है तो प्रसन्न हो जाता है। बैल भी छूटता है त की सास लेता है। इसी तरह आपको भी आपके लडके छुट्टी दे दे तो क्या चैन से रह सकते हो?

लडके अगर यह कहे कि अब आप दुकान पर मत आओ, उपाश्रय मे धर्मध्यान करो, हम अपना काम चला लेगे तो आपको कैसा लगेगा? ब बूढा हो जाय तो पांजरापोल मे ही भेजा जाता है न? आपको विरक्ति अच्छ नही लगती। उसको बुलाया, मुझे तो पूछा भी नही? इस तरह क्यों बेकार माथ मार रहे हो? सार उसमें कुछ नही है—सार तो यह है—

सारं दंसणं नाणं सारं तव नियम संजमंशीलं।
सारं जिणवरं धम्मं सारं संलेहणापंडिय मरणं।

सारभूत तो सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। तप-नियम मे रहना सारभूत है। शील पालना सारभूत है। जिनेश्वर का धर्म सारभूत है। अन्तिम समय मे संथारा कर पडित मरण प्राप्त करना सारभूत है। इस एक गाथा मे ही सार भूत तत्वो का समावेश कर दिया गया है। सारा संसार मिथ्या है, कहीं सार नही है।

असार छे संसार रे क्यांय शोध्यो जडे नहि साररे. आ असार
विभाव भावना गोरस रेड्या, राग द्वेषना नेतरा जोड्या
ज्यां घमंड नो घमकार रे त्यां नवनीतनुं नहि नाम रे
क्यांय शोध्यो जडे नहि साररे.......

ज्ञानी कहते है ससार सार रहित है। क्या आपको भी ऐसा प्रतीत होता

है? संसार का परिणाम क्या है? राग–द्वेप की परिणति ही पैदा होती है। इसने यह किया और उसने ऐसा किया। इतना दिया और इतना देना बाकी है। यही भावना ससार मे रहती है।

एक आदमी सेठ के यहा रोज छाछ बनाता है। उसे जाडी छाछ मिलती है और दूसरो को पतली। एकदिन उसे विचार आया आज मै भी अपने यहां छाछ बनाऊंगा और लोगो को बांटूगा। वह कुम्हार के यहा जाकर बर्तन लाता है और लोगो को छाछ ले जाने का आमंत्रण देता है। बर्तन में पानी डालकर वह छाछ बनाने लगता है। गम–गम की आवाज आती है। वह अहंकार की आवाज होती है। जहा घमंड होता है वहा नवनीत कहा से पैदा किया जा सकता है?

वासनाओना विष थी भरेलो कषायना कलंके चढेलो,
ज्यां रंग राग मढ़ेल रे, ज्यां रंग मजीठीयो चढेल रे
क्यांय शोध्यो जडे नही सार रे। आ असार छे....

पानी को वह मथता है, पर माखन कहा से निकले? पानी से भी कभी माखन निकला है? इसी तरह ससार को मथते रहो, राग और द्वेष के नेत्र खोल कर घूमते रहो, घमड करते रहो, उससे सार क्या निकलने वाला है? इससे ससार कम नही होता, वढता ही है। वह छाछ बनाने वाला अज्ञानी आदमी आशा ही आशा मे पानी को मथता रहता है, दूसरा आदमी छाछ लेने आया तो वह भी उसके साथ हो लिया मथने मे। इतने मे तो राई की टक्कर लगी और वर्तन ही फूट गया? वह रोते हुए कहता है मेरी तो छाछ भी गई और नवनीत भी चला गया। गया क्या? कुछ था ही नही तो जायेगा क्या? इसी तरह लडका, लडकी, स्त्री, रुपया–पैसा आदि चला जाय तो अज्ञानी लोग रोने लगते है। लेकिन ज्ञानी कहते है तुम्हारा था ही क्या! जो तुम रो रहे हो? सब पर था चला गया तो क्या हुआ? वह सोचता है सेठ के यहा तो मक्खन निकलता था, मेरे यहा क्यो नही निकला? उसे यह पता नही कि सेठ के यहा तो दही था, तेरे यहा वह कहा है? जहा धर्म है वही तत्व प्रकट होता है। जहा धर्म नही है वहा सारी मेहनत बेकार जाती है। ससार ऐसा ही है। वहा वासना का विष व्याप्त है। मोक्ष का मार्ग तो सकडा है जिसके दोनो तरफ वासना और लालसा की मोटी खाई है। कदम २ पर गिरने का डर है। फिर भी जो मोक्षार्थी है वह तो सामने नजर रख कर आगे कदम वढाते हुए वहा तक पहुच ही जाता है। कहिये आप भी मोक्षार्थी है या धनार्थी? पैसा चाहिये, वस और कुछ नही। लेकिन याद रखिये, धन तो चक्रवर्ती भी छोडकर चले गये तो तुम अपने साथ क्या ले जा सकोगे? मनुष्य भव मिला है, उसे हार गये तो पता नही कहा

चले जाओगे। अतः कषायों को छोडो, धर्म का आराधन करो तभी आत्मा का कल्याण हो सकेगा।

एक छोटा बालक छोडकर पति मर गया। माने कष्ट उठाकर भी बालक को पढाया लिखाया और सब तरह से योग्य बनाया। बालक चन्द्रकांत बडा सुशील और विनयी है। सुबह शाम सामायिक प्रतिक्रमण करता है। माता को प्रणाम किये बिना कोई काम नही करता। माता भी उससे खुश है। माता अपने गहने बेचकर भी उसकी शादी कर देती है। घर मे बहू आजाती है तो गंगा मां सारा घर अपनी बहू दामिनी को सौंप कर धर्मध्यान करने लगती है। चन्द्रकान्त अपनी मां का पूरा खयाल रखता है। उसको खिलाये बिना पहले खाता नही है। वह समझता है माता पिता का बदला चुकाना बहुत कठिन है।

पितृदेवो भव, मातृदेवो भव– चन्द्रकान्त मा की सेवा करता है। बंधुओं। दुनियामे सब कुछ मिल सकता है, पर माता पिता नही मिल सकते। अतः उनकी सेवा से वचित मत रहो। जो लडके अपने माता-पिता का अपमान करते है वे सुपुत्र नही कुपुत्र ही कहलाते है। ऐसा अविनीत पुत्र लाख भी क्यों न कमाता हो वह भी राख ही है।

चन्द्रकान्त का यह व्यवहार दामिनी को नही रुचता। वह चन्द्रकान्त से कहती है मै तो तुम्हारी मा से तग आ गई हूं। जरा भी बाहर जाती हू यह पूछने लगती है– कहा गई थी ? क्या लाई ? मेरी किस्मत खराब थी तभी मुझे ऐसी सास मिली। तुम इसे कही रख आओ। मै अब इसके साथ नही रह सकती।

चन्द्रकान्त उसे समझाता है, पर वह नही मानती। मा दोनो की बातें सुन लेती है। चन्द्रकात कहता है खबरदार जो कभी मेरी मा की बुराई की तो ! मेरी मां तो गंगा जैसी पवित्र है। उसे मै अपनी आखो से दूर नहीं कर सकता हू। मा जी सोचती है– लडका मुझे चाहता है पर बहू मुझे नही चाहती। अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे लडका भी सुखो रहे और बहू को भो दुख न रहे। यह सोच कर वह महन्तजीके पास जाती है और सारी बात कहती है। महन्तजी घर आते है और चन्द्रकान्त से कहते है– बेटा, यहा से सघ यात्रा करने जा रहा है, तेरो मा भो यात्रा करने का कहा करती थी, इसको भी सघ के साथ भेज दे। तेरो मा मेरी भी मा है, मैं भी साथ मे रहूगा। माजी को कोई तकलीफ न होने दूगा। चन्द्रकन्त मा से पूछता है– माता जाने को तैयार हो जाती है। बहू सोचती है चलो दो तीन महीने तो आराम से रहने को मिलेगा। बधुओ ! इसीका नाम संसार है। जहा नवनीत निकल नही सकता वहां प्रयत्न करने से भी क्या लाभ है ?

आप भी सोचते हो न कि बहू आवेगी तो आराम करेगे। पर बहू आती है तो

आराम हराम तो नही हो जाता ? तीन महीने बाद सभी यात्रालु आ गये, पर माजी नही आई। पडौसी पूछते है गंगा मा कहा रह गई ? वह क्यो नही आई ? बहू कहती है कही मिलने चली गई होगी ?

इधर वहू को सन्तान हो जाती है। पुत्रका नाम अरुण रखा जाता है। दामिनी को अब माजीकी याद आने लगती है। बच्चे को सभालना, खाना पकाना और घर का सब काम भी करना, उससे यह सब नही होता। वह चन्द्रकान्त से कहती है घर मे और कोई नही है। मै लडके को सभालू या खाना बनाऊं ? तुम अपनी मां को क्यो नहीं वुला लाते ? कम से कम वह खाना तो बना दिया करेगी ?

चन्द्रकान्त ने कहा– मेरी मा क्या तेरी नौकरानी है ?

दामिनी ने कहा– नही, मैं नौकरानी कहा कहती हू ? मुझे आज मेरी भूल दिखाई पड रही है। माजी आज होती तो मुझे बडी मदद मिलती। मै नाहक उससे घृणा करती थी। याद रखिये, घर मे बूढा आदमी भी बडे काम का होता है। यह तो तभी समझ मे आता है जब कि वह नही होता है। दामिनी कहती है– जाओ, मा को जल्दी लेकर आ ओ। चन्द्रकान्त महन्त जी के पास जाता है और पूछता है– महन्त जी, यात्रा पर गये हुए सभी लोग तो आगये है, पर मेरी मा क्यो नही आई है ?

महन्तजी कहते है– यहा से ५ कोस दूर जगदीश भाई रहते है। उनके पास जा, वे ही तेरी मा का पता वता सकेगे। चल मै भी तेरे साथ चलता हूं। दोनो जगदीशभाई के पास जाते है। जगदीश भाई दोनो का स्वागत करते है। भोजन के लिये बैठाते है। गगा मा स्वय परोसने आती है। मुह पर घूघट निकाला हुआ है अत. चन्द्रकान्त पहचान नही पाता है। परन्तु दाल परोसते समय उसके हाथ पर गरम गरम दाल गिर पडी जिससे मांजी के मुह से खमा शब्द निकल पडता है, यह सुनकर वह कहता है, यही मेरी मा है। मा तू यहां कैसे ? क्या तू रसोई वनाने का काम करती है ? क्या तेरा लडका मर गया है ? जो तू दूसरो के यहा पल रही है ? जगदीश भाई बोले–बेटा, ऐसा मत बोल। मेरा मोहन पैदा हुआ कि उसकी मा मर गई। अगर यह गंगा मा उस समय नही आई होती तो मेरा मोहन आज जीवित नही होता, कभी का वह मर गया होता। इस गंगा माने तो कमाल कर दिया। मेरे घर को स्वर्ग वना दिया है। घर के नौकर चाकर सभी इसको चाहते है। मोहन तो इसे ही अपनी मा समझता है। एक मिनट भी इसके विना वह नही रह सकता।

चन्द्रकान्त मा से कहता है– मा घर चल, दामिनी तुझे वुला रही है, अरुण भी तेरी राह देख रहा है। क्या तू अपने वेटे के लडके को खिलाना नही चाहती ?

उधर मोहन वीच मे वोल उठता है मा तू कहा जा रही है ? मैं तुझे नही जाने दूगा। गंगा मां कहती है– हा वेटा, मैं कही नही जाऊंगी, तू घवरा मत।

महन्त कहता है—जगदीश भाई ! इसे पहचाना या नहीं ? यह चन्द्रकान्त नवनीत भाई का लडका है और गंगा मां इस की माता है । जगदीश भाई कहता है— अरे नवनीत भाई तो मेरा पक्का दोस्त था । मुझे क्या पता था कि यह गंगा मां उसी की पत्नी है ? चलो ठीक हुआ आज यह पता तो चल गया । बेटा चन्द्रकान्त ! तू और मोहन दोनों अलग अलग नहीं हो । एकही हो, तुम भी मेरे यहां रहो और मेरे कारोबार की देखभाल करो । तेरी मां यहा से जा नहीं सकती । तू अपनी औरत और बच्चे को लेकर शीघ्र यहां आ जा ।

मा ने ममता धारण की और अपना धर्म कायम रखा तो यह फल मिला । नया कर्म न बाधा । यही मुख्य बात है । आश्रव को रोकना और संवर के द्वार खुले रखना ही आत्मा के उत्थान का मार्ग है ।

चन्द्रकान्त अपने घर आया । दामिनीने पूछा-क्या माजी को लेकर नही आये ? मुझे मांजी के बिना अब अच्छा नही लगता । चलो, मुझे ले चलो उनके पास, मैं उनको अपने घर वापस ले आऊगी ।

चन्द्रकान्त दामिनी और अरुण को गंगा मा के पास ले जाता है । मांजी अरुण को देखती है तो गोद मे उठा लेती है । दामिनी पैरो मे पड कर कहती है— माजी मुझे माफ करो, मैंने आपको पहचाना नही, अब आप मेरे घर चलो और इस लडके को संभालो । मांजी ने कहा यह घर भी तुम्हारा ही है । मोहन भी अरुण जैसा ही है । तुम भी यहीं रहो । यो सभी वहां आनद से रहने लगते हैं ।

जाण पासे अजाण थई तत्व लई ताणो ।
सामो थाय अग्नि तो आपणे थावुं पाणी ।

जो क्रोध के सामने भी क्षमा रखता है वही समता रस का पान कर सकता है ।

पद्मावती रानी ऐसी ही सुशील पत्नी थी । पति के सुख दुख मे वह सहयोगी बनती है । उस नगर मे तेतलीपुत्र नामक प्रधान रहता था । वह कैसा था ? उसके क्या गुण थे ? इसका आगे यथावसर वर्णन किया जायगा ?

ता. १८-८-६८

[५१]

तेतलीपुत्र नगर के राजा कनकरथ का प्रधान तैतली प्रधान था । वह बडा समर्थ पुरुष था । चार तरह की बुद्धि का स्वामी था । राज्य का सञ्चालन तो प्रधान ही करता है । अगर प्रधान ठीक न हो, व्यवस्था बराबर न कर सकता हो तो राज्य की प्रजा सुखी नहीं रह सकती है । लेकिन तैतली प्रधान सब तरह से योग्य था । किस समय क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये ? यह वह समझता था । नीतिशास्त्र

को समझने वाला ही राज्य का सचालन कर सकता है । लेकिन आज के नेता नीति शास्त्र को कहा जानते है ? वे तो एक आध बार जेल हो आये कि नेता बन गये । परन्तु राज्य का सचालन करना जेल जाने से नही आता है । नीतिशास्त्र को जानने वाला ही राज्य का सुन्दर संचालन कर सकता है । जो प्रजा के हृदय पर अपना आसन जमा लेता है वही राजा सच्चा राजा होता है और उसका प्रधान ही सच्चा प्रधान कहा जाता है । ऐसे राजा और प्रधान से ही प्रजा को सन्तोष होता है और वे अपने राजा को दीर्घायु देखना चाहती है । पहले के राजा प्रजा के सुख मे सुखी और प्रजा के दुख मे दुखी रहते थे । हजारो वर्ष हो गये, पर आज भी रामराज्य को याद क्यो किया जाता है ? क्या रामराज्य मे सबको खाने पीने और रहने को मिल जाया करता था इसलिये रामराज्य को याद किया जाता है ? केवल भौतिक सुखो के लिये ही रामराज्य प्रसिद्ध नही है । राम मे आध्यात्मिक गुण भी थे । वे स्व और पर को समझने वाले थे । उनमे विवेक था तभी उनको आज भी आदर के साथ याद किया जाता है ।

विवेक को दसवा निधान कहा गया है । चक्रवर्ती के पास नौ निधान होते है । उनके यहा इतना अखूट खजाना होता है कि सुबह से शाम तक गाडिया भरते रहो और रुपया पैसा निकालते रहो, पर शाम को जैसे ही चक्रवर्ती अपने खजाने की ओर दृष्टि करता है कि खजाना फिर से पूरा भर जाता है । ऐसी उनकी ऋद्धि होती है । आपको भी ऐसी ऋद्धि चाहिये न ? तभी तो आप गौतमस्वामी की ऋद्धि मागते है ?

गुरु गौतम को समरिये, मन वांछित फलदातार ।

गौतम स्वामी मे अनेक लब्धिया थी, पर उनका प्रयोग उन्होने कभी नही किया । जिनके पास लब्धिया थी उन्होने तो उसका प्रयोग नही किया, और आज आप उनके लिये प्रार्थना कर रहे हो ! लेकिन याद रखो जो मागता है उसे वह मिलती नही है । जो उससे दूर भागता है वह उसे ही मिलती है । चक्रवर्ती के पास ९ निधान होते है, पर विवेक नही होता । अत वह मर कर नरक मे जाता है । आपको कहा जाना है ? सिद्ध शिला मे ! ध्येय तो बहुत ऊचा है । पर सिद्धशिला मे तो पत्थर भी है– एकेन्द्रिय जीव भी वहा है । अनन्ती बार आप वहा जा भी आये होगे, तो क्या फिर वही जाना है ? हा, जाना तो वही है, पर शुद्ध पर्याय रूप मे जाना है– जिससे कि सदैव के लिये आवागमन ही मिट जाय । लेकिन आज इसके लिये प्रयत्न कहा किया जा रहा है ?

आज तो सब अपने खजाने की वृद्धि मे लगे हुए है । चाहे जहा से भी लेने की वृत्ति रखना पाशविक जीवन है । जीवन तो सभी जीते है– पर कोई पाशविक जीवन जीता है –कोई मानव जीवन जीता है तो कोई दीव्य जीवन जीता है ? जब तक आयुष्य कर्म है तब तक जीवन तो रहेगा ही । सब का लेकर अपना घर भरना पाशविक जीवन है । विवेक हीन जीवन ऐसा ही होता है । मेरे पास साड़ियों के ट्रंक

भरे पडे हैं, दूसरों के पास तन ढंकने को भी वस्त्र नहीं है, पर वे अपने हाथ से उसे दे नही सकते हैं। अपनी आवश्यकताएें कम करो। सुखी होनेका यही छोटा से छोटा नियम है। आवश्यकता कम होगी तो खर्च भी कम हो जायगा।

पहले के जमाने में इतना खर्च कहां था ? साबुन और तेल का कितना खर्च बढ गया है ? ऊपर से टीनोपोल भी चाहिये। खर्च घटता है तो पाप भी कम हो जाता है। पाप घटता है तो दुर्गति मिट जाती है। ऐसे सुविचार विवेक से ही आ सकते है।

खर्च पूरा करने के लिये पुरुष दुराचरण का सहारा लेता है, वह काला बाजार करने लगता है। यों पाप करके भी वह सुखी होने का प्रयत्न करता है। सुना है, सूरत मे अभी १५ हजार चूहे मार दिये गये हैं। यह कैसा अन्याय है ? इस धरती पर पैदा होने वाले सभी धरती माता की संतान है – उसे तो सभी प्यारे हैं। उसी की संतान एक को मारे और एक को पोषे तो कहिये माता को दुख होता होगा या नही ? तुम मे शक्ति है, तुम मूक जीवों को मार सकते हो, पर याद रखो उसका फल तो यहां नही तो वहां मिलने वाला ही है।

दूसरा जीवन है– मानव जीवन। जिसके जीवन में मानवता की सुवास वहती हो, वह दूसरे का भला करने की भावना रखता है, ऐसा जीवन मानव जीवन कहा जाता है।

तीसरा जीवन दैविक जीवन है– यह जीवन ही उच्च जीवन है। दूसरों के लिये सुखरुप बनना, दुखरुप नही होना, अपना सर्वस्व छोडकर भी दूसरों का भला करने वाला दीव्य जीवन जीने वाला होता है।

अनुकम्पा मानवता का पहला पाया है। दूसरे को दुखी देख कर मन मे दया पैदा होना अनुकम्पा है। जिसके दिल मे दया होती है वह दूसरो का दुख देख नहीं सकता है। वह अपना धन धान्य परहित के लिये न्यौछावर कर देता है। जो धन दूसरे के काम न आ सके वह धन नही कंकर है। बहिने रोटियां बनाकर कटोरदान को भर देती है और अपनी सतानों को खिलाकर उसे खाली भी कर देती है। इसमें भी उसे प्रसन्नता ही होती है। इसी तरह जब दुनिया के लोग भूखे मरते हो तब आपके अन्न भंडार भरे हुए कैसे रह सकते है ? राम राज्य में ऐसा नही था। किसीको भी बुखार आजाता था तो राम खुले पैर वहा जाकर मदद करते थे। तभी रामराज्य की प्रसिद्धि आज भी दुनिया में है। उनका जीवन दीव्य जीवन था।

पितानु वचन पालवा श्री रामचन्द्र वन मां गया
पण आजमाना मां ज्यां जुओ त्यां बाप थी जुदा थई गया

राम पिता के वचनों का पालन करने के लिये वन मे चले गये, पर मन में विषाद नहीं है। इसी तरह हर्ष के साधन आवें तब भी हर्ष न हो, यही स्थितप्रज्ञ दशा है। हर्ष में

सुख नही और दुख मे खेद नही, यही ज्ञानी दशा है। पर पदार्थ मे सुख देखना क्षणिक सुख है– नश्वर है। शाश्वत सुख तो आत्मा का ही है। दीव्य जीवन जीने वाला ही उच्च दशा प्राप्त कर सकता है। राम को मरे आज लाखो वर्ष हो गये, पर आज भी राम का आदर्श वर्णन किया जाता है।

अपनी पत्नी सीता का भी उन्होने केवल धोबी के कहने से त्याग कर दिया था। कहा वह राज्य था और कहा आज का राज्य है ? कहा उस समय का भ्रातृ प्रेम और कहा आज का भाई प्रेम ? दोनो की तुलना करो तो जमीन आसमान का अन्तर दिखाई पड़ेगा। अत: पहले विवेक की जरूरत है। विवेक आने पर ही आत्मा अपना जीवन उन्नत बना सकता है।

तैतली प्रधान मे विवेक था। वह राज्य का काम काज विवेक वुद्धि से चलाता था। वह राजा का भी प्रियपात्र था। उसके वारे मे और भी आगे कहा जायगा।

ता. १९–८–६८

[५२]

राजा का प्रधान तेतली प्रधान था। अच्छे आदमी के हाथ में काम सौपा जाय तो पीछे के लोगो को भी काम करने की इच्छा होती है। पर अगर वही आलसी वन जाय तो पीछे वाले क्या करेगे? जो सहायता का फड करके भी उसकी रकम अपनी जेव मे डाल दे तो लोग फिर दुवारा उसे कभी पैसा देगे ?

जो निस्पृह होते है उन्ही के हाथ मे पैसा दिया जाता है। धर्मादा खा जाने वाले को कौन पैसा देता है ? उपाश्रय मे पतासा की प्रभावना होती हो, देने वाला अपनी औरत और मां को ज्यादा दे दो तो दूसरो की नजरो मे वह कैसा वन जायगा ? फिर कोई उसे ऐसा करने को कहेगा ?

प्रधान राज्य का दीपक होता है। जहा दीपक नही वहा अंधकार वना रहता है।

दीवान नथी दरबार मां
छे अंधारूं घोर।

दीवान वुद्धिमान हो, चतुर हो, होशियार हो तो राज्य की भी उन्नति होती है। राज्य में अराजकता न फैल जाय, लाच-रिश्वत की वुराई न फैले, इसका चतुर प्रधान सदैव ध्यान रखता है। लेकिन आज ऐसा कौन ध्यान रखता है ? वाढ से पुल टूट गये। सडके टूट फूट गई, पैसा तो वनाने वाले (ठेकेदार) ने पूरा लिया, पर ऐसा कमजोर काम क्यो वनाया कि वह टूट गया ? यह कौन देखता है ? आज वैसे होशियार

राजकाज को चलाने वाले कहां है ? जहा एक इंजीनियर की जरूरत होती है वहां ५ रख लिये जाते हैं। वे सभी रिश्वत खाने वाले होते हैं। लालबहादुर शास्त्री जैसे तो विरले ही होते हैं, जो अपने घर के सिवाय दूसरे की चाय भी नहीं पीते थे। कैसा उच्चादर्श था उनका ? आज तो दूसरे का ही खाने का देखते हो ! जीमने जाना है तो सुबह कम खाते हो और शाम को ठूंस ठूस कर खा लेते हो। दूसरों के यहां काम हो तो ऐसा करना चाहिये, वैसा करना चाहिये, यह कह कर टीका करने लग जाते हो, पर अपने यहां काम पडता है तब क्या करने लगते हो ? इसका भी विचार कभी करते हो ?

पांचवे आरे में राजा को यमदंड जैसा कहा गया है। आज नीतिशास्त्र की तो बात ही कहां रही है ?

जानू बाई नामक ठकुरानी थी, जो अपने राज्य की देखभाल करती थी। कोई रिश्वत न ले सके, चोरी न करें, राज्य में अंधाधुंधी न मच जाय इसका वह सदैव खयाल रखा करती थी। लेकिन तुम्हारे यहा अंधाधुधी चल रही है। लडकी घर मे तो पढने जाने का कह कर जाती है, पर वह पढने जाती है या किसी छोकरे के साथ जाती है ? इसकी भी खबर आपको कहा रहती है ? तुम दूसरों की क्या? अपने घर की ही बात करो न ?

ठकुरानी शाम, दाम, दंड और भेद पूर्वक अपने राज्य का सचालन करती थी। उसका एक नौकर रघु था जो भैंसे दुआ करता था। एक भेंस से रोज १७ सेर दूध निकला करता था, पर आज १५ सेर ही क्यो निकला ? ठकुरानी ने जब रघु से यह पूछा तो रघुने कहा मैं क्या जानू ? जितना दूध वह देती है मै निकाल लेता हू। ठकुरानी सोचती है जरूर दूध मे यह घोटाला करता है। भैंस का दूध तो १७ सेर होना ही चाहिये। वह कामदार को बुलाती है और कहती है– आज से इस रघु को नौकरी से छुट्टी दे दो और इसकी जगह कोई दूसरा नौकर रख लो। रोज रोज यह दूध की चोरी कैसे सहन की जा सकती है? कामदार कहता है–यह अपना पुराना नौकर है, इसे छोडकर नया रखना ठीक नही है। वह भी चौरी नही करेगा इसका क्या विश्वास है ? अतः उसे नौकरी से हटाना ठीक नही है, प्रेम दड देना ही ठीक रहेगा।

ठकुराइन बोली– तो फिर प्रेमदंड ही देदो।

कामदार–उसका भी इन्तजार करना पडेगा। समय आने पर ही वह दिया जा सकता है।

रघु रोज २ सेर दूध पी जाता था। उसकी यह आदत ही पड़ गई। उसने एक दिन रघु से कहा-आज भैंस को बाहर चरने के लिये मत भेजना। महल मे ही बंधे

रहने देना और मेरे सामने इसका दूध निकालना । मै भी समझू तो सही दूध कम क्यों होता जा रहा है ? शाम को दूध निकाला तो वह १४।। सेर ही हुआ । रोज १५ सेर होता था और आज १४।। सेर ही हुआ ? यह क्या बात हुई ? रघु का उत्तर वहीं था मैं क्या जानू ? आज तो आपके सामने मैने इसे दुहा है ।

ठकुराइन कामदार से कहती है – रघु को तो अव निकाल ही दो । चोरी करने का इसका जो स्वभाव हो गया है वह अब मिट नही सकता । कामदार वही बात कहता है निकालो मत, प्रेम से उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करो । समय आने पर वह अपनी भूल अवश्य कवूल कर लेगा ।

कुछ दिनो वाद रघु का लडका वीमार हो गया । पति-पत्नी दोनो रोने लगते है। कामदार पूछता है रोते क्यो हो ? रघु कहता है– लडका वीमार है । दवा कराने को भी घर मे पैसे नही है । अव मैं क्या करूं ? आप ही कुछ रास्ता वताइये कामदारजी । कामदार– यह तो कर्मो की वात है भाई ! किये हुए कर्म तो भोगना ही पडेगा । जिसने रस चोरा है, उसका लडका चुराते भी क्या समय लगेगा? कामदार ठकुराइन से कहता है– अव समय आ गया है रघु को दड देने का । उसका लडका वीमार है । आप उसका इलाज कराने के लिये महल मे ले आइये । जानवाई रघु के घर जाती है और रघु को शान्त्वना देकर लडके को अपने महल मे ले आती है। वह स्वय उसकी सेवा करने लगती है । रघु को कामदार की वात याद आती है– जो रस की चोरी करता है उसका लडका भी चुरा जाता है । अभी भी समय है, मैं अपने पाप का प्रायश्चित क्यो न कर लू ? नही तो मेरा लडका मेरे हाथ से चला जायगा । वह माजी के चरणो मे पडता है और कहता है–माजी, मुझे माफ करो, मैं चोर हू, मैं ही दूध की चोरी किया करता था । मेरा लडका वीमार हुआ तो कामदार साहव ने मेरी आखे खोल दी । माजी मुझे क्षमा कर दो ।

माजी ने कहा– फिर कभी ऐसी चोरी नही करने का नियम ले तभी मै माफ कर सकती हू । वधुओ ? प्रेम दड वडा सख्त होता है । वह सीधा हृदय पर वार करता है जव कि दूसरा दड तो देह पर वार करता है । नौकर के हाथसे कांच का प्याला फूट जाता है तो आप उन पर क्रुद्ध हो जाते हो, यह ठीक नही है । जड के लिये इतना कषाय ? अज्ञान ही है । उससे तो आत्मा अशुद्ध ही वनती है । रघुने जीवन पर्यन्त चोरी न करने की प्रतिज्ञा ले ली । तव से दूध वरावर आने लगा । प्रेम से रघु भी सुधर गया और माल भी घर मे पूरा आने लगा । दूसरों के दुखको अपना दुख समझने से ही रघु का हृदय वदला और वह चोरी से मुक्त वना । इसी तरह आप भी अपने नौकरो के साथ क्रोध मत करो, उन्हे प्रेम से समझावो, जो जानेवाला है, वह तो कभी भी चला जायगा । फिर क्रोध करके अपनी आत्मा को मलिन क्यो वनाते हो ?

द्वेष नो वदलो प्रेम थी वालजो रे
भक्तो दिलडा नो होय उदार
वुरु करे तो कल्याण इच्छवुं रे
नावे खोटो कदिये विचार । —द्वेषनो

भक्त दिल के उदार होते हैं। मेरा चाहे जितना नुकशान हो जाय, पर मुझ से किसी का नुकशान न हो जाय, यह वे वरावर ध्यान रखते है। मानव को चाहिये कि वह सहानुभूति का अपना दीपक हमेशा प्रज्ज्वलित रखे। हमदर्दी का रस कभी भी सूख न जाय इसका सतत ध्यान रखो। कामदारने रघु को कैसा मार्ग वता दिया? प्रेम से काम निकालनेवाला और बुराई छुडाने वाला ही सच्चा कामदार होता है। युक्ति-प्रयुक्तियो से दोषी को समझाना और सुमार्ग पर चलाना नीति धर्म के अनुयायियों का ही काम है।

मनुष्य आज वीमार क्यो रहता है? धर्म क्यो नही कर पाता? इसका भी कोई कारण अवश्य है। उसको देखो, और समझो। क्यो कि विना कारण के कोई भी कार्य होता नही है।

अत: शास्त्रकार कहते हैं—प्रधान भी न्याय नीति का जानकार होना चाहिये। किसी की भी आजीविका छुडाने मे वह मददगार नही होता। दोष को भी प्रेम से मिटाने का प्रयत्न करता है।

क्रूरता न होना मानवता है। कोमलता होना मानवता है। दूसरो का दुख देख न पाना अनुकम्पा है। हृदय में करुणा का झरना प्रवाहित होना मानवता है। ऐसा व्यक्ति ही अपने साधनो को सीमित कर गरीबो और दुखियो की सेवा मे तत्पर रहता है। ऐसा दयालु आदमी ही अपनी आत्मा को उन्नति के मार्ग पर ले जा सकता है।

जिसके हृदय में दया हो, आर्द्रता हो, मार्दवता हो, अनुकम्पा हो; वही मानवता पैदा हो सकती है। तैतली प्रधान ऐसा ही दयालु था। तंदुल मच्छ की तरह बुरी भावना रखने वाला नही था। मै ऐसा बन जाऊं तो ऐसा कर दू। ऐसी बुरी भावना से भी मानव सातवी नरक मे चला जाता है।

सूरत के नवेगाम मे १५ हजार चूहे मार दिये गये। कही ताप्ती नदी में वाढ आना उसी का परिणाम तो नही है? चाहे जो भी हो, पर इतना याद रखिये कि कर्म का फल तो जीव को मिलने वाला ही है। उसके कर्म उसको भोगने पडेगें, हम क्या करे? श्रावक ऐसा नही वोल सकता है। क्योकि श्रावक तो अनुकम्पा वाला होता है। वह तो अपना खजाना ऐसे समय में ही खुला कर देता है। जगडू शाह, खेमादेदराणी, भामाशाह जैसे वीर पुरुषों ने क्या किया? अपना सर्वस्व लोगों की भलाई के लिये न्यौछावर कर

दिया । 'आपको भी आज ऐसा मौका मिला है । मौके का लाभ उठाना बुद्धिमानों का कर्तव्य है ।

तैतली प्रधान ऐसा ही कार्य दक्ष प्रधान था । उसमे अन्य भी कई गुण थे जिनका यथावसर आगे वर्णन किया जायगा ।

सोमवार ता. १९-८-६८



[९३]

तैतली प्रधान का वर्णन चल रहा है। वह महान विलक्षण बुद्धि वाला था। न्याय और नीति का जानकार था। ज्ञानी कहते है वह चार तरह की बुद्धि का स्वामी था।

ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से ही बुद्धि प्रवल होती है। अन्यथा वह ढीढ ही रहता है। कुछ याद ही नही रहता।

ज्ञानियो से द्वेप करना, अवगुण कथन करना, और अपकार करने से यह ज्ञानावरणीय कर्म वंधता है। जो ३० करोडाक्रोडी सागरोपम तक रहता है। जीव निगोद मे चला जाता है। जहां एक शरीर आश्रित अनत जीव रहते हैं। ऐसी दशा वह प्राप्त करता है। क्या आपको भी ऐसी दशा मे जाना है? अगर नही जाना है तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विराधना से दूर रहो, उनकी आराधना करो तभी इस ससार सागर से पार हो सकोगे ।

ज्ञानावरणीय कर्म का जितना क्षयोपशम होता है उतना ही ज्ञान भी प्रकट होता जाता है।

आज विज्ञान ने एटम वोम, हाईड्रोजन वम, रेडियो, तार एरोप्लेन आदि की खोज कर लोगो को आश्चर्य मे डाल दिया है। यहा बैठे बैठे आप दिल्ली मे क्या हो रहा है? देख सकते हो? टेलीविजन पर यह देखा जा सकता है। यह किसने किया? ज्ञान ने ही तो किया। आत्मा ज्ञान का भडार है। वह मिथ्यात्व मे रह कर भी इतना कर सकता है तो सम्यक्त्व मे आने पर तो वह सम्पूर्ण लोका-लोक को हस्तामलकवत् देख सकता है। आत्मा मे तो अनंत ज्ञान है। फिर भी पीठ पीछे क्या हो रहा है? यह नही जान सकते हैं। यह आवरण का ही दोप है। एक दीपक है, उस पर चारों तरफ से चमडा ढंक दो तो उसका प्रकाश भी ढक जाता है। उसके वजाय पतला कपडा डालो तो प्रकाश कुछ दिखाई देता है। कपडा विल्कुल निकाल दो तो प्रकाश पूरा दिखाई देता है। इसी तरह ज्ञानियो ने भी ज्ञानावरणीय कर्म को आंख का पट्टा कहा है, वह आंख से हटता है तो

आख ज्ञान कर पाती है। इसी तरह जितना क्षयोपशम होता है वैसा ही ज्ञान भी होता है। सभी सुनते है, पर याद शक्ति सभी की समान नही होती। यह क्षयो-पशम का ही कारण होता है।

तेतली प्रधान चार तरह की बुद्धि का स्वामी था।

१ उत्पत्तिका, २ विनयिका, ३ कार्यिका, ४ परिणामिका

बुद्धि किसी के बाप की नही है। उस पर कोई एकाधिकार नही कर सकता।

परम बुद्धि कृष देहमां स्थूल देह मति अल्प
देह होय जो आत्मा घटे न आम विकल्प।

शरीर एक दम सूखा लकडी जैसा हो, फिर भी बुद्धि उसकी तेज हो, कुशाग्र हो, और शरीर मोटा होने पर भी वह जड–मूर्ख हो तो क्या बुद्धि शरीरा-श्रित होती है? नही, वह तो आत्मा की चीज है, देह की नही है। देह और आत्मा भिन्न भिन्न है। बुद्धि का सबंध देह से नही है। भ्राति वश आज देह को ही आत्मा समझ लिया जा रहा है। आख दुखती है तो डाक्टर के पास पहुच जाते हो, क्योकि आख से अंधा होना कोई नही चाहता, कान से बहरा होना कोई नही चाहता। सभी यही चाहते हैं कि इन्द्रियां बराबर अपना काम करती रहे। पर क्या तुम इन्द्रियां हो जो इतना रक्षण कर रहे हो! इन्द्रियों का स्वाद किसको आता है? शीत और उष्ण का ज्ञान कौन करता है? शरीर या आत्मा? जानने वाला तो आत्मा है, शरीर मे जानने की शक्ति नही है। क्योकि वह तो जड है। तो फिर जड की सभाल क्यो कर रहे हो? जो जानता है उसकी संभाल क्यो नही करते?

कान से रडियो सुनना, आंखो से कला कृति देखना, नाक से सुगध लेना। शरीर से वातानुकूलित कक्ष मे बैठ कर आनद लेना, यह सब क्या इन्द्रिया जानती है? अगर इन्द्रिया जानती होती तो मुर्दा शरीर की इन्द्रिया भी ज्ञान क्यो नही कर लेती? अत:इन्द्रिया यह सब जान नही सकती। समझने वाला तो आत्मा है, उसके चले जाने पर इन्द्रियां मिट्टी हो जाती है। फिर उसे तुम सोने के पलंग पर भी क्यो न सुलाओ, वह मुर्दा शरीर ज्ञान नही कर सकता है।

अत: स्व सवेदन करो, पर को समझो। इन्द्रियां साधन है, उनसे ज्ञान किया जा सकता है, पर वे ज्ञाता नही है। ज्ञाता तो मै हू। मै ही सच्चिदानद हूं। मै अखंड ज्ञान का खजाना हूं। मनुष्य जब तक अपूर्ण रहता है तभी तक उसमें अहंकार भी रहता है। अधुरा घडा ही छलकाता रहता है। जब वह पूर्ण बन जाता है तब वह अहंकार रहित हो जाता है।

अज्ञानी जड वस्तुओ के सयोग और वियोग से सुख-दुख अनुभव करते है। शरीर निरोगी है तो सुखी और रोगी है तो दुखी होता है। यह अज्ञान है। जड चैतन नही हो सकता और चैतन कभी जड नही बन सकता है।

स्मृति, बुद्धि आदि भी मतिज्ञान के ही प्रकार है। बुद्धि पर नही है। अन्य दर्शन इसे पर कहते है, पर जैन दर्शन बुद्धि को भी ज्ञान का ही भेद मानता है। केवलज्ञान पैदा होकर जाता नही है। जब कि शेषज्ञान चले भी जाते है। बुद्धि तीव्र भी हो सकती है और मद भी हो सकती है। बचपन मे सीखी हुई बात आज भी याद आ जाती है, पर कइयो को कल की बात भी याद नही रहती है। यह क्षयोपशम का ही कारण है।

बुद्धि भी मतिज्ञान का एक भेद है। जैसे २ क्षयोपशम बढता जाता है वैसे वैसे ज्ञान भी विकसित होता जाता है।

आनद श्रावक को अवधिज्ञान हो जाता है। महाशतक को भी सथारा मे अवधिज्ञान हो जाता है। आनद अपने अवधिज्ञान मे चूलहिमवन्त पर्वत तक देखता है। यो वह ५०० योजन तक देखता है। महाशतक तो हजार योजन तक अवधिज्ञान मे देखता है। अवधिज्ञान अमुक सीमा तक का ज्ञान करता है।

चार तरह की बुद्धि का समावेश मतिज्ञान मे हो जाता है। उत्पत्तिका बुद्धि-कभी न सुना, न जाना, फिर भी उससे ज्ञान कर लेना उत्पत्तिका बुद्धि है। जैसे कि--

एक आदमी चला जा रहा है, गरमी के दिन है। उसे भूख लगती है। आम का झाड सामने है। फल पके हुए है। पर झाड ऊचा है। फल कैसे ले? वह सोचता है ऊपर बदर बैठा हुआ है। उसने एक पत्थर उठाया और बदर पर फेक दिया। बदर भी नकलची होता है। उसने ऊपर से आम तोडकर नीचे आदमी की तरफ फेकना शुरु किया। आदमी को तो यही चाहिये था। काम निकलवा लेने की तरकीब होना उत्पादिका बुद्धि है।

एक आदमी ढीढोरा पीटता चला जाता है, कोई मुझे अनदेखी और अनसुनी बात करेगा तो मै उसे एक लाख रुपया दूगा। लोग उसे बात कहते है तो वह कहता है यह तो मैने सुन रखा है-कोई नई बात सुनाओ जो मैने न सुनी हो। इतने मे एक उत्पादिका बुद्धिवाला आया। उसने ५ साक्षी बनाये और कहा- तेरा पिता व्यापार करता था। एक बार वह नुकसानी मे आ गया। तब उन्होने मेरे पिता से १। लाख रुपये लिये थे। तुम्हारे पिता गुजर गये। मेरा कर्जा बाकी है। तू अपने बाप का कर्जा चुका और मुझे १। लाख रु दे। अगर वह हा कहता है तब भी उसे रुपये देने पड़ते है और यदि वह ना कहता है तो भी रुपया देना पडता है। वह कहता है मैने तो कभी सुना नही था कि तुम्हारा कर्जा

देना है। तो वह कहता है ला एक लाख रुपया—यह अनसुनी वात हो गई। यह उत्पादिका बुद्धि है।

गाव का राजा कहता है—तुम्हारे गाव के कुए का पानी बहुत मीठा है, वह यहा भेज देना। यह सुन कर तो कामदार विचार मे पड जाता है। उसे चिन्तित देखता है तो रोहा पूछता है, क्या वात है ? चिन्ता मे क्यो पड़े हो ? कामदार राजा की वात कहता है। रोहा कहता है इसमे क्या विचार करते हुए हो ? राजा से कह दो हमारा कुआ डरपोक है। अकेला नही आ सकता, तुम अपने चार कुओ को यहां भेज दो तो हमारा कुआ भी उनके साथ आ सकता है।

थोडे दिनो वाद राजा कहता है रेत की रस्सी वना कर भेजो। रोहा कहता है आपका पुराना भडार है उसमे से नमूना भेज दो तो हम वैसी रस्सी वना कर भेज देगे।

राजाने एक घेटा भेजा और कहलाया इसको रोज खिलाना, पर वजन नही वढना चाहिये। न दुवला होना चाहिये। रोहाने कहा—तुम इसे दिन मे खिलावो और शाम को सिह के पिजरे के पास वांध आओ। यो वह दिन में खाकर मोटा होता है और रात मे रो रोकर दुवला हो जाता है। न घटता है और न वढ़ता है।

राजा एक मुर्गा भेजता है और कहता है इसे अकेला रख कर ही लडने की कला सिखाना। रोहा मुर्गे को काच के सामने रखता है और उसे लडना सिखाता है। कुछ दिनो वाद राजा दूसरा मुर्गा लाता है और उससे लडाता है तो रोहा का मुर्गा जीत जाता है।

हाथी को वुखार आया और वह मर गया, पर उसके मरने का समाचार नही कहना, लेकिन उसके बारे मे समाचार भी अवश्य कहना।

रोहा कहता है हाथी खाता नही, पीता नही, चलता नही, उठता नही वैठता नही, श्वासोश्वास भी लेता नही है।

राजा पूछता है—तो क्या वह मर गया है ? रोहा—यह तो आप ही जान ले।

अभयकुमार अपनी मा नदा को लेकर आता है। एक खाली कुए मे अगूठी डाल दी है। उसे ऊपर खडे खडे लेने वाले को राजा प्रधान वनाने की वात करता है।

कई लोग वहा इकट्ठे हो गये, पर अंगूठी निकालने की हिम्मत कोई न कर सका। अभयकुमार आगे आया और वोला—मैं अंगूठी निकाल सकता हूं। राजा को उसे देख कर आश्चर्य हुआ। यह १० वर्ष का लडका अगूठी निकालने की वात करता है। फिर भी राजा ने उसकी पीठ थपथपाते कहा—हा वेटा,

अंगूठी निकाल कर बता। अभयकुमार ने थोडा गोबर मगाया और अंगूठी पर ऊपर से फेक दिया। अगूठी उसमे फंस गई। फिर उसने ऊपर से घास डाल कर जला दिया। गोबर सूख कर छांणा बन गया। अभयकुमार ने दूसरे कुए का पानी उस कुए मे डलवा कर उसे भरवा दिया। जैसे जैसे पानी बढता गया वह गोबर भी ऊपर आता गया। अभयकुमार ने उसे हाथ से निकाल कर उसमे से अगूठी निकाली और राजा को दे दी। राजा बहुत खुश हुआ। उसने अभयकुमार से पूछा–तू कौन है?

अभयकुमार ने काहा–मैं बेना तट से आया हू।

राजाने कहा–वहा के धन्ना सेठ को जानते हो।

अभय–हा मै उसको जानता हूं।

राजा––उनकी लडकी नदा, जो गर्भवती थी, उसको क्या हुआ?

अभय––उसको पुत्र हुआ था।

राजा––उसका नाम क्या है?

अभय ने उत्तर दिया––लडाई मे कोई राजा आपसे परास्त हो जाय और वह अपने मुह मे तिनका लेकर आपके सामने आवे तो आप उसे क्या देगे?

अभय!

वही उसका नाम है।

राजाने पूछा–कैसा है?

मेरे जैसा? मै उसका मित्र हूं। देह और आत्मा एक ही है।

राजा––तुम स्वय वह हो?

अभय––जी हा,

राजा––नदा कहा है?

अभय––वह बाहर उद्यान मे है। राजा नदा और अभयकुमार को प्रेमपूर्वक महलो मे लाता है और उनका स्वागत करता है। राजा अपने ५०० मन्त्रियो का उसे प्रधान बनाता है।

प्रधान ऐसा होता है। वह बुद्धि का स्वामी होता है। एक आदमी अपनी बुद्धि से लाख रुपया कमाता है और एक आदमी–दिन मे केवल एक रुपया ही कमा पाता है।

सात वेत का सर्व जन, कीमत अक्कल तूल।
सरखा कागल हुटो ना, पण आंक प्रमाणे मूल।

मील मे एक आदमी दो हजार वेतन लेता है और एक ३० रु. लेता है। यो बुद्धि के अनुसार ही आदमी की कीमत होती है।

इंजीनियर क्या करता है? कागज पर लाईने ही तो खींचता है, फिर भी कितना कमाता है?

तैतली भी बुद्धिमान प्रधान था। उसमें और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

मंगळवार ता. २०-८-६८

[९४]

आध्यामिक पर्व पर्यूषण

अनंतज्ञानी त्रैलोक्य प्रकाशक भ. महावीर स्वामी ने पर्यूषण पर्व की आराधना करने का कहा है। पर्यूपण शब्द परि+उपण से बना है। जैसे सोने को अग्नि में डाल कर शुद्ध बनाया जाता है वैसे ही चारों बाजु से उपगमन करना पर्यूषण है। अपनी आत्मा को तप रूपी अग्नि में तपाना और निर्मल बनाना पर्यूषण की आराधना है।

तप करते समय अपना लक्ष्य शुद्ध होना चाहिये। किसी की देखादेखी तप नही करना चाहिये। अनादि काल से आत्मा कर्मो के साथ एकमेक हो गया है उससे छुडाने के लिये तप करना चाहिये। न कि भौतिक सुखो की प्राप्ति के लिये तप करना चाहिये।

पर्यूषण पर्व यह अलौकिक पर्व है। लौकिक पर्व तो कई आते है-होली-दिवाली, रक्षा बंधन आदि लौकिक पर्व है। लेकिन यह पर्व अलौकिक पर्व कहा गया है। ज्ञानी कहते है यदि तुम्हे अपनी आत्मा को शुद्ध करना है तो पर्यूषण की आराधना करो। यह आत्मा का उत्सव पर्व है। पर्यूषण पर्व सर्चलाइट के समान है जो अज्ञान अंधकार को मिटा देता है। पर्यूषणपर्व दीवादाडी की तरह है, जो आध्यात्मिक मार्ग का पथप्रदर्शन करता रहता है। यदि कोई इसकी आराधना नही करता है तो उसको भी प्रायश्चित आता है। यह शास्त्रीय विधान है। कोई मनगढन्त बात नही है।

वीतराग वाणी का अमृत रस पीने का यह आध्यात्मिक सप्ताह है। इसका लाभ लोगे तो आत्मा तुम्हारी निर्मल बन जायगी। इसके जैसा पर्व दुनिया मे और कोई नही है। दूसरे पर्वो मे तो खान-पान, नाटक, सिनेमा देख कर मौज-मजा किया जाता है, पर इस पर्व मे उन सबका त्याग कर अपने दोषो को देखा जाता है। मैने क्या किया? क्या करना चाहिये था? इसका पर्यावलोकन किया जाता है।

अत ज्ञानी कहते है--जैसे वस्त्र को धोने के लिये साबुन की जरुरत रहती है वैसे ही आत्मा को साफ करने के लिये भी साबुन की जरूरत होती है। पर वह साबुन क्या है? बनारसीदासजी कहते है--

भेदविज्ञान साबुन भयो, सम रस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आत्मा--धोवे निजगुण चीर।

आत्मा धोबी है--वह निजगुण रूपी वस्त्रो को धोता है। किससे धोता है? भेद विज्ञान रूपी साबुन से वह उन्हे धोता है।

आपकी आत्मा कितनी अशुद्ध है! यह तो आप स्वय जान सकते हो। भेद विज्ञान का साबुन लगाओ और उसे साफ करो। आत्मा को निर्मल बनते देर नही लगेगी। जैसे मैल और वस्त्र दोनो भिन्न २ है। वैसे ही आत्मा और कर्म भी भिन्न २ है। सयोग सबध से एकमेक दिखाई देते है। संयोग हुआ है तो वियोग भी हो सकता है। कपडा मैला हुआ है तो वह साफ भी हो सकता है। इसी तरह आत्मा की अशुद्ध पर्याय को शुद्ध भी बनाया जा सकता है। उसे कर्म रहित भी बनाया जा सकता है। इसके लिये भेदविज्ञान को समझना बहुत जरूरी है।

हर एक आत्मा मे सिद्ध पर्याय रही हुई है। वह प्रयत्न द्वारा वैसा बन सकता है। प्रयत्न करने से ही दूध मे से माखन निकलता है। दूध मे घी रहा हुआ है, पर बिना प्रयत्न के वह थोडे ही मिल जाता है? दूध को जमा कर दही बनाना पडता है। दही को मथना पडता है तब कही जाकर माखन निकलता है और माखन को गरम करने से घी बनता है। इसी तरह आत्मा मे भी सम्पूर्ण ज्ञान रहा हुआ है, परन्तु आवश्यकता है उसे प्रयत्न द्वारा प्रकट करने की। वस्त्र मे मैल है, पर दोनो अलग २ है। एकमेक तादात्म्य नही हुए है। यही भेद विज्ञान है। जड चैतन नही हो सकता और चैतन जड नही बन सकता है। जड को चैतन से अलग करना ही आत्मा के अखड राज्य को प्राप्त करना है।

अकेला साबुन भी क्या करेगा जब तक कि पानी न हो? समभाव रूपी पानी मे भेद ज्ञान रूपी साबुन से आत्मा को साफ करोगे तो वह अवश्य निर्मल हो जायगी।

ऐसा मत समझो कि मै बडा हू, वह छोटा है। मै ज्ञानी हू, वह अज्ञानी है। मै धनी हू वह निर्धन है। आत्मा मे तो सर्वत्र समान शक्ति रही हुई है। इस-लिये किसी को भी असमान मत देखो। ज्ञानियो ने तो कहा है--

आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति सःपश्यति ः।

अपनी आत्मा की तरह सबको समझो यही आत्म तत्व का ज्ञान, है, यही स्वभाव का ज्ञान या स्वसवेदन है। जो आत्मा पर से विमुख होकर स्व में स्थिर बनता है वही इस रहस्य का आनद उठा सकता है।

सव्वे जीवा सुह साया

सुख सबको चाहिये, दुख कोई नही चाहता। कोई यह कहे कि इतने दिनो बाद भकम्प आने वाला है तो सुनने मात्र से ही जीव भयभीत हो जाते है। मृत्यु का भय भी लोगों को मार देता है तो सचमुच मार देना तो कितना बडा पाप है? ज्ञानी कहते है–

आत्मन : प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।

आत्मा को उसके स्वभाव से विभाव मे मत ले जाओ। स्वभाव में रहते हुए ही वह अपने स्वरूप को समझ सकता है।

आज कई लोग बाढ से बेघर बार हो गये है, कई स्त्री और पुत्र रहित हो गये है। कई निर्धन बन गये है। यह सब कर्मो का खेल है। कब कर्म शत्रु तुम पर भी हमला न कर दे? अतः सावधान हो जाइये और धर्म–कर्म मे मन लगाइये। जो धर्म करता है वही सुखी भी होता है।

भरत क्षेत्र के चारो तरफ लवण समुद्र है, जो एक हजार योजन गहरा है, जिसकी भरती १६००० हजार योजन की है, उसका एक ही हिलोरा आ जाय तो भरत क्षेत्र को डुबा सकता है। लेकिन फिर भी भरत क्षेत्र डुबता क्यो नही है? गौतम स्वामी भगवान से यह प्रश्न पूछते है।

भगवान कहते है–तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, युगलिया, साधु–साध्वी, श्रावक और श्राविका का पुण्य इतना प्रबल है कि यह लवण समुद्र भरत क्षेत्र को डुबा नही सकता है। धर्म के प्रताप से वह बचा रहता है।

आज भी कोई अकस्मात हो जाय और उसमे कोई बच जाय तो लोग यही कहते है कि धर्म के प्रताप से वह बच गया। पर्यूषण पर्व भी धर्म के लिये ही आया है, खाने–पीने के लिये या नई २ साडिया पहन कर आने के लिये नही आया है। आत्मा को शुद्ध बनाने का यह महापर्व है। पाचवी गति (मोक्ष) मे ले जाने वाला यह प्लेन है। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला यह पर्व है। आत्मा का अधकार दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाला है। इसकी सच्ची आराधना करो, आपकी आत्मा आलोकित हुए बिना नही रहेगी।

पर्यूषण पर्व में कम से कम इतना त्याग तो हर एक को करना ही चाहिये कि वह इस पर्व मे रात्रि भोजन न करे, लीलोतरी न खावे, ब्रह्मचर्य का पालन

करे और चौविहार करे। फूल नही तो फूल की पाखडी जैसा इतना त्याग तो अवश्य ही करे।

पर्यूषण पर्व मे ज्ञान-दर्शन चारित्र और तप की साधना करनी चाहिये । यही मोक्ष का मार्ग है । जो संसारी है उन्हे दान, शील, तप और भाव से मोक्षमार्ग की साधना करनी चाहिये । यह व्यवहार मोक्ष मार्ग है । जिसके हृदय मे लोभ कषाय कम होता है वही दान, शील, तप और भाव की साधना कर सकता है ।

लोहो सव्व विणासणो --

जहां लोभ होता है वहा सतोष नही रह सकता । लोभ का नाश होने पर ही आवश्यकता से अधिक न रखने का भाव जागृत होता है । जिसको लोभ अधिक होता है वह अपेक्षाकृत ज्यादा गरीब होता है । सन्तोषी ही सुखी होता है ।

जिसके पास लाखो रुपया है, फिर भी लोभ उसके हृदय मे उछाले मार रहा हो तो वह धनवान नही गरीब ही है । जड पदार्थो मे देखा-देखी करना पाप है--उसका अधानुकरण मत करो । अपना पैसा गरीवो की भलाई मे दे देना चाहिये, यही धन का सदुपयोग है ।

दुखियो को आश्वासन देना भी पुण्य का काम है ।

एक मित्र अपने वकील मित्र के यहा जाता है । वह उसके घर के प्रवेश द्वार पर तीन पत्थर के खभे देखता है । वह अपने मित्र से पूछता है-- तुम्हारे घर मे पत्थर के खभे क्यो लगे हुए है ? मित्र कहता है -- इसका भी लम्बा इतिहास है । ये स्तभ मुझे दिशा-सूचन करते है -- मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक है । हरदम ये मुझे वुरे काम से वचाते रहते है ।

मित्र ने पूछा-- यह कैसे ?

उसने कहा-- मेरे पिता प्रभुलाल वकील थे । जैसा सुदर नाम था वैसा उनमे गुण नही था । उन्होने कभी ईश्वर को याद नही किया । इसी गाव मे झीलु भाई नामक एक राजपूत रहता था जिसके पास वहुत जमीन थी । जमीन वहुत सुदर थी, अनाज उसमे वहुत पकता था । गाये और भैसे भी उसके पास कई थी । कई आदमियो का उसके यहा निर्वाह होता था ।

उस जमाने मे गावो मे अक्सर खेतो की सीमा का झगडा हुआ करता था । झीलुभा भी इस झगडे से नही वचा । उसका भी पडोसी खेतवाले से सीमा के लिये झगडा हो गया । वह इसके लिये मेरे पिता के पास आया और अपना झगडा निपटाने का काम उन्हे सौप गया । मेरे पिताने कोर्ट मे मुकदमा पेश किया और उसमे उनकी जीत हुई । मुकदमा जीत जाने पर मेरे पिता ने झीलुभा से १००० एक हजार रुपये मेहनताने के मागे । झीलुभा के पास रुपये नही थे । उन्होने उनकी जमीन गिरवे रखवा

ली और उसकी कानूनी कार्यवाही भी करवा दी । झीलुभा की हालत दिन दिन खराव होती गई । उसे अपनी लडकी की शादी भी करनी पडी । घर मे जो था वह भी खर्च हो गया । वह प्रभुलाल का पैसा न दे सका । मेरे पिता ने उसकी सारी जमीन पर ही कब्जा कर लिया । अव वह वेचारा क्या करता ? इज्जत आवरु वाला आदमी था । उसके दो लडके भी थे, पर वे छोटे थे अत: उनका और अपना गुजारा कैसे चलेगा ? इसी विचार मे वह प्रभुलाल वकील के पास आया और वोला-वकील सा आप ही मेरे साहूकार है । और मैं किसके पास जाऊ ? मेरे पास तो कुछ रहा नही है । महरवानी कर आप मुझे अपने यहां नौकर रख ले । जो भी काम होगा, मैं कर लिया करूगा ।

प्रभुलाल वकील ने उसे अपने यहां १५ रु. मासिक वैतन पर नौकर रख लिया । घर में चार आदमी थे, फिर भी वह १५ रु. मे किसी भी तरह अपना गुजारा करने लगा । ६ महीना हुआ कि प्रभुलाल ने कहा-झीलुभा ! तुम काम ठीक नही करते हो, मै १५ रु. देता हूं । मुझे तो ५ रु में नौकर मिल जाता है । कल से तुम अपना इन्तजाम कही दूसरी जगह कर लेना । मैं अव तुम को नही रख सकता हूं ।

यह सुनकर झीलुभा रोने लगता है । सोचता है अव क्या करूगा ? मेरे पिता की क्या हालत थी ? घी दूध की नदिया वहती थी ? और आज १५ रु. भी चले गये ? वह फूट फूट कर रोता है, पर वहां धीरज वधाने वाला कोई नही था । उसकी पत्नी ने भी अव तक घर का सामान वेचकर अपना काम चलाया, पर अव वह भी समाप्त हो गया । कई वार तो वह आटा भी वकील सा के घर से उधार लाकर खाता था । आज तीन दिन हो गये, पति पत्नी ने मुह मे कुछ नही डाला था । जो कुछ था लडको को खिला दिया ।

संयोग से झीलुभा की लडकी की सासु यात्रा पर गई हुई थी, जो लौटते समय इस गाव मे आ गई । झीलुभा की पत्नी सज्जनवा उन्हे अपने घर लाती है । पर घर मे तो कुछ नहीं है, खाना कैसे पकाऊंगी ? यह सोचकर उसने झीलुभा से कहा—मेहमान आये है, वकील सा के यहाँ जाकर थोडा आटा उधार ले आओ । मै खाना पका कर उन्हे खिला दूगी । झीलुभा कहता है मुझे मरना कबूल है पर मैं उसके यहा जाना नही चाहता । वह ऐसी २ वाते सुनाता है कि मै तो उसे सुन भी नही सकता । सज्जनकुवरवा स्वय वकील के यहा जाती है । प्रभुलाल वकील का लडका स्वयं यह वात सुना रहा है । अगर लडका सस्कारी है तो वह अपने पिता के गलत काम का भी अनुमोदन नही करता है । वह कहता है—घर मे मेरी मा ही थी, उसने पूछा—कहो, कैसी आई हो ?

सज्जन कुवर वा ने कहा—घर मे मेहमान आये है । थोडा आटा चाहिये ।

मेरी मा दयालु स्वभाव की थी, उसने आटा देने को निकाला ही था कि वकील

घर मे आ गये । उन्होने कहा—क्या दे रही हो ? मेरी मा ने सारी बात कह सुनाई । पर मेरे पिता ने कहा – यहा क्या सदाव्रत खोल रखा है कि जब चाहो तब लेने आ जाती हो ? खबरदार जो अब कुछ दिया तो ?

सज्जन बा ने कहा– मै उधार माग रही हूं, मुफ्त मे नही ले रही हूं । हमने तो अपना सारा घर ही आपको लुटा दिया है ।३ दिन से कुछ खाया-पीया नही है, पर मेरी लडकी की सास आई हुई है, उसको खाना खिलाना है, अगर आप एक सेर आटा भी दे देगे तो मेरी इज्जत बच जायगी ।

वकील कहता है—तुम्हे अपनी इज्जत इतनी प्यारी है तो अपने पाव के कडे यहा रख जाओ और बदले मे २ सेर आटा ले जा सकती हो ।

सज्जनबाने कहा—अगर आपको मेरे कडे ही चाहिये तो मै बाद मे आकर दे जाऊंगी । अभी आप मुझे आटा दे दे और मेरी इज्जत बचा ले ।

लेकिन वकील का पत्थर दिल नही पसीजा । उसने कहा-कडा खोल कर देगी तो आटा ले जा सकती है ।

सज्जनबा ने पैर से अपने दोनो कडे निकाले और अपने ही सिर में दे मारे । सिर फूट गया, खून बह निकला । सज्जनबा वही समाप्त हो गई । शरीर मुर्दा हो वही गिर पडा ।

मेरी माने मेरे पिता से कहा– तुम कैसे निर्दयी हो ! आखिर उसे मार कर ही तुमने दम लिया ? अब क्या करोगे ? कैसे इस पाप से उऋण होगे । बेचारी को दो सेर आटा दे दिया होता तो तुम्हारा क्या कम हो जाता ?

उधर लडकी की सासु घर मे इन्तजार करते करते थक जाती है तो झीलुभा उसे बुलाने आता है । अपनी पत्नी को मरी हुई देखता है तो वह वापस लौट जाता है और घर मे जाकर अपने मेहमान से कहता है– आप थोडी देर ठहरिये, वह अभी आ रही है । झीलुभा अपने दोनो लडको को लेकर नदी के किनारे पहुचता है और उसमे वह लडको के साथ जल समाधि ले लेता है । कुछ देर बाद तो तीनो लाशे ऊपर आ जाती है । लोग कहते हैं यह तो झीलुभा और उनके लडको की लाशे है । एक ही दिन चारो के शव साथ ही दफनाये जाते है ।

बंधुओ ? जहा अनुकम्पा नही, वहा समकित कैसे हो सकती है ?

कुछ ही दिनो बाद प्रभुलाल वकील ऐसा बीमार पडा कि उनके सारे शरीर मे कीडे पड गये । दिन और रात वह पीडाके मारे चिल्लाता रहता था । मै अपनी पढाई पूरी कर घर आया तो मैं अपने पिता की ऐसी हालत नही देख सका । लोगोंने कहा-भाई? ईश्वर के घर देर है, पर अंधेर नही । झीलुभा का सारा घर हजम कर गया है । इतना ही नही सारे घर वालों को मरने पर विवश कर दिया । उसी का यह फल है ।

प्रभुलाल मर गया तो उसके लडके ने भीलुभाई की लडकी को उसकी जमीन वापस कर दी और जितना भी पैसा वकीलने कमाया था वह सब धर्मादा कर दिया। लडके ने अपने पिता की सम्पत्ति का एक पैसा भी अपने पास नही रखा।

प्रभुलाल के लडके ने अपने मित्र से कहा– ये तीन खंभे है– वे भीलुभा, उसकी पत्नी और उनके लडको के प्रतीक है, जो मुझे हर समय सच्ची राह दिखाया करते है। जीवन मे मुझे हर समय ये सावधान करते रहते है।

आपके दिल मे भी अनुकम्पा है या नही? है तभी तो लोग आपसे दान मागते है। याद रखिये, जो दे गया सो ले गया। जो देता है वही साथ मे भी ले जाता है। अत. आप दान, शील, तप और भाव की आराधना से अपने ज्ञान दर्शन और चारित्र को उज्ज्वल बनाओ। इसी मे पर्यूषण की सफलता है। जो आत्मा अपने जीवन मे इन सद्‌गुणो को उतारेगे वे ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगे।

बुधवार ता. २१–८–६८

[९९]

जीवन का अरुणोदय

जीवन ज्ञानी और अज्ञानी दोनो का होता है। लेकिन जीवन सफल उसी का कहा जाता है जिसने अपने जीवन मे सम्यग् दर्शन की झांकी प्राप्त कर ली हो। स्व और पर की प्रतीति कर चुका हो।

भाण कहे छे भटक मां मथी जोने मांही
समझीने समाई जा तो करवुं नथी काई

समझ कर जीवन मे उतार लेना यही जीवन का सार है। जब आत्मा पर से दूर होकर स्व मे स्थिर होगा तभी उसका अज्ञानाधकार मिटेगा और ज्ञान का प्रकाश प्रकट होगा।

आतम ना ओवारे अंधारा घनघोर
पगलारे पाडो स्वामी थाय ज्योति झाकमझोल
मांड करीने मारो दिवडो जलावुं
आंधि आवे त्यां अेने क्यांथी बचावुं।
अवगुणना आघाते दीपक डामाडोल–पगलारे

आत्मा की ज्योति यदि प्रकट करनी हो, हृदय का अधकार मिटाना हो, और अनंतभवों का चक्कर मिटाना हो तो तू अपने हृदयासन पर भगवान को विराजमान कर।

ज्ञान से ज्ञान प्रकट होता है, अज्ञान से ज्ञान नही होता। अतः सत्संग करो, ज्ञानियो के परिचय मे आओ, सम्यग्दर्शन का दीपक प्रज्ज्वलित करो। उससे अधकार दूर हो जायगा।

आज भिन्न २ पथ और सम्प्रदाये बन गई है। सभी अपना अपना आग्रह रखते है। हम कहते है वही बात सच है; ऐसी स्वच्छन्दता वढ गई है। ऐसे तूफान मे साधारण आदमी अपना श्रद्धा–दीप कैसे वचा सकता है? सच्चा निर्णय करने की ताकत और अचल श्रद्धा आज नही रही है। अत ज्ञानी कहते है–श्रद्धा दृढ नही है इसीलिये मनुष्य डगमगाता रहता है। जहा जाता है वहा ही चक्कर मे आ जाता है। वह यह नही जान पाता कि पूर्ण तो मै स्वय हू। सिद्धान्त मे कोई वात अधुरी नही है। समझ मे आ जाना चाहिये। ज्ञान कही वाहर नही है, वह तो आत्मा मे ही है। दृढ श्रद्धा होनी चाहिये। लेकिन आज ऐसी श्रद्धा कहा रही है? उसका तो मानो दिवाला ही निकल गया है।

श्रद्धा के अभाव मे आत्मा आज पगु वन गया है। वह अपनी ताकत को पहचान नही पा रहा है। यह सच है या वह सच है? यह निर्णय वह नही कर पाता। अत.ज्ञानी कहते है पहले तू अपना स्वरूप समझ। वही सच्चा ज्ञान है।

कई लोग यह कहते है कि हमको तो नया समझावो! वही का वही क्या सुनाते हो? गायक एक ही लाईन को कई वार गाता है, पर उससे सुनने वाले का रस कम नही होता। वीडी और सिगरेट पीने वाले रोज रोज वही पीते है, फिर भी उसे कैसे चाव से पीते है? आप रोज चाय पीते हो, पर उसको पीते पीते आपको तो अरुचि नही होती है? इसी तरह वीतराग की वाणी भी एक ही है। वार वार सुनने पर भी अरुचि उसके प्रति क्यो आनी चाहिये? जैसे अभ्रक को हजार वार घोटने से उसकी शक्ति हजार गुनी वढ जाती है, लीडी पीपल भी घोटने से वर्धमान पीपल वन जाती है, इसी तरह आत्मा का दोहन करने मे भी एक दिन उसमे प्रचड शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। दही को मथा जाता है तभी मक्खन निकलता है। वह ऐसे ही नही निकल जाता है। अत अधुरे मत वनो, मथन करो, आत्म तत्व का पारायण करो, उससे जो आनद मिलेगा वह अन्यत्र नही मिल सकेगा।

पाश्चात्य लोगो ने भी–हर्मन जेकोवी आदि विद्वानो ने हमारे सिद्धान्त पढे और उनमे से ऐसी ऐसी खोज की कि आज उसे सुनकर भी लोगो को आश्चर्य होता है। रेडार, वेतार के तार, टेलीफोन, एटम वम, एरोप्लेन आदि का रहस्य उन्होने हमारे सिद्धान्तो से ही जाना और समझा है। हमारे सिद्धान्त तो पूर्ण है–सर्वज्ञ द्वारा कहे गये है। उसे तो समझने वाला चाहिये। गेहूं एक ही है,

पर उससे बनाना आवे तो ५२ चीजे बनाई जा सकती है। योग्यता होनी चाहिये। इसी तरह सिद्धान्त तो एक ही है, उसका कथन करने वाले अलग अलग तरीके से कह सकते है। पर भाव तो सबका एक ही है । उसमे कही अन्तर नही हो सकता।

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि रोज रोज यही सिद्धान्त सुनते हो, फिर भी हृदय मे विभाव क्यो बना हुआ है?

विभावना ज्यां व्हेण वहे छे।
नास्तीकोना ज्यां नयन ठरे छे।
ज्यां स्वरूपनो नहि स्वाद रे,
निजानंद नो आनंद रे
क्यांय शोध्यो जडे नहि साररे...आ।

यह संसार असार है, जहा विभाव का ही साम्राज्य है। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ये आत्मा के निज गुण है। इनको छोड कर जीव राग, द्वेष काम, क्रोध, मान, माया और क्रोध मे इतना फस जाता है कि वह अपना नही दूसरो का ही दोष देखने लगता है। पर की चिन्ता मे वह दुबला होता जाता है। यह कैसा पागलपन है? चिन्ता करनी ही है तो अपनी करो!

उत्तमाध्यात्म चिंताश्च, शास्त्रचिंताश्च मध्यमा
अधमा काम चिन्ताश्च, परचिंताधमाधम:।

जो अपनी चिन्ता करता है वह उत्तम कार्य है। पढ़ने की चिन्ता करना मध्यम है। काम–भोग की चिन्ता करना अधम कार्य है, पर दूसरो की चिन्ता करना तो अधमाधम है। दूसरो का घर देखने के बजाय अपने घर मे क्या हो रहा है? यह देखो। विभाव मे पड कर जीव दिन रात कर्मो का ही बंध करता रहता है।

पाप की गठरी बांधी सिर पर
कैसे होय वो हलकी?
खबर नही आ जग मे पल की
सुकृत करना होय सो करले
कोण जाणे कल की, खबर नही..........

सिर पर जो पाप की गठरी बांध रखी है, उसे हल्की करो। गुरु कहते है, नास्तिक के पास मत बैठो। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की ही आराधना करो। मोक्ष रूपी लक्ष्मी तो अपने घर मे ही है, बाहर क्यो भटक रहे हो? सच्चा सोना तो घर में ही है, फिर नकली सोने में क्यो मोहित हो रहे हो?

हमें साम्प्रदायिकता नही चाहिये ऐसा कहने वाले भी अपना नया आश्रम खडा कर लेते है। उनमे भरमा कर अपनी श्रद्धा मत घुमा बैठना। जहा स्वच्छंदी मत है, स्वभाव का भाव नही है, निजानंद का आनद नही है, वहां क्यो रुचि लेते हो ?

कपाय का उपशमन भी न करना पडे और मोक्ष मिल जाय तो फिर भगवान को अपना मार्ग वताने की क्या जरुरत थी ? अत. ऐसे लोगो की वातो मे आकर अपने तप त्याग मय धर्म को मत भूलो। मिथ्यात्वी लोभ देकर भी लोगो को अपनी ओर आर्कापित करते है। कुछ लोग मान–सन्मान के खातिर भी वहा चले जाते है। जहा आत्मा को समझने के नाम पर सब तरह की सुविधा मिलती हो–न ब्रह्मचर्य का पालन, न व्रत–उपवास की जरुरत, तो ऐसा धर्म कौन नही पालेगा ? हमारे यहा तो वहुत कष्ट झेलना पडता है, तपस्या करनी पडती है। जो सच्चे साधक होते है वे ही इस मार्ग पर चलने मे समर्थ हो सकते है।

कुछ लोग ऐसे भी है जो मुह से तो जड और चैतन की वात करते है, पर तमाखू की डिव्वी उनकी घुम हो जाय तो वे लडने लग जाते है। समय पर उनको चाय न मिले तो उनका सिर चक्कर खाने लगता है। अत:तत्व को समझने की जरूरत है। केवल कहने से काम चलने वाला नही है। जिसे वीतराग का मार्ग स्वीकार करना है उसका तो पहला काम है समझना–तत्व को समझना और फिर उस पर चलना।

एक आदमी था जो युक्ति प्रयुक्तियो द्वारा पैसा वसूल किया करता था। उसने एक वार अधो की एक टोली देखी। सोचा–इनसे पैसा छीनने की तरकीव करनी चाहिये। मौका देखकर एक दिन उसने अधो से कहा–क्या तुम लोगो ने यात्रा की है ? अधो ने हा–हम तो अधे है, हम यात्रा कैसे कर सकते है ? अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हे यात्रा करा सकता हूं। यों वह उन अधो को यात्रा के लिये तैयार कर लेता है।

कोई पालीताणा आवु शिखरजी, कोई माला के जपने में।
मेरो हीरो हेराई गयो कचरे में कोई पाणी, कोई पत्थर मे। मेरो.।

कई लोग पालीताणा की यात्रा करते है–वे यह समझते है अगर पालीताणा का पर्वत ९९ बार चढे और उतरे तो इससे सब पाप नष्ट हो जाते है। कोई सम्मेत-शिखर पर चढने से पाप नष्ट होना मानते है। पर ज्ञानी कहते है यों जगह जगह फिरने से पाप नष्ट नही होते है, पाप तो स्वभाव में स्थिर होने से नष्ट होते है। भगवती सूत्र मे भगवान महावीर ने कहा है– १७ प्रकार का संयम पालना ही सच्ची यात्रा है। सभी इसे मानते हैं। भगवान ने यही यात्रा कही है।

उसने १०० अंधे इकट्ठे किये और यात्रा पर ले चला। उसने अंधों से कहा—मैं तुम्हें यात्रा पर ले जा रहा हूं। पर अपना अपना रुपया पैसा सब अपने पास रखना, कोई चुरा ले जाय तो मुझे दोष न देना। अंधों ने कहा—बात तो ठीक है, हमें अपनी जोखम तो खुद सभाल्नी ही चाहिये। वह एक जगह से दूसरी जगह ले जाता है। इस तरह दो तीन यात्रा पूरी हो गई। अंधों को उसका विश्वास भी बैठ गया। अब वह अंधों से कहता है, अब हमें पैदल चलना है। रास्ता बहुत भयानक है। चोरों का भी भय है अतः तुम सब अपना अपना रुपया पैसा मुझे दे दो और बदले मे अपने पास पत्थर रख लो—ताकि किसी को शंका न हो और समय आने पर पत्थरों से अपना बचाव भी हो सकेगा। सब लोगो ने अपना अपना रुपया पैसा उसे दे दिया और बदले में कुछ पत्थर के टुकडे अपनी जेब मे डाल दिये। उसने सोचा—मेरा काम तो हो गया। अब मैं क्या करू ? उसने सभी अंधों का एक गोल चक्कर बना दिया—पहला और अन्तिम दोनो एक हो गये। उसने कहा—सुनो, कोई तुम्हें यह पूछे कि कहा जा रहे हो ? तो अपने पास जो पत्थर है, उमसे उसे मारना, पर उसकी बातों मे मत आ जाना। यह कह कर वह तो उनको छोडकर रवाना हो गया। अंधा अंधे को ठगता है तो दुर्गति मे जाता है——

अन्धो अन्धं पह नेन्तो दूर मद्धाण गच्छई

दिन भर वे वहीं गोल चक्कर लगाते रहे। दूर से लोगों ने देखा तो सोचा अंधे यह क्या खेल कर रहे है ? कोई उनसे पूछता तो वे पत्थर फेंकना शुरु कर देते। सच्ची बात सुनना भी नही चाहते थे। अज्ञानी अंधे विपरीत मार्ग पकड कर घूमते ही रहे। जब उनके सभी पत्थर समाप्त हो गये तब एक युवक ने उनसे पूछा—तुम यह क्या कर रहे हो ? अंधों ने कहा—हम यात्रा कर रहे हैं।

उसने पूछा—तुम्हारे साथ कोई आख वाला भी है या नही—?

अंधो ने कहा है, वही तो हमे यात्रा पर लाया है, हमारे रुपये पैसे भी उसी के पास है।

युवकने कहा—वह तो यहा नही है ? मालूम होता है वह तुम्हारा रुपया लेकर भाग गया है। विश्वास किया तो सब चला गया। इसी तरह नास्तिक लोगो का भी तुम विश्वास कर बैठोगे तो तुम्हारा धर्म नष्ट हो जायगा और तुम भी अंधों की तरह लूट लिये जाओगे। नास्तिक लोग धर्म सुनते नहीं है, धर्म के नाम पर वे पत्थर ही फेंकते है। जब तक आत्मा मे दृढ श्रद्धा नही होती तब तक वह अंधेरे में ही पडा रहता है। जब श्रद्धा का दीपक प्रज्ज्वलित होता है तभी उसके जीवन मे अरुणोदय होता है।

जीवन का अरुणोदय सम्यग्दर्शन है। सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था सम्यग्दर्शन के भेद है। आत्मा मे जब यह पैदा होता है तभी जीवन मे सूर्योदय होता है।

सम्यक्त्वी हृदय मे ही धर्म स्थिर बनता है।

एक आदमी हाफते हाफते आता है। माली बगीचे मे काम कर रहा है। और बगीचे को स्वच्छ कर रहा है। माली जैसे बगीचे की रक्षा करता है वैसे ही आपको भी अपने सुविचारो की रक्षा करनी चाहिये। व्यर्थ की बातो का कचरा फेक दो और अर्थ युक्त बातो को ही समझो—ग्रहण करो।

सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे—इनको सीखो, बाकी को फेक दो।

वह आदमी माली से कहता है—मुझे बचा, मुझे बचा, मै तेरी शरण माग रहा हू।

माली पूछता है—बात क्या है?

वह कहता है—मै खूनी हू, लोग मेरे पीछे दौड रहे है। मुझे रात भर यहा रहने दो। मै तेरी शरण आया हू।

माली उसे अभय देता है। एक कमरे मे बद कर ताला लगा देता है। माली कहता है—मै तुझे रात की १२ बजे आकर बाहर निकाल दूगा।

जो मनुष्य दूसरे का खून करता है तब उसे कुछ नही लगता है, पर जब अपने खून का प्रसग आता है तब उसे मालूम होता है कि मैने कैसा घोर पाप किया है?

माली सोचता है—इसने किसका खून किया है? बाहर आवाज आती है—पकडो, पकडो—उसने लडके का खून कर दिया है। माली सोचता है—मेरा लडका बाहर गया था, क्या उसीका तो खून नही हो गया है? माली और उसकी पत्नी दोनो लडके को लेने निकले। सामने से आदमी लडके की लाश लेकर आ रहे थे। माली और मालन दोनो उसे देखते है तो रोने लगते है। लडका उसी का था। कोई खूनी खून कर भाग गया। माली सोचता है—जिसको मैने अभय दिया है कदा वही तो इसका खूनी नही है?

इधर एक आदमी फूट फूट कर रो रहा था। माली पूछता है—तू क्यो रो रहा है? लडका तो हमारा था। वह बोला—जिस समय हत्यारे ने उस लडके को मारा मै उसे देख रहा था। उसने उसे उछाला और जमीन पर पछाड दिया, फिर गला दबा कर भाग गया हुआ। मुझ से यह देखा नही गया। मेरी आत्मा कांप उठी और मै रोने लगा। हत्यारा खुले सिर था और काला कोट पहने हुए था। माली ने सोचा—वही आदमी मेरे पास आया है। क्या मै उसे पकडवा दू?

नही, मै ऐसा कैसे कर सकता हूं? मैंने उसे वचन जो दे दिया है—प्राण जाय पर वचन न जाई। मेरा लडका तो मर गया है, अव वह जीवित हो नही सकता। पर मैंने उसको अभय दिया है—उसका अहित नही होना चाहिये। बंधुओ! माली मे भी कैसी अनुकम्पा थी?

आशा ना मिनारा में तो बांध्याता आभ ऊंचा
सोना ना शिखरोअेना तूटी रे पड्या
अमे भवना मुसाफिर भूलारे पड्या।

मैंने आशा वाधी थी, लडका वडा होगा, कमा कर लावेगा। वहू आवेगी, घर का काम काज करेगी, पर वह तो चला गया। माली और उसकी औरत रोती है। उनकी आशाओं पर तुषारपात हो जाता है।

रात की १२ वजी। माली ने कहा था मै तुझे रात की १२ वजे वाहर निकाल दूगा। वह उठा। पत्नी ने कहा—कहा जाते हो? शंका वश वह भी साथ साथ आई। मालीने ताला खोल दिया। हत्यारा वाहर निकला और माली के पैर मे गिर कर वोला—मैं खूनी हूं। फिर भी तुमने मुझे वचा लिया। मुझे माफ कर दो। माली की औरत पूछती है—यह कौन है? माली कहता है— किसीसे कहना नही, हमारे वालक को मारने वाला यही है।

पत्नी—इसे तुमने घर मे रख रखा है? इसे पकडवा क्यो न दिया? खून का वदला तो खून से ही लेना चाहिये।

माली कहता है—पाप को पाप से धोया नही जा सकता है। अपना लडका तो मर गया, वह जीवित होने वाला नही है। इसे अपने किये पर पश्चत्ताप हो रहा है और माफी माग रहा है, इसको कष्ट पहुचे ऐसा कोई काम नही करना चाहिये। ज्ञानियो ने कहा है—

वेर थी वेर शमे न कदापि,
आग थी आग बुझाय ना
हिसाथी हिंसा हणाय नहीं को दी,
शस्त्रो थी शान्ति स्थपाय ना।
बोम्बना बनावनारा वैज्ञानिकों ने
एक दि जरूर पस्तावुं पडशे
प्रभु महावीरे चींध्या राहे जावु पडशे....प्रभु

वैर से वैर का शमन नही होता है। वह वढ़ता ही है। आग से आग शांत नही होती, हथियार से हथियार मिट नहीं सकते। मानव जीवन आज मौत के मुख में चला गया है—कव बम फटे और दुनिया का नाश हो जाय? ऐसे

जनम मरण आवे नाही
अेने जे कोई तारे शरणे
चौदह लोक नुं सुख समायुं
स्वामी तारे चरणे
केवल एटलु यांचु, प्रभुजी मारे बीजु वधुं ये काचु
शरणु तारु साचु प्रभुजी मारे बीजु वधुये काचु....

बन्धुओ ! भगवान का शरण लो, जन्म–मरण मिट जायगा। एक घर छोड कर दूसरे घर फिर नही भटकना पडेगा। जब शाश्वत लक्ष्मी प्राप्त कर लोगे तो यह सब भव–चक्कर समाप्त हो जायगा।

यह संसार तो असार है। मदिरा पान किये हुए मानव का कैसा हाल होता है? वैसा ही हाल संसारी का भी है। मोह की मदिरा मे डूबे हुए लोग रात और दिन काम–भोगों मे ही तल्लीन रहते हैं। इन्द्रियो के जड सुखो की तरफ ही उनकी दृष्टि रहती है। उपाश्रय मे आकर भी वे इधर उधर औरतो को ही देखा करते है। ऐसे लोग धर्म नही, धर्म स्थानक मे आकर भी पाप ही बटोरते है–अधर्म ही करते है। अगर तुम्हें अपनी आत्मा का भला करना है तो इन्द्रियो को वश मे करो, उन पर अंकुश रखो।

लभंति विमला भोए

ज्ञानी कहते है–अनती वार लक्ष्मी मिली, पुत्र, परिवार स्त्री आदि मिली –देवताओ का सुख वैभव भी अनेक वार मिला, पर एक धर्म ही नही मिला। जो नही मिला है उसको लेने का प्रयत्न करना चाहिये या जो मिला है उसी की चाहना करनी चाहिये। रोज रोज संसार बढाते रहना कहा की बुद्धिमानी है? आजकल तो पर्यूषण चल रहे है, उपाश्रय भी भरा हुआ दिखाई देता है–हुआ पारणा कि बद हुआ बारणा, आगे ऐसा हाल तो होने वाला नही है?

ज्ञानी कहते है अगर तुम्हे सच्ची लक्ष्मी चाहिये तो तुम्हे कर्मो से लडाई करनी होगी। तभी तुम अपनी आजादी प्राप्त कर सकोगे।

भाव निद्रा मे मत पडे रहो। भाव निद्रा छुडाने के लिये ही पर्यूषण आये है। जो दिन आकर चले जाते है वे वापिस लौट कर नही आ सकते है। जो जवानी बीत गई वापस लौट नही सकती। अतः समय का सदुपयोग करो। धुआ से मत खेलो। रसोई घर मे अगर लडकी धुआ पकडती है तो माता–पिता उसे देखकर हसते हैं। पर ज्ञानी तुम्हे देख कर हस रहे है। तुम दुनिया में क्या कर रहे हो! धुआ नही तो और क्या हाथ मे पकड रहे हो!

धूमाडाना बाचका भरता हाथ न आवे हीरो

आपको अपना जन्म–मरण वद करना हो और मोक्ष मे जाना हो तो भगवान के मार्ग पर चलना होगा। इधर–उधर भटकना वंद करना पडेगा।

जिसे जन्म मरण नही करना हो तो उसे वैसो का ही शरण ग्रहण करना चाहिये। नमस्कार मत्र का शरण लेना चाहिये। यह महामत्र अनादि काल का है और अनादिकाल तक रहने वाला है। कभी मिटने वाला नही है। पूर्ण मत्र है। उसका शरण लो, दूसरे का शरण क्यो लेते हो? कई लोग कहते है आज तो ओफिस मे वडा साहव आने वाला है।' अरे, आदमी जितना मोटा उतना ही नीयत का खोटा होता है। जो मास खाता हो, मदिरापान करता हो, क्या वह वडा आदमी है? वडा तो वह है जो न्यायनीति और प्रामाणिकता का जीवन मे पालन करता हो, ब्रह्मचर्य का पालन करता हो –वह वडा है। उसके सामने दूसरे सब तुच्छ है–छोटे है। वडा वनना है तो हृदय को वडा बनाओ। शरीर से या धन से कोई वडा नही होता, वडा तो सद्‌गुणो से हुआ जाता है।

एक राजा रेगीस्तान मे चला जा रहा है। प्यास लगी है। कही पानी नही दिखाई देता। अव क्या करे? वृक्ष भी नही। गरमी भयंकर पड़ रही है। ठडी छाया मे वैठ भी नही सकता। दूर से रेत चमकती है तो पानी जैसा दिखाई देता है, राजा वहा पहुचता है तो रेत ही रेत दिखाई देती है। पानी का कही निशान भी नही मिलता। इसी तरह आप भी लक्ष्मी के पीछे दौड लगा रहे तो–लक्ष्मी आगे और तुम पीछे दौडे चले जा रहे हो। वुद्धिमानी इसी मे है कि तुम उसे छोड दो, नही तो एक दिन वह तुम्हे छोड देगी।

सामने से एक चमार आरहा है, जिसकी मशक मे पानी भरा हुआ है। राजा उसे देखता है तो खडा हो जाता है, पानी–पानी चिल्लाता है। आप के हृदय मे भी वीतराग वाणी की ऐसी पुकार है क्या? यहा सामने तो हा जी हा–जी कर लेते हो, पर उपाश्रय से वाहर निकले नही कि पाजी हो जाने वाले तो नही हो?

आज चमार और भंगी कहा रहे है? गाधीजी के आन्दोलन मे आज अस्पृश्यता वहुत कम हो गई है। कोई भगी डाक्टर वन कर आवे तो तुम उसे सोफा पर बैठाते हो। क्योकि आज छुआछूत नही रही है। लेकिन पहले के जमाने मे तो यह वहुत थी। लोग भगी की परछाई भी शरीर पर नही गिरने देते थे। राजा चमार से पानी के लिये कहता है।

चमार कहता है–मै तो चमार हू, आप राजा है, मेरा पानी आपके काम का नहीं।

जनम मरण आवे नाही
अेने जे कोई तारे शरणे
चौदह लोक नुं सुख समायुं
स्वामी तारे चरणे
केवल एटलु यांचु, प्रभुजी मारे बीजु वधुं ये काचु
शरणु तारु साचु प्रभुजी मारे बीजु वधुये काचु....

बन्धुओ ! भगवान का शरण लो, जन्म–मरण मिट जायगा। एक घर छोड कर दूसरे घर फिर नही भटकना पडेगा। जब शाश्वत लक्ष्मी प्राप्त कर लोगे तो यह सब भव–चक्कर समाप्त हो जायगा।

यह ससार तो असार है। मदिरा पान किये हुए मानव का कैसा हाल होता है? वैसा ही हाल ससारी का भी है। मोह की मदिरा मे डूबे हुए लोग रात और दिन काम–भोगो में ही तल्लीन रहते है। इन्द्रियों के जड सुखो की तरफ ही उनकी दृष्टि रहती है। उपाश्रय मे आकर भी वे इधर उधर औरतो को ही देखा करते है। ऐसे लोग धर्म नही, धर्म स्थानक मे आकर भी पाप ही बटोरते है–अधर्म ही करते है। अगर तुम्हे अपनी आत्मा का भला करना है तो इन्द्रियो को वश मे करो, उन पर अकुश रखो।

लभंति विमला भोए

ज्ञानी कहते है–अनंती वार लक्ष्मी मिली, पुत्र, परिवार स्त्री आदि मिली –देवताओ का सुख वैभव भी अनेक वार मिला, पर एक धर्म ही नही मिला। जो नही मिला है उसको लेने का प्रयत्न करना चाहिये या जो मिला है उसी की चाहना करनी चाहिये। रोज रोज संसार बढाते रहना कहा की बुद्धिमानी है? आजकल तो पर्यूषण चल रहे है, उपाश्रय भी भरा हुआ दिखाई देता है–हुआ पारणा कि बद हुआ बारणा, आगे ऐसा हाल तो होने वाला नही है?

ज्ञानी कहते है अगर तुम्हे सच्ची लक्ष्मी चाहिये तो तुम्हे कर्मो से लडाई करनी होगी। तभी तुम अपनी आजादी प्राप्त कर सकोगे।

भाव निद्रा मे मत पडे रहो। भाव निद्रा छुडाने के लिये ही पर्यूषण आये है। जो दिन आकर चले जाते है वे वापिस लौट कर नही आ सकते है। जो जवानी बीत गई वापस लौट नही सकती। अतः समय का सदुपयोग करो। धुआ से मत खेलो। रसोई घर मे अगर लडकी धुआ पकडती है तो माता–पिता उसे देखकर हसते है। पर ज्ञानी तुम्हे देख कर हस रहे है। तुम दुनिया मे क्या कर रहे हो! धुआ नही तो और क्या हाथ मे पकड रहे हो!

धमाडाना बाचका भरता हाथ न आवे हीरो

माता वैरी पिता शत्रु येन बालो न पाठितः

याद रखो, अगर तुम अपने लडको को धर्म नही पढाते हो तो तुम उनके शत्रु हो–पालक नही हो।

वालक जन्म लेता है तो थाली वजाई जाती है। कर्मो के कारण ही वालक जन्म ग्रहण करता है, पर अव मै इसे ऐसी शिक्षा दू कि उसे फिर दुवारा जन्म-मरण न करना पड़े। इसीलिये थाली वजाई जाती है। है आपकी ऐसी तैयारी?

वालको को अच्छे कपडे पहनाना, सुदर खिलाना–पिलाना ही सव कुछ नही है, उन्हे संस्कार सुन्दर दो, जो पढाना चाहिये वही पढाओ, उनका चारित्र सुंदर वने वैसी शिक्षा दो–भण+तर उनकी शिक्षा ऐसी हो जिससे वे तिर जाय, तभी उनका जीवन सार्थक हो सकता है। पर आज ऐसा शिक्षण कौन लेता है? आज तो सभी इजीनियर, डोक्टर या सोलीसिटर ही वनना चाहते है, महावीर के आसन पर तो कोई भी वैठना नही चाहता। मेरा लडका महावीर के आसन पर वैठे और लोगो को कपाय से विरक्त करे, क्या कोई माता–पिता अपने वालक के लिये आज ऐसा भी सोचते है?

याद रखिये, यहा की कमाई यही रह जाने वाली है। धर्म करो, वही सुख देने वाला है।

धर्म करो रे प्राणिया–धर्म थकी सुख होय
धर्म करंता जीवडा दुखिया न दीठा कोय।

धर्म करने वाला कभी दुखी नही होता है, दुखी अधर्मी ही होता है। भूतकाल का धर्मी वर्तमान मे सुखी होता है, पर वर्तमान का अधर्मी, भविष्य मे दुखी होने वाला है। लेकिन जो वर्तमान मे सुखी है और धर्माचरण करता है तो यह पुण्यानुवधी पुण्य का फल है। वहीं सद्धर्म और शाश्वत सुख का दाता है। कर्म–सत्ता से जो सुख दवा हुआ है, उसे प्रकट करो और कर्म वधनो से मुक्त वनो। तभी शाश्वत सुख प्राप्त कर सकोगे।

केवल एटलुं याचु प्रभुजी मारे वीजु वधुये काचुं

भक्त कहता है–हे प्रभु ! मै केवल तेरा ही शरण चाहता हू। उपाश्रय मे जो भी आता है, मागलिक सुनाने को कहता है। ठीक है, उपाश्रय मे आये हो तो मगलिक भी सुनना ही चाहिये। पर क्या कभी यह भी सोचते हो कि हम तुम्हे क्या सुनाते है? मागलिक मे क्या सुनाते है? जो शरणा हम वताते है– क्या वह आप लेते हो?

अरिहत, सिद्ध, साधु और धर्म का शरणा आपको क्या [illegible] लगता है? आपको तो धन–वैभव–स्वजन और कामिनी का शरणा प्रिय लगता है। क्यों नहीं है।

चमार है? मेरा तो कंठ सूखा जा रहा है। मुझे जल्दी पानी पिला, मैं तुझे निहाल कर दूंगा।

चमार बोला–तुम्हारा क्या विश्वास! लिख कर दे दो। यह मरुस्थल का पानी है। बहुत कीमती है। एक कटोरी पानी पिलाऊंगा तो बदले मे आधा राज्य देना पडेगा। कहिये, मंजुर हो तो लिख कर दे दो।

राजा क्या करे? मर तो रहा है। वह आधा राज्य भी मौत के सामने दे देता है। उस समय लक्ष्मी की क्या कीमत है, जब जान जा रही हो? चमार राजा को रास्ता बताता है और आधा राज्य राजा से ले लेता है। बंधुओ? जीवन के सामने धन की कोई कीमत नही है। उस अमूल्य जीवन को आज तुम कहा खो रहे हो? यह क्यो नही सोचते हो।

आत्मा मे सिद्ध बनने की शक्ति रही हुई है। उसे तुम व्यर्थ क्यो घुमा रहे हो? प्रतिक्रमण याद नही होता है, पर हिसाब ३ साल का भी याद रह जाता है। फूटी कटोरी कही घुम हो जाय तो बहिने उसे भी याद रखती है, पर प्रतिक्रमण याद नही हो सकता, यह कैसी बात है?

लडका पढने में कमजोर है तो उसके लिये टयूशन रखते हो। सवासौ रुपया खर्च कर मास्टर रखते हो, पर धार्मिक टयूशन रखने के लिये भी कभी विचार करते हो? है कोई यहा ऐसा आदमी जो अपने बालको को धार्मिक शिक्षण देने के लिये टयूशन रखता हो। एक भी आदमी नही मिलेगा। यह कितने आश्चर्य की बात है?

मेरा लडका इगलिश स्कूल मे पढता है, यह कह कर आदमी गर्व का अनुभव करता है, पर याद रखिये धीरे धीरे वह ईसा का भक्त हो जायगा और महावीर को भूल जायगा। बच्चो का हृदय कोमल होता है। उन्हे कई तरह से भरमाया जा सकता है। चलते २ बस बंद हो जाती है। ड्राईवर कहता है–भगवान का नाम लो। कोई लडका महावीर कहता है, कोई राम, कोई कृष्ण कहता है। ड्राईवर कहता है इनका नाम लेने से तो बस चलती नही है। तुम तो ईशु का नाम लो। बोलो–ईशु क्रिस्त की जय। इस तरह वह बालको को भरमाता है और मोटर स्टार्ट कर देता है। बच्चे समझते है ईशु के नाम से ही बस चल पडी। बन्धुओ? तुम्हारा धर्म तो केवली प्ररूपित है, उसे क्यो लुटा रहे हो। आज तो पढाई भी ऐसी कराई जा रही है कि कुछ पूछने का काम नही है? भारत मे रहने वालो को भी पश्चिम का इतिहास पढाया जाता है। भला वह यहा किस काम का है? अपने महापुरुषों के बारे मे हमे जानना चाहिये कि पश्चिम के आदमियो के बारे मे हमे जानना चाहिये?

माता वैरी पिता शत्रु येन बालो न पाठितः

याद रखो, अगर तुम अपने लडको को धर्म नही पढाते हो तो तुम उनके शत्रु हो—पालक नही हो।

वालक जन्म लेता है तो थाली वजाई जाती है। कर्मो के कारण ही वालक जन्म ग्रहण करता है, पर अव मै इसे ऐसी शिक्षा दू कि उसे फिर दुवारा जन्म-मरण न करना पडे। इसीलिये थाली वजाई जाती है। है आपकी ऐसी तैयारी ?

वालको को अच्छे कपडे पहनाना, सुदर खिलाना—पिलाना ही सव कुछ नही है, उन्हे संस्कार सुन्दर दो, जो पढाना चाहिये वही पढाओ, उनका चारित्र सुदर वने वैसी शिक्षा दो—भण+तर उनकी शिक्षा ऐसी हो जिससे वे तिर जाय, तभी उनका जीवन सार्थक हो सकता है। पर आज ऐसा शिक्षण कौन लेता है ? आज तो सभी इंजीनियर, डोक्टर या सोलीसिटर ही वनना चाहते है, महावीर के आसन पर तो कोई भी वैठना नही चाहता। मेरा लडका महावीर के आसन पर वैठे और लोगो को कषाय से विरक्त करे, क्या कोई माता—पिता अपने वालक के लिये आज ऐसा भी सोचते है ?

याद रखिये, यहा की कमाई यही रह जाने वाली है। धर्म करो, वही सुख देने वाला है।

धर्म करो रे प्राणिया—धर्म थकी सुख होय
धर्म करंता जीवडा दुखिया न दीठा कोय।

धर्म करने वाला कभी दुखी नही होता है, दुखी अधर्मी ही होता है। भूतकाल का धर्मी वर्तमान मे सुखी होता है, पर वर्तमान का अधर्मी, भविष्य मे दुखी होने वाला है। लेकिन जो वर्तमान मे सुखी है और धर्माचरण करता है तो यह पुण्यानुबंधी पुण्य का फल है। वही सद्धर्म और शाश्वत सुख का दाता है। कर्म—सत्ता से जो सुख दवा हुआ है, उसे प्रकट करो और कर्म वधनो से मुक्त वनो। तभी शाश्वत सुख प्राप्त कर सकोगे।

केवल एटलुं याचु प्रभुजी मारे वीजु वधुये काचुं

भक्त कहता है—हे प्रभु ! मै केवल तेरा ही शरण चाहता हू। उपाश्रय मे जो भी आता है, मांगलिक सुनाने को कहता है। ठीक है, उपाश्रय मे आये हो तो मंगलिक भी सुनना ही चाहिये। पर क्या कभी यह भी सोचते हो कि हम तुम्हे क्या सुनाते है ? मांगलिक मे क्या सुनाते है ? जो शरणा हम बताते है— क्या वह आप लेते हो ?

अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म का शरणा आपको क्या अच्छा लगता है ? आपको तो धन—वैभव—[illegible] और [illegible] का शरणा [illegible] है। [illegible]।

मेरा लडका अमेरिका जा रहा है, उसे जरा मागलिक वरावर सुनाना। जिससे कि वह खूब कमाकर वापस आवे। यही भावना आपकी रहती है न? लेकिन हमारी मागलिक ऐसी नही है जैसी कि आप सोच बैठे हो। हमारी मागलिक का जो शरणा ले लेता है वह तो अव्यावाध सुख-लक्ष्मी का स्वामी वन जाता है। अतः दूसरे सभी शरण छोडकर वीतराग का शरण लो, वही सच्चा शरण है।

एक राजा कई देश जीत कर आया। साथ मे वहुत धन-माल भी लाया। उसके १२ रानिया थी। सभी को वुलाया और कहा—तुम को जो चाहिये लेलो-सब तरह की वस्तुओ का ढेर यहा लगा हुआ है, जो इच्छा हो ले सकते हो। सभी रानियो ने अपनी अपनी इच्छानुसार धन ले लिया। एक दासी को भी राजाने कहा—तू भी जो इच्छा हो लेले। दासी बोली—मुझे कुछ नही चाहिये। मुझे तो आप ही चाहिये। आप मिल गये कि सव मिल गया।

आपको क्या चाहिये? दासी जैसी वुद्धि भी आज कहां है? एक भगवान को ही पकड लो तो वेडा पार न हो जाय?

१०५ डिग्री वुखार हो और सामने दूधपाक का कटोरा हो तो वुखार में वह भी कडुवा लगता है। दूधपाक मीठा है, पर वुखार में वह भी कटु लगता है। ऐसे ही जव तक आत्मा मे मोह का वुखार रहता है तव तक आपको वीतराग की अमृतवाणी भी खारी जहर जैसी लगती है।

जैसे ज्वर के जोर से भोजन की रुचि जाय।
वैसे कुकर्म के योग से धर्म की रुचि जाय।

कुकर्म के योग से धर्म प्रिय नही लगता है। क्योकि मोह का वुखार चढा हुआ है। उपाश्रय मे लोग आते है तो कई अपना आसन, माला या पूजणी भूल जाते है—पर कोई अपना पाकिट भूल गया हो ऐसा भी कभी सुनाई पडता है? क्योकि उसे तो अपना समझ लिया है न? वह कैसे भूल सकता है? कुकर्म किये है तभी धर्म मे रुचि नहीं होती है।

एक वैद्यराज ने वीमार को दवाई दी। रोज ३ पुडिया के हिसाव से ८ दिन की दवा दे दी। वीमार रोज तीन पुडियो की दवा फेक देता और कोरा कागज खा लिया करता। अक्कल का अजीर्ण ही था उसे। ८ दिन तक वह ऐसा ही करता रहा। नौवे दिन वह वैद्यराज के पास आया और वोला—तुम्हारी दवा से तो कुछ भी फायदा नही है। वैद्यराज ने पूछा—क्या दवा सव वरावर ली थी? वह बोला—आपने दवा लेने को कव कहा था? आपने तो पुडिया खाने का कहा था। मै रोज दवा फेक कर ३ पुडिया खा लेता था। वंधुओ? यही हाल आज आपका भी हो रहा है। धर्म का ऊपरी दिखावा करने से कोई

लाभ नही हो सकता है। धर्म तो अदर से होना चाहिये—आत्मा का कषाय भाव मिटना चाहिये तभी उससे लाभ हो सकता है।

जहां केशरीसिंह क्रीडा करे त्यां ना मातंग परिवार रहे
एम जो तू मले मारा फेरा टले भव दुख हरवा,

जिस वन मे केशरी सिंह रहता है वहा हाथी नही रह सकता है। हाथी शरीर से मोटा होता है—स्थूल होता है। पर मन से कमजोर होता है अत सिंह उसे परास्त कर देता है। ऐसे ही भक्त भी भगवान की प्रार्थना करे तो वह अपने मोटे मोटे कर्मो को भी नष्ट कर सकता है। हे भगवान! केवल एक बार मुझे मिल जाओ तो मेरा जन्म–मरण मिट सकता है। अत. तुम भगवान के चरणो मे सिर रख दो। औरत के सामने तो कई बार झुक गये हो। भगवान के सामने केवल एक बार ही सच्चे मन से झुक जाओगे तो वे आध्यात्मिक लक्ष्मी के स्वामी है, तुम्हे भी उसी शाश्वत लक्ष्मी के स्वामी बना देगे। तुम्हारे अन्तर्मन का ताला खोल देगे जिससे अक्षय निधि का खजाना तुम्हे मिल जायगा। जिसे ऐसा अक्षय सुख का खजाना मिल जाता है वे ही इस ससार सागर को पार कर कृतकृत्य हो जाते है।

शुक्रवार ता. २३-८-६८

[९७]

त्रैलोक्य प्रकाशक, महाज्ञानी, महाध्यानी चौबीसवे तीर्थंकर का अभी शासन चल रहा है। चतुर्विध सघ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहे जाते है। तीर्थंकर अनत हो गये, अनत होने वाले है। २४ वे भगवान महावीर स्वामी ने तीर्थंकर पद प्राप्त किया, वे मनुष्य ही थे। मनुष्य भव मे ही आत्मा तीर्थंकर बन सकता है, देवता या नारकी तीर्थंकर नही बन सकता। मनुष्य भव ही एक ऐसा भव है जिसमे मानवता प्राप्त की जा सकती है। दूसरे किसी भव मे वह नही मिल सकती है।

जिसमे मानवता की सुवास होती है, देवता भी उस सच्चे मानव की सेवा करने पृथ्वी पर आते है। उसकी महिमा तो भारी है। तीर्थंकर तो मनुष्य ही बन सकता है। इसीलिये मनुष्य भव को दुर्लभ कहा जाता है। जिसके मन मे धर्म रहता है उसको देवता भी नमस्कार करते है;

देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।

धर्म तो सभी [illegible] करते है, पर [illegible] नहीं [illegible]।

मेरा लडका अमेरिका जा रहा है, उसे जरा मागलिक वरावर सुनाना। जिससे कि वह खूब कमाकर वापस आवे। यही भावना आपकी रहती है न? लेकिन हमारी मागलिक ऐसी नही है जैसी कि आप सोच बैठे हो। हमारी मागलिक का जो शरणा ले लेता है वह तो अव्यावाध सुख–लक्ष्मी का स्वामी वन जाता है। अत: दूसरे सभी शरण छोडकर वीतराग का शरण लो, वही सच्चा शरण है।

एक राजा कई देश जीत कर आया। साथ मे वहुत धन–माल भी लाया। उसके ९९ रानिया थी। सभी को वुलाया और कहा –तुम को जो चाहिये लेलो- सव तरह की वस्तुओ का ढेर यहा लगा हुआ है, जो इच्छा हो ले सकते हो। सभी रानियो ने अपनी अपनी इच्छानुसार धन ले लिया। एक दासी को भी राजाने कहा–तू भी जो इच्छा हो लेले। दासी बोली–मुझे कुछ नही चाहिये। मुझे तो आप ही चाहिये। आप मिल गये कि सव मिल गया।

आपको क्या चाहिये? दासी जैसी वुद्धि भी आज कहा है? एक भगवान को ही पकड लो तो बेडा पार न हो जाय?

१०५ डिग्री बुखार हो और सामने दूधपाक का कटौरा हो तो वुखार मे वह भी कडुवा लगता है। दूधपाक मीठा है, पर बुखार मे वह भी कटु लगता है। ऐसे ही जव तक आत्मा मे मोह का बुखार रहता है तव तक आपको वीतराग की अमृतवाणी भी खारी जहर जैसी लगती है।

जैसे ज्वर के जोर से भोजन की रुचि जाय।
वैसे कुकर्म के योग से धर्म की रुचि जाय।

कुकर्म के योग से धर्म प्रिय नही लगता है। क्योकि मोह का वुखार चढा हुआ है। उपाश्रय मे लोग आते है तो कई अपना आसन, माला या पूजणी भूल जाते है–पर कोई अपना पाकिट भूल गया हो ऐसा भी कभी सुनाई पडता है? क्योकि उसे तो अपना समझ लिया है न? वह कैसे भूल सकता है? कुकर्म किये है तभी धर्म मे रुचि नही होती है।

एक वैद्यराज ने वीमार को दवाई दी। रोज ३ पुडिया के हिसाव से ८ दिन की दवा दे दी। वीमार रोज तीन पुडियो की दवा फेक देता और कोरा कागज खा लिया करता। अक्कल का अजीर्ण ही था उसे। ८ दिन तक वह ऐसा ही करता रहा। नोवे दिन वह वैद्यराज के पास आया और वोला–तुम्हारी दवा से तो कुछ भी फायदा नही है। वैद्यराज ने पूछा–क्या दवा सव वरावर ली थी? वह बोला–आपने दवा लेने को कव कहा था? आपने तो पुडिया खाने का कहा था। मै रोज दवा फेंक कर ३ पुडिया खा लेता था। वन्धुओ? यही हाल आज आपका भी हो रहा है। धर्म का ऊपरी दिखावा करने से कोई

लाभ नही हो सकता है। धर्म तो अदर से होना चाहिये–आत्मा का कषाय भाव मिटना चाहिये तभी उससे लाभ हो सकता है।

जहां केशरी सिंह क्रीडा करे त्यां ना मातंग परिवार रहे
एम जो तू मले मारा फेरा टले भव दुख हरवा,

जिस वन मे केशरी सिह रहता है वहा हाथी नही रह सकता है। हाथी शरीर से मोटा होता है–स्थूल होता है। पर मन से कमजोर होता है अत सिह उसे परास्त कर देता है। ऐसे ही भक्त भी भगवान की प्रार्थना करे तो वह अपने मोटे मोटे कर्मो को भी नष्ट कर सकता है। हे भगवान! केवल एक बार मुझे मिल जाओ तो मेरा जन्म–मरण मिट सकता है। अत. तुम भगवान के चरणो मे सिर रख दो। औरत के सामने तो कई बार झुक गये हो। भगवान के सामने केवल एक बार ही सच्चे मन से झुक जाओगे तो वे आध्यात्मिक लक्ष्मी के स्वामी है, तुम्हे भी उसी शाश्वत लक्ष्मी के स्वामी बना देगे। तुम्हारे अन्तर्मन का ताला खोल देगे जिससे अक्षय निधि का खजाना तुम्हे मिल जायगा। जिसे ऐसा अक्षय सुख का खजाना मिल जाता है वे ही इस ससार सागर को पार कर कृतकृत्य हो जाते है।

शुक्रवार ता. २३-८-६८

[५७]

त्रैलोक्य प्रकाशक, महाज्ञानी, महाध्यानी चौबीसवे तीर्थंकर का अभी शासन चल रहा है। चतुर्विध सघ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहे जाते है। तीर्थंकर अनत हो गये, अनन्त होने वाले है। २४ वे भगवान महावीर स्वामी ने तीर्थंकर पद प्राप्त किया, वे मनुष्य ही थे। मनुष्य भव मे ही आत्मा तीर्थंकर बन सकता है, देवता या नारकी तीर्थंकर नही बन सकता। मनुष्य भव ही एक ऐसा भव है जिसमे मानवता प्राप्त की जा सकती है। दूसरे किसी भव मे वह नही मिल सकती है।

जिसमे मानवता की सुवास होती है, देवता भी उन महा मानव की सेवा करने पृथ्वी पर आते है। उनकी महिमा गाते है। तीर्थंकर तो मानव ही बन सकता है। इसीलिये मनुष्य भव को दुर्लभ कहा जाता है। जिसके मन मे धर्म रमता है उसको देवता भी नमस्कार करते है।

देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।

धर्म मे जिसका मन [illegible]

चक्रवर्ती अपना सारा राज्य क्यो न बाट दे, पर वहा देवता नही आते। लेकिन मानवता के गुण जहा प्रगट होते है देवता भी वहा हाजिर हो जाते है। एक अट्ठभ (तेला) तप किया नही कि देवता भी सेवा मे आ जाते है, पर साधक उनसे कहता है—मुझे तुम्हारी जरुरत नही है। पुण्य मेरा प्रवल है तो तुम भी आये हो, पर मेरे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे तुम कुछ भी अन्तर नही कर सकते हो। पुण्याई तो अपनी होनी चाहिये। पुण्याई थी तो देवताओ ने द्वारिका भी बसाई। लेकिन जब पाप का उदय हुआ तो उसको भी कोई देवता बचा न सका। पाप का उदय होता है तो जो वर्तमान है वह भी चला जाता है।

लडके अपने है, पर पुण्य न हो तो वे भी चले जाते है या बदल जाते है और बाप को वृद्धाश्रम मे जाना पडता है। पुण्याई होती है तो पडौसी भी सेवा करने आते है। यह सब खेल पुण्य का ही है।

मान्या पोताना थई ने पराया अंतर दाह लगाडे।
कोई पराया थईने पोताना अंतर दाह मिटावे।
कोई बने वावल ना कांटा कोई तरुवर छाया—
कौन अपना कौन पराया ....!

जिसको अपना माना, जिसके लिये दुनिया को ठगते हो, काले काम करते हो? सन्तान के लिये क्या नही करते? तुम्हारे लिये कितना चाहिये। सचय तो लडको के लिये ही करते हो न? पर याद रखिये, लडको के भाग्य मे जो होगा वही होगा। तुम्हारा किया कुछ काम आने वाला नही है। जिसे तुम आज अपना समझ रहे हो, अपना–अपना कह कर जीभ थकती नही है, वह भी तुम्हारा रहेगा या नही कौन जानता है? मा बीमार हो—लडके का मुह देखना चाहती हो और लडका कहे—मेरी मा तो कभी की मर गई तो ऐसा लडका तुम्हे क्या सुख दे सकेगा? फिर भी तुम दिन रात लडको के लिये सम्पत्ति इकट्ठी करते रहते हो, क्या कभी धर्मादा करने का भी नाम लेते हो? धर्मादा के लिये भी कुछ सम्पत्ति जोडते हो।

खोजा समाज को देखिये। हर एक खोजा, जितना भी कमाता है, अपनी कमाई का दस प्रतिशत आगारवा को भेजता है। कहिये, आप कितना धर्मादा मे देते हो! सचय करना पाप है—परिग्रह है। धर्म क्यो नही करते? धर्म है वहा तक सुख भी है। पुण्य की टाकी मे पानी भरा है तो पानी मिलने वाला ही है। जब वह खाली हो जायगी तब लाख प्रयत्न करो फिर भी पानी मिलने वाला नहीं है। अतः हृदय मे मानवता पैदा करो। मानवता का दीपक कहीं बुझ न जाय

इसका हरदम ध्यान रखो। यही तुम्हारे जीवन-पथ को प्रकाशित करने वाला है। कहिये, आपके हृदय मे भी मानवता है या नही?

एक वार नारदजी दुनिया मे यह पता करने निकले कि दुनिया मे मानव-वता भी है या दानवता ही है? वे सव से पहले वम्वई मे आये। भिखारीका वेष धारण कर हाथ में वीणा ली और वजाते हुए कहने लगे—देखो, गरीव की तरफ भी कुछ ध्यान दो। पर यहा देखने की फुर्सत किसको है? कोई मोटर से, कोई मोटर साइकिल से तो कोई वस से भागमभाग कर रहा है? धर्म के लिये भी फुर्सत कहा? सामायिक पूरी हुई नही कि आदमी भागने लगते है? व्याख्यान मे स्तुति भी पूरी नही हुई कि उठ खडे होते हो? जड का आकर्पण इतना अधिक वढ गया है कि वह कही चैन नही लेने देता है। लडका रोता है, पैसा दे दो तो चुप हो जाता है—माया की तो वात ही क्या है? १०५ डिग्री वुखार हो और व्याख्यान संग्रह की पुस्तक पढने को दो तो उसमे भाई को रस नही आता है। परन्तु व्यापार की वात करने कोई आजाय और सौदा करते करते दो घटे भी निकल जाय तो उसमे भाई का सव दर्द गायव हो जाता है। ऐसा रस धर्म मे पैदा क्यो नही होता है?

कई लोग यह कहते है—प्रतिक्रमण मे रस नही है। रस कहा से पैदा हो? जव तक कि उसको समझा न जाय? प्रतिक्रमण का भी वडा महत्व है। प्रतिक्रमण को कम मत समझो, वह तो जीवन की आधार शिला है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप की आराधना करना मोक्ष का मार्ग है। उन पर चलने चलते अतिचार हो जाय तो उसके लिये प्रतिक्रमण किया जाता है।

यह प्रतिक्रमण ही जीवन मे उतर जाय तो जीवन धन्य वन सकता है। जैन का लडका साल मे एक वार सम्वत्सरी के दिन तो प्रतिक्रमण करता ही है। और चाहे कुछ न करे—पर प्रतिक्रमण के लिये तो आता ही है। वह भी देखा देखी उठता वैठता है। क्योंकि सामायिक और प्रतिक्रमण आता तो है नहीं? अतः प्रति-क्रमण मे रस कैसे आ सकता है? मेरा लडका वी. ए. पढा हुआ है, पर सामायिक भी नहीं आती हो तो वे तुम्हारे काम को आगे कैसे चला सकेंगे? तुम्हारी जगह भविष्य मे आने वाले तो वे ही हैं। कैसे तुम्हारी धर्म-पेटी का सचालन वे कर सकेंगे? इसका भी कभी विचार करते हो?

शनिवार और मंगलवार पालने वालो! कभी आठम और चौदस का भी ध्यान रखते हो? हम आहार लेने जाते हैं तब मालूम पड़ता है कि तुम क्या करते हो? अष्टमी हो या पक्खी तुम आलू खाना नहीं छोडते—प्याज और लहसुन खाते हो! दूर हो गई? तुम श्रावक भी कैसे कहला सकते हो? [illegible]

भी प्याज और लहसुन का त्याग कर देते है। तुम तो महावीर की संतान हो। तुम यह क्या कर रहे हो? ऐसा अंधेर तुम्हारे यहा कैसे चल सकता है?

सिनेमा की नटी आ जाती है तो उसे देखने लग जाते हो, उसे क्या देखना? देखना ही है तो गुणो को देखो, अवगुणो का क्या देखना?

तुम्हारे पास तो त्यागी सत मुनिराज है– जान चली जाय तो जाय, पर जो कच्चा पानी भी नही लेते–ऐसे त्यागी संतो को छोडकर दूसरो को क्या देखते हो? रोज सुबह उठ कर उनके दर्शन तो कर लिया करो। क्या करे, फुर्सत नही है। मरने की भी फुर्सत नही है। तो यह फुर्सत कब मिलेगी? क्या मरे बाद तुम यह करोगे? बधुओ! समझो–सम्यग् दर्शन को समझो। पुण्य प्रबल है तो यह भव मिला है। उसमे भी आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और उत्तम धर्म मिला है।–

मारा जिनवरजी नी जोड
जगत मां जोता जडशेना!
ऐना शुद्ध जीवन नी होड़
कोई देवो करशे ना-----

ऐसे जिनेश्वर देव दुनिया मे कही नही मिल सकेगे। उनके महान–सन्देशो का कथन कल किया जायगा।

भगवान ने हमे भाव निद्रा से जगाया है। लेकिन आज आप क्या कर रहे हो? ग्रह शाति के लिये, धन–धान्य के लिये तुम जाप कराते हो, इस तरह तुम अपने धर्म को क्यो भूल रहे हो? तावूत नीचे निकल रहे हो –लडका पैदा हो जायगा, यह सोच कर। कैसी तुम्हारी दशा हो गई है? पालीताणा की यात्रा जाते हो तो पहले पीर के यहा जाते हो–कहा तक मिथ्यात्व घुस गया है? ऐसे मे समकित कैसे प्रकट हो सकेगी?

जैन कभी ऐसा हो सकता है? क्या वह नाग पचमी मना सकता है? कुदेव और कुधर्म की वह आराधना कैसे कर सकता है? पाप और पुण्य को मानने वाला ऐसा कभी नही कर सकता। पुण्य होगा तो कोई देवता तुम्हारा बाल भी बांका नही कर सकेगा। चक्रवर्ती भी मरे तो ७ वी नरक मे गये, कोई देवता उन्हे नही बचा सका। उनका पाप ही उन्हे वहां ले गया।

पत्थर गारोने झाडवा पूज्या, पूज्या पीपल पान
पूज्या उन्दरडा, गावडी पूजी, श्वानने निर्यु धान
हरिजन तरशो जाणो, पायु नहि पावलु पाणी

पत्थर पूजा, सिन्दूर लगा दिया, हनुमानजी की पूजा हो गई। कहां हनुमानजी का बल और कहा पत्थर का बल।

शुरु हो जाती है। वह पानी से भीज जाता है। हवा तेज चलने लगती है। दर्जण कहती है–भाई, ठंडी हवा चल रही है, बाहर मत खडे रहो, अंदर आ जाओ, यहा बैठ जाओ। नारद कहता है–तू मुझे अंदर बुला रही है? वह कहती है–हा, इसमे क्या है? इसान ही इंसान की सेवा करता है। वह पानी पिलाती है। पूछती है–तुम तो भूखे दीखते हो, कितने रोज से खाना नही खाया है? नारद कहता है–तीन दिन से कुछ भी नही खाया है।

वह बोली—घर मे रोटी और गुड है–चलेगा न?

नारद कहता है–मैं खा लूगा तो तुम क्या खाओगी? वह कहती है–मैं कल खा लूगी, तुम्हे फिर कब मिलेगा, तीन दिन से तो भूखे हो। वह अपना खाना उसे खिला देती है। अपने पास एकही चादर है वह उसे दे देती है और कपडे सुखा लेने का कहती है। सोने का बिस्तर भी एक ही है। वह कहती है मेरा एकाएक लडका बीमार है–मुझे रात भर उसके पास ही बैठना पडता है–मुझे बिस्तर की जरुरत नही है, तुम इस पर सो सकते हो। कहिये! उस गरीब बाई मे भी कैसी मानवता है? है आप मे भी ऐसी मानवता? ये पर्यूपण चल रहे है। ऐसी मानवता पैदा करो। किसी मे रुपये मागते हो और वह न दे सके तो उसे माफ कर दो। तुम्हारा यह दान हार्दिक दान कहा जायगा। कीर्ति दान तो बहुत दिया, ऐसा हार्दिक दान देकर भी लोगो के मददगार बनो। ऐसी मदद करने वाले ही मर्द कहला सकते है।

दर्जण सोचती है–बेचारे के पास पहनने को कुरता भी नही है। मेरे पास कपडा पडा है–उसकी कमीज बना कर इसे दे दूगी तो काम आ जायगा। रात की २ बजे है, वह मशीन पर सीने बैठती है। लडका चिल्लाता है। मा कहती है–क्या हुआ बेटा? डर मत, मै तेरे पास मे ही हू। लडका कहता है-आकाश मे एक खडी चोटी वाला वीणा बजा कर गाना गा रहा है। तू भी सुन रही है न? मां ने समझा बालक सन्निपात ज्वर मे बडबडा रहा है। वह उसे ओढाकर सुला देती है। और फिर से वह कमीज सीने बैठ जाती है। सुबह हुई। नारद जी हसने लगे। बाई ने पूछा–आप हंस क्यो रहे है? वह बोले–तेरी मूखर्ता पर मुझे हसी आ रही है। तेंने मुझ जैसे अनजान आदमी को भी घर मे आश्रय दिया, खुद भूखे रह कर मुझे खिलाया, बालक बीमार है, उसे छोड-कर भी मेरे लिये कमीज सी। यह सोच कर मुझे हंसी आ रही है।

दर्जण बोली–यह तो मेरा धर्म है–तुम्हारी सेवा फिर मुझे कब मिलेगी?

नारद कहते हैं–तेंने जो मेरी सेवा की है उसका फल तुझे जरूर मिलेगा। तेरा लडका भी स्वस्थ हो जायगा। सुबह उठ कर जो तू काम हाथ मे लेगी

वह शाम तक पूरा नही होगा। नारद यह आशीर्वाद देकर चले गये। बाई घर मे आती है। जिस कपडे में से नारद का कमीज बनाया था वह उठाकर वह देखती है। लेकिन वह तो पूरा ही नही होता। कपडे का दूसरा छोर नहीं मिलता। कपडा बढता ही चला जाता है। लडका भी बिस्तर से उठकर आ जाता है। कहता है—मा, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। तू तेरा काम कर, आज दूध मैं खुद ही ले आऊंगा। शाम तक तो कपडे का ढेर लग गया—थान के थान खडे हो गये।

सामने ही माधव भाई का बंगला था। करोडपति सेठ का बंगला। सेठ कभी कभी हवा खाने यहा आ जाया करते थे। जब भी सेठ आते थे तो बर्तन माजने का काम यह दर्जण बाई कर दिया करता थी। जब रातको यह बाई बगले पर गई तो सेठाणी बोली—आज तो सारे दिन तुम आई ही नही। घर में तो एक ही लडका है, फिर सारे दिन क्या करती रही? दर्जन ने रात की सारी बात कह सुनाई। साधु के आशीर्वाद से मेरा तो सारा घर कपडे से भर गया है। सेठानी ने कहा—क्यो गप्पे मारती है? ऐसा भी कभी हो सकता है? घर पास में ही था। सेठानी भी देखने साथ आ गई। जहां तहा कपडा ही कपडा पडा था। उसे देखकर सेठानी ने कहा—अरे, उस भिखारी को मेरा बंगला नहीं दिखाई दिया जो वह इस झोपडी में आकर रहा?

दो दिन बाद फिर वह साधु वीणा के साथ घूमता दिखाई दिया। दर्जिन ने सेठानी को सब कुछ बता तो दिया ही था। साधु को देखा तो सेठानी ने अपने दरवाजे खोल दिये और उससे कहा—भिखारी यहां आ, यहां बैठ जा, मैं तुझे खाना खिलाऊंगी। वह उसे नौकरो का बचा हुआ खाना खिलाती है—सूखा शाक उसे परोसती है। नारद वह खाना खा लेता है। सेठानी सोने के लिये भी एक चटाई दे देती है। सोचती है—सुबह होते होते तो मुझे आशीर्वाद दे जायगा और मैं अपना भंडार भर लूंगी।

लाओ, मै निकाल दूगी, पर क्या अब वह दे सकती है? वह तो सारे घरमे झाडू देने लगी।

इतने मे सूर्यवंशी कुमार नीचे उतरे। उन्होने देखा—मां झाडू लगा रही है। बोले—यह तू क्या कर रही है? नौकर क्या करते है? वह कहती है—ये नौकर सभी हरामखोर है। बराबर काम नही करते। लडका झाडू लेता है, पर वह नही छोडती। सेठ भी आये, सेठानी का हाल पूछा। पर वह झाडू ही निकालती रही। सब को वह झाडू निकालना ही सिखाती रही। सेठने समझा इसे तो कोई भूत लग गया है। भोपे को बुलाचो—वह मंत्र करेगा तो ठीक हो जायगा।

भुवो आव्यो अेने मार्यो हांकोटो
झंटीया माथाना ताणी।
दाणा जोया ने डाकला वाग्या
पोढी गयो मांदो प्राणी......काया.....

भोपे ने बहुत कोशिश की, पर कुछ नही हुआ। हताश हो वह लौट गया। दौपहर हो गई। सेठ कहता है, काली देवी का भोपा बुलावो। सेठ मोटर भेजता है। वह भी जंत्र—मंत्र करता है—सिर पकडकर हिलाता है—पर वह भी हार खाकर चला जाता है। सेठ अब डाक्टर को बुलाता है। सोचता है, इसका दिमाग खराब हो गया है। गांव का बडा डाक्टर आता है—यत्र लगा कर देखता है। सेठानी डाक्टर को भी धक्का मार कर दूर करती है और झाडू लगाती रहती है। डाक्टर भी भाग खडा होता है। ऐसा करते करते शाम हो गई। सूरज डूब गया। सेठानी के हाथ से झाडू भी छूट गया। वह जमीन पर गिर पडी। पानी मागा, पिया और आराम से बैठ गई। सेठने पूछा—अब तबियत ठीक है न? सेठानी बोली—मुझे क्या हुआ था? सेठ बोला—अरे सुवह से तो झाडू लगा रही हो, सारे गाव के भोपे आ गये, डाक्टर आ गये, और फिर पूछ रही हो कि मुझे क्या हुआ? सेठानी को याद आया—एक भिखारी आया था उसने मुझे कहा था कि सुवह जो काम हाथ में लेगी शाम तक वह पूरा नहीं होगा। मै तो गहने लेने का सोच रही थी, पर बीच मे झाडू उठा लिया, उसी का यह नतीजा हुआ।

कहने का आशय इतना ही है कि जैसी भावना होती है वैसा ही फल भी अवश्य मिलता है—

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

सेठानी अधिक पाने के लोभ से नारदजी को ले गई तो वह दुखी ही बनी। निस्वार्थ भाव से जो दान—पुण्य करते है वे ही आत्मा का कल्याण कर सकते है।

ता. २४—८—६८

[५८]

भ. महावीर स्वामी २४ वे तीर्थंकर थे। वे तीर्थंकर कैसे बने? पूर्व भव मे क्या क्या किया? जिससे वे तीर्थंकर पदको प्राप्त हुए। आज इसी का वर्णन किया जायगा। जब से जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तब से ही उसके भवो की गिनती की जाती है।

अनंतकाल थी आथडयो, विना भान भगवान।
सेव्या नही गुरु संतने मुक्यु नही अभिमान ।

जीव अनतकाल से जन्म-मरण कर रहा है। सम्यक्त्व रहित अनंत जन्म-मरण की कोई गिनती नही की जा सकती। जब वह समकिती बनता है तभी उसका संसार सीमित बनता है। अतः तब से आगे के भवो की ही गिनती की जाती है। भगवान महावीर का जीव महाविदेह क्षेत्र मे नहिमार नामक सुथार के रूप मे जन्म धारण करता है। वह लकडे की पहचान करने मे बहुत होशियार था। लकडे भी कई तरह के होते है—साग—शीशम—आम, बबूल आदि २। वह जंगल मे जाता और कौनसा लकडा पका हुआ है? इसकी पहचान कर गाव मे ले आता था। उस समय साधुओ का भी टोला विहार करता रहता था।

महाविदेह क्षेत्र मे सदैव के लिये चौथा आरा रहता है। वहा हर समय तीर्थंकर रहते है। वहां सत मुनिराज भी रहते ही है। एक मुनियो का टोला चला आ रहा था। एक संत पीछे रह जाता है—वह मार्ग भूल जाता है। पशुओ के पैरो के चिह्नो को देखते हुए चलता है और यो वह भयानक जगल मे फंस जाता है। रास्ता भूल जाने से मुनि परेशान हो जाता है। गरमी भयकर पड रही है—तृषा लगती है। अब क्या करे? चलने की शक्ति भी नही रही। कोई भी आदमी दिखाई नही देता। मुनिने सोचा—अब यह देह रहने वाला नही है। एक पेड के नीचे उन्होने कुछ भूमि साफ की—पूजी और वही संथारा कर लेने का विचार करने लगे।

देह भाव क्षय होय जहां अथवा होय प्रशांत
ते कहिये ज्ञानी दशा बाकी कहिये भ्रान्त ।

देहाध्यास छोड देना आसान बात नही है। जड और चेतन की बात करने वाले तो बहुत है, पर चाय का प्याला न मिले तो उनका सिर भी फिरने लग जाता है। उस भयानक जंगल मे उस सुथारने मुनि को देखा तो सोचा—यह मुनि यहा कैसे पडे है? उसे उन्हे देख कर अपूर्व हर्ष हुआ। वह उनके पास आया और बोला—आप यहा कैसे? पधारो मेरे साथ और शुद्ध आहार—

पानी ग्रहण करो। मुनि कहते है–मैं रास्ता भूल गया हूं और इस जंगल मे फंस गया हूं। तुम कौन हो? वह बोला–मैं सुथार हूं। लकडी लेने जंगल में आया हूं। मेरे साथ और भी कई आदमी है। पधारो और कुछ ग्रहण करो। मुनि गये और शुद्ध आहार–पानी ले आये। सुथारने प्रेम पूर्वक वहराया। उसे कोई लोभ नही था। दान देना और वदले मे कुछ नही चाहना ऐसा वहुत मुश्किल होता है। जैन साधु तो आशीर्वाद भी नही देते। और आहार न मिले तो पश्चात्ताप भी नही करते। वे तो सदैव समभाव मे ही रहते हैं।

साधु गृहस्थ के वनाये हुए आहार में से ही लेते हैं, अपने लिये वनाये हुए मे से वे नही लेते। वस्तु निर्दोष होनी चाहिये। फिर वह रूखी सूखी है तव भी अमृत है। देनेवाला भी शुद्ध भाव से देता है तो वह अपना अनंत संसार नष्ट कर सीमित कर लेता है। कृष्णपक्ष से वह शुक्ल पक्ष में आजाता है,–मिथ्यात्व से हटकर वह सम्यक्त्व मे आ जाता है।

हित, मित और श्रेष्ठ योग मिलने पर जब आत्मा सम्यग् दृष्टि वन जाता है तो वह परीत संसारी हो जाता है।

मुनिने आहार किया। एक पेड के नीचे वैठकर वे सुथार को उपदेश देने लगे। साधु और क्या दे सकता है? साधु जन्त्र मंत्र नही बता सकते, न तेजी मदी वता सकते है। वह स्वप्नज्ञान या रेखा ज्ञान भी नही वता सकते। जो सच्चे साधु होते है वे जानते हुए भी कहते नही है। साधु तो साधना करते है। वे मुनि भी सुथार को उसके योग्य बोध देते हैं। वे कहते हैं शरीर पर जो कपड़े है, वे शरीर नही शरीर से भिन्न है। ऐसे ही आत्मा और शरीर भी भिन्न भिन्न है। कपडे फटे कि दूसरे वदल लेते हो वैसे ही शरीर बदलता रहता है, आत्मा का कभी नाश नही होता। शरीर विनाशी है, आत्मा अविनाशी है। यो वह जड़ और चेतन का ज्ञान कराते हैं। चेतन्य को याद करो– उसे समझो तो भव भ्रमण मिट सकता है। त्याग जैसा सुख नहीं, तृष्णा जैसा दुख नही। तृष्णावान दुखी है और संतोषी सुखी है। रागवृत्ति करना पाप है, वीतराग भाव लाना धर्म है। राग है वहाँ रोग है, वीतरागी अवस्था निरोगी है। राग और द्वेष दुख के मूल है। अतः ज्ञानी कहते है दयाकर, दया जैसा कोई धर्म नही है। अपनी आत्मा जैसी सभी की आत्मा समझ। किसी को ठगने का प्रयत्न मत कर, नही तो पहले खुद ही ठगा जायगा यह भी याद रख। यो पर-भाव से अपने पैर मे कुल्हाड़ा मत मार।

गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया–भगवन! जीव स्वयंकृत कर्मों को भोगता है या परकृत कर्मो को? भगवान ने उत्तर दिया–जीव को स्वयकृत कर्म ही भोगने पड़ते है। परकृत कर्म नहीं।

सुथार मुनि का वचन सुनकर प्रसन्न हो जाता है। वह अपने साथियों से कहता है—आज महान पुण्य का उदय है—ऐसे त्यागी मुनि का संयोग मिला है।

कायानी विसारी माया स्वरुपे समाया ऐवा।
निर्गंथ नो पंथ भव अन्त नो उपाय छे ।।

जिसने काया की माया छोड दी— देह की भी जिसने माया छोड दी, वह पराये की माया कैसे कर सकता है? जो साधु मर गये हो तो उनके नाम की लायब्रेरी करो, यह भी साधु से बोला नही जा सकता है। साधु तो शान्ति के दूत हैं। सब का मोह छोडने वाला गुरु का मोह कैसे कर सकता है? गुरु ने जो किया वह तो हृदय मे धारण करना चाहिये। बाह्य नाम निशान से क्या होता है? साधु तो ठंडी रोटी खाकर भी आकाश मे उडनेवाला है। उसका जीवन तो निर्लेप जीवन है। उसे नाम से मोह क्यो होना चाहिये? दुनिया मे तीर्थंकरो का नाम भी न रहा तो तुम्हारा क्या नाम रहनेवाला है? कितनी 'चौबीसी हो गई, फिर भी किन के नाम याद है? अत: साधु के नाम पर स्मारक खडा करना, चालियाँ बनाना, या अस्पताल चलाना उचित नही है। साधु को तो साधु ही रहने दो, उसे संसारी प्रवृत्तियो मे मत घसीटो। साधु को तो अपनी खिचडी अलग पकानी है, उसके साथ तुम्हारे ढोकले भी पक जाय तो हमे क्या है? साधुत्व तो महान है। जिस साधु ने काया की माया छोड़ दी उसको और क्या तृष्णा रह सकती है?

साधु विहार करते हैं तो लोग कहते हैं—हमको याद रखना। क्या याद रखना? भगवान को याद करने के लिये यह वेष धारण किया है या तुम्हे याद रखने के लिये? साधु को पत्र लिखने मे भी क्या काम? साधु का तो चारित्र बोलना चाहिए, उसका प्रोपेगंडा करना भी ठीक नहीं है। उसका तो मौन धारण करना भी प्रभाव पैदा करना है। अनाथी मुनि को देखकर ही श्रेणिक राजा कैसा प्रभावित हो गया था?

सुथार सोचता है ये कैसे साधु महात्मा है, पास मे कुछ भी नही है। दूसरे साधु तो रुपया पैसा सब कुछ रखते है और दूसरो से दक्षिणा भी रखाते है। वे अच्छे है या ये अच्छे है। इनका वह मन मे विचार करता है। ये तो अपने लिए भोजन भी नही बनवाते। दूसरे के भोजन मे से ही लेते है। खरे साधु तो ये है। सच्चा मार्ग तो यही है, यही अपरिग्रही साधु है।

सुथार रुको। सुथार कहता है — मै आपको मार्ग बताने चलता हूँ। यह जंगल का मार्ग है, बिना बताये आप निकल नही सकोगे।

मुनि भी मोक्ष का मार्ग बताते है। वे मोक्ष और जंगल दोनो का मार्ग बताते है। [illegible]। सुथार ने मुनि को मार्ग बता दिया। मुनि ने [illegible] मुझे [illegible] नही है। [illegible]। [illegible] जैसे तुमने मुझे मार्ग [illegible], वैसे ही मैं भी तुम्हे

सागर से तिरने का मार्ग बताता हूँ– सम्यक् दर्शन का बीज देता हूँ, उसकी हिफाजत करना, तुम्हारा संसार भ्रमण मिट सकता है। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म का सहारा लेना, तुम्हारा उद्धार हो जायगा।

बंधुओ! पैसा कमाना सहज है, कमाकर उसे संभालना मुश्किल है। सम्यग्दर्शन पैदा हो जाय तो उसके बाद उसकी संभाल करना भी कठिन है।

मुनिने उसे बोध दिया। उसके हृदय में सम्यग्दर्शन का बीज बो दिया। बीज से अंकुर फूटता ही है। जिसका आत्मा कमलवत् निर्लेप होता है वह मोक्ष पाता है– कषाय रहित बनता है, और जो कषाय युक्त होता है वह नरक में चला जाता है।

सुथार यहा से मृत्यु प्राप्त कर वैमानिक देव बनता है। समकिती जीव स्त्री वेद का बंध नही करता, न वह नीच जाति के देव भवों का ही बंध करता है

यहा से मर कर वह भगवान ऋषभदेव के पौते के रूप में उत्पन्न होता है। भरत चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि बनता है। चक्रवर्ती और तीर्थंकर का पुत्र-प्रपौत्र बनना कितने महान् पुण्य का काम है? यह दूसरे आरे की बात है। भगवान ने ७२ कलाऐ सिखाई, पर धर्मकला के बिना सब कलाऐं व्यर्थ होती है। अतः उन्होंने चार हजार साधुओ के साथ दीक्षा ली। एक हजार वर्ष बाद उन्हे केवलज्ञान हुआ। उस समय ६४ इन्द्र और ५६ हजार दिक्कुमारिकाये उत्सव मनाने आई। मरुदेवी माता को भरत चक्रवर्ती बधाई देते हुए कहते है–तुम्हारा पुत्र केवली बन गया है। यहां पधारे हैं–मै दर्शन करने जा रहा हूं, आप भी चलना चाहो तो पधारो! माता मरुदेवी को यह सुनकर कितना हर्ष हुआ होगा? एक करोड पूर्व का आयुष्य पाकर भी माता मरुदेवी का कभी सिर भी न दुखा, कहिये कैसी पुण्याई रही होगी उनकी?

अंगे असाता न कदिये हुई
टसको कदिय न लीनोजी.
ज्यां लगी जीव्या मरुदेवी माता
औषध एक न लीधोजी.
एने क्रोड पूर्व लगी पाम्या साता ते मरुदेवा माताजी।

मरुदेवी का आयुष्य क्रोड पूर्व का था। तुम्हारा आयुष्य कितना है? सोमवार सही सलामत निकल गया तो मंगलवार का खतरा है? वह कहीं बुरा न निकले। इसका भय बना ही रहता है? जीव हिंसा की है– भयकर जीव हिंसा की है उसीका यह फल है। शरीर स्वस्थ नही रहता है। अपने सुख के पीछे तुमने किसी का भी दुख देखा नही, उसी का यह परिणाम है।

माता मरुदेवी को विचार आता है–एक हजार वर्ष हो गये – कभी घर की तरफ देखा भी नहीं। मा की खबर भी नही ली। ऐसा निष्ठुर हो गया मेरा बेटा!

अणगारे जाये इरिया समिये जाव गुत्त बंभयारि

अणगार बनते ही संसार भुला दिया जाता है। संसार का विस्मरण ही आत्मा का स्मरण है। एक हजार वर्ष तक मां लडके का दर्शन न करे और फिर करने का मौका आवे तो उसकी प्रसन्नता का भी कोई पार हो सकता है ?

मरुदेवी भी भगवान से मिलने जाती है। हाथी पर बैठी हुई सोचती है– कहां राज महलों का वैभव और कहां जंगलों में भटकना और शीत ऊष्ण का परिषह सहना ? मेरे लडके का शरीर कितना दुबला हो गया होगा ?

सामने देखती है तो भगवान की सेवा मे तो ६४ इन्द्र और ५६ हजार दिक् कुमारियां खडी है। छत्र और चंवर उड़ रहे हैं। माता सोचती है मुझे देख कर बेटा मा तो कहेगा और अपने पास तो बुला लेगा। पर भगवान ने तो ऊपर भी नही देखा। यह क्या है ? माता सोचती है।

कोई कोई नो छे नहि समझी
केवल मुक्ति पावे– मातना

ऋषभदेव न बोले तो माता का मोह उतर गया। आयुष्य थोडा था अतः मोह जल्दी उतर गया। वह तो सोचते सोचते ही सबसे पहले मोक्ष मे जा पहुंची। मोक्ष का दरवाजा खोलने वाली सर्व प्रथम महिला रत्न माता मरुदेवी ही थी। हाथी पर बैठे बैठे ही शुक्ल ध्यान ध्याते ध्याते वह केवली बन गई।

कइयो ने भगवान से दीक्षा धारण की। मरीचि कुमार ने भी दीक्षा ली। पर वह साधुत्व की क्रियाओ को पाल न सका। लोच करना उसे कठिन प्रतीत हुआ। उसने साधु वेष त्याग कर घर जाना भी उचित नही समझा। अतः उसने बीच का त्रिदंडी मार्ग अपना लिया। यो नया मार्ग अपना लेने से लोग उससे पूछने लगे–तुम्हारा धर्म क्या है ? मरीचि कहता–धर्म तो ऋषभदेव भ. के पास है।

तो तुमने यह क्या किया ?

मुझसे वह नहीं पलता है इसीलिये यह वेष धारण किया है। सत्य को सत्य कहना और मानना सम्यग्दर्शन है। यो वह सम्यक्त्व पर दृढ़ रहता है।

एक बार भरत चक्रवर्ती भगवान के पास आते हैं और पूछते हैं– भगवन ! इस परिषद मे आप जैसा कोई लायक पुरुष भी है क्या ?

भगवान कहते हैं– तेरा पुत्र मरीचिकुमार जो अभी त्रिदंडी बना हुआ है वह मेरे समान २४ वां तीर्थंकर बनेगा। [illegible]

एक दलाली रतन की [illegible] जाय।

एक दलाली [illegible] पाप। दलाली [illegible] की।

धर्म दलाली का फल तो देखो ! तप संयम के मार्ग पर चलना, चलाना और चलने की प्रेरणा करने का भी कितना महान फल रहा हुआ है ?

भरत बाहर आये और मरीचि से कहते है– मैं तेरे त्रिदंडी वेष को नमस्कार नही करता हूं, पर तेरे मे रहे हुए २४ वें तीर्थंकर महावीर की आत्मा को नमस्कार करता हूं। तू त्रिपृष्ठ वासुदेव बनेगा और २४ वा तीर्थंकर भी बनेगा। भगवान ने अपने श्रीमुख से यह कहा है।

मरीचि सोचता है–भगवान ने ऐसा कहा है तो वह कभी झूठा नही हो सकता। मेरा दादा तीर्थंकर, पिता चक्रवर्ती और मैं २४ वा तीर्थंकर बनूंगा:– मेरा कुल तो देखो। यो वह कुल मद में पड गया। जिसका फल यह हुआ कि भगवान को ८२॥ रात तक ब्राह्मणी के गर्भ मे रहना पड़ा।

मरीचि के पास कपिल राजा दीक्षा के लिये आता है। मरीचि कहता है– भगवान के पास जाओ, वे तुम्हें दीक्षा दे देगें ?

कपिल कहता है तो क्या तुम्हारे यहा धर्म नही है ? उसने कहा धर्म तो यहा भी है और वहां भी है। ऐसी मिश्रभाषा बोलने से उसने अंतोकरोडाक्रोडी सागरोपम का संसार बढा ही लिया। उसने कपिल को दीक्षा दी और पढाया लिखाया। मरीचि मर कर देवलोक मे पैदा होता है।

कपिल ने वेदो की रचना की। सबसे पहले जैनधर्म था, फिर वैदिकधर्म की उत्पत्ति हुई। धीरे धीरे साधु बिखरने लगे और ३६३ पाखंडियों के मत निकले।

५ वें देवलोक से मरीचि चव कर त्रिदंडिया बनता है। यों वह अनेकवार ब्राह्मण कुल मे जन्म लेता है और त्रिदंडी ही बनता है। १६ वे भव में वह क्षत्रियकुल में राजा के यहां विश्वभूति नामक पुत्र बनता है। उस राजा के एक नई रानी भी थी। वह विश्वभूति के बजाय अपने पुत्र को राज्य का अधिकारी बनाना चाहती थी। विश्वभूति बडा पराक्रमी था। राजा उसे लडाई करने के लिये बाहर भेज देता है। विजय प्राप्त कर जब वह वापस आता है तो राज्य का मालिक अपने छोटे भाई को बना हुआ देखता है। क्या इसलिये राजाने मुझे युद्ध के लिये भेजा था ? उसे इस संसार पर वैराग्य हो जाता है और वह अपने छोटे भाई से कहता है देख, मेरे मे इतनी ताकत है कि मै तुझे हटा सकता हूं, पर मै अब इस ससार में रहना नही चाहता। वह दीक्षा ले लेता है और तपश्चर्या द्वारा अपने शरीर को कृश कर देता है। घूमते घूमते वह इसी गांव मे आता है और आहार लेने जाता है। मार्ग मे गाय की टक्कर लगने मे वह गिर जाता है – पात्र सब बिखर जाते हैं। छोटे भाई की औरत यह देख रही थी। उसने मुनि से कहा – तुम्हारी वह ताकत कहां चली गई ? जिस ताकत से तुम अपना राज्य लेने की बात किया करते थे ?

मुनि ने यह सुना तो कषाय भाव जागृत हो गया । उसने गाय को अपने हाथ से ऊपर उठा ली । रानी ने कहा यह तो महा वलवान है । पर साधु ने उसी समय यह निदान कर लिया कि मेरे तप संयम का कुछ फल हो तो मैं आने वाले भव में महान् प्रतापी वलशाली बनू । इससे वह मर कर त्रिपृष्ठ वासुदेव वनता है और ऐसा ताकतवर होता है कि सिह को भी अपने हाथ से मार देता है । मरते समय सारथी सिह को नमस्कार मंत्र सुनाते हुए कहता है—हे सिह ! तू दुख मत कर ! तू तो महावली त्रिपृष्ठ वासुदेव के हाथ से मारा गया है । किसी साधारण आदमी से नही मारा गया है । यह सारथी गौतमस्वामी का ही जीव था ।

यहां से मर कर वह ४ थी नरक मे गये । वहा से वे महाविदेह क्षेत्र में धारणी रानी की कुक्षि मे प्रियमित्र चक्रवर्ती उत्पन्न हुए । वहां से दीक्षा धारण कर १ क्रोड पूर्व तक दीक्षा पाली और तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया ।

अन्त मे भगवान महावीर का जीव देवानंदा ब्राह्मणी के कुक्षी मे आता है । ब्राह्मणी की कुक्षि मे क्यो आया ?

महावीर ना जीव मरीचि कुमारे मद कर्‍यो कुल केरो
अधम भव मां पड्युं आथडवुं, प्रभु पुकारे ढंढेरो
शुं फोगट फूली फरे छे ?

८२ रात तक भगवान देवानंदा के गर्भ मे रहे । ८३ वी रात मे शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ । उपयोग से देखा तो जाना कि तीर्थंकर ब्राह्मणी के गर्भ मे कैसे आये ? वे तो क्षत्रिय कुल मे ही पैदा होते है । उन्होने हरिणगमेषी देव को बुलाया और कहा—देवानंदा का गर्भ त्रिशलारानी के गर्भ में रख दो और त्रिशला का गर्भ देवानदा के गर्भ मे परिवर्तन कर दो । हरिणगमेषी देवो मे गर्भ हरण करने की शक्ति होती है— वे वैसा कर देते है । भगवान तो अवधिज्ञानी थे । यह सब जान रहे थे । देवता कहते हैं—क्षमा करना, मैं तो इन्द्र की आज्ञा से आया हूं । वे गर्भ को त्रिशला के गर्भ मे पहुचाते हैं । रानी १४ स्वप्न देखती है और जागृत हो कर सिद्धार्थ राजा के पास आकर कहती है—।

मंगल समये मात त्रिशला सुख शय्या थी जागिया
पति ने कहे छे स्वामी मुझने चौद स्वप्ना लाधिया ।
पहले स्वप्ने गयवर दीठो बीजे वृषभ सुहामणो,
तीजे केसरी चौथे स्वप्ने देवश्रीलक्ष्मी तणो
पाचमे स्वप्ने पुष्पमाला छठे चन्द्र अमी झर्‍यो
सातवे सूरज आठवे ध्वजा नव में कलश अमी भर्‍यो
पद्मसरोवर दसमें दीठा ! क्षीर समुद्र इग्यार में

देवताना विमान स्वामी स्वप्न द्वादश ने विषे
रत्न रेलु तेरमें दीठी अग्नि शिखा चौदमें
परम उर आनंद प्रगट्यो स्वामी मुझनें अे समे
नम्रविनंती एज छे के स्वप्नानु फल शुं हशे ?
कृपा करी फरमावशो जेथी प्रसन्न मम-तन मन थशे ।
राय कहे ये उत्तम स्वपना उत्तम फलने आपशे
चौबीस मां जिन राय श्री तुभ रत्न कुंखे जनमशे

राजा कहता है– तुमने आज महान् स्वप्न देखे है । दुनिया मे ७२ स्वप्न है जिनमे ४२ अशुभ है और ३० शुभ है । उसमे भी १४ तो अति शुभ कहे गये है जो तुमने देखे है । ये १४ स्वप्न तो तीर्थंकर या चक्रवर्ती की माता को ही आते है । चक्रवर्ती तो १२ हो गये है, तीर्थंकर २३ ही हुए है, चौबीसवा तीर्थंकर पैदा होना बाकी है, वह तेरी कुक्षि से जन्म धारण करेगा । यह सुनकर तो रानी हर्षोल्लास से परिपूर्ण हो जाती है । सारी रात धर्म जगृति मे व्यतीत करती है ।

सुबह हुआ । राजा स्वप्न शास्त्रियो को बुलाता है । वे भी वही बात कहते है जो कि राजाने कही थी । रानी गर्भ का पालन करती है । भगवान तो अवधिज्ञानी थे । उन्होने देखा कि मेरे हिलने से माता को दुख होता है अतः मुझे हिलना नही चाहिये । इस तरह माता को सुख देने का पाठ उन्होने हमें गर्भ मे ही सिखा दिया । पर आज आप क्या कर रहे हो ? भगवान ने हिलना-डुलना बंद किया कि माता घबरा गई । कोई गर्भ चुरा तो नही ले गया ?

मारा मन मोहन महावीर जी. . .
गर्भ उदर मां न जणाय
माता दुख धरे मन मांय रे मा. . .

राय राणी घणुं रुवे एक एक ना मोढां सामे जुअे रेमारा. . . ।
प्रभु अवधिज्ञान थी जोअे, शा कारणे सहुकोई रोवे रे मा.
मैं कीधु माता ने सारुं, पण माता ने दुख अपार रे मा.
एम चिन्तीने अंग फरकावे, माताजीने गर्भ जणावे रे मा.
मात पिता ना कारज सारी पछी लीधो संयम भार रे. . .मा.
उदरमां अभिग्रह कीधो माता जीवता संयम नव लीधो रे, मा .

इस तरह भगवान का जन्म हुआ । गर्भ मे ही उन्होने अभिग्रह कर लिया था कि माता पिता की मौजूदगी में मै दीक्षा नही लूगा ।

चैत्र सुद १३ को उनका जन्म हुआ । देवी देवताओ ने मिलकर उनका जन्म महोत्सव मनाया । पर्यूपणपर्व हमारा आध्यात्मिक पर्व है, इन धार्मिक दिवसों मे

लोग उनके जीवन को सुने और उनसे कुछ शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन मे उतारे इसी परम्परा से आज उनका जीवन सुनाया जाता है ।

शक्रेन्द्र महोत्सव मनाने आते हैं । भगवान को मेरु पर्वत पर ले जाते है और स्नान कराते है । वापस लाकर त्रिशला को सौप देते है । माता का दर्शन कर सव देव अपने अपने स्थान चले जाते है । राजा अपने राज्य मे खुशियां मनाता है ।-कर-टैक्स माफ कर देता है, दास दासियो को मुक्त कर देता है । कइयो को जीवन दान देता है । राज्य में सर्वत्र वृद्धि होने लगती है अतः पुत्र का नाम वर्धमान रखता है ।

वडा होने पर यशोदा के साथ विवाह होता है । एक लडकी भी पैदा होती है जिसका नाम प्रियदर्शना था । २८ वर्ष की उम्र मे जव कि भगवान के माता पिता का स्वर्गवास हो गया, उन्होने अपने वडे भाई नन्दिवर्धन से दीक्षा की अनुमति मागी । भाई के आग्रह से वे २ वर्ष और रहते है और ३० वर्ष की अवस्था मे दीक्षा धारण करते है ।

तीन अरव ८८ करोड ८० लाख सोना मोहरो का वे दान करते हैं और फिर दीक्षा लेकर १२॥ वर्ष तक कठौर तप करते हैं । अन्त में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वन कर चतुर्विध संघ की स्थापना करते है । ऐसे वीर प्रभु की आज जन्म जयंती है । उनके गुणो का वर्णन करना आसान काम नहीं है । वे तो अनंतगुणो के भंडार थे । उनकी साधना भी महान साधना थी । कर्म शत्रुओ से उनकी लडाई जवरदस्त थी । उनके महान गुणो मे से यत्किंचित भी आत्मा ग्रहण कर अपने जीवन मे उतारेगी तो वह अपना कल्याण कर सकेगी ।

रविवार ता. २५-८-६८

[५९]

जीवन की जडी वूटी

अनंत ज्ञान समुद्र भगवान महावीर प्रभु ने जीवन की सच्ची दृष्टि वताई है । ज्ञानी कहते है तुम तरह तरह की दवा लेते हो, पर सच्ची जडी वूटी या महौषधि तो ब्रह्मचर्य है ।

ब्रह्मणी चरतीति ब्रह्मचर्य :-

ब्रह्म यानी आत्मा– आत्मा के स्वरूप मे रमण करना ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचारी अपनी आत्मा मे विकार नहीं आने देता है । वह स्वयं अपना [illegible] बन जाता है और [illegible] रहता है । यही जीवन की जडी वूटी है ।

ब्रह्मचर्य [illegible] है– [illegible] है, जो [illegible]

करते है। उसके लिये मोक्ष का द्वार भी खुल जाता है। ब्रह्मचर्य में प्रवेश किया नही कि आत्मा ने ज्ञान में प्रवेश कर लिया कहा जाता है।

मानव चाहे जितना सुदर भाषण करता हो, पैसे वाला हो, प्रोफेसर हो या समुद्र के किनारे रहने वाला हो, पर चारित्र मे शून्य हो तो वह भी नीदा का ही पात्र बनता है।

चारित्र तो Hart हृदय है। हृदय कमजोर हो तो इस साढे तीन मन देह की कोई कीमत नही होती? डाक्टर भी कह देते है– तुम कही जाना आना नही– चढना उतरना नही। तुम्हारा हृदय वहुत कमजोर हो गया है। लेकिन जो शरीरसे दुवला पतला हो और हृदय मजवूत हो तो उसे कोई डर नही रहता है। वह चाहे जहा आ जा सकता है। चारित्र ही ज्ञान है। चारित्र ही हीरा है। वह चाहे जहा पडा होगा वहा भी चमकेगा ही। देखने वाला अपने आप उसके लिये झुक जायगा। कहिये, आपको क्या प्रिय लगता है सदाचार या दुराचार?

सुवह उठ कर नहाते धोते हो– स्नान करते हो– तभी शरीर को भी अच्छा लगता है। तो क्या स्नान करना पवित्रता है? सच्ची पवित्रता तो आत्मा मे है। इन्द्रियो को कावू मे रखो। उसमे विषय है वहा तक उसमे प्रकाश पैदा नही हो सकता। तुम्हारा जीवन कैसा है? यह तो तुम ही जान सकते हो। ऊपर से लम्बा सफेद कोट पहन कर फिरते हो, पर दूसरी औरतो पर कौवे की तरह दृष्टि डालते रहते हो तो उसकी कौडी जितनी भी कीमत नही है। फिर भले वह अपने को वडा आदमी क्यो नही समझे, ज्ञानी की नजरो मे तो पामर ही है।

पहला पोते आचरे पछी देय उपदेश
वंदू ऐवा सन्त ने जेने अहं भाव नहि लव लेश

जो कुछ कहो, पहले चारित्र मे उतारो और फिर उसे कहो तभी उसका असर भी हो सकेगा। दशवैकालिक मे कहा है–

सुयं मे भविसामिति अज्झाइयव्वं भवइ
एगग्गचित्तो भविस्सामिति अज्झाइव्वं भवइ
अप्पाणं ठावइसामिति " "
ठीओपरं ठावइस्सामिति " "

साधक पहले सूत्र पढे-ज्ञान सीखे– फिर अपनी आत्मा को स्थिर करे–चित्त को एकाग्र करे और फिर वाद मे दूसरो को स्थिर करे– उपदेश दे। जव तक चित्त स्थिर नही रहता दूसरा कोई भी काम नही हो सकता है। जैसे टेलीफोन की लाईन ठीक नहीं हो तो सुनाई नही पड़ता है वैसे ही इन्द्रियो के साथ उपयोग जुडा हुआ न हो तो ज्ञान भी नही हो सकता है।

कोर्ट में जाना है– भोजन की थाली सामने पडी है, पर उसमे रस नही है, क्योकि कोर्ट में जाना है, लेकिन व्याख्यान में कब आना है? इसका भी ध्यान रखते हो ? क्या व्याख्यान उठाने आते हो या सुनने आते हो ? जब वह कोर्ट से वापस आता है तो कहता है आज क्या खाया था, यह भी पता नही है। क्यो कि उपयोग तो कोर्ट मे था। उपयोग का मिलान न हो तो ज्ञानी कहते है ज्ञान नही हो सकता है। अतः ज्ञानी कहते है पहले चित्तको एकाग्र करो। अगर चित्त एकाग्र रख कर काम करोगे तो एक घटे मे उतना काम कर सकोगे जितना कि सारे दिन मे भी नही हो सकेगा। बिना एकाग्रता के याद भी नही हो सकता। तुम मुह से प्रतिक्रमण याद करते हो, पर मन स्थिर न हो तो वह कैसे याद हो सकता है ? विषय कषाय के धक्के नही लगे तभी चित्त की एकाग्रता हो सकती है। उपयोग रहित प्रतिक्रमण करने से भी कोई लाभ नही होता है। प्रतिक्रमण मे भी चित्त की एकाग्रता न हो तो वह द्रव्य प्रतिक्रमण ही कहा जायगा। भाव प्रतिक्रमण वह नही कहा जा सकता है। माला फेरते रहो, पर मन उसमे न हो तो माला के मणके फिराने से भी क्या लाभ होगा ? अनुयोगद्वार सूत्र मे भी यही कहा गया है ?

माला तो करमें फरे मुख मां फरे जिभाय।
मनडा तो चउदश फिरे आतो समरण नाय
माला तो मन की भली ओर काष्ठ का पारा।
जो माला में गुण होत तो शीद वेचत मणियारा।

माला के १०८ मणके फिरा देते हो। माला हाथ मे ली और झट ऊ ऊ कर लेते हो–महाराज ने सौगन्द दिये है तो फेर लेते हो।

कभी तुम प्रधान मंत्री को अपने घर आने का आमंत्रण दो और वे आने की स्वीकृति दे दे तो तुमको कितनी तैयारी करनी पडती है ? वे ९ बजे आने वाले है पर तुम कुछ भी तैयारी न करो ! वे आजायं तो तुम उनका स्वागत भी न करो बैठने का भी नही कहो तो वे क्या समझेगें ? सोचेंगे कही दूसरे घर में तो नहीं आ गया ? मानव तो यही है, घर तो नही भूला हूं ? इस तरह वह आकर चला जाय और फिर कभी तुम उन्हे दुवारा आमंत्रण दो तो क्या वे आना चाहेगें ?

आप भी भगवान को आमंत्रण दे रहे हो—

मंदिर मा पधारो रे व्हाला करुं विनतडी

हे भगवन् ! मैं प्रार्थना करता हूं। मेरे मन मंदिर में पधारो। पर हृदय में तुम्हारे क्या भरा हुआ है। काम–क्रोध – मान और माया की दुर्गंध तो भरी पडी है। हाथ में माला फिरा रहे हो, भगवान की प्रार्थना भी कर रहे हो। पर सफाई तो कुछ भी नही की है– हृदय तो गंदा ही पडा है। ऐसे में भगवान

कैसे आ सकते है ? माला भी दिल से कहा फेरते हो ! केवल नियम पूरा कर लेते हो ! फिराते फिराते नीद भी ले लेते हो। ऐसा करने से मोक्ष कैसे मिल सकेगा ?

मन भर पानी मे सेर भर शक्कर डाल दो तो वह मीठा थोडे हो सकता है। इसी तरह तुम भी धर्म तो कम करना चाहते हो और फल ज्यादा चाहते हो, यह कैसे संभव होगा।

तुम्हारी आत्माका उद्धार करना है तो कुछ समझो। समझने का यह मौका मिला है। भगवान को बुलाना है तो सत्सग करो—

मै तो सतसंग सावरणे विकारो वाल्या
नाथ मनना मंदरियामां आसन ढाल्या
स्नेह जीभडीए शोभाव्या स्थान आवो आंगणिये
मारा जीवन ना मोंघेरा प्राण आवो आंगणिये।

कुसंग छोड दो। दस लडके होटल में जावे और मै न जाऊं तो यह ठीक नहीं है। मेरे सभी मित्र सिगरेट पीते है, मै न पीऊ तो यह भी ठीक नही है-आज तो एक फूक मार ले। दुर्जनो के संग से बुरी आदत ही पडती है। मन भर दूध मे थोडी सी खटाई पड जाय तो जैसे वह फट जाता है, वैसे ही दुर्जनो के संग से सद्‌गुणो का खजाना नष्ट हो जाता है—

दुर्जनो ना संग थी शुभ चित्तपण डहोलाय छे।
दरिया नजीक पाणी मीठु सरितानुं खारूं थाय छे।
एक तणखो अग्नि नो ढगलो जलावे घास नो।
दूधने विकृत करे छे एक छांटो छासनो।

घास की एक गंजी मे आग का एक छोटासा अंगारा भी पड जाय तो वह जल जाती है—छास का एक बूद सारे दूध को विकृत कर देता है वैसे ही कुसंगति भी गुणो को बरबाद कर देती है। जीव का नीचे जाना आसान होता है। ऊपर चढना आसान नही होता। मकान की लिफ्ट बंद हो और ऊपर चढ़ना पडे तो श्वास चढ़ने लग जाता है, परन्तु नीचे उतरना हो तो तकलीफ नही होती है। इसी तरह संघ का संगठन करना कठिन होता है, पर तोडना तो आसान होता है। अत:संगठन करो—मिलाप करो— सज्जनो का संग करो—कुसंग कभी मत करो—दुर्जन को तो अपने पास भी मत आने दो।

सर्व संगपरित्यागी सबसे श्रेष्ठ वात है। असंगदशा प्राप्त करना उत्कृष्ट स्थिति है। परन्तु वैसी दशा प्राप्त न हो तो सत्संग करो—सज्जनों का साथ करो, पर दुर्जनों से तो दूर ही रहो। कुसंग से तो आदमी खराव ही होता है। लडका

भी नपुसक वनने को तैयार हो जाते हैं, पर कोई संयमी वनने को तैयार नहीं होता। याद रखिये जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह कभी बीमार नही हो सकता। रोग उससे कोसो दूर भाग जाते है। आत्मा सुरक्षित रहता है और नये कर्मो का वध भी नही होता है।

शास्त्र मे भगवान से गौतमस्वामी ने पूछा है–मैथुन का सेवन करने से जीव कितने कर्म वाधता है? भ. कहते हैं–हे गौतम! जीव मैथुन का सेवन करता है तो वह एक, दो और तीन से लेकर नौलाख संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का घात करता है। एक वार के मैथुन का यह फल कहा गया है। यह कोई साधारण आदमी की वात नही है। स्वयं केवली भगवान ने यह कहा है। इसे तुम कोरी गप्प मत समझ लेना।

शास्त्रो मे १४ प्रकार के सम्मुछिम मनुष्यो के स्थान बताये है। स्त्री–पुरुष के संबंध से जो वीर्य उत्पन्न होता है उसमे असंख्याता सम्मुछिम जीवो की उत्पत्ति होती है।

९४ आक हो तब तक संख्याता कहा गया है, इससे ऊपर जाय तो असंख्याता कहा जाता है। ८ प्राण के धारक पंचेन्द्रिय जीव, सम्मुंछिम जीव कहे गये है, ऐसे असंख्याता जीव केवल एक वार संभोग करने से नष्ट हो जाते है।

समझो, समझो तुम कहां जा रहे हो? अपनी गति कैसी बना रहे हो? उम्र हो गई है। फिर भी विषय वासना को नही छोड़ रहे हो।

सिह मर जाना कबूल करता है, पर खल नही खाता है। तुम भी महावीर के पुत्र हो। पर आज कहां भटक रहे हो? पर स्त्री की ताक मे घूमते रहते हो! रात हुई नही कि निशाचर की तरह निकल पडते हो। क्या यह तुम्हें शोभा देता है? याद रखिये–

तमं तमेणेव उसे असीले

जो कुशील है– शील रहित है– अंधकार मे चक्कर लगाते फिरते है– वैश्याओ के पास जाते है– वे मर कर महा अंधकार वाली ७ वी नरक तमतम प्रभा में उत्पन्न होते है। वहां उन्हे अपने किये का फल तो भोगना ही पडता है।

एक आदमी ने ५० हजार रु. का दान दिया। अखवार में भी प्रसिद्धि कराई। वह अपने मित्रों से कहता है–तुमने उस तारीख का जैनप्रकाश देखा है? नहीं देखा हो तो जरूर देखना। यों वह अपने दान की जाहिरात करता है। लेकिन ज्ञानी कहते हैं– जो दाने खेत में खुले फेंक दिये है. वे उगने वाले नहीं है। दानें तो वे ही उगेंगे जो मिट्टी में डाले गये है। तुम अपने पाप को तो खुला

नही कर रहे हो और दान मे दिये गये धन का खुला प्रदर्शन कर रहे हो इससे क्या होने वाला है?

सज्जन कौन है? जो चारित्रवान है—सज्जन है। और दुष्ट वासना वाला दुर्जन है। जो महान कर्म करता है वह महाजन है। यो जन तो सभी हैं, पर आपको क्या बनना है? ऊपर चढ़ना है या नीचे उतरना है? मौका आया है, चारित्र को उन्नत बनाओ, आप भी सज्जन बन सकते हो।

एक पाकिट मे १ रु. है तो वह एक रुपये का, १० हजार है तो वह दस हजार का कहा जाता है और १० लाख के हीरे उसमे पडे हैं तो वह १० लाख का कहा जाता है। ऐसा कीमती पाकिट खो जाय तो तुम क्या करोगे? जाहिरात करोगे? लाने वाले को इनाम दोगे। पर यह कीमत किसकी है—चमडे के पाकिट की या उसके अंदर रहने वाले हीरे की?

शरीर भी चमडे का पाकिट है। उसकी कीमत नही है। कीमत तो आत्मा की है। उसमे चारित्र है तो इन्द्र भी प्रशंसा करेंगे। आपको मालूम ही है कि कामदेव श्रावक की इन्द्र ने भी प्रशसा की थी। अतः समझो, आत्मा को उन्नत बनाना है तो धनवान बनने के बजाय चारित्रवान बनने का प्रयत्न करो।

एक फौजदार था जिसका गाव मे बड़ा आतक था। रिश्वत खोरी तो करता ही था, पर गाव में आने वाली किसी भी नई बहू—बेटी को भी नहीं छोडता था। राजा की सत्ता का यो वह दुरुपयोग किया करता था। आंखे उसकी यही देखा करती थी कि गाव मे कौन शादी करके आया है। दुल्हन की पहली रात फौजदार के साथ बीता करती थी। पहले के राजा भी ऐसे ही हुआ करते थे। उनके सामने कुमारी कन्याएं भी मुह ढंक कर निकला करती थीं।

यह फौजदार तो घोर पाप करता था। किसी भी औरत को नहीं छोडता था। एक लोहाणा के यहा शादी हुई। दुल्हा औरत लेकर घर आया। लड़का कहता है आज रात को तो फौजदार आवेगा, मैं घर से बाहर चला जाऊगा। तू डरना नहीं।

लड़की बोली—क्या फौजदार के साथ मैने शादी की है या तुम्हारे साथ की है?

हैरान करने लग जाय तो आप क्या करेंगे? खडे खडे देखते रहेंगे या उसको छुडाने में मददगार बनेंगे?

पहले के श्रावक तो परदारा सहायक होते थे। सुरेन्द्रनगर मे एक बहिन गहने पहन कर जा रही थी। एक गुडे ने उसका हाथ पकड लिया और अपने साथ ले चला। बाई चिल्लाती है– बचाओ –बचाओ–पर कोई बचाने को तैयार नही होता। गुंडे के एक हाथ में पिस्तोल थी और दूसरे से वह बाई को खीच रहा था। मौत के सामने कौन जावे? फिर भी एक भाई दौडा और गुडे को तमाचा मार कर बाई का हाथ छुडा दिया। पिस्तोल मे गोलिया कहा थी? लोग तालियां बजाने लगे। अरे, तुम पुरुष हो या नपुसक! एक स्त्री का शील लूट रहा हो तो तुम्हें प्राण देकर भी उसे बचाना चाहिये या दूर खडे खडे देखना चाहिये?

आज तो विधवाओ का भी पुनर्लग्न कराया जाता है। बेचारी का जीवन नीरस हो गया है? पर वह भी नही रहेगा तो फिर क्या करेगी? उसके भाग्य में पति का सुख नही था तभी तो विधवा हुई है।

लोहाणा युवक अपनी पत्नी से कहता है–फौजदार आने वाला है, तू तेरी जानना, मै तो जाता हू।

फौजदार रातको बन ठन कर आता है। औरत ने न तो उसका स्वागत किया और न कुछ बोली। फौजदार कहता है–खड़ी हो। मै आ गया हू।

वह कहती है–क्या तू मेरा पति है जो मै खडी होऊं? जैसा आया है वैसा ही वापिस लौट जा।

फौजदार सोचता है–आज तक किसी औरत ने मुझे ऐसा नही कहा, यह कैसा जबाब दे रही है? उसने कहा–तू जानती नहीं, मैं कौन हूं! मेरा मन प्रसन्न कर और खडी हो जा, नहीं तो जबरन तुझे वैसा करना पडेगा।

लडकी कहती है–खबरदार जो हाथ लगाया तो? तू जरा अपने पापो को तो याद कर। कितनी औरतो का तेने शील खंडित किया है? फौजदार होकर तू यह क्या कर रहा है?

बंधुओं! जो पर स्त्री के भोगी होते है उन्हें मर कर रौरव नरक मे जाना पड़ता है। वहां लोहे की गरम गरम पुतली के साथ भोग करना पडता है। तब वह भयंकर पीडा के मारे चिल्लाने लगता है, पर वहा छुडाने वाला कौन होता है? ऊपर से परमाधार्मिक देव उन्हें रस्सी से बांध देते है। किये हुए कर्मों को तो भोगना ही पडेगा।

पाप कीधा पछी पुन्य क्यां थी मले
दुख दीधा पछी सुख क्यांथी मले
चाल्यो नहि तारे पंथ, शीव रमणीना कंत
माफी मांगुछु तारी हे जिनवरिया ....।

पाप किये है तो पुण्य कहा से मिलेगे ? जो बोया है वही मिलने वाला है। बोना है बबूल और खाना है आम यह कैसे संभव होगा? नव वधु ने कहा—फौजदार तुम भयंकर पाप कर रहे हो, याद रखना इसका फल भी भयकर भोगना पडेगा।

फौजदार कहता है—मै उपदेश सुनने नही आया हू, मैं तो मेरा काम करने आया हू।

अनादिकाल से जीव ने ऐसे भयंकर पाप किये है। जब वह दुखी होता है तब सिर पर हाथ रख कर रोना पडता है।

एक वकील था, जो ईश्वर को नही मानता था—धर्म कर्म को नही मानता था। नास्तिक था। मुकदमो मे पैसे काफी कमाता है अत. उसकी नास्तिकता मे कमी नही होती थी। एक दिन वह एक साधारण सा मुकदमा भी हार जाता है। उससे उसे दुख होता है और वह कोर्ट मे ही कुर्सी पर गिर जाता है। लोग उसे घर पर ले जाते है। औरत कहती है—क्या हुआ? आज जल्दी क्यो आ गये?

वकील चुपचाप बैठ जाता है—बोलता नही। औरत कहती है—क्या तबियत ठीक नही है। डाक्टर को बुलाऊ?

वकील कहता है—नही, मै थक गया हू, जरा आराम करने दे। इतने में उसका छोटा लड़का आता है और कहता है—बाबुजी मेरा पाठ सुन लो—मुझे याद हो गया है। वह कहता है—अभी मुझे आराम करने दे, लेकिन लड़का हट करता है। वकील कहता था God is no where! ईश्वर कहीं नही है। वकील लड़के ने कहता है—अच्छा, सुना क्या याद किया है? लड़का कहता है—God is now here ईश्वर अभी यहा है। यह सुन कर वकील तो चौंक उठता है। उसको यह किसने सिखाया? अब उसे समझ मे आ गया कि ईश्वर भी है, उसका निषेध नही किया जा सकता।

इसी तरह फौजदार भी कहता है—मैं तेरा उपदेश सुनने नहीं आया हूँ। चल खड़ी हो जा। [illegible] खड़ी हो जाती है और जंगल के चारों तरफ नजर लगाती है। पीछे पीछे फौजदार भी घूमता है। [illegible] [illegible] दिन तो वह जंगल में [illegible] गिर गया। [illegible] [illegible]

आता है और उससे पूछता है—बहिन तू रो क्यो रही है? क्या कष्ट है तुझे? मुझे कह, मै उसे दूर कर दूगा।

लडकी कहती है—आप कौन है?

राजा—मै इस गांव का मालिक हूं। राजा हूं।

लडकी—आप राजा है? राजा तो फौजदार वना हुआ है।

राजा—क्या वात है? सच सच वता। फौजदार तो मेरा नौकर है, मैं उसका भी राजा हूं।

लडकी कहती है—आप कैसे राजा है? आपको यह भी नहीं मालूम कि फौजदार क्या करता है? वह किसी की भी स्त्री को नही छोडता है। शादी करके आवे नही कि पहली रात उसकी होती है? यह क्या पाप हो रहा है? तुम्हारे राज्य मे?

राजा कहता है—क्या यह सच है? मैंने तो आज तक कुछ नही सुना? तुमने कैसे जाना?

लडकी—मैं उसके चंगुल से वच कर ही यहां आई हूं। और क्या सवूत चाहिये आपको? राजा प्रधान को वुलाता है और फौजदार को पकड कर लाने का हुक्म देता है। प्रधान सिपाहियों के साथ फौजदार को पकड कर राजा के सामने उपस्थित करता है।

राजा कहता है—फौजदार! तेने मेरी सरलता का ऐसा दुरुपयोग किया है? गाव की बहू- बेटियों का शील लूटा है। तेने भयंकर अपराध किया है, तुझे इसकी कठोर सजा मिलनी ही चाहिये। उसने सिपाहियों से कहा—इसको जेल में ले जाओ और सुवह शाम १०० कौडे रोज लगावो। कौडों की मारसे जव इसका शरीर लाल लाल हो जाय तो ऊपरसे लाल मीर्चा और डाल दिया करना।

राजा का हुक्म था। प्रति दिन उस पर सुवह शाम कौडे वरसने लगे। ऊपर मीर्चो का लेप भी होने लगा। भयंकर पीडा के मारे वह कराहता रहता। उसकी असह्य पीडा को तो वही जान पाता होगा। भगवान ने कहा है—

खण मित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा

ज्ञानी कहते है अज्ञानी जीव क्षणिक सुख के पीछे कितना वडा दुख मोल ले लेते है? छह मास तक राजा उसे इसी तरह सुवह शाम सौ सौ कौडे लगवाता है। इसी भव में उसे अपने पाप कर्मो का फल भी मिल गया। फौजदार का पिता आता है और वह राजा से प्रार्थना करता है। पर राजा कहता है जव वह पाप करता था तव तुम कहां गये थे? उसे तो उसके पाप का फल मिलना ही चाहिये। आखिर मे गाव के महाजनों ने कहा तो राजाने उसे जेल से मुक्त

कर दिया। पर फौजदार ने यह प्रतिज्ञा ले ली कि भविष्य मे फिर कभी मै ऐसा पाप नही करूंगा।

बंधुओ। Character is diamond चारित्र तो कोहीनूर हीरा है। सर्वस्व चला जाय तो जाने दो, पर अपना चारित्र कभी मत जाने दो। चारित्र है तो सब कुछ है। वह गया कि सब कुछ चला जायगा अत. ब्रह्मचर्य का दृढता से पालन करो। पर स्त्री को बहिन समझो—ऐसा आज नियम ले लो, तभी तुम अपनी आत्मा को उज्ज्वल बना सकोगे। जो आत्मा अपने हृदय मे ब्रह्मचर्य का अलौकिक तेज प्रकट कर लेती है वे ही इस ससार सागर को पार करने में समर्थ बन सकती है।

तारीख २६–८–६८

[६०]

सम्यग्दर्शन

भगवान महावीर स्वामी ने कहा है:—सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र और तप ही मोक्ष के साधन है। ये मजबूत होगे तो कोई भी तुम्हे चार गति मे रुला नही सकेगे। जिन्दगी मे ज्ञान तो होना ही चाहिये। ज्ञान रहित जिन्दगी पशु के समान है।

एक मुनिराज चले जा रहे है—आदमियो की भीड बहुत है, चलते चलते एक आदमी का धक्का लगता है—आदमी मुनि से कहता है, तुम नही जानते मै कौन हूँ? मुनि ने कहा—मै जानता हूँ कि तुम कौन हो? लेकिन तू स्वयं नही जानता कि तू कौन है? वह बोला—मै अमुक सेठ का लडका हूँ।

मुनि ने कहा:—तू यह नही है। सुन तू कौन है? यह मै बताता हूँ।
तू अनन्त निगोद मे था। निगोद मे एक शरीर आश्रित अनेक जीव रहते है।
४८ मिनिट मे ६५,५३६ बार वहाँ जन्म मरण करना पडता है। ऐसे मे तू था!

भाड भुंजा धाणी भुंजे उछले दाणा अपार।
पण पाछा तेमां पडे निकले कोइक बार।
एम सूक्ष्म निगोद थी, निकली ने गया, [illegible]
जे [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

आता है। जहा एक अन्तर्मुहूर्त मे ३२००० भव करता है। एक अन्तर्मुहूर्त ४८ मिनिट का कहा जाता है। यहां से अनंती पुन्याई होती है तो वह पृथ्वी--पानी और अग्नि में आता है, जहां वह एक अन्तर्मुहूर्त मे १२८२४ बार जन्मता है और मरता है। वहां से दो इन्द्रिय में आता है जहां वह ८० भव एक अन्तर्मुहूर्त मे करता है। तीन इन्द्रिय में अनंती पुण्याई से आता है। जू लीग, कीडी आदि एक अन्तर्मुहूर्त में ६० बार जन्म--मरण करते हैं। चार इन्द्रिय--मक्खी मच्छर आदि ४८ मिनिट मे ४० बार जन्म--मरण करते है। अनंती पुण्याई होती है तो जीव असन्नी पंचेन्द्रिय--कान खजुरा आदि बनता है। पांचों इन्द्रिया होती है, पर मन नहीं होता। जहां एक अन्तर्मुहूर्त मे २४ बार जन्म--मरण करना पडता है। अनंती पुण्याई बढती है तो जीव संज्ञी पचेन्द्रिय जीव बनता है। जिसको मन होता है, उसे संज्ञी पंचेन्द्रिय कहा जाता है।, जिसको मन नहीं होता, उसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहा जाता है। इस ज्ञान की आज तुमको आवश्यकता है। ज्ञान ही पावर है। ज्ञान ही सर्चलाइट है, ज्ञान रहित जिन्दगी पशु तुल्य है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन संक्षा तो पशु मे भी होती है। कान, नाक, आख, बंदर को भी मिले है लेकिन वह ज्ञान उनमें नही होता, जो मनुष्य मे होता है। इसलिये मानव भव की विशेषता बतलाई गई है। ज्ञानी कहते है ज्ञान प्रगट कर--ज्ञान होगा तो दुर्गति मिट जायेगी। पाप करने से आत्मा अटक जायेगी। सज्ञी पंचेन्द्रिय के ४ भेद किये है--(१) नारकी (२) तिर्यच (३) मनुष्य और (४) देवता। नारकी मे असह्य दु:ख आत्मा को भोगना पड़ता है। वहाँ के परमाधार्मिक देव शरीर को त्रिशूल चुभाते है, उठा कर शिला पर पछाडते है, पारे की तरह शरीर के टुकडे टुकडे कर डालते है, यो कम से कम दस हजार वर्ष तक का, और अधिक से अधिक ३३ सागरोपम तक का भयकर दु:ख, नरक मे भोगना पडता है। जिसे जीव ने अनती बार भोगा है। ऐसे ही पृथ्वी, पानी, अग्नि, दो तीन, चार, पाच इद्रिय, सज्ञी, तथा असंज्ञी मे भी अनन्त भव किये है। आज तुम महान पुण्य से सज्ञी पचेन्द्रिय मे भी जानवर नही, नारकी नही, देवता भी नही, मनुष्य बने हो। यह महान पुण्य का उदय कहा गया है। देवता भी सीधे मोक्ष मे नहीं जा सकते। केवल मनुष्य भव ही ऐसा भव है, जहाँ से मोक्ष मे पहुँचा जा सकता है। दूसरा कोई भी भव मोक्ष मे ले जाने वाला नही है।

परोसी हुई थाली पडी है, पर हाथ से उठाकर मुह मे रोटी का कोर रखोगे नही, वहाँ तक भूख कैसे मिट सकेगी? उसी तरह सर्वार्थसिद्ध में रहे हुए जीव को भी, जो कि निश्चय ही एकावतारी है--एक भव करके मोक्ष मे जाने वाला है, उसे भी मनुष्य बनना ही पड़ता है। तभी वह मोक्ष मे जा सकता है।

देवता को मति, श्रुति, और अवधिज्ञान ये ३ ज्ञान होते हैं। नारकी और तिर्यच को भी ये ३ ज्ञान हो सकते है। लेकिन चौथा ज्ञान, मनपर्यवज्ञान तो मनुष्य को ही हो सकता है। जो मनुष्य दीक्षा लेकर साधु बनता है वही इस ज्ञान का स्वामी बन सकता है। तीर्थंकर को भी दिक्षा लिये बिना मनपर्यव-ज्ञान नही हो सकता। मनुष्य ही दिक्षा ले सकता है, और वही केवली भी बन सकता है। ऐसी योग्यता मानव मे ही है। बीज मे उगने की शक्ति है, पर वह कोठी मे पड़ा रहे तो उग नही सकता है। जब उसे उपजाऊ जमीन मे डाला जाता है तभी उसमे अकुर आता है, और फलद्रुप बनता है। वैसे ही मानव मे ज्ञान की शक्ति तो है, मोक्ष मे जाने की ताकत तो है, परंतु अनुकूल सयोग नही मिलने से वह मोक्ष मे नहीं जा पाता। सुदेव, सुगुरु सुधर्म का जब उसे योग मिल जाता है, तब उसका भी मोक्ष प्राप्त करना निश्चित हो जाता है।

कोई वैद्य दवा दे, और खाने का परहेज बतावे, तो उस पर विश्वास रखना ही पडता है। तुम्हे अपने नौकर पर भी विश्वास करना ही पड़ता है। पचास रुपये का सिपाही करोडो की मिल्कत सभालता ही है न? विश्वास तो करना ही पडता है, अन्यथा काम भी कैसे चले! बैंक मे और सेफ डिपोजिट वोल्ट मे रुपया रखते हो, तो वापिस मिल जायेगा ऐसा विश्वास तो मन मे रखते ही हो न? ऐसा विश्वास धर्म में क्यों नही करते हो? सर्वज्ञ की वाणी है, किसी चलते फिरते आदमी की वाणी नही है। सम्पूर्ण ज्ञानी की वाणी मे श्रद्धा हो, तभी वह ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहा जाता है। वक्ता से वक्ता बनना या लेखक बनो न हो, पर श्रद्धा न हो, तो वह बनना नही, बक बक करने वाला ही है। सम्यग्-ज्ञान के अभाव मे सभी ज्ञान अधूरे है, मिथ्या है। श्रद्धा पूर्ण ज्ञान ही सच्चा ज्ञान होता है। मूल तो सम्यग्दर्शन है—उसका पोषण करो, ज्ञान अपने आप पैदा हो जायगा। जहां ज्ञान नही होता, वहां ही उलझने पैदा करती है। तभी तो मन बदलता रहता है: सम्यग्ज्ञानी कभी बदलता नही है।

आता है। जहां एक अन्तर्मुहूर्त में ३२००० भव करता है। एक अन्तर्मुहूर्त ४८ मिनिट का कहा जाता है। यहां से अनंती पुन्याई होती है तो वह पृथ्वी--पानी और अग्नि मे आता है, जहां वह एक अन्तर्मुहूर्त मे १२८२४ बार जन्मता है और मरता है। वहां से दो इन्द्रिय में आता है जहां वह ८० भव एक अन्तर्मुहूर्त मे करता है। तीन इन्द्रिय में अनंती पुण्याई से आता है। जू लीग, कीडी आदि एक अन्तर्मुहूर्त मे ६० बार जन्म-मरण करते है। चार इन्द्रिय-मक्खी मच्छर आदि ४८ मिनिट मे ४० बार जन्म-मरण करते है। अनंती पुण्याई होती है तो जीव असन्नी पंचेन्द्रिय-कान खजुरा आदि बनता है। पांचों इन्द्रिया होती है, पर मन नही होता। जहा एक अन्तर्मुहूर्त मे २४ बार जन्म-मरण करना पडता है। अनंती पुण्याई बढती है तो जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव बनता है। जिसको मन होता है, उसे सज्ञी पंचेन्द्रिय कहा जाता है।, जिसको मन नही होता, उसे असज्ञी पंचेन्द्रिय कहा जाता है। इस ज्ञान की आज तुमको आवश्यकता है। ज्ञान ही पावर है। ज्ञान ही सर्चलाइट है, ज्ञान रहित जिन्दगी पशु तुल्य है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन संक्षा तो पशु में भी होती है। कान, नाक, आख, बंदर को भी मिले है लेकिन वह ज्ञान उनमे नही होता, जो मनुष्य मे होता है। इसलिये मानव भव की विशेषता बतलाई गई है। ज्ञानी कहते है ज्ञान प्रगट कर-ज्ञान होगा तो दुर्गति मिट जायेगी। पाप करने से आत्मा अटक जायेगी। संज्ञी पंचेन्द्रिय के ४ भेद किये है-(१) नारकी (२) तिर्यच (३) मनुष्य और (४) देवता। नारकी मे असह्य दु ख आत्मा को भोगना पड़ता है। वहाँ के परमाधार्मिक देव शरीर को त्रिशूल चुभाते है, उठा कर शिला पर पछाडते है, पारे की तरह शरीर के टुकडे टुकडे कर डालते है, यो कम से कम दस हजार वर्ष तक का, और अधिक से अधिक ३३ सागरोपम तक का भयकर दु.ख, नरक मे भोगना पडता है। जिसे जीव ने अनती बार भोगा है। ऐसे ही पृथ्वी, पानी, अग्नि, दो तीन, चार, पाच इद्रिय, सज्ञी, तथा असंज्ञी मे भी अनन्त भव किये है। आज तुम महान पुण्य से संज्ञी पचेन्द्रिय मे भी जानवर नही, नारकी नही, देवता भी नही, मनुष्य बने हो। यह महान पुण्य का उदय कहा गया है। देवता भी सीधे मोक्ष मे नही जा सकते। केवल मनुष्य भव ही ऐसा भव है, जहाँ से मोक्ष मे पहुँचा जा सकता है। दूसरा कोई भी भव मोक्ष मे ले जाने वाला नही है।

परोसी हुई थाली पडी है, पर हाथ से उठाकर मुह मे रोटी का कोर रखोगे नही, वहाँ तक भूख कैसे मिट सकेगी ? उसी तरह सर्वार्थसिद्ध मे रहे हुए जीव को भी, जो कि निश्चय ही एकावतारी है-एक भव करके मोक्ष मे जाने वाला है, उसे भी मनुष्य बनना ही पड़ता है। तभी वह मोक्ष में जा सकता है।

देवता को मति, श्रुति, और अवधिज्ञान ये ३ ज्ञान होते हैं। नारकी और तिर्यंच को भी ये ३ ज्ञान हो सकते है। लेकिन चौथा ज्ञान, मनपर्यवज्ञान तो मनुष्य को ही हो सकता है। जो मनुष्य दीक्षा लेकर साधु बनता है वही इस ज्ञान का स्वामी बन सकता है। तीर्थंकर को भी दिक्षा लिये बिना मनपर्यव-ज्ञान नही हो सकता। मनुष्य ही दिक्षा ले सकता है, और वही केवली भी बन सकता है। ऐसी योग्यता मानव मे ही है। बीज में उगने की शक्ति है, पर वह कोठी मे पडा रहे तो उग नही सकता है। जब उसे उपजाऊ जमीन मे डाला जाता है तभी उसमे अकुंर आता है, और फलद्रुप बनता है। वैसे ही मानव मे ज्ञान की शक्ति तो है, मोक्ष मे जाने की ताकत तो है, परंतु अनुकूल संयोग नही मिलने से वह मोक्ष मे नही जा पाता। सुदेव, सुगुरु सुधर्म का जव उसे योग मिल जाता है, तव उसका भी मोक्ष प्राप्त करना निश्चित हो जाता है।

कोई वैद्य दवा दे, और खाने का परहेज बतावे, तो उस पर विश्वास रखना ही पड़ता है। तुम्हे अपने नौकर पर भी विश्वास करना ही पड़ता है। पचास रुपये का सिपाही करोडो की मिल्कत सभालता ही है न? विश्वास तो करना ही पडता है, अन्यथा काम भी कैसे चले! बैंक में और सेफ डिपोजिट वोल्ट मे रुपया रखते हो, तो वापिस मिल जायेगा ऐसा विश्वास तो मन मे रखते ही हो न? ऐसा विश्वास धर्म मे क्यो नही करते हो? सर्वज्ञ की वाणी है, किसी चलते फिरते आदमी की वाणी नही है। सम्पूर्ण ज्ञानी की वाणी मे श्रद्धा हो, तभी वह ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहा जाता है। वड़ा से वडा वक्ता या लेखक क्यों न हो, पर श्रद्धा न हो, तो वह वक्ता नहीं, वक वक करने वाला ही है। सम्यक्-ज्ञान के अभाव मे सभी ज्ञान अधूरे है, मिथ्या है। श्रद्धा पूर्ण ज्ञान ही सच्चा ज्ञान होता है। मूल तो सम्यक्दर्शन है—उसका पोपण करो, ज्ञान अपने आप पैदा हो जायगा। जहाँ ज्ञान नही होता, वहाँ ही उलझने हुआ करती है। तभी तो वह वदलता रहता है: सम्यक्ज्ञानी कभी वदलता नही है।

भगवान पर विश्वास रक्खो, रेल मे विश्वास रखकर बैठते हो, वायुयान मे विश्वास रख कर बैठते हो, अकस्मात का विश्वास नहीं करते हो। जो होने वाला है वह होगा ही। यह समझकर ही आप कामकाज करते हो। उसमे तो अकस्मात होने का डर है, पर वीतरागवाणी मे तो भय है ही नही, अकस्मात का भय विल्कुल नही होता। वहा तो विल्कुल लाईन क्लीयर होती है, लाल वत्ती का नामोनिशान भी नही होता। सर्वत्र हरी झंडी लगी रहती है। फिर भी भगवान की वाणी मे अश्रद्धा क्यों लाते हो? याद रखिये कि ज्ञान करोगे तो

पार हो सकोगे। नही तो डूब मरोगे। कहा भी है—

पढमं नाणं तयो दया–पहले ज्ञान , फिर दया है। ज्ञान होगा तो दीपक जलेगा। ज्ञान का दीपक जलाओ, दीपक बुझ जायेगा तो अधकार हो जायेगा। जैसे किसी पावर हाऊस से पावर चली जाती है, तव अधकार हो जाता है। वैसे ही तुम्हारे हृदय में भी ज्ञान का प्रकाश प्रज्ज्वलित करो, नही तो जीवन अंधकार मय हो जायेगा। कहिये, आपके जीवन में प्रकाश है, या अंधकार ?

एक धनाढ्य सेठ है। पैसा वहुत है। दान पुण्य भी वहुत करता है। धर्म के प्रति भी अटल श्रद्धा है। मुनि के व्याख्यान सुनता है, धर्म का प्रेम उसके रग रग में समाया हुआ है। तदनुरूप नाम भी उसका धर्मदास है। वह जीवन में धर्म की आवश्यकता समझने वाला था, मगर आज तो धन की आवश्यकता समझी जा रही है। कुटम्व–परिवार स्त्री, पुत्र, आदि तो पत्ते है। मूल को सीचोगे, तो पत्ते अपने आप हरे हो जायगे। मूल हरा नही होगा तो पतझड में पत्ते तो झड जाने वाले है। अतः मूल को सीचोगे तो पत्ते भी हरे भरे रह सकेंगे। धर्मदास की पत्नी का नाम सुभद्रा था। सेठ के यहा कोई कमी नही थी। कमी थी तो यही कि उनको एक भी सतान नहीं थी।

जेने त्यां छे धन घणो–तेंने नहीं संतान
संतानो टोळे वल्यां–त्यां नही खावा धान।
तेथी आ संसार दिशे–उभय ने अकारो रे।

जहां धन है, वहा संतान सुख नही, जहां सतान है, वहाँ खाने का ठिकाना नहीं, यही संसार है। कही तो एक चलने लगता है कि दूसरा तैयार हो जाता है। कहाँ यह दशा, और कही यह दशा कि शादी हुये १५ साल हो गये, फिर भी एक भी संतान पैदा नही हुई। सेठानी पुत्र प्राप्ति के लिये हर तरह के प्रयत्न करती है। अंबाजी को पूजती है और यो पुत्र प्राप्ति के लिये विव्हल रहती है। दूसरी तरफ अधिक लडको वाली मा भी अम्बाजी को पूजती है और कहती है–क्या मां सारी मेहरवानी मेरे पर ही कर दोगी। वडी मुश्किल से पति ५० रु महीना कमाकर लाता है। ६ आदमी का गुजारा करना पडता है! अव तो मेरे पर कृपा करो, मुझे कुछ नही चाहिये।

रन्ना दे झाजां छोरूडा अलखामंणा
वाक्खां पड्या छे, खाटी छास ना,
दूध ना पाडे पोकार रे। रन्ना.

यह वेचारी माताजी से रूठ रही है। अव मुझे सतान मत दो। मैं तो ...रा गई हूँ। उधर वह सेठानी सतान के लिये तरस रही है। संतान वाले

विचार करते हैं. लडकियों का सम्बन्ध करना है, शादी करना है, कैसे क्या होगा? दिन और रात उन्हे इसी की चिंता रहती है। एक भूल कितना बड़ा संसार खड़ा कर देती है, क्या इसका भी कभी विचार करते हो?

ज्ञानी कहते हैं कि जहाँ नही है, वहाँ भी रोना है, और जहाँ है वहा भी रोना है। यो दोनो ही तरफ दुःख है। सुख कहीं भी दिखाई नहीं देता। तो सुख कहाँ है? जहाँ धर्म है, वही सुख है।

एक भाई सेठानी से कहता है, तुम देवी देवताओ की मान्यता करना बंद करो, और गरीबो की सेवा मे मन लगाओ। गरीबों के हृदय को शांति पहुंचाओगी, तो तुम्हे भी शांति अवश्य मिलेगी। भाई की यह बात उसके गले उतर गई। सेठानी अब रोज दो टोपले सोना मोहर का दान करती है। गरीबों को ओढ़ने का कपडा देती है, खाने को अनाज देती है। जिसे जो चाहिये, ले जाओ, किसी को मना नही करती। ऐसा करते करते उसकी भी इच्छा पूर्ण हो जाती है। वह एक स्वरूपवान लड़के को जन्म देती है, सेठ उसका नाम कमलेश रखता है, घर मे कोई कमी नही थी, बडे लाड प्यार से बालक का पालन होता है। लड़का बडा होता है। स्कूल मे पढने जाता है। स्कूल में भी पहले नम्बर पास होता है, पढ लिखकर लड़का होशियार हो जाता है। पिता का व्यापार धंधा भी संभालने लग जाता है। यो लड़के मे सब तरह के सद्गुण थे, अवगुण मात्र यही था कि उसकी धर्म के प्रति रुचि नही थी। सेठ उसे उपाश्रय मे आने का कहता, तो उसे रुचता नही था। उपाश्रय मे वह आता और लोगों को मिच्छामि दुक्कड करते हुए देखता तो सोचता—यह रोज रोज ऐसा कहते हैं और फिर वही करने लग जाते है। यह कैसा मिच्छामि दुक्कड है?

एक मकान ऐसा है जिसको रोज साफ किया जाता है और एक मकान ऐसा है जो साल में केवल एक बार साफ किया जाता है? बोलिये, आप किसमें बैठना पसद करेंगे?

पाप—पाप मे भी अन्तर है। एक कर्म चिकने होते है और दूसरे रुक्ष होते है। संसार में रहते हुए जो काम अनायास करना पडता है इसलिये वह किया जाता है, जब कि दूसरा जान बूझ कर उसी के लिये करना है। अतः दोनों की भावनाओं मे भी बडा अन्तर हो जाता है। रोज सुबह शाम प्रतिक्रमण करने वाला अपनी सफाई रोज कर लेता है। लेकिन जो साल में केवल एक ही बार सम्वत्सरी का प्रतिक्रमण कर के अपनी सफाई करता है उसमें उसे
मेहनत करनी पडेगी? समय भी कितना लगेगा? अतः बुद्धिमानी तो इसी
रोज रोज अपना घर साफ कर लिया जाय ताकि कचरा जमा न

इसीलिये भगवान ने सुवह और शाम प्रतिक्रमण करने का कहा है।

मुसलमान भी दो वार नमाज पढ़ते है। ब्राह्मण भी संध्या करते है। अग्रेज भी प्रार्थना करते है और पाप की कवूलात Sorry कह कर करते है। लेकिन तुम तो पाप को कबूल भी नही करते हो? आप में से कितनों को प्रतिक्रमण आता है? सच्चा दवाखाना तो यह चलाने जैसा है। लोगो को प्रतिक्रमण सिखाओ और अपने पापों से पीछे हटाओ। इससे सुदर जीवन मे और कोई दूसरा काम नही होगा।

किसी को भोजन खिलाकर एक समय की भूख मिटा सकते हो, औषध देकर साल, ६ मास तक वीमारी से दूर रख सकते हो। अभयदान देकर आजीवन उसकी रक्षा कर सकते हो। पर ज्ञान –दान देकर तो भवोभव की भूख मिटा सकते हो–चौरासी का चक्कर तुम जीवो का मिटा सकते हो? सोचिये तो सही, वम्बई जैसे शहर मे कितनी जैन शालाऐ चलनी चाहिये? और आज कितनी चल रही है? तुम्हारे यहां जन्म लेकर भी लडका कोरा रह जाय तो यह कैसी वात होगी?

सेठ और सेठानी चाहते है कि मेरा लडका कमलेश धर्म में भी रुचि ले, पर वह समझता नहीं है। पिता कहता है तो वह उपाश्रय में चला जाता है, पर दूर से ही मुनिराजो को नमस्कार कर चला आता है। सेठ ने प्रयत्न करके भी देख लिया कि इस लडके की रुचि धर्म में नही है। सेठ को इसका बडा असतोष रहता है। क्या आपको भी अपने लडको से असंतोष तो नहीं है?

जेने समझी प्रभु ना गुण गाया
साचु जीवन मां एज छे कमाया
कर्यो संतो नो संग लाग्यो भक्ति नो रंग
अेना तकदीर ना (२) दरवाजा खूल्या
खूल्या दुख मां डुल्या रे, डुल्या
तमे भक्ति ना पंथडा भूल्या . . . रे ।

ज्ञानी कहते है यह संसार असार है। चाहे जितनी दुकाने कर लो या ओफिसे खोल लो, वंगले वना लो और धन कमालो, सुख का छीटा भी उनमे नही है—?

तमे केटला बंगलाओ बनाव्या
तमे केटला दाम गांठे वचाव्या
चलावी तमे केटली त्यां दुकानों
प्रभु ते तमो ने नथी पूछवानो

सुख धर्म मे है। धर्म नही किया तो कुछ नही किया। सब निस्सार है। लडका कमलेश धधा भी संभाल लेता है, पर धर्म नही करता । सेठ को संतोष नही होता।

सुबह उठकर ही भगवान का नाम लो। स्तोत्र पढो—भक्तामर, पुच्छिस्सुणं—आदि पढो—सारा दिवस आनंद से व्यतीत होगा। भगवान का गुणग्राम ही इस कलिकाल मे आधार भूत है। जिसने संतो का संग किया, जिसके हृदय मे साधु के प्रति प्रेम है—सन्मान है उसका भी किस्मत खुलते देर नही होती है।

सेठ लडके से कहता है—महात्मा आये है, उनकी वाणी तू अवश्य सुनना। लडके की रुचि धर्म के प्रति नही होती थी फिर भी वह बडा विनयी था। सेठ जो भी कहता वह कभी मना नही करता था। सेठ साधु से कहते है—मेरा एकाएक लडका है, पर धर्म मे उसकी रुचि नही है। आप उसे ऐसा उपदेश दे कि वह रास्ते पर आ जाय —धर्म के प्रति रुचि जागृत हो जाय। और सब उसमे गुण है—पर यही बात मुझे उसकी अखरती है—वह धर्म मे मन नही लगाता है। वह पढा लिखा होशियार है। किसी भी तरह आप उसे समझा दे।

कमलेश आता है, मुनि उसे उपदेश देते है। कमलेश नीचा मुह करके सुनता रहता है। मुनि ने जड—चैतन—नीति न्याय आदि का उपदेश दिया। और अन्त मे जब उससे पूछा कि तुमने क्या सुना ? तो वह बोला—मै तो उस मकौडे को देख रहा था। वह उस पेड पर १०८ बार चढा और नीचे उतरा। मै तो यह गिनती कर रहा था, आपका कुछ भी नही सुना।

दूसरे दिन सेठने सन्त से पूछा तो सन्त ने कहा—वह तो मकौडे का उतरना चढ़ना देखता रहा—मेरा उपदेश उसने नही सुना।

कुछ दिनो बाद दूसरे सन्त आये। सेठने उनसे भी लडके की बात कही। पर लडके को वे भी समझा न सके। सेठ चिन्तित रहता है। लडके को धर्म के प्रति रुचि जागृत क्यो नही होती है ?

इस बार एक ज्ञानी सत पधारते है। सेठ उनसे भी लडके की बात कहता है। मुनि बडे ज्ञानी—ध्यानी और समयज्ञ थे। सेठ कमलेश को मुनि के पास भेजता है। मुनि ने उसे देखकर कहा—तुम्हारे हाथ की रेखा तो बहुत अच्छी है—विद्या की रेखा कितनी अच्छी है ? पढने मे हमेशा प्रथम रहोगे। धन भी बहुत है। सब सुख है, पर एक बात है, वह मै कल बताऊँगा।

कमलेश कहता है— आप तो धर्म जानते हो, यह भी जानते हो क्या ?

मुनि ने कहा—हा हम तो यह भी जानते है।

उसने कहा—कल मै अपनी कुंडली लेकर आऊंगा।

दूसरे दिन वह अपनी कुडली लेकर आया। मुनि ने उसे देख कर कहा—तेरे ग्रह तो तेजस्वी है, पर एक ग्रह ठीक नही था। शादी के वाद ६ महीने तक उससे तुम अस्वस्थ रहे थे—मरणासन्न अवस्था मे पडे रहे थे। वात सच थी। कमलेश ने कहा यह सब आप कैसे जान लेते है? यह सब किस शास्त्र में आता है?

मुनिने कहा—चन्द्रप्रज्ञप्ति—सूर्यप्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों मे ज्योतिप शास्त्र का ज्ञान वताया गया है। परन्तु धर्म शास्त्र जो ज्ञान देता है वह ज्ञान उससे भी ऊंचा है। तुमने गणित तो पढा है न? शून्य को शून्य से गुणा या भाग करो तो क्या आवेगा? शून्य ही आवेगा न? खाली शून्य चाहे जितनी लगा दो उसकी कोई कीमत नही होती है, लेकिन उसके पहले एक की संख्या लगा दी जाती है तो उसकी कीमत कितनी वढ़ जाती है? एक को शून्य लगाओ तो १० दो शून्य लगावो तो १०० और तीन शून्य लगाओ तो हजार यो दस गुणा कीमत बढती जाती है। एक की संख्या निकाल दो तो उसकी कीमत शून्य हो जाती है। कुछ नही रहती है। इसी तरह धर्म रूपी इकाई के बिना सभी शास्त्र शून्य की तरह है। धर्म होता है तभी उनकी भी कीमत होती है।

तब यह धर्म क्या है? कमलेश को जिज्ञासा होती है।

मुनि कहते—सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप यह धर्म है।—

ज्ञान थकी जाणे सकल, दर्शन श्रद्धा रूप।
चारित्र थी आवक रुके, तपस्या खपन स्वरूप।

स्वरूप को जानना ज्ञान है। वस्तु को समझना दर्शन है। चारित्र से नये कर्मो का आना रुकता है और तपस्या से अपने कृत कर्मो का क्षय किया जाता है। कमलेश के हृदय मे धर्म पैदा होता है और वह कद मूल का त्याग कर देता है—रात्रि भोजन का त्याग करता है। रोज माला फेरने का नियम लेता है। सेठ ने देखा साधुजीने तो चमत्कार कर दिया है। कमलेश को अव कहने की जरूरत नही होती। वह तो रोज रोज उपाश्रय आने लगा। सेठ और सेठानी की खुशी का कोई ठिकाना नही रहा। कमलेश ने भी अट्ठाई की। सेठ की इच्छा पूरी हो गई। वधुओ? आप अपने लडको के लिये क्या कर रहे हो! याद रखिये कुए मे पानी होगा तो वाल्टी मे भी आवेगा। अतः ज्ञानी वनो और लडको को भी संस्कारित वनाओ। धर्माचरण करोगे तो सुखी वनोगे। जहां धर्म रहता है वही मोक्ष रूपी लक्ष्मी का भी निवास होता है।

मंगळवार ता. २७–८–६८

[६१]

सम्वत्सरी महापर्व

सम्वत्सरी का पर्व महापर्व है। जो वर्ष मे एक बार आता है। जिसकी राह देखते देखते महीना हो गया। महीने के घरसे ही सम्वत्सरी की तैयारी शुरु हो जाती है। लडकी की शादी करनी हो तो कितनी तैयारी करनी होती है? बरात आनेवाली है, कितने दिनो से उसकी व्यवस्था करने लग जाते हो! यह भी शिव रमणी के साथ सबंध करने की बात है, इसके लिये भी कितनी तैयारी करनी चाहिये? अतः महापुरुष कहते है– पूर्व तैयारी करो। प्रयत्न करोगे तो साध्य को भी प्राप्त कर सकोगे। केवलज्ञान तो एक समय मे ही हो जाता है। पर उसके लिये प्रयत्न कितना करना पड़ता है?

भगवान ने अपनी अमोघ वाणी का जो अजस्र झरना बहाया उसको सुननेवाले गणेश थे। जानते है यह गणेश कौन थे? शकर और पार्वती के लडके यह गणेश नही थे। यह तो गण का ईश गौतम–गणेश थे। ऐसे गणपति–गौतम चार ज्ञान और चौदह पूर्व के स्वामी थे। गौतम–गणपति ही द्वादशागी के रचयिता थे।

गण यानी समूह, उनके अधिपति होने से उनको गणेश कहा जाता है। वे गंध हस्ती के समान धीर–वीर और गंभीर थे। संघ के कार्यकर्ताओ को भी गंभीर होना चाहिये। किसी भी बात पर क्रोधित नही हो जाना चाहिये।

अग्रेसर नी उपरे जोखम होय हमेश।
मोटा खीला मोभने वलीथी होय विशेष

नेता बनना भी आसान नही है। बडा बनना है तो दिल बडा बनाना होगा। संगठन को निभा सकने की योग्यता होनी चाहिये। सघ को साथ मे ले जाने का काम आसान काम नही है। भगवान के १४ हजार साधु ३६ हजार साध्वियां और १ लाख १४ हजार श्रावक, इन सबको सभालना कोई हंसी खेल नही था।

गणपति का पेट वडा कहा जाता है। वे सागरके समान विशाल होते हैं। चाहे जो डाल दो, समुद्र जैसे सबको हजम कर जाता है, वैसा ही तुम्हारा हृदय भी होना चाहिये। यह सच है कि पांचो अंगुलियां समान नही होती है, पर हाथभी उनके विना शोभा नही देता है। संघ मे छोटे से छोटे आदमी की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। नेता को तो गभीर और विशाल हृदय ही होना चाहिये।

भगवान ने कहा है– प्रायश्चित्त का अधिकारी मुनि प्रायश्चित्त लेने आवे तो गुरु उससे दो–तीन वार प्रश्नोत्तर करे, अगर उसमे विषमता नजर न आवे तो वह उसे प्रायश्चित्त दे। प्रायश्चित्त भी इस तरह दे कि दोनो के सिवाय तीसरा

कोई नही जान सके । अगर आचार्य किसीसे कह दे तो वह भी उतने ही प्रायश्चित्त का अधिकारी वन जाता है । इसीलिये उन्हे 'सागरवर गभीरा' कहा गया है । आचार्य और गणधर देव तो गभीर और विशाल हृदय वाले ही होते है । हाथी की आख छोटी होती है– फिर भी वह सूक्ष्म दृष्टिवाला होता है । समाज के नेता को भी सूक्ष्म दृष्टि वाला होना चाहिये । समाज मे कौन दुखी है ? कौन वीमार है ? यह सव देखना चाहिये । सहायता लेने के लिये दूसरे आदमी आवे और तुम उसे धक्का खिलावो तो यह कैसी दया है ? वेतन भी समय पर न दो तो उसकी दशा कैसी हो जायगी ? जो मुसीवत मे पडे है उनको देखने वाला नेता है । कोई भी शुभ कार्य किया जाता है, लोग गणेश की स्थापना करते है– विवाह हो या मकान वनाना हो, कुआ खोदना हो या घर मे प्रवेश करना हो सभी गणेश को याद करते है– यह गणेश कौन है ? गणो का ईश ही गणेश है इसीलिये सर्वत्र उसकी पूजा होती है ! भगवान ने कहा है –

गण का ईश गणेश ।

संघका मुखिया–गणेश या गणपति सूक्ष्म दृष्टि से वह सबको देख लेता है ।

मा + नव अर्थात् माता के पेट मे नौ माह तक रहने वाला मानव कहा जाता है । फिर भी मानव मानव में अन्तर होता है –

आनंद पूछे परमानंदने माणसे माणसे फेर
एक लाखे लाभे नहि एक तांबियाना तेर ।

एक आदमी तो लाख दो तब भी नही मिलता और दूसरे पैसे मे तेरह ले लो । इतना अतर मानवो मे होता है ।

संघ का जीमन हो तो सभी खाने को बैठ जाते हो, परोसकारी तो स्वयं सेवक करेगें । क्यों भला ? काम तो स्वयं सेवक करे और आराम तुम करो ! संघ का काम है, सभी स्वयं सेवक क्यो नही बन जाते ? उपाश्रय में आये हो तो शान्ति रखनी चाहिये, यह भी स्वयं सेवक रखावेगें ? क्या तुम सुनने आये हो या सुनाने आये हो ?

पापों की आलोचना करो, आज का दिन इसीलिये आया है । आज कई लोग उपवास करेगे । कइयो का जीवन मे पहला उपवास होगा । उनकी हालत तो वे ही जानेगें । लेकिन जिसको उपवास की प्रेक्टिस होती है उसके लिये तो यह खेल है । पारंणा करोगे तो वीमार जैसे हो जाओगे । क्योकि कभी करते नही हो इसीलिये ऐसा होता है । अष्टमी और चौदस का उपवास करने वालों को ऐसा नहीं होता है । अतः उपवास करने की भी आदत डालो । जो रोज एकांतर तप करता है उसे कभी तकलीफ नही होती । आदत डालोगे तो दुख नहीं होगा । काम करते रहोगे तो

वोझा प्रतीत नही होगा। लेकिन काम करोगे ही नही तो वह बोझा लगेगा। अतः आदत डालो। व्रत पच्चक्खाण और उपवास आयविल की भी आदत डालो। फिर वे तुम्हे वोझ रूप प्रतीत नही होगे।

जैन धर्म मे अनंत तीर्थंकर हो गये है—अनेक महापुरुष हो गये है। सबने कर्मो से युद्ध किया और उन्हे परास्त कर केवली बने। उनकी शक्ति एटम बम से भी अलौकिक होती है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है—

जहा महात्तलायस्स, सन्निरुद्धे जलागमें।
उसिंसचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे।

तालाब में पानी आना बंद कर दो, तालाब मे जो पानी है उसे बाहर निकाल दो—तालाब खाली हो जायगा। इसी तरह आत्मा में जो इन्द्रियो द्वारा पाप चला आता है उसे सवर द्वारा रोको और तप द्वारा संचित कर्मो को नष्ट करो—आत्मा पापो से रहित बन जायगी।

जो तपस्या में लीन बन जाते है—वे तीन दिन तक निराहार रह कर भी दुखी नही होते है। तपस्या भी अमोघ हथियार है। हमारे गणपति—गौतमस्वामी छठ का तप करते थे और पारणा के लिये भी स्वयं जाते थे। कैसे गणेश थे?

भगवान ने कहा है—आज के दिन जो सम्वत्सरी का आराधन नही करता है तो उसे चौमासी का प्रायश्चित्त आता है।

सम्वत्सरी आज ही क्यो? इसका भी बड़ा महात्म्य है। शास्त्रो मे कहा गया है कि सभी आरे आषाढ सुद १५ को ही बदलते है। ५ वे आरे से ६ ठा आरा जब वैठेगा तो आषाढ सुद १५ को ही बैठेगा। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का काल चक्र इसी दिन बदलता है। पूर्णिमा को महीना पूरा होता है और अमावस को आधा महीना होता है। लेकिन आज उल्टा कैसे हो गया? यह समझ मे नही आता है? पूरा मास तो पूर्णिमा से ही होता है। वद १ से ४९ दिन बाद सम्वत्सरी आती है। यह तब क्यो आती है? इसका भी शास्त्र मे उल्लेख किया गया है।

६ ठे आरे मे लोग कपडे भी नही पहनेगे—नग्न ही रहेगे। ६ वर्ष की लडकी ही गर्भ धारण करेगी और कुत्तियो की तरह—६—७ बालक पैदा करेगी। गरमी ऐसी भयंकर पडेगी जिससे खाना भी पक जायगा। वादर अग्नि का विच्छेद हो जायगा। और मच्छ—कच्छ का आहार करेगें, आदमी की खोपडियो में लोग पानी पीवेगे। एक हाथ के आदमी होगे जो अधिक से अधिक २० वर्ष तक जीयेगें। ऐसा छठा आरा होगा।

जिसने श्रद्धा पूर्वक नवकारसी या तपश्चर्या न की होगी वे ही मर कर छठे

मे पैदा होगे। जहा से मरकर वे नरक में या तिर्यच गति मे ही जावेगे। उसके वाद पहला आरा वैठेगा जो २१ हजार वर्ष का होगा। पहले आरे से जव दूसरा आरा होगा तो वह ५ वे आरे जैसा होगा। उसमे पहले ७ दिन तक मुसलाधार पानी वरसेगा। धरती साफ हो जायगी। फिर ७ दिन तक अमृत की वरसात होगी। फिर ७ दिन खुला रहेगा और फिर ७ दिन तक दूध की वरसात होगी। फिर ७ दिन खुले रहेगे और फिर ७ दिन तक मुसलाधार वरसात होगी। जिससे पृथ्वी मे हरियाली हो जायगी। धान्य भी पैदा हो जायगा। तव वे लोग घर से वाहर निकलेगे और यह प्रस्ताव करेगे कि अव से कोई मांस मदिरा का पान न करे– वुरे काम न करे– कोई करेगा तो उसे समाज से वहिष्कृत कर दिया जायगा। सम्वत्सरी के दिन ही वे यह प्रतिज्ञा करते है।

भगवान ने सिद्धान्त मे कहा है–जब कभी अधिक मास हो तो दो पोष या दो आषाढ ही होते है। चौमासे मे तो दो मास आते ही नही है। पर आज तो लौकिक पचाग का सहारा लिया जा रहा है अतः समाज मे अनेकता फैल रही है। एक ने सम्वत्सरी कल की और दूसरे आज कर रहे है। दोनो जैन है, पर एकता न होने से सरकार भी तुम्हारी वात सुनती नही है। समाज मे संगठन नही है। कचरा एक सली से नही निकलता है, जव वे इकट्ठे होकर एक सूत्र मे बंध जाती है तो वड़े वडे महलो को भी साफ कर देती है।

वहु जन मली ने जे करे ते ऐके न कराय –!
सावरणी घर सज करे, एली एके शुं थाय ?

एक और एक साथ हो जायं तो ११ हो जाते है। चौपड मे भी जो मोहरा अकेला रह जाता है वह मारा जाता है। लेकिन यदि वे दो साथ में रहते है तो वचे रहते है। आपको भी साथ रहना है या अलग होना है? संगठन ही बल है। चोरो का भी संगठन कैसा होता है? उन्हे मर जाना कवूल है। पर अपने लोगो का नाम–पता नही बतावेगे। पर आज तुम्हारा संगठन कैसा है? आपस आपस मे ही लड–झगड रहे हो? अपने ही लोगो की नीदा कर रहे हो। घर की वात वाहर क्यो करते हो? काम तो घर वाले ही आनेवाले है।

सम्वत्सरी पर्व क्षमा याचना का पर्व है। सवके साथ क्षमायाचना करनी चाहिये। लेकिन आज आप क्या कर रहे हो? जिसके साथ भाई–वंधी है–दोस्ती है उसको तो खमाने जाते हो, और जिसके साथ दुश्मनी है–लड़ाई है–उसको नही खमाते हो तो यह कैसी क्षमायाचना है तुम्हारी?

आवेश खराव है। क्रोध आता है तो लज्जा भाग खडी होती है। क्रोधी मनुष्य वेशरम हो जाता है। जिसको क्रोध आता है उसकी आंखें वंद हो जाती है

आत्मा के समान सब को समझना क्षमा है। वह छोटा है, मुझे ऐसा कह रहा है! बहू कल तो घर में आई है, मैं उसको झुक सकूं? ऐसा सोचना बड़प्पन नहीं है। बड़प्पन तो नमने में है—झुकने में है। याद रखिये झुके बिना कुछ भी मिलता नहीं है। पैसे जैसी तुच्छ वस्तु को भी झुके बिना उठा नहीं सकते हो तो आत्मिक गुणों की प्राप्ति कैसे कर सकते हो? वह तो विनय और नम्रता से ही मिलते हैं। अक्कड़ पन से तो आत्मा अपने सद्गुणों से कोसों दूर ही रहता है। विनयवान ही सर्वत्र आदर पाता है। वैरी भी विनय से वश में हो जाता है।

तुम दुश्मन के पास जाकर भी क्षमा याचना करो—पैरों में पड़ो तो तुम्हारा क्या बिगड जाने वाला है? अभिमान रखोगे तो दुर्गति में चले जाओगे। अतः नम्र बनो। भगवान कहते हैं जिसकी तुम इन्तजार कर रहे थे वह पर्वाधिराज आ गया है। उसकी साधना कर लो।

तुम अपने माल की जाहिरात कितनी करते हो? सेम्पल भेजते हो—मुफ्त में भेजते हो ताकि माल जल्दी खप जाय। लेकिन धर्म के लिये क्या करते हो?

> कसेंगे कमर और आगे बढेंगे।
> धर्म युद्ध में हम खुशी से लडेंगें।
> अगर सर कटेंगे—खुशी से मरेंगे
> महावीर के हम सिपाही बनेंगें
> जो रखा कदम फिर न पीछे हटेंगें——(महावीर के)

भगवान महावीर के अनुयायी बन कर उनके धर्म का विज्ञापन करने में क्यों झिझक रहे हो? इसमे तुम्हारा क्या खर्च हो रहा है? तुम्हारे गुरु तो सुनाने का भी चार्ज नही लेते है। अपने हाथसे केश लुंचन करते हैं। गिरी

दिया लेते नही। अपने पास सूई जैसी चीज भी नही रखते। भूल से वह खो जाय तो उसके लिये भी २५ उपवास का दड लेना पडता है। उपाश्रय मे कोई लडका पेशाव कर दें और मुनि का उसमे पैर पड जाय तो इसका भी उसे ५ उपवास का दड लेना पडता है। ऐसे त्यागी मुनिराज का भी क्या आप विज्ञापन करते हो? दुकान पर आनेवाले मित्रो को भी उपाश्रय मे आने का कभी कहते हो?

धर्म प्रचार के लिये ईसाई लोग कितनी मेहनत करते है? आज हिन्दुस्तान मे भी कितने लोग ईसाई धर्म को मानने वाले हो गये है? लेकिन जैनियो की संख्या कितनी है?

जैन चालीस लाख जे अकबर समय अंके हता
संख्या रही दस लाखनी वरसो वरस घटता गया।
बीजा धर्म वधे ते लईने धड़ो
उठो वीर हवे मैदाने पडो।
करो दूर समाजे जेह सडो............।

कहते हैं, अकवर के जमाने मे जैनो की सख्या ४० लाख थी, पर आज वह १० लाख रह गई। दूसरे सभी धर्म बढ़ रहे है। पर तुम्हारा धर्म ही ऐसा है जो कम होता जा रहा है। नये वनना तो दूर रहा, पर जो है वे भी अपने में स्थिर नही हैं—इतर मत मे चले जा रहे है।

पाश्चात्य सस्कृति का आज हमारे यहा भी विस्तार होता जा रहा है। छोटे छोटे लडको को भी आज अपने माता-पिता को मम्मी और पप्पा कहना सिखाया जा रहा है। खान-पान का तो ठिकाना ही कहां रहा है? आज हमे जैनो को भी यह पूछना पडता है कि तुम अंडे तो नही खाते हो? मदिरापान तो नही करते हो? कैसी विचित्र दशा आज समाज की होती जा रही है?

पिता अट्ठाई तप करे और लडका कोलेज मे या अस्पताल मे मेढक चीर कर डाक्टर बने तो यह हर्ष की वात नही है। माता-पिता खुश हो जाते हैं कि लडका डोक्टर वन गया है। पर यह खुश होने जैसी वात नही है। हर्ष तो तव होना चाहिये जब कि वह साधु वन कर निकल जाय।

जैनियो मे आज संगठन कहां रहा है? एक ४ को सम्वत्सरी करता है दूसरा ५ को करता है। गिनती करना है तो सीधी करो, उल्टी क्यो करते हो? पूनम से गिनती करो तो कही तकरार जैसी वात ही न रहे। पीछे के ७० गिनना और पहले के नहीं मानना यह ठीक नही है। वस्तु का सही स्वरूप समझो। पांव तो क्रमशः ही उठते है—उल्टा-सीधा करने से काम नही चल पाता। दो

श्रावण या दो भाद्रपद के वजाय दो आषाढ या दो पोष कर दो तो सारे झगडे मिट सकते है।

उनके आज पारणा और हमारे कल पारणा! जहा एक तिथि मे ही संगठन नही वहा आगे क्या कर सकोगे?

महावीर की सतानो! तुम एक ही पिता के पुत्र हो—फिर यह क्या कर रहे हो? थोडी सख्या होते हुए भी यह फूट क्यो फैला रहे हो?

आज की नई पीढी को तो धर्म से घृणा होती जा रही है। कहते है—धर्म मे रस नही आता है। याद रखो, धर्म को छोड दोगे तो बेमौत मर जाओगे। सूरत की बाढ तो कुछ भी नही है,—धर्म शून्य जीवन तो भयकर बाढ मे बह जायगा। अत. धर्म की आराधना करो—बने उतना चारित्र मे उतारो—यह भी न हो सके तो श्रद्धा हीन तो मत बनो। उस पर अपनी श्रद्धा बनाये रखो।

आज का दिन हमारा सर्वोत्तम दिन है। वैर विरोध मिटाकर सबसे मित्रता करने का सबसे पवित्र दिवस है। अतः ज्ञानी कहते है—

मैत्री भावनु पवित्र झरनु मुझ हैयामाँ वह्या करे
शुभ थाओ आ सकल विश्वनु एवी भावना नित्य रहे।

मैत्री भाव का पवित्र झरना मेरे हृदय मे बहता रहे। क्षमा, शान्ति और सहनशीलता का निर्मल जल उछाले मारता रहे। दया और वात्सल्य भाव हृदय मे पनपते रहे— तभी हृदय पुनीत हो सकता है।

सेठ का लड़का शातिलाल रास्ते से निकलता है। पास के झोपडे से रोने की आवाज आती है। शातिलाल जाकर देखता है तो एक वाई रोती हुई दिखाई देती है। वह उससे पूछता है तुम क्यो रो रही हो? क्या कष्ट है? मुझे बताओ। मै उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगा। वाई कहती है—मै अपना दर्द किसे सुनाऊँ। पति टी. वी. से मर गया है। यह लडकी भी उसी बीमारी से मरणासन्न है। यह दो वर्ष का लडका भी भूख से तडफडा रहा है। क्या खिलाऊँ? पास मे एक पैसा भी नही है। मै स्वयं तीन दिन से भूखी हूँ।

शांतिलाल ने उसे शान्त्वना देते हुए कहा—वहिन तू रो मत, मै अभी घर जाकर तुम्हारे लिये खाना ले आता हूँ। यह सुनकर छोटा वालक कहता है—मामा जल्दी लाना, देर मत करना, भूख वहुत जोर की लग रही है। शातिलाल घर आता है और अपनी माता से यह वात कहता है। माता का नाम दया था। हृदय मे भी उसके दया भरी हुई थी। घर में जो भी था माता टिफिन भरकर दे देती है। इतने मे तो शातिलाल के पिता अभयचन्द सेठ आ जाते है। उसने लड़के के हाथ मे टिफिन देखा तो पूछा—तुम कहाँ जा रहो हो? वह कहता है—

एक बाई तीन दिन से भूखी है, उसके बच्चे बीमार है। उसीको देने यह ले जा रहा हूँ। सेठ बोला—माँ और लड़का मिलकर क्या यही काम करते हो? मेरा घर इस तरह लुटा रहे हो? खबरदार! जो एक दाना भी किसे दिया तो। लड़का बोला—बाबुजी दान तो आप भी देते हों न? इस गरीब को देने दो, बेचारी का इस दुनिया में और कोई नही है। सेठ बोला—चुप रह, ऐसे गरीब तो दुनिया में बहुत भरे पड़े है, किस किस की चिन्ता करेगा? शातिलाल सोचता है अब क्या करूँ? वह मेरी इन्तजार कर रही होगी। सेठ घर में है तब तक तो मैं निकल भी नही सकता हूँ। वह खिड़की के पास आकर खडा हो जाता है। इतने मे एक फकीर आता है। जो यह कहकर चिल्लाता है——

यादकर तो आबाद, भूलेगा तो बरबाद।

अभयचन्द सेठ उस फकीर को बुलाता है और लोगो को दिखाते हुए तीन सोना मोहर दान में दे देता है

आजकल कई जैन अपने घरों में सॉई बाबा के भी फोटू रखने लग गये है। कैसी हालत तुम्हारी हो गई है? श्रद्धा का भी तुम्हारा ठिकाना कहाँ रहा है?

सेठ अभयचन्द उस हट्टे कट्ठे फकीर को तो ३ सोना मोहर दे देता है, पर उधर जो बाई दुख से रो रही है, उसके लिये टिफिन भी भेजने नही देता। सेठ चार बजे एक मकान का खाद मुहूर्त करने बाहर जाता है। शान्तिलाल टिफिन लेकर उस बाई के पास पहुँचता है। साथ में सौ रुपये भी देने को ले जाता है। जैसे ही वह दरवाजा खोलता है बालक और बालिका को मरा हुआ देखता है। माता भी अतिम सॉस ले रही थी। उसने शान्तिलाल को देखा तो कहा—भाई, यहाँ तो अब कोई नही रहा है। खाने वाले तो लम्बी मुसाफिरी पर चले गये है। मैं बची हूँ, पर मुझे तो कुछ नही चाहिए। अट्ठम हो गया, मैं तो संथारा करके बैठ गई हूँ। तुम्हे कुछ आता है तो मुझे धर्म के दो बोल सुनाओ। यही मेरा सच्चा शरणा है। शान्तिलाल को लोगस्स आता था वही उसे सुनाने लगता है। वह उसे नमस्कार मंत्र और मांगलिक भी सुनाता है। जिसे सुनते सुनते वह अपना शरीर छोड़ देती है। शान्तिलाल रोने लगता है। वह सोचता है—अगर मैं समय पर आ गया होता तो इन बेचारो की जान बच गई होती।

तू नित नवला भोजन खावे

तुम रोज नये नये पकवान खाते हो, महफिल मे जाकर पानी की तरह पैसा बहा देते हो, लेकिन कोई अन्न बिना तड़फ तड़फ कर मर जाय तो उसका भी कभी ख्याल करते हो?

शान्तिलाल उन सब का शव श्मशान मे पहुँचाता है। और दाह क्रिया करवाता है। उधर सेठ मकान का मुहूर्त कर लौटते है तो मोटर का अकस्मात हो जाता है और सेठ मर जाते हैं। कहिये वे साथ में क्या ले जा सके? सारी माया यही रह जायगी। यह संसार तो स्वप्नवत् है। आँख खुली कि स्वप्न मिट जाता है, वैसे ही यह धन माल भी आत्मा के साथ जानेवाला नही है। अतः समझो। जो हाथ से दे जाता है वही साथ में भी ले जा सकता है।

लक्ष्मी तो चंचला है। आज का सेठ कल का भिखारी हो जाता है। और आज का भिखारी कल का सेठ बन जाता है। कौन किसका भाग्य जानता है? आये थे तब क्या लेकर आये थे? जाओगे तब क्या ले जा पाओगे? अतः जीव दया करो, यथाशक्ति दुखियो के दुख दूर करो, स्वधर्मियो की मदद करो—तुम्हारा पर्व सफल हो जायगा। शुद्ध हृदय से क्षमायाचना कर लोगे तो तुम्हारी आत्मा का कल्याण हो जायगा।

बुधवार ता. २८-८-६८

[६२]

ज्ञाता सूत्र के १४ वे अध्ययन का वर्णन चल रहा है। तैतली प्रधान वडा बुद्धिमान था। वह चार तरह की बुद्धि का स्वामी था। जो बुद्धिमान होता है वही प्रधान वन सकता है। राजा और प्रजा में सुमेल रखना प्रधान का ही काम है।

जे नगरी मां न्याय नहि तो ते नगरीमां रहेवुं शुं !
दुख मां नाखी कोऊ दिवसे रखडावी दुख देशे बहु।

जिस नगरी मे न्याय नीति नही—सभी धान पसेरी विकता हो, वहा नहीं रहना चाहिये। कभी भी वहा रहने से मुसीवत आ सकती है।

जीवन मे न्याय और नीति होना जरूरी है। उसके विना जीवन सुंदर नही वन सकता। लेकिन आज तो लोगो पर धन सवार हो गया है। चाहे जैसे भी मेरे पास धन आना चाहिये। यही सोचा करते हो। पर याद रखो, साथ क्या आने वाला है? साथ मे तो धर्म ही आवेगा।

सुत दार मात अरु भाई, कोई अंत सहायक नाहीं
संग चले न एक अधेला—सव चला........।
दो दिन का जग का मेला सब चला चलीका खेला

यह मेरी पत्नी है, यह मेरा लडका है, यह लडके का लडका है, तुम उन्हे धोखा नहीं देते हो, दुख देने का विचार भी नही करते हो। वैसे ही यह दुनि—

भी तुम्हारी ही है। अनंत वार तुमने ये सब संवंध प्राप्त किये हैं। फिर क्यो किसी को ठगने का विचार करते हो! ठगने से पहले कही तुम स्वय तो ठगा नही जा रहे हो? अतः ज्ञानी कहते है— पहले अपने को देखो कि तुम क्या कर रहे हो? अपनी आत्मा मे जो खरावी है, पहले उसे दूर करो। वैद्य दवा देता है तो पहले जुलाव देकर पेट साफ करता है और फिर दवा देता है। तभी दवा असर भी करती है। मकान पर रंग करना हो तो पहले साफ किया जाता है, तभी उस पर रग की चमक आ सकेगी। कपडे को भी रगने से पहले साफ करना पडता है। यो क्षेत्र विशुद्धि करना आवश्यक होता है। इसी तरह आत्मा को भी पहले शुद्ध वनाना चाहिये तभी वह सद्‌गुणों के सुवास से महक सकती है। आत्मा को शुद्ध वनाने के लिये मार्गानुसारीके २१ गुण वताये गये है जिनमे पहला गुण न्याय सम्पन्नता है। जो धन न्याय-नीति से उपार्जित किया जाता है वही रहता है। अन्याय का धन कभी नही रहता। उसको जाने के कई रास्ते होते है। देखा नही, अभी लोगो के नोट पानी मे बह गये, कही आग मे जल गये। कइयो का माल भाव घट जाने से आधा रह गया! यह सब जाने के मार्ग है; किसी भी मार्ग से वह जा सकता है। अत ज्ञानी कहते है-पहले से ही संभल जाओ, इकट्‌ठा करने का विचार मत करो। नीति का दो पैसा भी वहुत होता है और अनीति का हजार रुपया भी उसका मुकावला नही कर सकता। सत्य तो सत्य ही रहता है। वह कभी पलट नही सकता। पलटा-पलटी और वदला वदली तो नश्वर चीजो मे होती है-जड मे होती है।

सत्य का सूर्य तो रोज चमकता रहता है। उस पर कोई धूल फेकता है तो वापिस वह उस पर ही गिरती है। इसी तरह जो सत्यवादी है उसका कोई अहित नही कर सकता है। सत्य को डर किसका? डर तो असत्य वादी को ही रहता है।

गणितकी परीक्षा मे वैठने वाले लडके जव अपना प्रश्न-पत्र करते है तो जिनके सवाल सही होते है उन सवके उत्तर भी समान ही होते है। लेकिन जिनके सवाल सही नही होते है उनके उत्तर भी अलग अलग होते है। क्योकि वे सत्य नही होते। सच्चे का उत्तर तो सच्चा ही होता है। इसी तरह जो सिद्धान्त होते है वे तो तीन काल मे भी नही वदलते है। उनमे तो सदैव एक रूपता ही रहती है————

एक होय त्रण कालमां परमारथ नो पंथ

अनेक तीर्थंकर हो गये, पर उन्होने सिद्धान्त तो यही कहा। उनमे कोई भेद नही है।

आगल ज्ञानी थई गया वर्तमान मां होय।
थाशे काल भविष्यमां मार्ग भेद न कोय

ज्ञानी कई हो गये, वर्तमान मे भी है और भविष्य मे भी होगें, पर सभी एक ही मार्ग बताते है–उनके सिद्धान्त मे कही भी अन्तर नही होता है। इसीलिये ज्ञानी कहते है–सत्य पर अडिग रहो। सत्य के लिये कष्ट सहना पडे तब भी अटल रहो। सत्य के प्रताप से शूली का भी सिहासन हो जाता है। आग पानी बन जाती है, साप फूल की माला हो जाता है और गरम गरम तेल भी ठंडा बरफ बन जाता है। सत्यवादी के पास तो अपार बल होता है। जहा सत्य होता है उसीकी जीत होती है–सत्यमेव जयते।'

धोलेरा मे एक बैल था, जो सत्यवादी था। श्रावक धर्म का पालन करता था। अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करता था। व्याख्यान के समय आ जाता था और व्यख्यान पूरा होने पर चला जाता था। भगवान ने कहा है–तिर्यच भी श्रावक वन सकता है। यह बैल वैसा ही था। लोग उसे भगत कह पर पुकारते थे।

एक वार एक धनवान सेठ का ढाई वर्ष का बालक मार्ग मे खेल रहा था। हाथ मे सोने के कडे और गले मे सोने की चैन पडी हुई थी। एक बदमाश ने उसे देखा तो वह उसे उठा ले गया और गला दबाकर मार डाला। गहने उतार कर वह उस मरे हुए बालक को भगत के सिगडो पर डाल देता है। बेचारे बैल पर अब आफत आ गई। लोग समझने लगे इस बैल ने ही बालक को मार दिया है। बधुओ! जीवन मे सत्य की कसौटी तो होती ही है—

संकट कांटाकी अेनी पथारी ने अपयश फूलनी माला
मोह ममत्व ने होमी होमीने प्रगटावे त्याग नी ज्वाला
सतिया जन रे हो सतनी शूलीये विंधाय
अेना गुणला केम रे गवाय सतिया जनरे हो

सोने को भी आग मे गलना पडता है तभी वह निर्मल बनता है। महापुरुप भी इसी मार्ग पर चलते है। चाहे जितने कष्ट क्यो न आवे पर वे सत्य नही छोडते है। धर्म को नही छोडने वाले ही विजयी बनते है–यतो धर्मस्ततो जयः और धर्मो रक्षति रक्षितः जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता ही है।

किसी आदमी के पीछे सर्प दौडने लग जाय तो आदमी क्या समझता है? अपनी मौत को ही समझने लगेगा न? भयभीत हो वह कुए के मेढक से कहे कि मेढक मुझे वचा, मैं तेरी शरण आया हू तो क्या मेढक उसे बचा सकेगा? वह क्या बचा सकेगा? वह भी तो सांप का ही भोजन है न? उसे तो गरुड

भी तुम्हारी ही है। अनंत वार तुमने ये सब संबंध प्राप्त किये है। फिर क्यो किसी को ठगने का विचार करते हो! ठगने से पहले कही तुम स्वय तो ठगा नही जा रहे हो? अत: ज्ञानी कहते है– पहले अपने को देखो कि तुम क्या कर रहे हो? अपनी आत्मा मे जो खरावी है, पहले उसे दूर करो। वैद्य दवा देता है तो पहले जुलाब देकर पेट साफ करता है और फिर दवा देता है। तभी दवा असर भी करती है। मकान पर रंग करना हो तो पहले साफ किया जाता है, तभी उस पर रग की चमक आ सकेगी। कपडे को भी रगने से पहले साफ करना पडता है। यो क्षेत्र विशुद्धि करना आवश्यक होता है। इसी तरह आत्मा को भी पहले शुद्ध वनाना चाहिये तभी वह सद्‌गुणों के सुवास से महक सकती है। आत्मा को शुद्ध वनाने के लिये मार्गानुसारीके २१ गुण वताये गये हैं जिनमें पहला गुण न्याय सम्पन्नता हैं। जो धन न्याय–नीति से उपार्जित किया जाता है वही रहता है। अन्याय का धन कभी नही रहता। उसको जाने के कई रास्ते होते है। देखा नही, अभी लोगो के नोट पानी मे वह गये, कही आग मे जल गये। कइयो का माल भाव घट जाने से आधा रह गया! यह सब जाने के मार्ग है; किसी भी मार्ग से वह जा सकता है। अत.ज्ञानी कहते है–पहले से ही संभल जाओ, इकट्‌ठा करने का विचार मत करो। नीति का दो पैसा भी वहुत होता है और अनीति का हजार रुपया भी उसका मुकावला नही कर सकता। सत्य तो सत्य ही रहता है। वह कभी पलट नही सकता। पलटा–पलटी और वदला वदली तो नश्वर चीजो मे होती है–जड मे होती है।

सत्य का सूर्य तो रोज चमकता रहता है। उस पर कोई धूल फेंकता है तो वापिस वह उस पर ही गिरती है। इसी तरह जो सत्यवादी है उसका कोई अहित नही कर सकता है। सत्य को डर किसका? डर तो असत्य वादी को ही रहता है।

गणितकी परीक्षा मे बैठने वाले लडके जव अपना प्रश्न–पत्र करते है तो जिनके सवाल सही होते है उन सवके उत्तर भी समान ही होते है। लेकिन जिनके सवाल सही नही होते हैं उनके उत्तर भी अलग अलग होते है। क्योकि वे सत्य नहीं होते। सच्चे का उत्तर तो सच्चा ही होता है। इसी तरह जो सिद्धान्त होते है वे तो तीन काल मे भी नही वदलते है। उनमे तो सदैव एक रूपता ही रहती है ——————

एक होय त्रण कालमां परमारथ नो पंथ

अनेक तीर्थंकर हो गये, पर उन्होने सिद्धान्त तो यही कहा। उनमे कोई भेद नही है।

आगल ज्ञानी थई गया वर्तमान मां होय।
थाशे काल भविष्यमां मार्ग भेद न कोय

ज्ञानी कई हो गये, वर्तमान मे भी है और भविष्य मे भी होगें, पर सभी एक ही मार्ग बताते है—उनके सिद्धान्त मे कही भी अन्तर नही होता है। इसी-लिये ज्ञानी कहते है—सत्य पर अडिग रहो। सत्य के लिये कष्ट सहना पडे तब भी अटल रहो। सत्य के प्रताप से शूली का भी सिहासन हो जाता है। आग पानी बन जाती है, साप फूल की माला हो जाता है और गरम गरम तेल भी ठडा बरफ बन जाता है। सत्यवादी के पास तो अपार बल होता है। जहां सत्य होता है उसीकी जीत होती है—सत्यमेव जयते।'

धोलेरा मे एक बैल था, जो सत्यवादी था। श्रावक धर्म का पालन करता था। अष्टमी और चतुदर्शी को उपवास करता था। व्याख्यान के समय आ जाता था और व्यख्यान पूरा होने पर चला जाता था। भगवान ने कहा है—तिर्यच भी श्रावक बन सकता है। यह बैल वैसा ही था। लोग उसे भगत कह पर पुकारते थे।

एक वार एक धनवान सेठ का ढाई वर्ष का बालक मार्ग मे खेल रहा था। हाथ मे सोने के कडे और गले मे सोने की चैन पडी हुई थी। एक बदमाश ने उसे देखा तो वह उसे उठा ले गया और गला दबाकर मार डाला। गहने उतार कर वह उस मरे हुए वालक को भगत के सिगडो पर डाल देता है। बेचारे बैल पर अब आफत आ गई। लोग समझने लगे इस बैल ने ही बालक को मार दिया है। बधुओ! जीवन मे सत्य की कसौटी तो होती ही है—

संकट कांटाकी अेनी पथारी ने अपयश फूलनी माला
मोह ममत्व ने होमी होमीने प्रगटावे त्याग नी ज्वाला
सतिया जन रे हो सतनी शूलीयें विधाय
अेना गुणला केम रे गवाय सतिया जनरे हो

सोने को भी आग मे गलना पडता है तभी वह निर्मल बनता है। महा-पुरुप भी इसी मार्ग पर चलते है। चाहे जितने कष्ट क्यो न आवे पर वे सत्य नही छोडते है। धर्म को नहीं छोडने वाले ही विजयी बनते है—यतो धर्मस्ततो जयः और धर्मो रक्षति रक्षितः जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता ही है।

किसी आदमी के पीछे सर्प दौडने लग जाय तो आदमी क्या समझता है? अपनी मौत को ही समझने लगेगा न? भयभीत हो वह कुए के मेढक से कहे कि मेढक मुझे बचा, मैं तेरी शरण आया हूं तो क्या मेढक उसे बचा सकेगा? वह क्या बचा सकेगा? वह भी तो सांप का ही भोजन है न? उसे तो गरुड

ही बचा सकता है। जो बचा सकता है उसकी शरण मे तो जाते नही हो और मेंढक के पास जा रहे हो। वहा तुम सुरक्षित कैसे रह सकोगें? इसी तरह ज्ञानी कहते है—मेरे पास आओ, मै बचा सकता हूं, पर तुम उनके पास न जाकर औरत के पास जाओ—लडके के पास जाओ तो क्या वे तुम्हे बचा सकेगे। वे तो मेंढक की तरह है। स्वयं काल के मुह म जानेवाले है। शरण मे तो उनकी जाओ जो मृत्युंजय है। वे ही तुम्हारा भव-चक्र मिटा सकते हैं। साप से बचना है तो गरुड के पास जाओ। साप वहा खडा भी नही रह सकेगा। इसी तरह अगर तुम धर्मका शरण ग्रहण कर लोगे तो पाप खडे भी नही रह सकेगे।

संसार तो अनित्य है—नाशवान है। आज २१ आदमी घर मे खाने वाले है तो कल एक भी नही मिलेगा। इसका क्या ठिकाना है? देखते देखते आज नदी की बाढ मे माता के सामने पुत्र बह गया—पिता के सामने औरत बह गई। कौन किसको बचा सका? अतः धर्म करो, उसीका शरण लो, तुम्हारा उद्धार हो जायगा।

सारे गाव मे यह अफवाह फैल गई कि भगत ने तो लडका मार दिया है। लोग इकट्ठे हो गये। कहने लगे— अरे भगत, तेने तो गजब कर दिया—लडके को मार दिया? यह सुनकर बैल अपना सिर हिला देता है। पर वहा उसकी बात को समझने वाला कौन था? लोग तो वही कहते है—भगत, तेने यह क्या कर दिया? तू तो श्रावक कहा जाता है, रोज रोज व्याख्यान सुनता है—लडके को कैसे मार दिया?

पशु बोल नही सकता। वह तो अपना सिर हिला देता है। और क्या करे?

वे कहते है—भगत, अगर तू सच्चा है तो चल लोहार के पास।

भगत चल देता है। सारा गांव इकट्ठा हो गया। खेल सा हो गया। लोहार के यहा जाकर बल खडा हो गया। लोहार अपनी भट्टी मे लोहे का गोला गरम कर रहा था। वह गोला भगत के सामते रखा और कहा—भगत! अगर तू सच्चा है तो इस गोले को अपनी जीभ से चाट जा—सच्चा होगा तो यह गरम गरम लोहेका गोला भी पानी हो जायगा, नही तो तेरी जीभ जल जायगी और तुझे तडप तडप कर मर जाना पडेगा।

बैल ने नमस्कार मंत्र गिना और जीभ से उसे चाट गया। उसको कुछ भी नही हुआ। लाल अगारा भी पानी की तरह शीतल बन गया। कसौटी पर बैल खरा उतरा। लोगोने कहा—भगत सच्चा है, उसने लडके को नही मारा। किसी बदमाश आदमी का यह काम होना चाहिये। वे सब इसका पता लगाने की कोशिश करने लगे। लडके की मा ने लोगो से कहा कि लडके के हाथ मे सोने के कडे थे

और गले मे चैन भी थी तो सभी उसकी जाच करने लगे। आखिरकार ढूढते ढूढते वही आदमी मिल जाता है जिसने बालक को मार कर गहने उतार लिये थे और अपने घर मे छिपा कर रख दिये थे। वह भी अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। विजय अन्त मे सत्य की ही होती है। सत्य मक्खन की तरह होता है। चाहे जितना बडा पिड भी पानी मे डाल दो मक्खन ऊपर ही तैरता रहेगा। परन्तु असत्य तो पत्थर के समान है। एक छोटा सा ककर भी पानी मे डालोगे तो वह जमीन मे बैठ जायगा। कहिये, आप सत्यवादी है या असत्यवादी ? जायदाद पिता की है और लडके लड़ झगड कर कोर्ट मे पहुच जाते है। यह कैसी बात है ? नीति पूर्वक व्यवहार कहा रखते हो ? एक के पास से लेकर अपना घर भरो तो इसकी कोई कीमत नही है। कीमत तो न्याय–नीति और प्रभाणिकता की है। ऐसा आदमी कभी विपरीत मार्ग पर नही जाता है। वह जहा भी जायगा उसकी सुवास तो फैलने वाली ही है। धन की कमी उसे बाधा नही पहुचा सकती है।

जिसके पास धन है, पर ये गुण नही है तो वह साथ मे क्या ले जा सकेगा ?

कुड कपटनी बाजी खेली, देशो देशमां चणी हवेली
अंत समये जावु मेली अेकलो आव्यो अेकलुंजावुं. जागी...
मनसुबाना चणे मिनारा मृगजल सरीखा लागे प्यारा
चार दिवस ना अे चमकारा. अेकलो आव्यो अेकलुं जावुं
जागी जोने जीवलडातुं अेकलो आव्यो................।

ज्ञानी कहते है–कूड कपट करके –विश्वासघात कर के– अनीति का धन इकट्ठा कर–देश–विदेश मे मकान वनाते हो–जगह २ मकान खडे कर पैसा कमाते हो। पर अन्त मे साथ क्या ले जाने वाले हो ? सव यही छोड कर जाना पडेगा। एक सूई जैसी चीज भी नही ले जा सकोगे। तो फिर कर्म क्यो वाध रहे हो ? भोगना तो तुम्हे ही पड़ेगा। रहने वाले तुम्हारा साथ नही देगे। वहा तो तुम्हे अकेले ही भोगना पडेगा। तो फिर इन्हे छोडने को तैयार हो न ?

तुम्हारा लडका ही तुम्हे धोखा देना चाहे, झूठ वोल कर या चोरी कर सौ रुपया ले ले तो वह तुम्हे कैसा लगेगा ? चोरी करने वाला लडका अपना विश्वास घुमा वैठता है। फिर कभी वह चोरी न करे तव भी उसकी शंका की जाती है। ऐसा लडका तुम्हे अच्छा नही लगता है–जो कि तुम्हारा उत्तराधिकारी वनने वाला है, तो भगवान को भी अपने श्रावक का यह व्यवहार अच्छा कैसे लग सकता है ? भगवान के श्रावक तो अरीसा (कॉच) की तरह कहे गये है। वे हक का ही

लेते है। विना हक का कभी नही लेते। तुम कौन हो? खानदानी तुम्हारी कैसी है? महावीर के सुपुत्र ऐसा कर सकते है? जव उसका फल मिलेगा तव क्या करोगे? स्मशान यात्रा मे हजारो आदमी आवे, यह तुम देखने वाले थोडे ही हो। यहा से गये वाद तुम्हारा क्या होगा? यह तो तुम्हे ही देखना पडेगा। मर कर जव दूसरी गति मे जाओगे तभी अपने किये का फल भी भोगोगे।

आज यहा सच्चे की तो वात भी सुनने को कोई तैयार नही होता। सर्वत्र रिश्वत खोरी वढ गई है। कुछ दो तो काम होता है। नहीं तो लाईन मे खडे रहो। कोई सुनने वाला नही है। समझो, समझो वुरे काम का तो फल भी वुरा ही है। यह क्यो नही समझते? कर्म का खेल वड़ा विचित्र है, वह किसी को भी नही छोडता है। किसीके घर मे पक्षाघातसे पिता बीमार है तो किसी की लडकी विधवा वन गई है। किसी को टी. बी. हो गई है तो किसी को केसर की बीमारी हो गई है। यह सव क्या है? अपने अपने पापो का ही फल है। जीव बाधते समय तो हंस हस कर कर्म बाध लेता है, पर भोगते समय जब वह रोता है तब उसे याद आता है कि मैंने यह क्या कर लिया? अच्छा काम करते हुए तो हिचकिचाते हो, पर वुरा काम करने से नही घबराते हो। वकील और डोक्टर को पैसा देते समय तो कुछ नही सोचते हो, पर धर्मादा मे देना हो तो सोचने लग जाते हो। यह कैसी बात है? अत ज्ञानी कहते है—जिसके पीछे तुम दिन रात पड़े रहते हो वे यही रह जाने वाले है—

कत्तार मेव अणुजाई कम्मं

किये हुए कर्म ही साथ मे जाते हैं। और कोई नही जाता। कर्म वाधे हैं तो भोगना ही पडेगा। आचाराग सूत्र कहा है—

ततो से एगया विपरिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवति तंपि
से एगया दायाया विभयन्ति, अदत्ताहारो वासे अवहरन्ति,
रायाणो वा से, विलुंपंति, णस्सइ वा से विणस्सइ वा से
अगार दाहेण वा से डज्झति। इति से परस्स अट्ठाए
कूराणि कम्माणि बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेंति।

जो लोग धन के पीछे पडे रहते है, आय का साधन करते रहते हैं—धर्म करने की वात भी सोच नही सकते—पैसा ही सव कुछ समझते है। कमाने वाला एक, पर भाग पडाने वाले कई हो जाते है। धन प्राप्त किया—वह कुटुम्ब परिवार मे विभाजित हो जाता है। राजा भी टैक्स के रूप मे ले लेता है। आज तो मृत्यु टेक्स—वक्षीस दो तो उसका भी टैक्स सरकार को देना पडता है। ऐसा शासक कव मिलता है? जव पुण्य का खजाना समाप्त हो जाता है तभी ऐसा

शासक मिलता है। श्रेणिक महाराजा क्या शालिभद्र पर टैक्स नही डाल सकता था? पर उसे तो देख कर खुशी ही हुई। सोचता है मेरी प्रजा इतनी सुखी है, इतनी वैभवशाली है? लेकिन आज के शासक क्या कर रहे है। भले ही अनाज सड जाय पर आज रेर्शनिग तो चालू ही है। लाईन कभी मिटती नही है। जब पुण्य समाप्त हो जाता है तभी ऐसी दशा आती है।

हमारा देश स्वतंत्र क्या बना! स्वच्छद बन गया है, कंगाल हो गया है। आज देश दूसरे देशो का कर्जदार हो गया है। इतना कर्जदार कि उसके ब्याज मे ही भारत लूट जाने वाला है। क्या हो रहा है? कोई कहने वाला भी है? यह कैसा लोकशाही राज्य है? तुम्हारी आवाज तो कोई सुनता भी नही है। मत्स्योद्योग को बढावा मिल रहा है। उससे भी लाभ कमाने का सोचा जा रहा है। आबाद होने का स्वप्न देख रहे हो, पर याद रखो पाप कार्यो से तो बरबादी को ही न्यौता दे रहे हो? धर्मादा भी लोग खा जाते है। पर वह हजम होने वाला नही है। जो धर्मादा का धन भी खाजाता है वह तो जडमूल से चला जायगा। याद रखिये कर्म के राज्य मे देर हो सकती है, पर अंधेर चल नही सकती। अत: ज्ञानी कहते है—धन राजा ले जाता है। जमीन मे गाडदो तो मिट्टी बन जाता है। आग मे जल जाता है। और कभी कभी भूकम्प से भी नष्ट हो जाता है। यो धन मे कही शाति दिखाई नही देती है। पर धर्म मे तो कही अशाति नही है। सर्वत्र शाति ही है। अत.आत्मा का विचार करो। तुम शुद्ध बनो, निर्विकारी बनो—सारी दुनिया की फिकर मत करो।

समझी ने आप सुधरिये दुनिया नहीं सुधराय।
पग मां पगरखा पहरिये, पृथ्वी मढवा नहीं जवाय।

तू शुद्ध बन। अपनी आत्मा की फिकर करो।दुनिया की फिकर मत करो। सम्वत्सरी तो आकर चली गई। अब वह एक साल बाद आवेगी। वह तो अपना सदेश दे गई। वेर मज्झं न केणई— किसी के साथ वैर-विरोध मत रखो। इसे अपने जीवन मे उतारना है। जो साधक अपनी आत्मा को शुद्ध बनावेगे वे ही आत्मा के अक्षय—धाम को प्राप्त कर सकेगे।

तेतली प्रधान महान—बुद्धि शाली था—दुखियो का सहायक था। उसमे और भी कई गुण थे जिनका यथावसर वर्णन किया जावेगा।

ता. ३०-८-६८

[९३]

तेतली प्रधान शाम–दाम और दंड–भेद का जानने वाला था। प्रजा उससे संतुष्ट थी। वह दयालु और बुद्धि सम्पन्न था। प्रजा के दुख मे दुखी और सुख मे सुखी रहता था। लेकिन आज तो पर दुख से सुख अनुभव किया जा रहा है। ""र याद रखिये।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि.

किये हुए कर्मो का भोगे विना छुटकारा नही है। उदय काल आयेगा तव–

उदय आवता ज्यारे, भोगवे फल अेहना
विपाके भागी ना कोई बांधनारोज भोगवे।

कोई भी साथ देने वाला नही होगा। वे तो जिसने वांधे है उन्हे ही भोगना पडेगा।

न मात्रा न पित्रा न मित्रैर्न राज्ञा
न मंत्रेर्न तंत्रैर्न यंत्रैर्न देवैः।
न दारैर्न पुत्रैर्न भृत्यैस्तु लक्षैः
गतं चाप्यंते जीवितव्यं न पुंसाम्।

माता–पिता–स्त्री–पुत्र, नौकर आदि कोई भी कर्मो के फल मे भाग नही पड़ा सकते है। अत.ज्ञानी कहते है–तुम सावधान बनो। अपनी आत्मा को देखो। कही तुम उसे बिगाड तो नही रहे हो?

मोटर बिगड जाती है तो उसे ठीक कराते हो, शरीर बिगड़ जाता है तो डाक्टर के पास पहुंच जाते हो, घर का रग फीका पड जाता है तो उसे नया करा लेते हो तो ऐसा खयाल आत्मा का क्यो नही रखते हो? कही उसका खजाना चोरो द्वारा लूटा तो नही जा रहा है?

एक आदमी रेल मे जाता है, साथ मे चालीस हजार रुपया हो तो वह कैसा सावधान रहता है? ज्ञानी कहते है– तुम्हारे पास भी आत्मा का अखूट खजाना भरा पडा है, पर तुम उसकी रक्षा क्यो नही कर रहे हो? काम क्रोध, मान, माया और लोभ के चोर खुले आम उस खजाने को लूट रहे है, तुम सावधान क्यो नही वनते हो?

एक सेठ का घर चोर लूट रहे हों और सेठ यह सव अपनी आखो से देख रहा हो तो वह क्या करेगा? फोन करेगा और पुलिस को वुला लेगा। चोरो को पकडने वाला और कौन है? वह पुलिस को वुलाता है। पुलिस आकर चोरो को पकड लेती है। सेठ का माल वच जाता है और पुलिस चोरो को जेल मे डाल

देती है। इसी तरह तुम्हारी आत्मा का माल भी चोर लूट रहे है—धर्मराजा को फोन करो। वे आवेगें तो ये सब कषाय के चोर अपने आप उनके वश मे हो जावेगे।

क्रोध को वश में करना हो तो क्षमा रूपी तलवार हाथ में लेलो, क्रोध भाग खडा हो जायगा। जैसे चोर पुलिस से डरते है। वैसे ही धर्मराजाकी सेना के सामने कषाय के चोर खड़े नहीं रह सकते है। अतः धर्म का शरण लो। उसके सिवाय और कोई बचाने वाला नही है।

आ संसारे दुख दावानल, अंगे अगन जलावें
साची शांति पामे जे कोई, तारी लगन लगावे
मगन थई ने राचुं प्रभुजी, मारे, बीजुं बधुंअे काचुं प्रभुजी
शरणुं तारुं साचुं प्रभुजी मारे, बीजु बंधुंअे काचुं।

इस संसार मे दुख का दावानल जल रहा है—

अलित्तेण भन्ते लोए
पलित्तेणं भन्ते लोए

आधि–व्याधि और उपाधि मे सभी जीव जल रहे है। सुख किसी को नही है। दूध–पाक खा रहे हो, मौसम्मी का रस भी पी रहे हो, पर हृदय की जलन मिटती नही है तो उससे क्या लाभ है? हवाखाने पचगनी भी चले जाओ पर हृदय को शाति वहा भी नही मिलती है। सच्ची शाति तो वीतराग के मार्ग पर चलने मे है। उस पर चलोगे तो ज्ञात होगा कि वहा कितनी शाति है?

सच्चा सुख सम्यग् ज्ञान मे है–सच्ची समझ पैदा हो जाती है तो अशाति के वादल दूर हो जाते है। अनंत काल हो गया, हम दूसरो के दोषो को ही देखते रहे है। पर सच्चे दुश्मन तो अपने देह मे ही है—

दुश्मन छे तुझ देहमां चेतचेत नर चेत

शास्त्र मे भी कहा है—

अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाण य सुहाण य
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिय।

आत्मा ही कर्ता है और आत्मा ही भोक्ता है। सुख और दुख का कर्ता वही है। सम्यग्दर्शन का पुलिस जब आकर खडा हो जाय तो मिथ्यादर्शन का चोर भाग खड़ा होता है। सूर्य उदित होता है तो जैसे अंधकार नष्ट हो जाता है वैसे ही समकित का सूर्य उदित होता है तो अज्ञान का अंधकार भाग खड़ा होता है।—

उदयरूपी कुतरो, करडयो बारम्वार
समकित सिह जागी गयो, काढ़यो घरनी वहार।

एक समय मे आठो ही कर्मो का उदय हो जाता है। ऐसा यह कर्म भी एक कुत्ते की तरह है, जो वारवार आ जाता है। उसके पीछे भागो तो वह भी भागता रहता है। लेकिन जव समकित रूपी सिह जागृत हो जाता है तो क्या कुत्ता वहा खडा भी रह सकता है? तुम्हारी आत्मा तो सिह के समान है, फिर तुम कर्म रूपी कुत्तो से क्यो डर रहे हो? अपने पौरुप को जागृत करो, कर्मोको भागते देर नही लगेगी। स्वाध्याय करो—अपने स्वरूप मे रमण करो—कर्म अपनी सत्ता छोडकर ही भाग खड़े हो जायंगें।

तुम जागृत वनोगे तो कर्म आ नही सकेगें। मै वलवान हूं। मेरे वनाये हुए ही तुम हो—कर्मो को वनाने वाला तो मै ही हूं। मै शाश्वत नित्य और त्रिकाली हू। कर्म मेरे बनाये हुए नश्वर है। अपनी विभाव दशा मे मैने ये पैदा किये है और स्वभाव दशा मे मै तुम्हे भगा रहा हू। इस तरह सर्जनहार और विनाश करने वाला भी मै ही हू।

अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूड शामली।
अप्पा कामदुहाधेणू अप्पा मे नन्दणं वणं।

आत्मा ही सुख दुख का सर्जनहार और आत्मा ही वैतरणी नदी का दुख पाने वाला है। नरक की नदी वैतरणी मे दुख का पानी वहता है जिसके स्पर्श मात्र से शरीर कटने लगता है। कूडशामली वृक्ष जिस पर जीव लटकाया जाता है और काटो मे पिरोया जाता है। ऐसे महान—दुखो का कर्ता और भोक्ता आत्मा ही है।

दुनिया मे कोई भी ऐसा आदमी नही मिलेगा जिसे कि अपने घर की वर-वादी; धन का विनाश या कुटुम्ब का नाश प्रिय लगता होगा। तो फिर तुम अपनी आत्मा का विनाश क्यो कर रहे हो? सेठ के घर मे चोर घुस गये। सेठानी कहती है—चोरो ने तिजौरी खोल ली है। सेठ कहता है मै देख रहा हू—तू चुप रह। सेठानी कहती है—वे तो सव माल लेकर चल दिये है। सेठ कहता है—मै सव देख रहा हू—तू चूप रह। ज्ञानी कहते है ऐसा ही हाल तुम्हारा भी हो रहा है। समय समय आत्मा भाव मरण मे मरता जा रहा है।

क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे कां अहो राची रहो।

फिर जागृत क्यो नही होते हो? सेठ की तरह सव देखते ही रहोगे या उठोगे भी सही। कई लोग कहते है—हम वर्म को समझते है। राग—द्वेप—कपाय आदि सव जानते है। जान कर भी आचार मे नही उतारते हो तो यह

जानना भी क्या काम का है? सेठ जागते हुए भी उठता नही तो अपना सब माल घुमा बैठता है। वैसे ही तुम जानकर भी जीवन में उनका पालन न करो तो उससे तुम्हें फायदा होने वाला नही है। जो कुछ जानते हो, जीवन मे उतार लो तभी ज्ञान की सार्थकता है। ऐसा जीवन ही आदर्श जीवन कहा जाता है। आलसी जीवन आदर्श नहीं होता।

आलसु थईने बेठो शुं मूरखा रे,
तारी मूडी मफतमां जाय
तारी आत्मिक लक्ष्मी लुंटाय छे रे,
तेनी फरियाद क्यांय नहि थाय
जागजे जागजे जीवडा जागजे रे————

ज्ञानी कहते हैं—हे भाई! जागृत हो। तू अपने हाथ से अपना खून क्यों कर रहा है? तेरी आत्मिक लक्ष्मी लूटी जा रही है, फिर भी तू चुप बैठा है? तुम्हारा धन चला जाय तो सरकार के पास उसकी फरियाद भी कर सकते हो। पर इसकी फरियाद कहां करोगे? हृदय मे लोभ आकर संतोष को चुरा ले जाता है। क्रोध क्षमा को लूट ले जाता है। राग और द्वेष वीतराग भाव को चुरा ले जाते है। इसकी किसे फरियाद करोगे? खोये हुए धन का तो लोग पता भी कर लेते है पर आत्मिक गुणों को प्राप्त करने कहा जाओगे? इसके लिये तो स्वयं जाग्रत होना पडेगा। तुम स्वयं अपनी दया खा सको तो यह हो सकता है। दूसरो की दया करने वालो! अपनी दया न करोगे तो कहां चले जाओगे कुछ कहा नही जा सकता है। बेचारा कल तक तो सेठ था, आज कंगाल हो गया। बाढ मे सब कुछ बह गया। तो क्या बाढ ने उसे कंगाल बना दिया! नहीं। कर्मो ने उसका ऐसा हाल किया है। कर्म जमा थे तो उदय मे आये, कर्म जमा ही न हो तो उदय मे कहां से आ सकते है?

घर में लागा अगन पलिता
कोई कुवा खुदावन हार नही।
जब वैरी आन पुकारत सिर पर,
कोई घडन हार हथियार नहीं।
ज्युं मरण अंत तक वेदना पहुंचे,
कोई धरम करन हुशियार नहीं।
अेम जाणी जैन धर्म आराधो,
यह अवसर बारंबार नहीं।

घर मे आग लगी है—ज्वाला बढ रही है। उस समय कोई कुआ खोदने जाय तो उसे आप मूर्ख ही कहेंगे न? आग बुझानेवाले फायर ब्रिगेड तो पानी ला

रखते है, जहा भी आग लगती है चारो तरफ से पानी का झरना बहा देते है, आग बुझ जाती है। लेकिन आपके हृदय मे क्षमा का झरना चारो बाजु से प्रवाहित नही होता अत: आग कही न कही से भभकती रहती है—भाई का बहुत सहन किया, औरत का सहन नही किया तो आग को अपना मार्ग मिल गया। एक तरफ का मार्ग रोकते हो तो दूसरा खुल जाता है, अत: आग बुझती नही है। हृदय की आग को—क्रोध रूपी आग को शात करने के लिये भी चारों तरफ से क्षमा का पानी छिडकना चाहिये। तभी वह शात हो सकती है।

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे !

ऐसा अपूर्व अवसर आत्मा मे जब प्रकट हो जाता है तब वह कषायो के सामने विजय प्राप्त कर लेता है।

बुखार को नापने का थर्मामीटर तो है— शीत उष्णता का भी माप यत्र है। पर क्रोध का थर्मामीटर कहा है? उसका थर्मामीटर तो निमित्त ही है। सामने लडका आया नही कि चिल्लाने लग जाते हो—यही थर्मामीटर है। बात बात मे क्रोध तो खड़ा ही रहता है। कहा तक ऐसे रहोगे? डाक्टर रोगी को दवा देता है पर रोगी दवा न ले तो वह रोग से मुक्त कैसे हो सकता है? इसी तरह कषायो से दूर रहनेकी दवा भी गुरु तो देते है, पर उसको तुम न लो तो बीमारी दूर कैसे हो सकेगी? यहा उपाश्रय मे आकर तो हा हा कर लेते हो, पर घर जाकर भूल जाते हो। हम तो कह कह कर थक गये, पर तुम्हारे पर उसका असर क्यो नही होता है?

कही कही ने थाक्या गुरुवर कहेलु कान न धरे
जो शिष्य होय न कह्यागरो।
भरी भरी राखे ने जरी जरी जाय जलो
कोण भरे एवी काणी गागरो
खेडी खेडी ने खूब खेडयुं पण अन्न
न उछेरी आपे लवणनो आगरो
दाखे दलपतराम कोण करे अेवी माथाफोड़
ऊंघ वेचीने उजागरो।

गुरु कह कह कर थक गये, पर शिष्य उनका कहना न माने तो कहने से भी क्या लाभ है? फूटा घडा भरना भी व्यर्थ होता है। ऊसर जमीन को सीचने से भी कोई लाभ नही हो सकता। इसी तरह ज्ञानी कहते है जो कहने पर भी सुनता नही है तो उसके सामने नाहक सिर खपाने से भी क्या लाभ है?

जो बीमारी तुम नही समझ सकते, वह डाक्टर बताता है तो विश्वास कर लेते हो। फिर गुरु की बात पर विश्वास क्यों नही करते? वे कहते है तुम क्रोध मत करो,

क्षमा धारण करो, अनीति मत करो, न्याय युक्त व्यवहार करो, लोभ मत करो, सन्तोष धारण करो, तभी तुम्हारी आत्मा शुद्ध बन सकेगी । जो भूल तुम नही देख पाते वह सद्गुरु तुम्हे वताते है । उसे समझो और तदनुसार आचरण भी करो । पर यह बात तुम्हारे गले कहां उतरती है ?

सुनते सुनते वर्षो बीत गये पर आत्म सुधार कुछ नही हुआ । जहां थे वही रहे तो क्या फायदा है ?–

हां हेरीने हाकला, पलाजीने बांध्या कांकरा,
तोय कोरा ने कोरा

अन्तर्स्पर्शना क्यो नही होती है ? इसका क्या कारण है ? इसका स्वयं विचार कीजिये । थाली में तेल लगा दिया जाता है तो पानी का स्पर्श उसे नही होता है । क्योकि तेल का पट लग गया है । इसी तरह तुम्हारे पर भी व्याख्यान का असर नहीं होता है तो समझ लो बीच मे कही चिकनाहट अवश्य लगी हुई है । उसे दूर नहीं करोगे तव तक तुम्हारा भला कैसे हो सकेगा ?

अतः समय मात्र का प्रमाद मत करो और अपनी तरफ से पूर्ण तैयारी रखो । शत्रु भी आ जाय तो तुम उसका मुकावला कर सकोगे । लेकिन लड़ने की कला ही नही आती हो तो राजा अपने राज्य की रक्षा कैसे कर सकेगा ? क्या उस समय वह युद्ध करना सीखेगा जब कि शत्रु सामने खडा हो ? इसी तरह तुम भी धर्म को बुढापे के लिये रख रहे हो । जब मरणान्त अवस्था आ जायगी, इन्द्रियां तुम्हारी शिथिल बन जायगी तब तुम दुखी हो जाओगे और तब तुम यह कहोगे कि मुझे धर्म सिखाओ, सथारा करवा दो– मुझे तो सब चीजो का त्याग करवा दो – अब क्या हो सकता ? जब चिडिया चुग गई खेत, फिर पछताये होत क्या ? समय गुजर गया। प्रमाद ही प्रमाद मे सारा समय निकाल दिया । इंद्रिया बेकार हो गई तब क्या धर्म कर सकोगे ? धर्म तो पहले करने की चीज है, कल किसने देखा है ? जब तक बाजी हाथ मे है धर्म करलो – परभव की कमाई करलो– बाजी हाथ से गई कि फिर पछताना ही शेष रह जायगा ।

ऐसा समझ कर जो लोग धर्म की आराधना करेंगे– व्रत नियम करेंगे तो उनकी आत्मा का खजाना अक्षय वना रहेगा । उसको कोई भी लूट नहीं सकेगा ।

तैतली प्रधान गाव में आने-जाने वालों की बराबर खबर रखता है । एक बार वह घोडे पर बैठ कर घूमने निकलता है । उसका अधिकार [illegible] जायगा ।

[६४]

तैतली प्रधान चार तरह की बुद्धि का स्वामी था। किसी भी बात का जो पहले न जानी है और न सुनी है उसका भी यथार्थ हल निकाल लेना उत्पादिका बुद्धि है। २ विनयिका बुद्धि :—गुरु का विनय करने से जो बुद्धि प्राप्त होती है वह विनयिका कही जाती है। जो विनयी होता है वही ज्ञान की चावी प्राप्त कर सकता है। विनयवान लडका ही पिता की सम्पत्ति का मालिक होता है। विनयी बहू ही सासू का मन जीत सकती है। विनय से तो वैरी भी वश में किया जा सकता है।

जैसे प्राणियों के लिये पृथ्वी आधार भूत होती है वैसे ही विनय भी सभी आत्मिक गुणो का आधार है। उत्तराध्ययन सूत्र का पहला अध्ययन विनय का ही है। वि + नय विशेष रूप से जो मोक्ष की तरफ ले जाने वाला है वह विनय कहा जाता है। विनयी सबका प्रिय होता है। अविनीत को कोई नही चाहता।

गुरु हितशिक्षा दे तो विनयी शिष्य क्रोधित नही होता। वह तो यह समझता है कि जो भी गुरु कहते है, वे मेरे हित के लिये ही कहते है। मा वाप कभी अपने लडकों के लिये खराव बात सोच नही सकते है। वैसे ही गुरु भी अपने शिष्य का कभी अहित नहीं सोच सकते।

हितशिक्षा कडवी भी हो तो दवा की तरह उसे भी पी जाना चाहिये ताकि हृदय की शुद्धि हो जाय। तुम्हें कोई सूई चुभा दे तो कैसा लगता है ? फिरभी बीमारी को दूर करने के लिये इंजेक्शन भी लगाते ही हो। इसी तरह हित वचन कटु होने पर भी गुरु के प्रति अविनय न करते हुए विनयी शिष्य उसे स्वीकार कर लेता है। वह कभी सामने नही बोलता है। वह तो यही समझता है कि गुरु मेरे लिये कितना प्रयत्न करते है ? हर समय मेरा कितना खयाल रखते है ? मेरे धन्य भाग है कि मुझे ऐसे गुरु मिले है।

जिसको सुधरना होता है वह कभी अविनयी नही बनता।

जं मे बुद्धाणुसासन्ति, सीएण फरुसेण वा।
मम लाभोत्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे।

गुरु का उपदेश शीतल हो या कर्कश—कठोर हो, मेरे लाभ के लिये ही है अतः अमृत समझ कर उसका पान कर जाना विनयी का काम है। मैं भूल का पात्र हूं। भूल मुझ से हो सकती है अतः मुझे भूलो से रहित वनाइये — क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित वनाइये— निर्मल वनाइये। मेरी आत्मा की दुर्गति मिटाने के लिये ही आप मुझे यह कह रहे है।

लेकिन आज ऐसा विनय कहां दिखाई देता है ? स्वतंत्रता के नाम पर आज

स्वच्छदता का पोषण किया जा रहा है। ऐसे साधक त्रिकाल मे भी सुधर नही सकते है। उनके हृदय मे यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मै भी कुछ हू, वह मिटे तभीउसे ज्ञान हो सकता है।

विनय हो तो अपना गुप्त खजाना भी माता-पिता उसे दे देते है। हृदय के आशीर्वाद भी विनयी को ही मिलते है। ऐसा आशीर्वाद जो काम करता है, वह धन नहीं कर सकता है।

पसन्ना लाभइस्सन्ति विउलं अट्ठियं सुयं।

शाश्वत धन और सूत्र की गुप्त चाबिया जो गुरु को प्रसन्न करता है वही ले जाता है। दूसरे को वह नही मिल सकती है। मेरे गुरु तो तरण-तारक है, किसी को डूबने नही देते है। डूबतों को बचाते है, भूले हुए को मार्ग बताते है।

मारा तारक जिनेश्वर देव छे रे
अेना राहे मुक्ति अवश्यमेव छे रे
भूला पडेलाना ए चन्द्र छे रे
दया तणा दातार वली भद्र छे रे... मारा...

मेरे तारक तो जिनेश्वर देव ही है। यदि हमे यह मार्ग नही मिला होता तो हम कहाँ चले गये होते, किसी कचरे मे पड गये होते! यह तो परम्परागत देव है। पर गुरु तो प्रत्यक्ष है।

गुरु गोविन्द दोनों खडे किसको लागूं पाय
बलिहारी गुरु देवकी गोविन्द दिया बताय

गोविन्द को बताने वाले तो गुरु ही है। अतः मेरा तो सब कुछ समर्पण गुरु को ही है।

शिष्य फिरने के लिये जाता है तो आवस्सहीय कह कर गुरु से आज्ञा लेता है। गौतम स्वामी भी छठ के पारणे का आहार लेने जाते है, तो भगवान से पूछते है। वे आहार लेकर लौटते है, तो भगवान को बताते है। भगवान तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, फिर भी उन्हे वे आहार लाया हुआ दिखाते है। साधु अपना देह निभाने के लिये ही भिक्षाचरी करता है।

मोक्ख साहण हेउस्स साहुदेहस्स धारणा
मोक्ष साधन हेतुयी धारतो साधू देहने
आ भिक्षा-वृत्ति निश्पापी ते सारुं वर्णवी जिने:

संयम के लिये इस देह का पोषण करना पड़ता है। इस देह को निभाने के लिये जो निर्दोष आहार पानी लाया जाता है, उसे भी गुरु को दिखाये विनयी शिष्य उपयोग मे नहीं ले सकता है।

निष्पाप जीवन जीने वाले साधु को भी यह सोचना चाहिये कि मुझे गुरु के सिवाय और कौन बतानेवाला है। मेरी भूल बताना उनका काम है। मै भी भूल रखने के लिये मुनि थोड़े ही बना हूँ। शल्य कौन रखना चाहेगा ? डोक्टर भी आपरेशन कर देता है और सड़ा हुआ भाग निकाल देता है तो गुरु भी मेरी भूल निकालनेवाले हैं। मै उन पर क्रोध क्यो करूँ ? वे तो मेरा हित ही कर रहे है। मुझे निर्मल बनाने का ही प्रयत्न कर रहे हैं। शरीर मे काटा चुभा है, तो उसे निकालने के लिये सुई भी चुभानी होगी, वर्ना वह निकलेगा कैसे ? अतः गुरु का अविनय मत करो।

आः देहादि आज थी वर्तो प्रभु आधीन
दास दास हुं दास छुं तेह प्रभु नो दीन ॥

साधक अपना सर्वस्व समर्पण गुरु चरणो मे कर देता है, उस पर अगर गुरु की एक कृपा दृष्टि हो जाती है तो सभी शास्त्र उसे समझ मे आ जाते है। हृदय के सभी दरवाजे खुल जाते हैं। अंदर का दरवाजा खुला कि सभी दरवाजे अपने आप खुल जाते है ! इसीलिये विनय को सबका मूल कहा गया है।

दुर्गादास नामः एक प्रधान था। राजा के पुत्र को अपनी गोद मे खिलाया था, जब राजा मर गया तो यही राजकुमार राजगद्दी पर बैठा। राजकुमार जवान है, और प्रधान वृद्ध है। बात बात मे मतभेद होजाता है। प्रधान ऐसा कह देता है कि ऐसा नही करना चाहिये। आप राजा है शिकार नही करना चाहिये। मदिरा पान भी नही करना चाहिये, यो वह राजा को कहता रहता है।

राजा को सत्ता का अभिमान है। सोचता है :– यह राजा है कि मैं राजा हूँ ? बार बार मुझे क्यो टोकता रहता है। बूढा हो गया है। मेरे बापके जमाने का है। इसलिये मैंने भी रख रखा है, पर यह अपनी आदत से बाज नही आता, हरदम मुझे टोकता ही रहता है। राजकुमार प्रधान से अप्रसन्न रहता है। इसके दोस्त भी ऐसे ही मिल गये ! वे राजा से कहते है कि आप इसे हटा क्यों नही देते ? दूसरे देशो के राजा भी प्रधान से ही पूछने आते हैं तुमको तो कोई नही पूछता अतः राजा वह है कि तुम हो ? राजा कहता है प्रधान को हटा देने से भी क्या लाभ होगा। लोग तो तब भी उसे ही पूछने जायेगे। मुझे तो कोई भी पूछेगा ही नही। तब क्या करूं ?

दोस्त कहते हैं–अब तो एक ही रास्ता है। इसको मरवा ही डालो, न रहेगा बाँस न बजेगी बासुरी–तब कोई आयेगा जायेगा भी नही।

शास्त्र में कहा है:–

बहु जणस्स नेयारं दीवं ताणं च पाणिणं।
एयारिसं नरं हन्ता महामोहं पकुव्वइ ।

लोगो को सच्ची सलाह देनेवाला नेता द्वीप के समान कहा गया है । उसको जो मार देता है वह महा मोहनीय कर्म का उपार्जन करता है ।

राजा कहता है – प्रधान को जान से मार देना तो ठीक नही है । बेचारे ने सारी जिन्दगी काम किया है ।

दोस्त कहते है– हम इसे मार कर स्वर्ग मे भेज रहे है, मर जायगा तो वहाँ का राज्य चलावेगा । हम कोई बुरा थोडे ही कर रहे है उसके लिये ? तुम क्यों घबराते हो ?

राजा कहता है – ठीक है, पर मारेगा कौन ? यह सुन कर सब एक दूसरे का मुह देखने लगते है ।

राजाने कहा–तुम सौ आदमी होकर भी एक को मार नहीं सकते तो फिर मेरे राज्य का संचालन कैसे करोगे ?

उसमे से एकने कहा– दिल्ली में दो ऐसे मल्ल है जो आदमी को मक्खी की तरह मार देते है । उनको बुला लो । वे यह काम आसानी से कर देगे ।

राजा के हुक्म से दोनो मल्ल बुला लिये गये । उन्हे प्रधान की हत्या कर देने की बात समझा दी गई । सारे गाव मे यह अफवाह भी फैल गई कि प्रधान को राजा मरवाना चाह रहा है ।

राजा की वर्षगाठ आती है । राजा प्रधान को बुलाने उसके घर पर अपना आदमी भेजता है । घर वाले सब जाने का मना करते है, पर प्रधान नहीं मानता । राजाने बुलाया है तो मुझे जानाही चाहिये । घर वाले कहते है –

झाझा नवला लोक थी करी न कदिये वेर

कीडी काला नागनो प्राणज ले आ पेर ।

तुम जाओगे तो वापस नही लौट सकोगे । लोग भी मना करते है, पर प्रधान रुकता नही । वह आदमी के साथ महलो मे चला जाता है ।

राजा प्रधान को देखता है तो उसका खड़े होकर स्वागत करता है । प्रधान चारो तरफ देखता है तो समझ जाता है कि दाल मे कुछ काला जरूर है । वह तो वहुत अनुभवी और ज्ञानी भी था । उसे समझते क्या देर लगती ?

उसने राजासे कहा– महाराज ! मै तो वृद्ध हो गया हूं, शायद मेरा आज का यहां आना आखिरी भी हो । मै अपने पद से मुक्त वनूं उससे पहले मै एक वात आपको वता देना चाहता हूं । आपके महलों मे एक गुप्त खजाना भी है जिसमे करोडों रुपयो का सोना चादी और जवाहरात भरा पडा है । आपके पिता उसकी चावी मुझे समला गये थे वह अव मै आपको संभला कर अपने भार से मुक्त होना चाहता हूं । आपकी आज्ञा हो तो मै घर जाकर वह चावी ले आऊं ?

राजा तो खजाने की बात सुन कर खुश हो गया। उसने मल्लों को इशारा कर दिया कि कोई प्रधान को हाथ नही लगावे। प्रधान मार दिया जायगा तो खजाने की चावी नहीं मिलेगी। अतः उसने प्रधान से कहा—प्रधानजी ! आपको आने मे तकलीफ होगी, मै अपना आदमी भेजता हूं। इसके साथ आप वह चावी भिजवा देना।

प्रधान अपने घर वापस सकुशल लौट आया। लोगो ने सोचा यह क्या हो गया ? प्रधान तो बचकर आ गये हैं।

राजाके आदमीने कहा— प्रधानजी, देर हो रही है— आपको जो चावी देनी हो जल्दी दे दो।

प्रधान ने कहा— राजा से कह देना खजानेकी चावी तो प्रधान के दिमाग में है, वह कही बाहर नही पडी है।

आदमी ने जाकर राजा से यह बात कह दी। जिसे सुनकर राजाने अपने सभी दोस्तो को और मल्लो को रवाना कर दिया। मन ही मन प्रधान की बुद्धि की प्रशंसा भी की। वह उसी समय प्रधान के घर आता है और माफी मागते हुए कहता है— प्रधानजी ! मैने उन सभी लोगों को छुट्टी दे दी है—आप मुझे छोडकर नही जा सकते। आप पधारो और मेरे राज्य की सभाल करो। आप जैसे प्रधान को पाकर आज मुझे गर्व अनुभव हो रहा है। आप मेरे पिता की जगह है— जो भी योग्य हो वह करे, मुझे भी कहे— मै बुरा नही मानूगा।

राजा अपनी भूल स्वीकार कर सुधर जाता है। पर आप कब सुधरेगें ? आपको भी मोक्ष चाहिये — शास्वत सुख का राज्य तो चाहिये ? जहा अनंत सुख है— दुख का कही नामोनिशान भी नही है— ऐसा अक्षय सुख आपको प्राप्त करना है तो उसकी चावी गुरु के पास है। वे जो मार्ग बतावें उसपर चलो, उन पर क्रोध मत करो, उनका आदर करो, उनका विनय करो तो उस खजाने की चावी मिल सकती है।

सपुज्जसत्थे सुविणीय संसए
मणोरुइ चिठ्ठइ कम्मसंपया
तवो समायारी समाहि संवुडे
महज्जुइ पंच वयाइं पालिया
स देव गंधव्व मणुस्स पूइए
चइत्तु देहं मल पंक पुव्वयं
सिद्धेवा हवइ सासए देवे वा
अप्परए महिढिढ्ए तिबेमि।

ज्ञानी कहते है— वही वदनीय, पूजनीय और अर्चनीय बनता है जो अर्थ सहित भावार्थ— हेतु, नय, प्रमाण और निंक्षेप से वात को बरांवर समझ सकता है।

उसका कोई भी काम गुरु आज्ञा से बाहर नही होता है। वह तपश्चर्या में भी दृढ़ होता है। शिष्य ने २९ उपवास किये हैं। कल ३० वा होने वाला है। मासखमण में एक ही बाकी है। पर गुरु कहे कि पारणा करले तो वह हट न करे और पारणा कर ले तो ऐसा विनयी शिष्य ही गुरु की बात को बहुमान पूर्वक स्वीकार कर लेता हैं।

शिष्य व्याख्यान दे रहा हो– हजारों की मानव मेदिनी जमी हुई हो। गुरु आवाज दे तो वह उठ खडा हो ऐसे विनयी शिष्य को ही अक्षय खजाने की चाबी मिलती है। गुरु ही उसका सब कुछ होता है। वही उसका स्वाध्याय और ध्यान होता है।

आज्ञा का पालन करना और चित्त प्रसन्न रखना विनयी शिष्य का लक्षण है। ऐसे महामानव ही महात्मा बनते है। वही ज्ञान को भी प्राप्त कर सकते है।

धर्मसिह मुनि के शिष्य सुदर जी बडे विनयी थे। एक बार एक ब्राह्मण धर्मसिंह जी के पास आया और बोला तुम्हारे शास्त्र मे क्या कहा है? मुनि ने कहा—

विनय मूलो धम्मो

धर्म का मूल विनय है। ब्राह्मण कहता है यह पुस्तक मे ही है या जीवन में भी किसीने उतारा है? धर्मसिह जी के शिष्य सुन्दरजी दूर बैठे हुए पात्र साफ कर रहे थे। गुरु ने कहा– सुन्दरजी, यह सुनकर वे गुरु के पास आकर खड़े हो गये। गुरु ने उन्हें देखा भी नही और वे ब्राह्मण के साथ ही बात करते रहे। सुन्दरजी बीच मे नही बोले और बैठ गये। जब दो आदमी बात करते हो तब विनयी शिष्य बीच में नही बोलता है। वे तो खड़े हो गये और वापस पात्र साफ करने चले गये। पाँच मिनट बाद फिर गुरु ने कहा–सुन्दरजी, वे फिर आगये–गुरु ब्राह्मण से बात करते रहे। थोड़ी देर वे खडे रहे, गुरुने न देखा तो वापिस काम करने चले गये। तीसरी बार फिर गुरु ने आवाज दी–सुन्दर जी! सुनते ही सुन्दर जी आकर खडे हो गये। यह देखकर ब्राह्मण उनके पैरो मे पड गया और बोला – आप जो कह रहे है, बिल्कुल ठीक है।

आज के शिष्य ऐसे कितने निकलेगे! जिसके हृदय मे गुरु के प्रति इतना विनय होता है वही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है।

वही ब्राह्मण एक दिन अपनी नई पुस्तक लेकर आता है और वह मुनि को पढने के लिये देकर चला जाता है। एक हजार श्लोक की पुस्तक थी। पाँच सौ श्लोक गुरुने पढ़ लिये और पाँच सौ सुन्दरजी ने। रात को दोनो ने एक दूसरे को श्लोक सुना दिये। इस तरह दोनो को ही सारी पुस्तक कंठस्थ हो गई। कहिये कैसे महात्मा रहें होगे वे? जिन्होंने उनके दर्शन किये होगे वे निहाल हो गये होगें।

ब्राह्मण दूसरे दिन आया। मुनि ने कल की पुस्तक वापस दे दी। ब्राह्मण ने

पूछा कहिये– कैसी लगी ? मुनि ने कहा–पूछो, तुम्हे कुछ पूछना हो तो ? ब्राह्मण ने पूछा–क्या यह पुस्तक आपने पहले भी कभी देखी है ? मुनि ने कहा–नही। यह कहकर वे तो पुस्तक के श्लोक सुनाने लगे। ब्राह्मण बोला यह क्या बात है ? एक दिनमे ही आप दोनो ने यह पुस्तक कैसे कंठस्थ कर ली ? कितना सुन्दर ज्ञान और उत्कृष्ट विनय आप मे है ? धन्य है आपको। धर्मसिह मुनि और शिष्य सुन्दर जी दोनो ही आज अमर होगये।

दरियापुरी सम्प्रदाय उनके नाम से ही चल रही है। ज्ञान का कही पार नही है। विनयिका बुद्धि गुरु से ही प्राप्त होती है।

अनुभव गम्य थयुं जे अन्तर मां।
नथी लख्यु कोई निगममा रे ॥
शीद जावु रे वनमां
तारक छे आ तनमारे शीद........

गुरु ने जो २ अनुभव किया है वह तो उनके हृदय मे है। ज्ञान की पर्यायें तो हृदय में ही खिलती है। शब्दों मे वे सभव नही है। अत: वस्तु स्वरूप समझो, भाव निद्रा छोडो। गुरु तो भाव निद्रा छुडानेवाले है, उनकी सेवा करो। ज्ञान मिलेगा और अवश्य मिलेगा।

तद्दिट्ठिए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सन्नी
तन्नीवेसणे अभिभूय अदक्खू

जो साधक हमेशा गुरु की आज्ञा मे रहता हो, गुरु प्रदर्शित मार्ग स्वीकार करता हो, हृदय से गुरु का बहुमान करता हो, गुरु पर श्रद्धा रखता हो, गुरुकुल वास करता हो– वही कर्मो को जीतकर तत्व स्वरूप को जान सकता है।

भगवान ऋषभदेव के ८४ हजार साधु चारो बुद्धिके निधान थे। भ. महावीर और बीच के २२ तीर्थकरो के साधु भी चारो बुद्धि के स्वामी थे। आज जो बुद्धि ससार के विपरीत मार्ग पर चल रही है वह अगर परमार्थ के मार्ग पर चलने लग जाय तो कितना लाभ हो सकता है ?

तैतलीप्रधान बुद्धिसम्पन्न प्रधान था। उसके गुणो का आगे भी यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. १–९–६८

[६९]

अनंत करुणानिधि भगवान ने जगत जीवो के उद्धार के लिये उपदेश दिया है। वे स्वयं भवोदधि तिर गये और दूसरो को भी तिराने का मार्ग वता गये है। जो उनके पथ-चिह्नो पर चलते है वे स्वयं उनके समान बन जाते है। भक्तामर स्तोत्र मे कहा है—

त्वतसंस्तवेन भव सन्तति सन्निबद्धं,
पापंक्षणाद् क्षय मुवैति शरीर भाजाम्
आक्रान्त लोकमलिनीलमशेष माशु
सूर्यांशुभिन्न मिव शार्वरमन्धकारम्।

हे प्रभु! तुम्हारा स्तवन करने मात्र से ही भव परम्परा का रोग नष्ट हो जाता है, पाप ऐसे निकल भागते है जैसे कि सूर्योदय से अधकार भाग खडा होता है। भगवान की स्तुति करने वाला भक्त भी भगवान वन सकता है।

यहा भगवान द्वारा प्ररुपित ज्ञाता सूत्र के १४ वे अध्ययन का वर्णन चल रहा है। तैतली प्रधान घोडे पर बैठ कर घूमने जा रहा है। वह चार तरह की बुद्धि का स्वामी है। वह दूसरो पर तो वहुत अच्छा शासन करता है, पर वह अपनी इन्द्रियो को कावू मे नही रखता है। वह चलते चलते एक घर मे पौटिला नामक लडकी को खेलते हुए देखता है। उसका रूप लावण्य देख कर वह मोहित हो जाता है। जैसे पतगा दीपक मे मोहित हो जाता है वैसे ही भोगाभिलाषी पुरुष भी रूप मे मोहित वन जाता है। भगवान ने कहा है—जहा विषय है वहा संसार है, जहा ससार है वहा पाच इन्द्रियो के विपय भी खडे है। वह उनसे निवृत्त होता है तभी वह स्वाधीन सुख प्राप्त कर सकता है। उसमे खुश होने वाला पुरुप अपना ससार ही वढाता है। विषय के सुख किपाक फल की तरह सुदर होते है, पर परिणाम उनका भयंकर होता है। विषय का जहर अनंत भव विगाड देता है।

हमको जो कीमती रसायन मिली है, उसका सेवन कर आत्म शक्ति वढानी है। वह शक्ति यदि विषय सेवन मे ही खर्च कर दी तो पतन अवश्यंभावी है।

यह मानव भव अनमोल है। विपय से विमुक्त वन कर मानव मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है। और विषयान्मुख होकर वह नरक मे भी जा सकता है। हमको कहा जाना है? यह अपने हाथ की ही वात है।

आत्मा का उत्थान करना है तो मन को वश मे रखो। मन वड़ा कीमती है। करोडो रुपया देने पर भी वह नही मिल सकता। उसको विपयो की तरफ मत जाने दो। उसे तो गुणो की तरफ खीचो। ज्ञानी कहते है— परिणामें वंध—कर्मो का वंध मन

के परिणामों पर आधारित है । मन के परिणाम अगर अशुद्ध रहे तो कुछ न करते हुए भी आत्मा पाप का भागी वन जाता है ।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान कर रहे हैं फिर भी मन से वे अपने राज्य की चिन्ताकर रहे हैं । मेरा भाई कही मेरे लडके को मारकर राज्य का मालिक न वन जाय ? यों वह मन ही मन कुध्यान करने लग जाते हैं और नरक मे जानेका सामान इकट्ठा कर लेते हैं ।

मुनि अपने सिर का मुकुट उतारने लिये हाथ ले जाता है तो उसे ध्यान आता है कि मै तो साधु वना हुआ हूं । फिर यह क्या कर रहा हूं ? मन की धारा यहा से पलटा खाती है, और वही उसे मोक्ष मे भी पहुचा देती है ।

हमारा मन तो ध्वजा की तरह है । जिस दिशा की हवा उसे लगती है वैसाही वह उडता रहता है ।

सिद्धो के पास भी कर्म वर्गणाओका ढेर लगा हुआ होता है, पर उनको उनका लेप नही होता है जव कि संसारी को हो जाता है । क्योकि हम तदरूप हो जाते है, जवकि सिद्ध नही होते ।

सिद्ध भगवान अपने ज्ञान मे सव कुछ देख रहे हैं । प्रतिक्षण उन्हे यह संसार नया दिखाई देता है, पर उनकी आत्मा में कोई परिवर्तन नही होता है, जवकि हम दृश्यानुसार बदलते रहते हैं । सुख मे सुखी और दुख मे दुखी भी होते रहते हैं । खाना अच्छा नही मिला तो दुख अनुभव करते है– चाय समय पर मिल गई तो खुशी व्यक्त करते है । यों प्रसंगानुकूल हम वैसे वन जाते है । लेकिन सिद्ध की आत्मा वैसी नही होती । अतः ज्ञानी कहते हैं– बाह्य साधनो मे तू मत लुभा वे तो जड है– साथ आने वाले नही हैं । जो आज हमें सुख दे रहे है वे कल दुख देनेवाले भी हो सकते है । स्त्री आज सुख देने वाली है, कल वही विपरीत वन जायगी तो दुख देनेवाली भी हो जाती है ।–

जेण सिया तेण नो सिया

पुत्र का जन्म हुआ तो सुख अनुभव करते हो, लेकिन वह वडा वन कर आज्ञा मे न रहे तो माता–पिता को दुखदायी भी वन जाता है। इस तरह ये सव साधन दुख रूप भी हो जाते है। इसीलिये ज्ञानी कहते है–जिस सुख के पीछे दुख हो वह सच्चा सुख नही है। जो सुख शाश्वत होता है वही सच्चा सुख कहा जाता है। भौतिक सुख-सुख नही सुखाभास है। सारी दुनिया आज इसी सुखाभास के पीछे दौड रही है।

संज्ञामुखी दृष्टि और प्रज्ञामुखी दृष्टि जीवन का वैरोमीटर है। हम कहा खडे है? और क्या कर रहे है? यह हमें आज देखना है।

मन चुप रहने वाला नही है। वह शुद्ध में न जावेगा तो अशुद्ध दशा में तो जाने वाला ही है। अत: उसका सतत ध्यान रखना चाहिये। मजदूर तुम्हारा सामान लेकर चलता है तो आप उसका कैसा ध्यान रखते हो? वैसा ही ध्यान मन का भी रखो। जैसे वृक्ष पर पक्षी आते है और बैठ कर उड जाते है वैसे ही मन मे भी विचारो का आना जाना बना ही रहता है। लेकिन जो पक्षी वृक्ष पर घोंसला बना लेता है, वह उसे छोडकर नही जाता है। वैसे ही कोई विचार भी मन में घर न बना ले यह सतत ध्यान रखोगे तो मन को वश में कर सकोगे।

मन को वश में करने के लिये सत्सग की आवश्यकता है। सत्संग में ही वह शक्ति है जो वह मन को वश मे कर सकता है।

एक इंजीनियर जैसे चारो तरफ से बहते हुए पानी को बाध बना कर एक जगह इकट्ठा कर देता है, वैसे ही संत भी यह बताते है कि तुम अपनी शक्तियों का संचय करो—अलग अलग उसे मत बिखरने दो। उससे जो ताकत पैदा होगी वह मोक्ष तक पहुंचा देगी। पुरुषार्थ करोगे और मन को वश मे रख कर आगे बढोगे तो अवश्य सफल हो सकोगे।

एक राजकुमार विवाह करने जा रहा है। बड़ी शानदार उसकी सवारी निकल रही है। राजा उनका स्वागत करता है और एक महल मे उतार देता है। राजकुमार से कहा जाता है कि तुम इस महल में चाहे जहां आ जा सकते हो, पर उस कमरे मे मत जाना, वहा एक जहरिला सर्प रहता है, वह—वहा जाने पर किसी को भी छोड़ता नही है।

राजकुमार उस कमरे को खोलता है और देखता है तो उसे सर्प, दिखाई नही देता। वहा तो एक पलंग पर बिस्तर बिछा हुआ था—शीतल—शीतल पवन आ रहा था—राजकुमार उस पलग पर बैठ जाता है। थोडी देर मे उसे तो नीद भी आ जाती है। सर्प बिल मे से निकलता है और राजकुमार को काट खाता है। राजकुमार वही मर जाता है। उसकी इच्छाएं अधूरी रह जाती है। इसी तरह ज्ञानी भी कहते है—तेरी आत्मा मे अनंत खजाना भरा पडा है। वहा जाकर तुझे जो मौज मजा करना हो, कर लेना, पर बाह्य संसार की तरफ मत देखना। नहीं तो विषय रूपी नाग तुम्हे डंक मार देगा। अत: सावधान रहना। अगर हम उनका कहना न मानेंगे तो जैसी दशा राजकुमार की हुई वैसी ही दशा हमारी भी हो जायगी और मोक्षरूपी रमणी को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अत: यह जो सुंदर सब मिला है, सब तरह के साधन मिले है तो उनका सदुपयोग करो। विषय में समय का दुरुपयोग

हीरा खान में पड़ा है तब तक उसकी कोई कीमत नही है। उसे तो शुद्ध कर साफ बना लेने पर ही वह कीमती बनता है। आत्मा भी शुद्ध हो जाती है तभी वह पूजनीय बनती है।

हमारा ध्येय तो मोक्ष प्राप्त करना है। पर प्रयत्न हमारे उल्टे हो रहे हैं। आज तक हमारी दौड पैसो की तरफ ही रही है। उसे छोडे बिना सच्चा रास्ता मिलने वाला नही है। वर्तमान काल तो समय पुरता ही है। भूत चला गया है। और भविष्य को कौन जानता है? अतः सावधान बनो और वर्तमान को सुधारो। सत्संग करो और जीवन को सुवासित बना दो।

बगीचे का माली खिला हुआ फूल ही तोडता है, कलिया या अधखिला फूल वह नही तोडता। इसी तरह मानव जीवन भी फूल की तरह जब पूर्ण जीवन बनता है तभी वह महक सकेगा।

श्रेणिक महाराज बगीचे में अनाथि मुनि को ध्यानस्थ देखते है तो बोल उठते है——

अहो वण्णो अहो रूवं अहो अज्जस्स सोमया।
अहोखंति अहो मुत्ती अहो भोगे असंगया।

अहा, इस मुनि का कैसा रूप लावण्य है? कैसी क्षमा और कैसा अद्भुत तेज है? युवक मुनि की सुंदरता पर राजा मोहित हो जाता है। मुनि का कोई पूर्व परिचय राजा को नही है, फिर भी वे मुह देख कर यह कहते हैं। ऐसे सन्तो का जब परिचय होता है तो जीवन का उद्धार हो जाता है। बाल्मीकि भी चोर था, लुटेरा था—लेकिन संत—समागम से वह भी महात्मा बन गया। संत तो महान् कलाकार होते है। मिट्टी मे से मूर्ति घडने वाले होते हैं। उनका जीवन ही आदर्श जीवन होता है। उनका सत्सग करने से ही आत्मा का कल्याण हो सकेगा।

दुर्जनो का सग पतन की तरफ ले जाता है। एक जुआरी का तुम साथ करते हो। भले ही आज तुम जुआ नही खेलते हो, पर एक दिन तुम उसका अनुकरण अवश्य करने लग जाओगे। अतः उनका सग मत करो। सत्सग करोगे तभी आत्म गुणो का विकास होगा।

आज हम अपनी शक्ति को पहचान नही सकते है। शक्ति को प्रकट करने की आवश्यकता है। गजराज बडा होता है, पर उसे अपनी शक्ति का विश्वास नही होता अतः वह शेर से पराजित हो जाता है। सिह को अपनी शक्ति का विश्वास है। इसी तरह आत्मा मे भी अपूर्व शक्ति है, पर उसका भान तुम्हे नही है। इसीलिये तुम बाहर दौड रहे हो। तुम अपनी शक्ति को पहचानो। उल्टा मत चलो। विषय मे लिप्त मत बनो।

एक मित्र दूसरे मित्र को खेल मे रोक रखता है। व्यापार मे कमाई का चांस है, फिर भी खेलता रहता है, उस ओर ध्यान नही देता। कल भाव कम हो जाते है तो उसे बहुत नुकशान उठाना पडता है। हमको भी मानव भव में कमाने का चास मिला है। देवता भी जो काम नहीं कर सकते वह मानव कर सकता है। पर वह विषय–कषाय के खेल मे पडा रहे तो वह क्या कमा सकेगा? नकशान ही उठावेगा न?

भूख लगती है तो खाना खाते हो, आत्मा को भी भूख लगी है–उसकी तृप्ति के लिये तुम क्या कर रहे हो? ज्ञानी कहते है–धर्म आत्मा की खुराक है। जैसे भोजन और पानी के बिना शरीर टिक नही सकता, वैसे ही [illegible] के विना टिक नही सकता है। अतः संभल जाइये और समय का [illegible] कीजिये।

जरा जाव न पीडेई वाही जावन वढ्ढई।
जाविंदिया न हायन्ति ताव धम्मं समायरे।

जब तक वृद्धावस्था न आवे तब तक तुम धर्म [illegible] निकल गया तो अधोगति मे चले जावोगे। जहां न [illegible] मिलेगें। मन मिलना तो वहुत दूर रहा। ऐसी भयंकर [illegible] बचना हो तो धर्म करो, आत्मा मे उसे उतारो, [illegible]।

तैतली प्रधान उस लडकी को देख [illegible] है। [illegible] पाने की इच्छा करता है। आगे क्या होता है? [illegible]।

[illegible]

न काम भोगा समयं उवेन्ति, न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसीय परिग्गही या, सो तेसु मोहाविगइं उवेइ।

काम भोग जीव को समता या विषमता पैदा नही कर सकते है। वे निमित्त जरूर होते है, पर जब तक उनके साथ उपादान न हो वहाँ तक वे कुछ कर नहीं सकते है। निमित्त में कुछ कर सकने की ताकत नही होती है।

देखना मनुष्य का स्वभाव है। देखने मात्र से ही कर्म नही बंधते है। चन्द्रमा की चाँदनी सर्वत्र पड़ती है, चाहे कोई सुगन्धित पदार्थ हो या असुगन्धित, वह सब पर समान रूप से छा जाती है। पर कही भी लिप्त नही होती, निर्लेप ही रहती है। इसी तरह केवली भी अपने केवलज्ञान से सबको जानते है फिर भी वे निर्लेप ही रहते है। अतः देखना और जानना पाप का कारण नही है।

जो प्रिय वस्तु पर राग और अप्रिय पर द्वेष करता है, ऐसा आत्मा ही मोह वश विकृति पैदा करता है। राग और द्वेष आत्मा के विकारी भाव है। यही कर्म बंधन के कारण भी होते है।

जगत में सर्वत्र पुद्गल वर्गणा भरी पड़ी है। ८ वर्गणा है। उसमे आठवी कार्मण वर्गणा सर्वत्र भरी पड़ी है। सिद्ध क्षेत्र मे भी है। पर वे स्वयं किसी को चोटती नही है। आत्मा बुलाता है तब वे चिपकती है। आत्मा राग और द्वेष भाव से उसे बुलाता है तब वे आती है। आत्मा और कर्म का सम्बंध दूध और पानी जैसा है। दोनो एक पात्र मे है फिर भी पानी पानी है और दूध दूध है। हंस दूध पी जायगा और पानी अलग कर देगा। दूध मे पानी डालकर गरम करोगे तो पहले पानी जलेगा फिर दूध जलेगा। पानी मिला हुआ दूध जमाओगे तो जितना दूध होगा उसके परिमाण से ही मक्खन निकलेगा। पानी जम नही सकता, उसमे से मक्खन कैसे निकल सकता है? वैसे ही आत्मा भी देह से भिन्न है। कर्म है तब तक देह भी आत्मा के साथ जुड़ी रहती है। कर्मो के हटते ही आत्मा निर्लेप हो जाती है।

जहाँ तक उपादान प्रबल नही होता वहाँ तक निमित्त कुछ नही कर सकते है। उपादान कमजोर हो तो निमित्त से भी दूर रहना चाहिये।

जो ज्ञानी होते है वे तो नव यौवना को भी काष्ठ की पुतली ही समझते है।

निरखिने नवयोवना लेश न विषय निदान
गणे काष्ठ नी पुतली ते भगवान समान।।

कहिए! आपको भगवान बनना है या पामर ही रहना है? भगवान बनने की शक्ति सब मे है। आवश्यकता है उस शक्ति को प्रकट करने की। उसको प्रकट करना है तो ज्ञानियों के बतलाये हुए मार्ग पर चलना ही होगा।

ज्ञानी नवयोवना के शरीर को देखते है तो वे पुद्गल के रूप को ही देखते है। आत्मा का स्वरूप तो सम्यक्ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही है। वह उसे काष्ठ की पुतली समझता है। ऐसा आत्मा ही भगवान हो सकता है। भगवान बनने की शक्ति तुम्हारे पास है। गुरु उसकी रीति बताते है । तदनुसार चलोगे तो उसकी चावी प्राप्त कर सकोगे।

रूप को देखकर जो विचलित हो जाते हैं वे अपना पतन कर बैठते है। रहनेमि जैसा साधक भी स्थिर न रह सका तो दूसरों की क्या बात है? नारी विकार का कारण नही है। मन का कुभाव ही विकार का कारण है।

एक औरत अपने पिता के घर से सुसराल जा रही थी। उस समय इतने साधन नही थे। वाहन व्यवहार आज जितना बढ़ गया है उतना ही अकस्मात का भय भी बढ़ गया है। सभी तरह के साधन आज कितने बढ़ गये है? पहले चूल्हा जलाया जाता था। फूक २ कर मुह फूल जाता था। पर आज कुकर आ गये है। एकही साथ सब खाना तैयार हो जाता है? आराम के साथ निर्बलता भी बढ़ती जा रही है। यो आत्मा को कमजोर क्यो बना रहे हो! जिसमें बल होता है वही परिषहो को सहन कर सकता है; ब्रह्मचर्य का भी पालन वही कर सकता है। कायर पुरुष साधु नही बन सकता। अपनी वृत्ति ही विकारो को पैदा कराती है, देह उनका जनक नही है। देह तो माता का भी है, पुत्री का भी है, पर मा तथा पुत्री को देखने से विकार जागृत नही होते है, स्नेह और प्रेम ही पैदा होता है। लेकिन पत्नीको देखने से विकार पैदा हो जाता है क्योकि उसे विकार को उत्तेजित करने का साधन मान लिया गया है–खिलौना समझ लिया गया है। तो क्या नारी खिलौना ही है? नही, ऐसा मत समझो। वह तो तुम्हारी शक्ति है। विवाह संबंध भोग–वृत्तियो को पोषने का ही साधन नही है। वह तो ब्रह्मचर्य की दिशा मे आगे बढने का एक कदम है। मर्यादा मे रहते हुए आगे बढ़ने का मार्ग है। सद्गृहस्थ चाहे तो वह चतुर्भुज देव बन सकता है। लेकिन विपरीत मार्ग पर चला जाय तो वह चार पैरो वाला पशु भी बन सकता है। आप क्या बनना चाहते है– पशु या देव?

देह नामकर्म के उदय से मिलता है जब कि विकार मोह कर्म से जागृत होते है। अतः शरीर बंधनकर्ता नही है, बंधनकर्ता तो विकार ही है।

नारी नरक की खान नही है–दुर्गति देने वाली वह नहीं है, उनके प्रति जो खराब भाव है वे ही नरक मे ले जाने वाले है।

वस्तु मे आसक्ति रखना ही पाप है श्वेताम्बर और दिगम्बर जैनो मे दो बातो मे बडा मतभेद है। श्वेताम्बर स्त्री–मुक्ति और केवली भी आहार करने

है, मानते है जबकि दिगम्बर इन्हे स्वीकार नही करते। श्वेताम्बर कहते है- नारी का शरीर मोक्ष रोक नही सकता, उसका विकार मोक्ष अटका सकता है। जब तक एक लिग दूसरे लिग की चाहना करता है तब तक किसी का मोक्ष नही हो सकता। जब यह आसक्ति भाव मिट जाता है। तभी उसको मोक्ष हो सकता है। फिर चाहे वह किसी भी लिग मे क्यो न हो।

चार घाती कर्म नष्ट होने पर केवली होते है। शरीर का सम्बंध वेदनीय कर्म से है। जब तक उनका शरीर रहता है तब तक वे भोजन भी लेते है। भोजन के साथ ज्ञान का कोई सम्बध नही है।

नारी को मोक्ष नही मानने से दिगम्बरों को स्त्री तीर्थं उड़ा देना पडा है। भगवान ने तो चार तीर्थ कहे है। साध्वी को भी तीर्थं कहा गया है। वह भी चारित्र का पालन कर मोक्ष प्राप्त कर सकती है। शक्ति शरीर मे नही आत्मा मे है। नारी का शरीर प्राप्त करने से क्या बिगड़ सकता है? आत्म शक्ति प्रबल है तो वह मोक्ष भी अवश्य पा सकती है।

सुसराल जाने वाली औरत गाँव से कुछ दूर आती है, उसके हृदय मे दर्द होने लगता है और वह वहीं मर जाती है। काल का भरोसा नही है। अतः प्रमाद मत करो और धर्म आराधन मे मन लगाओ। लेकिन तुम सुनते कहाँ हो? तुम तो आराम की नीद सो रहे हो।

ठडी ठंडी हवा में नीद आरही है। कोई उठाता है तो तुम्हे अच्छा नही लगता। हम भी जगा रहे है, तुम्हे बुरा तो नहीं लग रहा है? अनन्त काल चला गया, अब नीद छोड़ कर जागृत क्यो नही बनते हो?

वह औरत मर गई। एक ओर से सियार आता है और उस मुर्दा शरीर को देखता है। दूसरी ओर से योगी आता है। तीसरी ओर से एक कामी पुरुष आता है और चौथी ओर से एक चोर आता है। यो चारों दिशाओं से चार प्राणी आते है और उस मुर्दा शरीर को देखते है। मुर्दा एक है। देखने वाले चार है। सियार सोचता है कितना सुंदर शरीर है? यहाँ कोई नही होता तो मैं इसे खा लेता। भोगी सोचता है यह मर न गई होती तो मैं अवश्य इसके साथ मोज-मजा करता। चोर गहने लेने का सोचता है। पर योगी सोचता है यह शरीर नश्वर है, अगर इसमें आत्मा होता तो मैं उसे जरूर कुछ उपदेश सुनाता।

मुर्दा एक है लेकिन विचार चारो के भिन्न भिन्न है। इसी तरह पदार्थ एक होने पर भी आत्मा भिन्न भिन्न विचार कर सकता है। निमित्त एक होने पर

भी उपादान भिन्न भिन्न हो तो वे तदनुरूप ही कर्म बांधते है। जो सामने देखकर हृदय मे रागद्वेष के विकार पैदा करते है वे ही कर्म का वध करते है।

तेतली प्रधान पोटिला को देखकर विकारी बन जाता है। आगे वह क्या करता है यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. ३-९-६८

[६७]

जिनेश्वर देव ने सिद्धान्त बताये है। जो बात तीनों काल में असिद्ध न हो उन्हे सिद्धान्त कहा जाता है। यहां ज्ञाताधर्मकथा का विवेचन चल रहा है। धर्म कथा आसानी से जीव को समझ मे आ जाती है। जो कथा आत्म स्वरूप न समझाती हो वह कथा विकथा कही जाती है। यह धर्मकथा है– तैतली प्रधान पोटिला को देख कर मोहित हो जाता है। वह यह पता करता है कि यह कौन है?

जीव ने अनंत बार संसारी पदार्थो का आस्वादन किया है। बार बार उन्हे ही पाना और भोगना इसमे क्या सार है। ? वे सब विभाव है। यह मार्ग उल्टा है। स्वभाव मे आने के लिये अपूर्वीकरण करना होगा। यह अपूर्वीकरण क्या है? सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ही अपूर्वीकरण है। भूत काल मे जो नही किया वह करना अपूर्वीकरण है।

अनतकाल से जन्म–मरण करते चले आ रहे हो, विपय और कपाय मे फसते चले जा रहे हो, अव कुछ ऐसा करो कि इससे मुक्ति मिल सके। ऐसा क्रातिकारी भाव पैदा करना ही अपूर्वीकरण है।

आज आपको नई नई चीजो का तो वहुत मोह रहता है। पुराना मोडल छोड़ कर नया नया मोडल ग्रहण करते जाते हो – वहिने भी नई साडिया देखती है तो ले लेती है। वर्तन पीतल के पुराने हो गये, अव स्टील के लेने लग गये हो। इसी तरह हृदय मे भी नये भाव पैदा क्यो नही करते हो? वर्षो हो गये- कई काल निकल गये–अभी तक विपय और कपाय के पुराने भाव ही हृदय में उछल रहे है? उनके वजाय नये भावो को क्यों नही लाते हो? भगवान का शरण ग्रहण करो–हृदय में इन्हे स्थान दोगे तो विपय कपाय के भाव मिट जायंगे और नये भाव पैदा हो सकेगें।

हर एक आत्मा मे वीतराग भाव रहा हुआ है। आज तक हमने उनका स्मरण किया है, पर शरण नही लिया है। संसार से दूर रहेगे तभी हम उनका शरण ग्रहण कर सकेगें।

अरिहंतो का शरणा
सिद्धों का शरणा
केवली प्ररूपित दया धर्म का शरणा.

इनका शरण तो मरण टाल देता है। श्रीसिद्धसेन दिवाकर ने कल्याण मंदिर स्तोत्र में कहा है।

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरंत:।
यद्वादृतिस्तरति यज्जलमेषनून
मंतर्गतस्य मरुत: स किलानुभाव:।१०।

हे प्रभु! लोग कहते हैं कि तुम तारक हो। तिन्नाणं तारयाण, जो दूसरो को तिरा सकता है वही तारक कहा जाता है। जो दूसरो को तिरा सकता है, वह स्वयं तो तिरने की शक्ति रखता ही होगा। तभी तो वह दूसरो को तिरा सकता है। जो स्वयं तिर जाते हैं वे ही दूसरों को भी तिरा सकते हैं। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है वही परमात्मा वन सकता है।

जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जये जिणे
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ।

एक वासुदेव संग्राम मे दस लाख यौद्धाओ को पराजित कर विजय प्राप्त करता है। उससे भी वह वली है जो एक आत्मा को जीत लेता है। वही सच्चा-वीर है। क्योकि वासुदेव, जो लाखो को जीतने वाला है वह भी औरत के सामने हार खा जाता है। अत: जो एक आत्मा को जीत लेता है वह सबको जीत सकता है।

ज्ञान दशा पाम्यो नहीं साधन दशा न कांइ
पामे तेनो संग जे ते बूडे भव माय।

भेद विज्ञान समझे विना चाहे जैसे साधन क्यो न प्राप्त हो जाय उनसे क्या लाभ हो सकता है? अत:सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पहले भी तप–त्याग आदि की तो जरूरत रहती ही है।

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तिहां समझवुं तेह।
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थीजन एह।

जहां जो करना चाहिये वह न कर विपरीत करोंगे तो कार्यसिद्धि कैसे हो सकेगी? दूध और छाछ दोनों सफेद होते है। शक्कर और नमक दोनो सफेद होते हैं। परन्तु दोनो में डालने के मसाले अलग अलग होते है। दूध में शक्कर डाली जाती है। और छाछ में नमक। अगर छाछ में शक्कर और दूध मे नमक

डाल दिया जाय तो क्या हो? दोनो बिगड जायगे। इसी तरह सम्यग्दर्शन के पूर्व जीवन मे जो तप–त्याग वैराग्य आदि होता है वे नितात व्यर्थ नही जाते–पर विपरीत ज्ञान होने से उनका लाभ अपेक्षाकृत उतना नही मिलता। साधन तो वही है, पर सम्यग्ज्ञान के अभाव मे वे भी प्रभावशाली नही होते है। अतः जिसकी जरुरत है उसको पैदा करना सीखो। साधनो को शुद्ध वनाओ–सिद्धि अवश्य मिलेगी।

एगे जिये जीया पंच पंच जिए जिया दस।
दस हा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं।

जो एक आत्मा को जीत लेता है वह पाच इन्द्रिय और चार कषाय को वश मे कर लेता है। आज तुम सभी नया नया ग्रहण करते जा रहे हो तो क्रोध, मान, माया और लोभ का पुराना मोडल क्यो धारण कर रखे हो? उनकी जगह क्षमा, सतोष और सरलता का नया मोडल क्यो नही ग्रहण कर लेते? जव तक पुद्गलानंदी स्वभाव मिट नही जाता तव तक आत्मा मे ये भाव पैदा नही हो सकते है।

विषय जनेता है और कषाय संतान है। विषय अगर नष्ट हो जाते है, तो कषाय अपने आप नष्ट हो जायगे। क्योकि जव वीज ही न रहेगा तो वृक्ष कहा से पैदा होगा? वृक्ष न होगा तो फूल कहा से आवेगे। फूल ही न होगा तो वासना कहा से पैदा होगी?

जो विषय कषाय जीत लेते है वे ही भगवान वन सकते है। ५ इन्द्रिय ४ कषाय और एक आत्मा यो १० को जीत लेने पर सारी दुनिया वश मे की जा सकती है।

दस दरवाजा वंध कर कुंची
अंदर चमकत मोती।
कहत कवीरा सुनो भाई साधु
नही पुस्तक नहीं पोथी।

आत्मा का अनुभव तो स्वाध्याय और ध्यान से होता है, वहा पुस्तकीय ज्ञान काम नही आता। हृदय मे अगर अरिहन्त का शरण ही वैठ जाय तो वही भव पार कराने मे समर्थ हो सकता है।

सिद्धसेन कहते है–हे भगवन! आप तारक कैसे हो?

जैसे एक नाव अपने में वैठा कर लोगो को पार लगा देती है। यो वह नाव तिराने वाली और वैठकर पार होने वाला तिरने वाला कहा जाता है। वैसे ही हमने तुम्हें हृदय में वैठाया तो हम तैराने वाले वने है। हृदय में

हमने आपको न वैठाया होता तो आप कैसे तिर सकते थे? पानी मे मशक से भी तिरा जाता है। मशक मे हवा भर कर पेट पर वांधलो तो वह भी पार लगा देती है। मशक मे जो हवा है वही पार लगाने मे समर्थ वनती है। वैसे ही हे भगवन! हम अपने हृदय में आपको धारण कर लेगें तो हम अपना संसार अवश्य पार कर सकेगें।

कहिये, दिल के दीवानखाने मे आज कौन रम रहा है? राम या रमणी? याद रखिये जहा राम होगा वहा रमणी रह नही सकती और जहा रमणी होगी वहा राम नही रह सकेगा——

राम त्यां काम नहीं, काम त्यां राम नहीं

अनंत कालसे जो करते आ रहे, हो जो पदार्थ खाते आ रहे हो–विषय कषाय मे मजा लेते आ रहे हो, उन्हे अव छोड दो। दिशा का परिवर्तन करो। यही अपूर्वा–करण है। ऐसा करने पर ही भगवान का शरण प्राप्त कर सकोगे।

तैतली प्रधान जाच कराता है तो पता चलता है कि उस लडकी के पिता का नाम जलार सुनार और माता का नाम भद्रा है। प्रधान अपने घर की ओर चल देता है। आगे वह क्या करता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. ५–९–६८

[६८]

भ. महावीर ने जो मार्ग बताया है, उस मार्ग पर चलने से ही आत्मा का कल्याण हो सकता है। मानव भव का यह जो अपूर्व अवसर मिला है उसको समझ कर जो उसको सार्थक कर लेता है वही पंडित कहा जाता है–खण जाणाहि पंडिए।'

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोई।
ढाई अक्षर प्रेम का पढे सो पंडित होई।

पोथी पढ़कर सारी दुनिया मर गई, पर पंडित कोई न वन सका। अगर ढ़ाई अक्षर प्रेम का ही आ जाय तो वह पंडित हो जाता है।

एगं जाणइ से सव्वं जाणइ

जो एक आत्मा को जान लेता है वह सव को जान लेता है–लोकालोक को देख सकता है। ज्ञान तो आत्मा में है। वही भाव श्रुत है। उसे प्रकट करोगे तो वह पैदा हो जायगा।

ज्ञान कहीं बाहर से नही आता है। खाना खाओगे तभी भूख शात होती है। बालक दूध न पीवे तो माता जबरन पिलाती है। ऐसा करने से बालक उल्टी भी कर देता है—पीया हुआ दूध बाहर निकाल देता है, परन्तु फिर भी मुह मे दूध का स्वाद तो रहता ही है। कुछ न कुछ अंश दूध का पेट मे रहता ही है। इसी तरह यह धर्म भी हम जबरन सुना रहे है— तुम्हें रुचता नही है, फिर भी हम वह अमृत रस जबरन आप के मुह मे डाल रहे है—आप उसे निकाल भी दोगे तो उसका थोडा अंश तो रह ही जायगा और वही आपको अपना मधुर फल तो देगा ही।

जब आत्मा कषाय रहित हो जाता है तभी उसे यह धर्म रुचिकर लगता है। कषाय रहता है तब तक आत्मा मे ज्ञान नही हो सकता है।

कई लोग कहते है, प्रतिक्रमण याद नही होता। ठीक है, जो याद नही होता उसे भी थोडा थोडा करके याद करो, पर जो तुम्हारे में दुर्गुण भरे पडे है— उन्हे तो याद कर सकते हो, उन्हे हृदय से दूर करो। परन्तु यह कौन करता है? दुनिया भर की टीका करने वाले अपनी टीका नही कर सकते। वे यह नही जान सकते कि मै कहा खडा हू?

मोहनीय कर्म सब कर्मो मे बड़ा भयकर है। वह जीव को फुसला फुसला कर मार देता है। जैसे कमरे मे धुआ कर दो तो मच्छर की कैसी हालत हो जाती है? वैसी ही हालत मोहनीय कर्म से आत्मा की भी हो जाती है। लेकिन आज अपना घर कौन देखता है?

तुम्हारी फरमाइशे कभी कम नही होती। बहिनो की माग तो बनी ही रहती है। भगवान ने सूयगडागसूत्र मे १९२ बोल कहे है। तुम क्या क्या मगाते रहते हो? इसका वहा वर्णन किया गया है। एकचीज आज मगाते हो तो कल दूसरी चीज घट जाती है। यो हर रोज कुछ न कुछ लाते ही रहते हो और घर की शोभा कैसे बढे? यह सोचा करते हो। पर क्या कभी यह भी सोचा है कि अपने घर मे क्या हो रहा है? इसे कौन देखता है?

अपनी आत्मा का उद्धार करलो। यह अवसर बार २ मिलने वाला नही है। उससे जो लाभ लेना हो ले लो।

तैतली प्रधान पोटिला को देखता है तो मोहित हो जाता है। हृदय प्रसन्न हो जाता है। यह कोई देव कन्या है या पाताल सुन्दरी? कौन है? ऐसी स्वरूप वान तो मैंने अब तक कोई नही देखी है।

रूप के पिपासु रूप देख कर आश्चर्य में पड जाते है। चलते चल •

ही आदमी को आश्चर्य मे डाल देता है तो जो आत्मा का तेज प्रकट कर लेता है उसको कितना आनंद आता होगा? हजारो सूर्य का प्रकाश भी उसके सामने तुच्छ है। आत्मा का मुकावला कोई नही कर सकता।

हीरा की परीक्षा करने वाला तो आत्मा है, वह कीमती है या हीरा कीमती है? हीरा तो जड़ है। उसकी आत्मा के सामने क्या कीमत है? वह तो मिट्टी है--पृथ्वीकाय है। आत्मा के सामने वह तुच्छ है।

लेकिन आज तो जड़ मे ही सुख माना जा रहा है। साडी और गहनो की तारीफ करने से क्या लाभ है? आत्मा मे सद्‌गुण पैदा करो। कीमत उसी की है। इन्द्रियो का शमन, राग द्वेष का वमन और सद्‌गुणो का चयन करो। यह जो मानव भव मिला है उससे लाभ उठालो तभी वह सार्थक हो सकेगा।

पौटिला तैतली की आखो मे समा गई। मनोज्ञ मे राग और अमनोज्ञ मे द्वेष पैदा होता है। कर्म पैदा करने के ये दो मूल कारण है। ये ही १४ प्रकृतियो को वुला लाते है। मूल-वीज तो राग--द्वेष ही है, जो वृक्ष खडा कर देता है। इस वीज को ही मिटा दोगे तो वृक्ष फिर खडा नही हो सकेगा।

ज्ञानी जवरन यह मार्ग वताते है, परन्तु अनंतानुवंधी क्रोध का उदय हो तो यह मार्ग उन्हे रुचिकर कैसे लग सकता है? उस पर चलना तो दूर, उस पर श्रद्धा भी कहा होती है? अगर श्रद्धा भी हो जाय तो कभी न कभी वह चारित्र मे भी उतरे विना नही रहेगा।

प्रवेश द्वार तो श्रद्धा है, उसमे से होकर जाओगे तो अदर भी प्रवेश कर सकोगे।

भगवानने कहा है---

सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं नेयाउयं

केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य है--ऐसी श्रद्धा पैदा होने पर ही आत्मा आगे प्रगति करने मे समर्थ वनता है।

वीतराग मार्ग पर अभिरुचि पैदा करना ही मूल वीज है--वीतराग वाणी के समान और कोई चीज दुनिया मे नहीं है।

अन्य तीर्थ की वाणी मे और वीतराग वाणी मे महान अन्तर है। घी और घासलेट जैसा अन्तर है। दोनो को समान मत समझो। हीरा और कांच को समान समझने वाले वुद्धिमान नही हो सकते। वे तो मूर्ख ही कहे जाते है। वीतराग वाणी तो पूर्वापर अविरोधी होती है। उसे समझोगे तो उसका रहस्य ज्ञात हो सकेगा।

पैसा परभव मे साथ आने वाला नही है। वह यही रह जाने वाला है। परभव मे तो ज्ञान ही साथ मे आने वाला है।

भगवती सूत्र मे भगवान से गौतमस्वामी पूछते है–ज्ञान, दर्शन और चारित्र जीव के साथ इस भव मे ही रहते है या परभव मे भी जाते है?

भगवान फरमाते है—

ज्ञान और दर्शन जीव के साथ परभव मे भी जाते है, पर चारित्र यहीं रह जाता है। व्रत, नियम संयम, तप पच्चक्खाण आदि इस भव पुरते ही है। अत: श्रद्धा मजबूत करो। नही तो गड़बड मे फंसे विना नही रहोगे।

तैतली को यह विचार पैदा होता है कि पौटिला कौन है? वैसे ही आत्मा कौन है? क्या है? कहां से आया है? इसका विवेचन यथावसर आगे किया जायगा।

ता. ६–९–६८

[६९]

तैतली प्रधान ने पौटिला को देखा और वह उस पर मोहित हो गया। रूप पौद्गलिक है, जड है। देखने वाला चैतन्य है। दोनो अपने अपने क्षेत्र मे है। दोनों एक दूसरे नही वन सकते।

आत्मा ज्ञाता और दृष्टा है। उसका स्वभाव ज्ञान है। जो कि शाश्वत है; अविनाशी है। सोने का कुछ भी वनाओ– ककण, कडा या हार–वह सोना ही रहेगा। ऐसे ही ज्ञान से जानना-चाहे स्व को जाने या पर को-पर ज्ञाता स्वभाव आत्मा का रहता ही है। क्योंकि वह उत्पाद, व्यय ध्रुव युक्त है।

एक आदमी मर जाय तो उसकी देह राख हो जाती है। राख नदी मे डाले तो कीचड वन जाती है। वही खेत मे डालो तो उसमे धान पैदा हो जाता है। ये सब पुद्गल है। दृश्यमान पदार्थ सब पुद्गल है। रग, रूप चाहे जैसा हो, पर दिखाई देने वाले पदार्थ सब पुद्गल है। तो क्या मै पुद्गल हू। नही, मै तो पुद्गल को जानने वाला चैतन हू। जड मे ज्ञान नही होता। अगर मै पुद्गल होता तो मुझ मे भी ज्ञान नही होता। लेकिन मै तो ज्ञान करता हू अत: मै पुद्गल नही, चैतन हूं।

जो तुम देख रहे हो, खा रहे हो वह सब जड है, उनमे चैतन्य नही है। इस पर मुझे मोह क्यो है? मोह निकालोगे नही तब तक तीन काल मे भी जीव का मोक्ष सभव नही है। मोह है तब तक विभाव है और विभाव मे रहते हुए आत्मा स्वभाव मे आ नही सकता। तबतक तुम्हारा पढा हुआ या सुना हुआ कुछ काम का भी नही है। ज्ञान भी तीन तरह का कहा गया है –

शब्द ज्ञान।

पदार्थ ज्ञान।

अनुभव ज्ञान।

अखवार मे वडे वडे हैंडिग हो, वालक उसे धीरे धीरे पढे और यह कहे कि मुझे यह पढ़ना आ गया, तो यह शव्द ज्ञान है । आपको भी प्रतिक्रमण तो आ गया, पर उसका रहस्य न आवे तो यह भी शव्द ज्ञान ही है । क्योकि वोलना और समझना एक वात नही है । वोलना अलग वात है और समझना अलग वात है । अत.ज्ञान करना हो तो पूरा करो, अधुरा ज्ञान भी काम का नही होता है ।

शव्द ज्ञान कर के पदार्थ को जानो और फिर तन्मय हो जाओ, अनुभव मे उतारलो तभी ज्ञान सच्चाज्ञान होता है ।

थोकडे मुह पाठ कर लेना या सुदर लेक्चर दे देना कोई महत्त्व नही रखता है, जव तक कि वह अनुभव मे नही उतर जाय ।

नव तत्व का यथार्थ ज्ञान और प्रतीति हो जाय तो इतने मात्र से ही मोक्ष हो सकता है । सच्ची श्रद्धा होती है तभी आत्मा विभाव को छोड़कर अपने स्वभाव मे आता है । जीव क्षण क्षण मे आश्रव का वध कर रहा है या सवर मे है ? मै नये कर्म वाध रहा हूं या कम कर रहा हू ? क्या मेरा कर्म मुझे ही तो नही मार रहा है ?

हणाई सत्थं जहा कुग्गहिय

खराव तरह से ग्रहण किया गया हथियार अपने आपको ही मार देता है । इसी तरह शास्त्र ज्ञान भी अनुभव ज्ञान विना शस्त्र बन जाता है– वह भी चोरासी के चक्कर मे डाल देता है । अत: ज्ञानी कहते है– रूप देखना है तो अपना स्वरूप देखो, पर को क्या देखते हो ? पर मे सुख नही है । सुखशाति, आवादी और आनंद तो स्वभाव मे है, पर भाव मे नही है । अत: वाह्य सौदर्य मे मत पडो । उससे तो आत्मा का पतन ही होगा ।

प्रभू निरख्या बिना नयने उभी चौरासी खाणी छे ।

जिसने स्वरूप के सहजानद का आस्वादन कर लिया है, उसे वाह्य आनद मे मजा नही आता है ।

शिष्य ने कहा– गुरुदेव, देखो सूर्य निकल रहा है– यह समय कैसा सुदर प्रतीत हो रहा है ?

गुरुने कहा– वाहर क्या देखना है ? यहां वैठे वैठे ही लोकालोक को देखा जा सकता है । जड़ को देखने मे लाभ भी क्या है ?

आत्मा मे तो अनन्त ज्ञान भरा पड़ा है । उसे प्रकट करो । सूर्य पर वादल आ गये है, वह दूर हुए नही कि सूर्य का प्रकाश तो आने वाला ही है । आत्मा का प्रकाश तो अलौकिक है । हजारो सूर्य भी उसका मुकावला नही कर सकते । अत. वाहर क्या देखते हो ? जिसने बम्बई का समुद्र देख लिया, उसके लिये वांध का देखना क्या महत्व रखता है ?

चाहिये । जड रूप के प्रति कितनी उत्कंठा आत्मा मे पैदा कर ली जाती है ? ऐसी उत्कंठा ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के लिये पैदा कर ली जाय तो कितना लाभ हो सकता है ? जड वस्तु का प्रेम उसके सामने तुच्छ है । करोडपति भी उसे भिखारी तुल्य लगता है जिसने आत्मिक–लक्ष्मी प्राप्त कर ली होती है ।

आत्मा का हित करना हो तो जड में मत फसो, वह परमाणु है, जो वर्ण, गध, रस. और स्पर्श से भरा पडा है । उस पर तुम अपना स्वामित्व नही कर सकते । जवानी से वुढापा आ जाता है, शर्दी हो जाती है, कैंसर हो जाता है, टी. बी. हो जाती है, यह सव क्या है ? कैसे हो जाता है ? शरीर पर हमारा अधिकार होता तो क्या यह हो सकता था ? या हम ऐसा होने भी देते ? अत: यह तो स्पष्ट है कि शरीर पर हमारा कोई अधिकार नही है ।

गुलाव जामुन देखते हो तो लेने का विचार करते हो, पैसा देकर चीज खाते हो और खा लेने पर वही जव मल रूप मे वाहर निकलती है तो उसे फेकने के लिये भी पैसे देने पडते हैं । ऐसा यह अशुचि मय शरीर है, जिसमे कोई भी अच्छा पदार्थ क्यो न डालो वह भी वैसा ही हो जाता है । यह क्यो नही समझते ? सब से पहले तो इसे ही समझने की जरूरत है ।

शरीर का चमडा देख कर लोग मोहित हो जाते है । तैतली भी पोटिला पर मोहित हो गया । चमडा क्या है ? आज चमक रहा है, कल चमक मिट भी सकती है, तब क्या करोगे ? मकान सुदर है– रंग रोगन भी किया हुआ है, कल मकान उजाड कर दिया जाय तो उसमे कोई रहना चाहेगा ? वैसे ही यह शरीर भी ऊपर से आज सुंदर दिखाई दे रहा है, कल खराब भी हो सकता है, उसमे वदबू भी पैदा हो सकती है ? क्यो कि शरीर मे तो यही भरा पडा है न ?–

मांस रुधिर सम मल दुर्गंधी, नर्क समान नठारुं
तेने तुं कंचन मय माने, आवडु, शुं अंधारुं ? पोपट.
छे पर नुं पण परिचय थी मानी बेठो मारुं
क्यानो तु ने क्यानुं अे पिंजर अे समजे तो सारुं
पोपट तन पिंजर नहि तारुं.. अंते उडी. . .

इस शरीर में से गध निकलती है या दुर्गंध ? खाना खा लेने पर जो डकार आती है वह कैसी आती है ? शरीर के संवध से अच्छी से अच्छी चीज भी खराव वन जाती है । तो फिर इसको इतना क्यों सजा रहे हो ?

प्रधान घर चला जाता है, पर हृदय मे पोटिला को लेकर जाता है । जहा तहा उसे तो पोटिला ही दिखाई देती है । उसकी सुंदरता उसकी आखो के सामने से हटती नही है । कैसी सुदर आखे– हिरनी की तरह चपल ! वोले

तो फूल खिले। कैसे सुंदर बाल और कैसा सुन्दर मुंह, जिसे देख कर चन्द्रमा भी शर्मा जाय? तैतली के हृदय में वही बस जाती है। सब कुछ उसके पास है। मान सम्मान और प्रधान जैसा पद पाकर भी वह पोट्टिला के विचार से असन्तुष्ट हो रहा है।

प्रधान के आदमी सुनार के घर जाते हैं। सुनार उनका स्वागत कर यथास्थान बैठाता है और पूछता है— कहिये, कैसे तकलीफ की आप लोगों ने?

उनमें से एक ने पूछा— आपकी लड़की की सगाई हो गई है?

सुनार ने जवाब दिया— नहीं।

हम उसके लिये आये हैं। तैतली प्रधान आपकी लड़की के साथ सगाई करना चाहते हैं। क्या आप तैयार हैं?

सुनार कहता है— इससे बढ़ कर मेरा सद्भाग्य और क्या हो सकता है? मेरी लड़की प्रधान के घर में जाय? मैं मना कैसे कर सकता हूं।

लोग कहते हैं— दहेज में आपको जितना धन चाहिये ले लो, हम वह देने को तैयार हैं।

सुनार— प्रधान के यहां मेरी लड़की जा रही है— यही मेरा सबसे बड़ा दहेज है। मैं एक पैसा भी नहीं लेना चाहता हूं।

बंधुओं! कन्या का पैसा लेना तो महान पाप है। आज भी कई लोग ऐसे हैं जो लड़की के घर का पानी भी नहीं पीते हैं। कई लोग ऐसे भी हैं, जो लड़की के भी पैसे लेते हैं। पैसे भी व्यापार में लगा कर मौज-मजा करते हैं! सुनार कहता है— मुझे एक पैसा भी नहीं चाहिये। मैं विवाह करने को तैयार हूं।

आज भी संबंध करना और तोड़ना भी आसान हो गया है। लड़की वाले को क्या क्या करना होता है यह तो लड़की वाला ही जानता है। लड़के वाला तो दुनिया भर का खर्चा मांगता है— लड़का अमेरिका जा रहा है, वहां २ साल रहेगा, उसका खर्चा तुम दो तो संबंध रह सकेगा। कोई विवाह का ही सारा खर्च मांग लेते हैं।

सरला विवाह कर अपने घर आई। सासु के पैरों में अपना सिर रख दिया और बोली— अब से आप ही मेरी मां हैं। आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। यह सुनकर सासु का हृदय कितना प्रसन्न हो जाता होगा? विनयवान पुरुष चाहे जैसे आदमी को भी जीत लेता है। सासु कहती है— तुम्हारी भलाई अभी अधूरी रही हुई है— अब तुम [illegible] शुरू कर दो। मैं धीरे धीरे घर का काम कर लिया करूंगी। सरला [illegible] करने लगी। सासु भी [illegible] [illegible] करती। फिर भी घर का काम करती है। सरला भी यह इच्छा नहीं

उसने कोलेज जाना वंद कर दिया। सासु ने पूछा—क्या आज छुट्टी है? सरला वोली—हा जीवन भर की छुट्टी ले ली है। घर में सासु वीमार रहे और वहू पढने जाय यह विद्या किस काम की है? विद्या तो विनय से ही शोभा पाती है। पहले सास—श्वसुर की सेवा और फिर घर का दूसरा काम। सरला अव सव काम अपने हाथ से करती है। रात को १० वजे वह सासु के पैर भी दवाती है। सासु कहती है—सरला, तुम दिन भर की थकी हुई हो—अव आराम करो, तो सरला कहती है—आपको नीद आ जायगी तो मैं भी सो जाऊंगी। ऐसी वहू सासु को कितनी प्रिय होती है? ऐसी संस्कारी वहू ही कुल की शोभा वढा सकती है।

लडकी तो पराया धन है, उसके संस्कार सुदर बनाओ। मन मे अहकार या चिडचिडापन नही होना चाहिये। जीवन मे विनय होता है तो कभी घासलेट छिडकने का भाव भी पैदा नही हो सकता है।

सासु ठीक हो जाती है। लेकिन सरला की मां को यह अच्छा नही लगता। सरला घर आती है तो उसकी मा उससे कहती है तू यह क्या कर रही है? रात की १० वजे तक काम करती रहती है—वीमार हो जायगी तो कौन क्या करेगा? अभी तो मौज करने के दिन है। पढ़ना भी छोड दिया है न?

लडकी कहती है—सच्ची पढाई तो अव चालू हुई है।

कुछ दिनो वाद सरला के श्वसुर को व्यापार मे काफी नुकशान हो जाता है। भाव कम हो जाने से माल मे काफी नुकशान लग जाता है।

सविता सरला को घर वुलाती है और कहती है—तू अपना सव जेवर यहा ले आ, नही तो सब चला जायगा। सुना है अभी तेरे श्वसुर को काफी नुकशान लग रहा है।

सरला ने उत्तर दिया—जो मुझे दिया, वह तो मेरा हो गया है—उस पर अव तू क्यो मोह कर रही है! पैसा जाता है तो भले ही चला जाय, पर मै स्वार्थी वहू कहलाना नही चाहूगी। मै ऐसा कोई काम नही करना चाहूंगी जिससे मेरे खानदान की भी वदनामी हो।

एक दिन सरला अपने श्वसुर को चिन्तित देखती है तो कहती है—ये मेरे कपाट की चाविया है, आपको जो चाहिये ले लीजिये। वह सव आपका ही है।

यह सुनकर श्वसुर तो गद्गद हो गया। वोला—यह क्या कहती हो वेटी! मै तुम्हारा जेवर ले लू!

सरला वोली—यह अभी सोचने का समय नही है। जो कुछ भी है, आपका ही है। मेरा भूपण तो शील है। वह रहेगा तो सभी भूपण उसके सामने तुच्छ है। आपका आशीर्वाद मिलते रहना चाहिये। यही मेरा भूपण है।

श्वसूर के आखो मे आसू आ गये। बोला—सचमुच तू तो गृह–लक्ष्मी है। लडकी सुदर हो, पर संस्कारी न हो तो वह घर मे कलह ही पैदा करती है।

कुछ दिनो बाद व्यापार मे फिर से तेजी आ गई। नुकशानी सब चली गई और काफी मुनाफा होने लग गया। लोग वापस अपने रुपये जमा कराने लगते है। लेकिन मुसीबत मे कौन साथ देता है?

आपत्ति के मुसीबतों मां रडे सौ पग मां पडी
थई जाये काम पछी ओलखाण कोइअे नहिं
अेवी दुनियानी चाल मां फसायो हुं अेवली.
मारा मारा करी पस्तायों छुं हुं पेट भरी
बधे आवुं हशे नहि ख्याल मने दुनिया मां....मारा

लडकीने मा की सलाह मान ली होती तो क्या होता? आज जो यश उसे मिल रहा है वह उसे कैसे मिलता? समय की बात है। समय पर जो काम आता है वही अपना कहा जाता है। कसौटी का प्रसंग आता है तभी सोना सच्चा सोना बन कर सामने आता है।

समय पर जो लडकी अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाती है वही यश की भागी होती है।

पोटिला भी ऐसी ही लडकी है। सुनार उसे अच्छे मुहूर्त मे प्रधान के घर ले जाता है और विवाह–विधि कर देता है। प्रधान की इच्छा पूरी हो जाती है। आगे वह क्या करता है? इसका वर्णन यथावसर किया जायगा।

ता. ९–९–६८

[७१]

तेतली प्रधान को पोटिला क्या मिल गई? अपनी मन पसद चीज मिल गई। पाचो इन्द्रियो के अनुकूल विषय मिल गये। स्वर्गीय आनद जैसे उसे मिल गया हो ऐसा वह अनुभव करने लगता है। सूर्य कब उगता है और कब अस्त होता है? इसका भी उसे पता नही चलता।

जब आत्मा सुख मे मग्न हो जाता है तो उसको छह महीने का सुख भी एक घटे जितना ही लगता है। इसके विपरीत दुख का एक घटा ही ६ मास जितना लगने लगता है। क्योकि जीव को प्रिय वस्तु मे राग और अप्रिय में दुख होता है।

हमारा आत्मा अनादिकाल से चार गति, चौवीस दंडक और चौरासी लाख योनियो मे भटकते भटकते मनुष्य भव मे आया है। मानव भव मे आने पर भी

विवेक दृष्टि नही रही है इसीलिये मै स्व और पर को समझ नही पा रहा हूं। दुख मे ही सुख की कल्पना कर रहा हूं। धन, स्त्री, पुत्र परिवार आदि मे सुख मान रहे हो, जहा सुख नही है, वहां सुख मान रहे हो। सुख जड मे नही है। सुख तो आत्मा मे है। जैसे शक्कर का स्वभाव मिठास है, अग्नि का स्वभाव उष्णता और पानी का शीतलता है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव भी उपयोग है-ज्ञान है। ज्ञान दर्शन और चारित्र मे रमण करना आत्मा का स्वभाव है। लेकिन आज वह स्वभाव को भूल कर विभाव मे रमण कर रहा है। इसीलिये अपना अनत दुख वढाता चला जा रहा है। स्वभाव मे आने पर ही आत्मा अलौकिक आनंद का अनुभव करता है। फिर चाहे कोई उसे घाणी मे पीस दे या शरीर का चमडा उतारले, सिर पर अंगारे रखे या गरम तेल के कडाहे मे डाल दे, उसे दुख नही होता है। क्योकि वह यह जान लेता है कि इससे मेरी आत्मा का कुछ भी अहित होने वाला नही है। जो मिटने वाला है, वह तो शरीर है-जड है-हेय है, उसे उपादेय मान बैठना ही भूल है। इस तरह जो छोडने योग्य है उसे तो आज संभाल रखा है। और जो रखने लायक है उसे छोड दिया है अतः भव भ्रमण की भूख कैसे मिट सकती है?

खाने-पीने मे आज जो मजा मान रहे हो, उसके पीछे तो सजा मिलने वाली है। क्या उसका भी तुम्हे भान है? इन्द्रिय सुख कल्पित है। पीतल पर सोने का पानी चढा हो तो वह सोना नहीं हो जाता, वैसे ही अज्ञानी भी सुखाभास में ही सुख समझ रहे हैं। सच्चा सुख वह नही है।

कई आदमी विद्वान हो जाते है-पी. एच. डी., वकील और इंजीनियर बन जाते है। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो तो जीव नई नई शोध कर दुनिया के सामने रखता है जिसे देख कर लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं। पर जब तक वे अपनी आत्मा की शोध नही करते तब तक उनका यह ज्ञान भी अज्ञान ही कहा जाता है। ऐसा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षमोयशम तो कई वार किया और ज्ञान भी प्राप्त किया, पर जब तक उसके साथ दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम न हो तब तक वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नही कहा जाता है। दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने पर ही ज्ञान सम्यग् ज्ञान वनता है। तभी वह जड और चैतन को समझने लगता है।

जीव जिन्हें ग्रहण करता है वह प्रयोगसा पुद्गल है। दूसरे मिश्रसा पुद्गल हैं जो स्वभाव और प्रयोग दोनों के संयोग से पैदा होते है। जैसे संध्या और प्रभात, धूप और इन्द्र धनुष। जो स्वाभाविक पैदा हो जाते है और मिट भी जाते है।

ये पुद्गल जड़ हैं—मैं चेतन हूं. पुद्गल मेरे नहीं हैं. वे मेरे हो भी नहीं सकते! न वे मुझ में आ सकते हैं। यह जब मनन में आ जाता है. तब ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है।

दर्शन मोहनीय के साथ जब चारित्र मोहनीय का क्षय होता है तब उनका ज्ञान विज्ञान कहा जाता है। विषय और कषाय जो अनादि काल से संसार बढ़ा रहे है—उन्हें जानना या समझना ही पर्याप्त नहीं है—उनसे मुक्त होने का प्रयत्न करोगे तभी भव-चक्र का फेरा मिटा सकोगे।

नाव से नदी पार करना है, पर बैठे बिना पार नहीं पहुंचा जा सकता है। वैसे ही ज्ञान को मनन कर जीवन में उतारोगे तभी वह कारगर हो सकेगा।

कीचड़ में भरा हुआ कपड़ा जैसे कीचड से साफ नहीं हो सकता है वैसे ही आत्मा भी पुद्गलानंदी बन कर कर्म क्षय करने की बात करे तो यह कैसे संभव हो सकता है? अठारह पाप स्थान का सेवन करते हुए जीव मोक्ष कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः ज्ञानी कहते है—पहले विवेक चक्षु प्रकट करो। मेरा क्या है? और पराया क्या है? यह समझो। तभी ज्ञान विज्ञान बन सकता है।

सुख और दुख तो शरीराश्रित हैं। एक सेठ की कई पेढ़िया चल रही है। वह सोचता है अब मैं अपने गांव जाकर आराम करूं। इतनी दुकाने है। मुनीम-गुमास्ते संभालते ही हैं। वह घर आ जाता है। उधर व्यापार में नुकसान होने से सब पेढियां बंद हो जाती है। पर सेठ को पता नही चलता। वह अपने हाल में मस्त रहता है। दो दिन बाद तार आता है। सेठ उसे पढ़ता है तो बहुत दुखी हो जाता है। दुकानें तो तीन दिन से बंद है, परन्तु आज क्यो रो रहे हो? दो दिन हुए लडका बाहर गाव में मर गया है, पर तुम दूध पाक खा रहे हो। क्योंकि पता न होने से आत्मा दुख नही अनुभव करता है। परन्तु जब ममत्व भाव आ जाता है तब वह दुखी हो जाता है। जहा ममता है वहा समता नहीं आ सकती। उपाश्रय मे कोई चप्पल उठा रहा है और तुम उसे देख रहे हो, सामायिक में भी खडे हो जाते हो। पर अपने न हो और दूसरों के हो तो जाने दो सामायिक है—कह कर वापस लौट आते हो। यह ममत्व [illegible] [illegible] होता है?

चाली में आग लग जाती है, सामायिक मे बैठे हो, [illegible] [illegible] [illegible] जाते हो। रास्ते में कोई कहे कि यह तुम्हारी चाली में नहीं [illegible] चाली में लगी है तो वापिस आकर सामायिक में बैठ जाते हो। [illegible] [illegible] दुख [illegible] नहीं करता है, मेरा पन या ममत्व ही दुख [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] रहता है।

अमे राग द्वेष थी रंगाया ने कलेश भरेली अम काया० मद.
अमे काम क्रोध थी कचडाया, नें लोभ मांही लपटाया
मदमत्सर ने माया मां थी मुक्त करो जिनराया......।

राग और द्वेष दोनो कर्म की जड है। उसे छोड़ेगे तो वीतरागता पैदा होगी। जो एकान्त सुखी है वही वीतरागी है। किसी को अपना मत समझो, समकित मे स्थिर वनो और उसे चारित्र मे उतारोगे तो वीतरागभाव पैदा हो सकेगा। जानना, समझना और समझ कर जीवन मे उतारोगे, तभी ज्ञान सार्थक वन सकता है।

रेल मे मुसाफिरी करने वाले कुछ समय तक साथ मे वैठते है। अपना अपना स्टेशन आता है, तो सव उतर जाते है, उससे किसी को दुख नही होता। कोई यह कह कर रोता नही कि तुम क्यो उतर रहे हो? इसी तरह हम भी सभी मुसाफिर है–मां–वाप–पुत्र–पुत्री–स्त्री–भाई आदि के रूप मे एक डिब्बे मे इकट्ठे हो गये है। सव को अपने अपने स्टेशन पर जाना तो है ही। कोई पहले तो कोई वाद मे जाना तो है ही। तव फिर ममता क्यो करते हो? वह छोडोगे तभी ज्ञान–ज्ञान वनेगा और आत्मा स्वरूप को समझने मे समर्थ हो सकेगी।

जीवन तो वहते हुए पानी के समान है। ज्ञानी देह पर भी ममत्व नही रखते है तो आप कुटुम्ब पर ममत्व क्यो करते हो?

कोई क्यां थी कोई क्यां थी एक वृक्षनी डाले.
पंखीडा आवी ने बैठा–कोई डाले कोई माले
प्रभात ना पचरंगी रंगे जाता सहु विखराई
आ जग पंखी नो मेलो केम रहेशे सदेव भेलो......

यह दुनिया भी पक्षियो के मेले जैसी है। चारो दिशाओ से पक्षी उड कर आते है और पेड पर विश्राम कर सो जाते है। कोई खुली डाली पर तो कोई घोसले मे। ऐसे ही आप भी चौरासी मे से निकल कर यहा ससार रूपी वृक्ष पर इकठ्ठे हो गये हो। उसकी शाखा पर वैठे तो साख वन गई–जैसे वीराणी, सघवी–मेहता–गोपाणी आदि–कोई घोसले मे वैठा तो कुटुम्व वन गया। यह मेरा और यह मेरे भाई का।

अरुणोदय होता है, सभी पक्षी अलग अलग हो जाते है। लेकिन आपका ममत्व इतना अधिक होता है कि आप उसे छोडना नहीं चाहते हो–या छोडने में भी दुख अनुभव करते हो। क्या कोई घर ऐसा भी है जहां किसी की मृत्यु न हुई हो।

एक औरत का लडका मर गया। वह वहुत करुण विलाप करती हुई कहती

है–कोई मेरे लडके को जीवित कर दो। एक आदमी उसे बुद्ध के पास ले जाता है। वह कहती है–मेरे लडके को जीवन दान दो–वही मेरा एक मात्र सहारा था, आप उसे जीवित कर दो।

बुद्ध ने कहा–तेरे लडके को जीवित करना है तो एक मुठ्ठी राई ले आ। औरत बोली–अभी लेकर आती हूं। राई लाना कौनसी बडी बात है? बुद्धने कहा–सुन, राई उसी घर से लाना जिस घर मे किसी की मृत्यु न हुई हो, तभी वह तेरे लडके को जीवित कर सकेगी।

राई लेने वह सारे गाव मे फिरती है, पर ऐसा घर कोई नही मिला जहां किसी की मृत्यु न हुई हो। वह बुद्ध के पास आकर खडी हो गई। बुद्धने पूछा–क्या राई लाई हो?

उसने कहा–ऐसा घर तो कोई नही मिला जहां किसी की मृत्यु न हुई हो। अब क्या करूं?

बुद्ध ने कहा—जो पैदा हुआ है वह एक दिन अवश्य मरने वाला है, उसे कोई रोक नही सकता। जन्म लेना या न लेना. यह हाथ की बात है, पर जन्म लेकर न मरना यह हाथ की बात नही है, मरना तो पड़ेगा ही।—

स्थिर नथी रहेवुं अमर नथी रहेवुं रे
जनम्या तेने तो व्हेलुं मोडुं मरी जावुं रे
मधपुडो बांधी बेठा माखीना टोला वन मां
मानीने कायम मीठुं खाशु
पारधीए आवीने आग लगावी ज्यारे
माखी ने मधने लोभे बली खाख थावुं रे. . जनम्या.

दुनिया मे जो पैदा हुआ है उसे एक दिन मरना तो है ही, उसे कोई रोक नहीं सकता। मधुमक्खी अपना छत्ता बना कर यह सोचती है कि हम रोज मद का पान करती रहेगी। पर जब शहद इकट्ठा करने वाला नीचे आग लगा देता है तो वे मक्खियां उसीमे मर जाती है। इसी तरह जब काल आ जावेगा तब 'न खाया न दान किया और लूटने वाला लूट ले गया' जैसी हालत हो जायगी। अत: सावधान रहो। यही ज्ञानी कहते है।

तेतली प्रधान का राजा कनकरथ था, जिसके कई रानियां थी। पद्मावती रानी उसकी पटरानी थी। राजा बडा लोभी है। वह अपना खजाना कम नहीं होने देता है। अपने को अमर समझता है। उसका अधिकार आगे कहा जायगा।

ता. १०-९-६८

[७२]

तैतली और पोटिला पति–पत्नी हो गये। दोनों आदर्श गृहस्थाश्रम चलाते है। पति और पत्नी को जिस तरह रहना चाहिये वैसे वे रहते हैं। पति के वचनों का पोटिला पालन करती है। प्रिय हो या अप्रिय पति-आज्ञा का पालन करना वह अपना धर्म समझती है। प्रेम भाव भी वही रहता है। आज की तरह समान हक मानने वाली औरतो मे वैसा प्रेम कहां दिखाई देता है?

पत्नी घर का काम करती है और पति बाहर का। जो भी वह कमाकर लाता है पत्नी को दे देता है। पत्नी घर का काम करती है–खाना पकाती है, बर्तन घिसती है–कपडे धोती है, तो क्या वह वैतन मांग सकती है? अगर माग ले तो क्या वह नारी कही जा सकती है? यह सब काम तो तेरे घर का ही है, दूसरे का थोडे ही है। नौकर काम करता है तो वह दूसरे का समझकर करता है इसीलिये उसे वैतन भी दिया जाता है। पर यह तो तुम्हारा ही काम है। इसका वैतन कैसा? इसी तरह आप सामायिक, प्रतिक्रमण, उपवास, आयविल आदि जो क्रियाऐ करते हो उनका भी फल कैसे माग सकते हो? अठ्ठाई की है तो थाली मिलनी ही चाहिये। यह क्यों चाह रहे हो? पत्नी अपने पति से अपने काम का वैतन मांगे तो जैसे वह हास्यास्पद होती है वैसे ही आप अगर इन क्रियाओ का फल चाहो तो क्या तुम हास्यास्पद नही बन रहे हो? आपको ठीक लगे इसलिये मै यह कर रहा हूं, यह ठीक नही है। स्वाध्याय–ध्यान, सामायिक, प्रतिक्रमण, आयंबिल–उपवास आदि क्रियाऐ अपने लिये है, दूसरो के लिये नही। उनका प्रतिफल कैसे मागा जा सकता है?

आप विकास मंडल के सभ्य हो या विनाश मंडल के?

कली का विकास होता है तो फूल बनती है। यो उसका विकास हमें स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसा विकास हमें अपने जीवन मे भी दिखाई देना चाहिये। तुम ५० साल से सामायिक कर रहे हो, उसमें कुछ विकास दिखाई दे रहा है या वही के वही खडे हो? समभाव, शांति और सहनशीलता मे आगे बढे हो या पीछे हटे हो? लडका पहली कक्षा से पास होते होते मैट्रिक तक आगे बढ जाता है–यो हमें उसका क्रमिक विकास दिखाई देता है, वैसा ही विकास हमारी आत्मा का भी दिखाई देता है क्या?

पेट मे भूख लगती है तो दूध पी लेते हो, उससे कुछ शाति हो जाती है। वैद्य ने भस्म दी, पर खाने पर शक्ति न आई तो वैद्य से लडने लग जाते हो कि तुमने क्या भस्म दी है या राख दे दी है? शरीर मे ताकत तो आई नहीं।

वैसे ही वर्षो से तुम व्याख्यान सुन रहे हो, पर जीवन मे उसका प्रभाव न हो तो उसे क्या समझना चाहिये ?

> **वात वात मां वाया वर्षोना व्हाणा—वर्षोना.....**
> **गाजी गाजी ने प्रभु गाया तारा गाणा.....गाया....**
> **खेची खेंची ने हवे कंठ आ सुकाय,**
> **तोये आ कालजु कोरूं रही जाय.......**

ज्ञानी कहते है वात वात मे वर्षो का समय निकल गया, दीक्षा लेकर कितने वर्ष हो गये ? वालक भी जवान बन जाता है ? यो प्रगति तो नजर आती ही है। आपकी आध्यात्मिक प्रगति भी इसी तरह दिखाई देनी चाहिये।

एक भिखारी है—खाने का भी ठिकाना नही है। किस्मत से एक [illegible] रु. की लाटरी लग जाती है—तो वह आलीशान वगले मे रहने लग [illegible] है। सुदर खान–पान और कीमती वस्त्र पहनने लग जाता है। ऐसे ही [illegible] सम्यग्दर्शन की लाटरी लग जाती है तव तो उसकी किस्मत ही [illegible] है। लेकिन आज वह रौनक क्यों नही दिखाई पड रही है ?

सम्यक्त्वी तो अपनी उत्कृष्ट साधना से उसी भव मे [illegible] है। मध्यम साधना से ३ भव मे और जघन्य साधना से [illegible]। [illegible] मोक्ष तो निश्चित है ही उसका। इसमे तो कोई शंका को [illegible] है।

सम्यग्दर्शन का प्रधानमंत्री आता हे तो आत्मा [illegible] है। उपादान की तरफ ही उसका लक्ष्य रहता है, [illegible] देखता।

गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे जल रहे है। [illegible] माल जल रहे है। पर भगवान कहते है वह [illegible] है। [illegible] रहा है—वह मेरा नही है। एकदिन का [illegible] हाल है ? और आज वर्षो के दीक्षित [illegible] सामायिक करने वालो का क्या हाल है ? [illegible] का क्या हाल होता है ?

अपने मन का न हो तो [illegible] हो ? भगवान की आज्ञा का [illegible] को शिक्षा देने वाले [illegible] नही होती है। दूसरे के [illegible]

भगवान के [illegible]

तृपा शात न हो, जैसे यह सभव नही है वैसे ही भगवान के मार्ग पर चलोगे तो प्रगति अवश्य होगी ही।

इतने वर्षों से सामायिक करते हो, व्याख्यान सुनते हो, पर कषाय शात न हुए हो तो प्रगति कैसे हो सकेगी? जो कुछ करो हृदय से करो। प्रार्थना तो रोज करते हो। भक्तामर भी रोज पढते हो—

भक्तामर प्रणतमौलि मणि प्रभाणा।
मुद्योतकं दलित पाप तमो वितानं।
सम्यक् प्रणम्य जिन पाद युगम् युगादा
वाल वलं भवजले पततां जनानाम्।

संसार सागर मे डूवते हुए जीवों के अवलंवन रूप भगवान अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाले है। वे ज्ञान की किरणे फेकते है, पर तुम अपनी आखें ही न खोलो तो भक्तामर का पाठ कर के भी क्या लाभ उठा सकोगे? माला फिरा फिरा कर तो कई मालाऐं घिस डाली पर मन नही घिसा तो उससे क्या लाभ है?

तप—जप करता त्रेपन गया, जप माला ना मणका गया।

कई वर्प बात ही वात मे निकल गये। जैसा चाय का व्यसन हो जाता है, वैसा ही व्यसन भक्तामर का भी हो गया है—रोज उसका पाठ तो कर लेते हो, पर भगवान का जो अन्तर है वह तो कम नही हुआ है। आनंदघन जी कहते है—

तुज मुझ अंतर अंतर भांजशेरे वाजशे मंगल तूर
जीव सरोवर अतिशय वाधशे रे आनंदघन रस पूर
पद्मप्रभु जिन तुज मुझ आंतरूं रे! किम भांजे भगवन्त!

पद्मप्रभु की स्तुति करते हुए आनंदघन जी कहते है—हे भगवन! तुम्हारा और मेरा अन्तर तो इतना अधिक बढ गया है कि कुछ ठिकाना नही रहा है। तुम तो मोह—माया का नाश कर वीतराग बन गये हो, और मै राग—द्वेप मे ही फंसा हुआ हूं। दंभ और माया का तो पार ही नही है। ऐसी हालत मे मेरा उद्धार कैसे हो सकता है?

हुं तो क्रोध कषाय नो भरियो, तुं तो समता रस नो दरियो,
हुं तो अज्ञाने आवरियो, तुं तो केवल कमला वरियो,
हुं तो विषय सुख नो आशी, ते तो विषय कीधा निराशी
हुं तो करसना भारे भरियो, ते तो सर्वथा दूरज करियो।

मै तो क्रोध कषाय से भरा पडा हूं—तुम तो समता के सागर हो। चण्ट-कौशिश डंक मारता है—फिर भी भगवान कहत है— समझ समझ चण्डकौशिक समझ!

काटने पर भी वात्सल्यता का वही अमी-झरना वहता है। क्रोध का तो नाम-निशान भी नही होता। कान मे खीले मारे, पर हृदय में द्वेष नही। उस पर भी वैसा ही प्रेम। मुह से बोलना तो सीरा खाने जैसा है, पर जीवन मे उसे उतारना लोहे के चने चवाना है। भगवान की स्थिति देखिये और अपनी भी देखिये। कितना अन्तर है? चाहते तो यही हो कि—

सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु

मुझे सिद्धगति दो, पर वह कैसे मिल सकेगी? टिकिट तो मोक्ष की चाहिये। पर उसकी तैयारी न करो तो वह कैसे मिल सकेगा? पहला पाठ भी अभी याद नही है। तव फिर दूसरा कैसे पक्का होगा?

दस धर्मो मे पहला पाठ खति-क्षमा का है, दूसरा मुत्ति का। पहले इनको याद करो, फिर आगे वढना चाहिये।

क्रोध को जीतना मुश्किल है-पर कोशिश करोगे तो जीत सकोगे। भगवान के मार्ग पर चलो और वैसे न वनो यह सभव नही है। शरीर का चमडा उतार लो, सिर पर अगारे जलालो, घाणी मे पीस डालो, पर सिर पर सल भी न चढे-कैसी स्थिति थी उनकी? और आज आपकी कैसी स्थिति है? उपाश्रय में गये थे, महासतीजी ने तो मुह भी ऊंचा नही किया। यो हमारा भी दोष निकालने वाले वहुत है। भगवान कहते है-पहला पाठ भी कच्चा हे तो आगे [illegible] कैसे हो सकेगी?

कली फूल वनने से पहले ही मुरझा गई। याद रखिये, [illegible] कांटों में ही खिलता है। इसी तरह हमारा मार्ग भी कटकाकीर्ण है-यह [illegible] चलने का है। फिर भले ही उस मार्ग पर फूल विखरे पड़े हो। [illegible] ही चल सकते है।—

कायर कंपे पापी थंभे, दुष्ट जाये [illegible]
पण सज्जन ने सुसाध्य छे अे मार्ग [illegible]।
विकट पंथ वीरनो दुर्धर वहु [illegible]

वीर का पथ विकट है। कायर का वहा [illegible] रह जाता हे। सज्जन और वीर पुरुष ही [illegible] सकता है।

जननी जण तो [illegible]।
नहीं तो रहजे [illegible]।

ऐसे वीर पुरुष का ही [illegible] आचारांग मे कहा है—

दुरणुचरो [illegible]

वीर के मार्ग पर शूर-वीर- धीर ही चल सकते है। कदम पर कदम वढाता जा, नदी आवे या नाला, तू रुक मत-प्रगति करता जा। जैसे जैसे विकास होता जाता है, वैसे वैसे साधक के हृदय में नया उत्साह पैदा होता जाता है।

एक आदमी ३० वर्ष से पेढी चला रहा है और एक आज शुरु करता है तो दोनों में अन्तर तो होगा ही। ३० वर्ष से जो भाई पोषा कर रहा है उसमे और आज ही करने वाले मे अन्तर तो होगा ही। नये को तो सभी वताना पडेगा, पर जो वर्षो से कर रहा है उसे वाह्य क्रिया सिखाने की जरूरत नही होती। पर हृदय में कितनी प्रगति हुई है? यह देखना वहुत जरूरी है। कही उसकी हालत भी आज के पौषधधारी साधक के समान ही तो नहीं है? तुम सामायिक मे क्या वोलते हो?

निंदामि—गरिहामि

मै अपनी नीदा करता हूं—विशेष रूप से नीदा करता हूँ। फिर आप दूसरे की नीदा क्यों करते हो? दूसरे की नीदा करने वाला मै कौन होता हूं? पराया कचरा घर में लाने वाला वुद्धिमान है या घर का वाहर निकालने वाला वुद्धिमान है?

सच्चे हृदय से प्रार्थना करोगे तो फल अवश्य मिलेगा। भाव शून्य क्रिया फलवती नही होती है। वाह्य क्रिया कांड में धर्म नही होता। घांणी का वैल घूमता है, पर रास्ता कम नही होता। वैसे ही तुम देखा देखी तो उपवास कर लेते हो—अट्ठाई या मासखमण भी कर लेते हो, पर रात्रि भोजन का भी त्याग न कर सको तो उस तपस्या का भी सार क्या कमाया? एक घडी की सामायिक जीवन मे दो घडी समभाव पैदा न कर सके तो उसका क्या सार है? अतः समझने की जरूरत है, धर्म को बराबर समझो। धर्म की मजाक मत करो, धर्म तो समझकर जीवन मे उतारने की वस्तु है। देखादेखी में धर्म नही है। ३० उपवास करने वाला भी दूसरे दिन गरमागरम मसाले वाले वटाटा (आलू) मांगे तो कहिये उसने क्या तप का यही सार निकाला है?

स्वाद कम करो इन्द्रियों के गुलाम मत बनो, उनको वश मे करो। तभी तपश्चर्या करना भी सार्थक होगा।

भगवान की आज्ञा मे चलने वाले ही कैवल्य प्राप्त करते है। चाहे उन्हे समुद्र मे डुबा दो या उठा कर पत्थर पर फेंक दो; पर जो विचलित नही होते वे ही मुक्ति को पाते है। अतः आत्मा को स्वभाव मे स्थिर करो, पर-भाव छोडो। जो भी क्रियाये करो, समझ कर करो और उन्हे जीवन में उतारने का प्रयत्न करो। फिर देखो प्रगति कैसे नही होती है?

सूई के अग्रभाग जितने मे भी निगोद के अनंत जीव होते है तो वटाटा (आलू) मे कितने जीव होते होगे? अरे! अठ्ठाई करने वाले कभी यह खा सकते है? मासखमण वाले तो उसको छू भी कैसे सकते है?

मालसी भाई कच्छी वैद्य है। उसके यहां एक दक्षिणी बाई काम करती है, जो कंदमूल का छुआ हुआ शाक भी नही खाती है। अन्य मती भी कन्द–मूल से घृणा करते है तो तुम्हारे लडके उसका भोग कैसे कर सकते है? जैन के घर मे तो कंद–मूल का भक्षण होना ही नही चाहिये। इस दिशा मे आज कुछ तो सुधार अपेक्षित है ही।

तपश्चर्या का हम निषेध नही करते हैं। कोई इसका गलत भाव न निकाल ले। तप करना हमारा धर्म है; पर जीभ का स्वाद भी छोडोगे तो वह सार्थक हो सकेगा। तभी तुम्हारी तप में प्रगति कही जायगी। मुसलमान हज करके आते हैं तो आजीवन झूठ नही बोलने का नियम लेते हैं। तुम पालीताणा, आबू, शिखरजी और गिरनारजी जाते हो, पर जीवन मे क्या करते हो? मासखमण करने वाले को तो यावज्जीवन क्रोध का परित्याग कर देना चाहिये। मासखमण करने वाला भी जीवन मे क्रोध करता रहे तो मासखमण का महत्व ही क्या है?

यह तो अपनी अपनी बात है। हर एक अपना अपना हृदय टटोले। धार्मिक क्रियाएं बुरी नही है। करने वाले उसका आचरण जीवन मे नही करते इसीलिये आज उनके प्रति रस जागृत नही होता है।

जो स्त्री पति की आज्ञाकारिणी है, उससे पति कभी नाखुश नहीं रह सकता है। जो भी हो पति उसे दे देता है। न हो तब भी दिल से तो वह दे चुका होता है। स्त्री भी सस्कारी है–ऊचे घराने की है–पास मे कुछ भी नही है, फिर भी उसका मुह तो प्रसन्न ही रहता है। ऐसी भक्ति तुम्हारी भी भगवान के प्रति हो तो वह फलदायी अवश्य होती है। अन्यथा मेरुपर्वत जितना ढगला भी ओघे और पूजणियो का कर दो, उस से क्या लाभ होने वाला है?

पोटिला और तेतली दोनो आदर्श गृहस्थाश्रम का अनुभव कर रहे हैं। उधर राजा कनकरथ अपने राज्य मे आसक्त है। लोभ वृत्ति उसकी बढी हुई है। उसके लिये वह अकरणीय काम भी कर लेता है। उसका अधिकार यथावसर आगे कहा जायगा।

[७३]

कनकरथ राजा वडा लोभी है। हर समय वह अपने भंडार को वढाने की सोचा करता है। धन को ही वह सर्वस्व समझता है। जो लोभी होता है, क्या उसकी तृष्णा भी कभी पूरी हो सकती है?

सुव्वण्ण रूप्पस्स उ पव्वया भवे
सिया हु केलास समा असंखया।
नरस्स लुध्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छाहु आगास समा अणंतया।

सोने और चांदी के पर्वत क्यो न खडे कर दो, मेरू पर्वत हजार योजन ऊंचा है, ऐसे असंख्य ढेर क्यो न कर दो, तव भी मानव की तृष्णा पूरी नही होती है। क्योकि इच्छाऐ तो आकाश के समान अनन्त है। आकाश लोकालोक प्रमाण कहा गया है। उसका कही भी अन्त नही है। वैसे ही तृष्णा का भी अन्त नही है।

लोक कितना वडा है? इसको वताते हुए कहा गया है— ६ देवता मेरुपर्वत की चोटी पर खडे हो (यानी ९९ हजार योजन ऊपर) ६ देवागनाऐ उस पर्वत की तलेटी मे खड़ी हो, जो अपने हाथ मे उडद के वाकुले लिये हुए हो, वे उन दानो को नीचे फेके और ऊपर से देवता नीचे आकर उन्हे झेल ले — जमीन पर गिरने न दे। ऐसी तीव्र गति उन देवताओ की होती है। वे देवता चारो दिशाओ मे ऐसी तीव्र गति से चले। चलते चलते एक वालक का जन्म हो जाय, जो एक हजार वर्ष तक जीवित रहे, उसके भी एक बालक हो, वह भी एक हजार वर्ष तक जीवित रहे, ऐसी ७ पीढी पैदा हो जाय। यानी ७००० वर्ष व्यतीत हो जाय, उसका नाम निशान भी न रहे, तव तक वे देवता अपनी गति करते रहे, तव भी लोक का अन्त न हो, ऐसा यह लोक कहा गया है। आकाश के सामने यह लोक तो एक छीके की तरह है। अलोक अनत है। लोक और अलोक दोनो को इकठ्ठा करो तो उससे भी तृष्णा अनन्त है। आकाश का अन्त नही होता वैसे ही इच्छाओ का भी अन्त नही आता। अग्नि मे चाहे जो जला दो, उसकी भूख मिटती नही है, वैसे ही इच्छाऐ भी कभी शात नही होती है।

आनंदघनजी कहते है—

अढी रे द्वीप मे खाट खटूली, गगन ओशीकु तलाई
धरती आभ की करी पछेडी, तोयेन सोड संठाई। अवधू०
नहि रे परणेली नहि रे कुंवारी तोये पुत्रजणावल हारी'
काली दाढी नो कोई न म्हेल्यो हजुये छुं वाल कुंवारी।
अवधूत ऐसे ज्ञान विचारी।

ज्ञानी को तो तृष्णातुर लोगों पर हंसी आती है । साथ मे क्या ले जाने वाले हो ? फिर सन्तोष क्यों नही रखते ?

तृष्णा न तो शादी शुदा है—न कुंवारी है, फिर भी उसने वृद्ध और युवक किसी को भी नही छोडा है । वर्षो से सामायिक कर रहे हो, पर जीवन मे कभी सच नहीं बोला हो तो ऐसी सामायिक का भी क्या महत्व है ? नाम की ही सामायिक रही, आत्मा में तो समभाव पैदा हुआ नहीं तो यह द्रव्य सामायिक ही कही जायगी । जब तक भाव सामायिक पैदा न हो तब तक आत्मा का उत्थान संभव नही है ।

जड और चैतन को मानने वाले क्या कभी जड में फस सकते है ? असत्य और अन्याय का सहारा ले क्या वे जड-धन की प्राप्ति कर सकते हैं । जहां पाया ही कमजोर हो वहां मकान कैसे बनाया जा सकेगा ?

श्रद्धा न हो तो श्रावक कैसे बन सकते हो ? श्रावक बन जाने पर चोरी, छल, कपट और लोभ का क्या काम है ? लेकिन आज आप क्या कर रहे हो ? ग्राहक को राजी कर लेते हो, पर कही उससे अपनी आत्मा की नाराजी तो मोल नही ले रहे हो ! याद रखना अपने किये का फल तो भोगना ही पडेगा । तब क्या करोगे ? सोचो सोचो और अब भी समझो । समय बीत जायेगा तो हाथ मे कुछ नही आवेगा ।

घोडा और बैल गाडी खीचते है– ऊपर से चाबुक की मार भी सहते है । उनकी आत्माने ऐसा क्या किया जिससे यह भव उन्हे मिला ? रोटी के टुकडे के लिये कुत्ता घर घर दौडता फिरता है । मान के भिखारी तुम भी इसी गति मे चले जाओगे, इसे क्यों नहीं सोचते ? ऐसे हमने भी अनत भव कर लिये होंगे । अपमान और तिरस्कार सहन किये होंगे । फिर क्यो उसी योनि मे जाना चाह रहे हो ?

कपट करके, माया करके, या पोलिटिकल कहला कर आज तुम खुश हो लेते हो, पर याद रखना मर कर तिर्यंच गति मे ही जाना पडेगा । तब याद आवेगा कि मैं कैसा पोलिटिकल था ? यह कुत्ता मरा पडा है, यह चूहा मरा पडा है, कोई पूछने वाला भी नही मिलेगा ? तो क्या आपको ऐसे भवो मे जाना है ? तो फिर लोभ क्यो नही छोड देते ? क्यों चोपडे काले कर रहे हो ?

सरकार पर तो आपकी ऐसी छाप होनी चाहिये कि वह जैनियो के चोपडो को देखे भी नहीं और अक्षरशः सही मान ले । क्योंकि जो जैन है वह तो चोरी कर ही नहीं सकता है । है ऐसी छाप आपकी ?

जैन कहला कर झूठ तो बोला ही नहीं जा सकता । लेकिन आज तुम क्या कर रहे हो ? दूसरी योनियां भले ही आंखो के सामने न हो, पर तिर्यंच योनि तो सामने देखी जा सकती है । फिर तुम क्यों [illegible] क्यों नहीं हो रहे हो ?

माया से—लोभ से—झूठ वोलने से—ज्यादा—कम तोलने से और भेल सेल करने से जीव मर कर कहा जानेवाला है ? क्या इसका भी कभी विचार किया है ? क्या एक भी सच्चा व्यापारी ऐसा है जो ऐसा न करता हो ?

अनार्य कहे जाने वाले देशों मे भी आज नीति का घोरण कितना ऊचा है ? तुम्हारा उसके सामने कैसा है ? तुम तो अहिसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह के पुजारी हो, रोज रोज धर्म सुनते हो, तुम्हारा तो कैसा हाल होना चाहिये ? पर आज कैसा वन गया है ? पत्थर हो गये हो पत्थर—पिघलते ही नही ?

जेम पत्थर पाणी नहीं फरसे अेने टांके तो अग्नि बरसे
अेवा शठ ने ब्रह्मज्ञान केम चरसे !
अज्ञानी जीव संग कर्यो. . साचो पण रंग चड्यो नहीं ?

जैसे काला पत्थर वर्षो तक पानी मे पडा रहे, पर साफ नही होता है, न कठौरता ही छोडता है। उस पर टाकी मारो तो उससे अग्नि ही निकलती है। वर्षो तक पानी मे रहने पर भी आग ही निकलती है। ऐसे ही अज्ञानी जीव भी ज्ञानी का संग तो करता है, पर उस पर उनका रंग नही चढता है। आप भी रोज रोज व्याख्यान सुनते हो, पर रग कहा चढता है ? श्रावक का तो पहला ही गुण न्याय सम्पन्नता है। वह अनीति का व्यवहार कैसे कर सकता है ?

धन बढता है तो वकील—वेश्या और वैद्य हडपने को तैयार रहते हैं। अन्याय का धन एक तरफ से आता है तो दूसरी तरफ से चला जाता है। हजार रुपये का लाभ हुआ—दूसरी तरफ लडका गिर पडा, पैर टूट गया। डाक्टर के यहा गये तो हजार रुपया बीमारी मे पूरा हो गया। यो हराम का धन हराम मे ही चला जाता है। जाते उसे देर नही होती है। फिर क्यो नही समझ रहे हो ? न्याय-नीति और प्रामाणिकता का व्यवहार क्यो नही करते हो ? अरे, कर के देखो तो सही, अनुभव तो करो कि उसमे क्या मजा है ? पूणिया श्रावक के एक आने मे जो मजा था, वह आज तुम्हारे लाखो रुपयो मे भी कहा है ?

एक आदमी की पेढी फेल हो गई। रुपया मागने वाले लोग आने लगे। इज्जत खतरे मे पड़ गई। क्या करे ? इतने मे एक आदमी आता है और कहता है मैं अपना रुपया मागने नही आया हू—मै तो तुम्हे और देने आया हू। तुम्हारे पास जितना भी जेवर हो ले लो, मैं तुम्हे ८० हजार रुपया दे देता हू—तुम उससे अपनी इज्जत बचा लेना।

सेठ जेवर लेकर उसके साथ चल देता है। उसने अपनी तिजौरी मे वह माल रख लिया और बदले मे १० हजार रुपया दे दिया। जेवर तो १ लाख का था। सेठने कहा—तुमने तो ८० हजार रुपये देना का कहा था। उसने कहा—हां,

अभी इतने ले जाओ, बाकी कल ले जाना। सेठ अपने घर आ गया। माल तो सब दे चुका था। कोई सबूत उसके पास नही है। वह कल फिर उसके पास जाता है तो वह कहता है—कौनसा जेवर था तुम्हारे पास? होता तो लोगो का देना चुका नही देते? बधुओ? यहीं थापणमोसों है। किसी की थापण हजम कर जाना यही अतिचार है। जो था वह भी हजम कर गया। कहा फरियाद करे! कोई सबूत भी नही है। सेठ जैसे तैसे लोगो को चार आना चुकाता है और स्वयं नौकरी करने लगता है। जिसके यहां कभी सैंकडो आदमी काम करते थे वह आज नौकरी करने लगता है। जिसने जेवर हजम कर लिये थे उसके घर मे लडाई–झगडा होने लगा। बीमारी ऐसी लग गई कि एक लडके को छोड़कर सभी मर गये। तिजोरी मे जेवर पडा ही रह गया और रखने वाला चला गया। साथ कुछ भी न ले जा सका? एक दिन चोर आये और घर मे जो माल था वह भी चुरा ले गये। केवल वही एक गहनो का डिब्बा बचा रहा। लडका एक हार लेकर बाजार मे जाता है। सयोग से वह उसी दुकान पर पहुंचता है जहा वह सेठ नौकरी करता था। उसने हार देखा तो सोचा यह तो मेरा ही हार है। इसका बाप तो कहता था हमारे पास तुम्हारे जेवर है ही नही, यह कहा से आ गया? उस पर तो नाम भी कोतरा हुआ था। उसने पुलिस को फोन किया और सब माल पकडवा दिया। सेठ को अपना माल मिल गया और उसको जेल की सजा हो गई। लेकिन जो मर गया उसे तो अपना फल भोगना ही पडेगा। धन के लिये धर्म को लीलाम करने वाला जैन नही हो सकता। भगवान ने तो कहा है—मेरा श्रावक तो इनका त्यागी होता है।——

कन्नालिए — कन्या वर सबधी झूठ बोलना
गोवालिए — गाय–भैंस संबंधी ,,
भोमालिए — भूमि सबधी ,,
थापणमोसो — धरोहर दबाना
कूडसक्खिज्जे — झूठी साक्षी देना

मेरा श्रावक ऐसे पाप नही कर सकता।

हमारा धर्म सर्व श्रेष्ठ धर्म है। पर बोलने में ही उसकी श्रेष्ठता नहीं है। श्रेष्ठता तो आचरण मे उतारने मे है। केवल बोलने मात्र से क्या होता है? मोहनथाल खाओ नही वहा तक उसका मजा कैसे आ सकता है? जैन तो कहने से या बोलने से ही कुछ नही होता है। सामायिक और प्रतिक्रमण को तो अपने जीवन मे उतार लो तभी कुछ लाभ [illegible] हो सकता है।

एक राजा था—सुबुद्धि [illegible], न्याय;नीति [illegible]। उसका [illegible] था—

चाहे जितना नुकशान हो जाय तो हो जाने देना पर सत्य को नही छोडना। उसके राज्य मे कोई चोरी नही करता था, न कोई व्यभिचार करता था। किसी की नींदा या विकथा भी कोई नही करता था। सभी अपना अपना धधा प्रामाणिकता से करते थे।

परदेशो मे पेपर वेचने वाले अपने स्टाल पर पेपर रख देते है और वाजु मे एक पेटी होती है जिस पर लिखा होता है कृपया पैसे इसमे डाल दीजिये पेपर वाले पेपर लेकर उसका पैसा उस पेटी मे डाल देते है। स्टाल का मालिक शाम को आता है और अपने पेपर का पैसा लेकर चला जाता है। न पैसा कम होता है, न ज्यादा, वरावर मिलता है। आपके यहा कोई ऐसा करे तो अखवार तो ठीक, कोई पेटी ही गायव न कर दे इसका भी अदेशा वना ही रहेगा। देखते नही, उपाश्रय मे भी जूते और छाते चुरा जाते है। अभी नैतिक शिक्षण मे ही कभी है तो आध्यात्मिक शिक्षण तो वहुत दूर की वात है।

श्रावक तो वने हुए हो, पर श्रावक वन कर श्रावकाचार का पालन करना दूसरी वात है। तभी सच्चे श्रावक कहला सकते हो। कुछ श्रावक तो ऐसे भी है जो सहायता का रुपया भी हजम कर जाते है। जो श्रावक सहायता के रुपयो मे अपने जेव का रुपया भी डालता है वही सच्चा श्रावक कहा जा सकता है। लेकिन आज क्या हो रहा है? अनीति अन्याय वहुत वढ गया है। किसी भी तरह धन कमाने का सोचा जा रहा है। धर्म का तो विचार ही कहा रखते हो?

धार्मिक बनने के लिये धर्मस्थान तो दुनिया मे वहुत है। सभी धर्मस्थानको मे लोग धर्म करने जाते है, पर सच्चे धार्मिक कितने बनते है?

दुनिया तने तो धर्मी जाणे, काम तारा परमात्मा पिछाणे।
टीला टपका करवा थी, मनना मेल धोवाये खरा ?
मनडाने पूछो जरा, वास करे प्रभु मंदिर तारे,
अेना दर्शन कदि ते कर्या.....मनडाने....

दुनिया मुझे धर्मी मानती है, पर मै कैसा हू? यह तो मै या भगवान ही जानते है। मैं व्रह्मचारी हूं या अब्रह्मचारी? मायावी हू या दुराचारी! न्याय नीति सम्पन्न हू या अन्याय–अनीति वाला? यह तो स्वय ही जान सकते हो।

पहला गुण न्याय सम्पन्नता है; अगर उसकी छाप पैदा करोगे तो कोई तुम्हारे सामने आख भी ऊची नही कर सकेगा।

राजा का व्यवहार इतना शुद्ध है कि उस गांव मे कोई अशुद्ध व्यवहार ही नही करता।

एक दिन दूसरा राजा वहा आता है और उस गाव का सव हाल देखता

देखो। उसमे जो कमी है उसे दूर करो। व्यवहार शुद्ध करो, क्षेत्र शुद्धि करो, न्याय नीति और दया दान को हृदय मे पैदा करो। फिर देखो प्रगति कैसे नही होती है ?

सेठ के पास एक नौकर है। धीरे धीरे उसने सेठ से दस हजार रुपये उधार ले लिये, अब वे कैसे चुकाये ? पास मे कुछ भी नही है। वह सेठ के पास आकर रोने लगता है। सेठ को दया आती है और वह सब रुपया माफ कर देता है। नौकर खुशी २ घर जाता है। उसे घर जाते समय बीच मे अपना कर्जदार मिल जाता है जिससे वह १०० रु. माँगता है। वह उसका गला दबाकर कहता है रुपया दे, नही तो पुलिस को पकड़वा दूंगा। वह कहता है मेहरबानी कर मुझे थोडी मुद्दत और दे दों। मै कही से भी रुपया लाकर दे दूंगा। लेकिन वह नही मानता और उसे थाने मे बन्द करा देता है। अपना दस हजार रुपया माफ कराने मे उसे कितनी खुशी हुई होगी ? पर वह अपना सौ रुपया माफ न कर सका। ऐसा ही काम आपका भी है। अपना लाभ ही देखते हो, आत्मा का लाभ नही सोचते।

सेठ ने अपने नौकर से कहा—यह क्या किया तुमने ? मैने तेरा दस हजार रुपया माफ कर दिया, पर तुमने अपना सौ रुपया भी नही छोड़ा ? क्या तुमने यही मुझ से सीखा है ?

भगवान से तो आप रोज रोज कहते हो—मेरे अपराध क्षमा कर—क्षमा कर, पर आप अपने नौकर के अपराध क्षमा न करो तो यह कैसी बात है ?

सेठ के कहने से उसने सौ रुपये माफ कर दिये और उसे जेल से भी छुड़ा दिया। कहने का अर्थ यही है कि अपने को जो प्रिय है वह दूसरो को भी प्रिय है। इसे समझो और जीवन मे उतारने का भी प्रयत्न करो।

शिवमस्तु सर्व जगतः

सारे जग का कल्याण हो, मै किसी का अकल्याण नही चाहता। पराये दोष देखने की इच्छा न करना ही धार्मिकता है।

सुबुद्धि राजाके प्रति प्रजा का भाव कितना अच्छा रहता है ? राजा कहता है– मै भी तुम्हारे जैसा ही हूं। मै तो तुम्हारा व्यवस्थापक हू, तुम्हारे धन पर मुझे मौज करने का अधिकार नही है।

ज्ञानी कहते है—अढाई द्वीप जितना खाट हो, आकाश के समान ओढने का चादर हो, तब भी तृष्णा इतनी विशाल होती है कि उसका पैर भी नही ढंकता है। आनंदघनजी कहते है——

नहि जाऊं पियरिये, नहि जाऊं सासरियें
पियुजीको सेज बिछाई

आनंदघन कहे सुनो मेरे संतो
ज्योत में ज्योत समाई——अवधू......।

जिस दिन ज्योति में ज्योति मिल जायगी उसी दिन तृष्णा का अंत हो जायगा।

कनकरथ राजा लोभी है। उसकी तृष्णा इतनी अधिक विकराल है कि वह अपने राजकुमारों को भी अंग-भंग कर देता है, ताकि कोई भी भविष्य में मेरा राज्य न ले सके। मैं ही उसका मालिक बना रहूं। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १२-९-३८

[७४]

राजा कनकरथ अपने राज्य का भंडार बढ़ाने में ही तत्पर रहता है। लोभी को एक पैसा देना भी रुचिकर नहीं होता। वह तो लक्ष्मी का दास होता है। जो लक्ष्मीपति होते हैं वे तो अपने धन का सदुपयोग जनकल्याण के कार्य में ही करते हैं। लेकिन जो लक्ष्मी-दास होते हैं, वे अपनी चमड़ी जाने देते हैं पर दमड़ी नहीं जाने देते। पैसा साथ में जाने वाला तो नहीं है। फिर क्यों उसके लिये अनीति, अन्याय और विश्वासघात करते हो? पैसा मिलना या न मिलना यह तो पुण्य का काम है। पुण्य समाप्त हो जायगा तो आज के लखपती को कल का भिखारी बनने देर नहीं लगेगी। अतः कर्म के उदय को समझो, हेय को हेय और उपादेय को उपादेय समझ कर चलोगे तो आत्मा के अक्षय खजाने को प्राप्त कर सकोगे।

आत्मा में अनन्त सुख समाया हुआ है। क्षमा, सन्तोष, आर्जव, शान्तिभाव, उदारता आदि गुण तुम्हारे अपने हैं, उनको प्राप्त करो। लेकिन उनमें तुम्हें विश्वास नहीं होता और आज जड़ में आसक्त हो रहे हो? पैसों के पीछे आज धर्म को भी भूल रहे हो। अन्याय-अनीति द्वारा धनोपार्जन कर लोभ को ही बढ़ावा दे रहे हो। लोभ तो पाप का बाप है। उसके लिये सारे [illegible] पाप भी करने को तैयार हो जाते हो। यह सब क्यों कर रहे हो?

भगवान ने राजा श्रेणिक से कहा—तेरी दासी कपिला अगर दान देने लग जाय तो तेरा नरक टल सकता है।

श्रेणिकने कपिला को वुलाया और कहा—देख, ये टोपले भरे पडे है—तू लोगो को दान करती रहना। कोई भी यहा से खाली हाथ नही जाने पावे इसका ध्यान रखता।

लेकिन कपिला ऐसा नही कर सकती थी। दान देने के लिये उसका हाथ उठता ही नही था।

एक वहिन ऐसी थी जो रोज रोज गरीवो के घर जाकर दान दिया करती थी। कुछ दिनो वाद उसने यह वंद कर दिया। दूसरी औरत ने उससे पूछा—आज कल तुमने दान देना वंद क्यों कर दिया है? उसने कहा—अव मै दान देना ठीक नही समझती। क्योकि मै जिसे गरीव समझ कर देती थी। उनके लडको को तो मैने एक दिन पेडा खाते हुए देखा था। अत: मैने दान देना वद कर दिया है। इसमे तुम्हारा क्या विगड गया? क्या गरीव के लडके पेडा नही खा सकते है? उनके माता—पिता क्या अपने लडको को मिठाई नही खिला सकते है? तुम्हे ही खाने का हक है, उसे नही? क्या तुम यही चाहते हो कि तुम्हारा नौकर आराम से नही रहे!

जैसे हम अपनी सुविधा का खयाल करते है वैसे ही सामने वाले का भी खयाल करना चाहिये। हमारा नौकर किस तरह अपना गुजारा करता है? यह भी कोई सोचता है? दूसरो को कर्ज देने वाले पहले अपने घर के लोगो को तो देखें—वे कैसे रहते है, क्या खाते और पीते है? कहा रहते है?

एक दिन एक ग्रेज्युएट लडका वनिताविश्राम मे आया और संचालिका से वोला—मुझे तो सारी जिन्दगी सेवा में व्यतीत करनी है। मै पढा—लिखा डवल ग्रेज्युएट हूं।

संचालिकाने पूछा—तुम्हारे घर मे कौन कौन है? उसने कहा—मा और औरत है।

उनका क्या होगा? तुम सेवा करने लग जाओगे तो उनका गुजारा कैसे चलेगा! तुम सेवा करने लग जाओगे तो वे क्या हवा खावेगे?

पहले अपने घर की सेवा करो, फिर आगे वढो। अपनी मा और औरत की सेवा करो। यही सेवा तुम्हारे लिये वहुत है।

ज्ञानी कहते है, तुम दूसरो की सेवा करने जाते हो, दया करते हो, पर पहले अपना घर तो देखो, वहां तो कोई वीमार नही है? घर मे तो कोई अनाज के विना भूखों नही मर रहा है?

पहले के श्रावक कैसे होते थे?

मेढिभूत, चक्षुभूत, प्रमाणभूत, अवलंवनभूत–दरवाजा जिनका हर समय खुला रहता था। किसी को कोर्ट का दरवाजा नही खटखटाना पडता था। दूध दही की नदियां वहती थी। आनंद के पास ४० हजार गायें थी। चूलणीपिता के पास ८० हजार। आज तुम्हारे पास कितनी है?

पहले के श्रावक अपना धन चार हिस्सो में वांट देते थे। १२ करौड सोनैया है तो ४ करोड वे धरती मे रख देते थे। कभी भी व्यापार मे नुकशान लग जाता तो वे उससे अपनी इज्जत वचा सकते थे। आज तो एक हजार रुपया पास मे है तो व्यापार ५ हजार का कर लेते हो। अधिक लोभ वश ही ऐसा किया जाता है। परन्तु कभी नुकशान लग जाता है तो कैसी हालत हो जाती है? तुम खुद तो मरते ही हो पर दूसरो की दुराशीष भी मोल ले लेते हो।

लक्ष्मीचद सेठ के चार लडके हैं। व्यापार मे नुकशान लग गया। नीयत विगाड ली। जो कुछ रहा दवा कर बैठ गये। देने वाले का कुछ भी नही दिया। सव माल–असवाव औरत के नाम पर कर दिया। लेने वाले क्या ले? कई विधवाओ के रुपये भी हजम कर गये। देने का नाम नही।

कोई आदमी दिवाला निकाल देता है तो फिर उसकी इज्जत नही रहती है। एकवार इज्जत गई कि फिर वह नही आती है। लालजी महाराज उसके मित्र थे। एक दिन वे आये और वोले–लक्ष्मीचद सेठ, तुमने यह क्या कर दिया? तुम्हारे नामकी तो वोमावोम हो रही है वाजार मे। कम से कम लोगो का चार आनी भी चुका तो देना था! तुमने कुछ भी नही दिया!

सेठ ने कहा–मेरे पास क्या है? जो मै देता। लड़के कैसे है! यह तो तुम जानते ही हो।

लालजी ने कहा–अव भी कुछ करो—गरीवो की हाय मत लो।

तुलसी हाय गरीव की कवहु न खाली जाय।
मुए ढोर के चामसे लोहभस्म हो जाय।

छाछ और रोटी खाना अच्छा है, पर किसी से उधार लेकर दाल–भात खाना अच्छा नही। याद रखना कर्जा लेकर चुकाया नही तो मर कर पाडे वनोगे। नाक मे रस्सी डाली जायगी और ऊपर से चाबुक भी खाना पडेगा।

लालजी ने कहा—लक्ष्मीचद सेठ, तुम गरीबो के दुख को भी समझो और थोडा बहुत भी उनको दे दो।

लक्ष्मीचंद सेठ कहता है—लालजी, मुझे तुम्हारी ऐसी बाते अच्छी नही लगती है। अब से तुम ऐसी बाते मुझे नही कहना।

बंधुओ! दया तो अच्छी होती है, पर दर्द भी उसी के दिखता है। जो

प्रिय न लगे वही औषधि है। सर्प का जहर चढ जाय तो नीम के पत्ते भी मीठे लगते हैं। वह नीम के पत्ते खाना पसंद करेगा, पर घी पीना नही चाहेगा। क्योकि घी पीने से तो जहर उतर जाता है। ऐसी कडवी बात कौन कह सकता है? धर्म गुरु ही ऐसी बात कह सकते है। श्रेणिक जैसे राजा को भी अनाथी मुनि कह देते है कि राजन्, ! तू स्वयं अनाथ है? मेरा तू क्या नाथ बनेगा? ऐसा दूसरा कौन कह सकता है?

परदेशी राजा को केशिश्रमण कहते है–तू मूर्ख है–महामूढ है–तुझे धर्म का बोध नही है। जो समर्थ पुरुष होता है वही ऐसा कह सकता है।

कुछ दिनो बाद लक्ष्मीचंद सेठ बीमार हो गये। पेट मे असह्य पीडा होने लगी। लालजी महाराज आते है और पूछते है–कैसी तबियत है?

सेठ कहता है–असह्य पीडा हो रही है। कई दवाये ले चुका पर आराम कुछ भी नही हुआ। क्या करू? तुम्ही कुछ बताओ।

लालजी बोले—एक बात करो—नित्यानंद स्वामी अभी यहा आये हुए हैं। बडे योगी महात्मा है। रोगो को तो मिनिटो मे मिटा देते है। जत्र–मत्र और औषधि जहा जो जरुरत होती है वे देकर बीमारी दूर कर देते है।

सेठ ने कहा–आप मोटर ले जाइये और उन्हे ले आइये। लालजी स्वामी के पास जाते है और सारी बात कह सुनाते है। इस आदमी की आदत सुधारने का यह मौका आया है। उसके पास १।। लाख रुपया है। फिर भी देने वालो का एक लाख रुपया देता नही है। कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे उसका भी भला हो जाय और देने वालो का कर्ज भी चूकता हो जाय।

हसता ऊपर रडे छे, रडता ऊपर हसे छे।
रडनार तेने कोई आखर नहि रहे छे।
जेवी करे छे करणी, तेवी तरत फले छे।
बदलो भला बुरानो अहिंनो अहि मले छे।

कोई आदमी ठीक तरह से अपना गुजारा करता है–उसे देखकर जो ईर्षा करता है। कोई दुखी है तो उसे देख कर जो हंसता है–खुश होता है–ठीक हुआ। ऐसा कहता है–याद रखना उसको कोई रोने वाला भी नही मिलेगा। अत किसी से ईर्षा मत करो और न किसी को दुख पहुंचाओ।

लक्ष्मीचद सेठ पीडा के मारे कराह रहा है। लालजी नित्यानंद स्वामी को लेकर आते हैं। स्वामी ने सेठ की जांच की और कहा–दर्द तो बहुत हो रहा है–पर यह दर्द ऐसा है जो औषध से ही नही मिट सकता है। स्वामीजीने पूछा–तुम्हारे लडके कितने है?

चार। कोई लडका ऐसा भी है जो तुम्हारे लिये अपने प्राण भी दे सके? स्वामीजी ने सिगडी पास मे मगाई और कहा मै अपना मत्र पढ़ता रहूगा। जो लडका अपने हाथ का सैक तुम्हे लगावेगा, उससे तुम्हारा दर्द मिट सकेगा।

यह सुनकर सेठ तो चुप हो गया। स्वामी ने कहा—लडके तुम्हारे है न? इतना भी वे तुम्हारे लिये नही कर सकेगे? बुलाओ लडको को। सबसे पहले बडे लडके पुरुपोत्तम को बुलाया गया। स्वामीजीने कहा—तुम्हारा अपने पिता पर प्रेम है न? पुरुपोत्तम ने अपना सिर हिला कर कहा—जी हा। यह सिगडी जल रही है—उस पर अपना हाथ गरम करो। जब तक मै अपना मत्र पूरा न करु, तब तक तुम अपना हाथ हटाना नही। जब मै बोलना बद करूं तुम अपने हाथ का सैक अपने पिता को करना, उससे उनका दर्द शीघ्र कम हो जायगा।

पुरुषोत्तम बोला—स्वामीजी, कोई दूसरा उपाय हो तो बताइये, यह तो मुझ से नही होगा।

दूसरे लडके को बुलाया गया। उसने कहा—जब मेरा बडा भाई यह नही कर सका तो मै कैसे कर सकता हूं? क्या मुझे अपनी जान प्यारी नही है? तीसरा भी मना कर गया। अब चौथा लडका चन्द्रकात आता है। स्वामीजी उसने भी वही बात कहते है। लेकिन वह भी इसके लिये तैयार नही होता।

स्वामीजी कहते है। सेठ, तुम्हारे लडको को देख लिया है न! वे तुम्हारे धन का भाग लेने को तो तैयार है पर तुम्हारी वेदना दूर करने मे भाग लेना नही चाहते है। अब तो तुम अपनी औरत को बुलाओ। अगर वह भी तैयार हो जायगी तो तुम्हारी वेदना दूर हो सकेगी।

औरत आती है। सिगडी पर हाथ गरम करने की बात सुनते ही वह तो घर मे चली जाती है। स्वामीजी ने कहा—कोई भी तुम्हारे दर्द को दूर करने मे मददगार होना नही चाहता। जिन्दगी भर जिनके लिये तुमने धन कमाया—अन्याय और अनीति का घोर पाप करके सैकडो बार तुम उनके खातिर आग मे जलने को तैयार हो गये। जब तुम मरकर नरक मे जाओगे तो [illegible] आग मे तुम्हे सैकडो बार जलना पडेगा। गरम गरम तेल के कडाहे मे उबलना पडेगा। इनके लिये तो तुम तैयार हो गये थे, पर जिनके लिये तुमने सब किया है वे तुम्हारे लिये एक बार भी सिगडी पर हाथ रखने को तैयार नही है। फिर तुम उनके लिये क्यू पाप क्यो कर रहे हो?

तक नरक में रोना पडेगा—वहां कोई तुम्हारी आवाज सुनने वाला भी नही मिलेगा।

सेठ ने कहा—मेरी पीडा मिट जायगी तो मैं लोगो का देना चुका दूगा।

स्वामीजीने उसे एक पुडिया दी तो उसका दर्द दूर हो गया। सेठने सबका देना चुका दिया। लालजी को आज संतोप हुआ। तुम भी किसी के मित्र वनो तो ऐसे मित्र वनो। किसी की गति मत विगाडो। विगडते को सुधारना तुम्हारा काम है। जो लोभी होता है वह किसी की नही सुनता। वह तो अपनी ही करता है। पर भगवानने कहा है।

तेणावि जं कयं कम्मं सुहं वा जइ वा दुखं
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छइ उपरंभवं।

जीव जैसा कर्म करता है वही साथ मे लेकर परभव मे जाता है। वस्तु सभी यही पड़ी रह जाती है।

कनकरथ राजा अपने लडकों का अंग काट देता है—विकलांग कर देता है ताकि कोई राज्य का अधिकारी न वन सके। उसकी रानी पद्मावती इससे चिन्तित रहती है। वह क्या करती है? उसका अधिकार यथावसर आगे कहा जायगा।

ता. १३-९-६८

[७९]

कनकरथ राजा पांच इन्द्रियों के विपय भोगों मे आसक्त वना हुआ है। उसे अपने राज्य का इतना अधिक मोह है कि वह उसके लिये अंधा वना हुआ है। मोह दो तरह का है—दर्शन मोह और चारित्र मोह। व्यवहार मे जो समकित को रोकता है उसे दर्शन मोह कहते है। निश्चय मे तो ऐसे परिणाम आत्मा मे है ही, पर उन्हे दर्शन मोहनीय रोक रखता है।

दर्शन मोहनीये दर्शन तारूं आवर्यु जो
चारित्र मोहनीये चुकाव्यो सदाचार
ओ गमार मुकी दे संगत महामोहनी रे
तने खरु कहेता लागे घणुं खार ओ गमार...

जीव ने मोह ही मोह मे अनंत काल व्यतीत कर दिया है। और आज भी वह उससे हटने का नाम नही लेता है। दर्शन मोहनीय सुख की भ्रांति कराता है। जहा सुख नही है वहां वह सुखाभास कराता है। मृग जल की तरह उसके पीछे पीछे दौडता है। सुख की यह भ्रांति ही दर्शन मोह है। इससे वह

जीव को अजीव
अजीव को जीव
साधु को असाधु
असाधु को साधु समझने लग जाता है।

सयं सयं पसंसन्ता गरहन्ता परं वयं।

अपना ही सच्चा दूसरे का सब झूठा समझने लगता है। लेकिन ज्ञानी कहते है—स्व संवेदन होना ही समकित है। परदेशी जैसे दुष्ट राजा और अर्जुन—माली जैसा महापापी, जो रोज ७ जीवो का घात करता था—वह भी ६ मास मे मुक्त हो गया तो हमारा नंबर अभी तक क्यों नही लगा? इसका भी कभी विचार करते हो?

कदाग्रही जीवन में कभी अपना विचार नही करता। दूसरो की नीदा ही वह करता रहता है।

राग भी ३ तरह के कहे गये है—दृष्टिराग, स्नेह राग और कामराग। स्नेह राग और कामराग छूटना सरल है पर दृष्टिराग छूटना महान कठिन है। अठा-रह पापो मे से १७ पाप तो जीव ने कई बार छोड दिये है। पर १८ वा पाप मिथ्यादर्शनशल्य एक बार भी नही छोडा। अत:वे १७ ही पाप फिर से लौट आते है। क्योंकि पापो का मूल १८ वा पाप तो सजीव रहता है। वह नही उखाड कर फेका जाता तब तक शेष पाप तो फूल और पत्ते की तरह है—उनको तोडने से क्या लाभ हो सकेगा?

इच्छा निरोधोहि तपोः

अपनी इच्छाओं का निरोध करना ही तप है। तपश्चर्या करो तो अपनी रसनेन्द्रिय पर काबू तो होना ही चाहिये।

गायों की भैंसे किसी सफेद कपडे पहने हुए आदमी को देखती है तो भड-कने लगती है। वैसे ही तुम भी हमारे पास आने से भडकते हो। कहीं कोई नियम नहीं दे दे! साधुओं के पास आने मे तुम्हे अच्छा नहीं लगता क्योंकि बंधन लगता है, पर शादी करके जो बंधन तुम अपने गले मे डाल लेते हो—वह तुम्हें बंधन नहीं लगता, यह कैसा आश्चर्य है? मिथ्यात्व से घिरे हुए हो अतः जो बंधन है—वह बंधन सा नहीं लगता—विपरीत दिखाई देता है।

परमानंद संपन्न निर्विकार निरामयं।
ध्यान हीना न पश्यंति निज देहे व्यवस्थितं।

विकार है ही नही। वह तो विकार रहित है, जिसके गुणो का नाश कभी नही होता। लीली पीपल को चाहे जितना घोटो उसका तीखापन कभी मिटता नही है—वैसे ही आत्मा भी चाहे जिस अवस्था मे पहुच जाय उसकी ज्ञान–ज्योति कभी उससे विलग नही होती है।

उसका ज्ञान आगम से किया जा सकता है।

आगम प्याला पीओ मतवाला चिन्ही अध्यातम वासा
आनंदघन चैतन वही खेले देखे लोग तमाशा....
आशा औरन की क्या कीजे ?

हे मतवालो। तुम आगम का प्याला पीओगे तो मस्त हो जाओगे। आप्त पुरुषो द्वारा बनाये हुए ग्रथ आगम कहे जाते है। जो निर्दोष–राग–द्वेष रहित वीतरागी होते है, वे ही आप्त पुरुप कहे जाते है।

निर्दोष नरनुं कथन मानो तेह जेहणे अनुभव्युं

छद्मस्थ का कथन विपरीत भी हो सकता है, पर आप्त पुरुषो की वाणी असत्य नही हो सकती। वह तो तीनो काल मे अवाधित होती है। उसे ही सिद्धान्त कहा जाता है। अत: आगमो का दोहन करो। एक पाना भी पढोगे तो आत्मा का वंद ताला भी खुल जायगा।

आचाराग मे कहा है—जब तीर्थकर सर्व प्रथम अपनी देशना देते है तो वह कहते है ?

के अहं, आसी ! के वा इओ चूओ, इह पेच्चा भविस्सामि।

मै कौन हूं ?

अपनी प्रशसा सुनकर खुश होने वाला मै हू या अपनी वुराई सुन कर नाराज होने वाला मै हू ! मै कौन हू ? यह समझो।

कनकरथ राजा समझता है–राज्य रहेगा तव तक मै भी रहने वाला हू। हर एक जीव यही मानता है कि मै अमर हू। मरनेवाला नही हू। अगर उसे यह मालूम हो जाय कि मै मरने वाला हू तो क्या वह पाप कर सकता है ? राजा कनकरथ संसार मे इतना मूच्छित हो जाता है कि उसे उसके सिवाय और कुछ भी दिखाई नही पडता है।

वस्तु एक ही है, पर उसमें मूर्च्छा रखना और न रखना दोनो मे वडा अंतर है। दुकान मे मुनीम हो और सेठ भी हो, पर दोनो मे अतर कितना होता है? मुनीम सोचता है ग्राहक कम आवे तो आराम करने को मिलेगा। पर क्या सेठ भी ऐसा ही सोचेगा ? इसी तरह ससार मे रहते हुए भी कुछ लोग ऐसे होते है जो उसमे डूवते नही है– कमल की तरह ऊपर ही रहते है। कुछ ऐसे भी

होते है जो उसी मे डूवे रहते है। कनकरथ राजा ऐसा ही था। वह संसार में इतना डूव जाता है कि अपने लडको के भी अग काट देता है। उसकी रानी पद्मावती सोचती है इसका कोई उपाय तो करना ही चाहिये। वह मौका देखकर तैतली प्रधान को वुलाती है और दोनो गुप्त मत्रणा करते है। राज्य का मालिक तो कोई होना ही चाहिये। राजा को भी एक दिन तो जाना ही होगा। पद्मावती रानी गर्भवती है। उसको वालक पैदा हो तो क्या करना? राजाकी नजरो से उसे कैसे वचाना! प्रधान और रानी दोनो गुप्त मत्रणा करते है। पुत्र होने पर उसे कहां ले जाना होगा? क्या मैं अपने घर ले जाऊ? पोटिला को तो पूछा नही है। आखिर पालन-पोषण तो वही करेगी। लेकिन प्रधान को विश्वास है कि पोटिला जैसा भी मै कहूगा वैसा वह कर लेगी। जव पुण्य का उदय होता है तभी ऐसी सुयोग्य नारी मिलती है।

इसीलिये पहले के लोग सगाई करते समय खानदान देखा करते थे। जो खानदानी स्त्री होती है वह कभी झगडा भी कर ले तो लडती नही है। रोष कर सकती है-पर रुष्ट नही होती, माग सकती है पर त्याग नही सकती। याद रखो अगर तुम अपनी लडकी को सुयोग्य वनाओगे तो वह तुम्हारा भी नाम रोशन करेगी।

चदन वाला को धारिणी ने ऐसे ही सुसस्कार दिये थे। जगल मे धारिणी ने शील रक्षा के लिये अपनी आहुति दे दी-पर शील न जाने दिया-चदन वाला खडी खडी यह सब देख रही थी। उसने भी अपनी मा से यही पाठ सीखा था। इसीलिये आज हम प्रात. उठ कर उस सती शिरोमणि का नाम वडे प्रेम से लेते है। लेकिन आज आप क्या कर रहे हो? छोटे छोटे वालको को लेकर सीनेमा और होटलो मे चले जाते हो। फिर उन कोमल वालको मे सयम कहा से पैदा होगा? वालको मे जो सस्कार वचपन मे पड जाते है वे फिर आजीवन नही जाते है। अत: सस्कार सुदर डालो। दूसरा भले ही मत दो-पर सस्कार देने मे कजूसी मत करो।

एक घोडे का व्यापारी दो घोडे लेकर राजा के पास आया और वोला-महाराज! ये दो घोडे है-इनमे एक मा है और एक लडकी है। कौन मा है और कौन लडकी? इसका आप पता लगवा दीजिये। राजाने अपने प्रधान को वुलाया

सकेगा? दोनो घोडे समान है। चिन्ता ही चिन्ता में वह खाना पीना भी भूल जाता है।

प्रधान की पुत्रवधु विशाखा बडी धर्मपरायण स्त्री थी। रग रग में उसके धर्म समाया हुआ था। तुम्हारे मन में क्या समाया हुआ है? धर्म या धन? अलबेली बम्बई मे आकर भी हृदय मे प्रकाश पैदा किया है या अधकार ही रहने दिया है? क्या कर रहे हो? कुछ तो विचार करो।

विशाखा ने देखा श्वसुरजी खाने को भी नही आये है। क्या बात है? आज वे चिन्तातुर क्यों है? इस जीव ने सब के लिये तो चिन्ता की पर अपने लिये नही की। कहिये यह भी कोई बुद्धिमानी है? एक औरत ऐसी है जो सब का काम करती है–पर अपने छह मास के बालक की सभाल नही लेती तो कहिये उसे आप क्या कहेगे? मूर्ख ही कहेगे न? आप भी वैसा ही तो नही कर रहे हो। सब की चिन्ता करते रहते हो, पर अपनी आत्मा की चिन्ता कहा करते हो? बहिने यह तो ध्यान रखती है कि घर मे तेल का डिब्बा पूरा होने वाला है, अतः दूसरा मगाना है, पर वह यह नही देखती कि मेरे दिल में क्या कम होता जा रहा है?

बनिया तो सब में चतुर कहा गया है–जैसे पक्षियों मे कौवा होता है। तुम भी बुद्धिमान लडके हो न! तो फिर सावधान क्यो नही होते हो?

विशाखा पूछती है–पिताजी, आज आप उदास क्यो है?

प्रधान ने कहा–बेटी, तू इसे नही समझेगी। ज्ञान तो आत्मा का गुण है। बुद्धि किसी एक की नही होती। उसका सबध छोटे–बडे से नही है। ५० वर्ष के आदमी से भी १५ वर्ष का लडका ज्यादा बुद्धिमान हो सकता है। जिसका आत्मा ज्ञानी होता है वही बडा कहा जाता है। विशाखा कहती है। कहिये तो सही, आखिर बात क्या है?

प्रधान ने सारी बात कह सुनाई। जिसे सुनकर विशाखाने कहा–इसमे क्या है? यह तो मै यही बता सकती हू।

प्रधान ने अपना मुह ऊपर किया और पूछा–कैसे? बताओ तो?

विशाखाने कहा–दो बर्तनों मे खाना रख दीजिये। जो मा होगी वह धीरे धीरे खावेगी और जो लड़की होगी वह झटपट खा जायगी। तब वह मा के बर्तन मे अपना मुह डालेगी। मा अपना मुह ऊपर कर लेगी। समझ लीजिये वही मा है। मा के वात्सल्य की यही परीक्षा है। प्रधान ने मन ही मन अपने पुत्रवधु की तारीफ की। हल बराबर था। तीसरे दिन राजाने सभा भरी। बिना बुलाये ही लोग इकठ्ठे हो गये। प्रधान ने दो बर्तन मगाये और उनमे समान खाने का पदार्थ

रख कर दोनो घोडो के सामने रखवा दिया। जो लडकी थी वह जल्दी जल्दी खाने लगती है और अपना हिस्सा खा लेने पर अपनी मां के बर्तन मे मुंह डालती है। मा अपना मुह ऊपर कर लेती है। प्रधान ने कहा—यह मा है और जो खा रही है, वह इसकी लडकी है।

राजाने सौदागर की तरफ देखा तो वह बोला—राजन्! प्रधान जी की परीक्षा सही है—पर यह खोज इनकी नही हो सकती, यह तो किसी मा के हृदय की ही खोज है। माता का वात्सल्य ही यह जान सकता है।

खेयन्ने से कुसले महेसी अणन्त नाणीय अणंत दंसी।

भगवान का वात्सल्य भी ऐसा ही है। उन्होने तो अनंत करुणा कर जगत जीवो के लिये आगम की पुनीत गगा बहाई है। उसका पान करो। ज्ञान कही बाहर नही है, वह तो अपने हृदय मे ही है। हृदय मे डुबकी लगावो तो रतन अवश्य मिल जायगा।

आगम तो ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं। ऐसे आगमो का जो पारायण कर अपने जीवन मे उतारता है वही उत्थान कर सकता है।

सौदागरने कहा—यह हल किसी माता का है—सन्नारी का है।

प्रधान ने कहा—यह सच है। मेरी पुत्र वधु ने ही यह हल खोजा है।

राजा विशाखा को बुलाता है और उसका भी सन्मान करता है।

विशाखा अपने धर्म पर दृढ थी। वह तो सच्चे देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रंथ और केवलीप्ररूपित धर्म को ही सच्चा मानती थी। दूसरे देवी देवताओ की मान्यता वह नही करती थी। लेकिन आप आज क्या कर रहे हो? कोई महालक्ष्मी जाता है तो कोई अबाजी जाता है। बोलते तो रोज यही हो कि २५ प्रकार के मिथ्यात्व मे से किसी का सेवन किया हो, कराया हो या करते का अनुमोदन किया हो तो केवली भगवान की साक्षी से तस्समिच्छामि दुक्कड, पर करते क्या हो? जलाराम बाबा का मादलिया बच्चो के गले मे बाधते हो, अबाजी की मान्यता भी करते हो। कभी हम भी वहा चले जाय तो आप क्या कहोगे? हम से पूछने लग जाओगे कि आप वहा क्यो गये? और हम पूछते है तो तुम कुछ नही कहते हो, यह कैसी बात है?

भगवान ने तो चार तीर्थ कहे है—जिनमे तुम भी हो और हम भी है। हमी तुम्हारी नाव मे बैठनेवाले है—अन्तर केवल चारित्र मे है। विचार और श्रद्धा तो समान है, उसमे कोई अन्तर नही है। फिर क्यो तुम अपनी श्रद्धा [illegible] करो? जैसे कोई साधु अबाजी के यहा नही जा सकता वैसे ही कोई श्रावक भी [illegible] नही जा सकता है? [illegible] है? [illegible] नही तो [illegible] होगी?

प्रधान ने मौका देखकर विशाखा से पूछा—बेटी, जब तुम विवाह कर मेरे घर आई थी, तब तेरी माता ने जो ये चार शिक्षाऐं दी थी उनका अर्थ तूने क्या समझा है? क्या यह भी बता सकती हो? तेरी मा ने कहा था—

(१) चाद और सूरज की पूजा करना।

(२) अग्नि की पूजा करना।

(३) घर का बाहर निकालना नही।

(४) दही को वापस लेना नही। लेकर वापस देना नही।

विशाखाने उत्तर दिया— मेरी मा ने मुझे जो शिक्षा दी है वह सौ शिक्षक भी नही दे सकते। उसने मुझे कहा था—

(१) चांद की तरह सासुजी को समझना और सूरज की तरह श्वसुर को। इन दोनो की तू पूजा करना। कभी सामने मत बोलना।

(२) पति को अग्निदेव समझ कर पूजा करना। हृदय मे उसी को स्थान देना, दूसरे को नही।

(३) घर की बात बाहर नही करना। कोई भी बात हो किसी से नही कहना। यह बहुत बडी बात है। घर मे सास बहू या पति-पत्नी का झगडा हो जाता है तो दोनो बाहर जाकर एक दूसरे की बुराई करने लग जाते है, यह ठीक नही है। इससे घर की बुराई ही नजर आती है।

(४) जो दे दिया—दान दे चुके वह फिर लेने की इच्छा नही करना। किसीने दिया—किसीने गाली दी तो बदले मे उसे गाली नही देता।

दीधी गाली एक है, पलटे होय अनेक
जो गाली देवे नही, रहे एककी एक।

कोई गाली दे या तिरस्कार करे, तुम उसका सामना मत करना, शाति रखना, धैर्य रखना। क्योकि मेरे प्रभुने तो कहा है—

मित्ति मे सव्व भूएसु

प्रधानने कहा सचमुच तुम तो मेरे घर में एक रत्न हो। मेरा सद्‌भाग्य है कि तुम जैसी कुलवधु मुझे मिली। पुण्य का उदय होता है तभी ऐसी सन्नारी प्राप्त होती है।

पोटिला भी ऐसी ही बुद्धिमान और सुलक्षणा नारी थी। सौजन्यता और सहानुभूति की मूर्ति थी। तैतली घर आकर पोटिला से क्या कहता है? इसका अधिकार यथावसर कहा जायगा।

ता. १४-९-६८

[७६]

कनकरथ राजा राज्य मे मूर्च्छित है– आसक्त है– पुद्गलानदी है । परभव का उसे डर नही है । आचाराग मे भगवान ने कहा है– अमरायई महासड्ढी

कई जीव यह मानते है कि हम मरने वाले नही है– कई यह मानते है कि हम मर कर भी पुरुप ही वनेगे–

हतुं मारुं आ पूर्वे अने आनो हतो गतकाल मां ।
ने आ थशे मारूं अने आनो हुं थईश भविष्यमां
अयथार्थ आत्म विकल्प आवो जीव संमूढ आचरे
भूतार्थ ने जाणेल ज्ञानी अे विकल्प नहि करे ।

पूर्व मे जैसा था भविष्य मे भी वैसा ही वनूगा और मै भी उसका ही हूं । यों वह पर से सवध करता है । पर ज्ञानी कहते है वह ठीक नही करता है । उसका ऐसा समझना अयथार्थ है । ऐसा कोई नियम नही है कि त्रस जीव मर कर स्थावर नही वनता । स्थावर भी त्रस हो सकता है । नारकी भी मनुष्य वन सकता है और देव भी मानव बन सकता है । तुम मर कर मानव ही वनने वाले हो, ऐसा मत सोचना । कौन जानता है कि भविष्य मे तुम क्या वनोगे ? छह खड के अधिपति चक्रवर्ती भी, जिनके पास ८४ लाख हाथी ८४ लाख घोडे, ८४ लाख रथ और ९६ करोड पैदल और सिपाही थे, ४८ करोड सोना मुहरे और चादी की खाने थी, वे भी मर कर मनुष्य न वन सके और नरक मे चले गये तो तुम्हारी क्या वात है ? भोग मे आसक्त रहने वालो की ऐसी ही गति होती है–

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता

भोगो को भोगते २ जीव स्वयं उनका भोग हो जाता है । अत ज्ञानी कहते है इस भव को यो ही मत घुमा वैठो । जो मानव वनता है वही भगवान भी वन सकता है । १४ गुणस्थान तक मानव ही पहुच सकता है । ज्ञान–दर्शन और चारित्र की साधना मनुष्य भव मे ही हो सकती है । पुरुषार्थ करना चाहिये । पुरुषार्थ करोगे तो मोक्ष अवश्य मिल सकेगा । मोक्ष कही वाहर नही है वह तो आत्मा मे ही है—

पाषाणेषु यथाहेम दुग्धमध्ये यथा घृतं ।
तिल मध्ये यथा तैलं देह मध्ये तथा शीव ।
काष्ठ मध्ये यथा वन्हि शक्ति रूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स: पंडित: ।

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेनः
देहं विहाय परमात्म दशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु भेदा :

सोने को पाने के लिये जैसे मिट्टी को तीव्र आग में डालनी पडती है वैसे ही भगवान को प्राप्त करना है तो ध्यानरूपी अग्नि की जरुरत होती है। उससे सभी कर्म जल कर नष्ट हो जाते हैं। हृदय निर्विकार—शुद्ध वन जाता है। तव तुम भगवान का स्मरण करोगे तो वह प्रगट हुए विना नही रहेगे। उसके लिये पालीताणा या शिखरजी जाने की जरुरत नही है। मन का मंथन करोगे तो घर बैठे ही वे हृदय मे प्रकट हो जायगे।

पैसा मिलना तो प्रारव्ध आधीन है। मिल भी सकता है और नही भी। पर मोक्ष तो पुरुपार्थ पर टिका हुआ है। गरीव हो या अमीर, साधु हो या श्रावक, पुरुषार्थ करोगे तो कमाई भी अवश्य करोगे। सच्चा पुरुषार्थी ही इस संसार सागर से तिर सकता है। अन्यथा चौरासी के चक्कर मे ही घूमते रहोगे।

समुद्र मे स्टीमर या जहाज चलते हैं तो एक आध महीने वाद तो कही न कहीं किनारा दिखता ही है। पर भव समुद्र का किनारा अभी तक दिखाई नही पडा। कितना समय निकल गया, फिर भी अभी तक तुम उसी मे पडे हुए हो, अरुचि पैदा नही होती। इसका कारण यही है कि अभी तक जीव ने आत्म तत्व का स्वाद ही नही चक्खा है। जिसने आत्म तत्व का स्वाद ले लिया हो उसे फिर पुद्‌गल मे रस कैसे आ सकता है?

जो पुद्‌गलानदी है, वे पैसो मे नाचने लगते है, पर मे लुब्ध हो जाते है। वे मर कर ऐसी गति मे जाते है जहा उन्हे जीभ नही मिलती है। पाप का फल तो भोगना ही पडेगा। अतः ज्ञानी कहते है, धर्म मे प्रवृत्ति करो। पर का करते करते तो वहुत समय निकाल दिया। मेरा वाप—मेरा लडका—मेरी मा। मेरी पत्नी—मेरी मोटर, मेरा वगला—जिसे तू अपना कह रहा है वे तेरे नही है। तेरा कोई साथ देने वाला नही है। न तू किसी का साथ दे सकेगा।—

मन ने मान्या हता के आ बधा मारा
मानी ले जीवडा न मारा के तारा
स्वार्थ विना प्रीत कोई करतुं नथी रे
कोई कोई नुं नथी रे।
आ मारो दीकरो ने आ मारो वाप छे
आ मारी घरवाली ने आ मारी मात छे

मुवानी साथ कोई जतु नथी रे. . . कोई. .
नाहक मरीअे छी बधा मथी मथी रे. . कोई—

ये मेरे है— मेरे सुख और दुख मे भाग लेने वाले ये सब मेरे है। मन से मैने यह मान लिया है। पर ज्ञानी कहते है—

एगोऽ हं नत्थि मे कोइ नाहमन्नस्स कस्सई।
एवं अदीण मणसा अप्पाण मणुसासई।

मै अकेला हूं। मेरा कोई नही है — मै भी किसी का नही है। गरीबी निकाल और श्रीमन्ताई प्रकट कर। वह होगा तो मेरा चलेगा ऐसा मत सोच। तेरा पुण्य तेरे साथ है— उस पर विश्वास रख। मेरा कौन है?

याचक बनी ने मांगवानुं मन तुं भूली जा।
संतोष ना झूले तुं अरे प्रेमे झूली जा—मन—
मन मस्त बनीने प्रभुना गुणला तु गाने
ममता तणा बादल थकी मुंजाय छे शाने!. . .मन...

मेरे मन! तू मस्त बन जा, प्रभु के भजन मे तल्लीन होजा—ओत प्रोत हो जा। दूसरे सब विचारो को छोड कर तू उसमे ही तदाकार हो जा। यही भक्ति सच्ची भक्ति है। क्या आपकी भक्ति भी ऐसी ही है? हाथ मे तो माला फेर रहे हो— पर मन मे लडकी का विचार कर रहे हो— लडकी बडी हो गई है, मेरे रहते वह अच्छे ठिकाने चली जाय तो ठीक। तुम्हारी ममता कहा छूटती है? क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हारे मरे बाद लोग जीन्दे नही रहेगे?

'दायारमन्नं अणुसंक मन्ति'

स्वार्थ की ही सगाई है। जो पैसा कमाता है उसीका कहना करते हो— मा का स्वार्थ लडके से है तो मा भी उसे खिलाती है। लडका बडा होगा-वह आवेगी तो सेवा करेगी। उसी लोभ मे वह लडके को पालती है। आगे चल कर फिर सेवा करे या मण-मण के बोल सुनावे-यह तो आगे की बात है, पर हृदय मे तो वही स्वार्थ बना रहता है।

७ वर्ष का लडका छोड कर पिता मर जाता है। जब काल आता है तो क्या कोई उसे रोक सकता है? आयुष्य पूरा हुआ कि चल देना पडता है। एक सैकण्ड की भी देर नही हो सकती। मा का हृदय बडा भावुक होता है। वह दूसरो का [illegible] कर [illegible] अपने लडके का पालन करती है। [illegible]

यह आशा लगाये हुए है कि लडका बडा होगा तो शादी करके बहू घर मे लायेगा– वह मेरी सेवा करेगी, बच्चें होंगे तो मुझे दादी कहेगे । आखिर मा ही तो ठहरी। ममता कैसे छोड सकती है ?

बैल को भी लोग घी पिलाते हैं । इस आशा से कि वह हृष्ट-पुष्ट बनेगा तो खेती ज्यादा कर सकेगा । पर जब वह दुबला हो जाता है तो उसे पाजरापोल मे रख दिया जाता है । तुम्हारे घर मे भी वृद्ध पुरुषो की कही ऐसी हालत तो नही हो रही है ?

लडका मैट्रिक पास हो गया । अब वह नौकरी करना चाहता है, पर मा उसे नौकरी नही करने देती । वह कहती है मैं तो तुझे बड़ा आदमी बनाना चाहती हू । तु अभी और पढ़ । पढ़ लिख कर डाक्टर बन जायगा तो मेरी इच्छा भी पूरी हो जायगी ।

लडका आगे पढ़ता है–पढते पढते वह डाक्टर बन जाता है । यशोकर्मी होने से वह नाम भी अच्छा कमाता है । जो भी केस हाथ मे लेता है, वह अच्छा हो जाता है। विवाह के लिये भी कई संबध आने लगे । रमेश और रमा दोनो विवाह सबध से बंध गये । रमा को मा जी अच्छी नही लगती । लडका भी रमा के कहने से मा के प्रति उदासीन रहने लगा । महीने मे एकाध बार मा की खबर कर लेता । दोनो पति पत्नी अपनी इच्छानुसार काम करने लगे । दो लडके भी हो गये । पर रमा उनको भी मा जी के पास नही जाने देती । मा जी सोचती थी– बहू आवेगी– मेरी सेवा करेगी–लडके होगे तो मै खिलाऊगी–पर कोई इच्छा माजी की पूरी नही हुई । मनुष्य सोचता तो बहुत कुछ है, तरह तरह की आशाओ की दीवाल खडी करता हे– पर क्या वह कभी पूरी भी कर पाता है ? तो फिर तुम यह क्या कर रहे हो ? धर्माचरण क्यो नही करते हो ?

डोसी माँ घर मे बैठी रहती है। उसका घर मे आना जाना भी बन्द कर दिया । लडको को भी छू नही सकती, क्योकि उसको छूनेसे तो लडको के जगली हो जाने का भय है । लडका कहता है तुझे जो चाहिये वह माँग लिया कर, कही हाथ मत लगाया कर । घर मे आया रखी है जो सब काम कर लेती है ।

पर माँ का हृदय है, चाहे जैसा तुम उसे कहो वह बुरा नही मानती । वह अपने लडके को देखे बिना कैसे रह सकती है ? रमेश को देखें नही तब तक माँ को चैन नहीं होता था । पर लड़के को इसका विचार कहाँ आता है ? आज के सस्कार और कालेज मे मिलेन वाली शिक्षा ऐसी ही है । साथ मे ऐसी ही औरत मिल जाय तो फिर क्या कहना ? रमेश कहता है तू तो अपने कमरे मे ही बैठी रह, बाहर मत निकल, मै वही आजाऊँगा ।

अब हम अमर भये न मरेगें।
या कारण मिथ्यात्व दियो तज
क्यों कर देह धरेंगे !

मैं तो अजर अमर और अविनाशी हूँ। सिद्धों के समान मैं भी हूँ। मुझे डर कैसा ? कौन मुझे मार सकता है ?

जितने आकाश मे तारे है उतने मुझ पर वाण क्यो नही छोड दो पर वे मेरा वाल भी वाँका नही कर सकते। आग मुझे जला नही सकती। एटम और हाईड्रोजन वम भी मुझे मार नही सकते, तो फिर डरता क्यो है ?

निशंक्कीय निकंक्खिय निवित्तिगिच्छा अमूढ दिट्ठीय।
उववूह थिरीकरणे वच्छल्ल पभावणे अट्ठ॥

ये आठ गुण समकित के हैं। जिस मे पहला गुण—निशंक्किय है। इन पर तुम्हें सच्ची श्रद्धा है या नही ? अगर है तो फिर डरते क्यो हो ? सुदेव, सुगुरु और सुवर्म को दृढता से पालो यही समकित है।

भय के सात स्थान वताये गये है—इह लोक भय, परलोकभय, आजीविकाभय, अपयशभय, अकस्मात भय, वेदनाभय—इनमे से एक भी भय समकिती को नही होता है। जो निर्भयी होता है वही भक्ति कर सकता है। जो साहसी होता है वही सिद्ध पदवी पा सकता है।

साहसी ने दुनिया गांडो गणे छे।
सिद्धि मले तो तेनी माला जपे छे॥
सिद्ध पद लेवा तुं थई जा तैयार।
ज्ञानी सुकानी तारी होडी हंकार
होडी हंकार तारी होडी हंकार. . . ज्ञानी सुकानी. .

साहसी पुरुष को दुनिया पागल कहती है। गाधी जी ने जव आजादी की लड़ाई शुरु की थी तब अकेले ही थे, धीरे धीरे सत्रह आदमी हुए। दुनिया कहती थी गाँधी पागल हो गया है वह क्या कर लेगा ? पर वे साहसी थे। सत्य मार्ग पर चलने वाले थे। आखिर वे देश को आजाद कराके ही रहे। ऐसे ही कोई लडका साधु वनने की वात कहे तो तुम उसे क्या कहते हो ! कमाकर नही खा सकते जो तुम साधु बनने को जा रहे हो ? पर ज्ञानी कहते है तू दुनिया की मत सुन। उसकी तरफ मत देख, तू तो अपने राह पर वढ़ जा। जव वही आगे जाकर महान पुरुष वनता है तव तो उसके नाम की माला फेरने लगते हो। भगवान की माला भी इसीलिये फेरते

हो न ? मोक्ष के लिये तो भोग देना ही पड़ेगा। निर्भयता विना भक्ति नही की जा सकती है।

भय क्या है ? आनन्दघनजी कहते है:—

भय चंचलता हो जे परिणामनी रे।
द्वेष अरोचक भाव ॥
खेद प्रवृत्ति हो करता थाकीये रे
दोष अबोध लखाव. . . . . संभवदेव. . .

आत्मा मे चंचलता पैदा होना भय है। एक जैसी भक्ति कहाँ रहती है ? पानी मे कंकड़ डालो तो कुण्डाला हो जाता है। सारे तालाब मे वह फैल जाता है। वैसे ही विचारों का कुण्डाला भी मन मे चलता ही रहता है। ऐसी चंचलता ही आत्मा का भय है, उस भय को दूर करो।

पानी मे कंकर डालो तो उसमे उथल-पुथल होती है, लेकिन वर्फ पर डालो तो कुछ नही होता है। क्योंकि वहां पानी जम गया होता है। वैसे ही आत्मा भी जब स्थिर बन जाती है तब वह भी संकल्प–विकल्पो से रहित हो जाती है। परिणामों की चचलता मिटी कि भय मिट जाता है।

द्वेष क्या है ? गालिया मारना ही द्वेष नही है ? आनंदघन जी कहते है– भगवान का कथन रुचिकर न लगना ही द्वेष है। भगवान ने जो मार्ग हमे बताया है, उस पर न चलना, उसमे रुचि पैदा न करना द्वेष है।

हमे सिद्धान्त सुनना अच्छा नही लगता, दूसरा कुछ सुनाओ, ऐसा कहना ही द्वेष भाव है।

मुझे बाधा मत देना, बाधा लेने मे आज खेद अनुभव करते हो। पर याद रखना बाधा तो तीर्थंकरो को भी लेनी पडती है। तो तुम किस बाग की मूली हो ? बाधा तो लेनी ही होगी। लिये बिना उद्धार होने का नही है। फिर भी कुछ लोग यह कहते हैं– मै बाधा (नियम) मे नही मानता हूं। ऐसा कह कर तो वह सारे नमस्कार मन [illegible] [illegible] देता है। धर्म का द्वेषी हो जाता है। पुद्गलानंदी को आत्मा का कथन अच्छा नही लगता है।

हत्था गया इमे कामा कालिया जे अणागया
को जाणइ परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो।

का पालन क्यों नही करते हो ? एक रात का भी ब्रह्मचर्य पालो तो १८० उपवास का लाभ होता है । जो करने का है वह क्यो नही करते ? समय तो अविराम गति से चलता जा रहा है, फिर कब करोगे ? क्या मरे बाद धर्मका पालन करोगे ?

भगवान ने तो चार तीर्थ कहे हैं । श्रद्धा सबकी एक समान है । चारित्र पालन में अंतर है । कोई महाव्रत पालता है तो कोई अणुव्रत । केवल बाते करने वालो का तो यहां प्रवेश ही निषिद्ध है । No Admission उनको अंदर आने की आज्ञा ही नही है । तुम सम्पूर्ण त्याग न कर सको तो आंशिक ही सही– पर सर्वथा शून्य क्यों रहते हो ? सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सको तो एक पत्नीव्रत का पालन करो, सर्वथा अपरिग्रही न बन सको तो उसका परिमाण तो कर सकते हो । वर्षों तक सुनते ही रहोगे, पर जीवन में उन्हे नही उतारोगे तो अत्मा का उत्थान कैसे हो सकेगा ? अतः ज्ञानी पर या ज्ञानी के सिद्धान्तो पर खेद नही करना चाहिये । बने जितना उनका पालन करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

जिस माता ने असह्य कष्ट सहन कर लडके को पढ़ाया–लिखाया और डाक्टर बनाया उसे तो अब उसके दर्शन भी नहीं होते । सप्ताह मे एक बार भी वह मां के पास नहीं आता ।

बहू पीयर चली गई । लडके-लडकी को आया संभालती है । नौकर घर का सब काम करते हैं । मा जी अपने कमरे में बैठी बैठी माला फेरती रहती है ।

एक दिन डोक्टर को मील मालिक और मजदूरो का झगडा दूर करने के लिये मध्यस्थ बनना पड़ा । माता सोचती है मेरे लडके का अहित न हो जाय । वह माला लेकर भगवान से प्रार्थना करने बैठ जाती है– रात के ३ बज जाते है । माता सोती नही है । डाक्टर घर का दरवाजा खटखटाता है । मा उठ कर किवाड खोलती है। डाक्टर कहता है– मां तू अभी तक सोई नही है ? रात के तीन बज गये है । इसका भी पता नही चलता ?

मां ने कहा– पता तो है बेटा, पर तू न आये वहां तक हृदय मे चैन कैसे होता ? तरह तरह की आशंकाऐ मन मे होती रहती थी । मजदूरो का झगड़ा है । लोग कह रहे थे जो भी समझाने गया, वापस नही आया । यह सुन कर तो हृदय कांप उठता था । परन्तु मुझे विश्वास था कि मेरा लडका अवश्य आवेगा । धर्म के प्रताप से उसका बाल भी बांका न होगा । तूं ही बता, ऐसी हालत मे मुझे नीद कैसे आती ?

यह सुन कर डोक्टर की तो आंख खुल गई । लम्बे समय बाद उसे आज पुनः मातृस्नेह का अनुभव हुआ । मेरी मा ने मेरे लिये क्या नहीं किया ? मुझे पढाया, लिखाया और इस काबिल बनाया । पर मैं आज अपने लडको को भी उसके पास जाने से मना

कर रहा हूं ? मैं भी तो उसीका लड़का हूं ? मैं अगर जंगली नही बना तो मेरे लड़के कैसे जगली बन जायंगे ?

डोक्टर सोचता है– धिक्कार है मेरी डाक्टरी विद्या को और मेरी श्रीमन्ताई को ? आज जो कुछ भी मैं हू, इसके प्रताप से ही तो हूं। आज की शिक्षा और सभ्यता के नशे मे, पत्नी के साथ मैं भी अपना भान घुमा बैठा हूं। माता के पवित्र स्नेह से वंचित बना रहा, यह कैसी नीचता मैंने की है ?

डोक्टर पलंग पर जाकर सोता है, पर उसे आज नीद नही आती है। वह मा के पास जाता है और अपने किये की माफी मागता है। मा मुझे माफ कर दे, मैं अब कभी ऐसी भूल नही करुगा। बाह्य सभ्यता ने मेरी आखे बंद कर दी थी। मैं अपना धर्म भी भूल बैठा था। आज मुझे मालूम हुआ कि माता का प्रेम कैसा होता है ? वह मा की गोद मे सिर रख कर बालक की तरह रोने लगता है। माता की ममता भी जाग उठी। वह भी उसे सीने से लगा कर कहती है– बेटा, इसमे तेरा कोई दोष नही है, मेरे ही कर्म ऐसे थे। कहते २ उसका भी हृदय भर आता है। दोनो रोकर अपना बोझ हल्का कर लेते हैं। सुबह हुआ, डोक्टर अपने घर की सारी व्यवस्था माजी को सौंप देता है। वह अपने लडको से कहता है बेटा, यह तुम्हारी दादी मा है, रोज उठ कर इनके पैर छूना। नौकरो को वह हिदायत करता है कि सबसे पहले मा जी का काम करना, फिर घर के दूसरे काम करना।

बहू अपने घर से आती है तो घर का हाल सब उल्टा देखती है। दादी मा बालकों को खिला रही थी। उसे देख कर उसने डोक्टर से पूछा—इस जंगली को बाहर क्यों आने दिया है?

डोक्टर कहता है—तुझे यहां बंद करने के लिये माजी को बाहर निकाला है ? या तो तू उनकी सेवा कर या चुपचाप उस कमरे मे जाकर बैठ जा। जिस मा ने मुझे जन्म दिया, उसे तू जंगली कह रही है ! मैं नहीं होता तो तू कहां से आती ?

बहू भी समझ गई कि डाक्टर अब मेरे कहने मे रहनेवाला नहीं है। पढ़ी लिखी तो थी ही। उसने भी माजी से क्षमा मांगी और सब आनन्द से रहने लगे।

[७७]

तैंतली प्रधान का अधिकार चल रहा है। जिसका हृदय समुद्र की तरह गंभीर है। समुद्र में अनेक नदिया मिलती है, मल – मूत्र भी उसमे फेकते है, पर वह सब को अपने मे समा लेता है, छलकाता नहीं, अपनी मर्यादा नही छोडता, वैसा ही तैंतली भी गंभीर है। पद्मावती रानी उससे कहती है– राजा तो लोभी है, उसे और कुछ दिखाई नही देता है। जितने भी वालक पैदा होते है, सवको वह अग–हीन कर देता है। भविष्य मे ऐसा न हो इसका उपाय करना चाहिये। मेरे पेट मे जो वालक है उसका अगर तुम पालन कर सको तो वह वच सकता है। तुम यह समझ सकते हो, प्रधान हो, योग्य उत्तराधिकारी होगा तो तुम्हारा पद भी चालू रहेगा। अतः किसीको पता नही होना चाहिये।

हर एक आदमी वात को छुपा कर नही रख सकता। एक दूसरे को कहने से वात फैल जाती है। लेकिन तैंतली प्रधान गंभीर था। पद्मावती उससे कहती है– मुझे ऐसा लगता है कि मेरे गर्भ में एक होनहार पुत्र पैदा होनेवाला है। तुम उसका पालन पोषण कर वडा करना और किसी को इसका पता न होने देना।

तैंतली ने कहा– रानी जी, आप चिन्ता मत कीजिये, मेरी पत्नी भी गर्भवती है, उसका वालक मै तुम्हें भेज दूगा और आपके वालक का पालन–पोषण मै करूंगा। मै आपके लडके को अपना ही समझ कर पालूगा।

एक भंगिन रोज सेठ के घर झाडू देने जाती थी। आज उसने सेठानी को उदास वैठे हुए देखा तो पूछा, सेठानी जी! आज उदास क्यो दिखाई दे रही हो?

जीव को दो तरह के दुख होते हैं–शारीरिक और मानसिक। चौवीस दंडक मे शारीरिक दुख तो होता ही है। पर जिनको मन होता है मानसिक दुख उन्ही को होता है। शरीर का दुख तो मल्हमपट्टी से मिटाया जा सकता है, पर मानसिक दुख आसानी से दूर नही किया जा सकता।

सेठानी कहती है–विरुपा, मै तुझे क्या वताऊं? मुझे रुपये पैसो की कमी नही है, कमी है तो केवल एक लडके की ही है। लडके भी न हुए हो ऐसी वात नहीं है। छह लडके हुए। पर एक भी जीवित नही रहा। डाक्टर कहते हैं– मेरा गर्भ जीवित नही रह सकता। सातवां होने वाला है, पर वह भी जीवित न रहा तो क्या होगा? सेठ ने तो कह दिया है कि अगर यह लडका जीवित न रहा तो वे दूसरी शादी कर लेगें। घर में सौत आ जायगी तो मेरी क्या कीमत रहेगी? घर मे सौत आई नही कि घर नरक वन जायगा–द्वेष की अग्नि फैल जायगी। ठाणांग सूत्र के ९ वे ठाणेमें कहा है—

राजपूत को क्रोध
गणिका को माया
ब्राह्मण को लोभ
सौत को द्वेष
चोर की मां को चिन्ता
कायर को भय
क्षत्रिय को मान
मित्र को राग
और जुआरी को पश्चाताप होता है।

कौन स्त्री ऐसी होगी जो अपने घर मे सौत को बुलाना चाहेगी?

सेठानी कहती है—अब मैं क्या करु? कुछ भी सूझता नही है।

विरुपा भगिन कहती है—मैं एक बात कहूं। तुम्हारी सौत का दुख टालने के लिये मेरे पास एक उपाय है–मैं भी गर्भवती हूं। मेरा लडका तुम ले लेना और तुम्हारा मुझे दे देना।

सेठानी ने कहा–विरुपा! यह तू क्या कहती है? तेरा पहला लडका और वह भी तू मुझे दे देगी!

इसमे क्या है सेठानी मा! मेरे लडके का अहोभाग्य होगा, कि वह तुम्हारे यहा पलेगा?

इस तरह सौदा तय हो जाता है। सन्देह का कोई कारण नहीं। सज्जन पुरुप जो कह देते हैं वह तो पत्थर की लकीर बन जाती है।

दल फरे बादल फरे फरे उदधिका पूर।
उत्तम बोल्या ना फिरे कदी पश्चिम उगे सूर।

विरुपा भगी के कुल मे उत्पन्न हुई थी, पर उसके संस्कार कितने अच्छे थे?

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसई जाइ विसेस कोई
सोवागपुत्तं हरिएससाहूं। जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा।

जाति की विशेषता नही है, विशेषता तो संयम की है। जो प्रत्यक्ष ही दिखाई देती है। जाति से कोई ऊंच–नीच नही होता–ऊंच नीच तो संस्कारो से ही होता है। भंगी के घर मे पैदा होकर भी जो नीति का पालन करता है, वह ऊंचा है। और राज घराने मे पैदा होकर भी जो नीच काम करता है तो वह ऊंचा नही नीच ही माना जाता है।

दर्शन दर्शन करी भटकियो, सिर पटक्यू सौ बार
पण दर्शन दर्शन बिना, थयो नहीं भव-पार।

सम्यग्दर्शन हो जाय तो फिर किसी का दर्शन बाकी नही रहता।

बूटो कहे बूंद फाटी सवली चाली सेर
भटकवुं तो मटी गयुं अने वस्तु जडी घेर

भटकने से भगवान नही मिलता है। शत्रुंजय जाओ या गिरनार, काशी-मथुरा या हरिद्वार उससे पाप नही मिटता है। पाप तो घर में आने से ही मिटता है। अतः आत्मा का दर्शन कर

जे एग जाणई से सव्वं जाणई।

आत्मा को जान ले तो सब कुछ जान लेते हो। यही ज्ञान सच्चा ज्ञान है। आत्म-ज्ञान ही सर्च-लाईट है। आत्मा मे तो ऐसा प्रकाश है कि उसके एक प्रदेश का भी मुकाबला अनंत सूर्य और चन्द्र नही कर सकते। उस अलौकिक प्रकाश को पैदा करो। वही ज्ञान सच्चा ज्ञान है।

मति, श्रुति अवधि और मनपर्यय ज्ञान तो क्षयोपशमिक ज्ञान है। केवल ज्ञान ही अविनाशी ज्ञान है। गौतमस्वामी चार ज्ञान के स्वामी थे। वे भगवान से पूछते है-

भगवन ! मेरा ज्ञान कितना है?

भगवान कहते है-स्वयंभूरमण समुद्र अर्ध राजू प्रमाण लम्बा चौडा है। एक चिडिया वहां आकर अपनी चोंच से जितना पानी पीवे उतना ज्ञान भी तेरे में नहीं है।

हलको नहीं भारे ओ चेतन केवलज्ञान तणो दरियो।
बुद्धिसागर पामता ए भवसागर थी ते तरियो।
अलखनिरंजन आतम ज्योति संतो तेहनुं ध्यान धरो
आरे काया घट आतम हीरो,
भूली कां भव मांही फिरो।

आत्मा तो अनंत ज्ञान का समुद्र है। इन्द्रिय जनित ज्ञान तो परावलंबी है। कान होने पर भी सुनाई कम देता है या बिल्कुल भी सुनाई नही पडता। आंखे होने पर भी दिखाई नही देता है। इस तरह इन्द्रिय जनित ज्ञान तो क्षयोपशम जनित ज्ञान है- जो घटता-बढ़ता भी रहता है। तेरी आत्मा का ज्ञान तो अक्षयज्ञान है। वह कभी जाने वाला नही है।

सेठानी को विचार आता है—विरसा भंगी है, फिर भी उसमें ज्ञान कितना है? कैसी संस्कारी औरत है? मेरे लिये वह अपना लड़का देने को भी तैयार हो गई। धन्य है विरसा को!

नौ मास पूरे हुए। विरसाको सुंदर लड़का पैदा हुआ। दो घंटे बाद सेठानी को भी लड़की पैदा हुई। दासी लड़की लेकर विरसा के पास जाती है। विरसा का हृदय भर आता है। कौन माँ अपना लड़का देना चाहती है? वचन दे रखा है—यह सोच कर विरसा अपने लड़के को दे देती है। और बदले में सेठानी की लड़की ले लेती है। लड़की दूसरे दिन मर जाती है। लड़का सेठ के यहाँ बड़ा होता है। १२ दिन बाद उसका नाम करण संस्कार किया जाता है। सारे गाँव की औरतें इकट्ठी होती हैं। सेठानी विरसा को बुलाती है और कहती है—तू इस लड़के को अपनी गोद में ले और जो तुझे ठीक लगे वही नाम रख। जिसके लड़के जीवित नहीं रहते वे मेहतरानी के हाथ में ही अपना लड़का दे देते हैं और वापिस ले लेते हैं। सेठानी ने भी ऐसा ही किया। यह कोई नहीं जान सका कि लड़का तो विरसा का ही है।

विरसा ने उसका नाम—तेतर से आये कुल में आया इसलिये—तेतलीकुमार रखा। झाड़ू लगाने वह रोज आती ही थी। इस बहाने वह लड़के को देख भी लिया करती थी। कभी हृदय का पुत्र-प्रेम उछाले मारता तो वह आते सीने से भी उसे लगा लेती। लेकिन बात किसी दूसरे को ज्ञात न हो सकी कि यह विरसा का ही लड़का है। दिन बीते—मास—बीते—साल पर साल व्यतीत हो गये। लड़का २० वर्ष का हो गया। विरसा को फिर कोई बालक नहीं हुआ। न सेठानी को ही हुआ।

विरुपा का पति कहता है—यह तू क्या कह रही है? अभयकुमार जैसा उसका मित्र है? जैनधर्म का जो पालन करता है? क्या वह तेरा लडका है? कहीं पागल तो नही हो गई है?

विरुपा ने कहा—मै सच कह रही हूं, वह मेरा ही लडका है। तुम देखते नही, उसका नाक और मुंह तुम्हारे जैसा ही तो है!

विरुपा, तेने पहले मुझे यह क्यों नही बताया? मै अभी उसे लेकर घर आता हूं! वह लडका तो मेरा है। मेरा लडका मेतार्य—!

मातग पागल की भाति घरसे निकल पडता है। उधर सामने से मेतार्य की सवारी निकल रही है—बैंड—वाजे वज रहे है। मातंग उससे लिपट जाता है और कहता है—तू तो मेरा लडका है। अव मै तुझे नही छोड सकता। चल मेरे घर चल।

मेतार्य को भी यह पता हो गया था कि मै विरुपा का ही लडका हूं। वात सारे गांव में फैल गई। मैतार्य सेठ का लडका नही मेहतर का लडका है। जो ८ कन्याये उससे विवाह कर रही थी वे भी पलट गई। हम मेहतर के लडके से विवाह कैसे कर सकती है? यह सुन कर तो सेठानी और विरुपा मूर्च्छित हो जाती है और दोनो मर जाते है।

अभयकुमार को मालूम होता है तो वह आता है और सवको समझाता है। मेतार्यकुमार नगर सेठ का लडका है। मै उसके साथ श्रेणिक राजा की लडकी का विवाह कर रहा हूं। तुम सव क्या चाहती हो? अभयकुमार के समझाने से आठो कन्यांये भी मेतार्य से शादी करने को तैयार हो जाती है। मातंग भी समझ जाता है। कहने का आशय इतना ही है कि कोई गुप्त बात मुह से निकल जाती है तो कितना तूफान खड़ा कर देती है?

पद्मावती रानी भी तैतली से यही कहती है। देखना कही वात प्रकट न हो जाय! इसका ध्यान रखना।

यथा समय पद्मावती स्वरूपवान बालक को जन्म देती है। तैतली उसको लेकर अपने घर जाता है और पोटिल को सौप देता है। पोटिला को जो मरी हुई लडकी पैदा होती है, वह उसे महलो मे पहुंचा देता है।

राजा पूछता है—क्या हुआ? उसे तो इसीकी चिन्ता रहती है। दासी ने जब यह कहा कि मरी हुई लडकी पैदा हुई है तव वह शांत हुआ। मरी हुई को क्या मारना? राजा उसका दाह संस्कार कर निश्चित वन जाता है।

तैतली के यहां पुत्र जन्मोत्सव मनाया जाता है। राजकुमार पैदा होता है वैसा उसका महोत्सव मनाया गया। तैतली लोगो को दान देता है—नौकरो को इनाम वांटता है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १६–९–६८

[७८]

पद्मावती रानी तैतली को अपना लड़का सौंपते हुए कहती है—बात कहीं फैल न जाय, इसका ध्यान रखना। बात फूट जायगी तो सारा खेल बिगड जायगा। तैतली गंभीर था। वह हिताहित का ज्ञाता था। वह पोटिला को लडका देते हुए कहता है;—तू इसका बराबर पालन पोषण करना। किसी को इस बात का पता न चल जाय कि यह लडका तेरा नही है।

आचार्य भगवत भी ऐसे ही गंभीर होते है। जब वे किसी को प्रायश्चित्त देते हैं तो लेने वाले और देने वाले (आचार्य) के सिवाय् तीसरा उसे जान नही पाता है। ऐसे गीतार्थ—बहुसूत्री साधु ही प्रायश्चित्त दे सकते हैं। शास्त्र मे कहा है—

बहुस्सुयं बब्भागमं कप्पइ से तस्सन्तिए, आलोइत्तए,
पडिक्कमितए, निन्दितए, गरहितू तए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए,
अकरणयाए, अब्भुटिठत्तए, अहारिहं पायाच्छित्तं पडिवज्जि तए

हे साधक! तू उनके पास जाकर अपने अपराधो की स्वीकृति कर। निंदा कर। गर्हा कर। फिर कभी नही करने की प्रतिज्ञा कर। ऐसा समर्थ आचार्य ही प्रायश्चित्त देने का अधिकारी होता है।

उस सम्प्रदाय मे ऐसे समर्थ आचार्य न हो तो दूसरी सम्प्रदाय के आचार्य से प्रायश्चित्त लेना चाहिये। वे भी न हो तो उपाध्याय से ले। वे भी न हो तो साधु से। साधु भी न हो तो श्रद्धाशील पार्श्वस्थमुनि से प्रायश्चित्त ले। वे भी न मिले तो शास्त्रज्ञ श्रावक के पास जाकर प्रायश्चित्त ग्रहण करे। भगवान कहते हैं—अगर ऐसा श्रावक भी न मिले तो एकान्त स्थान मे जाकर जोर जोर से बोल कर अपने पाप का स्वीकार कर उससे निवृत्त बने। पाप को हृदय मे नहीं रखते हैं। अन्यथा साधक को उसका फल भोगना ही पड़ेगा।

एकज भवे कर्म बांधे जीवडो ते भव अनन्तानन्त भोग।
जेणी रीते बांधे तेणी रीते भोगवे, सूत्र विपाकनी साख।

है— वहां आसपास २५ योजन तक अतिवृष्टि या अनावृष्टि नहीं होती, दुष्काल नहीं पडता, प्लेग या रोग नहीं फैलते। ऐसा उसका प्रभाव होता है। वहां भी गौशालक ने भगवान के दो साधुओं को अपनी तेजोलेश्या से मार दिया—जला कर राख कर दिया, इतना ही नही उसने भगवान पर भी उसका प्रयोग कर दिया।—

गोशालाए करी घेलछा, तेजुलेश्या छोडी,
संहारक ने क्षमा करी ने दीधी, सिखामण थोडी।
ओ करुणाना करनारा, तारा जीवन रहस्यो न्यारा'
ओ समता ना घरनारा " "

गौशाला भ. महावीर का ही शिष्य था, फिर भी वह उनकी आशातना करता है—बुरा—भला कहता है। समवसरण में भी उनके दो साधुओं को जला दिया। यह भी एक आश्चर्य (अछेरा) ही माना गया है।

भगवान तो वीतरागी थे। उनको तो मानापमान जैसा कुछ नही था—

न वीयरागस्स करेन्ति किंचि

राग और द्वेष की गांठ बांधनी सरल है, पर उससे मुक्त होना कठिन है। पापो का प्रायच्छित्त किये विना छुटकारा नही होता है।

कागज लिखने में एक घंटा लगता है, पर उसे फाडने मे एक मिनिट भी नही लगता। चित्र वनाने मे महीनो के महीनों निकल जाते है— मकान बनाने मे भी कितने महीने लगते है— साल भी लग जाते है। परन्तु तोडने मे कितना समय लगता है? इसी तरह आत्मा का पतन तो सरल है, पर उसका विकास करने मे सख्त परिश्रम की आवश्यकता रहती है—सतत—पुरुषार्थ करना पडता है। केवल बोलने से ही काम नही चलता। अतःज्ञानी कहते है। राग—और द्वेष की ग्रंथि—भेद करने के लिये सतत पुरुषार्थ करो—प्रमाद में समय मत घुमा बैठो।

गौशालकने भगवान पर ऐसी तेजोलेश्या फेंकी थी कि उसकी शक्ति १६ देशो को जला देने वाली थी। ऐसी विकराल तेजोलेश्या उसने भगवान पर छोडी थी। पर भगवान की क्षमा कितनी अपूर्व? उन्होने कहा—हे गौशाला! अब भी तू संभल जा, सातवें दिन तेरी मौत होने वाली हैं। मै तो १६॥ वर्ष तक इसी तरह विचरने वाला हूं। भगवान पर जो तेजोलेश्या फेकी थी वह लौट कर गौशाला के हृदय मे ही सभा गई। फलस्वरूप वह ७ दिन तक उसीसे जलता रहा। जो दूसरों का अहित सोचता है वह स्वयं उसका फल भोगने लगता है—

खाडो खोदे तेज पडे छे रडावनारो पोते रडे छे

और भी कहा है—

अभिमान नाना मोटानुं पलमां हणाय जाय
खरेखर अे कुदरत नो न्याय।
परनुं वुरु करता पेला पोतानुं थई जाय,
खरेखर अे कुदरतनो न्याय।

ज्ञानी कहते है जो दूसरो के लिये खड्डा खोदता है, एक दिन वही उसमे पड़ जाता है। गोशाला भगवान को दुख देने गया, पर वह स्वय दुख मे पड़ गया। भगवान को तो मोहनीय कर्म था ही नही—अतः दुख कहा से हो? भगवती मे गौतम स्वामी पूछते है—क्या केवली नीद लेते है? भगवान कहते है—नही, केवली को दर्शनावरणीय कर्म नही होता अतः वे सोते नही है। उनके लिये अंधकार नही होता। अनत प्रकाश के वे स्वामी होते है। उनके सामने आज तुम दीपक जलाते हो, धूप देते हो—यह क्या मूर्खता कर रहे हो? यह अध श्रद्धा ही है। वह वहरे थोडे ही है, जो तुम घटा वजाते हो? क्या वे सो रहे है जो तुम उन्हे घटा वजा कर जगा रहे हो? अन्नकूट रखते हो—क्या वे भूखे है? तुम्हारे अन्न की इतजार मे वैठे है क्या? क्यो यो उनकी मजाक कर रहे हो? ज्ञानी कहते है यह तुम्हारा गाढ मिथ्यात्व ही है।

मानव मुझ ने मानव सरीखो वनावे
मारी सघली प्रभुता तजावे—मानव मुझने....
नानकडु वालक समजीने पारणिया मां पोढ़ावे.
अरे जन्म जरा मरण तज्या छतां फरी फरी जन्म धरावे—मानव।
ताढु तडका पडे मानव ने मुजने छत्र धरावे
वसवाने मुज माटे मोटा मंदिर महेल चणावे .....मानव...

आज तुम भगवान को भी छोटा बालक बना कर पालने मे झुलाते हो। अंध श्रद्धा का हाल तो देखो। जो जन्म जरा और मृत्यु से परे है उन्हे तुम जन्म दे रहे हो! क्या महावीर वापिस जन्म ले सकते है?

श्रीकृष्णने गीता में कहा है – जब जब जरूरत होती है, मैं जन्म धारण करता हूं। यह तो अन्य तीर्थ की बात है। हमारे यहां तो कहा है—

आती है। कृत्रिमता में सच्चाई कैसे आ सकती है? यह सब झूठ है-मिथ्यात्व है। घर घर आज यह मिथ्यात्व छाया हुआ है। जैन के घर में फोटो का क्या काम है? क्या तुम जडपूजक हो गये हो?

भगवद् भक्ति बहुत मुश्किल है,
शीश समर्प्या विन मुक्ति नहीं ।
नाचना, खेलना और तालियां पीटना
इस रांडचा खेल से मुक्ति नहीं।

यह जो खेल तुम खेल रहे हो वह तो नामर्दो का खेल है– महावीर के पुजारी ऐसा खेल नही खेल सकते। महावीर के मार्ग पर तो मर्द आदमी ही चल सकते है।

महावीर का धर्म हिसा मे नही है। धर्म के लिये भी उसमे हिंसा को स्थान नही दिया गया है। जो यह कहते है कि धर्म के नाम पर हिसा करना पाप नहीं हैं–यह मिथ्या है। फिर तो बकरा मारना भी पाप नही होगा। अतः धर्म को समझो। धर्म के नाम पर मिथ्यात्व मत चलावो। सच्चा धर्मी मिथ्यात्व को कैसे आश्रय दे सकता है? अपने पुण्य पर विश्वास रखो। चक्रवर्ती के पास १६ हजार देवता सेवा मे तैयार रहते थे, फिर भी वे उन्हे मरने से न बचा सके तो कर्म किसे छोड देगें! जिसने कर्म किये हैं उन्हें तो भोगना ही पड़ेगा। दूसरा कोई साथ देने वाला नही है।

भगवान पर तेजोलेश्या का ६ मास तक असर रहा। उन्हें खून की टट्टी होने लगी। भगवान की श्राविका रेवती ने एक दिन भगवान के लिये 'कोलापाक बनाया। लेकिन भगवान तो घट घट की बात जानने वाले थे। उन्होंने अपने शिष्य से कहा–रेवती ने जो कोलापाक बनाया है वह मत लाना। क्योंकि वह आधाकर्मी है, मेरे लिये बनाया गया है अतः उसे मत लाना। उसके बजाय उसने जो बिजौरा पाक अपने लिये बनाया है उसमें से कुछ ले आना। भगवान की आज्ञा ले सिह अणगार गोचरी को निकलते है। रेवती उन्हे देखती है तो प्रसन्न हो जाती है—

सोवन सिंहासने बैठा रेवती रे बेठा वेठा मंदिर मोजार रे।
गजगति दीठा मुनी आवता सुंदर सिंह अणगार रे।
मंदिरे पधारो मेरे पूज्यजी।
सुरतरु फलियो आज आंगणे रे मोतीडे वरस्या मेह रे..
सिंहो अणगार पधारता उल्टो स्नेह अत्यंत रे मंदिरे

रेवती सोने के सिहासन पर बैठी थी। उसके घर मे कितना धन होगा? साधुको आते देखती है तो आदर से खड़ी हो जाती है। कहती है आज तो मेरे घर कल्पवृक्ष आ गया, मोतियो की वर्षा हो गई–ऐसा उसे आनंद अनुभव होता है।

कोलापाक और विजौरा पाक दोनो ही पेट की गरमी को शांत करते हैं। भगवती मे यह पाठ आता है। कुछ लोगो ने इसका गलत अर्थ भी निकाला है। जिसमे धर्मानंद कौशंबी प्रमुख है, जिन्होने यह लिखने की धृष्टता की है कि भगवान महावीर ने भी मासाहार किया था। भगवान ने तो कहा है–मासाहारी नरक मे जाता है। वे कैसे उसे खा सकते है? जहा कंद–मूल का भी त्याग कराया गया है–वहा मासाहार करना कैसे संभव हो सकता है? गोपालदासजी कृत भगवतीसूत्र के अनुवाद मे यह लिखा गया है कि रेवती ने बिल्ली द्वारा मारे गये दो कबूतरो का पाक बनाया और वह भगवान को वहराया। यह भी अर्थ का अनर्थ ही किया गया है। फिर भी कोई उसका प्रतिकार नही करता है। साधु भी जागते नही हैं और श्रावक भी नीद ले रहे हैं। तुम्हारे धर्म पर कोई झूठा आक्षेप करे और तुम आराम की नीद सोते रहो यह कैसी बात है? तुम्हारी कोन्फरन्स भी क्या कर रही है?

रेवती आहार का दान देती है। सिह अणगार भगवान की आज्ञानुसार विजौरा पाक ग्रहण कर लेते है। रेवती दान देकर धन्य हो गई। महावीर के जीवन मे रेवती का भी बड़ा योग दान रहा है। रेवती के पाक से ही भगवान की शारीरिक पीडा शात हुई थी।

वीतरागी को मानापमान नही होता, लेकिन जो उनकी आशातना करता है, उसे तो अपना पाप भुगतना ही पड़ता है।

में कुत्तेकी तरह खींचना और यह कहना कि यह गौशाला पापी है जिसने भ. महावीर की आशातना की है। फिर तीन वार मेरे मुंहपर थूंकना। वही गौशाला. जो महावीर का कट्टर दुश्मन था, मरते समय कितना सरल हो जाता है। ऐसी भावना से वह अभिनिभिषेक मिथ्यात्व को दूर कर सम्यक्त्व में आ जाता है और परीत संसारी हो जाता है।

जब वह मरा तो उसके अनुयायियो ने कमरा बंद कर वही श्रावस्ती का नक्शा बनाया और पाव मे रस्सी बांध कर उस पर घसीटा और थूका भी। यों उसके कथन का गुप्त रूप में पालन किया, पर गौशालक ने तो शुद्ध भाव से कहा था अतः वह मर कर १२ वें देवलोक मे पहुंच गया।

छद्मस्थ अवस्था में भूल हो सकती है। भूल होने पर उसे सुधार लेना ही मानवता है। गौशालाने अन्तिम समय में अपनी भूल स्वीकार कर ली तो उसका भी एक दिन संसार भ्रमण मिट जाने वाला है। वह भी एक दिन भगवान महावीर जैसा हो जायगा।

मोह के क्षय, उपशम या क्षायिक भाव से गुण प्रकट होते है। पुण्य से धन मिलता है– सुख–सुविधा मिलती है, परन्तु इससे भव–भ्रमण का अंत नही आता। पुण्य अलग है और धर्म अलग है। संयोग–सुख या अनुकूलता मिलने से ही मोक्ष नहीं मिलता। गजसुकुमाल तो प्रतिकूल संयोग मे भी मोक्ष चले गये। अतः पुण्य की इच्छा मत करो। हरिकेशी तो चाडाल था। उसके पास कितना पुण्य था ? फिर भी मुनि बन कर तप किया तो वे उसी भव में ही मुक्त हो गये।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का पुण्य कितना प्रबल था, लेकिन उसका धर्म अस्त था तो मर कर ७ वी नरक में गया।

भरत चक्रवर्ती का पुण्य भी कितना प्रबल था ? साथ मे धर्म भी प्रबल था तो वे मुक्त हो गये।

अतः पुण्य होगा तभी धर्म हो सकेगा ऐसा मत सोचो। पुण्य का होना या न होना धर्म में बाधक नही होता। भगवान का मार्ग तो निराला है–वहा महान पुण्यशाली शालिभद्र और हरिकेशी जैसे चांडाल को भी समान हक है।

जिस साधु के शरीर से आत्मा चला जाय, फिर उसे वंदना करने का क्या अर्थ है ? तुम जडके नहीं–चैतन के पुजारी हो। जीवित अवस्था में गुणग्राम करना ठीक है, पर शव की पूजा करना–जड की पूजा है। उसको नमस्कार कैसे किया जा सकता है ?

साधु तो शव को छू भी नहीं सकता। साधु के शव को भी पडा रखते हो और उसको निमित्त बना कर भी पैसा इकट्ठा करते हो। पैसों के पीछे यह

कुंख लजावे कुल लजावे
खोला नो खुंदनार–वापु–वापु
पल पल सलगे छे संसार.........

पुत्र का जन्म होता है तो माता को तत्काल कहा नही जाता है, कही हर्ष के मारे पागल न हो जाय? लडका होता है तो वह कुलदीपक कहा जाता है। संस्कारी वालक ऐसा वन सकता है, पर जो कुसंस्कारी है–बीडी–तमाखू पीता है, सिनेमा देखता है, अखाद्य का सेवन करता है–वह तो कुल को कलंक ही लगाता है। संस्कारी वालक कभी ऐसे काम नही करता है।

कीर्तिधर राजा को इस संसार में रहना अच्छा नही लगता। उसे यह दुख रूप प्रतीत होता है। यहां सुख कहां है? लेकिन अज्ञानी की दृष्टि इस लोक तक ही सीमित रहती है। उसे परलोक का भय नही होता। तो क्या वह यही रहने वाला है?

ज्ञानी कहते हैं–यह मनुष्य भव अनमोल है। उसको ऐसे ही मत घुमा वैठो। हीरा फेक कर कांच मत लो! यही एक ऐसा भव है जिसमे आत्मा परमात्मा वन सकता है। विकास की ओर मनुष्य ही उन्मुख हो सकता है, दूसरी योनियो मे रहते हुए आत्मा उस दिशा में अग्रसर नही हो सकता। तिर्यच और नारकी मे अनंत दुख है। जीव परवश होकर अनंत दुख सहन करता है। स्ववश होकर वह उपवास भी करना नही चाहता, पर वुखार आ जाय या डाक्टर मना करे तो जबरन करना पडता है। डायबीटीज की वीमारी हो जाय तो शक्कर छोड देते हो, पर ऐसे ही कोई रसगुल्ला छोडना चाहता है?

परवशता मे त्याग करना त्याग नही कहा जाता, त्याग तो स्वाधीनता मे ही होता है। भिखारी को राज्य नही मिलता तो क्या वह त्यागी कहा जा सकता है? हृदय में तो अपार तृष्णा भरी पड़ी है। सब कुछ घर में हो। फिर भी इच्छा से उनका त्याग कर देना ही सच्चा त्याग है। जो स्वेच्छा से आयंविल, उपवास–व्रत–पच्चक्खाण और ब्रह्मचर्य का पालन करता है वही सच्चा धर्मी कहा जा सकता है।

परवश होकर तो अब तक बहुत किया है, पराधीन सपनेहु सुख नाही, पराधीनता में सुख नही है–स्वाधीन वनने का मौका अव आया है, मनुष्य भव मिलना स्वाधीन बनने का चांस है। अतः क्यों प्रमाद कर रहे हो? धर्म में पुरुषार्थ क्यों नहीं करते हो?

हुं क्रोध अग्नि थी बलियो
वली लोभ सर्प डस्यो मने
गलिया मान रुपी अजगरें हूं केम करी ध्याऊं तने!

मैं क्रोध रुपी अग्नि से जल रहा हूं। मन माना काम न हो तो क्रोध कर बैठते हो, समय पर खाना न मिले तो आग बबूला हो जाते हो। बाहर आग लगती है तो दूसरा आदमी भी उसे बुझा देता है–। परन्तु जब हृदय में आग लगती है तो उसे बुझाने वाला कोई नही मिलता। शांति रखोगे तो क्रोध को भी जीत सकोगे।

तुम लोभ रूपी सर्प से भी ग्रसित बने हुए हो। कितना मिले कि संतोष हो? नंद राजाने ७ टेकरी सोने की खड़ी कर दी फिर भी उसे सन्तोष कहा हुआ? मरते समय क्या वह साथ मे ले जा सका? जो धन का संचय करता है, उस पर लक्ष्मी भी हंसती है? मेरे लिये ये क्या क्या नही करते? अधर्म–अन्याय, पर स्त्री गमन, चोरी आदि करते हैं। पुण्य का उदय अवश्य होता है, पर वह पापानुबंधी पुण्य होता है अतः वह आत्मा का पतन ही करता जाता है। जैसी जैसी अनुकूलता मिलती जाती है वैसे वैसे तुम भी उसी में रत रहने लगोगे या कुछ परिमाण भी करोगे? सभी पदार्थो को भोगने की इच्छा रखना अनंतानुबंधी क्रोध है।—

धर्म–कर्म ने भेद भरमनी
भूलवणी मां भूल्या
अगम निगम नुं ज्ञान मले ना
अधवचे जई अटक्या
अम काम–क्रोध थी कचडाया, अने लोभ माहि लपटाया
मदमत्सर ने माया मांथी मुक्त करो जिनराया...

साधक अपने प्रभु से कहता है–मैने अभी तक धर्म का मर्म समझा नहीं है। उपवास–सामायिक, –प्रतिक्रमण, आयबिल आदि बाह्य–तप तो किये है–कर रहा हूं–पर आभ्यन्तर तप क्या है? यह नही समझा है। बाह्य–तप तो आभ्यन्तर तप के साधन भूत हैं। अगर वे आभ्यन्तर तप तक न पहुंचा सके तो उनका भी क्या महत्व है?

बैंक की सुरक्षा के लिये चौकीदार रखे जाते है। कोई चोर चोरी करके रुपया न निकाल ले जाय इसका वे ध्यान रखते है। परन्तु चोर तो होशियार और चालाक होता है। वह समझता है—यह चौकीदार तो आगे के ताले देख

रहा है, वह पीछे से चोरी कर माल ले लेता है। बैंक मैनेजर आकर कहता है—तू कहां सो रहा था? माल कैसे चला गया?

चौकीदार ने कहा—साहब—हमने तो बराबर चौकीदारी की है। देखिये ताले अब भी दरवाजे के बंद है।

आपका भी ऐसा ही हाल तो नही है? सामने तो सब क्रियायें कर रहे हो पर अंदर कुछ भी संभाल नहीं कर रहे हो। उपाश्रय मे आकर तो अट्ठाई कर ली है—घर गये कि तूफान खडा कर दिया। अट्ठाई की है तो इतना तो करना ही पडेगा— थाली न चाटोगे तो अच्छा नही लगेगा। यो सामने का ताला तो बराबर बंद कर दिया है, पर हृदय का ताला खोल कर क्रोध रूपी चोर अंदर घुस गया है, जो हमारा सब माल चुरा रहा है। जब तक अन्तर शुद्धि न हो वहा तक बाह्यशुद्धि से क्या लाभ हो सकता है? अट्ठाई करके भी घर मे लड़ाई-झगडा खडा कर दिया जाय तो वह अट्ठाई भी आपको क्या फल दे सकेगी?

छूटे देहाध्यास तो नहि कर्ता तू कर्म।
नहि भोक्ता तू तेहनो, तेज धर्म नो मर्म।
अेज धर्म थी मोक्ष छे तू छो मोक्ष स्वरूप।
अनंत दर्शन ज्ञान तू अव्याबाध स्वरूप।

देहाध्यास छूट जाय तो फिर क्या है? उपवास करना है या सामायिक करनी है तो उससे तुम्हारे हृदय में ऐसे भाव पैदा हो जाय कि तुम्हें कोई यह न कह सके कि यह धार्मिक नहीं है। सच्चे श्रावक बनोगे तो सरकार भी तुम्हारे पीछे क्यों लगना चाहेगी? ऊपर से तो श्रावक का लिबास लगा रखा है, पर अंदर से [illegible] बने हुए हो, यह तो तुम ही जान सकते हो।

शिष्य–मास तूप–मास–तूष जाप करता है।
मास–उडद, तूस–फोतरा

शिष्य विद्वान था—सोचा उडद से फोतरा अलग हो जाता है तो उडद सफेद बन जाता है, फिर उसमें उगने की शक्ति नहीं रहती है। यह आत्मा भी जब शरीर से अलग हो जाता है, उसकी ममता छोड देता है तो वह भी सिद्ध-बुद्ध हो जाता है–फिर उसे जन्म–जरा और मृत्यु का भय नहीं रहता। यों वह जड़ और चैतन का ज्ञान करने लगता है। शरीर सूखता जाता है और आत्मा का बगीचा हरा होने लगता है। तुम किसे हरा कर रहे हो? आत्मा के बगीचे को या शरीर को?

कीर्तिधर राजा संसार त्याग कर साधु बनने को तैयार होता है। उसकी रानी कहती है– आप राजा हैं– आप चले जावेगें तो मेरी क्या हालत होगी?

राज दरबारियो ने भी कहा-महाराज! जाने से पहले आप अपना उत्तराधिकारी तो बना लें। राजा कुछ समय के लिये ठहर गया। रानी को गर्भवती हुए तीन मास हो गये। राजा अब मुनि बनने को तैयार होता है। दरबारी कहते हैं– आप अपनी संतान का मुह तो देख लें। राजा कहता है– अब प्रमाद मे पडे रहना योग्य नही है। समय जाते क्या देर लगती है? काल आ जायगा तो मेरी क्या हालत हो जायगी।

जीवन दीपक नी ज्योति धीमी २ थती गई
घडपड वली आव्युं ने तारी उंमर वधी गई
परभवनुं तुं तो भातु कांइ बांधी शक्यो ना (२)
आवशे एकाण क्यारे कंइये कहेवाय ना।
दीपक बुझाशे क्यारे समझी शकाय ना।

जीवन रूपी दीपक का तेल जब समाप्त होने आता है तो क्या उसमें कोई नया तेल डाल सकता है? वृद्धावस्था आ जायगी तो उठ बैठ भी नही सकोगे? उस समय तुम धर्म–ध्यान कैसे कर सकोगे?

जवानी क्या मौज–'शौक के लिये है? क्या जवानी मे मृत्यु नही हो सकती? तो फिर धर्म को पीछे क्यों रखते हो? राजा का वैराग्य दब कर नहीं रहता। वह दीक्षा धारण कर मुनि बन जाता है।

रानी को लडका उत्पन्न हुआ। वह धीरे धीरे बडा होता है। लेकिन रानी के मन में आशंका रहती है कि कही यह भी अपने पिता की तरह राज्य त्याग कर मुनि न बन जाय? इसका पिता भी इसके दादा के मार्गपर चले गये तो यह भी अपने पिता के मार्ग पर न चला जाय? वह अपने राज्य मे किसी भी साधु का आना निषिद्ध करार देती है। जब किसी साधु को ही मेरा लडका नही देखेगा तो उसे मुनि बनने का विचार ही कैसे आ सकेगा?

कुछ वर्षों बाद कीर्तिधर साधु घूमते घूमते वहा आते है। रानी को पता चला तो वह प्रधान को उनके पास भेजती है। प्रधान मुनि के पास जाकर कहता है– इस गाव मे किसी भी साधुको आने की अनुमति नही है। आप यहा रहेगे तो राजाज्ञा का भंग होगा अतः जैसे भी हो शीघ्र प्रस्थान कर दीजिये।

मुनि बोले— आज तो दुपहर हो गई है। कल देखा जायगा।

प्रधान ने कहा– रानी कुपित हो जायगी तो अनर्थ कर बैठेगी। आप ऐसा कीजिये—गाव के बाहर ही एक बगीचा है। आप वहां पधार जाइये—मैं वहा आपको व्यवस्था करवा देता हूं।

उधर राजकुमार को यह पता चलता है कि मेरे पिता यहा पधारे है। वह प्रधान से पूछता है– तुमने उन साधु को कहा भेज दिया ? तुम्हे मालूम नही वे मेरे पिता थे? जल्दी बताओ, वे कहा हैं ?

प्रधान राजकुमार को मुनि के पास ले जाता है।

राजकुमार मुनिसे कहता है– आप गाव मे पधारिये। गांव के बाहर यहा क्यो विराज रहे है ? आपने तो सब कुछ छोड दिया है ? फिर आप मे डर क्यो होना चाहिये ?

मुनि ने कहा– यह संसार ऐसा ही है। तेरी मा को यह भय है कि कही मेरा लडका भी साधु न हो जाय ? संसार मे रह कर निर्लेप रह सकना बडा मुश्किल है।

प्रभु साथे प्रीतडी ने संसार मां वसवुं
अे वात केम बने लोट फाकं ने भसवुं !

जब तक जरा—व्याधि शरीर मे नहीं आती तब तक धर्म का आचरण कर लेना श्रेयस्कर है। नहीं तो फिर क्या कर सकोगे जब कि काल के मुंह में चले जाओगे? मनुष्य भव पाकर सच्ची कमाई करनी है तो धर्म करो— धर्मका साथ करो—इससे परभव मे भी दुखी नहीं होओगे।

शिष्य–मास तूष–मास–तूष जाप करता है।

मास–उडद, तूस–फोतरा

शिष्य विद्वान था––सोचा उडद से फोंतरा अलग हो जाता है तो उडद सफेद बन जाता है, फिर उसमें उगने की शक्ति नही रहती है। यह आत्मा भी जब शरीर से अलग हो जाता है, उसकी ममता छोड देता है तो वह भी सिद्ध–बुद्ध हो जाता है–फिर उसे जन्म–जरा और मृत्यु का भय नेही रहता। यों वह जड और चैतन का ज्ञान करने लगता है। शरीर सूखता जाता है और आत्मा का बगीचा हरा होने लगता है। तुम किसे हरा कर रहे हो? आत्मा के बगीचे को या शरीर को?

कीर्तिधर राजा संसार त्याग कर साधु बनने को तैयार होता है। उसकी रानी कहती है– आप राजा है– आप चले जावेगें तो मेरी क्या हालत होगी?

राज दरबारियों ने भी कहा-महाराज! जाने से पहले आप अपना उत्तराधिकारी तो बना लें। राजा कुछ समय के लिये ठहर गया। रानी को गर्भवती हुए तीन मास हो गये। राजा अब मुनि बनने को तैयार होता है। दरबारी कहते हैं– आप अपनी संतान का मुह तो देख लें। राजा कहता है– अब प्रमाद में पडे रहना योग्य नही है। समय जाते क्या देर लगती है? काल आ जायगा तो मेरी क्या हालत हो जायगी।

जीवन दीपक नी ज्योति धीमी २ थती गई
घडपड वली आव्युं ने तारी उंमर वधी गई
परभवनुं तुं तो भातु कांइ बांधी शक्यो ना (२)
आवशे एकाण क्यारे कंइये कहेवाय ना।
दीपक बुझाशे क्यारे समझी शकाय ना।

जीवन रूपी दीपक का तेल जब समाप्त होने आता है तो क्या उसमे कोई नया तेल डाल सकता है? वृद्धावस्था आ जायगी तो उठ बैठ भी नही सकोगे? उस समय तुम धर्म–ध्यान कैसे कर सकोगे?

जवानी क्या मौज–'शौक के लिये है? क्या जवानी में मृत्यु नही हो सकती? तो फिर धर्म को पीछे क्यों रखते हो? राजा का वैराग्य दब कर नहीं रहता। वह दीक्षा धारण कर मुनि बन जाता है।

रानी को लडका उत्पन्न हुआ। वह धीरे धीरे बडा होता है। लेकिन रानी के मन में आशंका रहती है कि कही यह भी अपने पिता की तरह राज्य त्याग कर मुनि न बन जाय? इसका पिता भी इसके दादा के मार्गपर चले गये तो यह भी अपने पिता के मार्ग पर न चला जाय? वह अपने राज्य में किसी भी साधु का आना निषिद्ध करार देती है। जब किसी साधु को ही मेरा लडका नही देखेगा तो उसे मुनि बनने का विचार ही कैसे आ सकेगा?

कुछ वर्षो बाद कीर्तिधर साधु घूमते घूमते वहा आते हैं । रानी को पता चला तो वह प्रधान को उनके पास भेजती है । प्रधान मुनि के पास जाकर कहता है– इस गांव में किसी भी साधुको आने की अनुमति नहीं है । आप यहा रहेगें तो राजाज्ञा का भंग होगा अतः जैसे भी हो शीघ्र प्रस्थान कर दीजिये ।

मुनि बोले— आज तो दुपहर हो गई है । कल देखा जायगा ।

प्रधान ने कहा– रानी कुपित हो जायगी तो अनर्थ कर बैठेगी । आप ऐसा कीजिये–गाव के बाहर ही एक बगीचा है । आप वहां पधार जाइये–मैं वहां आपकी व्यवस्था करवा देता हूं ।

उधर राजकुमार को यह पता चलता है कि मेरे पिता यहां पधारे है । वह प्रधान से पूछता है– तुमने उस साधु को कहां भेज दिया ? तुम्हे मालूम नहीं वे मेरे पिता थे? जल्दी वताओ, वे कहां है ?

प्रधान राजकुमार को मुनि के पास ले जाता है ।

राजकुमार मुनिसे कहता है– आप गांव में पधारिये । गांव के बाहर यहां क्यों विराज रहे है ? आपने तो सब कुछ छोड दिया है ? फिर आप से डर क्यों होना चाहिये ?

मुनि ने कहा– यह संसार ऐसा ही है । तेरी मा को यह भय है कि कहीं मेरा लडका भी साधु न हो जाय ? संसार में रह कर निर्मल रह सकना बडा मुश्किल है ।

प्रभु साथे प्रीतडी ने संसार मां वसवुं
अे वात केम बने, लोट खाऊं ने भसवुं !

जव तक आधि–व्याधि शरीर में नहीं आती तब तक धर्म का आचरण कर लेना श्रेयस्कर है । नहीं तो फिर क्या कर सकोगें जब कि काल के मुंह में चले जाओगे? मनुष्य भव पाकर सच्ची कमाई करनी है तो धर्म करो– धर्मका भाता बाधो–उससे परभव मे भी दुखी नही बनोंगे ।

राजकुमार के दिल में भी यह बात बैठ गई । संस्कार उसके अच्छे थे । नेगेटिव साफ होता है तो फोटो भी साफ आ जाता है । वैसे हृदय भी शुद्ध होता है तो उपदेश का असर भी शीघ्र हो जाता है । जब तुम्हारी भी हृदय शुद्धि हो जायगी तो उस समय केवल एक व्याख्यान ही तुम्हारे लिये वहुत होगा । राजकुमार को मुनि का उपदेश काम कर गया । वह घर गया और मां से वोला–मां मुझे आज्ञा दे, मैं भी मुनि वनना चाहता हूं । जिस मार्ग पर मेरे पिता गये उसी मार्ग पर मैं भी अपने कदम बढाना चाहता हूं । तू मुझे नादान मत समझना, मैं जाग्रत हो गया हूं, मुझे अब कोई ताकत रोक नही सकती । मेरे पिता सब कुछ छोडकर चले गये तो मैं क्यों नही छोड़ सकता ?

राजकुमार भी उस पथ का पथिक हो जाता है। पिता–पुत्र दोनों धर्म की साधना में जुट जाते हैं। रानी की हालत खराब हो जाती है। वह धर्म की तो नीदा ही करती है। उसे राजा पर भी रोष पैदा हो जाता है, अगर वे यहां न आये होते तो मेरा लडका मेरे पास ही रहता ?

उधर पिता-पुत्र दोनों संयमकी उत्कृष्ट आराधना करते हुए कई लब्धियों के स्वामी बन जाते है। जो सच्चे साधु होते हैं वे घर–बार की चिन्ता नही करते है। जो संसार छोड कर निकल जाते हैं, वे फिर उसे कैसे चाट सकते है ?

रानी मर कर बाधिन बनती है। तिर्यंच योनि मे जन्म लेती है। पिता-पुत्र विहार कर रहे है– बाधिन उन्हे देख कर कुपित हो जाती है। पुराना वैर जागृत होता है। दोनों मुनि सावधान हो जाते है। पिता कहता है– मै आगे जाता हूं– तू अभी जवान है। पुत्र कहता है–नही, मै आगे जाता हूं, आप ठहरिये। यो कह कर वह आगे चल देता है। सामने बाधिन कुपित हो कर आती है और अपने मुंह से राजकुमार मुनि को उठा कर मार डालती है। लेकिन छोटे मुनि के मुह से उफ तक नही निकलता। वह तो समभाव में लीन हो गये थे–

देहभाव क्षय हो जहां अथवा होय प्रशांत।
ते कहिये ज्ञानी दशा, बाकी कहिये भ्रांत।

बाधिन ने राजकुमार मुनि के दांत में सोने की रेखा देखी तो उसे विचार आया– इसे तो मैंने पहले कभी देखा है ! उसे जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है। यह क्या ? मैंने अपने पुत्र को ही मार दिया ? सामने कीर्तिधर मुनि खडे थे। बाधिन अपना सिर पछाडने लगती है। मुनि ने समझा इसे ज्ञान हो गया लगता है। वे उससे कहते हैं– समझ–समझ अब भी समझ, तेने जो किया उसका तो फल मिल ही गया है। अब क्यों आत्मा का अधिक पतन कर रही है ?

राजकुमार मुनि ने तो बाधिन द्वारा अपने मुह में चबाये जाने पर भी मोक्ष प्राप्त कर लिया। कहा वे और कहां हम ?

बाधिन ने भी वही संथारा कर लिया और मर कर स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

हम तो राग द्वेष से भरे हुए है। धर्म-कर्म को भी भूल गये है। ज्ञानी की बात सुनने मे भी रस नही आता। १० बजे नही कि व्याख्यान मे से उठ खडे होते हो। सिनेमा देखने मे तो ३ घटा व्यतीत कर देते हो, ऊपर से टिकिट के पैसे भी डबल देने को तैयार हो जाते हो, पर बिना पैसे धर्म सुनने में रस नहीं लेते हो– समय का अभाव बताते रहते हो– यह कैसी बात है ?

कनकरथ राजा का पुत्र तेतली के यहा बडा हो रहा है। तेतली उसमे अच्छे संस्कार डालता है। ७२ कलाओ में उसे निपुण बनाता है। आगे क्या होना है ? यथावसर कहा जायगा।

ता. १९–९–६८

[८०]

तीनो काल में अबाधित रहनेवाला जो तत्व है उसे सिद्धान्त कहते हैं । भगवान ने ऐसे ही सिद्धान्त बताये है । नव तत्व भी ऐसे ही है– जिनमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता । उन्हे जानना और जानकर उन पर यथार्थ प्रतीति करना यही जीवन जीने की सर्वोत्कृष्ट कला है ।

यदि कोई ७२ कलाओ में तो निपुण हो जाय । पर बंधन से मुक्त होने की कला न आती हो तो वह भी अधुरा ही रहता है । विद्या तो वही कही जाती है जो बंधन से मुक्त करती है– "सा विद्या या विमुक्तये"

दूसरी कलाये सभी बंधन कर्ता है, उन्हे चोर चुरा सकता है, राजा लूट सकता है- टैक्स डाल कर। जमीन में गाडो तो धन नष्ट हो सकता है, पर विद्या धन ऐसा है जो न चोर चुरा सकता है और न राजा लूट सकता है। वह देने से भी बढता ही है ।

विद्या धनं सर्व धनं प्रधानम्–

ज्ञान प्राप्ति मे बूढा कोई नही होता । सारी जिन्दगी पढते रहो, फिर भी उसे वृद्धत्व का अनुभव नही करना चाहिये । क्योकि ज्ञान तो आत्मा का गुण है, । वह ऐसा प्रकाश है जिससे वस्तु का ज्ञान होता है, हेय, ज्ञेय और उपादेय का ज्ञान उसीसे होता है । शक्कर और फिटकरी का भेद ज्ञान ही जान सकता है । कौनसा मार्ग मोक्षका है और कौनसा नरक का ! यह ज्ञान ही बता सकता है । जैसे दृष्टि हीन मानव कुछ नही कर सकता है वैसे ही ज्ञान हीन मानव भी कुछ नही कर सकता है– उसे पशु जैसा ही कहा गया है । अनंतकाल से जीव ज्ञान रहित दशा में ही भटक रहा है–

अनंतकाल थी आथडयो बिना भान भगवान ।
सेव्या नहि गुरु संतने, मुक्यु नहि अभिमान ।

जीव अनंतकाल से संसार मे भटक रहा है । कहां जाना है और कहां जा रहा है? इसका भी उसे भान नही है । जाना तो मोक्ष मे है, पर मार्ग पकड लिया है मोह नगर का । पूर्व के बजाय पश्चिम मे चलने लग रहा है– अतः पुरुषार्थ सब उल्टा हो रहा है । सतपुरुष ही तुम्हे सही मार्ग पर ला सकते हैं। उनकी शरण मे जाओ । वे ही तुम्हें सच्चा मार्ग बता सकेगे । लेकिन इसके लिये हृदय को सरल तो बनाना ही पडेगा– अभिमान का भाव तो मिटाना ही पडेगा तभी उस मार्ग पर चलने मे समर्थ बन सकोगे ।

रंगुजी नामक शिष्य कई गुरुओ के पास चला गया, पर कही भी उसे संतोष नही हुआ। भटकते भटकते वह एक दिन संत तुकाराम के पास पहुंच गया और उनसे भी गुरु मंत्र ग्रहण कर वही रहने लगा। और भी कई शिष्य वहां थे। वह भी उनके साथ साथ रहने लगा। दो-तीन वर्ष निकल गये—गुरु ने उससे कुछ भी नहीं कहा। अन्य शिष्यों

को भी वे कुछ नही कहते थे। संत तुकाराम तो महान् सरल आत्मा थे। उनकी भक्ति में तो सर्वस्व समर्पण था– विठोवा के ध्यान में वे तो तदाकार हो जाते थे। रंगुजी ने सोचा यहां भी मुझे कुछ मिलने वाला नही है। सुना है शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास वडे पहुंचे हुए महात्मा हैं। मैं उनके पास जाकर रहूं तो कुछ काम हो सकेगा। यह सोचकर वह रामदास के पास आता है और उनके चरणो में सिर रख कर कहता है– मेरी आत्मा का विकास हो सके वैसा कुछ मुझे बताइये।

रामदास ने कहा – कौन रंगुजी! तु तो संत तुकाराम के पास मे रहता था न? यहां क्यों आया है?

रंगुजी बोला– मुझे वहां अच्छा नहीं लगा, मैंने तीन वर्ष वहां निकाले, पर मेरा विकास तो कुछ भी नही हुआ। संत तुकाराम ने तो मुझे कुछ भी नही वताया। वे तो सारे दिन विठोवा का भजन करते रहते है– शिष्यों की तरफ तो देखते भी नही है।

रामदासने कहा– वही उनका उपदेश है, सतत भक्ति करते हुए भी जो यह उपदेश दे रहे है कि तू भगवान का भजन कर, उसमे प्रमाद मत कर।

रंगुजी वोला– मुझे अब वहां नही जाना है, मैं आपकी सेवा मे रहना चाहता हूं। आप मुझे अपना शिष्य वना ले और मेरी आत्मा का उद्धार हो वैसा मार्ग वताये।

रामदास ने कहा– तुम संत तुकाराम के शिष्य वने हुए हो। उनकी स्वीकृति प्राप्त न कर लो, तव तक मैं तुम्हे अपना शिष्य कैसे वना सकता हूं?

रंगुजी वोला– ठीक है, मै उनकी स्वीकृति लेकर अभी आता हूं। यह कहकर वह संत तुकाराम के पास पहुंचा और अपनी पोथी आदि संभलाते हुए वोला– मैं अव आपका चेला रहना नहीं चाहता, मै तो रामदास का शिष्य वनने जा रहा हूं– आप मुझे इसकी आज्ञा दे दें।

तुकाराम वोले– तुम्हें यहा क्या तकलीफ है जो तुम ऐसा करने जा रहे हो?

वह वोला– मुझे यहां रस नही आता है, मैं वही जाना चाहता हूं।

आत्मा में ही तैल नही है तो दूसरा क्या करेगा?

> परनो संकोर्यो दीवडो केटलोक वलशे
> जगे नहीं ज्योत आप मेले
> भजन तारा गया भगत साव अेले
> काम न आवे खरी वेले. . भजन तारा. . ।

दीपक में तेल न हो तो माचिस जलाने से भी क्या होगा? आखिर तो तेल होना चाहिये न?

> पोता मां पोतापणुं होय तो सहु सहेल।
> होय तो दिवो बले दीवा मां दीवेल।

अपनी भी तो तैयारी कुछ होनी चाहिये न ! केवली भगवान की वाणी सुन कर भी अगर तुम सुधर न सको तो उसमे केवली का क्या दोष है ? फूटे घड़े मे जैसे पानी नहीं रह सकता है, वैसे ही अज्ञानी जीव भी ज्ञान को ग्रहण नही कर सकता है। इस कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दोगे तो आगे कैसे बढ सकोगे ? ज्ञान तो चिंतन-मनन और स्वाध्याय करने से ही आत्मा में ठहर सकता है।

हर एक के पास अपना अपना माल है। जिसके पास जो माल है वही तो वह बताएगा। लेना या न लेना तो ग्राहक का काम है। तुम्हारी काया रूपी दुकान में वचन रूपी माल भरा है। बडा व्यापारी बडी (अच्छी) बात ही बोलता है। वह कभी हल्की वाणी नही बोलता।

वीर तारी वाणी अमृत नी धारा
ऐरी रमण पी रह्या प्रेमे पीनारा रे। नमुछुं
वीर तारा शासनना मूल्य मोंघारे
नमुं छुं तारा त्यागने
मेरु सरखी धीरतारी जगते वखाणी
हे री तारी जींदगी शास्त्रों मां लखाणी रे—

भगवान महावीर की वाणी कैसी अमृत रस से भरी हुई थी ! अखंड शांति के सिवाय वहा और कुछ नही था। उनके मौन से भी क्षमा की अपूर्व धारा ही प्रवाहित होती थी। कषाय के विकारों का तो नामोनिशान भी नहीं था।

उनकी धीरज का तो कोई माप ही नही था। समुद्र के किनारे बैठकर कोई आदमी लौटा भर भर कर समुद्र को खाली करे और समझ लो एक दिन वह उसे खाली भी कर दे, पर भगवान की धीरज तो अखूट थी—कभी कम होनेवाली नही थीं। उनकी सहनशीलता—उनकी उदारता तो अपूर्व थी। कोई उनके चरणो मे शीश झुकावे तो खुशी नही और कोई उन पर धूल भी उडावे तो उस पर भी रंज नही। कैसा उनका अपूर्व जीवन था और आज आपका जीवन कैसा है ? आपको क्या बनना है ? कोई लक्ष्य भी जीवन का है या नही ? यात्री हो या घुमक्कड ? जो यात्री होता है उसका तो प्रोग्राम नियत होता है— लक्ष्य करके ही वह प्रस्थान करता है। आज सुबह बोरीवली दर्शन यात्रा मे जाना है और शाम को वापिस कांदावाडी आ जाना है। यात्रालुओ का लक्ष्य इस तरह तय होता है। परन्तु जो घुमक्कड होते है उनका कोई लक्ष्य नही होता। भटकना ही उनका काम होता है। यात्रा लक्ष्य सहित होती है और भटकना लक्ष्य रहित होता है। इनमे से तुम क्या कर रहे हो ? यात्रा कर रहे हो या भटक रहे हो ?

लडका सुबह पुस्तक लेकर पाठशाला जाता है और वहांसे वापस घर आ जाता है। उसका लक्ष्य समझ मे आ सकता है, पर जो सुबह से निकल कर शाम तक घर नही आता तो आपको इनमे से कौन सा लडका अच्छा लगेगा ?

आप भी उपाश्रय मे आते हो, लक्ष्य क्या है आपका ? कुछ प्राप्त कर रहे हो या जो है उसे भी घुमा रहे हो ! अपना हिसाब–किताब तो देखो–नफा हो रहा है या नुकशान ! तुम अपने मुनीम खुद ही बनो। बीमारी तुम्हारी ऐसी है जिसे तुम ही जान सकते हो– तुम खुद ही डाक्टर बनोगे तो दर्द कम हो सकेगा। धर्म आत्मामे समाया है या नही ? इसकी जांच तो करो !

महान् तत्ववेत्ता सोक्रेटीस जब बूढा हुआ तो लोग उससे पूछने आते थे–कैसी तबियत है ? उतर मे वह कहता–आनंद है।

तुम किसी वृद्ध को पूछो कि कैसी तबियत है ? तो वह कितनी फरियाद करने लग जायगा ? खाना भाता नही है, शरीर मे असाता रहती है, रात को नीद भी नही आती। घर मे कोई मेरा कहना भी नही मानता है आदि आदि। लेकिन सोक्रेटीस कहता है–आनंद है।

लोग कहते है– तुम वृद्ध हो गये हो फिर भी आनंद कैसे है ?

वह उत्तर देता है– मैं अपने घर मे ही रहता हूं। दूसरे के घर मे नही जाता अत: आनंद में ही रहता हूं – दुख का मुह भी देख नही पाता। तुम्हारा क्या हाल है ? बूढे हो गये हो, फिर भी लडको को सलाह देते रहते हो। वे न माने तो तुम बुरा मान जाते हो– दुख करते हो। ऐसा दुख तुम स्वयं मोल लेते हो। विना पूछे तुम्हे सलाह भी क्यो देनी चाहिये ? उनकी वे जाने। तुम से पूछे तो सच्ची सलाह देना तुम्हारा कर्तव्य है। पर जबरन सलाह देना तुम्हारा काम नही है। वे ठोकर खायेंगे तो अपने आप संभल जावेगे। तुम अपना देखो। दूसरो का क्यो देखते हो ? उनका उनके पास है तुम्हारा तुम्हारे पास है। जो यह समझ कर चलता है वह बूढापे मे भी आनंद का ही अनुभव करता है।

संत तुकाराम रगुजी से कहते है– भले, तेरी इच्छा रामदास के पास जाने की है तो खुशी से जा। उन्हे उसका दुख नही होता। शिष्य को अपना मानने पर गुरु को दुख होता है। उसे अपना माने ही नही तो दुख किस बात का हो ? गुरु तो मार्ग बता देता है– चलना तो शिष्य को ही पडेगा न ? जिसे ममत्व ही नहीं होता वह बंधन मुक्त रहता है। बंधता तो वही है जो आसक्त रहता है।

ज्ञानी निमित्त अवश्य बनते है– आखिर काम तो उसका उपादान ही करेगा। जिसका जैसा पुरुषार्थ होगा वैसा ही वह फल भी भोगेगा। सभी आदमी एक समान तो नही हो सकते। एक कक्षा में ४० लडके पढ़ते है, पर उनमे पहले नम्बर तो कोई

एक ही आवेगा। जो जैसा ग्रहण करता है वैसा ही वह बनता है। जैनदर्शन में आत्मा के उत्थान का आधार मुख्य रूप से उपादान को ही माना गया है। गुरु या ज्ञानी तो उसमें निमित्त अवश्य बनते है, पर पुरुषार्थ करना तो आत्मा का ही काम है– दूसरे का किया वहा कोई काम आने वाला नही है।

तुकाराम की स्वीकृति मिल गई तो रगुजी ने गले में से कंठी निकाल कर तुकाराम के सामने फेक दी, पोथी-पुस्तक और माला भी संभला दी। चलने को तैयार हुए तो तुकाराम ने कहा– मेरा दिया हुआ गुरु मंत्र तो वापस कर जाओ!

रंगुजी ने मुंह से गुरु मंत्र कहा और सामने एक काला पत्थर पडा हुआ था उस पर थूक दिया। गुरु मंत्र उस पत्थर पर अंकित हो गया। यह देख कर उसे भी आश्चर्य अवश्य हुआ। पर वह रामदास के पास जाना चाहता था अतः किसी तरह निकल कर उनके पास आया और बोला–मैं उनकी स्वीकृति लेकर आ गया हूं।

रामदास ने पूछा–क्या उनका दिया हुआ गुरुमंत्र भी लौटा आये हो?

रंगुजी–हां – वह भी लौटा आया हूं। पर जैसे ही मैंने उसे लौटाया और एक पत्थर पर थूंका–वह मंत्र उस पत्थर पर चित्रित हो गया। यह देख कर मुझे भी आश्चर्य हुए विना न रहा।

रामदास ने कहा– संत तुकाराम में जो शक्ति है उसका पाव हिस्सा भी मेरे पास नही है। मै तुझे अपना शिष्य नही बना सकता। तेरा उद्धार वही है। तू उनके पास जा और उनके चरणो मे अपने को समर्पित कर दे। काले पत्थर पर भी गुरुमत्र अंकित हो गया, पर वह तेरे हृदय में अंकित न हो सका तो इसमे दोष किसका है?

आदमी मे जब तक अहंभाव रहता है तब तक उसे दूसरो की अच्छाई नजर नहीं आती है।

रंगुजी गिडगिडाते हुए कहता है– अब मै क्या करूं? न इधर का रहा न उधर का। कहां जाऊं! वे क्या मुझे वापस अपना शिष्य बना सकेगे?

रामदास ने कहा– उनका हृदय कोमल है। तू अपनी भूल स्वीकार कर, वे तुझे अवश्य स्वीकार कर लेगे। अभिमान छोडकर जो सरल बन जाता है उसे उस परम शक्ति का एक दिन साक्षात्कार अवश्य हो जाता है।

रंगुजी वापस आता है। वह तुकाराम के पैरों में पड कर माफी मांगता है। रामदास ने मुझे आपके पास ही भेजा है। मेरा उद्धार आपके हाथ में ही है। मुझे आप स्वीकार कीजिये।

सत तुकाराम का हृदय तो निर्मल था उसने उसे आशीर्वाद देकर पुनः अपना शिष्य बना लिया।

कहने का आशय यही है कि जो लोग चारो तरफ घूमते फिरते है, श्रद्धा नही रखते है, सद्गुरु पर विश्वास नही रखते उनका उद्धार कैसे हो सकता है ?

सद्गुरु का एक ही वचन अगर हृदय में उतर जाय तो कल्याण हो सकता है। पर शिष्य यही सोचता रहे कि ये तो मुझे हर समय टिक २ करते रहते है तो वह क्या सुधरेगा ? मूर्ति क्या ऐसे ही बन जाती है ? मूर्तिकार पत्थर पर कितनी मार मारता है ? जो पत्थर उस मार को सहन कर मूर्ति बनता है वही पूजा भी जाता है। जो पत्थर बीच मे ही खडित हो जाता है—मार सह नही सकता—टूट जाता है, उसकी कोई कीमत नही होती। खंडित पत्थर को कोई पूजता नही है।

गुरु कारीगर सरीखा टांके वचन उच्चार
पत्थर से प्रतिमा बने, लहे पूजा अपार।

गुरु भी कारीगर की तरह ही है शिल्पकार पत्थर को घड कर मूर्ति बनाता है तो गुरु भी शिष्य को घड कर सस्कारित बनाता है— उन्नत बनाता है। परन्तु जैसे पत्थर भी सुंदर होना चाहिये तभी वह मूर्ति बन सकता है। वैसेही शिष्य भी योग्य होना चाहिये। कमजोर पत्थर जैसे बीच मे ही टूट जाता है— खंडित हो जाता है, वैसे ही कमजोर शिष्य भी बीच मे ही डगमगा जाता है। अतः योग्य शिष्य ही उन्नति कर सकता है।

भंवरी इयल को लेकर अपने घर में रखती है। ले जाने से पहले वह उसे टोचा मारती है। जो इयल उसकी मार खाकर भी अपना सिर ऊंचा नही करती उसे ही भवरी अपने घर मे ले जाती है। सहनशीलता का ऐसा ज्ञान भंवरी को भी होता है। इसी तरह जो राग द्वेष को जीत कर जिनवर का ध्यान करते है वे ही जिन बन सकते है —

भृंगी इलिका ने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे।
जो जिन थई जिनवर ध्यावे, ते जिनवर होवे रे।

जिस इयल में सहनशीलता का गुण होता है वही भंवरी बन सकती है। इसी तरह जो शिष्य सरल और आज्ञाकारी होता है वही गुरु को प्रसन्न कर ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है।

भक्ति तो समर्पण मांगती है, उसमें सौदा नही होता। विभक्तियां ७ है—कर्ता, कर्म, करण अपादान-सम्प्रदान, संबंध और अधिकरण। ये सातो भिन्न भिन्न रहती है, पर भक्ति में अभिन्नता होती है। भक्ति करते समय भक्त भगवान से तदाकार हो जाता है।

योग के आठ अंग बताये गये है— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रतिहार्य, धारणा, ध्यान और समाधि। जब तक आत्मा समाधि में स्थित नहीं होता तब तक

वह तदाकार नही होता है। समाधि में स्थित होकर ही वह भगवान से तदाकार होता है। सिद्ध और साधक दशा उसकी मिट जाती है। और वह एकाकार हो जाता है। यही समाधि है।

अहो अहो हुं मुजने नमुं नमो मुज नमो मुज रे
अमित फल दान दातारनी, जेहथी भेट थई तुज रे।
शांति जिन अेक मुज विनती...

भक्ति में तल्लीन आत्मा स्वयं भगवान ही बन जाता है।

प्रभु जे मां वसेला छे प्रभु मां जे वसेला छे।
कसेला सत्य कर्मों मां खरी तेनी कमाणी छे।
जगतना नाथ ने जोया विना सहु धुल धाणी छे।
प्रभुनिरख्या विना नयने ऊभी चौराशी खाणी छे।

भक्ति का लक्ष्य निर्धारित होता है तभी वह सफल होती है। अभेद भाव पैदा करो। मेरी आत्मा भी सिद्ध जैसी ही है। उसमे कुछ भी अन्तर नहीं है। आवश्यकता है हृदय में ज्ञान पैदा करने की। ज्ञान जब स्व में उतरता है तभी वह सार्थक बनता है। अतः हृदय को शुद्ध रखो, उसके बिना काम नही चलेगा।

शरीर का जो भी अंग बिगडता है, डाक्टर से कटा लेते हो, ताकि बीमारी आगे नही बढ़ सके। जो पान सड जाता है तम्बोली उस पान को भी बाहर निकाल लेता है ताकि दूसरे पान न सड जाये। वैसे ही जो दुर्गुण आत्मा में प्रवेश कर गये है। उन्हें निकालने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? हृदय को शुद्ध बनाओगे तभी हमारा कहना और तुम्हारा सुनना भी सार्थक हो सकेगा।

उपाश्रय में जाकर क्या करते हो ? रोज रोज जाते हो पर आदत में तो सुधार होता नही है। क्यो महासती जी का गला बिगाडते हो ? ऐसा कोई पूछनेवाला भी तुम्हारे घर में है ?

घर में यह ऐलान कर दो कि मुझे अपने दुर्गुण दूर करना है। मैं अपनी भूल स्वयं देख नहीं सकता। जिस किसी को मेरी भूल मालूम पडे वह मुझे बतावे, मै उसे दूर करने का प्रयत्न करूंगा। ऐसी भावना रखोगे तो आत्मा को उच्च बना सकोगे।

आत्मा का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान होता है। शेष ज्ञान तो अज्ञान है। उससे आत्मा को कोई लाभ नहीं होता। अतः सच्चे ज्ञान को समझो और उसे समझ कर अपनी आत्मा में उतारने का प्रयत्न करोगे तो एक दिन शुद्ध-बुद्ध-सच्चिदानंद की प्राप्ति अवश्य कर सकोगे।

ता. २०-९-६८

[८१]

भगवान ने नौ तत्व-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा बंध और मोक्ष-बताये है। इनमे हेय, ज्ञेय और उपादेय कौन है ? यह समझना आवश्यक है।

जीव तत्व मे स्वाभाविक और वैभाविक दोनों तरह की शक्ति होती है। स्वभाव परिणमन-अपनी शक्ति का विकास करना और पर भाव परिणमन-पुद्गल की ओर आकर्षित होना—ये दोनों शक्तियां जीव मे होती है। चार द्रव्य-धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ऐसे है—जिसमे स्वभाव परिणमन ही होता है। लेकिन जीव मे दोनों शक्तियां है। आज वह स्व के बजाय पर मे अधिक आकर्षित हो रहा है। तीनो काल मे जड मे सुख नही है, सुख तो चैतन में ही है। आत्मा जब निज स्वभाव मे स्थिर होता है तभी वह उस आनंद का अनुभव कर सकता है।

जैसे कुत्ता हड्डी चबाता है और चबाते चबाते उसके दांत से रक्त निकल जाता है, उसके स्वाद मे वह हड्डी चबाने का आनंद मान लेता है। वैसा ही सुख आत्मा जड पदार्थो मे भी मान लेता है। यह उसकी अज्ञानता ही है। तुम पैसे मे, घर मे, स्त्री या बालक में सुख मान बैठते हो, पर वह सुख नहीं है—मृगजल की तरह वह भ्रांति ही है।

जीव को अनुकूलता मिलती है तो वह सुख अनुभव करने लगता है। साधन सामग्री मे वह सुख की कल्पना कर लेता है, पर वह सच्चा सुख नही है। जो सुख आकर चला जाय वह सच्चा सुख नही होता।

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद ल्यो गमे त्याथी भले
ए दीव्य शक्तिमान जेनी जंजीरेथी निकले
पर वस्तु मां नहि मुंजवो अेनी दया मुजने रही
अे त्यागवा सिद्धान्त के पश्चात दुख ते सुख नहि

आत्मा का सुख निर्दोष सुख है, वह किसी की अपेक्षा नही रखता। संयोग या वियोग का सुख या दुख वहां नहीं होता। शाश्वत सुख विनाशी नही होता है।

कोई दूधपाक खाने मे सुख मानता है, उसे ३–४ कटोरी पिला दो। जब वह तृप्त हो जाय तो उसे एक कटोरी और पीने को दो, न पीवे तो जबरन पिलादो। तब उसे उल्टी होने लगेगी— सुख मे भी दुख प्रतीत होने लगेगा। तब वह सुख कहां चला गया ? सच्चा सुख तो वह है जिसमे कभी कंटाला न आवे, अरुचि पैदा न हो। जिस सुख मे अरुचि पैदा हो वह सच्चा सुख नही है। बुखार वाले आदमी को तो दूधपाक जहर जैसा लगता है। अतः जड सुख नश्वर है, उसे शाश्वत सुख मत समझो। एक को सुख रूप और दूसरे को दुख रूप प्रतीत होनेवाला सुख सच्चा सुख कैसे कहा जा सकता है ? अतः सच्चा सुख तो आत्माका ही है।

शादीके समय औरतें चूदडी पहनती है, फिर उसे जीवन भर संभाल कर भी रखती है। लेकिन जब पति मर जाता है तब क्या वह चूदणी उसे सुख दे सकती है? शादी के समय जो प्रिय थी, मृत्यु होने पर वही अप्रिय हो गई। अत: जडमें सुख कहां है ? तुम क्यों उसमे सुख मान रहे हो ? पर मे सुख हो नही सकता। जो तुम सुख मान रहे हो वह सुख नही, सुखाभास है– भ्राति है।

दुख नामक वस्तु आत्मा मे है ही नही। आत्मामे तो अनंत गुण है, उनमें कही भी दु:ख का नाम तक नही है। फिर तुम अपने को दुखी क्यो मान लेते हो ?

जड मे भी दुख नही है, न सुख ही है। सुख के अभाव को दुख माना जाता है।

सुख आत्मा का गुण है। गुण और गुणी दोनों अभेद है। शक्कर में मिठास मिली हुई है– दोनो अभिन्न है, एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते है। वैसे ही आत्मा से सुख अलग नही हो सकता है। तुम चाहे जितना प्रयत्न करो, पर जड मे सुख मिलने वाला नही है। सच्चा सुख तो अपनी आत्मा मे ही है।

मान-पान –खान में सुख मानना अज्ञानता है। इसी से अनंत काल से चक्कर खा रहे हो। अब यह चक्कर बंद करना है या उसी तरह चलते रहना है ? जो अनमोल रत्न हाथ मे आ गया है उसे घुमा बैठना है या उससे कुछ लाभ कमाना है ? ज्ञानियो ने तो कहा है –

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः

सम्यग्दर्शन ज्ञान और चरित्र ही मोक्ष का मार्ग है। तीनो इकट्ठे हो जायं तो मोक्ष निश्चित है।

वैज्ञानिक आज जिन बातो की खोज कर प्रसन्नता अनुभव कर रहे है वे उन्होने जानी कहा से है ? जिन बातो को वे आज जान रहे है– जैनधर्म मे तो वे कभी की बताई गई है। पानी मे जीव है या नही ? इसको साबित करने मे सर जगदीशचन्द्र बोस को १७ वर्ष लग गये, पर जैन का लडका भी यह कह देता है कि पानी मे जीव है। विज्ञान ने तो पानी मे त्रस जीवो का ही पता लगाया है, पर जैनदर्शन तो यहा तक कहता है कि पानी स्वय जीव है। उसको भी चार पर्याप्ति, २ दर्शन, ३ शरीर और आठ कर्म है ? प्रदेश २ मे कर्म की अनंत वर्गणा भरी पडी है पानी की एक बूंद मे जैनदर्शन असंख्य जीव बताता है। इसका भी विवेचन करते हुए शास्त्र मे बताया गया है– एक जीव निकल कर सरसो के दाने जैसा शरीर धारण करे तो एक बूंद के जीव इतने हो जायगे कि वे सारे जम्बू द्वीप मे भी नही समा सकेंगे। जम्बू द्वीप की लम्बाई चौडाई एक लाख योजन की बताई गई है। ऐसा ज्ञान कौन बता सकता है ? सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी केवली भगवान ही यह बता सकते है।

भगवतीजी में गौतमस्वामी भगवान से पूछते है– क्या एकेंद्रिय जीव भी श्वासो-श्वास लेते है ?

भगवान कहते है—हां, एकेद्रिय जीव भी श्वासोश्वास लेते है, पर हम उन्हें देख नहीं सकते हैं ? ऐसी बारीक बातो को जब जानोगे तभी उन्हें समझ सकोगे। आज की वैज्ञानिक प्रगति तो उसके सामने कुछ भी नहीं है। विज्ञान की शोध तो झूठी भी हो सकती है, क्योकि वह चक्षुओ द्वारा की जाती है। वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। परन्तु आत्म चक्षु से देखा गया ज्ञान कभी भी असत्य नही हो सकता है। फिर तुम आज क्या कर रहे हो ? वैज्ञानिकों की बात सही मान रहे हो या केवली द्वारा बताये हुए मार्ग को सही मान रहे हो ?

आज का लडका समझता है पृथ्वी फिरती है, सूर्यचन्द्र नहीं फिरते। लेकिन जैनदर्शन कहता है सूर्य–चन्द्र फिरते है, पृथ्वी नही फिरती। अढाई द्वीप में रहे हुए चद्र–सूर्य फिरते हैं जबकि अढी द्वीप से बाहर रहे हुए चन्द्र–सूर्य स्थिर है। आज का वैज्ञानिक भले ही इसे आज न मानें, पर कल तो उसे इस पर विश्वास करना ही पड़ेगा। हमारी बात किसी साधारण आदमी की कही हुई नही है, यह तो केवली द्वारा बताई गई बात है, वह तीन काल मे भी असत्य नही हो सकती।

आज वैज्ञानिक चन्द्र लोक के फोटो ले रहे है। यह चन्द्र लोक कितना बड़ा है?

हमारे शास्त्र में बताया गया है– एक योजन के ६२ भाग होते है–ऐसे ५६ भाग का लम्बा और आधा भाग चौडा यह चन्द्र लोक है। एक योजन ४००० गाऊ का होता है। चन्द्र तो सूर्य से भी ज्यादा प्रकाशमान है, पर आज का विज्ञान तो यह कहता है कि चन्द्र सूर्य से प्रकाश लेता है। इस प्रकार आज की भूगोल जैन भूगोल से बिल्कुल उल्टी बाते कहती है।

चन्द्र विमान को १६ हजार देवता चलाते है। चारों दिशाओ से चार चार हजार देवता उसे खीचते है। बैठने वाला तो अलग होता है।

सूर्य भी अग्नि का गोला नहीं है जैसा कि आज माना जा रहा है। वह एक स्फटिक रत्न है जिसका कनकवर्ण है। उसकी चाल एक मुहूर्त में ५२५१ योजन बताई गई है। सारे दिन मे वह ९४५२६ योजन चलता है। आज जो सूर्य यहां उदित हुआ है वह कल यहा न आकर इरवत में चला जावेगा और इरवत वाला यहां उदित होगा। इस तरह भरत खंड में २ चन्द्र और २ सूर्य है। घातकी खंड में १२ चन्द्र और १२ सूर्य है। कालोदधि में ४२ चन्द्र और ४२ सूर्य हैं। अर्ध पुष्कर मे ७२ चन्द्र और ७२ सूर्य हैं।

एक २ नक्षत्र के परिवार में ८८ ग्रह २८ नक्षत्र और ६६९७५ क्रोडाक्रोट तारा मंडल कहा गया है। चन्द्र प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति में यह वर्णन किया

गया है। उसे तो समझना नही और ऊपर से यह कहना कि हमारे शास्त्रो में तो कुछ नही कहा है, ऐसा कहना कहां की बुद्धिमानी है।

धर्म पढाने के लिये बम्बई मे रत्नचितामणि स्कूल की स्थापना की गई थी, पर आज वहां धर्म क्यो नही सिखाया जाता है—इसका कभी तुम्हे विचार भी आता है? तुम अपने लडकों को क्या बना रहे हो? याद रखना अगर यही हालत बनी रही तो एक दिन वे अडे खाने मे भी पाप नही समझेगे और नव-तत्वो को तो वे हम्बक कह कर मजाक उडाने लगेगें।
क्या तुम ऐसी हालत देखना चाहते हो?

एक जैन लडका हमारे पास आया और कहने लगा—आज का विज्ञान जड को चैतन बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

भगवान ने तो कहा है—

तीन काल मे भी जड चैतन नही हो सकता। फिर विज्ञान उसे चैतन कैसे कर सकेगा? आज का विज्ञान मानव को कहा लेजाकर छोडेगा कुछ कहा नही जा सकता!

जैन धर्म तो विजेता का धर्म है। उसका नाम लेने मे भी तुम संकुचितता का अनुभव करते हो। पर वह संकुचित धर्म नही है। उसमें तो सभी धर्मो का समावेश हो जाता है।—

> **जिनवर मां सघला दर्शन छे**
> **दर्शने जिनवर भजना रे।**
> **सागरमां सघली तटनी सही,**
> **तटनी मां सागर भजना रे।**
> **षड दर्शन जिन अग भणीजे,**
> **न्याय षडंग जे साधे रे।**
> **नमि जिनवरना चरण उपासक**
> **षड् दर्शन आराधे रे।**

षट् दर्शन—नैयायिक, बौद्ध, लोकायत, सांख्य, मीमांसक और चार्वाक सभी जैन शासन में समा जाते है। पर जैन दर्शन उनमे नही मिलेगा। जैसे सागर मे सभी नदियां आकर मिल जाती है, पर समुद्र नदियों मे नही समाता, वैसे ही जैन दर्शन भी किसी दर्शन में समाता नही है, सभी दर्शन उसमे आकर समा जाते है। क्योंकि वह तो सापेक्षवाद है—स्याद्वादका दर्शन है—

वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठो कह्यो
वचन सापेक्ष व्यवहार साचो
वचन निरपेक्ष व्यवहार संसार फल
सांभली आदरी कांइक राचो
धार तलवार नी सोहिली दोहिली
चौदमां जिनतणी चरण सेवा।

वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठा होता है। सापेक्ष वचन व्यवहार ही सच्चा है। एक आदमी पति भी है, पुत्र भी है और पिता भी है, अपेक्षा से वह तीनो हो सकता है। ऐसा सापेक्षवाद ही सच्चा होता है। इस अपेक्षा को स्वीकार न करना झूठ है। पिता की अपेक्षा से पुत्र, पत्नी की अपेक्षा से पति और पुत्र की अपेक्षा से पिता होना असत्य नही है। इसे तो मानना ही पडेगा। ऐसा सापेक्षवाद ही जैन धर्म है।

वस्तु अनत धर्मात्मक है। एक एक तत्व मे अनंत धर्म रहे हुए है। उनका अपेक्षा दृष्टि से ज्ञान करना चाहिये। ऐसा ज्ञान क्या आज कालेजो मे मिल सकता है? फिर भी तुम्हारी जैनशाला आज लगडी ही क्यो चल रही है? कादावाडी मे ३००० घर होते हुए भी रोज ३०० लडके भी पढने न आवे तो यह कैसी बात है? क्या कभी तुम जैनशाला मे आकर देखते भी हो कि कितने लडके आ रहे है? खाली इनाम बांटने से क्या होता है? लडका स्कूल नही जाता है तो जबरदस्ती उसे भेजते हो, पर जैनशाला में उसे कहां भेजते हो? सोचते हो जैन-शाला मे पढ़ने से क्या मिलेगा! स्कूल मे पढेगा तो कमा कर खिलावेगा। ऐसा सोचना भी ठीक नही है। याद रखना, यहा जो ज्ञान उसे मिल सकेगा वह कोलेजो मे भी नही मिल सकेगा।

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञान मां
कही शक्या नही ते पण श्री भगवान जो,
तेह स्वरूप ने अन्य वाणी ते शुं कहे
अनुभव गोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो....अपूर्व अवसर...॥

कोलेज मे जाकर क्या करोगे? नौकरी ही करोगे न? गुलामी ही तो करोगे। पर जैनधर्म की एक बात भी याद रख लोगे तो एकावतारी भव कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हो।

रत्न चितामणि स्कूल कौन चलाता है? तुम्ही तो उसे चलाते हो। सर-कार से लोन लेने गये कि धार्मिक पढाना बद कर देना पडा। क्या पैसो की तुम्हारे पास कमी है? पैसा तो बहुत है, पर उसका उपयोग करना आता नही

आया है? कई लोग ऐसी २ संस्थाओ मे भी दान दे देते है जहा जवरन कद-मूल खिलाया जाता है। दान दो, पर जरा सोचकर तो दो कि उसका उपयोग किस तरह किया जायगा? अपने लडको के लिये आज तुम क्या कर रहे हो? मूल मे ही धार्मिक सस्कार होगे तो वह कभी जीवन मे दुर्व्यवहार नही कर सकेगा। जड और चैतन का उसे ज्ञान रहेगा और इससे वह कोई अनर्थ नही कर सकेगा।

एक शरावी देवलाली फिरने गया। वहां उसे श्रीमद् राजचन्द्र की एक पुस्तक पडी हुई मिल गई। उसने उसे पढ़ा तो उसका आत्मा जाग उठा। वह जड और चैतन का ज्ञाता वन गया। एक व्यसनी भी पढ़ कर सुधर सकता है तो तुम तो जैन हो, तुम अपने को सुधार न सको यह कैसी वात है?

एक हाथ मे घी और एक हाथ मे छास है। मुसीबत मे किसकी सभाल करोगे? आत्मा घी है और शरीर छाछ की तरह है! तुम आज किसकी सभाल कर रहे हो-शरीर की या आत्मा की?

जैन साहित्य की आज कभी नही है। प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, गुजराती, आदि सभी भाषाओ मे आज वह प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। दूसरा पढना वद कर उसका पठन करोगे तो आत्म तत्व की पहचान अवश्य कर सकोगे।

जिसका तुम्हे आधार है, उस सिद्धान्त मार्ग का ही लोप हो जायगा तो तुम्हारी भावी पीढी क्या करेगी?

राजचन्द्र ने १६ वर्ष की उम्र मे ही अपूर्व अवसर की रचना कर मोक्ष का मार्ग वता दिया। कैसा अपूर्व तत्वज्ञान उन्होने समझ लिया था? और आज आपका लडका २० वर्ष की उम्र मे भी नव तत्व का नाम न जानें यह कैसी वात है? जड और चैतन का ज्ञान किये विना जीवन मे आनंद का अनुभव नही किया जा सकेगा।

एक लडका पिता से कहता है-ये किराये-दार अपना किराया देते नही है, इन पर केस क्यो नही कर देते? कोर्ट इन्हें खाली करने का ओर्डर दे देगी।

पिता कहता है-मेरे किरायेदार इतने अभागे है कि उनके पास खाने को भी पैसा नही है, लडको को पढाने का भी पैसा नही है। उन पर मै केस कैसे करूं? कई धर्मात्मा लोग तो ऐसे होते हैं जो दान पुण्य करते है- तो क्या मै अपने किरायेदारो की इतनी मदद भी नही कर सकता? मैंने तो इनसे किराया नही मागने का ही निर्णय कर लिया है।

ऐसा ज्ञान कब होता है? तत्व का ज्ञान होने पर ही ऐसा भाव पैदा हो सकता है। आज आप भी गरीबों को दान देते ही हो। सहानुभूति का दीपक

हृदय मे जलते रखो—उसे बुझने मत दो। ससार सागर से तिरने का आज यही एक आधार शेष रहा है।

तैतली राजा के लडके को ७२ कला मे निपुण वनाता है। साथ मे जैनधर्म का भी ज्ञान देता है।

सव्व कला धम्म कला जीणाई

सब कलाओ मे धर्म कला सर्व श्रेष्ठ होती है। क्योंकि वही जीव को बधन मुक्त करती है। तैतली उसे धर्म भी सिखाता है।

धर्म को जीवन में उतारो। नाम मात्र के जैन मत बनो। खाने-पीने और पहनने मे भी विवेक रखो। बचपन मे ही धर्म सस्कार डालोगे तो आत्मा का उत्थान अवश्य होगा।

छगन दादा मरने की तैयारी मे है। शरीर कृश हो गया है। उठ-बैठ भी नही सकते। वाणी अवरुद्ध हो गई है—साफ बोल भी नही सकते। बिस्तर पर पडे पड़े उन्होने देखा—वाडे मे बछडा झाड़ू खा रहा है। बोल पडे—व–झा, व–झा सुनकर लडके दौड आये। लडकोने समझा पिता कुछ गुप्त बात बताना चाहते है—डाक्टर को बुलावो और इजेक्शन लगावो—शरीर मे कुछ गरमी आवेगी तो दो बात कर सकेगे—जो कुछ गुप्त खजाना बताना होगा तो वह बता सकेगे। लडकोने डाक्टर बुलाया—डाक्टर ने इंजेक्शन लगा कर दादा को बोलने योग्य कर दिया। लडको ने पूछा—क्या बात है? आप क्या कहना चाहते थे?

छगन दादा बोले—वाडे मे बछडा झाड़ू खा रहा है, उसे बाध क्यो नही देते हो?

तुम्हारा भी ऐसा ही हाल तो नही तो रहा है? सारी जिन्दगी विषय-कषायो मे व्यतीत कर दी, पर अब भी तुम्हे धर्म मे रस कहा आ रहा है?

लडके कहते है—बाप्पा, अब कुछ धर्मादा भी कर लो—मरते मरते भगवान का नाम तो ले लो। लेकिन छगन दादा को यह अच्छा नही लगता। जिन्दगी भर जिसने कभी धर्म का नाम नही लिया वह मरते समय क्या याद करेगा?

लडको ने सोचा—गाठिया और लड्डू की थाली मगवा लो, बाप्पा का हाथ लगा कर उसे कुत्तो को खिला दो। कम से कम इतना पुण्य तो बाप्पा के हाथ से करवा दो। बाप्पा के सामने जब लडके उन थालियों को लेकर आते है और कहते है—बाप्पा हाथ लगाओ, यह कुत्तो को खिला रहे है—तुम्हारे नाम का पुण्य कर रहे है—तो छगनदादा हाथ फेरते हुए कहता है—

इतना ज्यादा—(आटला बधा)

यह कहते कहते ही वह तो अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। जो

अपने हाथ से दे देता है वही साथ मे ले जा सकता है। बंधुओ! तत्व को समझोगे तो धर्म की प्राप्ति कर सकोगे।

रत्न चिंतामणि सम भूली तुजने,
मणि खोलता फणि भेटे रस्ते,
उछले जोईने अे करडाई।
आ सारी उमर गई ललचाई .. आ सारी....।
अे भूल हवे मने समझाई .....आ सारी...

रत्न चिन्तामणि को छोडकर नागमणि ढूढते फिरा और उसके लिये जैसे ही राख मे हाथ डाला तो नाग ने डक मार दिया, तब उसे अपनी भूल समझ में आती है। ससार मे तुम भी यही तो नही कर रहे हो? कितना तुम्हे चाहिये! सतोप तुम्हे अब भी नही हुआ है? फुटपाथ पर सोने वाला भिखारी भी जिस मस्ती से रात मे सोता है क्या वैसी नीद तुम भी निकाल सकते हो? आज हमारी भूल हमे समझ मे आ रही है? अगर अब भी तुम सभल जाओगे और कषायो को छोडने का प्रयास करोगे तो अभी भी कुछ नही विगडा है– बाजी हाथ मे है–तुम उसे जीत सकोगे–अपनी आत्मा का अवश्य कल्याण कर सकोगे—

ता २१-९-६८

[८२]

तैतली राजा के लडके का पालन करता है। उसे ७२ कलाओ के साथ धर्म का भी ज्ञान कराता है। क्योकि वे सभी कलाये तो बंधन कर्ता है जबकि धर्म ही बधनो से मुक्त करने वाला है।

अभिमान आत्मा का शत्रु है। मिथ्याभिमान करने से आत्मा का उद्धार नही होता है। गुण न होने पर भी गुणी कहलाना, धर्म न करने पर भी धर्मी कहलाना, सच न बोलने पर भी सत्यवादी कहलाना और जगत मे प्रशंसा प्राप्त करना और मन मे फूल जाना ऐसा ही है जैसा कि किसी लोहे की झड पर सोने का पतरा लगा कर उसे सोने की कहना। जैसे पारखी की आखो मे वह लोहा सोना नही हो सकता वैसेही ज्ञानियो की दृष्टि मे गुणो का स्वाग करने वाला गुणी नही हो सकता है। मिथ्याभिमान करना भी पाप ही कहा गया है।

शालिवान राजाने एक बार सभा मे पूछा–किसका जीवन धन्य है?

एक बोला—धनवान का।

दूसरा बोला–जिसके लडके विनयी हो उसका जीवन धन्य है।

हृदय मे जलते रखो—उसे वुझने मत दो। ससार सागर से तिरने का आज यही एक आधार शेप रहा है।

तैतली राजा के लडके को ७२ कला मे निपुण वनाता है। साथ मे जैनधर्म का भी ज्ञान देता है।

सव्व कला धम्म कला जीणाई

सब कलाओ मे धर्म कला सर्व श्रेष्ठ होती है। क्योकि वही जीव को वधन मुक्त करती है। तैतली उसे धर्म भी सिखाता है।

धर्म को जीवन मे उतारो। नाम मात्र के जैन मत वनो। खाने–पीने और पहनने मे भी विवेक रखो। वचपन मे ही धर्म संस्कार डालोगे तो आत्मा का उत्थान अवश्य होगा।

छगन दादा मरने की तैयारी मे है। शरीर कृश हो गया है। उठ–वैठ भी नही सकते। वाणी अवरुद्ध हो गई है—साफ वोल भी नही सकते। विस्तर पर पड़े पड़े उन्होने देखा—वाडे मे वछडा झाड़ू खा रहा है। वोल पडे—व–झा, व–झा. सुनकर लडके दौड आये। लडकोने समझा पिता कुछ गुप्त वात वताना चाहते है—डाक्टर को वुलावो और इजेक्शन लगावो—शरीर मे कुछ गरमी आवेगी तो दो वात कर सकेगे—जो कुछ गुप्त खजाना वताना होगा तो वह वता सकेगे। लडकोने डाक्टर वुलाया—डाक्टर ने इजेक्शन लगा कर दादा को वोलने योग्य कर दिया। लडको ने पूछा—क्या वात है? आप क्या कहना चाहते थे?

छगन दादा वोले—वाडे मे वछडा झाड़ू खा रहा है, उसे वाध क्यो नही देते हो?

तुम्हारा भी ऐसा ही हाल तो नही तो रहा है? सारी जिन्दगी विपय-कषायों मे व्यतीत कर दी, पर अव भी तुम्हे धर्म मे रस कहा आ रहा है?

लडके कहते है—वाप्पा, अव कुछ धर्मादा भी कर लो—मरते मरते भगवान का नाम तो ले लो। लेकिन छगन दादा को यह अच्छा नही लगता। जिन्दगी भर जिसने कभी धर्म का नाम नही लिया वह मरते समय क्या याद करेगा?

लडको ने सोचा—गांठिया और लड्डू की थाली मंगवा लो, वाप्पा का हाथ लगा कर उसे कुत्तों को खिला दो। कम से कम इतना पुण्य तो वाप्पा के हाथ से करवा दो। वाप्पा के सामने जव लडके उन थालियो को लेकर आते है और कहते है—वाप्पा हाथ लगाओ, यह कुत्तो को खिला रहे है—तुम्हारे नाम का पुण्य कर रहे है—तो छगनदादा हाथ फेरते हुए कहता है—

इतना ज्यादा—(आटला वधा)

यह कहते कहते ही वह तो अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है। जो

अपने हाथ से दे देता है वही साथ मे ले जा सकता है। बंधुओं! तत्व को समझोगे तो धर्म की प्राप्ति कर सकोगे।

रत्न चितामणि सम भूली तुजने,
मणि खोलता फणि भेटे रस्ते,
उछले जोईने अे करडाई।
आ सारी उमर गई ललचाई... आ सारी....।
अे भूल हवे मने समझाई .....आ सारी...

रत्न चिन्तामणि को छोडकर नागमणि ढूढते फिरा और उसके लिये जैसे ही राख मे हाथ डाला तो नाग ने डक मार दिया, तब उसे अपनी भूल समझ मे आती है। ससार मे तुम भी यही तो नही कर रहे हो? कितना तुम्हे चाहिये! संतोप तुम्हे अब भी नही हुआ है? फुटपाथ पर सोने वाला भिखारी भी जिस मस्ती से रात मे सोता है क्या वैसी नीद तुम भी निकाल सकते हो? आज हमारी भूल हमे समझ मे आ रही है? अगर अब भी तुम सभल जाओगे और कषायो को छोडने का प्रयास करोगे तो अभी भी कुछ नही विगडा है– वाजी हाथ मे है–तुम उसे जीत सकोगे–अपनी आत्मा का अवश्य कल्याण कर सकोगे —

ता. २१–९–६८

[८२]

तैतली राजा के लडके का पालन करता है। उसे ७२ कलाओ के साथ धर्म का भी ज्ञान कराता है। क्योंकि वे सभी कलाये तो बंधन कर्ता है जबकि धर्म ही बधनो से मुक्त करने वाला है।

अभिमान आत्मा का शत्रु है। मिथ्याभिमान करने से आत्मा का उद्धार नही होता है। गुण न होने पर भी गुणी कहलाना, धर्म न करने पर भी धर्मी कहलाना, सच न बोलने पर भी सत्यवादी कहलाना और जगत मे प्रशंसा प्राप्त करना और मन मे फूल जाना ऐसा ही है जैसा कि किसी लोहे की छड पर सोने का पतरा लगा कर उसे सोने की कहना। जैसे पारखी की आखो मे वह लोहा सोना नही हो सकता वैसेही ज्ञानियो की दृष्टि मे गुणो का त्याग करने वाला गुणी नही हो सकता है। मिथ्याभिमान करना भी पाप ही कहा गया है।

शालिवान राजाने एक वार सभा मे पूछा–किसका जीवन धन्य है?

एक बोला—धनवान का।

दूसरा बोला–जिसके लडके विनयी हो उसका जीवन धन्य है।

तीसरा बोला—शरीर सशक्त हो उसका जीवन धन्य है। चौथा बोला—मील मालिक का। तुम किसका जीवन धन्य मानते हो! जिसके घरमे रेडियो, रेफरीजेटर और टेलीफोन हो क्या उसका जीवन धन्य है? राजा को किसी के उत्तर से सन्तोप नही होता है। वह कालिदास की ओर देखता है।

कालिदास कहता है—जिसने अपनी आत्मा मे धर्म उतारा है उसीका जीवन धन्य है।

गन्ने को चाहे तुम कोल्हू मे पीलो, वह रस ही देता है। इसी तरह जो सज्जन पुरुप होते है उन्हे तुम चाहे जितने कष्ट दो वे किसी का भी अहित नही करते है। जैसे अगरवत्ती जलते हुए भी सुवास ही फैलाती है—इसी तरह सज्जन पुरुष भी कष्ट सहकर ज्ञान की निर्मल धारा ही बहाते रहते है। क्षमा का पवित्र झरना ही उनके मुखारविन्द से झरता रहता है।

वधुं दुख जगत नुं खमवुं छे।
प्रभु चंदन मारे बनवुं छे।
कोई कापे करवत थी तो पण कहु छु हरकत नथी
नीची मुंडीओ मारे नमवुं छे, प्रभु चंदन

चदन वृक्ष को कोई करवत से काटे तव भी वह सुवास ही देता है। दुखो को सहन करने वाला ही महान वनता है। क्षमा करने वाला उर्ध्व गति करता है जब कि क्रोध करने वाला अधोगति मे जाता है।

कोई लाभ उठावे घसी २ ने
तो पण कहु छुं हंसी २ ने।
परनी शांति मां मारे दमवुं छे, प्रभु.....।

चदन कहता है—कोई मुझे घिस कर माथे पर लगाता है और उसी में शान्ति अनुभव करता है तो इसमे भी मुझे खुशी ही है। एकेन्द्रिय जीव भी ऐसा करता है तो तुम तो पचेन्द्रिय हो। तुम क्या करके खुश होते हो? सेवा करके खुश होते हो या सेवा करा कर? किसी को खिला कर खुश होते हो या स्वयं खाकर? चदन जैसा वनना है तो उसके जैसा वनो। उसको जला देने पर भी वह सुवास ही देता है। इसी तरह सज्जन पुरुप भी मर कर अपनी सुवास ही फैलाता है। जो दुर्जन होता है वह जीकर भी भारभूत वनता है और मर कर भी भारभूत होता है। तुम क्या वनना चाहते हो? इसका निर्णय स्वय करो।

दुर्जन पुरुप किसीके गुण देख नही सकता है। उसकी तुलना किससे की जाय यह सोचते हुए कालीदास ने उसे जंगली कह देना ही ठीक समझा। इतने

मे तो जगल मे से सिह आया और बोला तुम यह क्या कह रहे हो? दुनिया के आदमी को जंगली कह रहे हो, जगली तो हम है। हमे तुम क्रुर कहते हो और तुम स्वयं दयालु बनते हो। पर जरा देखो तो सही तुम कैसे दयालु हो?

सिह का पेट भरा हुआ हो तो वह किसीको मारता नही है। पर तुम्हारा पेट कभी भरता है? तिजोरी भरी पडी है फिर भी भूखे के भूखे? तुम्हारा परिग्रह कितना वढा हुआ है? सिह कहता है हम तो भुखे होते है तभी सिह-नाद करते हुए वाहर निकलते है और जगल के जानवरो को सावधान करके अपना आहार खोजते है, लेकिन तुम ऐसा कहाँ करते हो? दुकान पर बैठे हो, नया ग्राहक आया नही कि फसाने की चाल चलने लगते हो। अत जगली तुम हो या हम? तुम हमे क्रुर कहते हो, पर क्रुर तुम हो या हम?

सिह पहले वलवान प्राणी की खोज करता है। वह मिल जाय तो छोटे जानवरो की तरफ देखता भी नही। दूसरों का मारा हुआ भी वह खाता नही है। वह स्वय अपना आहार खोज लाता है। लेकिन तुम क्या कर रहे हो? पराये धन को भी हजम करना चाहते हो। यहाँ मुँहपत्ति बाँध कर बैठते हो, पर यहाँ से जाकर क्या करते हो, यह तो देखो। सिह कल की फिकर नही करता और न संग्रह करके ही रखता है। तुम लोग कितना सग्रह करके रखते हो क्या तुम्हे अपने पर विश्वास नही है? मुखवस्त्रिका बाँधने वालो जरा समझो! माल घर मे पडा हो, मुँह से ना कहो यह तुम्हे शोभा नही देता, भगवान महावीर के श्रावक क्या ऐसा झूठ बोल सकते है?

कालीदास ने सिह की वात सुनकर दुर्जन पुरुप को गरीब गाय की उपमा दी। गाय आई और बोली हम तो उपकार करती है, घास खाकर दूध देती है, खेती करने के लिए बैल देती है लेकिन तुम कितने स्वार्थी हो जब हमारा दूध बंद हो जाता है तब तुम हमे कसाई के यहाँ भेज देते हो, ऐसे स्वार्थी हम नही है।

वनमां रजलती ने घास मुखे चरतीरे
अे-री-ओली गावडीय् पोतानु दुध नथी पीती रे।
अे-री ओला झाडवा पोताना फल नथी खाता रे।।
उपकारी ऐनो आत्मा रे।

गाय ने कालीदास से कहा-तुम मेरी तुलना दुर्जन के साथ मत करो। कालीदास ने कहा-ठीक है, तुम्हारी बात भी मान लेता हूँ। दुर्जन तो कुत्ते की तरह है। इतने मे कुत्ता आया और बोला-यह क्या कहते हो? हम तो वफादार नौकर है। जिसका खाते है उसकी चौकिदारी बराबर करते है। तुम तो जिसका

तीसरा बोला---शरीर सशक्त हो उसका जीवन धन्य है। चौथा बोला--मील मालिक का। तुम किसका जीवन धन्य मानते हो! जिसके घरमे रेडियो, रेफरीजेटर और टेलीफोन हो क्या उसका जीवन धन्य है? राजा को किसी के उत्तर से सन्तोष नही होता है। वह कालिदास की ओर देखता है।

कालिदास कहता है--जिसने अपनी आत्मा मे धर्म उतारा है उसीका जीवन धन्य है।

गन्ने को चाहे तुम कोल्हू मे पीलो, वह रस ही देता है। इसी तरह जो सज्जन पुरुष होते है उन्हे तुम चाहे जितने कष्ट दो वे किसी का भी अहित नही करते है। जैसे अगरवत्ती जलते हुए भी सुवास ही फैलाती है--इसी तरह सज्जन पुरुष भी कष्ट सहकर ज्ञान की निर्मल धारा ही वहाते रहते है। क्षमा का पवित्र झरना ही उनके मुखारविन्द से झरता रहता है।

बधुं दुख जगत नुं खमवुं छे।
प्रभु चंदन मारे बनवुं छे।
कोई कापे करवत थी तो पण कहु छु हरकत नथी
नीची मुंडीअे मारे नमवुं छे, प्रभु चंदन

चदन वृक्ष को कोई करवत से काटे तब भी वह सुवास ही देता है। दुखो को सहन करने वाला ही महान बनता है। क्षमा करने वाला उर्ध्व गति करता है जब कि क्रोध करने वाला अधोगति मे जाता है।

कोई लाभ उठावे घसी २ ने
तो पण कहु छुं हंसी २ ने।
परनी शांति मां मारे दमवुं छे, प्रभु.....।

चदन कहता है--कोई मुझे घिस कर माथे पर लगाता है और उसी में शान्ति अनुभव करता है तो इसमे भी मुझे खुशी ही है। एकेन्द्रिय जीव भी ऐसा करता है तो तुम तो पचेन्द्रिय हो। तुम क्या करके खुश होते हो? सेवा करके खुश होते हो या सेवा करा कर? किसी को खिला कर खुश होते हो या स्वय खाकर? चदन जैसा वनना है तो उसके जैसा वनो। उसको जला देने पर भी वह सुवास ही देता है। इसी तरह सज्जन पुरुप भी मर कर अपनी सुवास ही फैलाता है। जो दुर्जन होता है वह जीकर भी भारभूत वनता है और मर कर भी भारभूत होता है। तुम क्या वनना चाहते हो? इसका निर्णय स्वय करो।

दुर्जन पुरुप किसीके गुण देख नही सकता है। उसकी तुलना किससे की जाय यह सोचते हुए कालीदास ने उसे जंगली कह देना ही ठीक समझा। इतने

मे तो जगल मे से सिह आया और बोला तुम यह क्या कह रहे हो ? दुनिया के आदमी को जंगली कह रहे हो, जंगली तो हम है। हमे तुम क्रुर कहते हो और तुम स्वयं दयालु बनते हो । पर जरा देखो तो सही तुम कैसे दयालु हो ?

सिह का पेट भरा हुआ हो तो वह किसीको मारता नही है। पर तुम्हारा पेट कभी भरता है ? तिजोरी भरी पडी है फिर भी भूखे के भूखे ? तुम्हारा परिग्रह कितना बढा हुआ है ? सिह कहता है हम तो भुखे होते है तभी सिह-नाद करते हुए बाहर निकलते है और जगल के जानवरो को सावधान करके अपना आहार खोजते हैं ; लेकिन तुम ऐसा कहाँ करते हो ? दुकान पर बैठे हो, नया ग्राहक आया नही कि फसाने की चाल चलने लगते हो। अतः जंगली तुम हो या हम ? तुम हमे क्रुर कहते हो, पर क्रुर तुम हो या हम ?

सिह पहले बलवान प्राणी की खोज करता है। वह मिल जाय तो छोटे जानवरो की तरफ देखता भी नही। दूसरो का मारा हुआ भी वह खाता नहीं है। वह स्वय अपना आहार खोज लाता है। लेकिन तुम क्या कर रहे हो ? पराये धन को भी हजम करना चाहते हो। यहाँ मुँहपत्ति बाँध कर बैठते हो, पर यहाँ से जाकर क्या करते हो, यह तो देखो। सिह कल की फिकर नही करता और न सग्रह करके ही रखता है। तुम लोग कितना सग्रह करके रखते हो क्या तुम्हे अपने पर विश्वास नही है ? मुखवस्त्रिका बाँधने वालो जरा समझो ! माल घर मे पडा हो, मुँह से ना कहो यह तुम्हे शोभा नही देता, भगवान महावीर के श्रावक क्या ऐसा झूठ बोल सकते है ?

कालीदास ने सिह की बात सुनकर दुर्जन पुरुष को गरीब गाय की उपमा दी। गाय आई और बोली हम तो उपकार करती है, घास खाकर दूध देती है, खेती करने के लिए बैल देती है लेकिन तुम कितने स्वार्थी हो जब हमारा दूध बद हो जाता है तब तुम हमे कसाई के यहाँ भेज देते हो, ऐसे स्वार्थी हम नही है।

वनमां रजलती ने घास मुखे चरतीरे
अे-री-ओली गावडीयु पोतानु दुध नथी पीती रे।
अे-री ओला झाडवा पोताना फल नथी खाता रे।।
उपकारी ऐनो आत्मा रे।

गाय ने कालीदास से कहा-तुम मेरी तुलना दुर्जन के साथ मत करो। कालीदास ने कहा-ठीक है, तुम्हारी बात भी मान लेता हूँ। दुर्जन तो कुत्ते की तरह है। इतने मे कुत्ता आया और बोला-यह क्या कहते हो ? हम तो वफादार नौकर है। जिसका खाते है उसकी चौकिदारी बराबर करते है। तुम तो जिसका

खाते हो उसकी निदा करना भी नही छोडते। क्या खिलाया ! घी तो वेजीटेबल था। ऐसा तो हम नही करते है।

कालीदास ने सोचा—तब मै क्या कहूँ। राख की तरह कह दूँ ? राख बोली—मै तो धान की रक्षा करती हूँ। दुर्जन तो किसीको बचाता नही है, घर का झगडा संघ मे ले आता है। उनके साथ मेरी तुलना मत करो।

अन्त मे कालीदास को यही कहना पडा कि दुर्जन की तुलना किसीसे नही की जा सकती।

बिच्छु को छुओगे तो डक मारेगा, सर्प के मार्ग मे आ जाओगे तो वह काट खायगा। पर दुर्जन तो दूर से ही प्रहार करता है अतः उसका सग मत करो। संग करो तो ऐसे सज्जनो का करो जो धर्म के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देते है। औरगजेब ने गुरु गोविन्दसिह के लडको को जीवित दिवाल मे चणा दिया, पर उन्होने अपना धर्म नही छोडा। ऐसो का जीवन ही धन्य बनता है। जो ऐसे सज्जन बनेगे वे ही अपनी आत्मा का उद्धार कर सकेगे।

ज्ञान आत्मा को प्रकाश देता है। जिसके पास सम्यग्ज्ञान होता है उसी की आत्मा विकास कर सकती है। पुद्गलानदी को तो पुद्गल ही अच्छे लगते है, वह उसी मे सुख मानता है, चैतन का उसे स्मरण भी नही होता। वह उसी मे जड बन जाता है। वह अपने को धनवान और दूसरो को गरीब समझने लगता है। पर वह नही जानता कि आज चढती है तो कल पडती भी आ सकती है।

रेट के चार खाने आपने देखे होगे। झूलने वाले उनमे बैठते है। जो ऊपर जाता है, वह नीचे भी आता है और नीचे वाला ऊपर भी जाता है। यही हाल संसार का भी है। जो आज लखपती बना हुआ है, कल वह भिखारी बन जाता है, और कल का भिखारी आज लखपती बन जाता है। ऐसी चचल लक्ष्मी मे तुम क्यो फस रहे हो।

ऊपर से तो बडे साफ सूफ रहते हो, परन्तु अदर से कोई व्यसन छोडा नही है। सभी बातो मे पूरे होशियार हो। वैश्यावृत्ति भी करते हो—मदिरा पान भी कर लेते हो—और साधुओ के दर्शन करने भी आ जाते हो, वहा भी अपना परिचय कराते फूले नही समाते हो—ये बहुत पैसे वाले है—सभी सन्तो के पास दर्शन करने जाते रहते है। ऐसी आत्म प्रशसा मे सुख अनुभव करते हो। परन्तु संतो के दर्शन कर के भी आत्मदर्शन न करो तो उससे लाभ क्या है ? ऊपर से सफेद जरूर हो, पर अदर तो हृदय सडा हुआ है ? एक्सरे करावो तो मालूम होगा। श्रद्धा मे ही घोटाला है, चारित्र का ही ठिकाना नही है। फिर भी धर्मी कहलाने का गर्व अनुभव कर रहे हो ? मिथ्याभिमान कर रहे हो, पर इससे

तुम भगवान को ठग नही सकते। वह तो घट–घट की वात को जानने वाले है। फिर क्यो तुम अपनी आत्मा को ठग रहे हो?

आ जग पंखीनो मेलो, केम रहेशे सदैव भेलो.....

कर्म कोयडो कोथी न उकले, जाता सहु घुंचाई जाता...आ...

कर्म की मार जब पडेगी तव मालूम पडेगा कि मै क्या था? टी. वी. और कैसर कैसे हो गया? कर्म का उदय होगा तब पता चलेगा। स्वयकृत कर्म ही मनुष्य को भोगना पडता है, परकृत कर्म उसे भोगना नही पडता। न दूसरे हमारा कर्म भोग सकते है। अत कर्म करते समय विचार करो–भोगते समय विचार करने से कुछ नही होगा।

मै क्या करता हू? कोई नही जानता। इतना गुप्त रखता हू। तो क्या भगवान भी नही जानते! कहा जा रहे हो! अंधेरे मे किसी का शील लूटने तो नही जा रहे हो! सोचो, क्या कर रहे हो! मर कर कहा जावोगे? इन्द्रियो के नाच–गान तो वहुत किये, पर पाया क्या? सार क्या निकाला? चौरासी में ही घूमते रहे हो न? अत: ज्ञानी कहते है–समझ, अव भी पीछे हट! कुए पर पाल न हो तो वालक उसमे पड न जाय इसके लिये मा उसे पीछे हटाती है, लेकिन लडका हट करे और जाने की स्वतत्रता मागे तो क्या होगा? लडका कुए मे गिर कर मर जायगा। यही होगा न! तुम भी क्या यही तो नही कर रहे हो। संसार रूपी कुए मे भान भूल कर भटक रहे हो–कभी भी उसमे गिर सकते हो। जिसका चारित्र ऊचा होता है वही दुनिया मे छाती फूला कर चल सकता है। चारित्र हीन कैसे चल सकेगा?

कई लोग वोल तो वहुत अच्छा सकते है, जड और चैतन की वाते करने मे होशियार होते है, पर आचरण मे शून्य होते है। टन का टन वोल दे, पर कण भर भी जीवन मे न उतारे तो उसका क्या मूल्य है? जो कुछ वोलो उसको जीवन मे उतारो तभी उसका मूल्य है।

फड–फाला करने का मौका आता है तो सव एक दूसरे का मुह देखने लग जाते हो। देते हो तो वहुत कम देते हो और वह भी कुछ आदमी ही देगे। कोई यह कहे कि फड मे लिखाने का ही है, देने का नही है तो क्या कोई लिखाने से वाकी रहेगा? ऐसा फड कितना हो जायगा? ऐसे ही करना कुछ नही, केवल वोलना ही तो उस वोलने में क्या तकलीफ होती है? जड और चैतन का भेद तो बोल कर लेते हो, पर उसे जीवन मे उतारना तो तलवार की धार पर चलने जैसा है। वोलना तो वहुत आसान है, पर चलना वहुत मुश्किल है।

चारण-भाट जब कभी आ जाता है तो वह वंशावली पढ़ने लगता है- तुम किसके पुत्र हो? तुम्हारे बाप-दादा तो ऐसे वीर थे कि अमुक लडाई मे वे लडते-लडते मर गये, फिर भी उनका धड लडाई करते रहा था। यो वह पानी चढा सकते है, पर कुछ कर नही सकते है। ऐसे ही कई आदमी वाक-शूर होते है- जो जड और चैतन का भेद तो कर लेते है, पर अपनी आत्मा को लूटना नही छोडते है। वे उस भेद विज्ञान को कह भले ही ले, पर समझ नही सकते-जीवन मे उसका आचरण नही कर सकते। अरे कुए से रस्सी द्वारा पानी खीचते-खीचते पत्थर भी घिस जाता है, पर तुम व्याख्यान सुनते-सुनते अभी तक नही घिसे हो? क्या पत्थर से भी तुम्हारा हृदय कठौर है?

सांभली-सांभळी ने फूट्या कान
तोय न आव्युं अखा ब्रह्म ज्ञान।

मझे इतना आता है--

गणितादिक शास्त्रों ने भणिया रे
वली भाषा अनेक ने भणिया रे
चतुराईना चणतर चणिया रे
खलभलनुंरे चित्त मंदिर ना चणाव्युं
जे वृद्ध जनोअे बताव्युं

मैं चन्द्र-और सूर्य लोक की भी बात कर सकता हूं। कई भाषाओ का जानकार हू, पर आत्मा की पहचान न हो तो सब विद्या बेकार होती है।

ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के साथ दर्शन मोहनीय का भी क्षयोपशम होता है तभी ज्ञान सच्चा बनता है- तब वह अपने स्वरूप का ज्ञाता होता हैं। करने योग्य काम तो यह है। अपना बखान स्वय करना अपनी लघुता बताना हैं। तुम्हारा काम ही ऐसा होना चाहिये कि वह स्वयं तुम्हारा परिचय दे दे।

उपर थी रहे उजलो ने भीतर मेल भरेल जी,
आडंबर थी अलगो थईजा पगे कमाड न ठेल....
मुकी दे तारा मन नो मेल--(२)
अे-जी-तारो मारग बनशे सहेल ....मुकी

ऊपर से तो तुम सफेद दिखाई देते हो, पर मन से मैले रहते हो। यह ढोंग छोडोगे तभी तुम शुद्ध बन कर अपना कल्याण कर सकोगे।

तैतली और पौटिला राजा के बालक का पालन करते है। आचारांग मे कहा है कि जिसको तुम आज सुख का साधन मान रहे हो वह दुख का साधन भी बन जाता है। प्रधान ने जिस पौटिला को चाह कर अपनी पत्नी बनाया था,

अब वही उससे विरक्त रहने लगता है। पौटिला को देखना भी अब वह अच्छा नही समझता। पता नही ऐसा क्या हो गया? न तेतली ही इसे समझ पाता है और न पौटिला ही समझ पाती है।

पत्नी के लिये तो पति ही परमेश्वर होता है। पौटिला सोचती है मै पति के लिये इतनी अप्रिय क्यो हो गई हू? पत्नी और सब दुख सहन कर सकती है, पर पति उससे परागमुख हो जाय यह दुख वह सहन नही कर सकती। पौटिला हर समय दुखी रहती है, उसकी आखो से अश्रुधारा बहती रहती है। फिर भी वह अपना गुप्त रहस्य किसी को कहती नही है। वह तेतली को शान्ति भूत बनने का ही प्रयत्न करती है। अपने यहा राजा का लडका पल रहा है, अगर वह चाहती तो यह बात प्रकट कर प्रधान का अहित करा सकती है, फिर भी वह किसी से कहती नही है और अपना असह्य दुख भी शाति से सहन करती है। यही खानदानी कही जाती है। सन्नारी का यही कर्तव्य होता है।

पौटिला रात-दिन आर्तध्यान करती रहती है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २२-९-६८

[८३]

तेतली को पौटिला के प्रति अरुचि हो जाती है। पौटिला आर्तध्यान करती है। ध्यान चार तरह के कहे गये है– आर्त-रौद्र, धर्म और शुक्ल। पहले के दो ध्यान-आर्त और रौद्र ससार के कारण है जबकि धर्म और शुक्ल मोक्ष के। उन्हे ही प्रशस्त और अप्रशस्त ध्यान भी कहते है। संसार के जो निमित्त है, वे अप्रशस्त ध्यान है और मोक्ष के जो निमित्त है वे प्रशस्त ध्यान कहे जाते है।

ध्यान की भी तीन श्रेणिया है–चित्त, चिन्तन और ध्यान।

मन मे अस्थिर विचारो का आना-जाना चित्त कहलाता है। उनमे जो अशुभ है उसे मिटा कर शुभ मे आना चिन्तन है। इसमे भी सकल्प और विकल्प तो होते ही रहते है। उनको मिटा कर तदाकार हो जाना ध्यान है।

तत्वार्थ सूत्र मे कहा है।

उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्:

ध्यान कौन कर सकता है? उत्तम संहनन यानी वज्रऋषभनाराच संहनन वाला ही ध्यान कर सकता है। भगवान ने कहा है–ऐसा सहनन वाला ही मोक्ष मे या ७ वी नरक मे भी जा सकता है। दृढ शरीरी ही ध्यान कर सकता है। तुम तो एक घडी भी स्थिर होकर सामायिक मे नही बैठ सकते हो। दो

लोगस्स का काउसग्ग भी स्थिर होकर कहा कर सकते हो? कोई चीटी काट जाय तो सिर खुजलाने लग जाते हो। चित्त की एकाग्रता होना ही ध्यान कहा जाता है। फिर वह आर्त हो या रौद्र, शुक्ल हो या धर्म ? ध्यान तो है ही।

आर्तध्यान–इष्ट संयोग और अनिष्ट वियोग चाहना आर्तध्यान है। इष्ट संयोग– मेरे घर मे रेडियो हो, रेफरीजेटर हो, ट्राजीस्टर हो–मकान वडा हो तो ठीक, समुद्र के किनारे वगला मिल जाय तो अच्छा रहे। ऐसा सोच–विचार करना आर्तध्यान है। पुत्र–पुत्री की शादी करना, साडी लाना, पैसा इकट्ठा करना ये सब आर्तध्यान मे ही आते है।

शुद्ध मन से जरा जाच करोगे तो पता चलेगा कि मानव का सारा दिन आज इसी ध्यान मे चला जाता है। इष्ट सयोग कैसे हो ? और अनिष्ट वियोग कैसे हो? इसी के प्रयत्न मे सुवह से शाम गुजर जाती है।

अनिष्ट वियोग–पत्नी झगडालू है, कव उससे छुट्टी मिले, लडका अविनीत है, कव उससे भी किनारा करू। वीमारी से कैसे वचू! यह सब सोचना भी आर्तध्यान ही है। मनुष्य ममत्व को लेकर ही आर्तध्यान करता है। यह मेरा शरीर है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा लडका, है–ऐसा मानना ही आर्तध्यान पैदा करता है, पडौसी का लडका मर जाय तो तुम्हे चिन्ता नही होती क्योकि उसमे तुम अपनापन नही मानते हो। अपनापन जहां आ जाता है वही आर्तध्यान होता है।

निदान करना भी आर्तध्यान है। मै पैसे वाला कव वनूगा? परदेश की यात्रा कव करूगा? मकान का मालिक कव वनूगा? वह सुखी है, उसके जैसा मै भी सुखी कव वनूगा? देवताओ जैसी ऋद्धि चाहना भी आर्तध्यान ही है।

धर्म ध्यान करो तो आर्तध्यान से मुक्ति पा सकते हो। केवल करवट वदलने की देर है। दृष्टि वदली कि दुनिया उल्टी दिखाई देने लग जायगी। इसीलिये साधु पूछते है–धर्मध्यान करते हो न ? तुम क्या उत्तर देते हो? हा साहव, माला फेरते है, सामायिक करते है। करते तो हो, पर मन से कहां करते हो ?

मन–वचन और काया को ध्यान मे जोडना धर्मध्यान है। नदी के किनारे जो पुल होता है, वह इस किनारे से उस किनारे तक पहुचा देता है। वैसे ही धर्म ध्यान भी पुल का काम करता है, वह ससार से आत्मा को मोक्ष तक पहुचा देता है। धर्मध्यान वहिरात्मा को अन्तरात्मा मे ले जाता है। वहा से परमात्मा तक पहुचाता है। इसकी शुरुआत चौथे गुणस्थान से होती है। सम्यग्दर्शन होता है तभी धर्मध्यान हो सकता है। १, २, ३ गुणस्थान मे आर्त और रौद्र ध्यान ही रहता है। चौथे गुणस्थान में आर्त–रौद्र और धर्मध्यान होते है। मै चेतन्य हूं,

[illegible]

[illegible]

[illegible] लड़के को मरते भी क्यों हूं? इस सब घातक [illegible] मैं कुछ नहीं कर सकता हूं। मैं तो बेबस हूं। [illegible] मैं जड़ नहीं, चैतन्य हूं। ऐसा भेद विज्ञान जो समझ लेता है वही आत्मा को उन्नत बना सकता है।

जीव का जितने समय संयोग संबंध होता है, उतना पद रहता है। तदनुसार संयोग और वियोग भी होता रहता है। सती अंजना को अपने पति से २२ वर्ष का वियोग रहा। लेकिन वह सती थी—सदाचारी थी, किसी भी दिन पवनजी के लिये कटु वचन नहीं कहा। १२ वर्ष बाद जब वह गुप्त रूप में आता है तब भी वह कहती है—आप अपने माता-पिता से मिल कर आइये, नहीं तो मैं कष्ट में पड़ जाऊंगी। क्या कोई पति अपनी पत्नी को कष्ट में देखना चाहता है?

पवन जी कहते हैं– मुझे समय नहीं है, मैं तुझे अपनी अंगूठी और रुमाल देकर जा रहा हूं। कोई पूछे तो यह बता देना।

अंजना गर्भवती हो गई। सास सुसर ने उस पर शक किया, उसने पवनजी की अंगूठी और रुमाल बता कर अपने पर कलंक न लगाने की प्रार्थना की, पर दुनिया उसे कहा देखती है? उसे कुल्टा कह कर घर से बाहर निकाल दिया जाता है। अंजना अपने घर जाती है। १०० भाइयों में वह एक ही बहिन थी, फिर भी उसे घर में पैर रखने नहीं दिया गया। वहां भी उसे तिरस्कार ही किया गया। सगर्भा औरत कहां जाय? कैसे गर्भ की रक्षा हो सकेगी? आर्तध्यान करते करते वह जंगल में चली जाती है। जंगल में ही वह हनुमान को जन्म देती है। पवन पुत्र हनुमान–राम का सेवक जंगल में पैदा होता है। कर्मों का कैसा हाल है? जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भी उसे भोगना पडता है।

जो कर्म को समझता है वह संयोग–वियोग मे सुखी या दुखी नही बनता है।

१२ वर्ष बाद पवन जी वापस आते है और अंजना के लिये पूछते है तो मा कहती है–उसका नाम मत ले, वह तो कुल्टा थी, मैंने उसे घर से बाहर निकाल दिया था। पवन जी कहते है–अरे, यह क्या कर दिया? मैंने उसे अपनी अंगूठी और रूमाल दिया था। क्या वह तुमने नही देखे थे?

देखे तो थे, पर उन पर विश्वास नही किया। माता ने कहा।

कहा गई होगी? कही अपने घर तो नही चली गई? पवन जी वहा जाकर पूछते हैं तो वहां भी वह नही मिलती है। १२ वर्ष हो गये, मैं अपने माता–पिता से मिल कर अंजना के पास गया होता तो क्या यह कष्ट उसे सहन करना पडता? उसने तो कहा था, पर मैंने ही उसका कहना न माना। पवन जी मन ही मन यह पश्चात्ताप करते है।

पवन जी अजना न मिले वहा तक अन्न–जल का त्याग कर देते है। आर्त-ध्यान का स्वरूप तो देखो, जहा पहले मुह देखना भी अच्छा नही लगता था वहां आज उसके लिये प्राणो की बाजी लगाई जा रही है। उधर तैतली को भी पौटिला को देखे बिना चैन नही पडता था, वही आज उसे देखना भी नही चाहता है। यह सब आर्तध्यान का ही प्रभाव है।

पवन जी चिता मे जलने को तैयार हो जाते है। चिता तैयार की जाती है कि सामने से अजना आकर खडी हो जाती है। पवन जी उठ कर उससे माफी मागते है, कहते है–मेरे कारण से तुम्हे बहुत कष्ट हुआ, मैंने तुम्हारी बात न मानी। मुझे क्षमा करो और अब तुम मेरे साथ रह कर सुख का अनुभव करो।

अंजना कहती है– सुख क्या है और दुख क्या है? यह मैं समझ चुकी हू। इस ससार मे रहना मैं अब नही चाहती। मेरा धर्म ही मेरा सच्चा साथी है। देव–गुरु और सद्धर्म ही मेरे अपने है। और सब पराया है। भोगो मे सुख नही, वे तो रोग और दुख के घर है। वह सब कुछ छोडकर मोक्ष मार्गपर चल देती है। आत्मा विभाव मे आकर जो पाप कर्म कर लेता है उसका फल तो उसे भोगना ही पड़ता है।

पौटिला का भी ऐसा ही हाल हो गया है।

तैतली उसका नाम सुनना भी पसद नही करता। पौटिला क्या करती है? यथावसर आगे कहा जायगा।

ता. २३–९–६८

[८४]

आत्मा अनंत काल से राग और द्वेष से बधा हुआ है।

केगीस्वामी और गौतमस्वामी जब श्रावस्ती मे एक साथ अलग अलग स्थान पर ठहरे तो उनके साधुओ के आचार-विचार मे एक दूसरो को अन्तर दिखाई दिया। वे चार महाव्रत का पालन करते थे और ये ५ महाव्रत मानते थे। दोनो का उद्देश्य एक ही था, फिर भी आचार-विचार मे ऐसा अन्तर क्यो है? सभी तीर्थंकरो का प्रयोजन तो एक ही रहा है। तुम यहा आते हो, किसी न किसी प्रयोजन को लेकर ही आते हो न? विना प्रयोजन के तो कोई काम नही होता।

उढं अहेयं तरियं दिसासु तसाय जे थावर जेय पाणा।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने दीवेव धम्मं समियं उदाहु।

उर्ध्व, अधो और तिर्यग दिशा मे दो तरह के जीव है-त्रस और स्थावर। जो चलते फिरते है-वे त्रस है और जो स्थिर रहते है वे स्थावर है।

आचाराग मे कहा है-स्थावर जीवो पर चाहे जैसे घोर कष्ट क्यो न पडे वे चल नही सकते है। उनको स्थावर नाम कर्म का उदय होता है। आप भी त्रस है या स्थावर? द्रव्य से तो त्रस हो, पर भाव से स्थावर ही बने हुए तो नही हो। जैसे वृक्ष अपना स्थान नही छोडता, वैसे ही यह आत्मा भी भाव से ससार नही छोडता है। यह भाव स्थावरपना ही तो है।

प्रत्येक द्रव्य निश्चय से नित्य अबाधित है। तीनो काल मे टिकने वाला है, पर पर्याय-अवस्था बदलती रहती है। जैसे आज का बालक आगे चल कर युवक बनता है, वृद्ध बनता है, यो अवस्थाए तो दिखाई पडती है, पर आत्मा अखड रहता है, वह बदलता नही है। आत्म प्रदेश के टुकडे नही हो सकते है।

वैज्ञानिक वर्षो तक अपनी प्रयोग शाला मे प्रयोग करता है। और जब किसी की सिद्धि हो जाती है तब वह उसे दुनिया के सामने रखता है। वैसे ही भगवान महावीर ने भी १२॥ वर्ष तक अपनी आत्मा का प्रयोग किया और जब वे उसमे निपुण बन गये-सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये, तब उन्होने अपना आत्मज्ञान दुनिया के सामने रखा। दुनिया को तिरने का मार्ग बताया।

सभी तीर्थंकरो का प्रयोग एक जैसा ही होता है, परन्तु जब उन साधुओने अपने मे अन्तर देखा तो दोनों ने अपने अपने गुरु से बात कही। गौतमस्वामी ज्ञान में बडे थे, पर केशीस्वामी दीक्षा मे बडे थे। अतः वे स्वयं उनके सामने जाते है। केशीस्वामी गौतम को आते हुए देखते है तो खडे हो जाते है। और दोनो मे बैठ जाते है। सूर्य और चन्द्र की भाति दोनो शोभा पाते है। दोनों के

होते है। शास्त्र मे उनका विशद वर्णन किया गया है। यहा तो तैतली और पौटिला का वर्णन चल रहा है उन दोनो मे अरुचि क्यो पैदा हो गई? ऐसा ही प्रश्न उन दोनो समर्थ आचार्यो में भी छिड गया था।—

दीसन्ति बहवे लोए, पास बद्धा शरीरिणो।
मुक्कपासो लहुभूयो। कहं तं विहरसी मुणी।

जगत के जीव बधनो से बंधे हुए हैं। तुम कहा बंधे हए हो? सब जगह आते जाते हो फिर कहा बधे हुए हो? ज्ञानी कहते है– जगत के जीव कर्म–बधनों से बधे हुए है– उनसे तुम भी कैसे छूटे हुए हो? उनसे मुक्त कैसे बने? केशीस्वामी ने यह पूछा तो गौतमस्वामी ने कहा—

ते पासे सव्वसोछित्ता निहन्तूण उवायओ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहंमुणी।

मै उन बधनो से मुक्त होने के लिये भगवान के बताये हुए मार्ग पर चलता हूं। और अपने को हल्का अनुभव करता हूं। पर की आशा नही रखता, स्वय मे लीन रहता हू।

केशीस्वामी कहते है–तुम और हम तो यह समझ गये, पर ये बैठे हुए एक हजार साधु कैसे समझेगे। इन्हे भी समझाइये। केशीस्वामी के ५०० शिष्य और गौतम के भी ५०० शिष्य थे। एक हजार श्रमणो का वह सम्मेलन कैसा अपूर्व रहा होगा?

आज आपके कितने साधु है? सारे भारत मे स्था. साधुओ की सख्या कितनी है? तुम्हे शासन की चिन्ता कहा है? घर मे लडके की शादी न हो तो कितनी चिन्ता रहती है? शादी हो जाय और पौत्र न हो तब भी चिता रहती है। क्या शासन के प्रति भी तुम्हे इतनी चिन्ता रहती है?

एक हजार साधु और कई हजार श्रावक वहा जमा हो गये थे। गौतम स्वामी ने उनको सबोधन करते हुए कहा—

राग दोसा दओ तिव्वा नेह पासाभयंकरा।
तं छन्दिता जहानायं विहारामि महामुणी।

राग और द्वेष ये दो बधन है। उसमे भी राग का बंधन भयंकर है। द्वेष तो सामने से आने वाली गोली है, दिखाई दे जाती है, पर राग तो छिपा हुआ बारूद का गोला है, दिखाई नही देता है, फिर भी प्रिय लगता है अतः महा-भयंकर है। राग ही राग मे जीव मर जाता है– बेमान हो जाता है। द्वेप को मिटाना तो फिर भी आसान है, पर राग को नष्ट करना बड़ा कठिन है।

सूर्यप्रकाशी कमल मे भंवरा बैठा हुआ पराग का रस पी रहा है। शाम ढल रही है–सूर्य अस्त हुआ नही कि उसके साथ सूर्यप्रकाशी कमल भी बंद हो जाता है। भवरा सोचता है–अभी उडता हूं–अभी उडता हू–यह सोचते सोचते ही वह उसी मे बंद हो जाता है। रागवश वह उड़ नही सका और उसीमें बंद हो गया। भंवरा लकड़ी में भी छेदकर देता है, पर वह उस कमल मे छेद कर बाहर नही निकल सकता। क्योंकि वहां उसे राग है। इतने मे हाथी आता है और वह उस कमल को तोड कर खा जाता है। रागवश भंवरा अपनी जान गंवा बैठता है। वैसेही तुम भी संसार में राग कर रहे हो। ग्राहक आ जाय तो अभी आता हूं– अभी आता हूं करते रहते हो और समय व्यतीत कर देते हो। कच्चे धागे से बधे हुए लग्न सबंध आज कैसे मजबूत बना लेते हो?

सुंवाली दोरीना बंधन आजे सहु प्रेम थकी बांधे।
पण तूटे तंतु आयुष्य नो त्यारे अंते कोईना सांधे। अंते.
भीड पडे त्यारे तडतड त्रुटे अेवा बंधन शा माटे ?
जे ना आवे संगाथे अेनी माया शा माटे ?

कच्चे धागे का वधन भी इतना मजबूत कर लेते हो कि वह फिर टूटता नहीं है।

कालीदास भाईका २० वर्ष का लडका गुजर जाता है। मां–बाप करुण रुदन करते है। मूलशंकर महाराज उन्हे सान्त्वना देने पहुंचते है। यह क्या करते हो, तुम तो समझदार हो कालीदास भाई! जो जन्म लेता है वह मरता भी है। सभी मुसाफिर है– जहा जिसका स्टेशन आ गया वहां उसे उतर जाना पड़ेगा। उसके लिये शोक करना ठीक नही। आत्मा कभी मरता नही है। उसका जितना संयोग था, उतना वह रहा। उस पर हमारा कोई जोर नहीं है अतः शोक क्यो कर रहे हो?

१२ वर्ष बाद मूलशंकर महाराज के यहां ही उनके लडके की २ वर्ष की लडकी मर गई। लडकी वहत सुदर और चंचल थी। दादा कहकर हर समय वह महाराज को वुलाया करती थी। मूलशकर महाराज को भी वडी प्रिय थी। वे अब स्वयं रुदन करते है। कालीदास भाई आता है और कहता है– मूलशकर महाराज! तुम्ही ने तो मुझे कहा था कि आत्मा कभी मरता नही है। जो इस संसार मे जन्म लेता है वह एकदिन तो अवश्य मरता ही है। हम सव मुसाफिर है– कोई पास के स्टेशन पर उतरनेवाला है तो कोई लम्वी यात्रा करने वाला है। फिर तुम शोक क्यों कर रहे हो?

पोटिला भी दुख करती है। उसे भी मोह तो है ही। जो स्थिर वुद्धि होते है वे ही सुख और दुख से परे रह सकते है। स्थिर वुद्धिवाला मुनि ही निर्भय हो विचर सकता है।

पोटिला क्या करती है? आगे कहा जायगा।

ता. २३–९–६८

[८५]

तेतली को पोटिला से अरुचि हो जाती है। जहां मन में रुचि नही होती वहा फिर प्रेम नही रहता है। प्रेम कोई खरीदने की चीज नही है, वह तो स्वयं मे पैदा होनेवाली चीज है। आचाराग मे कहा है–

जेण सिया तेण नोसिया

एक समय जो प्रिय लगता है, वही आगे चल कर अप्रिय भी हो जाता है। एक समय जो दुश्मन होता है, वही आगे चल कर परम मित्र भी बन जाता है। कब क्या हो जायगा ? यह कहा नही जा सकता है। लेकिन आर्तध्यान के वशीभूत जीव सतत कर्म बाधता ही रहता है। राग और द्वेष दोनो पाप है– पाप के ही स्थान है। दोनो बीज अनादि काल से आत्मा में घर किये हुए है। भगवान का मार्ग वीतराग का है, राग और द्वेष से रहित होने का है– घन वैभव छोडकर विरक्त होने का है। सच्चा आनंद तो त्याग मे है। भोग मे नही। भोग में अशाति पैदा होती है, त्याग में कभी अरुचि नही होती। त्याग उत्कृष्ट चीज है। त्यागियो के चरणो मे ही देवता नमस्कार करते है। त्यागियों की ही जयंतियां मनाई जाती है। धन वैभव दुर्गति में ले जानेवाला है और आत्मिक वैभव मोक्ष प्रदाता है–शाश्वत सुख देनेवाला है।

आत्मवत सर्व भूतेषु यः पश्यति स पश्यति..

अपनी आत्माके समान सभी जीवो को समझना ही सच्चा धर्म है। यही अहिंसा है।

हर एक जीव सुख चाहता है, दुख कोई नही चाहता। जीना सबको प्रिय होता है, मरना कोई नही चाहता। जब कोई मारने आता है तो बचाओ बचाओ चिल्लाने लग जाते हो, अतः मरण किसी को प्रिय नही होता।

सव्वेसिं जीवियं पियं.

सबको जीना ही प्रिय लगता है। इसीलिये भगवान ने अहिंसा संयम और तप को धर्म कहा है। जिसके हृदय मे अहिसा होती है वही जीवो पर प्रेम कर सकता है। जैसे कोई हमको दुख देता है तो अप्रिय लगता है, गाली देता है तो खराब लगता है, वैसे ही उसको भी दुख होता है अतः मैं भी वैसा क्यों करूं ? श्रावक कभी ऐसा नहीं कर सकते। गरीबो की मदद करने वाले ही श्रावक होते है। हमदर्दी और सहानुभूति बतानेवाले श्रावक होते है। जो भोगविलास मे मस्त पड़े रहते है उन्हे कौन याद करता है ? जो गरीबो की सेवा करता है उसे ही लोग अपना समझते है। वह मर जाता है तो लोग उसके नाम को याद कर के भी रोने लग जाते है। सच्चा जीवन तो उसीका होता है।

एक गांव मे बूढी मा के ५ लडके मर गये। छठा भी क्षय ग्रस्त है। घर मे जो भी था बेच कर अब तक चलाया। अब कुछ नही बचा। दूध और दवा के लिये भी पैसे नही। क्या करें ? वृद्धावस्था अलग, कहा जाय ? लोगो से उसने सुना जीवण सेठ बडा भला आदमी है, पारस मणि जैसा है, गरीबो का सहायक और पर-पीडा को समझने वाला है। बूढी मां ने सोचा, सेठ पारस मणि जैसा है- चलो; घर मे जो वह लोहे का ताविता (गरचणा) पडा है उसे लेकर सेठ के पास जाऊं और उसे सोने का बना कर लौट आऊ? सोने का हो जायगा तो बाजार में बेच दूगी और अपना काम भी हो जायगा। बालक की भी चिकित्सा हो जायगी। यह सोचकर उसने अपनी लकडी उठाई और गरचणा लेकर सेठ के पास चल दी। टक टक करती बूढी मां सेठ के दुकान पर पहुंच गई। सेठ बैठे थे। उसने अपना ताविता सोनेका बनाने के लिये जीवण सेठ से लगाया, पर वह सोने का नही बना, वैसा ही काला बना रहा। चौकीदारने कहा, ए डोसी मा, यह क्या करती है ? दूर हट जा यहा से। यह गरचणा लेकर क्यों आई है ?

बूढी ने कहा- बेटा, मुझे माफ कर दे, मैंने सुना था सेठ तो पारस मणि जैसा है। पारस मणि को छूने से लोहा भी सोना हो जाता है। मै भी लोहे को सोना बनाने के लिये आई थी। पर मेरा दुर्भाग्य है कि मेरा लोहा सोना न बन सका। मेरे ५ लडके बीमारी मे एक एक कर गुजर गये, छंठा भी अभी बिस्तर पर पडा हुआ अपने दिन गुजार रहा है। न दवा के लिये मेरे पास पैसे है और न उसे दूध पिलाने के लिये ही है। मैंने तो दो दिन से कुछ मुह मे भी नही डाला। सोचा घर मे लोहेका गरचणा पडा है, सेठको छूने से सोने का बन जायगा तो लडके का इलाज भी हो जायगा, एक बचा है वह तो रह जायगा, पर मेरा कमनसीब ही है बेटा कि मेरा लोहा सोना न बन सका। बूढी अपने सिर पर हाथ रख कर रोने लगती है।

जीवन सेठ को अभी व्यापार मे काफी नुकशान लग रहा था। फिर भी सेठने नौकरसे कहा-बूढी मा को कुछ मत कहो। उसने माजीको बैठाया और गरचणा लेकर मुनीमजीसे कहा- मुनीमजी इसके बराबर इसे सोना दे दो। बेचारी का लडका बीमार है, घर में कोई नही है। हां सुनो, ड्राइवर से कहो वह इस माजी को मोटर मे बैठा कर इसके घर छोड आवे।

बधुओ ! दान के कई प्रकार है। जो दान. जरूरत होने पर भी दे दिया जाता है वही सच्चा दान है। लोटे मे जो समा जाय, वह मेरा और जो बाहर निकल जाय उसमे से भी कुछ दे देना- होते हुए देना क्या महत्व रखता है? चोरीका बहुत रुपया इकट्ठा किया पडा है उसमे से कुछ दे देना और गुप्त नाम से दे देना ताकि गुप्त दानी भी कहा जाऊ और सरकार को भी पता न चले, दोनो काम हो जाय, ऐसा दान भी शुद्ध दान नही कहा जाता। सच्चा दानी तो वही है जो मांगने वाले को देखता है तो यह समझ

लेता है कि मुझे भी धन की जरूरत तो है, पर मेरे से भी अधिक जरूरत इसे है, मेरा मैं चला लूगा, पर इसका कैसे चलेगा ? अत: अपनी जरुरत में से जो दे देता है वही दान सच्चा दान कहा जाता है । बूढी मा तो खुश हो गई । सेठ को हृदय से आशीर्वाद देने लगी । सचमुच सेठ पारस मणि जैसा ही निकला । वह खुशी खुशी अपने घर पहुंच गई । अहिंसा मे विश्वास रखने वालो आज तुम क्या कर रहे हो ? जरा अपने दिल को टटोलो । कही पैसा इकट्ठा हो गया है तो कही पैसे विना जीवन खतरे मे पडा हुआ है । एक को कब्ज की बीमारी हो गई है और दूसरे को अतिसार । दोनो पीडित है अपनी अपनी बीमारीसे—आराम किसी को नही है । कब्जवाला अपना पेट हल्का बना ले और जरूरत वाले को देकर उसका अतिसार मिटा दे तो दोनो को सुख-चैन मिल सकता है । बीमारी दोनो की दूर की जा सकती है । पर ऐसा हो तव न ?

पैसा सग्रह की चीज है या देने की ? आज आप क्या कर रहे है ? संग्रह करके भी कितना रख सकोगे ? तेतली सोचता है, पोटिला सारे दिन आर्तध्यान करती रहती है । उसे कुछ काम बता दिया जाय तो उसका मन उसमे लग जाने से वह आर्तध्यान से मुक्त बन सकेगी । यह सोचकर वह पोटिला को बुलाता है और कहता है— पता नही हृदय मे ऐसा क्या हो गया है कि मुझे तेरे प्रति रुचि ही पैदा नही होती है, और इसको लेकर तू रात-दिन आर्तध्यान करती रहती है । ऐसा करना तेरे लिये ठीक नही है । मैंने तेरे लिये एक उपाय सोचा है— क्या तुम वैसा कर सकोगी?

पोटिला बोली— आपकी आज्ञा होगी तो अवश्य करूंगी ? कहिये क्या उपाय सोचा है ?

तेतली कहता है— मै दान शाला शुरु करना चाहता हूं, तू अपना सारा समय वहां व्यतीत कर—किसे क्या चाहिये ? कौनसी वस्तु मगानी है ? जिसको जो चाहिये वह तू दे । इसमे तेरा समय निकल जायगा और तू आर्तध्यान से वच सकेगी ।

आज भी मानव दान मे पैसा देते तो है— थोडा वहुत भी देते तो है ही, पर वह सोच-समझ कर नही देते है । मुझे कहा देना चाहिये और मै कहां दे रहा हूं ? उसका सदुपयोग कैसा होगा ? इनका विचार न करते हुए लोग वाहवाही मे अपने नाम के पीछे पैसा दे देते है । इस दिशामे आज सुधार करने की नितात आवश्यकता है ।

समाज मे आज ९५ टका लोग दुखी है, केवल ५ टका व्यक्ति ही धनवान है । कई आदमी ऐसे भी है जिन्हें दोनों समय भोजन भी पूरा नहीं मिलता है । पेट की चिन्ता ही चिन्ता में आज का जवान बूढा हुआ चला जा रहा है । क्या आप नही देखते हो ऐसी हालत समाज में ? कई लोगों के पास बीमारी की दवा लाने के लिये भी पैसे नही होते । ऐसे दुखियों को श्रावक अपनी आखो से कैसे देख सकता है ?

तारा महेलो खाली सडता
भूतडा जइ त्यां वासो करता
आश्रय माटे कंईक अभागी मानव जीवो पंथ रजलता
अढलक सुखनो स्वामी तु मानवता जो खोवे ?
दुखडा देखी जगना जो तारूं दिल ना रोवे ।
फोगट तारी भक्ति अेनुं फल कांई न होवे ।

तेरे महल खाली पडे है, दूसरे के पास रहने को भी कमरा नही है । ओटला भी नही और रोटला भी नही । कैसी हालत है उनकी ? क्या श्रावक इसे देख सकता है? वह उनके कर्म भोगता है मै मेरे भोग रहा हूं। भगवान महावीर के श्रावक ऐसा नही सोच सकते । वह तो अनुकम्पा वाले होते है। दुखियो को देखकर उनका हृदय तो करुणा के मारे भर आता है ।

एक पादरी है, जिसे हजार रुपया मासिक वेतन मिलता है । वह अपने लिये २०० रु. रख कर ८०० रुपया गरीबो को बाट देता है। रहने के लिये एक बगला सरकार की तरफ से मिला हुआ है।

एक बार वह एक अस्पताल मे जा पहुचा । जगह कम और बीमार बहुत अधिक थे । कई बीमार जमीन पर पडे हुए थे । पादरी ने यह देखा तो उसने कहा–मेरा बगला बहुत बडा है– तुम अपना अस्पताल वहा ले जाओ, मैं इस मे रह जाऊंगा। जगह के अभाव मे बीमारो को तकलीफ होती है यह मै देख नही सकता । इसी का नाम अनुकम्पा है । कोई भी आवे–दीन–दुखी की मदद करना अनुकम्पा है ।

पादरी अपना मकान बदलकर यहा आ जाता है, पर मकान मे ताला नही लगाता । जो अपना नही है उसे दूसरा भी अपना कैसे बना सकता है ? न्याय और नीति का धन चोर भी चुरा कर ले जा नही सकता है ।

कोई दुखी है, बीमार है, उसकी मदद करना श्रावक का कर्तव्य है । पादरी फादर कह कर पुकारा जाता है । क्या कोई पिता अपने लडको को दुखी देख सकता है?

एक किसान के घर उसकी विधवा बहिन आई । साथ में छोटे–छोटे सात बालक भी लेकर आई । किसान गरीब है । घर मे जो था दो दिन मे पूरा हो गया । किसान नौकरी की तलाश मे जाता है, पर कही उसे नौकरी नही मिलती । कर्मो का जब चक्कर चलता है तब चारो तरफ से मुसीबते ही आकर खडी हो जाती है । दिन निकल गया, बहिन के लडके भूख के मारे चिल्लाते है– मामा–खाने को दो, पेट मे चूहे दौड रहे है । तपस्वी आदमी की बात अलग है और भूखे आदमी की बात अलग है । तुम अट्ठम तप करते हो– तीन दिन बाद तो पारणा निश्चित है न ? इसका विश्वास तो रहता है, पर भूखा आदमी कब भोजन पाएगा इसका उसे विश्वास नहीं होता ।

किसान घबराकर घरसे बाहर जाता है। रातकी १० बजे है। कदोई अपनी दुकान बंद कर देता है। वह पीछे से घुस कर कपडे मे कुछ लड्डू और गाठिया बाधकर घर की तरफ आता है। रास्ते मे उसे चोर समझ कर सिपाही पकड लेता है। एक गरीब अपनी भूख मिटाने के लिये चोरी करता है तो पकडा जाता है, जेल मे बंद कर दिया जाता है, ऊपर से पीटा जाता है। उसने चोरी की है यह सच है, पर क्यो की है? इसकी भी जांच तो करो! दूसरी तरफ जो खुले आम सफेद गादी तकिये पर बैठ कर चोरी कर रहे है उन्हे कोई नही पकडता। यह कैसा न्याय है आज का?

किसान कहता है– मैंने यह चोरी अपनी बहिन के छोटे छोटे बच्चो को खिलाने के लिये की है। वे भूख से तडफ रहे है। मुझे अपने घर जाने दो– वे भूख से मर जायंगें। लेकिन पुलिस किसकी बात सुनती हैं? उसे ७ वर्ष की जेल हो गई।

किसान जेल मे भी फूट फूट कर रोता है। मेरी बहिन का क्या होगा? उसके बालकों का क्या होगा? बेचारे भूख के मारे तडफडा रहे होगे? कौन उन्हे खाना लाकर देगा? पेट के खातिर आदमी क्या नही कर लेता है?

बुभिक्षितं किं न करोति पापम्?

भूखा आदमी क्या नही कर लेता? भूखी कुत्तिया भी अपने बालक को खा जाती है। किसान को एक एक दिन एक २ वर्ष जैसा लगता है। क्या करू? कब छूटूगा?

बंधुओ! तुम भी संसार की जेल मे पडे हुए हो? कब छूट कर मोक्ष मे जाऊगा! ऐसी इच्छा तो करते रहते हो, पर उससे छूटो तब न?

प्रेमदा ने पैसा रूपी वे बेडीयो पगमा जडेल जी
संतती रूपी हाथ कडीओ भिसी ने भीडेल–जुओ....
विभ्रम रूपी किल्लो बंको, मोहे द्वार दीधेल जी,
आशा–तृष्णा रूपी ताला, जबरा त्यां लटकेल
जुओ आ जग बंधन नी जेल जी...।

ज्ञानी कहते है– स्त्री और पैसा ये दो बेडी पैरो मे पडी है। लडके लडकिया हाथ की हथकडिया है। मिथ्यात्व मोहका–किला है जहां मानव कैद होकर रहता है और सब कुछ उल्टा समझता है– जहा सुख नही वहा सुख मानता है, नाना सकल्प-विकल्प करता रहता है। चित्तकी चचलता मिटती ही नही है। पुस्तक पढो, माला जपो या व्याख्यान सुनो, मन शात रहता ही नही है। परिणाम क्या होता है? एकाग्र चित्त होता ही नही है। अत: आत्मा का कल्याण कैसे हो सकता है?

एक काच पर सूर्य की किरणे एकत्रित करो तो उससे अग्नि पैदा हो जाती है। वैसेही आत्मा को एकाग्र करोगे तो कर्म का कचरा जल कर राख हो सकता है। ऐसी शक्ति पैदा करनी है तो मन और इन्द्रियो को वश मे करो। चित्त को स्थिर करो और

प्रभु भजन मे तदाकार हो जाओ। उससे जो शक्ति पैदा होगी आत्मा उससे प्रकाशित हुए बिना नही रहेगी।

जेल मे पडे हुए भी आज तुम को विभ्रम हो गया है। तुम पुत्र–पुत्री, धन-सम्पत्ति आदि मे सुख समझ रहे हो। वियोग में दुख समझ रहे हो। धन तो चंचल है– बिजली की तरह नश्वर है– उसमे क्यो दुखी होते हो? भय छोडो और निर्भय बन कर प्रभु भक्ति मे तदाकार हो जाओ। उसमें जो मजा आवेगा वह अन्यत्र कहीं नही मिल सकेगा।

विभ्रम के किले में मोहका दरवाजा है जिस पर आशा–तृष्णा के दो बडे बडे ताले लगे हुए है। यही दुनिया की जेल है।

जुओ आ जग बंधन नी जेल जी
आ तुरंग ने तोडवा, मोटा मोटा मथेलजी
पारासर जेवा भागी ने जाता पाछा पकडायेल...
नंदिषेण जेवा " " जुओ।

जैसे जैसे भागते हो वैसे वैसे पकड लिये जाते हो। कहा चले गये थे? देर क्यों हो गई। हमारा तो जी उड गया था? फोन भी तो कर देना था। घर पर कोई तुम्हें ऐसा पूछना है या नही?

यह गृह एक कैद खाना है, के औरत पैरों की बेडी।
कुटुम्ब के लोग चौकीदार, नहीं आजाद होते है।
किसीका भाई है वैरी किसी की नार कलहारी।
किसी को कुछ किसी को कुछ, नहीं आजाद होते है।

कुटुम्ब के लोग चौकीदार है। तुम्हारी खबर बराबर लेते है। देर से आते हो तो कही अकस्मात तो नही हो गया, ऐसा सोचनेवाले भी है न?

यह घर भी कैदखाना ही है। औरत पाव की वेडी है। चाहे जहा जाओ, पर वापिस वही आकर बद हो जाते हो—बेडी से पांव जकड लेते हो। तुम स्वतंत्र कहां हो? कुटुम्व के लोग तुम्हारी देख-माल करते है– ये चौकीदार तुमने स्वयं खडे किये है, हाथ से तुम परतत्र वने हो। ममता कितनी खडी कर ली है तुमने? मोक्ष की वात कैसे तुम्हे रुचिकर हो सकती है? जितनी ज्यादा ममता उतना ही दुख अधिक होता है। सुख समता मे है। साधु को ममता नही होती, वह कितना हल्का रहता है? रहने को लाखो की कीमत का उपाश्रय मिले तो क्या और झौपडा भी हो तो क्या? कहां जीन्दगी निकालनी है उसे? अधिक से अधिक चातुर्मास ही तो पूरा करना है! इस तरह ममता छोडोगे तभी काम होगा।

मुसाफिरी करते हो, स्टेशन आने से पहले ही सामान खिडकी के पास रख देते

हो और गिनती करके पूरी जाच भी कर लेते हो। जीन्दगी की यात्रा भी पूरी होने वाली है– स्टेशन तो उसका भी आनेवाला ही है। तो उसके लिये भी पहले से तैयारी कर रहे हो न ?

किसान जेल में से भाग जाने के लिये प्रयत्न करता है। ऊपर चढ़ कर बाहर आ जाता है। तब भी पुलिस उसे पकड लेती है और २ वर्ष और जेल मे बंद कर देती है।

समय जाते क्या देर लगती है ? ९ वर्ष भी उसके पूरे हो गये। सजा याप्ता आदमी को पैसे का डाम लगाया जाता है ताकि दुबारा वह कभी पकडा जावे तो उसकी पहचान की जा सकती है। किसान जेल से छोड दिया जाता है। डाढी वढी हुई है। कहा जावे ? घर पर बहिन और लडके होंगे तो कहेंगे– मामा इतने दिनो से आये हो–हमारे लिये क्या लाये हो ? कुछ न कुछ लेकर जाना चाहिये। क्या करूं ? वह नौकरी के लिये घूमता है पर कोई उसे नौकरी देने को तैयार नही होता। घूमते घूमते उसे शाम हो गई। भूख भी जोरो की लग रही थी। एक वूढी माने उससे कहा– देख उस बंगले मे एक पादरी रहता है– तू उसके पास चला जा, वह तुझे नौकरी दिला देगा। किसान पादरी के घर पहुच गया। पादरी ने उसे देखा तो पूछा– कहा से आये हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? भूखे मालूम पडते हो, पहले खाना खालो, फिर बात करेंगे। पादरी उसे बडे प्रेम से खाना खिलाता है। भयभीत को अभय दो, यही अहिसा है। प्रेम अहिसा मे ही होता है।

दुखडा देखी जगना जो तारूं दिल ना रोवे
फोगट तारी भक्ति अेनुं फल कांई न होवे।

धन वैभव के स्वामी बन कर भी मानवता का आचरण न करो तो वह ऐश्वर्य भी क्या काम का है ? आये थे तब क्या लाये थे ? जाओगे तब क्या ले जाओगे ? हाथ से जो हो सके, सत्कार्य करने मे प्रमाद मत करो। जो दे जाओगे वही साथ मे ले जा सकोगे। बाकी सब यही पडा रह जायगा।

किसान को खाते खाते अपनी मा का स्मरण हो आया। बचपन मे मेरी मां भी मुझे ऐसे ही खिलाती थी। उसकी आखो मे आसू आ गये। पादरी ने सोचा–अभी इसका दुख उभर रहा है, जरा शात हो जाने दो, सुबह बात करेंगे। पादरी ने उसके लिये एक कमरे मे सोने की व्यवस्था कर दी।

रात की १० वज गई। दरवाजे सभी खुले ही है, कही तालेका नाम नही। किसान सोचता है– मेरी वहिन और उसके लडके क्या करते होंगे ? यहा ये चादी के चम्मच पडे है, लेकर चला जाऊ और बाजार मे बेच कर जो भी पैसे मिलेगें अपने घर जाकर बालको को बाट दूगा। वे खुश हो जावेगे। नौ वर्ष तक जेल में रहने पर भी वह चौरी की ही इच्छा करता है। ऐसा ही हाल आत्मा का भी है।

नया बाधता है और भोगता जाता है—कभी रुकता नही है ।

किसान चम्मच उठा कर देखता है—कोई जग तो नही रहा है । सब को सोये हुए देख कर वह बाहर निकल जाता है । हृदय उसका धकधक कर रहा है । कुछ दूर चलता है कि सिपाही उसे पकड लेता है और पुलिस चौकी ले जाता है । चम्मच कहा से लाया ? तो वह पादरी का नाम बता देता है । उसकी आखो में जेल की सजा फिर खडी हो जाती है । सुबह जब पादरी को पुलिस चौकी पर बुलाया जाता है तो पादरी उसे देख कर कहता है—यह तो मेरा मेहमान है, इसे यहा क्यो पकड कर रखा है ? ये चम्मच तो मैंने इसे भेट दिये है । किसान ने यह सुना तो वह उसे देखता रह गया, यह कैसा महा मानव है ? मुझ पर इसे अब भी क्रोध नही आता ? पादरी उसे वापस अपने घर ले आया ।

बधुओ ! कर्म का फल तत्काल नही दिखाई देता है । खेत में भी बीज बोओगे तो २ मास बाद वे तैयार होकर पकेंगे । इसी तरह धर्म का फल तुम चाहो कि आज ही मिल जाय यह संभव नही है । पादरी उसे समझाता है—तू धर्म के मार्ग पर आ, चोरी मत कर, तू डर मत, निर्भय बन । अवगुण छोड-गुण-ग्रहण कर-तू भी जन से जनार्दन बन सकता है—मानव से महात्मा बन सकता है । वाल्मीकि क्या थे ? लुटेरा ही तो थे । लेकिन महात्मा बन गये । हरिकेशी क्या थे ? चाडाल ही तो थे । संयम लेकर मोक्ष मे चले गये । धर्म मे जाति का कोई बधन नही है । जो पाल सकता है वही उसे अपना बना सकता है ।

जाति वेषनो भेद नहीं, कह्यो मार्ग जो होय ।
साधे ते मुक्ति लहे अेमां भेद ना कोई ।

साधना करो, एक दिन मुक्त अवश्य हो सकोगे । पादरी किसान से कहता है—तुझे क्या दुख है ? मुझे कह, तुझे नौकरी दिला दूगा । घबरा मत, पर दुर्गुण छोड, सद्गुण ग्रहण कर ! पादरी किसान का जीवन सुधार देता है । दुखी जीव पेट के खातिर पाप कर बैठते है, पर जब उन्हे भान होता है ओर सत्संग मिल जाता है तो वे सुधर भी जाते है ।

तेतली पोटिला को दान शाला मे दान देने के लिये बैठा देता है। पोटिला भी उसमे रस लेती है। वह यह नही समझती कि मै दान देकर दूसरो पर उपकार कर रही हूं बल्कि वह लेने वालो का उपकार मानती है। और उनका हाथ जोडकर अभिवादन करती है। वह जब तक काम मे व्यस्त रहती है तब तक वह आर्तध्यान नही करती। पर जब वह काम से निवृत्त हो जाती है तो उसे आर्तध्यान होने लग जाता है। आगे पोटिला क्या करती है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २४-९-६८

[८६]

तेतली के पास धन की कमी नही है। उसने पोटिला की देख-रेख में दानशाला खोल दी। पोटिला दानशाला का सब काम देखती है, पर मन मे वह दुखी है, पति का प्रेम उसे नही मिलता। उसके विना उसे सब सुनसान लगता है। तुम्हे कैसा लग रहा है? तुम्हारा भी धणी तुम्हें बुलाता नहीं है- फिर भी कभी उसकी चिन्ता करते हो? हे प्रभु! तू मुझे भी अपने जैसा बना-ऐसा कहा कहते हो? कह भी दो तो वैसा आचरण कहा करते हो?

श्रीमंत का लडका बस स्टैंड पर दूसरे लडकों के साथ खडा हो और कोई लडकों को चोकलेट बाटे तो वह धनी लडका भी अपना हाथ लम्बा कर देता है-मुझे भी दो। क्योकि उसे अपनी श्रीमन्ताई का भान नही है। जब वह वड़ा होता है, और इस वात का विचार करता है कि मै श्रीमन्त होकर भी चोकलेट मागता था तो उसे अपने पर अफसोस होता है। क्योंकि तव उसे भान हो जाता है कि मै कौन हूं? ऐसे ही तुम भी अपनी आत्मा के अनंत गुणो के स्वामी हो। जिसे अपनी इस अनतविभूति का भान हो जाता है वह क्या फिर महालक्ष्मी जाकर कुछ पाने की इच्छा कर सकेगा? श्रीमन्ताई का भान होने पर कोई भी अपना हाथ दूसरों के सामने लम्बा नही करता, तव क्यो तुम अपना हाथ लम्बा कर रहे हो? पुद्गलो से सुख क्यो माग रहे हो? वे तो जड है। वे तुम्हे क्या सुख देगे। तुम उनसे सुख की भीख क्यो माग रहे हो?

आतम तूं नहीं जडनो भिखारी।
शहेनशाह तुं जगनो स्वामी, तुज पदवी ले संभारी......

हे आत्मा! तू वादशाह का भी वादशाह है, इन्द्र का भी इन्द्र है-चक्रवर्ती का भी चक्रवर्ती है! तेरा खजाना तो अपरपार है-उसका कोई पार नही पा सकता-अक्षय निधि का तू स्वामी है- फिर जड का भिखारी क्यो वन रहा है? केवल ५ वर्ष की सत्ता के लिये घर घर वोट की भीख मागते फिरते हो-हमको वोट देना,.... इस पर चौकडी मारना, यह भीख नही तो क्या है? यह क्यो नही सोचते कि मेरा आत्मा तो जगत का स्वामी है-जड मे वर्ण, गध, रस और स्पर्श है-पर चैतन अरूपी है, वह अवर्ण-अगंध अरस और अस्पर्श है। जड मे ज्ञान नही होता, चैतन मे ज्ञान है। तू ज्ञानी है। जडका मोक्ष नही, तेरा मोक्ष है। फिर दृष्टि कहा डाल रहा है? स्व को देख रहा है या पर मे ही लुब्ध हो अपनी आत्मा का पतन करता चला जा रहा है?

तुम्हारा ध्यान तो हर समय जड मे ही रहता है-पैसो के लिये यत्रतत्र

घूमते फिरते हो। लाख हुए तो करोड की इच्छा करते हो, पर शांति कहां मिलती है? नाम तो शातीलाल है, पर मन मे अशांति बनी हुई है, नाम तो समता बेन है, पर मन मे क्रोध की ज्वाला धधक रही है, नाम तो योगेश पर मन से विषय के कीडे बने रहो तो नाम का क्या महत्व है? महत्व तो काम का है। सुख जड मे कहां है? सच्चा सुख तो चैतन-घन आत्मा मे ही है!

रत्न नुं मंदिर झूंपडी वेमां

समभावे सुख क्यारी-आतम——।

समभाव मे सुख है। रत्न जडित महल हो तो क्या और गारे की झोपडी हो तो क्या? जिसे समभाव होता है उसे तो सर्वत्र सुख ही अनुभव होता है। रत्न भी क्या है? पत्थर ही तो है। ज्ञानियो ने १८ तरह के रत्न कहे है—

१ गोमीच रत्न २ रुचक रत्न ३ अंक रत्न ४ स्फटिक रत्न ५ लोहिताक्ष रत्न ६ मरकतरत्न ७ मसारगलरत्न ८ भूइमुचक रत्न ९ इन्द्रनील रत्न १० चन्द्रनील रत्न ११ गेरुडीरत्न १२ हसगर्भ रत्न १३ पोलाक रत्न १४ सौगंधिक रत्न १५ चन्द्रप्रभ रत्न १६ वेरुडी रत्न १७ जलकान्त रत्न और १८ सूरकान्त रत्न

ये सभी रत्न भी पृथ्वीकाय ही तो है। एकन्द्रिय है। उस पर तुम पचेन्द्रिय नाचते हो? यह क्या कर रहे हो? पत्थर पर चेतन नाच रहा है? अपनी आत्मा को जागृत करो, वह सो रहा है, तभी तुम जड के लिये नाच कर रहे हो?

सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी,
न वीससे पण्डिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं शरीरं
भारंड पक्खीव चरेपमत्ते

तुम्हारा आत्मा भाव निद्रा मे सो रहा है, उसे जागृत करो। अब वक्त सोने का नही है—

जाग मुसाफिर कूच की नौबत बाज रही है।

प्रभात हो गया, अब क्यो सो रहे हो? मोह के सामने युद्ध करना है, द्रव्य युद्ध समाप्त कर दे और भाव युद्ध का श्रीगणेश कर-आत्मा के साथ युद्ध शुरु कर दे। दूसरो से लडना बंद कर दे। दुर्जय शत्रु तो ५ इन्द्रिय ४ कषाय और एक आत्मा ही है। जो एक आत्मा को जीत लेता है वह सारी दुनिया को जीत लेता है।

अप्पाणं चेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण वज्झओ।
अप्पाण मेव मप्पाणं जइत्ता सुहमेहए।

आत्मा को जीत लेने पर ही सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है।

समुद्र के किनारे लडके रेत में घर वना कर खेल करते है। यह घर मेरा, यह घर तेरा। ऐसा ही तुम भी संसार में कर रहे हो। करते २ कई चले गये, कई तुम्हारी आंखों के सामने भी चले जा रहे हैं, फिर भी तुम संमल नही रहे हो और उसी में उलझे पडे हो। लडके खेल ही खेल में खाना भी भूल जाते है। मा सोचती है– लडका अभी तक आया नहीं है–वहा क्या कर रहा है? मा उसे ढूढने जाती है तो लडका उसे भी अपना घर वताते हुए कहता है–मां, यह घर मेरा है, इसमें किसी के आने की इजाजत नही है। मा कहती है–चल–घर चल, खाने का भी ध्यान नही रहा? लडका रेत के लड्डू बनाता है और कहता है–लो लड्डू खा लो–वडे मीठे बने है, तो क्या तुम खा सकोगे? यह तो लडको का खेल है–वास्तविकता उसमें कहा है? वैसा खेल तुम नही कर सकते। क्योंकि तुम्हें तो इसकी समझ है कि मिट्टी में लड्डू का स्वाद कैसे आ सकता है? लडका अपना वनाया हुआ घर छोड कर मा के साथ चल देता है। पर तुम तो उन लडकों जैसे भी नही हो! घर छोड कर भी नही चल सकते हो? ज्ञानी कहते है–जिसे तुम अपना घर समझ रहे हो वह घर तुम्हारा नहीं है, वह भी उन लडको के खेल जैसा ही घर है। तुम्हारा घर तो मोक्ष है, वही शाश्वत घर है, उसमे जाने का प्रयत्न क्यों नही करते हो?

दूर का प्रभु दोड तुं मारे रमत रमवी नथी
नयन बंध तोडतुं....
होये रमत घडी बेघडी, बहु तो दिवस बे चारनी
आ तो अनंता युग गया, अेवी रमत रमवी नथी...दूर...

खेल भी घटे दो घंटे का हो सकता है। पर यह खेल तो तुम अनंत काल से करते आ रहे हो। अब तो समझो कि तुम क्या कर रहे हो? सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को समझो। समझने का प्रयत्न करोगे तो अवश्य समझ सकोगे। पुरुषार्थ करने की देर है। आत्मा में पुरुषार्थ करोगे तो मोक्ष तक भी अवश्य पहुंच सकोगे। अभी तक तुमने उस ओर दृष्टिपात ही कहा किया है?

संसार की कितनी चिन्ता करते हो? हर समय मां–बाप, पुत्र– पुत्री–स्त्री–भाई की ही चिन्ता करते रहते हो। पर यह तुम क्या कर रहे हो? क्या आत्मा आत्मा की चिन्ता कर सकता है? दीमक लकडे को तो खा जाती है, पर क्या वह अग्नि को भी खा सकती है? लोहे को कीट आ सकता है, पर क्या सोने को भी कीट आ सकता है? इसी तरह तुम भी समझते क्यो नही हो? तुम्हारी आत्मा तो निश्चिन्त है–फिर क्यो चिन्ता कर रहे हो?

में बांधेली महेलातो ने, दौलत नुं काले शुं थाशे।
अणधार्युं जावुं जो पडशे, परिवार नुं त्यारे शु थाशे ! परिवारनुं....
सहुनु भावि सहुनी साथे, अेनी चिन्ता शा माटे !
चार दिवसना चांदरडा पर, झूठी ममता शा माटे !

चार दिन की यह सब चादनी है। इतने मकान है? कौन संभालेगा? एक लडका हो जाय तो ठीक। लडका हुआ तो मूर्ख निकला। ५ वर्ष मे भी वह ५ वी कक्षा पास नही हुआ। ऐसा वह मूर्ख और शरारती पैदा हआ, उसकी भी चिन्ता। यों सब की चिन्ता करते हो, पर अपनी चिन्ता कहा करते हो? आत्मा पर तो तुम्हारा प्रेम भी कहाँ है। शरीर का तो तुम शृगार करते हो—लाली पाउडर लगा कर चमकाते हो—छोटा होता है तब उसे खिलाते हो—अंगुली पकड कर चलाते हो। पर आत्मा की इतनी सभाल कहां करते हो?

शरीर पैदा होता है, वालक वन कर वही युवा वनता है, वृद्ध भी वही वनता है और एक दिन मरता भी वही है। लेकिन तुमने उसे अपना मान लिया है यही दुख है। आत्मा कभी मरता नही है, न जन्म ही लेता है। वह बाल, युवक और वृद्ध भी नही होता। जिसको तुम रो रहे हो वह तो शरीर है। उसको क्यो रोते हो? यह शरीर तो दगाबाज शत्रु है। अनत शरीर धारण किये है—फिर क्यो इस दगाबाज का विश्वास कर रहे हो? सुंदर सुंदर व्यजन बना कर इसे खिलाते हो, मेवा—मिष्टान्न भी खिला कर इसे मोटा—ताजा बनाते हो—ताकत-वर बनाते हो, पर शक्ति इसमे कहा है? शक्ति तो आत्मा मे है। चाहे जैसा मोटा—ताजा शरीर क्यो न हो, अगर आत्मा चला जाय तो उसे रस्सी से बाध कर वैठाना पडता है। उसमे शक्ति कहां हौती है? आत्मा का वीर्य ही शक्ति कही जाती है। उसीसे शक्ति पैदा होती है। खाने—पीने से ताकत नही पैदा होती है। खा—खाकर सेठ का शरीर तो मोटा हो जाता है, पर वीर्यगुण आत्मा मे न हो तो शरीर कांपने लग जाता है। अनंत वीर्यलब्धि आने पर ही आत्मा ताकतवर वनती है। अन्तराय कर्म के नष्ट होने पर ही यह वीर्य लब्धि प्राप्त होती है।

राजा का भंडारी राज्य कोष की तो संभाल रखता है, पर उसमे से एक पाई भी घर नही ले जा सकता है। वैसे ही तुम्हारी आत्मा का खजाना तो भरा पडा है—पर उसकी चावी कही घूम गई है, तुम उसका अनुभव नहीं कर पा रहे हो। गुरुदेव वह चावी तुम्हे देते है—तुम उसे लगा कर त्रिपुटी के ताले खोल दो—ज्ञान—दर्शन और चारित्र की आराधना करो—तुम्हारे हाथ मे आध्यात्मिक सम्पत्ति का खजाना आ जायगा। पर यह आराधना तो तुम्हे कडवी लगती हैं—तुम्हारा मन नहीं लगता। फिर वह सम्पत्ति कैसे प्राप्त कर सकोगे?

व्यापारी रेशमी माल भेजता है तो उसके ऊपर कागज लगाता है, फिर कल्तान लगाता है और फिर लकडे की पेटी मे बंद करता है। ऊपर से वह कैसा दीखता है? पर अंदर कैसा कीमती माल भरा हुआ है? पार्सल खोलेगे तो उसे प्राप्त कर सकोगे। इसी तरह इस शरीर को ही मत देखो–हाड–चाम–मांस और रुधिर मे क्यों फंसते हो? अंदर देखो, भीतर जो आत्म देव बैठा हुआ है उसे देखो–उसे ही स्वस्थ रखो–शरीर की क्या संभाल कर रहे हो! यह तो नश्वर है–एक दिन मिट्टी मे मिल जाने वाला है। ये आंख–कान–नाक और मुह तूं नही है, कांच और काच में पडने वाला प्रतिबिम्ब भी तू नही है–सब को देखने और समझने वाला तू है–उसकी संभाल कर।

किसी ने कह दिया ८ दिन मे तेरी मौत होने वाली है–सुनकर घवरा जाते हो। तू क्या कभी मर सकता है? तुमने अभी तक जैन दर्शन जाना ही कहा है? क्या जीव कभी मरता है? मै तो अनादि अनंत हूं, तीनो काल में रहने वाला 'सत्' हूं–आत्मा हूं–मेरी मौत कैसे हो सकती है?

साचा गुरु का बालका, कदी न मार्या जाय।
सिद्ध मरे तो हुं मरुं, नहि तो मरे मारी बलाय।

तुम तो पक्के गुरु के चेले हो, तुम कैसे मर सकते हो? मुझे यह रोग हो गया? यह क्यो कहते हो? आत्मा को कोई रोग नही हो सकता। वह तो निरोगी है। जन्म–जरा और मृत्यु से रहित है–दुख और दारिद्रय से परे है–वह तो अव्याबाध अनंत सुखो का घर है–सच्चिदानंद रूप है। तू जड नही है। यह उपदेश तुमने कितना सुना है? पर इस पर मनन कितना किया है? जीव कभी मरता नही है–शरीर मरता है, वही जलता है और वही रोग–ग्रस्त भी होता है। उसका परिणमन मेरा नही हो सकता। और मेरा उसका नहीं बन सकता। एक क्षेत्र अवगाहना मे रहे हुए छहो द्रव्य अपने अपने मे ही परिणमन करते है। एक दूसरे मे वे जा नही सकते। यह त्रिकाला-बाधित सिद्धान्त है। इसे समझने का प्रयत्न करो। रेती के घर बना बना कर मिटा रहे हो और उसके लिये शोक करते हो–यह काम तुम्हारा नही है। लडका मर गया है–रो रहे हो–जरा सोचो–कौन मर गया है? जीव कभी मरता नही है, शरीर मर गया है जिसे तुम अपने हाथ से जला आये हो। आत्मा मरा नही है–उसका ट्रांसफर हो गया है–वह दूसरी जगह चला गया है–वह तुम्हारा था ही कब! फिर दुख क्यो कर रहे हो? कौने मे बैठ कर क्यों रोते हो? यह सब अज्ञान है। उसे छोडो और सत्य को समझो। इतने वर्ष हो गये, पर अभी तक एक की सख्या भी न सीखे तो आगे क्या बढ सकोगे? बच्चो की तरह तुम

भी अभी तक पट्टी पर कलम ही घिस रहे हो—सम्यग्दर्शन का एकडा भी अभी तक नही सीख पाये हो, आगे कैसे बढ सकोगे? महान बनना है तो गुरु कहे वैसा करो। इसमें शर्म क्यो महसूस करते हो? दुनिया मे चाहे जितना बडा सेठ हो—पर जगल मे चलते रास्ता भूल जाता है तो वह भी भील के लडके को बुला कर रास्ता पूछता है। क्योकि रास्ते का जानकार तो वही है! उस काले कलूटे छोकरे से भी पूछने मे वह शर्म महसूस नही करता। वैसे ही संसार मे रहते हुए तुम सम्यक्त्व को न समझ सको तो तुम्हे जानकार के पास जाना ही चाहिये। वहा फिर छोटा और वडा क्यो देखते हो? यह देखो कि वे किस मार्ग के पथिक है। वे क्या कर रहे है? जिस मार्ग पर वे जा रहे है वही मार्ग तुम्हें भी बता देगे।

यह मत समझो कि तुम्ही दान देते हो—दान साधु भी देता है। लेकिन दोनों में बडा अन्तर है। तुम किसी गरीब को भोजन खिला दोगे तो उसकी एक समय (टक) की भूख मिटा सकोगे—कुछ रुपया पैसा दे दोगे तो कुछ दिन तक की राहत उसे पहुंचा सकोगे। पर साधु तो अभय देता है—ज्ञान देता है—वहा डर जैसी कोई चीज नही है— कोई भी आकर शका—समाधान कर सकता है—धर्म को समझ सकता है—उसके द्वार कभी बद नही होते। जो मुमुक्षु होते है वे ज्ञान चर्चा ही करते है— रेती के घर नही बनाते। उसमे उन्हे मजा नही आता है। दुनिया का नाटक ऐसा ही है—उसे समझो और धर्म का आचरण करो।

लडके की शादी हुई—खूब रग—विरगे कपडे पहने—नाच—गान किया। वही लडका मर गया तो काले कपडे पहन कर शोक करने लग जाते हो। यह नाटक नही तो क्या है? देह छूटा कि क्या वह मर गया? आत्मा कभी मरता नही है। पट्टी पर कलम मत घिसो—सम्यग्दर्शन का एकडा घोटो—एक दिन यह ज्ञान समझ मे आजावेगा तो आत्मा का कल्याण हो जायगा।

ता. २५—९—६८

[८७]

सत्य क्या है? और असत्य क्या है? जो यह जान लेता है, वह सकटों मे भी उद्विग्न नही होता है।

कई कहते है—हम तो रोज उपाश्रय जाते है— सामायिक, प्रतिक्रमण करते है। पौषध भी करते है—फिर भी पाप का पहाड हमारे पर ही क्यों पडता है? जो धर्मी है—आफत उसी पर क्यो आती है? पापी तो मजा कर रहा है? ऐसा क्यो होता है?

ज्ञानी कहते हैं—सच और झूठ ऐसी वस्तु है जो कसौटी हुए विना मालूम नही होती है। पीला दिखाई देने वाला सव सोना नही हो जाता। पीतल भी पीला होता है और रोल्ड गोल्ड भी सोना जैसा दिखाई देता है, पर जव उसे तेजाब मे डाला जाता है तभी उसका पता चलता है कि वह क्या है? सोने को आग मे भी जलाया जाता है—हथियार से काटा भी जाता है। यो उसकी परीक्षा तो करनी ही पडती है— जो इन परीक्षाओ मे पास हो जाता है वही सोना कहा जाता है। इसी तरह दुख भी धर्मी—जनो की कसौटी है। उसमे जो पास हो जाते हैं वे ही सुख को प्राप्त कर सकते हैं—

चाहे भडभडती भीषण भट्टीमां नाख जे
चाहे दरियाना ऊंडा जलमां डूबावजे
लाख २ रीते मुजने लेजे लसोटी रे—
करीले कसौटी कोटी २ वार मारी करीले कसौटी ...—

सच्चा होने पर भी मनुष्य की कसौटी तो होती ही है। सीता की कसौटी हुई—अग्नि भी पानी हो गई। लोग कहते हैं— बस करो—वस करो—सीता शुद्ध है। लोग वही है जो पहले यह कहते थे कि सीता रावण के यहा शुद्ध कैसे रही होगी? लोकोपवाद के भय से राम ने सीता को जगल मे भिजवा दिया। वही सीता जब अपनी परीक्षा देने आग मे कूदी तो आग भी पानी हो गई। सत्य का प्रभाव तो देखो ....!

सतीया जन रे हो सतनी शूलीये वींधाय
रुडा रंग मां रंगाय अेना गुण रे हो गाया केम रे गवाय ?

सत्य की कसौटी न हो तो सत्य को लोग समझेगे भी कैसे? सत्य तो त्रिकाल मे भी सत्य ही रहता है। उसकी आवाज कभी बदलती नही। जो रुपया खोटा होता है उसी की आवाज मे अन्तर होता है। सच्चा रुपया कभी दूसरी आवाज नही करता। सीताने कहा—स्वप्न मे भी मैने राम के सिवाय किसी और का स्मरण किया हो तो मै जल कर राख हो जाऊ? उसने अग्नि मे प्रवेश किया कि अग्नि पानी हो गई। कैसा प्रभाव है सत्य का?

सुदर्शन की शूली सिहासन वन गई। सीता का अग्नि-कुंड, पानी का कुड हो गया। राम सीता से माफी मागते है। अयोध्या पधारने की विनती करते हैं। मैने तुमको जंगल मे भेज कर कष्ट पहुचाया, मै अपराधी हूं। मुझे क्षमा कर दो।'

सीता सती थी। रामने उससे वहुत कहा, पर वह अव ससार मे रहना नहीं चाहती। वह वीतराग के मार्ग पर जाने को तैयार होती है। उसने यह नही सोचा कि राम खुश हो गये है— प्रजा भी खुश हो गई है, तव दीक्षा लेकर

क्या करूंगी? महलो मे रह कर सुख का अनुभव क्यों न करुं? जब सच्ची दृष्टि आ जाती है तब आत्मा संसार मे रहना नही चाहता। दर्पण में चाहे जो आओ वह उसका स्वागत ही करता है, दर्पण किसी का तिरस्कार नही करता—राजा आवे या रंक, भिखारी आवे या सेठ, स्त्री आवे या पुरुप—वह सबका सत्कार ही करता है। वैसे ही तुम भी सुख आवे या दुख—हर्ष हो या रंज उनका स्वागत करो, पर मन को मलिन मत होने दो। तभी आत्मा महान बन सकता है। महानता प्रकट करने के लिये गुणो को प्रकट करो—दुखो से भागो मत।

टैगोर ने अपनी प्रार्थना मे कहा है—हे भगवन! मैं यह नही कहता कि तू मुझे कष्ट न दे। दुख भले आवे, पर तू मुझे उनको सहन करने की शक्ति दे, मै कभी विचलित न होऊ—ऐसी कला मुझे बता।

दुख तो मोक्ष मे पहुंचाने वाला है? सुख मे कौन मुक्ति की बात सोचता है? दुख आता है तो आदमी की आंख खुल जाती है। यह कैसे हो गया? दुख तो सावधान करता है।

तैतली पौटिला से परागमुख हो गया। फिर भी पौटिला उसके प्रति बुरा नही सोचती।

सीता को वनवास जाने की क्या जरूरत थी? वनवास तो राम को हुआ था। फिर भी वह राम की पत्नी थी अतः सुख—दुख मे सहभागी तो थी ही। वह भी राम के साथ वनवास चल देती है। उसने अपना यही कर्तव्य समझा था। राम की आज्ञा से जब लक्ष्मण उसे जंगल मे छोड कर वापस लौटते है तो रोने लगते है। सीता कहती है—लक्ष्मण, तुम क्यो रो रहे हो? मुझे इसका रंच मात्र भी दुख नही है। मै गर्भवती हू। मेरा क्या होगा? भाग्याधीन है। तुम राम को मेरा यह सदेशा कह देना कि लोकोपवाद से तुमने मुझे छोड दिया, इसका मुझे दुख नही है, पर वे अपना धर्म कभी न छोड़े।

उधर राम भी लक्ष्मण का इन्तजार करते है। सीता के बिना राम की हालत भी ठीक नही रहती। लक्ष्मण आवेगा तो सीता का कुछ सन्देशा तो लावेगा? राम लक्ष्मण को देखते है तो पूछते है—सीता ने कुछ कहा भी था?

लक्ष्मण कहता है—उनका यही सन्देश है कि लोकोपवाद के भय से राम ने मुझे छोड दिया इसका मुझे अफसोस नही है, पर वे धर्म के वफादार रहे—उसे कभी न छोडे—कहते कहते लक्ष्मण रोने लग जाते है। क्या राम का हृदय भी नही भर आया होगा? कैसी सती थी? जो सीता राजरानी थी वही आज जंगल मे भटक रही है। फिर भी उसके हृदय में कोई उतार—चढाव नही है। महापुरुप जो होते हैं वे कांटों मे भी फूल की तरह ही चलते है। हरिश्चन्द्र और तारा

का भी ऐसा ही हाल हुआ। सत्य की कसौटी तो होती ही है। सोना आग मे जल कर भी सोना ही बनता है। महापुरुषों का जीवन तो देखो, कोई घांणी में पील डाला गया तो कोई गरम गरम तेल के कडावे मे भून डाला गया, किसी के सिर पर आग की भट्टी जला दी गई, फिर भी वे हिले नही–डुले नही। कैसी महानता थी उनकी ?

संकट कांटानी अेनी पथारी ने
अपयश फूल नी माला।
मोह ममता ने होमी होमी ने
प्रगटावे त्याग नी ज्वाला.....सतीया।

महापुरुषो का जीवन तो काटो की शैय्या पर ही खिलता है। सत्य के खातिर वे क्या नही करते? दमयन्ती ने कितना कष्ट सहा? पर याद रखिये, अन्त मे जीत भी सत्य की ही होती हैं।

अकर्म भूमि मे मोक्ष नही होता है। मोक्ष तो कर्म भूमि मे ही होता है–कष्टो का मुकाबला भी कर्म भूमि मे पैदा हुए मानव ही करते है। अतः दुख से घबराओ मत। दुख तो मोक्ष देने वाला है।

तुम चाहो कि लड्डू भी खाते रहे और मोक्ष मे भी चले जायं–इतना सरल मार्ग मोक्ष का नही है।

स्वागत सबका करो, पर स्वीकार सब का मत करो। काच की तरह सबको आने दो–पर स्वीकार तो उसीको करो जिसको तुम्हारी आत्मा कहे। पर का प्रभाव मेरे पर न हो ऐसा भाव जब आत्मा मे पैदा होता है तब वह उन्नति कर सकता है।

दानशाला मे पोटिला दान देती है। जो भी आता है किसी को वह खाली हाथ जाने नही देती। साधर्मी भाई भी आते है। एकदिन उस गाव मे सुव्रता आर्याजी भी आई। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २६–९–६८

[८८]

अनंत करुणा के सागर भ. महावीर ने दुनिया को उपदेश देते हुए कहा है–हे भव्य जीवो! अगर तुम शाश्वत सुख को प्राप्त करना चाहते हो तो अपने स्वभाव मे स्थिर बनो–परभाव छोड़ कर अपने स्वभाव मे आ जाओ। बाह्य लक्ष्य तो इस जीव ने अनेक बार किया है परन्तु स्व लक्ष्य नही किया इसीलिये यह भव–चक्र अभी तक मिटा नही है।

तेतली पोटिला के लिये दान शाला शुरु करता है। तेतली अपनी पत्नी पौटिला से परांगमुख क्यों बन गया? दोनो को समझ मे नही आता है। तेतली उसका आर्तध्यान मिटाने के लिये दानशाला की शुरुआत करता है।

आत्मा समझ जाय तो ऐसे अवसर से भी लाभ उठा सकता है। अनायास मुझे यह मौका मिल गया है तो उससे लाभ क्यो न उठा लू? पर पोटिला की समझ उल्टी है–शारीरिक सुख पर ही उसकी दृष्टि रहती है अतः वह दुखी रहती है। सच्ची समझ न होने पर ही जीव शारीरिक सुख में सुख मानता है।

काया के ममत्व ने आत्मा का जितना बुरा किया है उतना किसीने नहीं किया। शरीर को थोडा सा दुख होता है कि घबरा जाते हो। यह परम्परा आज की नही अनादिकाल से चल रही है। जिस काया ने अनंत काल से रखडाया है उसी मे तुम लुब्ध क्यो हो रहे हो? उसको वश में क्यो नही करते? मोह इतना अधिक मन मे बैठ गया है कि वह किसी को धर्म के पास जाने नहीं देता है। उपवास कर के दूसरे दिन पारणा करते हो तो खाने का मोह पैदा हो जाता है। स्वाद मे ऐसे मस्त हो जाते हो कि उपवास का भान भी भूल जाते हो। धर्म तो किया, पर मोह मे ही रह गया। इसीलिये प्रगति नही होती है।

शरीरमाद्य खलु मुक्ति साधनम्?

शरीर ही मुक्ति का साधन है–ऐसी बात नही है। दुनिया मे कोई ऐसा आदमी नही है जिसने शरीर का मोह रख कर मुक्ति पाई हो। शरीर साधन अवश्य है, पर वह साध्य नही है। कोयला रसोई बनाने का साधन है, पर उसे जलाओगे नही तब तक रसोई कैसे बन सकेगी? क्या बिना जलाये कोयले पर दाल रखने से दाल पक सकती है? इसी तरह मोक्ष तो लेना है, पर इन्द्रियो को खुली छोड दोगे तो वह नही मिल सकेगा–उनको तो वश कर के तप रूपी अग्नि मे जलाना ही पडेगा, तभी मोक्ष प्राप्त कर सकोगे। भ. महावीर ने १२॥ वर्ष तक क्या किया? वे तो राजकुमार थे। फिर भी देह का मोह उन्होने कहा रखा था? धन्ना अणगार को देखो–दीक्षा लेकर छट्ठ का तप शुरु कर दिया और पारणे मे भी रुक्ष–आयबिल का आहार लेना, कैसी उग्र तपश्चर्या थी उनकी? अखूट सम्पत्ति का मालिक साधु बन कर कैसा उत्कृष्ट तपस्वी बन जाता है? उसने कभी अपनी सुकोमल काया की भी चिन्ता नही की। एक बार श्रेणिक ने भगवान महावीर से पूछा–भगवन! आपके १४ हजार साधुओं मे सब से प्रथम नंबर का साधु कौन है? किसकी धर्म–करणी सर्व श्रेष्ठ है?

भगवान ने उत्तर दिया–धन्ना अणगार सर्व श्रेष्ठ अणगार है। उनकी

तपश्चर्या सबसे उत्तम है। स्वयं भगवान ने जिनकी प्रशंसा की—कहिये वे कैसे उग्र तपस्वी रहे होगें ?

कही आग लगती है तो फायरब्रिगेड की मोटर घंटा बजाते हुए निकल जाती है। उसके लिये रास्ता साफ कर दिया जाता है। एक औरत अपने ४ वर्ष के लडके को लेकर चल रही थी, उसने अपने लडके को नही संभाला और वह बम्बावाले की मोटर से टकरा कर मर जाता है। मोटर ठहरती नही है—वह तो आग बुझाने के लिये जहा आग लगी हुई है, वहां चल देती है। पानी का बहाव कर आग को काबू में कर लिया जाता है। कई आदमियो की जान बच जाती है। सरकार आग बुझाने वालो को ५०० रुपयें का इनाम देती है।

लोगो ने कहा—इन्होने तो एक लडके को मार दिया है—इन्हे इनाम नही मिलना चाहिये।

सरकार ने कहा—इनका ध्यान आग बुझाने की तरफ रहता है—जहा सैकडो आदमी की जान जोखम में हो, वहां तुम अपनी असावधानी से किसी बालक को मरवा दो तो इसमे इनका क्या दोष है ? इसी तरह हृदय मे भी कषाय रूपी अग्नि जल रही है—उसको बुझाने के लिये ज्ञान रूपी नीर का छिडकाव करो—आत्मा मे वह ज्ञान पैदा करो जो इस कषाय का उपशमन कर सके। जब देह का ममत्व छूटता है तभी आत्मा प्रगति कर सकती है।

पोटिला का मोह दूर नही होता है। वह बाह्य सुख में ही सुख मानती है और चिन्तित रहती है। लेकिन वह भी खानदानी नारी है, पति की कभी बुराई नही करती।

पति चाहे जैसा रुष्ट क्यों न हो जाय, पर पतिव्रता स्त्री उससे विमुख नही होती है।

मनोहर और सुशीला दोनों साथ साथ पढ़ते है। दोनो के माता—पिता ने उनकी आपस मे सगाई कर दी। मनोहर डाक्टरी परीक्षा में फेल हो जाता है और सुशीला पास हो जाती है। लोग कहते हैं— मनोहर फेल हो गया—सुशीला की सगाई तोड देनी चाहिये। लेकिन सुशीला ऐसा नहीं सोचती। मनोहर से वह कहती है— एक बार जो संबंध हो गया—मैने तुम्हे पति मान लिया उसे अब मै छोड नही सकती हूं। तुम फेल हो गये तो क्या ? अपने संबंध मे उससे बाधा आने वाली नही है। दोनों की शादी हो जाती है। सुशीला अपना दवाखाना खोलती है। वह अच्छा चलने लगता है। सुशीला मनोहर से कहती है—हमारा खर्चा दवाखाने से चल जायगा। तुम पढो और डाक्टर बन जाओ तो भविष्य में ठीक रहेगा। वह मनोहर को पढाती है। मनोहर भी डाक्टर बन

जाता है। गृहस्थी बड़े आराम से चलती है। सुशीला को एक लडकी भी हो जाती है। मनोहर ने भी अपना दवाखाना शुरु कर दिया। वह भी अच्छा चलने लगा। एक दिन उसने सुशीला से कहा—अब तुम अपना दवाखाना बंद कर दो। सुशीला ने पूछा—क्यों बंद कर दू? गांव मे औरतों का दवाखाना तो मेरा ही है? चलता भी अच्छा है—फिर बंद क्यो करू? मनोहर ने कहा—क्या तू यह समझती है कि मै कमा नही सकता? तू ही कमा सकती है? तेने ही मुझे पढाया है? सुशीला ने कहा—मैंने कब ऐसा कहा है? क्यो तुम ऐसा सोचते हो? मेरा जो कर्तव्य था, वह मैंने पूरा किया है? तुम गलत क्यो सोच रहे हो? अभी अपनी जवान अवस्था है, कुछ कमा लेगे तो आगे काम ही आवेगा। अतः दवा- खाना वद करने से क्या फायदा है?

आदमी जवानी मे वृद्धावस्था के लिये धन कमा कर रखता है। वैसे ही तुम धर्म भी क्यो नही करते हो? जवानी पैसा इकट्ठा करने के लिये और वृद्धावस्था धर्म करने के लिये रखते हो—पर वृद्धावस्था मे तुम न कर सकोगे तो पछतावा ही रहेगा नं? यह कौन जानता है कि तुम वृद्ध भी बनोगे या नही? अतः जवानी मे ही जो करना चाहो कर लो, आगे फिर नही कर सकोगे तो पछताना ही पडेगा।

बनीने दिवाना जींदगी गुमावी
अमुल्य जुवानी ते धूल मां मिलावी
घडपण आव्या पछी शुं अे धोवे.
करीना कमाणी गुमावी शुं रोवे।

यौवन अवस्था मे कमाई न की और जवानी को धूल मे मिला दी तो फिर वृद्धवस्था मे क्या कर सकोगे?

सुशीला और मनोहर मे मतभेद हो जाता है। और एक दिन वात यहां तक वढ जाती है कि मनोहर सुशीला को अपने घर से वाहर निकाल देता है। सुशीला अपनी २ साल की लडकी को लेकर अपने दवाखाने मे रहने लगती है। सुशीला को वहुत दुख होता है। वह अपने अपमान का वदला लेना चाहती है। उसका प्रेम अव वैर मे परिणत हो जाता है।

मनोहर गाव छोडकर अफ्रिका चला जाता है। और वही अपना दवाखाना चालू करता है। सुशीला अपनी लडकी को भी डाक्टर वना देती है। लडकी चारु भी वडी होशियार डाक्टर वनती है। उसके हाथ मे जो भी केस आता है अच्छा हो जाता है। बीमारों का इलाज वह जी जान से करती है। गाव में उसका नाम भी वडा मशहूर हो जाता है। सुशीला दुखी रहती है। एक दिन

उसने मां से पूछा--मां--तुम दुखी क्यो रहती हो? क्या बात है? मा ने दुखित हृदय से वही पुरानी बात कह सुनाई। तू २ वर्ष की थी तब तेरे पिताने मुझे घर से बाहर निकल दिया था। मै उससे बदला लेना चाहती हू। यह काम अब तुझे करना होगा।

लडकी कहती है, बस, इतनी सी बात है, तू फिकर मत कर, मै सब काम ठीक कर दूगी। मौका आने दे--तेरा चाहा मै कर दूगी।

हुआ कुछ ऐसा ही कि अफ्रिका से मनोहर को वापस अपने देश आना पड़ा। अब वह कहा जावे? सुशीला के पास अब वह कैसे आ सकता है? वह पास के एक गाव मे दवाखाना खोलता है, पर उसकी तबियत ठीक नही रहती है अतः दवाखाना बराबर नही चलता। एक दिन वह बहुत बीमार हो जाता है। लोग उसे उसी अस्पताल मे भरती कराते है जहा उसकी लडकी चारु काम करती है। चारु ने देखा कि मेरा पिता मनोहर सख्त बीमार है। उसे खून देने की जरूरत है तो वह अपना खून मनोहर को देती है। इसके बिना उसकी जान खतरे मे है। खून देने से उसे कमजोरी मालूम होती है। डाक्टर उसे घर छोड जाते है। सुशीला पूछती है क्या हुआ? डाक्टर ने कहा--कुछ नही, एक बीमार को खून की जरुरत थी, चारु ने अपना खून दे दिया इसलिये कुछ कमजोरी आ गई है-- आराम करने से मिट जायगी। घबराने जैसी कोई बात नही है।

सुशीला बोली---इसे रक्त देने की क्या जरुरत थी?

चारु ने कहा--मा, तू सुन तो सही--मैने रक्त किसे दिया है? मैने अपना रक्त दूसरे को नही अपने पिता मनोहर को ही दिया है--न देती तो उनकी जान को खतरा था--मेरा खून ही उनसे मिलता था।

सुशीला बोली--तेने यह क्या किया? मुझे तो उससे बदला लेना था।

चारु ने कहा--इससे अच्छा बदला और क्या हो सकता है मा! उन्होने भले ही अपने साथ अच्छा बरताव न किया हो, पर अपना कर्तव्य तो हमें निभाना ही चाहिये। अपना फर्ज तो यही था।

मनोहर ठीक हो गया। उसे जब मालूम हुआ कि मेरी लडकी ने ही मेरे लिये खून दिया था तो वह सुशीला के पास आकर क्षमा मागता है।

चारु कहती है-- देख मा--मेरी भावना आज कैसा फल लाई है? वैर कभी वैर से नही मिटता, वह तो प्रेम से ही मिटाया जा सकता है।

पोटिला भी मन में पति के प्रति बुरा नही सोचती है। वह दानशाला में नित्य प्रति दान देती है। आगे क्या होता है यथावसर कहा जायगा--

ता. २६-९-६८

[८९]

पोटिला दानशाला मे दान देती है। दान कौन दे सकता है? लोभ को वश मे करने वाला ही दान दे सकता है। लोभ ऐसा दुर्गुण है जो सब गुणो का नाश कर देता है। इसीलिये लोभ को पाप का बाप कहा गया है। लोभी पुरुष अनेको का जीवन बरबाद कर देता है। लडका पिता को मारने के लिये तैयार हो जाता है। लोभ बडा खराब होता है—

कोहो पीइ पणासेइ माणो विणय नासिणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्व विणासणो।

जो लोभ को मिटा देता है वही दान दे सकता है। हृदय का ममत्व भाव कम करना दान है। लोटे मे पानी न समावे और उसका तुम दान कर दो तो वह दान सच्चा दान नही कहा जा सकता। ममत्व भाव छोडकर जो दान दिया जाता है वही दान सच्चा कहा जाता है। सत्कार्य मे देना दान है, पर अह भाव से देना दान को मलिन कर देना है।

कई लोग दान मे रकम तो लिखा देते है, पर उसकी उघराणी कराते रहते है। लिखाई हुई रकम दो–तीन वर्ष मे भी नही देते —यह कैसा दान है? जो दान देकर भुला दिया जाय वही दान सच्चा दान है। वाहवाही के लिये जो दिया जाता है वह दान नही कहा जा सकता।

भगवान महावीर ने दीक्षा लेने से पहले ३ अरब ८८ करोड ८० लाख सोनैया का दान दिया था। वडे बडे राजा महाराज भी वह दान लेने आते थे। आज भी यह प्रवृत्ति दीक्षा लेते समय देखी जाती है। साधु होने वाला अपने पास जो भी होता है सबका दान कर देता है। लेकिन कोई दीक्षा लेने के बाद भी पैसा इट्ठा करता रहे तो वह कैसा साधु है?

माथु तो सर्व मुंडावे जरा मन मुंडता सीखो
आवो रुडो अनेरो लाव नावे फरी फरीने ..आवो..
चाडीने चुगली मां शुं वखत शाने गुमावो छो
आवो प्रभु भजननी लहेर नावे फरी फरी ने
आवो रुडो मानव देह नावे.......

माथा मुंडाने से क्या होता है जव तक कि मन नही मुडाया? मन मुंडाता है तभी धार्मिक क्रियाऐ सफल हो सकती है। साधु वन कर भी अगर लडते ही रहो तो फिर साधु ही क्यो वने हो? एक उच्च वन जाय तो दूसरा उससे ईर्षा करने लगता है। यह कैसी साधुता है? ऐसा करके क्यों साधुता को लजा रहे हो?

प्रतित विना ना पंडित कहेवाणा मरने वांचे पोथी पाना
अे बहिर वृत्ति ने वाली शक्यों नहीं, मूरख लजावे उजला बाना रे हो जी
अजर अमर प्यालो गुरुजी अे पायो
मन मस्ताना फरुं दिवाना रे—हो जी—
अमरा रे पुरनी आश करो तो
छोडी दो देह आभिमाना रे हो जी !

ज्ञानी कहते है–तुम दीक्षा तो ले लेते हो, पर पहले भाव दीक्षा हृदय में प्रकट करो, द्रव्य दीक्षा उसके पीछे शोभा देती है। मन मे भाव दीक्षा के विचार न हो तो द्रव्य दीक्षा से क्या होगा ? दीक्षा लेकर कुछ दिनो बाद वापस अपने घर चल देते हो। यो क्यों दीक्षा की मजाक कराते हो ? जो लोग दीक्षा लेकर भाग जाते है वे अनंतकाल तक चौरासी मे रखड पडते है। भगवान कहते है उन्हे फिर कभी दीक्षा लेने का अवसर नही मिलता। बोलने को उन्हे जीभ भी नही मिलेगी। उन्हे निगोद के भव मे जाना पडेगा। दीक्षा भग करने की यह कितनी बडी सजा है ? ऐसी आत्माओ का ठिकाना कहा होगा ? साधु बन कर भी जो साधना नही करते, यही देखा करते है कि आज कहा माल–ताल बन रहा है ? किसके यहा मेहमान आये है ? ऐसा रस लौलुप भिक्षु अपना क्या उद्धार कर सकेगा ?

गृहस्थना रोटला गज गज जेवडा दांत
सभी करणी नहि करे तो खेची काढे आंत।

सूयगडाग सूत्र मे कहा है–

मुह मंगलिए उयराणुगिद्धे।

आइये, पधारिये–कैसी तबियत है ? क्या साधु श्रावक को ऐसा बोल सकता है ? साधु को किसकी परवाह होती है। वह तो भारडपक्षी की तरह आकाश मे विचरने वाला होता है। अमुक साध्वीजी तो बडी अच्छी है–मा की तरह बोलती है, ये तो बोलते भी नही— !

जाणे जगतने तारशुं, आप तरी सौ साथ।
तीर तजीने पड्या वमल मां, अवली पकडी बाथ।

कोई यह समझे कि मै ही सारी दुनिया को तार दूगा, कैसा सुदर व्याख्यान देता हूं ? अरे, नव पूर्व की विद्या वाला भी मोक्ष से वंचित रह जाता है तो तुम्हारी क्या बात है ? जिसका जैसा क्षयोपशम होगा उसको वैसा ही फल भी मिलेगा। नव पूर्व की विद्या कंठस्थ हो, पर आत्म ज्ञान न हो तो वह भी कोरा रह जाता है, उसका भी उद्धार नही होता। जो धर्म मे स्थिर हो जाता

है, फिर भले वह कम पढ़ा लिखा हो–आठ प्रवचन माता का ही उसे ज्ञान हो, पर साधना उत्कृष्ट हो तो वह भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

गौतम भगवान से पूछते है—

धम्म कहाएणं, भन्ते जीवे किं जणयइ ?

धर्मकथा सुनने से जीव को क्या लाभ होता है ?

भगवान कहते है–

निज्जरं जणयइ –

निर्जरा होती है।

उसी को आज तुमने मान-पान का साधन बना लिया है। अनत कालसे ऐसा करते आ रहे हो। मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकोगे ? मोक्ष प्राप्त करना है तो आत्म दर्शन करो, बाह्य दर्शन करने से कुछ नही होगा। अर्थोपार्जन की ओर क्यो देखते हो, आत्मदर्शन की ओर लक्ष्य रखो। धर्म सभा मे पैसेवालो को अग्रस्थान क्यों देते हो ? जहां जगह मिल जाय वही बैठ जाना चाहिये। जो धर्म मे आगे बढेगा वही आगे बैठने का हकदार होगा। यहा पैसे को बडा क्यों मानते हो ? लेकिन आज के अर्थ प्रधान युग मे तो पैसा ही बड़ा माना जाता है –

सर्वेगुणा कांचन माश्रयन्ति

पैसेवाले को ही कुलीन माना जाता है। फिर चाहे वह कुछ भी करे–अन्याय–अनीति, दुराचार, वैश्यागमन आदि कोई भी पाप क्यो न करे, पैसा वाला है तो वड़ा वही समझा जाता है। अर्थ शास्त्री धन की ही महत्ता बताते है।

शरीर शास्त्री कहते है– पहला सुख निरोगी काया-शरीरको स्वस्थ रखो। यही सवसे बडा सुख है। शरीर अस्वस्थ रहेगा तो धन क्या काम आ सकेगा ?

कामशास्त्री कहता है– काम-भोग की इच्छा न हो तो वहा तक अर्थ और शरीर की स्वस्थता का भी आनद कैसे अनुभव किया जा सकेगा। अतः सच्चा सुख और आनंद तो भोग भोगने मे ही है। उसी मे अर्थ और शरीर की सार्थकता होती है। भोगी अपनी सारी जिन्दगी भोग मे व्यतीत कर देता है, पर उसकी तृप्ति कहा होती है ?

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता –

भोग तो भोगे नही जा सकते है, पर तुम स्वय भोग के ग्रास हो जाते हो।

गान गाया नहि तारा कदिये
नाच्यो पामर संगे रही ने
त्यां ताल चुक्यो हुं पछडाई– आ सारी....

भोग विलास मे पडे हुए जीव क्या नही करते ? स्व स्त्री हो या पर स्त्री, विधवा हो

या वैश्या जहां भी रूप देखा मोहित हो जाते हो। यह पाप तुम्हे कहा ले जायेगा ? कभी इसका भी विचार करते हो ?

चाम चूंथ्या मुक्ताफल मुकी, जेर पीधा अमीरस ने छोडी
खाधु घास, छोडीने वनराई, आ सारी उमर गई ललचाई।
अे भूल हवे मने समझाई आ सारी......।

चमडे मे आकर्षित हो तुम आनद मान रहे हो। भोगी भोग मे आनंद मानता है। आत्मा की विभाव दशा तो देखो। जड जड मे रस मानता है। कुत्ता हड्डी चबाकर अपने ही खून मे आनद मानता है। हंस मुक्ताफल ही चुगता है–उसे मरना कबूल है, पर नकली मोती चुगना वह नही चाहता। तुम क्या कर रहे हो ? जड शरीर मे सुख मान रहे हो ? ब्रह्मचर्य रूपी मुक्ताफल छोड कर नकली मोती हाथ मे ले रहे हो। उसमे फस जाओगे तो याद रखना अनतकाल तक फिर निकलना मुश्किल हो जायगा।–

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा
संसार मोक्खस्स विपक्ख भूया
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा।

भगवान ने काम-भोगो को कालकूट जहर कहा है। फिर भी लोग कूद-कूद कर इसमे पड रहे हैं। और मजा मान रहे है। गटर मे पडने से भी कही सुख मिल सकता है ? शक्ति का व्यय मत करो, समय का सदुपयोग करो और आध्यात्मिक सम्पत्ति को यो मत घुमा बैठो। सच्चा आनंद तो ब्रह्मचर्य मे है, विषयो मे वह नही है। जब आत्मा का दर्शन कर लोगे तो तुम्हे इसकी सच्चाई समझ मे आ जायगी। अब तक तुमने जो भूल की है वह भी समझ जाओगे –

आ भूल हवे मने समझाई–आ.....

यह गीत तुम्हे हर समय याद आना चाहिये। तुम्हारे हृदय मे गूजते रहना चाहिये। भोग के पीछे तुमने हस की प्रीति भुला दी और भडुरे की तरह विष्टा मे आनंद मानने लग गये। फल–फूल छोडकर घास खाने मे मजा मानने लग गये। यह कैसी भूल तुम कर बैठे हो ? सरकार भी ५५ वर्ष की उम्र मे रिटायर्ड कर देती है, पर तुम कब निवृत्त बनोगे ? जैसे जैसे बूढे होते जा रहे हो वैसे वैसे ज्यादा फसते जा रहे हो। काम–भोग अनर्थ की खान है। उस तरफ मत जाओ, वह मार्ग तुम्हारा नही है। ऐसी निर्भयता तुम्हारे मे कहा है ? लडका गलत मार्ग पर जा रहा है–पर उसे कहने की ताकत तुम्हारे मे नही है। कहोगे तो लडका अलग हो जायगा। कमा कर कौन देगा ? स्वार्थ ही देखते

हो न? बात जबान तक आकर ही रह जाती है। तुम अपने लडके को भी नही कह सकते तो और किसको कह सकोगे? गुरु तो स्पष्ट कह देते है–उन्हे डर किस का होता है? वे कोई भाट–चारण थोडे ही है। धर्मी बनना है तो पहले अपने हृदय को शुद्ध करो, क्षेत्र–विशुद्धि करो। समय तो अपनी गति से चला जा रहा है–साधु आ गये और आकर भी चले जाने का समय पास आ रहा है। समय किसी के लिये ठहरता नही है।

आलस मां आउखा गया ने दिन दिन दोढा काम
फाटया रहेशे डाकला, पछी के दि भजशो भगवान।

फिर कब भगवान को याद करोगे? तुम जब मृत्यु शय्या पर सो जाओगे तब स्वजन सब स्वार्थ की ही बाते करेंगे–कही कुछ रखा हो तो बता दो–नमस्कार मत्र सुनने का कोई नही कहेगा। मृत्यु का महोत्सव करने वाले तो विरले ही होते है। तुम कैसे जाओगे! हसते हुए या रोते हुए?

परदेश से घर आओ और कमाकर कुछ नही लाओ तो घर वाले क्या कहेगे? कमा कर जाते हो तो कितनी खुशी तुम्हे होती है? यही हाल इस भवसे परभव मे जाने का है। कमाई करके जाओगे या यो ही खाली हाथ चले जाओगे? मृत्यु ऐसी होनी चाहिये कि तुम हसो और सारी दुनिया रोवे। मनुष्य भव मिला है–उसे सार्थक कर लेना तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिये।

गाय खल खाकर भी दूध देती है। और तुम फल–फूल खाते हो–मेवा मिष्टान्न खाते हो, पर खाकर भी क्या देते हो? गाय का यत्र देखो–घास खाकर भी दूध बना देती है और तुम हलवा पूडी खाकर भी विष्टा बनाते हो! तुम भी अपने यत्र का उपयोग क्यो नही करते?

बहुपुण्य केरा पुंज थी
शुभ देह मानव नो मल्योः
तो ये अरे भव चक्र नो
आंटो नहि एके टल्यो....।

मनुष्य के पास तो ऐसा यंत्र है कि वह उससे मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ऐसा यत्र किसी के पास नही है। नारकी और तिर्यंच की क्या बात, देवता के पास भी नही है। देवता भी जिस मानव जन्म की इच्छा करते है वह तुम्हे आज प्राप्त हुआ है। फिर अधकार मे क्यो भटक रहे हो? मानव मे ही ऐसी शक्ति है कि वह अंधकार से प्रकाश मे आ सकता है। तुम्हारे मे ऐसी शक्ति भरी पडी है, पर तुम कर क्या रहे हो? ५०० रु. का कीमती कपडा हो और तुम उस पर कैंची चला दो तो सामने वाला आदमी भी यह कह उठेगा कि यह क्या कर रहे हो? अमूल्य मानव

भव प्राप्त करके भी आज तुम क्या कर रहे हो? कही उस पर भी कैंची तो नहीं चला रहे है? उसे सार्थक क्यों नही करते? ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना करो–यही उसकी कमाई है। ऐसा करने वाला ही उन्नत वन सकता है।

भन मुडने वाले और भूल बताने वाले तो संत कहे जाते है। ऐसे महासती सुव्रताजी विचरते विचरते तैतलीपुर मे आते हैं। आगे क्या होता है यथावसर कहा जायगा।

ता. २७–९–६८

[९०]

तैतली प्रधान की बात चल रही है। धर्म कथा आत्मा की व्यथा दूर करने वाली है। कथा सुनने के बाद भी आत्मा की व्यथा दूर न हो तो वह कथा सुनना न सुनना बराबर है। वीरकथा से वीर रस पैदा हो जाता है, काम–कथा से काम विकार जागृत हो जाते है–हास्य कथा से हसी पैदा हो जाती है वैसे ही धर्म कथा से भी शांत रस आत्मा मे पैदा होना चाहिये। अनंतकाल की पीडाओ को मिटाने वाली यह धर्म कथा ही है। ऐसी कथा सुनाने वाले साधु–साध्वीजी ग्रामानुग्राम विहार करते है। वे कही स्थिर नही रह सकते। साधुओ का विहार नव कल्पी कहा जाता है। ८ महिनो के ८ और चौमासे का १ सब मिला कर ९ है। चातुर्मास के सिवाय कही भी साधु २९ दिन से अधिक नही रह सकता है। साध्वी ५८ दिन से अधिक नही रह सकती है। बीमारी की बात अलग है, पर सशक्त अवस्था में उन्हे ऐसा ही करना पडता है। जहा रहते है वही गोचरी कर सकते है। गाव मे रहे तो गाव बाहर जाकर गोचरी नही कर सकते और गाव बाहिर रहे तो गांव के अदर आकर गोचरी नही कर सकते। विहार करने से उनके संयम का रक्षण होता है, और धर्म की प्रभावना भी होती है। राग का वध नही होता। राग चेपी रोग है। आप किस गाव मे चौमासा करोगे। मुझे सूचना देना, मै दर्शन करने आऊंगा ऐसा राग भी नही होना चाहिये। साधु के लिये तो सब समान है, उसे दूसरो का परिचय क्यो करना चाहिये? जैसे दर्पण सब का स्वीकार करता है, प्रतिकार किसी का नही करता वैसे ही जिसने भगवान से प्रीति कर ली उसे फिर ससार से क्या काम है? क्या हुआ? लडका या लडकी? नाम क्या रखा? साधुको यह सब क्यो पूछना चाहिये? जिस झझाल को तुम छोडकर साधु बन गये हो उस झंझाल को फिर तुम याद क्यो करते हो?

भगवान ने कहा है—साधु गृहस्थ का परिचय नही करे। व्यापार मे लाभ हुआ है या नुकशान? यह बात मत सुनो। इससे तुम्हारी साधना नष्ट हो जायगी। अतःदिमाग को अशात मत बनाओ।

तुम घर से तो आज्ञा लेकर साधु बने हो, आज्ञा देने मे अगर माता-पिता विलम्ब करते है तो तुम्हे वह सहन नहीं होता। साधु बनने की शीघ्रता रहती है। लेकिन दीक्षा लेने के बाद भी अगर तुम वही प्रपंच करते रहो तो तुम दीक्षा क्यो लेते हो? और अगर प्रपच छोडकर ही साधु बने हो तो फिर उसकी फिकर क्यो करते हो?

ले जो समझीने सयम भार

सयम तो समझ कर लेने की वस्तु है। वह कोई हवा मे उडने वाली चीज नही है।

अवउज्झिय मित्त बधव विउलं चेव धणोह सचय।
मातं विइय गवेसए समयं गोयम मा पमायए।

माता-पिता, सगे-संबधी सब को छोड कर आये हो, फिर दृष्टि ऊची-नीची क्यो करते हो-सर्प की तरह दृष्टि क्यो नहीं रखते? जो वमन कर दिया फिर उसको क्या देख रहे हो? यह मेरा घर, यह मेरा भाई यह क्यों सोचते हो? याद ही करना था तो छोडा क्यो? साधक वना है तो संसार को तो भुलाना ही पड़ेगा।

तुम्हारे घर मे क्या होगा? इससे हमे क्या लाभ है? जो होना होगा वह होगा। संसार मे सार ही कहा है? सर्वत्र दुख ही दुख है। सुख उसमें है ही कहा? अगर होता तो तीर्थंकर जैसे महापुरुष भी उसे क्यों छोडते? संसार मे सुख का अश भी नही है- इसीलिये तो वे उसे छोडकर जंगल में चले गये। साधक वन कर जो अपनी देह का भान भी भूल जाते है, वे तुम्हे क्या याद रखेगे? हमको भी पत्रिका भिजवाना, क्या वे ऐसा कह सकते है? साधु का वेप धारण करके भी अगर वृत्ति में परिवर्तन नही हुआ तो उससे भी क्या लाभ हो सकता है?

संसार छोडने के वाद कौन तुम्हारा है और कौन पराया? इसका विचार भी क्यो करना चाहिये?

जैसे कपडे पर धूल पड जाय तो उसे झाड दी जाती है वैसे ही तुम संसार को भी झाड दो। साधु को संयोग-वियोग का सुख-दुख नहीं होता। उसे तो सर्वत्र समान भाव रखना पडता है। इसीलिये साधु को एक ही गांव मे अधिक समय तक रहने का मना किया गया है। उससे राग ही पैदा होता है। इसीसे सम्प्रदायवाद पनपने लगता है।

भगवान महावीर के संघ मे जो वीरांगनाऐ संयम लेकर साध्वी वन गई उनको फिर मेरा –तेरा नही रहता। वे सब कौन है? भगवान के ही तो प्रचारक है। काम सब एक ही कर रहे हैं। फिर यह क्यो सोचते हो कि वे मारवाड के है और ये गुजरात के? वे पंजाव के हैं और ये कच्छ के? साधु भी यह नही कह सकता कि ये मेरे श्रावक है–इनके लिये दूव पाक वनाना–इनकी बराबर संभाल करना। भगवान के यहाँ किसी भी तरह का भेदभाव नही है–वहां तो कहा है––

नमो लोए सव्वसाहूणं ––

व्यक्तिगत किसी को भी नमस्कार नही किया गया है। नमस्कार मंत्र तो देखो–उसमे कही सम्प्रदाय का नाम भी है?––

नमो अरिहंताणं––

सभी अरिहंत आ गये–जिसने भी कर्म–शत्रुओ को जीता– उन सबको नमस्कार क़िया गया है। इसी तरह सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय को भी नमस्कार किया गया है। ३६ गुण जिनमे है वे आचार्य और २७ गुण जिनमे है वे उपाध्याय –भगवान की आज्ञा मे चलने वाले सभी साधु है– फिर चाहे वह दरियापुरी हो, पजांबी हो या मारवाडी हो, उससे कोई फर्क नही पडता है। सबका सिद्धान्त तो एक ही है कि

जयं चरे जयं चिट्ठे जय मासे जयं सए।
जयं भुजंतो भासन्तो–पावकम्मं न वंधई।

कौनसा साधु ऐसा है जो उपयोग पूर्वक नही चलता। कौनसा सम्प्रदाय ऐसा है जो ३२ सूत्रो को नही मानता। जो महावीर के सिद्धान्त न माने वह महावीर की सम्प्रदाय कैसे कही जा सकती है? साधु होकर भी अगर वह भगवान की आज्ञा न माने तो वह साधु नही साधु वेषधारी नट ही कहा जायगा, वह साधु नही कहा जा सकता।

असल असल छे नकल नकल छे
वीरतें शान मां समजी रे जाय।
साचो मानव थई ने जगत मां पूजाय छे रे
जेवी जेनी जात छे तेवी तेनी भात छे –रे।

असत्य, असत्य है और नकल–नकल है। नट नकल करता है लेकिन सुभट असली होता है, वही कर्मो से युद्ध कर विजय प्राप्त कर सकता है।

छोटे वालक को समझाने के लिये हाथ पर घडी वांव देते हो, पर उसका

कांटा कहा फिरता है? तुम भी साधु को बच्चो की तरह समझाना चाहते हो, पर साधु ऐसे नही होते—

देह जाय पर माया थाय न रोम मां

साधु अपने को ठग नही सकता। तुम कहो वैसा वह नही कर सकता। तुम्हारा मान पाने के लिये वह तुम्हें अच्छा लगे वैसा करने लग जाय तो फिर वह कैसा साधु है? जो साधु अपने मार्ग पर चलता है, वही साधु सच्चा साधक होता है। और दुनिया मे वही पूजा भी जाता है।

पीतल सोनुं न थाये कदी
कोलसो नदीअे न्हाये तोय ना उजलो रे—

जैसी डाई होती है वैसी ही उसकी छाप भी पडती है। ज्ञानी कहते है—पीतल सोना कभी नही बन सकता। कोयला को नदी मे खूब साफ करो, पर क्या वह सफेद कभी बन सकता है? तुम कौन हो? क्या कर रहे हो? धर्म कर रहे हो या नही? इसका भी कभी विचार करते हो?

तेजी ने टकोरो ने गधेडा ने डफणा
रोज खाय ने रोज भूली रे जाय।
दुर्जन मीठु खाय तोय कडवुं बोलतो रे—

अच्छी नसल का घोडा होता है उसे तो इशारा ही बहुत होता है—इशारा किया नही कि चल देता है, परन्तु गधा कैसा होता है? मारो तब भी कुछ दूर चल कर फिर रुक जाता है। टकौर को तो चकौर ही समझ सकता है। ज्यादा कहो तो टक टक कहा जाता है। कुम्हार टकटक करता रहता है—उसके घर मे रहने वाला पक्षी भी अनुभवी हो जाता है। लेकिन जो नया पक्षी होता है वह तो सुन कर ही भाग जाता है। इसी तरह तुम भी हमारी टक टक के अनुभवी बन गये हो—ससार छोडकर भाग जाने वाले नही हो—महासती जी तो रोज रोज यही कहती है—ऐसा ही सोचते हो न? हम तो चिकने घडे है—क्या असर होने वाला है?

ठाणाग सूत्र मे चार तरह की वर्षा बताई गई है—१ एक वर्षा ऐसी होती है जो १० हजार वर्ष तक पृथ्वी को गीली रखती है। एक वर्षा ऐसी होती है जो १०० वर्ष तक पृथ्वी को गीली रखती है। एक वर्षा ऐसी होती है जो १ वर्ष तक पृथ्वी को गीली रखती है। और एक वर्षा ऐसी होती है कि आज हुई तो कल फिर सूखा हो जाता है—रोज वर्षा की जरुरत रहती है। तुम्हे कितनी वर्षा चाहिये? कितने साधुओ का व्याख्यान सुना, पर सुन कर क्या हुआ? चिकने घडे पर पानी गिरा पर वह तो कोरा का कोरा ही रहा। कुछ भी असर नही हुआ।

जम्बूस्वामीने केवल एक ही व्याख्यान सुना और संसार छोडकर निकल पडे थे। तुम कितने निकले ऐसे? रोज सुनते हो और सुनकर चले जाते हो। भूल क्यो जाते हो? चतुर घोडे की तरह क्यों नही बनते? तुम्हारे लिये तो इशारा ही बहुत है। हमको देख कर भी तुमको ईर्षा क्यो नही होती? हमको न दुख, न चिन्ता, न किसी की फिकर—कैसा आनंद है? यह देख कर तुम हमारे मार्ग पर क्यों नही आते हो? भगवान के मार्ग पर आने में तुम्हे क्या दुख है? आओ और पूछो, हम तुम्हारी शकाओ का समाधान नही करेगें तो और कौन करेगा? यही मौका है, फिर ऐसा मौका मिलने वाला नही है। ऐसा संस्कारी कुटुम्ब फिर मिलेगा भी या नही? जरा सी हिम्मत करो तो निकल सकते हो। लकडे से पार होना सुरक्षित नही है और न हाथ से ही तिर कर पार हो सकते हो—तिरना ही है तो संयम लो—संयम रूपी नाव मे बैठकर भव सागर पार हो सकते हो———

संयम सुंदर नावा भव सागर तरी जावा।
वीर वाणी का लीओ लावा, भवसागर तरि जावा।

संयम रूपी नाव मे बैठ जाओगे तो हम तुम्हे सुरक्षित रूप मे पार पहुंचा देगे।

भव सागर मां होडी तरती फरती आनंद लेवा।
मांही वसे छे महान जलचर, काम क्रोधादि जेवा रे—
तमे हलवे होडी हांकोरे भव सागर घणो तूफानी।

ज्ञानी कहते है—तुम अपने बाहुबल से ही तिरने जा रहे हो, पर याद रखना सागर मे बडे बड़े जलचर है—पहाड है—उनसे टकरा जाने का भय है। काम—क्रोध, भय, ईर्षा, नीदा आदि जलचर है— मौका पाकर वे तुझे खा जायगे। उनसे वचना बडा मुश्किल है।

एक सन्त के पास दो आदमी आये—एकने कहा—ये बहुत बड़े आदमी है—इनके पास अपना हेलिकोप्टर है। इसी मे ये मुसाफिरी करते है।

सन्त ने कहा—समय की बहुत वचत करते हो—जो सुज्ञ होता है वही समय की कीमत करता है।

परिचय देने वाले ने परिचय आगे वढाते हुए कहा—इनकी कई कम्पनिया है—सब जगह जाना रहता है, हेलिकोप्टर के विना सव जगह पहुंच सकना संभव नही हो सकता। वहुत समृद्ध आदमी है।

सन्तने कहा—तव तो आराम की नींद आती होगी न?

सेठने कहा—नही साहव, नीद की तो गोलिया लेनी पड़ती है। लोग समय की वचत करके भी क्या कर रहे है? तृष्णा ही तो वढा रहे हैं? समय का सदु-

पयोग नही करोगे तो यह सब व्यर्थ ही चला जायगा। भगवान कहते है–तुम्हारी नाव सलामत नही है, वह तूफान मे फंस गई है। उसे छोड दो और मेरी नाव में आ जाओ। मै तुम्हे सुरक्षित रूप में उस पार पहुंचा दूंगा। लेकिन कोई बैठने को तैयार कहा होता है?

सत्संग नो ज्यां सठ चडाव्यो होडी चाली पूर मां,
वैराग्य नो त्या वायरो वायो आनद उलस्यो उरमां रे,

सद्गुरु का संग किया कि नाव समुद्र मे बढ जाती है। आगे जैसे जैसे त्याग–वैराग्य के हिलौरे आते है, नाव तेजी से भागने लगती है, फिर उसे स्वाद मे रस नही आता –वह तो पार होने की चिन्ता करने लगता है।

आज से आयंबिल की ओली शुरु हो रही है–नौ दिन तक आयंबिल न कर सको तो एकासणा करो–लीतोतरी का त्याग करो–ब्रह्मचर्य का पालन करो यथा शक्ति जो भी त्याग कर सको अवश्य करो।

सुना है कुछ लोग यहां आयंविल मे भी झूठा छोडते है। ऐसा नहीं करना चाहिये। आयंबिल करके झूठा नही छोडा जा सकता है। भूख से कम खाना आयंविल है। अगर आयंविल के साथ उणोदरी न की तो उससे क्या लाभ है? इच्छा से कम खाना और झूठा नही छोडना ही आयंविल कहा जाता है।

उपलेटा मे पटेल लोग भी आयंबिल करते है। तुम तो यहां आसोज और चैत्र मे ही करते हो, पर वहा तो हर रोज वे लोग आयंबिल करते है। आटा में नमक भी नही डालते। नमक रहित रोटी पानी मे चूर कर खा जाते है। तुम्हारे से भी उनका आयंबिल चढ जाता है।

आयं—यानी सर्प

विल–दर

जैसे साप सीधा विल में चला जाता है, वैसे ही सीधे सीधे गले में उतार देना आयंविल है। रोज खाना खाते हो तो ५–७ मीनिट मे खा लेते हो, पर आयंविल करते हो तो आधा घंटे तक धीरे धीरे खाते रहते हो–यह कैसा आयंविल है? आयविल का यह अर्थ नही कि तुम ज्यादा खा लो। भूख से कम खाना–स्वाद रहित खाना ही आयविल है।

कर्मो के निविड बधनो को ढीला करने का यह मौका मिला है। व्रत-पच्चक्खाण करो–कुछ भी त्याग करोगे तो अपनी आत्माका कल्याण कर सकोगें।

महासती सुव्रताजी तेतलीपुर मे पधारती है।

आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २८–९–६८

[९१]

भगवान की वाणी का महात्म्य अपूर्व है। वह भाव रत्न चितामणि, भाव कल्पतरु, भाव कामधेनु के समान है। भवो भव की बेडियाँ तोड़ देने वाली है। उसका प्रवाह जो झेल लेता है, उसका तो बेडा पार हो जाता है। जैसे जीवन मे हवा, पानी और प्रकाश की जरूरत होती है वैसे ही जीवन मे भी वाणी की जरूरत है, ज्ञान की जरूरत है। सुनोगे तभी यह समझ सकोगे की कौन सा मार्ग सुन्दर है और कौनसा मार्ग खराब, कौन सा प्रिय है और कौन सा अप्रिय है? 'ज सेयं तं समायरे' सुनकर जो अच्छा लगे उसीका आचरण करना चाहिए।

भगवान की वाणी मे उपशम रस के झरने भरे पडे है जिनसे अनन्त काल की थकावट मिट जाती है। उनकी वाणी जन्म, जरा और मृत्यु से मुक्त करने वाली और शाश्वत सुख देने वाली है।

दुनिया के जीवो को क्षणिक सुख के लिये भी कितनी दौड–धूप करनी पडती है? सुबह से शाम तक चिन्ता छाई रहती है। रात मे नीद मे भी उसी के स्वप्न देखते हो। ऐसे जीव सामायिक भी करे तो संकल्प विकल्पो को कैसे मिटा सकेंगे?

नदी में अंगूठी पड जाती है तो वह दिखाई नही पडती है–क्योंकि उसका पानी स्थिर नही होता। पानी स्थिर हो जाता है तो पडी हुई वस्तु भी दिखाई दे जाती है। इसी तरह आत्मा को भी समाधि मे स्थिर करो, फिर उसमे विकार की तरगे उछाले नही मार सकेंगी–

मन की तरंग मारलो बस हो गया भजन।
आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन।

समाधि करना हो या ध्यान करना हो, माला फेरना हो तो मन की स्थिरता करना आवश्यक है, उसके विना निर्विकल्पदशा पैदा नही हो सकेगी। सकल्प-विकल्पो को मिटा कर निर्विचार दशा पैदा करना सामायिक मे स्थिर होना है। मन मे विचारो को न आने देना ही भजन करने की सार्थकता है।

आज भी कई आदमी यह कहते है कि मुझ से आयंविल नही होता क्योंकि चाय पीने की आदत हो गई है। आदत किसने डाली? पहले तुमने आदत डाली, फिर वह तुम्हारे पर सवार हो गई। अफीमची अफीम न खावे वहा तक उसका दिमाग टिकाने पर नही रहता है। ऐसे ही चाय न पीओ वहा तक सिर ठीक नही रहता है। उसे चाय मे ही सुख मिलता है। ऐसे ही दवा पीने की भी आदत हो जाती है। उसको भी लिये विना चैन नही पड़ता। ज्ञानी कहते है–

आया कहां से कौन है तूं जायगा कहां ?
इतना ही दिल विचार लो, बस हो गया भजन ।

तू कौन है ? कहां से आया है ? जायेगा कहां? ये तीन प्रश्न है । इनको समझलो तो इतना ही काफी हो जायगा ।

तू कौन है ? मैं हरिभाई ? नहीं, मैं चैतन्य हूं, अनंत सुखमय और अनंत गुणों का स्वामी हू । मै शरीर नही हू । बढ़ना या घटना मेरा काम नही है । मैं तो सच्चिदानद मय ज्ञान पुंज हूं ।

कहां से आया है ? चौरासी मे से । कही न कही से तो आया ही है न ? जायंगा कहा ? आफिस मे ! घर से आया हू और आफिस मे जाने वाला हूं ? यह तो शरीर आने जाने वाला है, तू कहा जाने वाला है ? शरीर को तुमने आत्मा समझ लिया है । जो दिखाई देता है उसकी तुम्हे पहिचान है, पर जो दिखाई नहीं देता–जो अरूपी है, उसकी तुम्हे पहिचान ही नही है । काच मे जो दिखाई दे रहा है वह तू नही है, वह तो रूपी शरीर है, तू तो अरूपी है । तुझ मे हाड़ चाम–मांस रुधिर कहा है ? तुम शरीर को देख कर खुश हो रहे हो, पर वह तो जड है–आत्मा गया कि उसे तो जला दिया जायगा ।

प्राण जशे ज्यां पिंड थी पिंड गणाशे प्रेत ।
माटी में माटी थशे चैत चैत नर चैत ।

ज्ञानी तो यह कहते है कि जिसे तुमने नही पहिचाना उसे पहिचान । शरीर को तो तुम अनादि काल से समझते हो। चाहे जैसा शरीर मिले तुम आनंद मान लेते हो–

जस्सि कुले समुप्पने जेहि वा संवसे नरे ।
ममाइ लुप्पाई बाले अण्णे अण्णेहि मुच्छिए ।

मैं न रहूंगा तो तुम्हारा क्या होगा ? कैसे तुम्हारा काम चलेगा ? यह भी कोई प्रश्न है । कितने ही चले गये, काम किसी का रुका थोडे ही है ? तू चला जायगा तो क्या है ? जिसके साथ भी रहे मोह ही पैदा किया । राग और द्वेप के ही पाये डाले । यह मेरा–यह तेरा । तुम्हारे साथ अब हमारा नहीं निभ सकता अत: अलग हो जा ओ । यही करते रहते हो । पर जिसे करना चाहिये वह कहां करते हो ? अनादि काल से तुम जिस शरीर को आत्मा मान कर चले आ रहे हो उसे अलग क्यों नहीं करते हो ? लिफाफे मे लाख रु. का चैक है–लिफाफा कितनी सावधानी से खोलते हो–कही चेक फट न जाय ! लिफाफा भले फट जाय, कोई बात नही, पर चैक नहीं फटना चाहिये । तुम अपने जीवन मे क्या कर रहे हो ? आत्मा रूपी चैक को सभाल रहे हो या शरीर रूपी लिफाफे को? शरीर तो साबन है, १५ पैसे का

लिफाफा है उसमें जो कीमती चैक भरा पड़ा है उसकी फिकर क्यो नही करते हो ? शरीर की संभाल क्यो कर रहे हो !

मलोखानो महेल अे ने संगेमरमर नो मानेल,
काया तारी मलोखानो महेल जी ।
बेक मलोखा आम मुक्या ने, बेक छे आम मुकेलजी
लोही मांस थी छांदीने भाई, उपरचाम मढेल, काया तारी
इरे महेल लीधो सीधो जमीने, पायामां कांई न पुरेलजी
ओचिंता नो उडीरे जाशे ज्यारे वाशे वायुनी रेल काया ।

गांव के लडके राडे से खेलते है– यह शरीर भी राडे का खेल है–जिसे तुम संगमरमर का समझ रहे हो ।

अमुक भाई कल मर गया– अखबार पढते पढते मर गया– रोज पढते हो, पर संभलते कहां हो ? शरीर के साथ भागीदारी क्यों कर रहे हो ? वह तो रूपी है और तुम अरूपी हो– तुम्हारी भागीदारी कहां तक चलेगी ? आखिर तो जड जड मे मिलने वाला है और चैतन तो चैतन ही रहेगा ।

तुमने जो यह शरीर का महल खडा किया है उसकी नीव तो है ही नही । कभी भी तेज हवा का झौका आया कि वह गिर जायगा । अतः उसका मोह क्यो कर रहे हो? आत्मा को क्यो नही पहिचानते ? पर को छोडकर स्व मे आवोगे तभी यह भटकना मिट सकता है ।

एक बार कुछ डाकू अपने सरदार के साथ गाव में आते है और ५ वर्ष के राजकुमार को उठा ले जाते है । डाकू राजकुमार को अपने यहा रखते है और उसे भी अपनी विद्या सिखाते है । मनुष्य को जैसी संगति मिलती है वैसा ही वह वन जाता है । राजकुमार डाकू की औरत को ही अपनी मां समझने लगता है [और उसे पिता । लूटना– खसौटना, मारना–चौरी करना यही काम वह भी करने लगता है]। शरीर मे वीर्य तो है–शक्ति तो है पर उसका उपयोग कहा करना ! यह समझ मे आ जाय तो मनुष्य के लिये कोई भी काम कठिन नही है । रस आना चाहिये–रुचि पैदा होनी चाहिये । जहा भी उसे रस आता है वह उसे याद रह जाता है, पर सामायिक–प्रति–क्रमण याद नही होता–क्योकि उसमे रस नही पैदा होता है । चाय पीने की आदत तो नही है पर अशक्ति रहती है अतः अभी पीना शुरु किया है– दूध तो हजम नही होता है–चाय शुरु कर दी है । अशक्ति से आसक्ति में आ गये, चाय पिये विना चैन नही पडता । इसी तरह शरीर मे भी मोहित हो गये । उसे संभालते संभाळते उसी में फंस गये । शरीर तो सावन है– साध्य नही । उसमे क्यों फंसते हो ? वह तो इधर से उधर ले जाने वाला है । उसे तो जैसा जैसा संग मिलता है वैसा वैसा वन जाता है।

राजकुमार भी डाकू हो गया। वह कौन है ? राजकुमार है–राजा का लडका है, पर इसका उसे भान नही है। वह तो अपने को भी डाकू का ही लडका समझ रहा है। तुम भी कौन हो ? और क्या कर रहे हो ? पहले इसे देखो Know thyself अपने आप को देखो–मै कौन हू ? तुमने आज शरीर को अपना मान लिया है। शरीर बीमार हो कि तुम घबरा जाते हो, शरीर स्वस्थ हो जाय तो खुश हो जाते हो–ऐसा समझना ठीक नही है। आत्मा कभी बीमार नही होता। तुम डाक्टर से दवा लेते हो और उससे फायदा हो जाय तो दूसरो को भी बताते हो–डाक्टर का भी प्रचार करते हो। वैसे ही हम भी तुम्हे काम-क्रोध-मान-माया आदि बीमारियो को मिटाने की दवा बताते है, जड और चैतन का ज्ञान बताते है–तुम कितनो को हमारे पास लेकर आते हो ? डाक्टर का जैसा प्रचार करते हो वैसा प्रचार वीतराग मार्ग का क्यो नही करते ? सच्चा प्रचार तो यही है। जहा कही भी बैठो– आश्रव से संवर मे कैसे आया जाय, निर्जरा कैसे हो ? यही चर्चा करनी चहिये। विकथा में क्यो पडे रहते हो ? संतो का सग करो– अपरिग्रहियो का साथ करो। परिग्रह की तरफ रुचि होगी ही नही। पर ऐसा कहां करते हो ? तुम्हारी तो रुचि परिग्रह मे ही रहती है– और परिग्रह मे तो हिसा है ही।

आव्यो पण ओलरव्यो नही मनुष्य जन्मनो मर्म।
वटकुं रोटला माटे जीव क्रोडगणा बांधे छे कर्म –।

मनुष्य वन कर भी मानव भव का मर्म नही समझा। जिस भव मे आकर सिद्ध वना जा सकता है–पूर्ण स्वाधीन वन सकते हो। पर साथ तुमने लुटेरो का कर लिया है– अतः मायाचारी वन गये हो। पाप करने से पीछे नही हटते हो। किसके लिये इतना इकट्ठा करते हो ? सात पीढी तक चले उतना इकट्ठा करके जाते हो, पर वह तो दो–तीन पीढी मे ही समाप्त हो जाता है। सवका भाग्य सव के साथ है। उनकी फिकर क्यो करते हो ? अपनी फिकर क्यो नही करते ? अपनी आत्मा का ध्यान करो, उसी मे तेरी मुक्ति है। पर की चिन्ता मे तो चौरासी खडी हुई है।

सुव्रता साध्वी जी तैतलीपुर नगर मे पधारती है। वे महान गुणो के भंडार है। गुणी आदमियो का ही प्रभाव पडता है। हीरा कपाट मे वंद हो तव भी वह प्रकाश तो देता ही है। शरीररूपी कपाट मे चैतन रूपी हीरा पड़ा है। शरीर को वश में करोगे तो उस हीरे का प्रभाव पडे विना नही रहेगा।

हीरो जवेरी घेर जाय, जईने अेरणे अयडाय
खमशे घण केरा घाय, मोटा मूल्येथी वेचाय
आवो ने आतमराय आपणज्ञान लीजिये।
करिये सत्यनो विचार, निर्मल थाओ नरनार

सत्ये चाले छे संसार, सहुने सत्य नो आधार

हीरा की परीक्षा जौहरी ही करता है। वह हीरे को एरण पर रख कर घण की मार चलाता है। जो हीरा टूटे नही वही सच्चा हीरा माना जाता है। उसे आग में डालो तब भी वह गरम नही होता। इसी तरह जो महान पुरुष होते है वे भी उपसर्गो से भयभीत नही होते है, न क्रोधित ही होते है।

रोडी के ढेर पर हीरा पडा हो, मुर्गा उसे पकडता है, पर चोच मे लेकर फेंक देता है। वह उसकी कीमत नही जानता। इसी तरह अज्ञानी लोग भी पुद्गल मे फँस जाते है। विषय कषाय मे फँस जाते है। और सच्चा हीरा छोडकर उसी ऐठन (झूठे) में सुख मानने लग जाते है।

पुद्गल अेठ अंनती वेला खाधो पीधो अपारी।
तेथी तृप्ति लेश थई नहीं समझ समझ सुखकारी।
आतम तुं नहिं जड़नो भिखारी।

यह आत्मा अनन्त काल से झूठा खाता चला आरहा है, फिर भी इसे तृप्ति कहाँ हुई ? तृष्णा उसकी मिटती नही है। कपिल केवली ने कहा है :-

कसिणं पि जो इमं लोयं पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स
तेणावि से न संतुस्से इई दुप्पूरए इमे आया ॥१६॥

सोने और चाँदी से सम्पूर्ण लोक को भर दो और वह किसी एक आदमी को दे दो फिर भी वह संतुष्ट न होगा। ऐसी तृष्णा अपार है, उसकी पूर्ति कभी नही हो सकती है। उसे तो दूर से ही सलाम करो। अपने पास भटकने भी न दो। कब तक उसका व्यवहार चालू रखोगे, उसकी इच्छा कभी पूरी होने वाली नही है। सामायिक में भी तरगी बने रहते हो, निर्विकल्पी कब बनोगे? मन को तुमने इतनी अधिक छूट दे दी है कि वह तुम्हारे ऊपर चढ बैठा है। घोडे की लगाम हाथ से छूट गई है। श्मशान मे भी तुम उसीका विचार करते रहते हो। अपना जीवन क्यो नही देखते। बाह्य आडम्बर में क्यों पडे रहते हो ?

राजकुमार अपने को डाकू का लडका समझता है। एक बार वह शिकार करने निकलता है। बीस वर्ष का जवान लड़का है। शरीर मे स्फूर्ति है। गौर वर्ण और देखने मे भी सुन्दर लगता है। उधर राजा भी शिकार करने निकलता है। दोनो की जंगल मे भेट होजाती है। राजा उस राजकुमार को देखता है तो उसके हृदय मे प्रीति पैदा होजाती है।

जिसे देखकर मनुष्य के मन मे राग या द्वेष पैदा होजाता है, तो समझलो उसके साथ तुम्हारा कुछ पूर्व भव का राग या द्वेष अवश्य है। तभी राग रागको खीचता है और द्वेष द्वेष को।

राजा ने उसे देखा तो प्रसन्न हो गया। वह बोला तू कौन है? कहाँ से आया है? राजकुमार ने कहा—मै पल्ली पति का लड़का हूँ और शिकार करने जा रहा हूँ।

राजा—तेरा पिता कहाँ है?

लडका—वह बिमार है।

सगा बाप सामने खड़ा है पर राजकुमार को उसकी पहचान नही। पहचान लुटेरे से है। राजा कहता है चल मै तेरे बाप को देखना चाहता हूँ। क्या तू मुझे अपने साथ ले चलेगा? राजकुमार राजा को अपने साथ ले जाता है। पल्लीपति विस्तर पर पडा है। राजा पूछता है—सच सच बताओ यह लडका किसका है?

पल्लीपति—मेरा है।

राजा—सचमुच तेरा है।

पल्लीपति—क्या मै जान सकता हूँ कि तुम कौन हो?

और यह क्यो पूछ रहे हो?

राजा—मै वैशाली का राजा हूँ। बहुत पहले मेरा इकलौता लड़का गुम गया था। पल्लीपति बोला—मै अब सच कह देता हूँ, एक बार मै वैशाली लूटने गया था वही से मै इस राजकुमार को ले आया हूँ। मेरे संतान नही थी। अतः मैंने इसे पाला-पोषा और बडा किया।

राजा ने कहा—यह तो मेरा लडका है। मेरे भी संतान नही है—यही इकलौता लडका है—इसे अब मुझे वापस कर दो—मै तुम्हारा उपकार ही मानूगा।

पल्लीपति बोला—आप ले जा सकते है—लडका आपका ही है—मुझे देने में दुख नही है, पर मैने इसे अपनी विद्या सिखाई है। इसका जरा ध्यान रखना। राजकुमार अव अपने को वैशाली का राजकुमार समझता है, डाकू का नही। मुझे तो यह उठाकर ले आया है। मै लुटेरा नही हूँ, वह सत्य समझ लेता है। राजा उसे वैशाली ले जाता है और उसका राज्याभिषेक कर उसे युवराज बना देता है। राजकुमार अब यह समझ जाता है कि मै अपने घर मे आगया हूँ। मुझे अब पर घर मे जाने का अधिकार नही है।

मै तो चेतन हू, क्या मैं पर—भाव मे जा सकता हूँ? मेरा धन्धा अनीति का नही हो सकता, मै राज्य का रक्षक हूँ, भक्षक नही। प्रजा मेरी है मैं उसे कैसे लूट सकता हूँ? इस प्रकार उसे अभेद भाव पैदा हो जाता है। आपको भी करवट बदलने की देर है। समझ सीधी हो जायगी तो आत्मा को समझते देर न होगी।

देह विनाशी हुं अविनाशी अपनी गति पकरेंगे
अब हम अमर भये न मरेंगे॥२॥

देह जन्म लेता है और देह मरता है। जन्म के साथ मृत्यु अवश्यंभावी है। पल पल मे वह मर रहा है। मै न जन्मता हूं और न मरता हूँ। मै तो अविनाशी हूँ। मै चोर नही वैशाली का राजा हूँ। अनन्त गुणो का स्वामी मै ही हूँ। मेरा नाश तीन काल मे भी नही है। अणुवम और एटमवम भी मुझे मार नहीं सकते, मै तो अविनाशी हूँ।

यह काया कौवे की तरह है और आत्मा हँस है। तुम आज हँस की चाल भूल गये और कौवे की चाल मे फँस गये हो। अब उसे छोडो और हँस की चाल पकड़ो। मेरी चाल के सामने एरोप्लेन की गति भी धीमी पड जाती है। आँख मींच कर खोलो कि असंख्याता समय व्यतीत हो जाता है। ऐसे एक समय में आत्मा चौदह राजू लोक मे घूमकर आ सकती है। कैसी तीव्र गति है उसकी? फिर भी तुम उसकी सम्भाल कहाँ कर रहे हो? और शरीर की ही सभाल करते जा रहे हो। समझो—अब भी समझो, शरीर तुम नही हो। अज्ञानी ही उसे अपना समझता है। राजकुमार जैसे यह समझ गया कि मै लुटेरा नही हूँ। मै तो राजा हूँ वैसे ही तुम भी यह क्यो नही समझते कि मै शरीर नही हूँ, मै तो चेतन हूँ, अक्षय सुख का धाम हू।

शहेनशाह तू जग नो स्वामी
तुझ पदवी ले संभारी।
आतम तू नही जड़ नो भिखारी।

तू शहेनशाह है, देवो का भी देव है। बादशाह का भी बादशाह है। तेरे सामने विश्व की सभी शक्तियाँ बेकार है। तू अब अपनी पदवी सम्भाल क्यो नहीं लेता? तू बकरी नही सिह है। पल्लीपति का लडका नही, राजा का लडका है, ऐसी समझ आत्मा को भी हो जाय तो उसका वेडा पार हो जाय।

जब आत्मा मे सवेग पैदा होता है तब निर्वेद आता ही है। ससार से अरुचि हो तो वैराग्य आना ही चाहिये। अतः सच्चा वैराग्य पैदा करो मसाणिया वैराग्य तो कई बार आया और चला भी गया उससे कुछ होना जाना नही है।

घोड़े को चने खिलाये जाते है, उसको खाते खाते कभी ककर आजाता है तो घोड़ा सिर ऊपर कर लेता है। थोडी देर वाद जव वह उस ककर को भी गले से उतार देता है तो फिर वह खाने लगता है। यही हाल तुम्हारा भी है। संसार मे रहते हुए कभी कोई वियोग का कारण हो जाता है तो घोडे के कंकर की तरह कुछ देर के लिये ससार से अरुचि करने लग जाते हो, पर थोड़ी देर हुई नही कि उसी मे तल्लीन वन जाते हो।

दिवाली हर साल आती है। हर साल साफ सफाई करते हो, फिर वही

करते जाते हो, ऐसा कबसे कर रहे हो? क्यों नहीं अपना हिसाब बराबर कर लेते? जिसका भी लेना-देना है बराबर करलो। सार्थकता इसी मे है कि इस भव को अंतिम भव बनालो।

मानव भव छे छेल्लो फेरो चुकवी दे सहुनो कर वेरो।
लेती देती पतवी आतम परमातम अेक तार करीले—थोड़ो।
अेक दिवस एकांत बेसी ने थोड़ो जीव विचार करीले।।
थोड़ो प्रभु से प्यार करीले . . ।

अगर तुम्हे अपनी अविनाशी गति पकडनी है, अजर अमर बनना है तो ऐसा काम करो कि फिर उत्पन्न होना न पड़े। जीव कभी मरता नही है, आयुष्य कभी बढता नही है। फिर मोह क्यो करते हो? जीव कहता है मै रहनेवाला हूँ। शरीर कहता है मै रहने वाला नही मिटने वाला हूँ। दोनों मे तकरार चलती है। तुम क्या समझ रहे हो? शरीर मिटने वाला है और आत्मा रहने वाला है। फिर तुम क्यो डर रहे हो? चेतन्य देव की मौत कभी नही हो सकती।

अनादि काल से तुम पर को अपना वना रहे हो पर यह कभी संभव नही है।

जड़ ते जड़ त्रण कालमां चेतन चेतन भाव
कोई कोई पल्टे र्नाह छोड़ी आप स्वभाव।।

जैसे मरा हुआ प्राणी जीवित नही हो सकता वैसे ही जड भी चैतन नहीं वन सकता है।

कई लोग यह कहते है—रात को गली मे कुत्ते वहुत भौंक रहे थे—यमदूत आकर उसे ले गये। कई कहते है—स्वर्ग से विमान आया और उसे ले गया। जो आत्मा एक समय मे चौदह राजू लोक मे चला जाता है उसे कौन ले जा सकता है? जैनदर्शन इसे नही मानता। वह कहता है शुभाशुभ कर्म ही फल देता है। ईश्वर फल नही देता। तुम खुद ही खुदा हो। कयामत कव आवेगी और खुदा कव फल देगे—तुम तो रोज ही फल पा रहे हो, इसे क्यो नही समझते हो?

जेर सुधा समझे नहीं जीव खाय फल थाय।
अेम शुभाशुभ कर्मनुं, भोक्ता पणुं जणाय।
अेक रांक ने एक नृप, अे आदि जे भेद।
कारण विना न कार्य जे, अेह शुभाशुभ वेद।

तुम स्वयं कर्म करते हो—जैसा करते हो वैसा ही भरते हो—काटा वोओगे—

फूल कहां से मिलेगा? जवार वोओगे बाजरा कहां से पैदा होगा? जहर पीओगे तो मर जाओगे, अमृत पीओगे तो अमर हो जाओगे। यही शुभाशुभ कर्म है।–

फलदाता ईश्वर तणी, एमां नथी जरूर।
कर्म स्वभावें परिणमे, थाय भोग्य थी दूर।

कर्म का फल भोगना ही पडता है। आम पकता है तो पेड पर से नीचे गिरता ही है। वैसे ही जिन कर्मो का परिपाक हो गया है उन्हें तो भोगना ही पडता है। भोगे बिना उनका छुटकारा नहीं होता। उदयभाव रुकता नहीं है–परन्तु नये कर्मों का बंध रोक सकते हो। उससे सावधान रहो। इसी में आत्मा की सार्थकता है। उसे फिर नया भव नही करना पड़ेगा।

सुव्रताजी साध्वीजी पधारी है। सारे गाव में बात फैल गई। उनकी वाणी मे अपूर्व जोश था। सुनने के लिये लोगों को बुलाना नही पडता। भवरा सुगंध से अपने आप आ जाता है–उसे बुलाना नही पडता, वैसे ही जिसे भूख लगती है, वह अपने आप भूख मिटाने आ जाता है। ऐसे महान संतो की वाणी सुन कर लोग शाति का अनुभव करते है। ज्ञान की प्याऊ खुली है, वहां का प्याला मत देखो, प्यास बुझानी है तो पानी पीलो, तभी तृषा शात हो सकेगी। तुम दर्शन यात्रा करने जाते हो, पर तृषा शात कहां करते हो? केवल प्याले देख कर लौट आते हो! वीतराग वाणी रूपी पानी कहां पीते हो? कही भी यह पानी पी लोगे तो तृषा शात हो जायगी। आत्मा को निर्विकल्प बनाओ। उसमे जो मजा है वह अनोखा है। उसका जो अनुभव कर लेता है वही एक दिन शुद्ध–बुद्ध और अजरामर पद प्राप्त कर सकता है।

ता. २९–९–६८

[९२]

तैतली पौटिला के लिये दानशाला खोल देता है। पौटिला दान देती है। प्रधान के पास धन की कमी नही है। ज्ञानियों ने धन की तीन स्थितिया बताई है– १ दान २ भोग और ३ विनाश। इनके सिवाय चौथी कोई स्थिति धन की नही है। तैतली पौटिला को दान की तरफ ले जाता है। दान देने से हृदय का भार हल्का हो जाता है। परिग्रह वृत्ति तो अनादि काल से आत्मा के साथ लगी हुई है। उसे अपरिग्रह की ओर ले जाना है। लेकिन आत्मा से ममत्व भाव छूटता नही है। मरते-मरते भी जब लोग उससे कहते है – अब तो कुछ दे दो, जाते-जाते कुछ तो करते जाओ। पर यह बात उसके गले नहीं उतरती। वह

सोचता है मै अभी मरने वाला नही हूँ। मरूगा तब देखा जायगा-अभी क्यों मुझे व्रत पच्चक्खाण करा रहे हो? मै अभी चार वर्ष और जीने वाला हूँ। मांगलिक सुना दो, जल्दी अच्छा हो जाऊ! भाई को चार वर्ष जीने की आशा है–पर वह तो चार दिन बाद ही मर जाता है। ममता नही छूटती। कहिये वह साथ मे क्या ले जा सका? जो ममता छोड़ कर समता धारण करता है वही साथ मे अपने ले जा सकता है। सुव्रता महासतीजी निष्परिगृही है, उन्हे तो सारा जगत तृणवत् लगता है। निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति मे भी लगे हुए है। लक्ष्य निवृत्ति का है, परन्तु स्व मे तो प्रवृत्ति करनी ही पडती है। पर–भाव से निवृति करो और स्वभाव मे प्रवृत्ति करो तभी मोक्ष हो सकता है। स्वभाव और परभाव दोनो एक साथ नही रह सकते है।

जीव जब ज्ञान–दर्शन और चारित्र में आता है तब उसे स्व समय कहा जाता है। जब वह पुद्गल–स्कंध, विकार–स्पर्श मे रमण करता है तब उसे पर समय कहा जाता है। तुम्हारा स्वभाव ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे रमण करने का है, विभाव मे जाने का नही है।

चैतन जे निज भान मां कर्ता आप स्वभाव।
वर्ते नहि निज भान मां कर्ता कर्म प्रभाव।

चैतन यदि अपने स्वभाव मे रहे तो वह अपने स्वभाव का कर्ता होता है, लेकिन जब वह विभाव मे चला जाता है तो समझ लो वह कर्म का प्रभाव है। कर्म का कर्ता होना संसार बढाना है। कर्म से मुक्त होना और स्वभाव मे स्थित होना निर्वाण प्राप्त करना है।

रस्सी को गाठ लगाना सरल है, पर उसे खोलना वड़ा कठिन है। इसी तरह राग और द्वेष का बंध करना तो सरल है, पर उनका फल भोगना वडा कठिन है। आत्मा जहा भी जाता है–मेरा–तेरा नही भूलता है। छोटा लडका भी अपना खिलौना दूसरे को देना नही चाहता। वह भी दूसरे का लेना चाहता है। मेरा उसे दे दू, यह वह भी नही चाहता। निर्ममत्व स्वभाव कौन कर सकता है? जो दानवीर होते है वे ही ऐसा कर सकते है।

एक राजा रोज वाल्टी भर कर सोना–मोहरो का दान देता है। देते समय वह किसी का मुह नही देखता–अपना सिर नीचे कर के देता है या पीठ पीछे दान देता है।

प्रधान कहता है–राजन्? आप रोज ऐसा दान कर रहे हो, पर यह तो देखो वह 'ले कौन रहा है? आपका दान जा कहां रहा है?

राजा वोला–मै क्या देता हूं? लेने वाले के पुण्य ही मुझे यह मौका

दे रहे है। मैं तो निमित्त मात्र हूं। मैं क्या दे सकता हू ? झूठा अभिमान मै क्यो करूं ? सचमुच दान इसी तरह देना चाहिये। दान देकर अगर तुम उसका अभिमान करने लग जाओ तो वह दान सच्चा दान नहीं कहा जा सकता। फिर तो तुमने दान देकर भी अपना हृदय भारी ही कर लिया है। जब कि दान देने से तो हृदय हल्का होना चाहिये।

मैने कितना किया ? इतनी पौषधशाला बना दी ? इतनी धर्मशाला और इतने अस्पताल बना दिये ? अमुक जगह स्कूल कराया और अमुक जगह कोलेज ! ऐसा कहते फिरते हो। यह तो तुम्हारी एक साइड (एक तरफी) बात हुई। दूसरी साइड भी तो कहो—यह सब पैसा कमाया कैसे ? कितने गरीबो को लूटा ! कितनों का शील भंग किया ? पुण्य को प्रकट करने मे तो खुशी अनुभव करते हो, पर पाप को ढकते हो। लेकिन याद रखो जो ढंक कर रखते हो वही फूटता है, जो बीज खेत की मिट्टी मे दबाते हो वहीं उगता है, खुला बीज उगता नही है। पाप से मुक्त बनना है तो उसे भी पुण्य की तरह खुला क्यो नही करते हो ?

पाप कीधा अघोरे छुपाव्या बहु.
पुण्य कीधानो देखाव कर्यो बहु
भर्या अंतर मां जेर, बहार अमृत पण वेर
अेवा कामो जीवन मां मे आचरिया
शुं ये शोभी रह्या छे जिनवरिया
जाणे तरस्या ने मीठा मीठा सरोवरिया —शुं ये

लोग यह समझते है कि मैने पाप तो बहुत किये है, पर वे सब गुप्त है—कोई जानता नही है। यह समझकर तुम भले खुश हो लो। पर याद रखो परमात्मा से कुछ भी छुपा हुआ नही है। जब मरोगे तो कुत्तें और कौए ही बनोगे। जहा भी जाओगे लकडी से भगा दिये जाओगे। कर्म किये है तो उसका फल तो मिलेगा ही। पाप करना ही नही यह सबसे पहली बात है। करो तो उसका प्रायश्चित्त ले लो। पाप करके नही शर्माते तो प्रायश्चित्त लेने में क्यो शर्माते हो ?

भगवतीजी मे कहा है—प्रायश्चित्त लेने से पहले लघुशका भी नही की जा सकती है। कही मौत आ जाय और प्रायश्चित्त रह जाय तो ? अतः पहले प्रायश्चित्त करो। साधक प्रायश्चित्त लेने आता है और आचार्य को लकवा हो जाय—वह बोल न सके तो उससे वह विराधक नही होता। भगवान ने उसे आराधक ही कहा है। कोई साधक प्रायश्चित्त लेने आवे और मार्ग मे ही उसकी मृत्यु

हो जाय तो वह भी आराधक ही है। क्योकि उसकी भावना शुद्ध है। ऐसी भावना करो। पाप को छिपावो मत। उसे प्रकट करो। पाप का संग्रह क्यो करते हो? उसे तो जैसे भी बने वैसे छोडने का ही प्रयत्न करो।

घर मे तुम खाना खा रहे हो और आग लग जाय तो मुह का कौर छोड कर भी भाग खडे होते हो। वैसे ही आत्मा जब जलने लगती है तब तुम चुप क्यो रहते हो? सावधान क्यों नही बनते। समयं गोयम मा पमायए। प्रमाद क्यो करते हो? मनुष्य भव मिलना बडा कठिन है। आर्य देश और वीतराग की वाणी फिर सुनने को मिलेगी या नही? कौन जानता है? आई हुई बाजी हाथ से घुमा देगो तो फिर पछताने से भी कुछ न होगा।

नहि करवाना कामो ते कीधा.
अमीरस छोडीने विषपान पीधा।
छोडी अे अमृत ने हवे शुं अे रोवे–
करी ना कमाणी गुमावी शुं रोवे!

ज्ञानी कहते है–तुमने किया क्या? हेय को हेय नही माना और उपादेय को छोड दिया। जो करने योग्य काम था वह तो किया नही और जो नही करना चाहिये था वह कर लिया। भगवान ने ३३ बोल बताये है। उनमे छोडने योग्य क्या है? जानने योग्य क्या है? और ग्रहण करने योग्य क्या है? सबका समावेश हो जाता है।

मन–वचन और काय दंड छोडने योग्य है। जो आत्मा से पर है वे सब समझने योग्य है।

मन–वचन और काय गुप्ति तथा ज्ञान–दर्शन और चारित्र–आराधना करने योग्य है। जो समझने और करने योग्य था उसे तो छोड दिया और जो छोडने योग्य था उसे ग्रहण कर लिया। अमृत को छोड कर जहर का पान कर लिया। दुख देकर सुख लेना चाहो यह कैसे सभव हो सकता है? जहर पीकर जी कैसे सकते हो? अमृत छोड कर अब तुम रो रहे हो, पर अब क्या हो सकता है? तीर कमान से छूट गया है। वह वापस आ नही सकता। परिणाम देख कर अब रो रहे हो, यह नादानी नही तो क्या है?

रत्नों ने मुकी ने पत्थरानी पाछल,
भमी भमीने कांई शिर पटकाई
समज पड्या पहेला सघलु अे खोवे—करी ना कमाणी.
गई हाथ, बाजी पछी केम रोवे, करीना कमाणी, गुमावी शुं रोवे!

सम्यग् दर्शन—ज्ञान—चारित्र ये तीन रत्न है, तुमने इनकी आराधना नहीं

की और पत्थरो के पीछे घूमते -फिरे। हीरा-माणक-पन्ना, सोना चांदी सब क्या है? पत्थर ही तो है। इनके पीछे पागल हो फिरते रहे। ऐसे अज्ञानी जीव दिन रात उनके पीछे दौड-धाम करते रहते हैं। जब समझ आती है तब तक तो सब घुमा बैठते हो। सद्‌गुरु का कभी संग नही किया। अंधों का ही हाथ पकडा। ममत्व भाव छोडा ही नही। अपरिग्रहियो का साथ ही नही किया-निर्ममत्व भाव आवेगा कहा से? जो स्वयं परिग्रही है वे तुम्हे क्या तार सकेगे? जो स्वयं नाव मे डूब रहे हैं, वे तुम्हारी नाव कैसे पार पहुचा सकेगे? तिरना ही है तो अपरिग्रहियो का सग करो-त्यागियो का साथ करो। वे ही तुम्हे तार सकेगें।

हमारा चातुर्मास कराओगे तो हमे कितना दोगे? जितना रुपया इकट्ठा होगा उसका चौथाई भाग देश मे भेजना पड़ेगा। हमारे तो देशवाले है। तुम पराये हो! क्या ऐसी बात कोई साधु कह सकता है? ऊंट मरता है तो मुह मारवाड की तरफ रखता है। उसको मारवाड से मोह जो होता है। साधु बन कर भी अगर ममत्व भाव न मिटा तो उसे साधु कैसे कहा जा सकता है? भगवान ने भी उसे पाप श्रमण कहा है। साधु तो पक्षी की तरह पंख फडफडा कर उड जाने वाले होते हैं। वे अपनी खीचडी आप पकाते है-उनके साथ तुम चाहो तो अपनी ढोकली भी पका सकते हो। इसमे साधु का कुछ नहीं बिगड सकता। दूसरा सुधरे या न सुधरे यह उसके हृदय की बात है। साधु उपदेश दे सकता है, आदेश नहीं दे सकता। करोगे तो तुम्हारा भला होगा, साधु का क्या है? यह कोई जबरदस्ती का सौदा नही है, मन का सौदा है, मन माने तो करो। जो करेगा लाभ उसे ही होगा।

वहा का चातुर्मास बडा अच्छा रहा-इतनी अट्ठाइया हुई और इतने मासखमण हुए। साधुका चातुर्मास तो तभी दीपता है जब कि धर्म आत्मा मे प्रकट होता है। आत्मा को शुद्ध करो। बाह्याडम्बर मे क्यो पडते हो? तुम आओ या मत आओ साधु को क्या नुकशान है? साधु अपनी जगह बैठा है। वे अपना स्वाध्याय करते है। शिल्पी रात-दिन पत्थर को घिस कर मूर्ति बनाता रहता है। उसका लक्ष्य मूर्ति पर ही रहता है। वैसे ही मुनि भी अपने ऊपर नजर रखता है। आत्मा कही विभाव में न चली जाय इसका ही सतत ध्यान रखता है। उसे दूसरों से क्या मतलब? दूसरा कोई मोक्ष नही दे सकता। स्वयं सीमंधर स्वामी भी क्यों न आ जावें, पर वे भी किसी का मोक्ष नही कर सकते। वे भी मार्ग बता सकते हैं। चलना तो तुम्हारा काम है। कही भी जाओ आत्मा की महान दशा प्रकट करोगे तभी मोक्ष होगा। इसके लिये महाविदेह क्षेत्र मे जाने की जरुरत नही है। महाविदेह मे भी ऐसे जीव है जो मर कर नरक मे जाने वाले हैं।

साधे ते मुक्ति लहे, अेमां भेद न कांई

जो साधना करेगा वही उसका फल भी पावेगा। साधना मे ऊच–नीच का अन्तर नही होता। गौतम को केवल ज्ञान नही और जिसे चेला बना कर लाये उस कठियारे को केवल ज्ञान हो गया। यह तो साधना का प्रभाव है। चेला गुरु से भी आगे बढ सकता है। भगवान के ११ गणधर थे जिनमे गौतमस्वामी सब से बड़े थे, परन्तु उनकी मौजूदगी मे ही सब मोक्ष चले गये। गौतम और सुधर्मा-स्वामी ही शेष बचे। गौतम सबसे पहले आये थे फिर भी वे सबसे बाद मे मोक्ष पहुंचे। जैसी जैसी साधना होती है वैसा वैसा उसका फल भी होता है। देर से या जल्दी आने का वहा प्रश्न नही होता। गजसुकुमाल ने जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन उनका निर्वाण भी हो गया। पुरुषार्थ पैदा होना चाहिये। आप भी पुरुषार्थ क्यो नही करते हो? किसकी इंतजार कर रहे हो? है कोई धन्ना सेठ जो यह कहे कि किसकी इन्तजार करता है? छोडना ही है तो साप की कंचुकी की तरह छोड कर भाग क्यो नही जाता? क्यो यह सोचते हो कि यहा तो तीर्थंकर या केवली नही है–आहारक या वैक्रिय लब्धि धारी मुनि भी नही है। जब महाविदेह क्षेत्र मे जावेगे तभी धर्म करेगे। ऐसा मत सोचो। कही भी जाओ। करना तो पडेगा ही। पाप करो और मोक्ष मे जाना चाहो यह संभव नही है। जो बोओगे वही मिलेगा। क्या तुम इतना भी नही समझते हो?

चोर को पुलिस ने पकड लिया है। क्यो पकड लिया है? चोरी की तो पकडा गया है न? ऐसे ही तो पुलिस किसी को नही पकडती है। बुरे काम करोगे तो बुरा फल भोगना ही पडेगा। इसी तरह तुम भी इन्द्रियो को वश मे न रखोगे तो कर्मों द्वारा प्रताडित किये जाओगे। इससे तो अच्छा है कि तुम स्वयं उनका दमन करो। अन्यथा दूसरो के हाथ से मार खानी पडेगी। तब कोई छुडाने वाला भी नही मिलेगा। जो जैसा करेगा उसे वैसा भोगना ही पडेगा। इसीलिये भगवान ने कहा है कि–कर्म मत कर, करेगा तो भोगना भी पडेगा ही।

पापो को छिपाओ मत, उनको प्रकट कर दो। उनका प्रायश्चित्त ले लो। तुम दूसरो से छिपा सकते हो, पर क्या अपने आप से भी छिपा सकते हो?

अधमाधम अधिको पतित, सकल जगत मां हुं।
अे निश्चय आव्या बिना, साधन करशे शुं?
पडी पडी तुज पद पंक जे, फरीफरी मागुं अेह।
सद्‌गुरु संत स्वरूप तुं, अेह दृढता करी दे।

हे प्रभु! मै अधमाधम हूं– पापी हूं। मैने इतने पाप किये है कि सिर

के बालो की गिनती की जा सकती है, पर उनकी गिनती नहीं की जा सकती। चीजों का ढेर पडा है। पर तुम खा नही सकते हो। सिर दुखता है। हाथ–पाव दुखते है–यह सब क्या है? पापो का ही तो फल है। कही अंतराय है तो कही वेदनीय–। समझो, अब भी समझो। किये हुए कर्म तो भोगने ही पडते है। अब से यह नियम कर लो कि नये पाप करूंगा ही नहीं।

पैसों से आगे आने का क्यो सोचते हो? आगे आना ही है तो गुणो का संग्रह करो–उससे आगे आओ। पैसों से न तो किसी का मोक्ष हुआ है और न होगा ही। गुणों को प्रकट करो–पुण्य करो–पर पापानुबंधी पुण्य मत करो। उससे तो संसार बढता ही है–घटता नही है। अतः गुणो मे पुरुषार्थ करो–सम्यग् दर्शन ज्ञान और चारित्र मे पुरुषार्थ करो–अक्षय सुख को अवश्य प्राप्त कर सकोगे। आई हुई बाजी हाथ से निकल जायगी तो फिर पछताना ही रह जायगा। अतः धर्म मे प्रमाद मत करो। चक्रवर्ती का सिर भी धर्मी के चरणों में झुक जाता है। संयमी को देवता भी नमस्कार करते है। भोग तो नरक का द्वार है। जिसके पास अधिक भोग भोगने के साधन है वह बडी नरक मे जाने वाला है–उसकी तुम इच्छा क्यों करते हो? वह तो नरक का मेहमान है। क्या तुम भी नरक मे जाना चाहते हो?

रत्नो को छोडकर पत्थरो को मत पकडो। धर्म ही सच्चा रत्न है, वही इस भव और परभव का सहायक है। जहा भी जाओगे वही तुम्हारा साथ देने वाला है। दूसरे सभी साथ झूठे है। पर आज तुम उसको छोड कर पत्थर के पीछे मारे–मारे फिर रहे हो। कहां गये थे? इंगलैड और अमेरिका गया था? पेरिस गया था। स्वीजरलैड गया था। क्यो गये थे? पत्थरो के लिये। पत्थरों के पीछे दीवाने बने हुए हो। यह दीवानापन कब छोडोगे? छोडने बैठोगे तब तक तो जीवन ही पूरा हो जायगा। अतःज्ञानी कहते है– अब भी जागृत बनो। सुबह का भटका हुआ शाम को भी घर आ जाय तो भूला हुआ नही कहा जाता है। तुम भी पर भाव से स्वभाव मे लौट आओ। आत्मा मे जो सौन्दर्य रहा हुआ है उसका पान करो–बाहिर क्या देखते हो? जो दिखाई दे रहा है वह सार रहित है–सार तत्व तो आत्मा मे है। उसे देखना सीखो।

कई लोग पहाडो पर झरने देखने जाते है। पहाडो पर से नीचे पानी गिरता है–उसे पाताल पानी कहते है। उस पानी मे एक मुर्दा बहता हुआ आ रहा है। उस पर एक चील आकर बैठ जाती है और उसको खाने लगती है। मुर्दा बहते बहते पहाड से नीचे गिरने लगता है तब चील सोचती है थोडा और खालूं, वह अपना लोभ नहीं छोड़ती। परिणाम मे वह भी मुर्दे के साथ नीचे पाताल मे पड कर

मर जाती है। ऐसे ही तुम भी धर्म करने के लिये कल कल करते रहते हो। समय रोज गुजर रहा है, पर कल कभी आता नही है। लोभ छोड नही सकते हो। चील लोभ ही लोभ मे अपने प्राणों से हाथ धो बैठती है। वैसे ही क्या तुम भी मरना चाह रहे हो? मौका मिला है—उससे फायदा उठाना ही बुद्धिमानों का कर्तव्य है। हमने अपने सेम्पल तुम्हारे सामने रख दिये है— तप, त्याग प्रत्या-ख्यान—क्षमा—दया, अनुकम्पा, दान—आदि जो तुम्हे प्रिय लगे उसे अपना सकते हो। धर्म करोगे तो कभी दुखी नही बनोगे।

धर्म करो तमे प्राणिया, धर्म थकी सुख होय।
धर्म करंता जीवडा, दुखिया दीठा न कोय।

धर्म करने वाला कभी दुखी नही होता। आज जो धर्म करते हुए भी दुखी है वह अपने पहले के कर्म भोग रहा है। वर्तमान उसका जागृत है—आगे वह दुखी नही होगा। जो कर चुके हो—कर्जा ले चुके हो उसे तो चुकाना ही पड़ेगा-भोगे विना छुटकारा नही है। लेकिन समझ कर भोग रहे हो अतः आत्मा मे मलि-नता नही आती है। यह भी कितना बड़ा लाभ है—।

चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं रे—
पूज अखंडित एह।
कपट रहित थई आतम अरपणा रे।
आनंदघन पद एह।
ऋषभ जिनेश्वर प्रितम माहरो रे। ओर न चाहु रे कथ.

आनदघन जी कहते है—धर्म की आराधना का फल ही चित्त की प्रसन्नता है। मुझे जो मिल गया है उसकी समानता चक्रवर्ती की ऋद्धि भी नही कर सकती है। शक्रेन्द्र भी उसका मुकावला नही कर सकता।

श्री चिंतामणि पार्श्व विश्वजनता संजीवनस्त्वं मया।
दृष्टस्तात! ततः श्रिय समभवन्नाशक्र मा चक्रिणम्।
मुक्तिक्रीडति हस्तयोर्वहुविधं सिद्धं मनोवांछितं।
दुर्दैवं दुरितं च दुर्दिन भयं कष्टं प्रणष्टं मम।

भगवान की भक्ति करने से मुक्ति हाथ मे क्रीडा करने लग जाती है। दुर्दिन चले जाते है— कष्ट और पीडा भाग जाते है—पाप नष्ट हो जाते है—ऐसा महान लाभ होता है। अतः ज्ञानी कहते हैं नये कर्म वांधना वंद करो—जो है उनकी निर्जरा करो। आत्मा को समाधि में स्थित करो—आत्म शांति अवश्य हो सकेगी।

अभी भी देर नही हुई है—समय वाकी है। समुद्र में नाव चल पडी है—किनारा थोडा ही दूर है—तूफान आने मे देर है— अतः विलम्ब मत करो और

अपने कदम तेजी से वढा दो। क्षण मात्र का प्रमाद भी अव तुम्हारे हित मे नही है। जो ऐसा करेगे वे ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेगें ।

ता. ३०-९-६८

[९३]

तैतलीपुर नगर मे सुव्रताजी साध्वी पधारी है। जैन सन्त गाव गांव उपदेश देने के लिये विचरते हैं। भव्य जीव धर्म का शरण ले सके इसी उपकार बुद्धि से वे विचरते है।

सत पुरुप जीवन के कलाकार है। वे मानव को सच्चा मानव वनना सिखाते है। मानव मानव मे भी वडा अतर होता है— कोई हीरा तो कोई ककर होता है। आर्य भूमि मे जन्मा हुआ मानव भी मानव कहा जाता है और अनार्य भूमि मे पैदा हुआ मानव भी मानव कहा जाता है। परन्तु जो संस्कारी नही होता वह पशु तुल्य समझा जाता है । उसमे और पशु मे कुछ भी अन्तर नही होता।

आज का विज्ञान वहुत आगे बढ़ा हुआ है। आधुनिकतम साधन उसने निर्माण किये है। वे हो तो मै सुखी—न हो तो दुखी यह मान वैठा है। पर याद रखो पुद्‌गल कभी किसी के हुए नही है और न होने वाले है। आज कई लोग आत्मा और परमात्मा की वाते तो बहुत करते है, लेकिन पर—वस्तुओ के लिये तडफडाते रहते है। याद रखो तीन काल मे भी वे तुम्हारे होने वाले नही है।—

मोक्ष नगर नो पंथ मुकीने मोह नगर मां वसीअे।
अर्थ वगरना जीवन अमारा अर्थ वगरना हसीअे।
स्वार्थ भरेला समणा केरी भ्रमणा दे जे भांगी
अमे रंग राग ना रागी ।

वाह्य पुद्‌गलो पर जितना तुम्हे प्रेम है क्या तुम्हे उतना प्रेम मोक्ष पर भी है? लक्ष्मी पर कितना प्रेम है? क्या वह तुम्हारी होकर रह सकेगी? छह खड के अधिपति चक्रवर्ती को भी सव छोड कर चला जाना पडा तो तुम किस वाग की मूली हो? अमर एक आत्मा ही है, वही नित्य है—शाश्वत है। पुद्‌गल नाशवत है। पुण्य है तव तक रहने वाले है, पुण्य पूरा हुआ कि वह भी चले जाते है। यह तो कर्माधीन है। जो इसे समझ लेता है वह फिर इनमे सुखी या दुखी नहीं वनता ।

मन की स्थिरता जव तक नही होती तव तक शाति और समाधि नही हो सकती है। भौतिक विज्ञान ने आज भले ही आकाश या पाताल मे चलना सिखा दिया हो, पर जो शाति हृदय मे होनी चाहिये वह कहा है? पौद्‌गलिक पदार्थो

मे सुख है ही नही। वह तो कोरी कल्पना मात्र है। दुख का प्रतिकार रूप सुख है। एक आदमी को भूख लगती है। उसके सामने भोजन आता है। वह खा लेता है तो उसकी भूख मिट जाती है। वह यह समझे कि मेरा दुख कम हो गया—ऐसी वात नही है। भौतिक पदार्थ मे शाश्वत सुख नही मिलता। वह तो नश्वर है। शाम हुई कि फिर भूख लग जाती है। पानी पीकर अपनी तृषा शांत कर लो, पर फिर वह लग जाती है। भौतिक पदार्थ ऐसे ही क्षणिक सुख देने वाले है। वे शाश्वत सुख नही दे सकते। सच्चा सुख आत्मा मे है। उसका ज्ञान करो। उसको जानने के लिये संतो का समागम करो। वे तुम्हे भी अपने समान वना देगे———

संत और पारस में वडो आंतरो जाण।
वो लोहा कंचन करे—वो करे आप समान।

पारस तो लोहे को सोना वना देता है, परन्तु सत तो दूसरों को भी अपने समान वना देते है। आदमी पैदा होता है तो महान नही होता है। उसे महान वनना पडता है। ज्ञानी पुरुषो ने अपने जीवन मे जो २ गुण प्रकट किये है उन्हे हमे भी अपनाने पडेगे तभी हम भी वैसे वन सकेगे। उसके लिये पुरुषार्थ तो करना ही पडेगा।

पैसो के लिये आज तुम कितना श्रम करते हो, क्या आत्मा के लिये उतना श्रम करते हो? केवल माला फेरने से या सामायिक करने से ही क्या होगा? उसके लिये तो समय का भोग देना पडेगा, सत्सग करना पडेगा। उसके विना मोक्ष तक कैसे पहुंचा जा सकेगा? हर एक जीव को निमित्त तो अपेक्षित रहता ही है। उपादान प्रवल होता है तभी वैसा निमित्त मिलता है। सत्संस्कार मिलने से ही मानव अपना नया जीवन प्राप्त करता है।

सत्संग से आत्मा पवित्र वनता है और दुर्जन का सग करने से आत्मा मलिन होता है।

दुर्जन तणा संगथी शुभ चित्त पण डोलाय छे।
दरिया नजीक सरितानुं पाणी मीठु खारुं थाय छे।
अग्नि तणो एक तणखो ढगलो जलावे घासनो
दूधने विकृत करे छे अेक छांटो छाश नो।

सज्जनो का संग तारक वनता है जव कि दुर्जन का सग मारक। वाल्मीकि पहले लुटेरा था। मार्ग मे आते—जाते को मार डालता था। उसने एक वार सत महात्मा को आते देखा। वह उन्हे मारने का विचार करता है। सन्त के मुह से करुणा की धारा वह रही थी। उसने ऐसा चमत्कार कर दिया कि

वाल्मीकि लुटेरा मिट कर महात्मा बन गया।

संत ने कहा—तू मेरी आत्मा को कभी नही मार सकता। शरीर को मार सकता है। तू अपने घर जाकर अपने कुटुम्ब के लोगो से यह तो पूछ कर आ कि क्या वे तेरे इस पाप मे भागीदार रहेगें या नही? तू उनके लिये यह पाप कर रहा है? क्या वे इसका फल भोगने को तैयार होगे? वाल्मीकि अपने घर जाकर अपने कुटुम्ब के लोगों से यह पूछता है। कोई भी पाप मे भागीदार होना नही चाहता। वे यही कहते है—जो करता है वही फल भी भोगता है। तुम भी व्यापार मे-जो कर रहे हो, उसका फल तुम्हे ही मिलेगा, परिवार वाले उसमें भागीदार नही बनेगे। पाप कर रहे हो तो उसका फल भी तुम्हे ही भोगना पडेगा।

वाल्मीकि की आख खुल गई। वह उसी दिन से पाप नहीं करने का नियम ले लेता है। सत का समागम होते ही उसका हृदय पलट जाता है और वह भी महात्मा बन जाता है।

संत तो परोपकारी होते है। उनके सामने मनुष्य क्या तिर्यचो का भी हृदय पलट जाता है। भगवान के सामने चण्डकौशिक का हृदय भी पलट गया। संतों के स्पर्श से तो जीवन ही पलट जाता है।

सुव्रताजी आर्याजी नगर मे पधारी है। जो चारित्रवान होते हैं उनकी ही छाप जीवन में पडती है। उनका मौन ही उपदेश दे जाता है। सुव्रताजी साध्वीजी का उपदेश सुनने लोग आते है। आगे क्या होता है यथावसर कहा जायगा।

ता. १-१०-६८

[९४]

तैंतलीपुर में महासती सुव्रताजी पधारी है। जो महापुरुष होते है उनके गुणो की सुवास तो दूर से ही फैल जाती है—

गुणाः करन्ति दुतत्वं दूरेऽपि वसतां सतां।
केतकी गंध माघ्राय स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः।

गुण दूत का काम करते है। जैसे राजाओं के दूत दूर दूर तक संदेशा पहुचा देते है। वैसे ही सज्जनो के गुण भी चारो तरफ फैल जाते है। अमुक संत को हमने देखा तो नही है, पर उनका उपदेश तो कमाल का है—उनका आत्मा वडा पवित्र है—यों गुणों की ही सर्वत्र सुवास फैलती है।

शरीर सुंदर हो, युरोपियन की तरह लगता हो, पर गुण न हो तो वह पूजनीय नही बनता। शरीर से भले ही काला कलूटा हरिकेशी जैसा हो—पर

गुणो का भडार हो तो देवता भी उसे नमस्कार करते है। ऊपर का आकार–प्रकार मत देखो। देखना ही है तो गुणो को देखो। नदी टेडी–मेढी वहती है, परन्तु उसका पानी कैसा स्वच्छ होता है? वैसे ही तुम शरीर का रूप रंग मत देखो–आत्मा की निर्मलता देखो–उसके ज्ञान की कीमत करो। सज्जन पुरुष के गुण दूर से ही लोगो को आर्कषित कर लेते है। कैतकी के फूल की सुगंध लेने के लिये भ्रमर अपने आप आ जाते है, इसके लिये उसे आमंत्रण देने की जरूरत नही होती है।

तुम यहां उपाश्रय मे सुनने आते हो या हाजरी देने आते हो? दोनो में वडा अन्तर है। हाजरी तो दो, पर पाठ याद न करो तो रिजल्ट क्या होगा? तुम भी कोरी हाजरी ही देते हो या कुछ सुन कर आचरण मे भी उतारते हो?

एक आदमी को ५ गुडे घेर ले तो वह भयभीत हो जाता है। तुम्हारे सामने ये विषय–कषाय के गुडे खडे हुए है। आयंविल की ओली करनी है, मा कहती है–तू मत कर, शरीर ठीक नही है। वही अगर व्यापार करने ट्रावलिग पर जावे तो कोई उसे मना नही करता है? स्वार्थ मे कोई मना नही करता–जहां स्वार्थ नही दिखाई देता वही लोग माथा मारने लग जाते है। ससार से छूटने का विचार कोई नही करता।

कुछ वनिये एक गाव से दूसरे गाव जा रहे थे। साथ मे काफी माल–सामान भी था। मार्ग मे उन्हे लुटेरे मिले। वनियो मे वल नही होता, पर वुद्धि होती है। लुटेरो से अपने माल की रक्षा कैसे करे? इसका वे उपाय सोचते है। वे लुटेरों से कहते है–तुम्हे लेना है और हमको देना है। तुम लेकर जाओ इससे पहले हमारा खेल तो देखते जाओ। इधर वे खेल करते है और उधर उनके दो आदमी पुलिस को वुलाने रवाना हो जाते है। वनिये खेल दिखाते है– नाटक करते है। नाचने–कूदने लगते है। देखो यह घोडे का खेल है–यह हाथी का खेल है–अव पुलिस का खेल आता है। लुटेरे वैठ कर यह खेल देख रहे है। वनिया पुलिस को लेकर आ जाता है। पुलिस उनको पकड लेती है। इस तरह वे अपना माल वचा लेते है।

वे अपनी सम्पत्ति वचा लेते है, पर तुम क्या कर रहे हो? तुम अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति कहा वचा रहे हो। सतो के रोज व्याख्यान सुनते हो, पर कोई नोध वुक भी तुम्हारे पास है? कभी भी उनको पढो तो ऊचे चढ़ने का मौका तो मिले! धर्म करने का विचार तो पैदा हो सकता है। व्याख्यान सुन कर इतना भी अगर न कर सको तो उससे लाभ क्या उठा सकोगे।

नानक के पास लखनऊ का नवाव आता है। काजी उसे देखता है तो

पूछता है—तुम नानक के पास क्यों जाते हो? वह तो तुम्हारे यहा कभी नही आते?

नवाब नानक के पास गया और बोला—आज तुम्हें हमारी मस्जिद मे नमाज पढने चलना पडेगा। क्या तुम चल सकोगे?

नानक चलने को तैयार हो गये। काजी, नवाब और नानक तीनो मस्जिद मे पहुंच गये। नानक ध्यान मे बैठ गये। काजी और नवाब अपनी नमाज पढने लगे। नमाज पढते पढते नवाब के मन मे विचार आया, आज तो अरब से घोडे आने वाले है—मै यहा क्यो आ गया? नमाज पढ़ते ही वहा जाकर घोडे खरीदना है।

काजी सोचता है—चलो नानक को आज मस्जिद में तो ले आये। धर्म न बदल सके तो स्थान तो बदलवा दिया?

दोनो नमाज पढ कर खडे हुए। नानक ने भी ध्यान पूरा किया। नवाब ने कहा—तुमने नमाज क्यो नही पढी!

नानकने कहा—खरी नमाज तो मैंने ही पढ़ी है। तुमने तो नमाज में भी घोडे ही खरीदे और काजी ने भी अपने मन मे अहकार का ही कचरा भरा। जो अहंकार छोड देता है उसीकी नमाज सच्ची होती है। फिर चाहे वह मंदिर में हो या मस्जिद मे। उसके साथ उसका कोई सबंध नहीं है। गुणो का सर्वत्र आदर होता है। कर्मो का क्षय जो भी करे वही सिद्ध बन सकता है। नानक ने कहा—मेरी नमाज तो भगवान को पहुच गई है।

नबाब बोला—मुझे आश्चर्य तो यह होता है कि तुमने मेरी बात जान कैसे ली?

काजी का तो मुंह ही नीचा हो गया। तुम भी सामायिक करते हो पर मन स्थिर कहा रहता है? जहां तक मन स्थिर न हो वहा तक क्या लाभ हो सकता है?

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवताओं के मन का संकल्प इतना प्रबल होता है कि वे जो भी प्रश्न मन मे सोचते है—केवली भगवान उसका समाधान अपने मन मे ही करते है—फिर भी वे उसे समझ लेते है। मनोवर्गणालब्धि कितनी जबरदस्त होती है? सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता वैक्रिय रूप नही करते है। कम से कम ३३ सागरोपम का उनका आयुष्य होता है। आत्मा और परमात्मा के विचार में ही उनका जीवन पूरा हो जाता है। उन्हें ३३ हजार वर्ष बाद आहार की इच्छा होती है। देवताओ में उनका सुख सर्वोत्कृष्ट सुख माना जाता है। सर्वोत्तम पुण्यशाली सर्वार्थसिद्ध विमान के देव माने जाते है। लेकिन भगवान कहते हैं

मेरे एक वर्ष के दीक्षित साधु के पास जो सुख और शांति है, वह सर्वार्थसिद्ध विमान के देवो मे भी नही है। सयम मे कितना सुख है? ८ वा सुख सर्वार्थ-सिद्ध विमान के देवो का, ९ वां सुख साधु का और १० वा सुख सिद्धो का कहा गया है। क्या तुम भी वैसा सुख पाना चाहते हो? साधु बनने का विचार भी कभी करते हो या गटर मे ही पडे रहना चाहते हो? चील मुर्दे शरीर को छोडती नही है। तुम भी संसार के मोह से मुक्त नही बन सकते हो। ममता में ही मनुष्य मर जाता है। तुम दूसरो को तो निकलने का कहते हो, पर तुम कहां निकलते हो? मै तो सब कुछ जानता हू–'आत्म सिद्धि' मुझे तो मौखिक याद है–पर जान कर भी कर क्या रहे हो? संसार से विमुख कहा होते हो? साधु बन जाओगे तो पालखी मे बैठाकर निकाले जाओगे, नही तो यों ही लबे होकर जाना पडेगा। बोलो तुम्हे कैसे जाना है? राजी–खुशी जाना है या जबरदस्ती घर से बाहर निकलना है? संसार भाव को मिटाओगे तो आध्यात्मिक सुख अवश्य प्राप्त कर सकोगे। जगत को मिथ्या जान कर भी तुम आज उसे छोड नही सकते हो।

एक नदी मे रीछ बहता हुआ चला आ रहा था। सर्दी की मौसम थी। दो आदमियो ने उसे देखा। एक ने कहा–तुझे तैरना आता है। देख वह कम्बल बहता हुआ जा रहा है। उसे ले आ, सर्दी के दिन निकल जायगे। वह कम्बल लेने नदी मे जाता है, तो रीछ उसे पकड लेता है। वह उसे छोडता नही है। दूसरा आदमी जो किनारे पर खडा था, चिल्लाता है–कबल छोड़ दे। वह आदमी कहता है कि मैने तो कबल छोड दिया है, मगर कंबल मुझे नही छोडता है।

एस वीरे पसंसीए अच्चेइ लोयं संजोयं

जो राग और द्वेष की ग्रंथि से रहित बनते है वे ही प्रभु के प्यारे बन सकते है।

जो बंधन से मुक्त बनते है वे ही महान बनते है। उनके चरणो मे ही देवता नमस्कार करते है। ससार की मोह जाल, भूल भुलैया की जाल है, जो इसमे फस जाता है, उसका छूटना मुश्किल हो जाता है! तुम उससे छूटना चाहते हो या नही? मोह की गाठे इतनी उलझा दी है कि जीवन पूरा हो जाय, तब भी सुलझ नही सकती है। कैंची लो और उसे काट लो, इसके बिना और कोई रास्ता नही है। ससार को काट कर चल पडो। कब तक मिथ्यात्व मे पडे रहोगे? आत्मा का हित करने के लिये यह अनमोल अवसर मिला है। इसका लाभ उठा लो यही उसकी सार्थकता है।

आज दशहरा है। रामने रावण पर विजय प्राप्त की थी। रावण के दस

सिर कहे जाते है। रामने उनका वध कर विजय प्राप्त की थी। परन्तु हमे तो अपने इन दस शत्रुओ को वश मे करना है–जीतना है।

पंचेन्दियाणी कोहं माणं, मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं सव्वं अप्पे जीए जियं।

पाच इन्द्रिय, चार कषाय और एक आत्मा इन दसो को जीत लो तो तुम सारी दुनिया को जीत सकते हो।

रामने रावण को मारा? राम ने मारा या काम ने? उसने सीता को अपनी बनाना चाहा इसीलिये तो मरा। सीता को उसने कई प्रलोभन दिये–स्वर्गीय सुख दिखाये, पर सीता ने अपना शील नही छोडा। एक तरफ सारा जगत खडा कर दो और दूसरी तरफ शील हो तो शील के सामने सारा जगत तृण वत् दिखाई देता है। मरने की परवाह शीलवान को नही होती। शील के खातिर मरने वाला भी आराधक ही होता है। अपघात करने से आत्मा विराधक बनता है।

सत्थ गहणंच विसभक्खणंच, जलणंजल पवेसोय।
अणायार भंड सेवी जम्ममरणणि बन्धन्ति।

कई हथियार से–बन्दूक–तलवार या चाकू भोककर मर जाते है। कई जहर खाकर–अफीम या खटमल मारने की दवा पीकर मर जाते है, ऐसे अपघात करने से तो अनंत जन्म–मरण बढते ही है। कई अग्नि से जल कर–तेजाब या घासलेट छिडक कर मर जाते है। कई जल मे डूब कर मर जाते है–बस अब मुझसे सहन नही होता, मै अब दुख देख नही सकता। तो क्या मर कर तुम सुखी हो जाने वाले हो? यहा नही तो वहा भोगना तो पड़ेगा ही। फिर यो अपघात कर नये कर्म क्यों बाध लेते हो?

युरोपियन लोग अपने घोडो को १० वर्ष बाद जब वे बूढे हो जाते है–खड्डे में खडे रख कर गोली से मार देते है। तुम्हे भी कोई बुढापे मे शूटिग कर दे तो कैसा लगेगा? जो ऐसा करते है उन्होने अभी तक आत्मा को समझा ही नही है। वे इस बारे मे मूर्ख ही है। इसीलिये वे देह को आत्मा समझ रहे है। गाधीजी ने भी बछडे को क्यों मराया? देह को ही उन्होने आत्मा समझ लिया था। अगर उन्होने आत्मा को समझा होता तो वे कभी ऐसा नही करते। आत्मा कही भी जाय उसे उसके कर्मो का फल तो भोगना ही पडता है। अपघात करके तुम नरक मे जाओगे तो वहां १० हजार वर्ष तक मरना पड़ेगा। वहां फिर घासलेट नही मिलेगा कि तुम छिडक कर मर सको। वहां तो परमाधार्मिक देव तुम्हारे शरीर के टुकडे टुकडे कर देगें पर तुम मरोगे नही – उसकी वेदना ही अनुभव करोगे। तो क्या तुम वहां जाना चाहते हो? फिर अपघात क्यो करते हो?

कई लोग अपनी इज्जत के खातिर अपघात कर देते हैं—सेठ गरीब हो जाय तो अपघात कर देता है। ऐसा करने से तो जीव अनंत जन्म-मरण ही बढा लेता है। अतः समझो। कर्म कभी अपना स्वभाव छोडने वाले नही है। संयोग जैसा बना है वैसा ही रहेगा। जगत कभी बदलने वाला नही है। तुम अपने स्वभाव में आ जाओगे तो कोई तुम्हारा बिगाड नही कर सकेगा।

एक धर्मशाला में अकेला आदमी रहता है तो शांति अनुभव करता है। जब उसमे कई आदमी आ जाते है तो शोर-गुल मच जाता है। वह बोला—चुप रहो, चिल्लाते क्यो हो? दूसरो की शांति क्यो भंग कर रहे हो?

दूसरे लोग बोले—यह तो धर्मशाला है, तुम्हारे बाप का मकान थोडे ही है। वह खुद वहां से चला गया तो उसे शांति हो गई—उनके शोर-गुल से बच गया। ऐसे ही १४८ कारण है संसार के। उनमे मुख्य २ है—राग और द्वेष। उन्ही से १४८ प्रकृतिया खडी हो जाती है। वे कोई भी अपने आप जाने वाली नही है, तुम स्वयं चाहो तो उनसे खिसक सकते तो। तुम्हारी आत्मा तुम्हारे हाथ मे है। तुम अपने पैरो की हिफाजत करो, दुनिया के काटे मत बीनो इसी मे बुद्धिमानी भी है——

समझीने आप सुधरिये, दुनिया नहीं सुधराय।
पगमां पगरखा पहेरीये, दुनिया मढवा नहि जवाय।

ज्ञानियो ने कहा है—अपघात से बचो। मेरे मन का न हुआ। इसलिये मैं मर जाऊ, ऐसा मत सोचो। तुमने जो किया वही भोग रहे हो। मर जाओगे तब भी उनसे बचने वाले कहा हो?

सीता कहती है—मेरी मौत मेरे हाथ मे है। चन्द्रमा आग बरसाने लगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड दे। सूर्य पूर्व से पश्चिम मे क्यो न उदित होने लग जाय, पर मैं अपना शील नही छोड सकती। सन्नारियो के लिये शील का कितना महत्व है? पर आज तुम क्या कर रहे हो? लडकी विधवा हो गई तो तुम स्वय उसके पुनर्लग्न करा रहे हो? अब हमसे यह देखा नहीं जाता—तू दूसरा वर खोज ले। यह सब क्या है? वैश्यावृत्ति का ही तो एक प्रकार है। क्लबो मे जाते हो। नाच गान मे खुशियां मनाते हो और इसी मे फैशन समझ रहे हो। यह तो हल्के कुल की बात है। तुम तो उच्च कुल मे पैदा हुए हो। नाचने वाले तो नट होते हैं। क्या तुम नट-नटी कहलाना पसद करोगे?

दो दोस्त मिले—चश्मे की बात करने लगे। यह चश्मा ठीक नहीं है, टाई

नंवर का चश्मा हो तो सव पढा जाता है। एक गाव वाले आदमी ने भी इसे सुन लिया। वह चश्मेवाले की दुकान पर पहुंचा और वोला—मुझे ढाई नंवर का चश्मा वना दो। चश्मे वाले ने वह वना दिया—उसने अपनी आखो पर लगाया पर पढ़ना ही नही आवे। दूसरा लगाया। तीसरा लगाया, पर वह पढ ही न सके। दुकान वाले ने पूछा—तुम कितने पढे हुए हो? उसने कहा, मुझे तो अ आ भी नही आता। मैने तो सुना था कि ढाई नम्वर के चश्मे से सव पढा जा सकता है। पर मै तो पढ नही सका। दुकानदार ने कहा—तुम पढे होते तो पढ सकोगे चश्मा थोडे ही तुम्हे पढा सकेगा। ऐसे ही तुम भी अपने यहा विशाल लायब्रेरी क्यो न खडी कर लो, पर पढो नही तो उससे आखिर लाभ क्या हो सकेगा? वे तो सावन है। उनसे लाभ लेना सीखोगे तो उनकी उपादेयता सिद्ध हो सकेगी।

सारासार का निर्णय करने की योग्यता तुम्हारे मे होनी चाहिये। समयसार पढ जाओ, या आत्मसिद्धि कंठस्थ करलो, पर आत्मा क्या है? यह नही समझो तो उससे क्या होने वाला है? बंधन से मुक्त होना तो सीखा ही नही। अतः अंदर से जागृत वनो। जागृत वनोगे तो एक घटे का वोध ही पर्याप्त हो जायगा। भूमि उपजाऊ होनी चाहिये। क्षार भूमि पर वीज उग नही सकता है।

देव गुरु धर्मनी श्रद्धा कहो केम रहे
केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो
शुद्ध श्रद्धान् विण भविक किरिया करे
छार पर लिंपणु तेह जाणो......धार......

देव, गुरु और धर्म इन तीन तत्वो पर वरावर ध्यान रखो। श्रद्धा सही करो। उसके विना जो भी क्रिया करोगे वह क्षार भूमि पर लीपने—पोतने जैसी ही होगी। उसका फल कुछ भी नही होगा।

जो यथार्थ श्रद्धा पैदा कर विषय—कषायों को जीत लेता है वही विजयी होता है। तुम भी ऐसे विजयी वनोगे तो तुम्हारी आत्मा का कल्याण हो जायगा।

सुव्रता आर्याजी की वाणी सुन कर लोग वाहवाह करने लगते है—प्रशसा करते है। लोगो से कहते है—तुम आओ तो तुम्हारा भी कल्याण हो जाय। लेकिन खाली वोलने से क्या होता है? जो तदनुसार आचरण करता है वही उसका फल भी पा सकता है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १–१०–६८

[९५]

तैतलीपुर नगर मे सुव्रताजी महासतीजी अपने शिष्य समुदाय के साथ पधारती है। साध्वीजी का स्थान पाचवे पद–नमो लोए सव्वसाहूण –मे है।

अरिहन्त और सिद्ध दोनों पद साध्य है। साधन से उन्हे साध्य किया जा सकता है। आचार्य–उपाध्याय और साधु ये तीन साधक हैं। ज्ञान–दर्शन और चारित्र की आराधना इन तीन पदो मे रह कर की जा सकती है और इनके द्वारा साध्य पद प्राप्त किया जा सकता है।

अरिहन्त ही शासन की स्थापना करते है। तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर होते है। वे ही सिद्ध की पहिचान कराते है अतः इनका स्थान सबसे पहला दिया गया है। सिद्ध को मन–वचन और काय योग नही होता। अतःमार्ग बताने वाले तो अरिहंत ही होते है। जिन्होने चार घनघाती कर्मो का नाश कर दिया होता है वे अरिहन्त कहे जाते है। फिर चाहे वे स्वलिंग मे हो या अन्य लिग मे, भरत मे हो या इरवत मे, महाविदेह मे हो या अन्यत्र–गृहस्थ हो या साधु–जो चार कर्मो का क्षय कर देता है उन्हे ही पहले पद मे नमस्कार किया गया है।

जो लोग जैन दर्शन को संकुचित कहते है वे उसे जानते नही है। जैनदर्शन तो विराट है। वह गुण पूजक है, जडपूजक नही। वेष का वहां महत्व नही है। वहा तो गुणो का ही महत्व है।

अरिहंत मार्ग दर्शक होते है। अतः उन्हे ही सर्व प्रथम नमस्कार किया गया है।

दूसरा नमस्कार सिद्धो को किया गया है। जो आठ कर्म नष्ट कर मोक्ष में चले जाते है वे सिद्ध कहे जाते है। अरिहतो से सिद्ध वडे होते है। फिर भी वे मार्ग नही वता सकते है अतः उन्हे दूसरे पद मे नमस्कार किया गया है।

तीसरा पद आचार्य का है–जो ३६ गुणो के धारक होते है। वे आचार्य कहे जाते है। किसी सम्प्रदाय मे आचार्य मर गये और वाकी के रहे हुए साधुओ मे से किसी को आचार्य वना दे तो क्या वह आचार्य हो गया? जिसमे ३६ गुण होते है वे ही आचार्य वन सकते है। अरिहत के १२ गुण, सिद्धो के ८ गुण, आचार्य के ३६ गुण, उपाध्याय के २५ गुण, और साधु के २७ गुण होते है। सब मिल कर १०८ गुण होते है। माला के मणके भी १०८ इसीलिये रखे जाते है। आचार्य के ३६ गुण है। वे कौन से है? यह भी तुम्हे याद कहां है? सामायिक करते हो, पर सामायिक का पहला पाठ भी अभी कच्चा है। नवकार मंत्र

का अर्थ भी अभी कहा आता है? नवकार मंत्र में तो १४ पूर्व का सार समाया हुआ है।

जो अरिहंत होते है वे ३४ अतिशय और ३५ वचनातिशय से युक्त होते हैं। मुझे भी उनके समान बनना है–यह भाव नमो अरिहताणं बोलते समय मन मे पैदा हो जाना चाहिये।

नमो सिद्धाणं बोलते समय लोकाग्र के अग्रभाग मे विराजने वालो के समीप मुझे भी जाना है। ऐसा विचार मन मे पैदा होना चाहिये। तुम्हें कहा जाना है? पालियामेट में या सिद्धपर्याय मे?

नमो आयरियाणं–आचार्य देव को नमस्कार किया गया है। शासन के स्थापक अरिहंत होते हैं। पर उसके रक्षक आचार्य होते है। सावक विनीत हो या अविनीत वे समभाव रखते है और अविनीत को भी सुधारने का प्रयत्न करते है। हित–मित और कटु वचन कह कर भी उसका अहित नही होने देते है। उसे धर्म में स्थिर ही करते है। सम्यग्दर्शन के ८ गुण है। उनमे एक गुण थिरीकरणे भी है। संयम मे जो विषाद अनुभव करे उसे संयम मे स्थिर कर आगे बढाना आचार्य देव का काम है।

नमो उवज्झायाणं—चौथा पद उपाध्याय का है। वे २७ गुणो से युक्त होते है। जो स्वयं पढते है और दूसरो को भी पढाते है। जो आत्मा को विभाव में जाने से रोकते है और स्वभाव मे स्थिर करते है वे उपाध्याय कहे गये है।–

प्राण सखा तुझ बाल गणीने
निशदिन देजे सहारो।
जे दिन भान भुलाये आतमनुं
ते दिन कर जे टकोरो
प्रभु मारा अंतर ने अजवालो।

जैसे छोटे बालक को मां अपनी अगुली का सहारा देकर चलाती है–गिरने लगे तो सहारा दे देती है–गिरने नही देती– वैसे ही गुरु भी साधक को गिरने न दे– सहारा देते रहे। साधक भगवान से कहता है–जब मैं अपना भान भूल जाऊं तब तू मेरी संभाल करना–टकौर करना। तुम्हारी टकौर करने वाले भी कोई मिले है या नहीं? फिर भी सुधरते कहां हो? जिसको जागृत होना होता है वह तो घडी का टकौरा सुनकर ही जाग खडा होता है, पर जिसे जागना ही नही है उनके सामने ढोल भी क्यो न बजाओ वे क्या जाग सकेगें?

मानव भव तो सब को मिला हुआ है। भगवान महावीर को भी मिला,

मृगापुत्र और गजसुकुमाल को भी मिला। लेकिन उन्होंने क्या किया और तुम क्या कर रहे हो? वे उसमे मोहित न हुए और तुम उसमे फंस गये हो!

आव्यो हतो तूं छोडवा बांधीने शाने जाय छे?

स्वमांथी तू परमा जइ शाने वधु रिबाय छे?

चैती जा आतम चेत हवे अवसर चाल्यो जाय छे? अवसर

छोडने को आया था, पर उसी मे फस गया। मानव भव तो सर्व श्रेष्ठ भव है।—

दुल्लहे खलु माणुसे भवे चिर कालेणवि सव्व पाणिणं।

गाढाय विवाग कम्मुणो, समयं गोयम मा पमायए।

मनुष्य भव मिलना बडा दुर्लभ है। मनुष्य वन कर भी तुमने क्या किया? मोह को छोडने आये थे, पर उसी मे अधिकाधिक बंधते जा रहे हो तो फिर मर कर आगे किस गति मे जाओगे? मनुष्य के लिये पाचो गति सुलभ है—मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देव। पाचवी गति मोक्ष जिसमें अभी नही जा सकते। जो व्यापारी वर्ग है वह मुख्यतः तिर्यंच गति की साधना कर रहा है—छल—कपट और प्रपच करता है अतः मर कर तिर्यंच मे ही पैदा होगा। कुछ लोग नरक गति में जाने का भी प्रयत्न कर रहे है। यहां मीलो या कारखानो का उद्‌घाटन करते हो, पर वहा नरक के दरवाजे भी तुम्हारा इंतजार कर रहे है— इसका भी ध्यान रखना। जिस भव मे आकर तुम एकावतारी वन सकते हो उस भव से तुम तिर्यंच या नरक मे जाने की तैयारी कर रहे हो। क्या यही तुम मानव भव की कीमत कर रहे हो? मनुष्य तो सभी है, एक महल वना रहा है और दूसरा कुआ खोद रहा है। तुम क्या कर रहे हो? कहा जा रहे हो? यह तो अपनी आत्मा से ही पूछो।

अन्य मती कहते है—यह सृष्टि भगवान ने पैदा की है। स्वर्ग नरक—पशु पक्षी, मानव आदि भी भगवान ने वनाये है। भक्त पूछता है— तुम कैसे भगवान हो? तुम्हारे मे भी राग द्वेष का पार नही है। किसीको स्वर्ग मे भेज दिया तो किसी को नरक मे डाल दिया! किसीको पशु वना दिया तो किसी को पक्षी वना दिया? किसी को राजा तो किसी को रक। तुम्हारे यहा ऐसा भेदभाव क्यो है?

भगवान ने कहा—तुम्हारी समझ ठीक नही है। स्वर्ग और नरक का वनाने वाला मै नही हू, तुम स्वय इनका निर्माण करते हो।

जैनदर्शन कहता है— भगवान तो वस्तु का स्वरूप वताते है— वे उसे वनाते नहीं हैं। अगर उन्हे वनाने लगे तो वे षट—द्रव्य स्वतत्र नही रह सकेगे। छहो द्रव्य निश्चय नय से स्वतंत्र है। तुम देखते ही हो कि सिर के वाल काले न रह कर सफेद हो जाते हैं। क्या तुम उन्हे रोक सकते हो? षट् द्रव्य वनाने वाले भगवान है,

बनानेवाले भगवान नही है।

उपाध्याय के पास जीवन जीने की कला होती है। वे स्वयं सीखते है और दूसरो को भी सिखाते है। धर्म कला ही सर्व श्रेष्ठ कला मानी गई है। बलो मे धर्म बल श्रेष्ठ माना गया है। धर्म सुख सर्वश्रेष्ठ सुख माना गया है और कथाओ मे सर्वश्रेष्ठ धर्मकथा कही गई है।

सव्वं कला धम्म कला जीणाई

धर्म सर्व श्रेष्ठ कला है। तुम्हे भी यह सीखना है या नही ?

एक व्यापारी दूसरे व्यापारी को अपनी गुप्त चाबी नही बताता है, परन्तु उपाध्याय साधक को आत्म–खजाने की गुप्त चाबिया बता देते है। ५ वा पद नमोलोए सव्वसाहूणं है–यह साधुपद है। इसे तुम कम मत समझना। गणधर गौतम जैसे भी इसी पद मे थे। इनकी दिवस और रात्रि चर्या तो देखो–

पढमं पोरिसी सज्झायं बीयं झाणं झियायई।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं।
पढमं पोरिसी सज्झायं बीयं झाणं झियायई।
तइयाएनिद्द मोक्खं तु चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं।

भगवान ने इन दो गाथाओ मे साधु की सारी चर्या सामने रख दी है।

पहली पोरसी मे स्वाध्याय करे।

दूसरी पोरसी मे– ध्यान करे। स्वाध्याय कर के जो सामग्री इकट्ठी की है उसको आत्मसात करने के लिये ध्यान करना बताया। ध्यान मे चित्तनिरोध करो और जो प्राप्त करना है उसका विचार करो– सिद्ध स्थिति का ध्यान करो। ऐसा करोगे तभी कर्मो का नाश कर सकोगे।

तीसरी पोरसी मे भिक्षाचरी करे।

चौथी पोरसी मे स्वाध्याय करे।

रात्रि मे भी इसी तरह

पहली पोरसी मे स्वाध्याय

दूसरी पोरसी मे ध्यान

तीसरी पोरसी मे निद्रा

चौथी पोरसी मे स्वाध्याय

भगवान ने साधु के लिये जो यह क्रिया बताई है उसे अगर साधु करे तो फिर उसे नया भव नही करना पडता है।

सुव्रता जी साध्वीजी ऐसी ही गुणवान महासती है। उनका शिष्य समुदाय भी चारित्र सम्पन्न है। आगे वे क्या करती है ? यथासमय कहा जायगा।

ता. २–१०–६८

[१६]

महासती सुव्रताजी का व्याख्यान सुनने कई लोग आते है। सुनना और समझना दोनो मे भी बडा अन्तर होता है। एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देना सुनना नही कहा जाता। सुनकर उसे हृदय मे धारण करो तभी वह सुनना सार्थक हो सकता है।

सुनने जाओ उससे पहले हृदय मे जिज्ञासा बुद्धि प्रकट होना जरूरी है। जिज्ञासा होगी तो उससे आकर्षण पैदा होगा। जिज्ञासा वृत्ति प्रकट करोगे तो हृदय मे बीजाकुर प्रकट हो सकेगा। जिज्ञासा न होगी तो वह कभी समझ नहीं सकेगा। अत: ज्ञानी कहते है पहले जिज्ञासु बनो। उसके लिये क्या करना पडेगा ?

कषायनी उपशांन्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद अंतर दया ते कहीये जिज्ञास।
ते जिज्ञासु जीवने थाये सद्‌गुरु बोध।
ते पामे समकित ने वर्ते अंतर शोध।

जिज्ञासु किसे कहते है ? मै मुमुक्ष मंडल का सदस्य हूं। उसका काम क्या है? उसका भी कोई थर्मामीटर है या नही ? तुम्हारे मे वे गुण है या नही ?

जिज्ञासु वही कहा जा सकता है जिसके हृदय मे कषाय की उपशान्तता हो। कहिये, है यह गुण तुम्हारे में ? हमारे कषाय कहा उपशान्त है ? जिसके कषाय शात होते हैं वे ही संत कहे जाते हैं। शाति पैदा करनेवाले ही सन्त होते है।

उपजी वधे शो जगत में, उपजी समे शो संत।
जेने उपजे नीपजे नहि सो कहिये भगवंत।

कपायो को उत्पन्न किया जाता है – तूने यह कहा, मैंने वह कहा–यो आमने सामने बोलना कपाय है। यही ससार है। रज का गज, तिल का ताड़ और राई का पर्वत खडा कर देना ससार है– राग–द्वेप वढाना ससार है।

संत कौन होते है ? जो कपाय के उदयमान होने पर भी उनको निष्फल कर दे वे सन्त कहे जाते हैं।

लता (वेल) छोटी होती है– उसे सहारा दोगे तो वह ऊपर चढ जायगी। तुम उसे सहारा न दो तो वह कैसे चढ सकेगी ? इसी तरह जब कपाय भाव पैदा हो जाय तो तुम उस समय शात ही बने रहो, उसको प्रोत्साहन न दो तो वह भी उदयमान होकर शान्त हो जायगा– बढ़ेगा नही।

गांधीजी ने भारत को आजादी दिलाई। देश को स्वतत्र बनाया, पर यह सच्ची स्वतंत्रता कहा है ? हमारे पास आओगे तो सच्ची स्वतंत्रता दिखाई देगी। गांधीजीने तो पेट की बात बनाई है, पर हम तो ठेठ की बात बनाते हैं–आत्माकी बात कहने

है । कषाय को शात करो और सहन करना सीखो । यहां से घर जाओ तो क्रोध मत करो । रोज एक एक गुण भी ग्रहण करते जाओ तो वेडा पार हो जायगा ।

राम को १४ वर्षका वनवास मिला था, मुझे तो वैसा नही मिला है ! फिर दुख क्यो करते हो ? जो दुख मे भी सुख ढूढता है वही संत होता है । पानी है तो जलचर भी वहा होगे ही । मछली, कछुवा, मैढक पानी मे ही रहते है । सिघोडा भी पानी मे होता है । कमल भी पानी मे होता है । परन्तु वह पानी या कीचड मे नही रहता । वह तो उनसे ऊपर रहता है और सूर्य के सामने देखता रहता है । संत भी सूर्यमुखी कमल की तरह होते हैं । वे भी संसार मे रहते है पर उससे अलिप्त वन कर ही रहते है । भोगो मे आसक्त नही होते । ऐसे मानव ही महान वन सकते है । तुम्हें भी ऊपर उठना है या मेंढक मछली की तरह पानी मे ही रहना है । जिज्ञासा वृत्ति पैदा करोगे तो कमल की तरह ऊपर आ सकोगे । तालाव मे कमल दिखाई पडता है तो हृदय प्रसन्न हो जाता है । इसी तरह संत भी सवके प्रिय होते है । उन्हे देखकर भी सवका सिर उनके चरणो मे झुक जाता है । इन्द्र भी भगवान के चरणो में नत-मस्तक हो जाता है ।

भक्तामर प्रणतमौलि मणिप्रभाणा–
मुद्योतकं दलितपाप तमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपाद युगम् युगादा
वालंबनं भव जले पततां जनानाम् ।

देवता भी जिनके चरणों मे झुक जाते है ऐसे भगवान का साथ करोगे तो मन कभी विचलित नही हो सकेगा ।

विनयवंत भगवंत कहावे
नहि किसी को शीश नमावे ।

भगवान को कौन बोध देता है ? वे तो सय संबुद्धाणं–स्वयं बोध पाते है । सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये साधन है– इनका उन्होने आराधन किया और वे भगवान बन गये । तुम भी करोगे तो तुम भी वैसे वन जाओगे । ये साधन ही भगवान वनाते है । आनंदघनजीने कहा है –

श्री सुपार्श्व जिन वंदिये
सुख सम्पत्ति ना हेतु रे ललना ।
शांत सुधारस जलनिधि
भव सागरना सेतु रे ललना । श्रीसुपार्श्व

सुपार्श्व जिन कैसे है ? भव सागर से पार होने के लिये सेतु (पुल) के समान है । पुल हो तो कितने लोग आर पार हो जाते है ?

लोहे से पीतल कीमती होता है– पीतल से सोना ज्यादा कीमती होता है। सोना से मोती, मोती से हीरा और हीरा से रतन ज्यादा कीमती होता है। इन रत्नो से भी वेशकीमती हमारा सम्यग् रत्न' है। उसकी आराधना करो। हीरा मुह मे निगल जाओ तो मौत का कारण बन जाता है। पास मे रखो तब भी मौत का डर रहता है। जिसमे मृत्यु का भय बना रहता है उसे तो तुम रखना चाहते हो, पर जिसमें मृत्यु का भय ही नही होता उस रत्न त्रय को तुम ग्रहण करना नही चाहते, यह कैसी नादानी है तुम्हारी ? उसको रखोगे तो अमर हो जाओगे। सच्चा रत्न कौनसा है ? इसकी पहिचान करो। नकली हीरे को क्यो पास मे रख रहे हो ?

नथी रे मे जाण्यो नथी रे मे माण्यो
वीतराग तारा प्रकाशित पंथने–नथी–
हैया हिंडौले प्रभुजी विराजो
कुमति सुझे तो मारी वारे धाजो रे... नथी

हे भगवन्। तेरा पथ तो स्वय प्रकाशित है। पर मै ही ऐसा अभागी हूं कि मैंने उसे अभी तक जाना नही है– पहिचाना नही है। जहा जाने जैसा है– प्रयाण करने जैसा है वहा जाने के लिये कदम ही उठते नही है। दुष्काल मे ढोरो की जैसी हालत हो जाती है वैसी हालत तुम्हारी भी हो गई है। क्या तुम्हे भी पूछडा पकडकर खडा करने की जरूरत है। व्याख्यान सुन कर वाहवाह कर लेते हो, पर जीवन में उसे कहा उतारते हो ? इतने दिन हो गये सुनते सुनते क्या कुछ अन्तर भी दिखाई देता है ?

वैद्य दवा देता है तो यह पूछता है कि कुछ फरक दिखाई देता है या नही ? हम भी यही पूछ रहे है–बोलो, कुछ फरक दिखाई देता है या नही ? कुछ जानोगे तो समझोगे भी। जिनेश्वर का स्वरूप जिसने जाना ही नही वह क्या सिद्धान्त समझेगे? जिसने सिद्धान्त जाने ही नही– बम्बई समाचार ही पढा है: वह क्या सिद्धान्त समझेगा? कुछ आध्यात्मिक बात भी समझो। सम्यग्दर्शन करो– आत्मा को समझो। जिसने आत्मा को समझ लिया उसने सब कुछ समझ लिया–

जे एगं जाणई से सव्वं जाणई।

मैं आत्मा को कब जानूगा ? ऐसे विचार कभी तुम्हारे मन मे भी आते है ? कभी तुम उसे समझने सद्गुरु के पास भी जाते हो ?

देवता अपने सब सुख छोडकर भगवान की वाणी सुनने आते है। जब भगवान का समोसरण होता है तब १२ प्रकार की परिषदा आती है।

भवनपती के देव और देवियां २
वाणव्यंतर के देव और देविया २

ज्योतिषी के देव और देविया २
वैमानिक के देव और देविया २
तिर्यचगति के पशु-नर और मादा २
मानव-स्त्री और पुरुष . २

जिस वाणी को सुनने देवी देवता आते है तुम उन रत्न त्रय की साधना छोडकर आज भैरू भवानी और माताजी की साधना कर रहे हो ? यह सब मिथ्यात्व है । पागल क्यों हो रहे हो ? मोह में मशगूल क्यो बन रहे हो ? उसकी नई साडी देखी तो मै भी वैसी क्यो न ले आऊं ! यह क्यो सोचते हो ? इकठ्ठा ही करना है तो गुणो का संचय करो । गहनो से क्या होगा ? भगवान के पास गहने कहा थे ? और इन्द्र के पास कितने गहने थे ? फिर भी नमस्कार कौन करता था ? गांधीजी के पास क्या था ? पहनने को एक लंगोटी थी । आधा शरीर खुला रखते थे ! कभी भी उन्होंने मदिरा-पान या मास भक्षण नही किया । बीमारी मे भी कस्तुरबा को मदिरा का सेवन नही कराया । उनका आदर्श तो देखो । और तुम्हारा जीवन देखो। शर्दी हो जाय तो मदिरा पीने लगते हो । नही तो मर जाओगे न ? कैसी बात है ? गांधी जी के मन मे कैसी करुणा थी ? मेरे भाई दुखी है, भूखो मर रहे है– मै आराम मे रहूं यह कैसे हो सकता है ? क्या तुम्हे भी ऐसे विचार कभी आते है ?

क्यो, आजकल व्याख्यान मे नही आते हो ? दीवाली आ रही है, फुरसत नही मिलती है । ठीक है– मृत्यु आवेगी तो वह भी तुम्हारी फुरसत देखकर ही आवेगी । यही बात है न ? अरे, मृत्यु कभी तुम्हारी तिथि नही देखेगी । तुम ऐसे निष्ठूर क्यो बन गये हो ? क्या कभी तुम्हे अपने ऊपर भी दया आती है ?

पर वस्तु मां नहि मुंजवो
अेनी दया मुजने रहि ।

जड में मस्त रहते हो, कुछ तो विचार करो ।

एक प्रचारक सेठ के पास आया और बोला–सेठजी, अनाथालय के लिये कुछ दान दीजिये । यह सुनकर सेठ तो विचार मे पड जाता है । वह कहता हे अभी तो तुम जानते हो, कमाई कम हो गई है । घर मे पंखा और रेडियो चल रहा है– रेफरी-जेटर का ठंडा पानी चालू है– कमरे मे एयरकडीशन लगा हुआ है– पर देने मे कमाई कम हो रही है ।

प्रचारक ने कहा–आपसे तो बहुत अधिक आशा थी अब आप ऐसा कह रहे है तो कम से कम २०० रु तो देना ही चाहिये । नही तो हमारा काम कैसे चलेगा ?

सेठ बोला– नही, तुम आये ही हो तो १०० रु. लेजाओ । प्रचारक बहुत आजीजीकरता है तो सेठ १५० रु. दे देता है । कहिये यह कैसा दान हुआ ? दान तो

वह कहा जाता है जो राजी खुशी से दिया जाता है। देने मे तुम्हे क्या नुकशान है? लडको के लिये रख कर जाने मे तो तुम्हे शोक नही है, पर दान देने मे मजा नही आता है। पर याद रखना निर्ममत्व भाव से जो दे जाओगे वही तुम साथ मे लेजा सकोगे। यहा दोगे तो वहा जमा हो जायगा। अपना खाता वहा भी खुलावो। तुम्हारे काम तो वही आवेगा।

पोटिला दान देती है– खूब देती है–हर्ष पूर्वक देती है – मन मे अभिमान नही करती। वृक्ष को फल आते है तो वृक्ष झुकता ही है। इसी तरह दानी पुरुष भी नम्र वन जाता है, उसमे अहंकार नही आता। तुम कैसा दान करते हो? रुपये लेजाओ, पर मेरा नाम कहा लगावोगे? बड़े अक्षरो मे लिखना और ऐसी जगह लगाना कि सबको दिखाई दे, चश्मा लगाने की जरूरत न पड़े। यह तुम्हारा दान है या उसका सौदा है? तुच्छ वस्तु का भी तुम दान न दे सको तो मुमुक्षु वन कर कमल की तरह कैसे ऊपर आ सकोगे? जिज्ञासु बनोगे तभी तुम वाणी सुनने योग्य वन सकोगे।

क्रोध आने पर उसका उपशमन करो–उसके वश न हो। क्रोध करने वाला अज्ञानी है–मै उसके जैसा क्यो वनू? ऐसा विचार करने वाला ही जिज्ञासु होकर संत वन सकता है। कपायो को छोडने वाला ही महान् वन सकता है।

साधक भगवान से कहता है– मेरे मे दोप वहुत है। मै भूल का पात्र हूं। तू मेरी खवर रखना। मैं हृदय मे आपको धारण करता हूं। कभी भी मै वुरे विचारो मे चला जाऊ तो तुम मुझे सावधान कर देना।

तुम तो चकोर हो–समझदार हो न? व्यापार मे तो एक्सपर्ट हो। धर्म मे अभी एक्सपर्ट नही हो। पर विद्यार्थी तो हो न! जो नही आते है उनसे तो ठीक हो न? धीरे धीरे भी तरक्की करोगे तो आगे वढ सकोगे। एक कक्षा में ३५ लडके हो, और ३५ ही पास हो जाय तो मास्टर को कितनी खुशी होती है? वैसे ही अगर तुम भी अपनी आध्यात्मिक शाति प्रकट कर सकोगे तो हमको भी खुशी ही होगी।

हे नाथ! मै तो विंदु हू, आप सिंधु हो। मै तुझ मे मिल जाऊं तो मै भी सिंधु वन सकता हूं। तू मुझे वैसा वना ले। मुझे तुम पर पूरा विश्वास है।

सुव्रता साध्वीजी ऐसा ही सुंदर उपदेश देती है। उनकी शिष्याएं भी सुयोग्य है। जिसका मास्टर अच्छा तो लडके भी अच्छे होते है। वे साध्वीजी आहार लेने जाते है। फिरते फिरते पोटिला के यहा भी जाते है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. ३-१०-६८

[९७]

पौटिला दानशाला मे दान देती रहती है तब तक तो उसके मन मे कोई संकल्प–विकल्प नही होते। परन्तु जब वह खाली बैठती है तो उसके मन मे वही विचार आने लगते है। जिसने सामने से आकर मुझसे शादी की–उसको ऐसा क्या हो गया कि वह मुझ से आज बोलता भी नही है? पौटिला को और सब कुछ सुख है–पर एक पति का ही सुख नही है। वह दान देती है, पर उसमे उसे वह सुख नही मिलता। मनुष्य ने जिसमे सुख मान लिया वह न मिले तो उसे दुख होता है। सुख का अभाव ही दुख है।

मीराबाई शादी कर जब दुर्गामाता के मंदिर मे आती है तो उसकी सासु कहती है–यह हमारी कुल देवी है–तू इसको नमस्कार कर। यह तेरा सौभाग्य अखंड रखेगी।

सासु कहे सौभागणी बहु, नमो शक्ति ने पाय।
मस्तक मारुं नहि नमे अेक विना गिरधर राय।
मीरा मन मोहन से मोह्यु।
सासु कहे सामुं बोले आज थी, नथी मारे आ वहुनुं काम।
पुत्रने कहे अेने राखो परी, अेना न्यारा चणावो वास
मीरा मन मोहन से मोह्यु.......'

मीरा को तो अपने गिरधर मे ही श्रद्धा थी। उसने कहा–मै किसी दूसरे को अपना सिर नही नमा सकती। है ऐसी श्रद्धा तुम्हारी भी? पत्थर पर सिंदूर लगाया कि तुम अपना सिर नमा देते हो–लकडे खड़े कर सिंदूर और मारीपन्ना लगा दी कि तुम अपना सिर नमा देते हो—क्या तुम्हारे सिर की कोई कीमत नही है?

मीरा कहती है—मेरा सिर तो गिरधर गोपाल के सिवाय और किसी को भी नही नम सकता है।

सासु कहती है–अभी तो घर मे पैर भी न रखा कि वहू सामने बोल रही है! पूतका पग पालने में और वहू का पग आंगणे मे दिखाई दे जाता है! जहां श्रद्धा कमजोर होती है वहां धर्म नही रहता। जिस पत्थर पर कुत्ते पेशाव कर जाते है, उसको तुम नमस्कार करते हो। नव तत्व को जानने वाला क्या ऐसा कर सकता है? यह क्यों नहीं समझते कि शुभाशुभ का फल देने वाला तो कर्म है। वह पत्थर थोडे ही तुम्हें कुछ दे देने वाला है! तुम वीमार रहते हो। किसी की नजर तो नहीं लग गई है! ऐसा क्यों सोचते हो? तुम्हारा उपादान ठीक न होगा तो दूसरों का निमित्त भले ही मिल जाय, पर मूल तो तुम्हारा ही

अशुद्ध है। मैंने भगवान के मार्ग का शुद्ध अनुकरण नही किया तभी तो रखड रहा हू। किया होता तो एक या तीन भव मे ही मोक्ष न पहुंच जाता?

आज के जैन अपने घरों मे जालाराम बाबा, साई बाबा और माता जी के फोटो रखते है। तीर नही तो तुक्का ही सही—लग जाय तो ठीक है— रखने मे क्या नुकशान है? श्रद्धा आज कितनी कमजोर हो गई है।

एक सेठ तांगे में बैठ कर जा रहा था। सामने एक आदमी मिला। उसे भी उसी गाव जाना था। सेठ ने उसे भी तागे मे पीछे बैठा दिया। बोला—बराबर बैठना—लकडी पकडे रखना, गिर मत जाना। तागा जब पहाड से नीचे उतरने लगा तो घोडा दौडने लगा। तागा उछला और किसान नीचे जा गिरा। सेठ ने कहा—गिर कैसे गया? लकडी क्यो नही पकड कर रखी? किसान बोला—लकडी तो अभी भी हाथ में है? सेठ ने कहा—तुमने अपनी लकडी पकडी, पर इसके बजाय तागे मे लगी हुई लकडी पकडी होती तो यह नीचे गिरने की नौबत नही आती। इसी तरह तुम भी आज मिथ्यात्व को पकड कर बैठ गये हो। सम्यक्त्व को भुला दिया है। इसीलिये आगे नही बढ पा रहे हो। मीरा की श्रद्धा तो देखो? वह कहती है.— मेरा सिर तो गिरधर के सिवाय और किसी को नही झुक सकता। सासु कहती है— मीरा तो अविनीत है—आते ही सामने बोलती है, इसको मैं अपने पास नही रख सकती। पहले तो घर मे सासु ही सब कुछ हुआ करती थी—उसी का हुक्म माना जाता था। पर आज तो सासु वहू बन गई है। वहू आज नौकरानी से डरती है, पर सासु से नही डरती।

घर मे वहू आई नही कि सासु की पूछ कम हो जाती है, लडका थोड़ा कमाने लगा कि पिता से बात भी नही करता। यह अच्छी बात नही है। अपने से बडो का तो सदैव आदर ही करना चाहिये— उनके सामने बोलना तक नही चाहिये। चीन और जापान मे वृद्ध पुरुषो की सेवा ही ईश्वर की सेवा मानी जाती है। उनको वे लोग तकलीफ नही देते है। लेकिन तुम्हारे यहा क्या होता है? वृद्ध हुए नही कि उनकी तरफ उपेक्षा कर बैठते हो? ऐसा नही करना चाहिये। वे बडे है—उनका तो आदर-सत्कार ही करना चाहिये।

ज्ञानी कहते है—तुम पहले अपना घर सुधारो। तुम्हारा अनुकरण ही तुम्हारे बालक करेंगे। तुम सामायिक किये बिना खाना नही खाते हो तो तुम्हारे लडके भी कभी उनका विचार तो करेंगे ही।

तसेस्स मग्गो गुरुविद्धसेवा
विवज्जणा बाल जणस्स दूरा
सज्झायएगन्त निसेवणा य
सुत्तत्थ संचितणया धीई य।

गुरु और वृद्ध की सेवा करना ही तुम्हारा कर्तव्य है। शिष्य सुबह होते ही गुरु से यह कहे कि आपकी क्या इच्छा है? जो इच्छा हो कहो। मैं वही करूंगा? कोई शिष्य यह सोचे कि मुझे तो स्वाध्याय करना है—गुरु की वैयावच्च में रहूंगा तो स्वाध्याय नहीं हो सकेगा। उसका ऐसा सोचना भी ठीक नहीं है। वैयावच्च भी आभ्यन्तर तप है। स्वाध्याय भी आभ्यंतर तप है। स्वाध्याय करके भी अगर विनय भाव पैदा न हो तो उस स्वाध्याय से भी क्या लाभ है? वैयावच्च भी उतना ही आवश्यक है जितना कि स्वाध्याय। शिष्य का कर्तव्य है कि वह अम्लान भाव से वृद्ध गुरु की सेवा करे—विनय करे।

तुम भूल कर भी अज्ञानी का संग मत करो। जिसे सुन कर मिथ्यात्व हृदय मे घुसता हो उसे मत सुनो। जिसकी श्रद्धा मजबूत है वह कही भी जा सकता है, पर जिसकी श्रद्धा दृढ न हो उसे कही नही जाना चाहिये।

पहले अपने सिद्धान्तो मे परिपक्व बनो, फिर कही भी जाओगे तो विजयी होकर ही आओगे। कच्चे रहोगे तो काम नही कर सकोगे। कुम्हार भी अपने घड़ो को आग मे तपा कर ही बाजार मे बेचने को लाता है। कच्चा वर्तन वह नही बेचता है। वैसे ही तुम भी पक्के होकर वाहर निकलो—तैयार होकर निकलो, फिर कोई तुम्हारी श्रद्धा को विचलित नही कर सकेगा।

खुले आम जो वीतराग की वाणी का उन्मूलन करता है, उसको सुनने भी तुम चले जाते हो। यह क्या कर रहे हो! कभी इसका विचार भी करते हो? वीतराग मार्ग जैसा और कोई मार्ग दुनिया मे नही है। मेरा मार्ग तो यही है। ऐसी श्रद्धा मजबूत होनी चाहिये।

मीरा की श्रद्धा कैसी दृढ थी? सासु ने कहा—मुझे ऐसी वहू नही चाहिये। मीरा ने सुना तो दुख नही हुआ।

उसने तो कहा———

> **मीरां बाई बोल्या मग्न थई,**
> **भलु थयुं ने भांग्यो जंजाल।**
> **संत साधुनी साथे रहीने,**
> **सुखे भजशुं श्री गोपाल। मीरा......**

ठीक ही हुआ, अकेले मे भजन अच्छा हो सकेगा। कौन ऐसा समझ सकता है? क्या तुम भी ऐसा कर सकते हो? मीरा मे कैसा दृढ विश्वास था? वह भगवान के भजन मे लीन हो जाती है। उसे अपना भी भान नही रहता। दिन रात प्रभु भजन में ही तल्लीन रहती है।

एक दिन उसकी नणंद आती है और कहती है—भाभी, तू यह क्या कर

रही है? कपडो का भी ठिकाना नही। पागल की तरह रात दिन भजन गाती रहती हो। तुम तो राणाजी की पत्नी हो–यह सब छोड कर-श्रृंगार करो और मेरे भाई को रिझाओ।

मीरा ने कहा–वहिन! सच्चा सुख इसी में है। तुझे भी सुखी होना है तो मेरे साथ आ जा। संसार मे कही भी सुख नही है।

यह सुनकर नणद तो भाग खडी हुई। सीधी अपने भाई के पास पहुंची और वोली–मीरा तो भगत वन गई है–हर समय भजन गाती रहती है–न किसी को देखती है और न किसी की सुनती है, अपने हाल में मस्त रहती है। राणाजी भी मीरा के पास आते है। कहते है–मीरा तू पागल क्यो हो रही है? मुझे वता तेरा भगवान कहा है?

मीरा ने कहा–जो सरल होता है वही परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

वोले ते बीजो नही, परमेश्वर छे पोते।
पण अज्ञानी आंधलो, अलगो रहीने गोते।

परमात्मा का दर्शन करना है तो उसके ध्यान मे वैठ जाओ–तल्लीन वन जाओ। सच्चा प्रेम प्रकट करो–आखे वद होगी तव भी वे दिखाई दे जायगे। दुष्ट आदमी को तो पास मे रहने पर भी वे दिखाई नही पड़ेगे।

राणाजी कहते है– मै तेरा उपदेश सुनने नही आया हू। लोग कहते है राणा की रानी तो भगत वन गई है– तू सुधर जायगी तो लोग नीदा करना तो छोड देगे।

नीन्दा करे छे मारी नगरीना लोक राणा
तारी सिखामण हवे मारे मन फोक राणा शुं रे करूं!
भरी रे वजारमां हाथी चाल्यो जाय राणा
श्वान भसे छे तेमां हाथीने शुं थाय राणा शुंरे करुं!
शुं रे करूं हुं तो विष पीधे ना मरुं रे राणा शुंरे करुं!

मीरा के हृदय मे तो एक ही भाव है। वैसा भाव आपके हृदय मे भी पैदा हो जाय तो वेडा पार हो जाय। अत. ज्ञानी कहते है—कृत निश्चयी वनो। मर जाना मजूर करो, पर धर्म छोडना मत चाहो। लेकिन तुम तो आज जूतो की तरह धर्म वदलने लग गये हो।

दर्शन काजे दुनिया घूमें तुं भान भूलीने ज्यां त्यां भमे तुं
आतम ना मंदिर ना द्वारे पगला क्यारे भर्या
मनडाने पूछो जरा.....२!
यात्रा करे प्रभु मंदिर तारे एना दर्शन कदि ते कर्या–मनडाने.....

दर्शन करने के लिये सारी दुनिया घूमते हो–मदिर–मस्जिद–पहाड–नदी–नाले कोई नही छोडते। भान भूल कर कही भी घूमो, जब तक आत्मा के दर्शन न करोगे तब तक कुछ भी होने जाने वाला नही है। तुम बाहर चक्कर मार रहे हो, पर मन मंदिर में जो आतम देव बैठा है उसको नही देखते हो। तुमने उल्टा मार्ग पकड लिया है। उसको छोडो और सीधे मार्ग पर आ जाओ। विभाव छोड कर स्वभाव मे स्थिर बनोगे तो उसके दर्शन कर सकोगे।

मीरा की बात सुनकर राणा क्रोधित हो जाता है। वह अपनी म्यान से तलवार निकाल कर मीरा को मारने लगता है। इतने मे तो उसे चारो तरफ मीरा ही मीरा दिखाई देती है। किसे मारे! राणा ने अपनी तलवार म्यान मे डाली और अपने महल मे लौट आया। उसने फिर मीरा को पीने के लिये जहर का प्याला भिजवाया। मीरा उसे भी हसते हसते पी गई। लेकिन जो धर्म की रक्षा करता है–धर्म उसकी भी रक्षा करता ही है। मीरा जहर पीकर भी अमर हो गई। वह मरी नही। राणा हैरान रह गया। मीरा तो मरती ही नही है!

आखिरकार एक दिन मीरा स्वयं महल छोडकर संतो के साथ चली जाती है। उनके साथ घूमते घूमते एक दिन उसे एक लुटेरा उठा ले गया। एक गुफा मे ले जाकर उसने कहा–मीरा, मै तुझे चाहता हू। तू श्रृंगार कर और मेरे सामने आ। मेरा सिर आज तक किसी को नही नमा वह तुझे नमेगा।

मीरा कहती है–दूर हो जा पापी! तुझे क्या चाहिये? तू किस पर मोहित हो रहा है?

लुटेरा बोला–तेरे रूप पर मै पागल हो रहा हूं। मीरा बोली–मेरा रूप तुझे चाहिये न? ठहर, मै तुझे अपना रूप दिखाती हूं। ब्रह्मचारी के पास तो अनेक लब्धियां होती है। मीरा तो अपने शरीर का मास काट काट कर उसके पास फेकने लगती है–बोल तुझे क्या चाहिये? लुटेरा घबरा जाता है। वह उसके पैरो मे पड कर माफी मागता है? मैने भूल की, तुम अपना यह रूप समेटलो–मै अब इसे देख नही सकता। मै अब रूप का लोभी नही, तुम्हारा भक्त हो गया हूं। मै अब न तो किसी औरत पर बुरी दृष्टि करूगा और न किसी को लूटूगा ही। वह मीरा को लेकर वापिस वही आता है। संत भी मीरा को ढूढ रहे थे। पर वह बोला, मै अब लुटेरा नही हूं– मीरा मेरी मा है। इसने तो मेरी आखे खोल दी है। मै भी आज से तुम्हारे साथ रहना चाहता हूं। ऐसे तो कई प्रसग मीरा के जीवन के है।

प्रेम की गली बड़ी संकडी है–राम और काम दोनो वहां एकसाथ नहीं रह सकते है।

भगवान को तुम्हारा मान-पान या खान नही चाहिये। उन्हे तो तुम्हारी मोक्ष के प्रति तीव्र उत्कठा चाहिये। मोक्ष की अभिलाषा करो—यही वे चाहते है।

कामेच्छा, भोगेच्छा, धनेषणा, पुत्रेषणा ये सब इच्छाएं तो बहुत की है, अब इनके पीछे मत पडो। सच्ची भूख पैदा करो—तभी भक्ति की रोटी मीठी लगेगी।

एक बादशाह जगल मे गया। उसे बडे जोरो की भूख लगी। पास मे ही एक किसान की झोपडी थी। बाजरी की रोटी तैयार थी। बादशाह गया तो किसान ने बडे प्रेम से छाछ रोटी खिलाई। बाजरे की रोटी बादशाह को बडी मीठी लगी। बादशाह बोला—यह बाजरा बडा मीठा है, कहा से लाये हो?

किसान बोला—मेरे खेत मे पैदा हुआ है। बादशाह ने कहा—हमारे महलो मे भी भिजवा देना। किसान ने अपना बाजरा बादशाह के यहा भेज दिया। उसकी रोटी बना कर बादशाह की थाली मे रखी गई, पर जो मजा बादशाह को किसान के यहा खाने मे आया, वैसा यहां नही आया? बादशाह ने कहा—यह बाजरा उतना मीठा नही लगता है—कही तुमने दूसरा तो नही भेज दिया है?

किसान ने कहा—भूख लगने दीजिये—जोर से भूख लगेगी तो यह रोटी मीठी लगेगी। भूख न हो तो यह मीठी कैसे लगेगी? तुम भी सारे दिन खाते रहते हो तो स्वाद कहा से आवेगा? रात और दिन विटामिन खाते रहते हो—शरीर को ही देखते रहते हो—मेरा लडका तो दो रोटी भी नही खाता, पर १० कप चाय पी जाता है उसका क्या? सच्ची भूख पैदा होगी तो भोजन भी प्रिय लगेगा। वैसे ही आत्मा की सच्ची भूख प्रकट करोगे तो एक ही व्याख्यान सुनना काफी हो जायगा। अत सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर दृढ श्रद्धा करो—मिथ्यात्व में मत जाओ। जिनेश्वर ने जो कहा है, वही सच है ऐसी अडिग श्रद्धा पैदा करोगे तो तुम्हारा कल्याण अवश्य हो जायगा।

मीरा मे जैसी दृढ श्रद्धा थी वैसी ही श्रद्धा हमारे पहले के श्रावको मे भी थी। उनके सामने उनके लडके मार दिये गये, फिर भी वे अपने धर्म से विचलित न हुए। ऐसी अडोल श्रद्धा तुम भी पैदा करो। महासती सुव्रताजी ऐसा ही उपदेश देती है। उनकी साध्विया आहार-पानी लेने जाती है। यतना पूर्वक जाते है। भगवान ने यतना मे ही धर्म कहा है। अगर साधु मे पांच समिति और तीन गुप्ति न हो तो वह साधु नही रहता है।

गवर्नर जब तक बगले में रहता है—मकान पर लाल बत्ती जलती रहती है। यही उसकी निशानी मानी जाती है। वैसे ही साधु की निशानी भी पाच समिति और तीन गुप्ति है। उनकी दशा हो तो समझो उनका संयम रूपी दव

विराजमान है, अन्यथा वह भी बाहर घूमने गया है। साधु का जीवन ही यतना में है।

वे देख कर चलते है कही पैर के नीचे कोई जानवर न आ जाय। असावधानी से अगर उनका पैर थूक या श्लेष्म मे पड़ जाय तो साधु को ५ उपवास का दंड आता है। वे उपयोग पूर्वक चलते है। जानकर जहर खाने मे और अनजाने जहर खाने मे जैसे फरक होता है, पर परिणाम तो मृत्यु ही है, वैसे ही पाप का फल तो जहर ही है। उपयोग रहित चलने मे और उपयोग सहित चलने मे भी फरक है। उपयोग सहित चलते चलते भी अगर पाव के नीचे कोई जीव आकर मर जाय तो उसका प्रायश्चित्त कर उससे मुक्त बना जा सकता है, पर उपयोग रहित चलने से भले ही जीवहिसा न हो, फिर भी भगवान ने उस साधुको विराधक ही कहा है। क्योकि धर्म उपयोग मे ही है। सुव्रताजी साध्वीजी की शिष्याएे ऐसा ही उपयोग रख कर गोचरी जा रही है। वे घूमते घूमते पौटिला के यहा भी आती है। पौटिला उन्हे देख कर हर्षित हो जाती है—उठ कर उनके सामने आती है और वंदना—नमस्कार करती हुई कहती है—पधारो, पधारो। आज तो घर बैठे गंगा आ गई। ऐसे महान् सन्तो के दर्शन कहा सुलभ होते है? पौटिला उनको भाव पूर्वक आहार बहराती है। उसके मन मे यह विचार पैदा होता है कि मै अपनी बात इनको कह दू। ये कोई मार्ग मुझे बता सकेगे। आगे वह क्या करती है? यथावसर कहा जायगा।

ता. ३–१०–६८

[१८]

पौटिला साध्वीजी को दान देती है। उन्हे देख कर वह यह सोचती है कि ये राग—और द्वेष से परे है— वीतराग मार्ग के उपदेशक है। ये मेरी बात सुनेगे तो कुछ हल बता सकेगें।

भगवान ने आहार लेने और देने वाले के लिये कहा है——

> दुल्लहाओ मुहादाई, मुहा जीवीवि दुल्लहा।
> मुहा दाई—मुहा—जीवी, दोवि गच्छन्ति सुग्गइं।

अगर कोई अन्न-पानी वहरावे तो लेने वाला उसे आशिर्वाद नही दे। आज कल कई लोग लेते समय पुत्रवान भव, धनवान भव, आयुष्यमान भव—ऐसा कह कर आशीर्वाद देते है, साधु ऐसा नही बोले। देने वाला भी यह सोचकर न दे कि देने से मुझे यह फल मिले, दुख दूर हो जाय, ऐसी आशा से न वहरावे। बल्कि यह सोचकर दे कि यह रोटी मेरी है। ये साधु ज्ञान—दर्शन और चारित्र की

आरावना कर रहे है। उनकी साधना मे मेरा यह दिया हुआ आहार सहायक बने—ऐसी भावना से वह दे। लेकिन आज कल तुम्हारी दान देते समय कैसी भावना रहती है? दस रु का दान देते हो, पर अभिमान कितना करते हो? लडका अमेरिका जाता है, ऐसी मांगलिक सुनाओ कि वह मालोमाल होकर आवे? ऐसा ही विचार मन मे रखते हो न? राग और द्वेष तुम्हारे ही कर्मो का फल है। धन जन, मान—पान की इच्छा रखते हुए आहार का दान नही देना चाहिये।

अज्ञानी लोग कई तरह से सोचते हैं—सतो का हाथ सिर पर फिरालो—ज्ञान चढ जायगा—दुख दूर हो जायगा। मादलिया बना कर गले मे पहन लो, लडका जी जायगा, किसी की नजर नही लगेगी। आप तो हमारे ही हो, हमारा भविष्य कैसा है? यह तो बता दीजिये। यों सारी दुनिया अपने स्वार्थ के पीछे दुखी है! सुखी कौन है? कौनसी रात ऐसी गुजरती है कि जहां कोई रोता न हो? जहा राग और द्वेष है वही दुख भी है। ईष्ट संयोग मे खुशी और अनिष्ट योग मे रज—यही ससार है।

कोई २ वेला उर उछाले आनंद केरा पूर
. . . आंखडी तारी आसूं थकी भरपूर।
मुसाफिर जाऊं छे तारे दूर।

कोई समय ऐसा आता है कि खुशी हृदय में समाती नही है। १२ वर्ष बाद लड़के का पता चले कि वह तो लाखो रुपया कमा कर आ रहा है तो माता-पिताको सुन कर कितना आनंद होता है?

कई बार ऐसा भी प्रसंग आता है कि खुशी रज में पलट जाती है।

लंदन मे एक युवक शादी करके अपने घर आया कि दूसरे दिन उसकी पत्नी अपने घर जाने का कहती है। पति उसे जाने की आज्ञा दे देता है। पत्नी कहती है— तुम भी साथ चलो। पति साथ चलने को तैयार नही होता। बात बढी और तनातनी हो गई। पति कहता है—तू मुझे ले जाने वाली कौन है? औरत कहती है—तुम मेरे साथ क्यो नही आते हो? दोनो के मन मे सदेह पैदा हो जाता है। पास मे ही टेबल पर छुरी पडी हुई थी। लडके ने उठाकर अपने पेट में भोंक दी और वही मर जाता है। आज मरना भी इतना सस्ता हो गया है।

पति मर जाता है। सुख दुख मे परिणत हो जाता है। एक ही रात मे क्या क्या हो गया? पत्नी अब छटपटाती है और बेसुध हो जाती है। यह सब क्या है? राग का ही परिणाम है। लेकिन तुम आज इसमें कूद कूद कर पड रहे हो। याद रखना एक बार जो यह भूल अनन्तकाल तक भोगनी पड़ेगी।

राग और द्वेष ही दुनिया मे फिराने वाले है।

पौटिला भी सोचती है–मुझे भी अगर वशीकरण मंत्र मिल जाय तो पति मेरा बन सकता है। पतंगिये राग ही राग मे मर जाना कबूल करते है, पर राग नहीं छोड़ते है। तुम भी आज राग मे फंसे पडे हो। सद्गुरु मिले तव भी तुम संसार से निवृत्त न हो तो यह कैसा गाढमिथ्यात्व है तुम्हारा? संसार में रह कर क्यो पानी का मंथन कर रहे हो?

असार छे संसार

यह संसार असार है। दुख दावाग्नि मे जल रहा है। मोह के मेघ बरस रहे है। जहा देखो वही राग और द्वेष की होली ही जल रही है।

एक चोर चोरी करते पकडा जाय तो कौतवाल उसे सजा करता है–लकडी से मारता भी है। मारते मारते थक जाता है तो वह कुछ देर आराम करने के लिये रुक जाता है। चोर कोतवाल का आराम करना ही सुख समझता है। मार तो आगे फिर पड़ने वाली है। पर अभी बद है तो उसे ही वह सुख समझता है। ऐसा ही हाल तुम्हारा भी है–जिसके पास धन की कमी है वह यही सोच कर सुखी हो रहा है कि चलो पैसा नही है तो क्या! औरत तो ठीक मिली है न? जिसके पास पैसा है वह यह सोचता है कि औरत लडाकू है तो क्या? पास मे पैसा बहुत है–दूसरी औरत कर लूगा। मुझे क्या दुख है? जिसकी औरत मर गई, वह यह सोच कर सुखी है कि औरत मर गई तो क्या? कल लडके वडे हो जायगे। बीज थोडे ही नष्ट हो जाने वाला है? जिसके न औरत है और न वच्चे-पास मे कुछ पैसा भी नहीं है,फिर भी वह यह सोचकर सुखी होता है कि मेरा वाहर सन्मान कितना होता है? यो हर एक आदमी अपना एक सुख आगे रख कर अपने सव दुख दवा कर सतोष तो जाहिर कर देता है, पर अन्तरग में दुखी तो है ही। तुमको सर्वथा दुखो से छुटकारा लेना हो तो हमारे पास आ जाओ। हमको एक भी दुख नही है। या तो तुम हमे अपना सुख वताओ या हमारे सुख मे आजाओ। ससार मे क्यो पड़े हुए हो? रात और दिन पागल कुत्ते की तरह चक्कर लगाते रहते हो? क्या तुम इसी तरह अपनी जीन्दगी पूरी कर दोगे या उसे कुछ समझोगे भी?

तुम्हारा सिर चक्कर खा रहा है–छोकरी वडी हो रही है–संवध करना है। शादी कर देते हो तव भी चिन्ता है–लडका शराव पीता है–पर स्त्री गमन करता है। लडकी कहती है–इससे तो मुझे कुए मे डाल दिया होता तो ठीक होता। तुम क्या शादी कर के मुक्त हो गये हो? लडके को पढाया लिखाया और शादी कर वहू घर मे लाये कि दूसरे दिन चूल्हा अलग हो गया। वहू पति को भी रवाना

वना कर नही देती। होटल से मंगा कर खाओ। ऐसी दुष्ट कन्या मिल जाय तो सुख कहा है? ससार तो सब तरफ से जल रहा है, कौन किसके पास फरियाद करे! दो राडीराड मिलती है तो अपना अपना रोना रोती है, यही हाल संसार का भी है? दुख का कही अन्त नही है। यह आरा ही दुषम है। उसे तो वैराग्य का निमित्त बना कर दुख का उपकार मान लो यही एक उससे मुक्त होने का उपाय है।

दुख मे जो नये कर्म नही बाधता वही आगे बढ़ सकता है। कर्म के जो बध बाध चुके हो उसे तो भोगना ही पड़ेगा।

एक दुकान के सामने दूसरी दुकान खुल जाय तो दोनो ईर्षा करने लग जाते है। जिसे मैंने पढाया, लिखाया और होशियार बनाया वही मेरे सामने खडा हो गया। वह मन ही मन उसके लिये बुरा सोचने लग जाता है। मुह से तो वह यही बोलता है कि—

शिवमस्तु सर्व जगतः

याद रखो, अगर तुम दूसरों का बुरा सोचते हो तो इससे पहले तुम अपना ही बुरा सोच रहे हो। अतः ज्ञानी कहते है तुम अपने मंन—वचन और काया को काबू मे रखो।

देखादेखी तो तुम भी मौन कर लेते हो—वह मौन की सामायिक करता है तो मैं भी क्यो न करूं? गाधी जी सोमवार को मौन रखते थे, मै भी सोमवार को मौन रखता हू। लेकिन मौन रख कर भी करते क्या हो? मौन तो एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी और हवा भी करते हैं। करना ही है तो मन का मौन करो। मन मे सकल्प विकल्प मत पैदा होने दो। मन मे आर्त और रौद्र ध्यान मत आने दो यही सच्चा मौन है।

वाणी का मौन करो। मुह तो वंद रखते हो, पर मन मे तूफान मचाये रखते हो। सोचते हो, आज तो मौन है—अभी तो सामायिक है—कल देखना मै क्या नहीं करता हूं! ऐसे विचार नही लाना वाणी का मौन है?

काया को स्थिर करना—मुझसे किसी को नुकशान न हो वैसा प्रयत्न करना काया का मौन है। वने वहा तक सेवा करो, वृद्ध और गुरुजनो की सेवा करो। यह काया तो नश्वर है, जानवर की तो चमडी भी काम मे आती है, मेरा शरीर कुछ काम आने वाला नही है। कौए भी न खा सकेगे। आग मे जला दिया जायगा। अतः उससे हो सके उतनी दूसरों की सेवा करो। अवगुण मत देखो—गुणो को ही देखो और उन को ही हृदय में धारण करो।

भला छो तो भला रहेजो बुरु थावा नही देजो।
तमारा दुश्मनोनुं पण भला थई ने भलूं करजो।

मैं तो सेवा भावी हूं ? ऐसा भी लेबल क्यो लगाते हो ? तुम्हारा काम स्वय यह कहेगा कि तुम क्या हो ? आत्मश्लाघा करने वाला तो लघु ही बनता है।

अमेरिका का प्रेसिडेन्ट अब्राहिम लिकन हमेशा दूसरो का गुण ही देखा करता था। अपने दुश्मन के भी वह अवगुण नही देखता था। एक दिन उसका मित्र बोला–तुम अपने दुश्मन के भी अवगुण क्यो नही देखते हो ? इससे तो तुम्हारे दुश्मन कभी कम नही होगे। उन्हे तो प्रोत्साहन ही मिलेगा।

अब्राहिम लिकन ने कहा–ऐसा कर के मै अपने दुश्मनो को ही भगा रहा हूं। जिस दिन वह यह सुनेगा कि मै इसके गुणो का ही ग्राहक हू तो वह मेरा दुश्मन ही नही रहेगा। अगर तुम दुश्मनाहट मिटाना चाहते हो तो उसके गुण आगे करो, अवगुण मत देखो ! गुणो को ग्रहण करते हुए अपनी दुश्मनाहट मिटाने जैसा कोई भी उत्कृष्ट उपाय नही है।

गुणीजनों को देख हृदय मे मेरे प्रेम उमड आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।

अवगुण दूर हो जायं और गुण प्रकट हो जायं तो वह मनुष्य पूजनीय बन जाता है। सेवा का काम हो तो सेवा करो। साधु बीमार हो जाय तो तुरंत दौड कर उनकी खबर पूछो। मै क्या कर सकता हू ? साधु तो बीमार हो ही जाते है ? ऐसा मत सोचो, साधु के प्रति तो अनन्य भक्ति भाव होना चाहिये। घर मे साधु आहार लेने आवे तो रसोइयो को कह देते हो कि वहरा देना। यो आया हुआ मौका भी घुमा बैठते हो। लक्ष्मी चादला करने आई, पर तुम उसे भी घुमा देते हो !

पौटिला दान देकर साध्वीजी से कहती है–मेरा पति मुझ से रुष्ट हो गया है–ऐसा कोई मत्र हो तो मुझे बताइये जिससे कि पुनः वह मेरा हो जाय। साध्वीजीने यह सुना तो अपने कान मे अंगुली लगा दी। बोले– बस करो बहन। हम तुम्हारी यह बात भी सुनना नही चाहती। हम तो बाल ब्रह्मचारिणी है, संसार छोडकर निकल गई है–फिर संसार की बातो से हमे क्या काम है ? यह तो संसार है जो चारो तरफ से जल रहा है–कही इसमे शांति नही है। साध्वीजी आहार ले वहां से चल देती है। आगे क्या होता है ? यथावसर कहा जायगा।

ता. ४–१०६८

[१९]

पौटिला साध्वीजी को शुद्ध भाव से दान देती है और अपनी बात भी कह देती है। साधु का जीवन कैसा होता है?

महूकार समा वुद्धा जे भवन्ति अणिस्सिया।
नाणापिण्ड रया दन्ता तेणवुच्चन्ति साहुणो।

मधुकर-भंवरा जैसे फूल का रस लेता है-ऊपर से लेकर उड जाता है-फूल को नुकसान नही पहुंचाता वैसे ही साधु भी मधुकरी-गोचरी करते है। वे आहार लेते समय यह देखते है कि घर मे कितने खाने वाले है? परिस्थिति कैसी है? भाव कैसे है? इन सब बातो का विचार करते हुए वे थोडा ग्रहण करते है। किसी के दबाव मे आकर भी वे नही लेते है। जो भी वे आहार लेते है, अनासक्त भाव से लेते है। क्योकि आसक्ति करना पाप है। आहार मे उन्हे आसक्ति नही होनी चाहिये। मै यह आहार संयम रूपी यात्रा करने के लिये ले रहा हूं न कि शरीर को हृष्ट पुष्ट बनाने के लिये या स्वाद लेने के लिये ले रहा हू।

भारस्स जाया मुणि भुंजएज्जा
कंखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खु

संयम रूपी यात्रा का भार ग्रहण करने के लिये मुनि आहार करता है। आहार ग्रहण करने के भी ६ कारण बताये गये है—

वेयण वेयावच्चे इरियट्ठाए संजमट्ठाए
तह पाण वत्तियाए छटठं पुण धम्मचिंताए।

१ क्षुधा तृप्ति, २ ईर्यासमिति के लिये ३ प्राण टिकाने के लिये ४ धर्म चिंतन के लिये ५ वैयावच्च करने के लिये और ६ संयम का निर्वाह करने के लिय आहार की जरूरत रहती है।

आहार लेने का भी उद्देश्य तो मोक्ष ही है। भूखे भजन न होइ गोपाला। भूखा रह कर भजन नही किया जा सकता है। लेना और खाना भी जरूरी है। परन्तु अनासक्त भाव से ग्रहण करना मुनि का धर्म है। साधु कही निमित्त करके भी आहार के लिये नही जा सकते है। आहार मिल जाय तो उन्हें अहंकार नही होता और न मिले तो रंज भी नही होता।

लाभोत्ति न मज्जेज्जा अलाभोत्ति न सोएज्जा

साधु के तो दोनो ही गुणों मे लाभ है। मिल जाय तो संयम मे वृद्धि होती है और न मिले तो तप मे वृद्धि होती है।

साध्वीजी पौटिला के यहां से निर्दोप आहार ग्रहण करते है। पौटिला शुद्ध भाव से वहराती है। देने के वाद वह वोलती है— मै तैतली प्रधान की पत्नी हूं— पहले वडी प्रिय थी, मेरे विना उनको एक क्षण भी रहना भारी होता था। पर अव वे मेरा नाम भी सुनना पसद नही करते, देखना तो अलग रहा। भोग की तो बात ही कहां? आप तो ज्ञान सम्पन्न हो–ग्रामानुग्राम विचरने वाली हो–अनुभवी हो–मेरे जैसे कई दुखी आपके पास आये होगे। आप के पास कोई ऐसा चूर्ण हो–औषधि हो–पाक हो या जत्र–मंत्र –जादू –टोना हो तो वह मुझे भी वताने की कृपा करो। मेरा पति मुझे फिर से चाहने लग जाय, यही मैं चाहती हूं। ऐसा कोई वशीकरण मंत्र भी हो तो मुझे वताने की कृपा करो। मै वहुत दुखी हूं।

कौन सा माल कहा विकता है? और पौटिला क्या मांग रही है? त्यागी के यहां भोग की सामग्री कैसे उपलब्ध हो सकती है?

साध्वी जी कहती है–वहिन! हम तो निर्गृन्थ साध्विया है– राग और द्वेष को छोडने के लिये निकले है। गुप्त ब्रह्मचारिणी है–हमे तो ऐसा सुनना भी कल्पता नही है। फिर तुम हमसे यह क्या बात कह रही हो?

ब्रह्मचर्य तो उत्तमोत्तम जडी बूटी है। जो इसका पालन करता है वह भोग की बात कैसे सुन सकता है? साधु बन कर क्या कोई सिनेमा देख सकता है? भाव दीक्षित भी सिनेमा नही देख सकता। अगर वह यह सोचता है कि कल तो साधु बन जाना है, आज आखिरी दिन है–चलो सिनेमा तो देख आये तो क्या वह साधु बनने योग्य कहा जा सकता है?

साधु तो गुप्तेन्द्रिय होते है–

काचबो जेम अंगोने तेम जे विषयो थकी।
संकेले इन्द्रियो पूर्ण, तेनी प्रज्ञा थई स्थिर।

कछुआ अपने अगो को छिपा कर रखता है। दो कछुए तालाव से वाहर निकले। दो सियारो ने उन्हे देख लिया। सियारो ने उन कछुओं की वहुत खीचा-तानी की, पर कछुओं ने अपने अंग छिपा लिये थे। उसकी ढाल पर सियारो का कोई असर नही होता था। सियार थक कर पास ही एक झाडी मे छिप कर वैठ गये। दोनो कछुए भी वहीं पडे रहे। कुछ देर वाद उनमें से एक कछुए ने अपना पांव वाहर निकाला। उसने सोचा–शायद अव सियार चले गये होगे। उसने जैसे ही पैर वाहर निकाला सियारने उसे धर दवाया–एक के वाद दूसरा पैर भी पकड लिया–यो उस कछुए को सियार ने मार दिया। पर दूसरा कछुआ वही पड़ा रहा। उसने अपना कोई अंग वाहर नहीं निकाला। सियार वैठ वैठकर

क्षक गये और रात होने पर वे वहा से चल दिये। कछुए ने भी अपना मुह वाहर निकाल कर देखा—कही कोई देख तो नही रहा है? किसी को भी नही देखा तो वह धीरे धीरे तालाव की तरफ चला और पानी मे जा समाया। उसकी जान भी वच गई। ऐसे ही जो स्थित प्रज्ञ साधु होते है वे अपनी इन्द्रियो पर कावू रखते है। ये इन्द्रिया ही घोडो की तरह है—जिन्हे मन रूपी सारथी चला रहा है और काया रूपी रथ दौड रहा है। उसमे वैठा हआ आत्मा—चैतन देव सो रहा है। उसने मन को ही लगाम दे दी है। वही रथ हाक रहा है। मन कहता है आज सिनेमा जाना है—होटल मे जाना है, वैश्या के यहा जाना है—मन ने चाहा कि पाच इन्द्रियो के घोडे कूदने लग जाते है। मन उन्हे नचा रहा है। लेकिन जो मन को मार देता है विजयी वही वनता है। जो मन के वशीभूत वना रहता है वही अपना पतन कर देता है। आत्मा जागृत हो जाता है तो—

ज्यारे आतम नो दिवडो जागे त्यारे अंधारा दूर दूर भागे
थाये पातक नो नाश मागे मुक्ति मां वास
तेना मार्ग ना कंटको जाय नाशी ० जाग्यो रे आतम ०
ज्यारे आतमनो दिवडो जागे, त्यारे वैभव अलखामणा लागे
लागे खारो संसार – लागे प्यारो अणगार
अेने मुक्ति ना अमृतनी रढ लागी – जाग्यो ०

आत्मा जाग्रत वन जाता है तो सोचता है यह तूफान कहा से आया है? घोडे क्यो दौड रहे है? लक्ष्य तय है या नही? यो जव आत्मा जाग उठता है तो दुनिया का सारा वैभव उसे अप्रिय प्रतीत होने लगता है। अमृत की प्यास जागृत हो जाती है— मुक्ति के लिये वह वधनोसे मुक्त होना चाहता है। जितने जितने वंधन छूटते जाते है उतने उतने वध कम होते जाते है। तुम क्या कर रहे हो? वंधन कम करते जा रहे हो या नये नये वढाते जा रहे हो? वहां जाना जरूरी है—न जावेंगे तो वे लोग नाराज हो जावेगे। ममत्व भाव कितना है? यो तुम ससार के सबंध कम कर रहे हो या वढा रहे हो? वीच भवर मे आकर फंस गये हो—कही भी किनारा दिखाई नही देता है। विषयो के चक्कर ही आवर्त है— उसमे जो फंस जाता है उसका फिर पार नही आता। वह उसी मे मटियामेट हो जाता है। अतः ज्ञानी कहते है मोह को छोडो और जागृत वनो। नही तो चौरासी मे ही पडे रहोगे।

वसुधैव कुटुम्बकम्—सारी दुनिया तेरी है। क्यो तू कुटुम्ब को ही अपना मानता है? [illegible] किसको ठगता है? जिसको तू ठग रहा है वही तेरा [illegible] है। क्या तू अपने [illegible] को ठग कर खुश होना चाह रहा है? अनन्त वार तुमने [illegible] संबंध किया है।

जे गुणे से आवट्टे जे आवट्टे से गुणे।
अवि अप्पणो वि नायरन्ति ममाइयं।

यह शरीर भी मेरा नही है। साधु को तो अपने शरीर का भी ममत्व नही होना चाहिये। फिर क्या वह शिष्य पर या वस्त्र पर मोह रख सकता है?

मोटर ४० हजार रु. की है और सामने पानी भरा पडा है। पानी मे मोटर चलेगी तो खराब हो जायगी, यह सोच कर तुम उसे खडी कर दो तो क्या वह तुम्हारे सिर पर होकर चलेगी? मोटर न बिगडे तो क्या तुम उसे हाथ से उठा कर ले चलोगे? मोटर तो चलाने के लिये ही है न कि हाथ मे उठाने के लिये। चलेगी तो खराब हो जावेगी इसकी फिकर है तो उसे गेरेज मे ही क्यो नही रहने देते? इसी तरह ओघा और पूजणी भी संयम रक्षा के साधन है। मुखवस्त्रिका भी साधन है– वे बिगड न जायं–गंदे न हो जायं इस भय से तुम उसका उपयोग नही लेते हो तो यह भी परिग्रह ही कहा जायगा। जहा भी मूर्च्छा भाव पैदा हुआ कि वही परिग्रह का पाप आकर खड़ा हो जायगा। भगवान ने तो यहां तक कह दिया है कि साधु अपने देह पर भी ममत्व नही कर सकता तो ओघे पर कैसे कर सकता है?

दिगम्बर साधु तो वस्त्र नही रखते है, नग्न रहते है। परन्तु वे भी मोर पिच्छ और कमण्डल तो रखते ही है। अगर वे भी उन पर मूर्च्छा रखे तो वे भी इस परिग्रह के पाप से बच नही सकेगें।

परिग्रह ३ प्रकार के बताये गये है–

कम्म उवहि, शरीर उवहि, भडोवगरण उवहि। १ कर्म उपधि २ शरीर उपधि और ३ भंडोपकरण उपधि। १ कर्म उपधि– चौवीस दडक मे कोई भी जीव ऐसा नही होता जिसको यह परिग्रह न हो। कर्म तो सब के पास होते ही है। इसी तरह २ शरीर भी परिग्रह है। यह भी सबको होता है।

३ भंडोपकरण परिग्रह– खाने-पीने ओढने आदि के जो साधन है, पात्र-गहने आदि सभी इसी मे आते है।

संयम की रक्षा के लिये ये सब साधन हैं। उन पर ममत्व मत करो। वस्त्र पात्र का सग्रह मत करो। जैसा तुमने पुण्य या पाप किया है वैसा फल तो अवश्य मिलने वाला है। फिर क्यो सग्रह कर आत्मा को भारी कर रहे हो? हल्के रहोगे तो ऊपर जा सकोगे। भारी रहेगो तो डूब जाओगे। भवोभव की खाडी मे पड जाओगे। अतः ममता छोडकर समता में आओ-अपने देह की भी ममता मत करो।

ऐसी फ्रेम तो है–पर ऐसी हो तो अच्छा। चश्मे का काच भी रंगीन हो तो अच्छा रहे। ऐसा मूर्च्छा भाव पैदा करना भी परिग्रह ही है। साधन की संभाल

करना परिग्रह नही है । परन्तु उसमे मूर्च्छा रखना—आसक्ति रखना परिग्रह है । साधु जरूरत होने पर कोई चीज ले सकता है, पर अपने पास वह रख नही सकता । एक पेन तो है— फिर दूसरे पेन की क्या जरूरत है ? फिर भी साधु ले ले तो क्या वह साधु कहा जा सकता है ?

ज्ञानी कहते है— तुम्हारी तृष्णा कितनी बढी हुई है ? तुम दूसरो के लिये कैसे क्रूर कर्म कर बैठते हो ? तुम अपने लडकों के लिये कितना इकट्ठा कर के जाते हो ? लेकिन क्या तुम यह समझते हो कि वह सब रह जाने वाला है ?

सहुनु भावि सहुनी साथे अेनी चिन्ता शा माटे ।
जे न आवे संगाथे अेनी माया शा माटे ?

सबका भावी सब के साथ है— उनकी चिन्ता क्यो करते हो ? जन्मने से पहले ही माँ के स्तन मे दूध आ जाता है, सोने के लिये बिछौना और झूलने के लिए झूला तैयार हो जाता है । दूसरी तरफ कोई अपने बालक को पेटी मे रख कर नदी मे भी बहा कर चल देती है । यह तुम क्यो नही समझते हो ?

कर्मविपाक ना केन्द्रिय कीडा साची कमाई करतो जा ।
मायावी केन्द्रना मायावी जीवडा, साची कमाई करतो जा ।

कर्मों के फल तो मिलने वाले ही है ? कर्मो मे पोलमपोल नही चल सकती । तुम चोपडे (वहीखाते) भले ही दो बनालो, लाच-रिश्वत देकर अपना काम बनालो, पर कर्म के पास शर्म नही है, वह तो छह खंड के अधिपति को भी उठा लेजाता है तो तुम्हारी क्या हस्ती है उसके सामने ? कैंसर कहा से होगया ? किये कर्म तो भोगने ही पडेगे । उस समय कोई भी डाक्टर या दवा काम नही देगी ।

कर्म उदय मे आया कि तुम उस समय आर्त और रौद्र ध्यान करने लग जाते हो? सो नये कर्म बाध लेते हो । उस समय अगर तुम यह समझ जाओ कि यह तो मेरे ही किये का फल है— भगवान को भी अपने कर्म भोगने पडे तो मेरी क्या बात है ? अतः हंसते हंसते भोगो, पर नये मत बाधो । मै लेने वाले को तो अपना कर्जा चुका दू, पर नया कर्जा न करूं—ऐसा सोचोगे तभी उन्नति कर सकोगे । खाते अपने बराबर करो । जीवन की बही देखो । दिवाली आ रही है— उसे बराबर कर दो । जो रोज रोज बहीखाते लिखता है उसे उतनी तकलीफ नही होती है जितनी कि साल भर मे एक बार लिखने वाले को होती है । भगवान ने कहा है— जो रोज प्रतिक्रमण करता है, वह अपना हिसाब ठीक कर सकता है । जो पाप दोष [illegible] है —प्रतिक्रमण मे उसका प्रायश्चित्त करो और भविष्य मे ऐसा न करने का निश्चय करो । ऐसा करने से तुम्हारा [illegible] । [illegible] कहा भी है—

चौपट चारा गति तणी ससार मां खेल्यां करूं।

चौपड की तरह चार गति है—चौपड खेलते खेलते जो कौडी बीच के घर मे आ जाती है वह फिर निर्भय हो जाती है। तुम भी अपने घर मे आ जाओगे तो किसी का भय नही रहेगा। समझ कर कोई जहर पीना नही चाहेगा। अत: इन्द्रियो को जीतो, इन्द्रियो के गुलाम मत बनो।

एक भूल भी अनत ससार बढा देने वाली हो जाती है। जो ब्रह्मचारी होते है वे संसार की बाते सुनना भी योग्य नही समझते।

पौटिला ने अपनी बात कही तो साध्वियो ने कहा—हमको तुम्हारी वात सुनना भी कल्पता नही है। कई साधु अपना भान भूल कर कइयो को दवा वता देते है। तुम तो साधु हो तुम्हे दवा रखने का क्या अधिकार है? सग्रह करोगे तो परिग्रही बन जाओगे। साधु पक्षी की तरह होता है। उसे ममत्व से क्या काम है? आत्मा को ही जिसे देखना है—उसे बाह्य वैभव से क्या काम है? वह तो आहार भी अरुचि पूर्वक ही करता है। उसके प्रति उसे राग नही होता। स्वादु तो चाह चाह कर खाता है पर साधु अरुचि पूर्वक खाता है। जीभ से नीचे आहार गया नही कि उसका क्या स्वाद? फिर रस में क्यो पडे रहते हो? अनशन—उणोदरी जो भी कर सको वह तप करो। तप के बिना निर्जरा नही हो सकती है। थाली मे जो भी आ जाय उसमे से भी एक का त्याग कर दो। दाल है तो शाक छोड दो—आचार मत लो—इस तरह का त्याग करना भी तप कहा गया है। कम खाने से भी संयम की रक्षा ही होती है।

जहा अकेला पुरुष बैठा हो वहा अकेली स्त्री को नही जाना चाहिये। इसी तरह जहा अकेली स्त्री बैठी हो वहा अकेले पुरुष को भी नही जाना चाहिये। ब्रह्मचारी को एकात मे नही रहना चाहिये। जैसे चूहा और विल्ली, आग और घासलेट साथ मे नही रह सकते, वैसे ही स्त्री और पुरुष को भी एकात मे साथ नही रहना चाहिये।

जो लोग यह कहते है कि जिसका मन वश मे है उसके लिये क्या है? उनका भी पतन हो सकता है।

कोई साधु होकर प्रेम पर व्याख्यान दे तो क्या वह साधु कहा जा सकता है?

अगर तुम प्रेम नही करोगे तो संतान कैसे पैदा होगी? पत्नी से प्रेम करोगे तो संतान पैदा कर सकोगे—पुत्र पर प्रेम करोगे तो कुटुम्ब पर प्रेम कर सकोगे। यो धीरे धीरे दुनिया पर प्रेम कर सकोगे और फिर भगवान पर भी प्रेम कर सकोगे। कैसी उल्टी वात वताते है? भगवान ने तो ऐसो को पाप श्रमण कहा है। जिस मार्ग से पाप आवे उसे तुम धर्म कहते हो। यह कैसी वात है?

जा अस्साविणी नावा जाइ अन्धो दुरुहिया।
इच्छई पारमागन्तु अन्तराय विसीयई।

जिस नाव मे छेद हो वह नाव पार कैसे पहुंचा सकती है? जो पापरहित होकर सवर मे जावेगा वही अपनी नाव पार कर सकता है। ब्रह्मचारी ही अपनी नाव पार कर सकता है। विषय–सेवन से नाव पार नही हो सकती है। जो लोग आज ऐसी उल्टी समझ लोगो मे भर रहे हैं वे महान–पाप ही कर रहे हैं।

हमारी सस्कृति तो महान है। ब्रह्मचर्य की यहा कैसी कीमत रही है? शील के खातिर लोगो ने मर जाना सहर्ष स्वीकार किया पर अपना सत्य न छोडा। जसमा जैसी नीच कुल मे उत्पन्न होने वाली औरत भी राजा से यह कहती है कि मुझे मर जाना मजुर है, पर मै तेरा स्पर्श नही करना चाहूंगी।

राजा कहता है मै तेरे पति को मार दूगा–तेरे लडको को मार दूगा–हठ मत कर और मेरी रानी वनना मजूर कर ले।

जसमा कहती है–हठ तो तू कर रहा है। याद रख तू मेरा कुछ नही बिगाड सकता। यह शरीर मेरा नही–इसमे रहने वाला मै हूं– उसे तू छू भी नही सकता–वह गया कि यह शरीर मिट्टी है। जो मेरा है वह मेरे पास ही रहेगा—तू पागल क्यो हो रहा है?

ब्रह्मचर्य की तो सब धर्मो ने महिमा ही गाई है। गीता में भी कहा है।

विषयोनुं रहे ध्यान, तेमां आसक्ति उपजे
जन्मे आसक्ति थी काम, काम थी क्रोध नीपजे।
क्रोध थी मूढता आवे, मूढता स्मृति ने हरे.
स्मृति लोपे बुद्धिनाश, बुद्धिनाशे विनाश छे.

जो विषय सेवन का उपदेश दे क्या वह साधु या सन्यासी कहा जा सकता है? विषय से काम, काम से क्रोध पैदा होता है। क्रोध आत्मा को मलिन कर देता है—मूर्ख बना देता है—बुद्धिभ्रष्ट कर देता है। अतः ब्रह्मचर्य तो उत्कृष्ट तप है। इसकी अवहेलना मत करो। भगवान ने इसकी जो बाड बताई है उसका बराबर पालन करो।

अकेला साधु स्त्रियों की सभा मे व्याख्यान नही दे सकता और न अकेली साध्वी पुरुषों की सभा मे व्याख्यान दे सकती है।

चौपट चारा गति तणी संसार मां खेल्यां करू ।

चौपड की तरह् चार गति है—चौपड खेलते खेलते जो कौडी वीच के घर मे आ जाती है वह फिर निर्भय हो जाती है। तुम भी अपने घर मे आ जाओगे तो किसी का भय नही रहेगा। समझ कर कोई जहर पीना नही चाहेगा। अतः इन्द्रियो को जीतो, इन्द्रियो के गुलाम मत वनो।

एक भूल भी अनत ससार वढा देने वाली हो जाती है। जो ब्रह्मचारी होते है वे संसार की वाते सुनना भी योग्य नही समझते।

पौटिला ने अपनी बात कही तो साध्वियो ने कहा—हमको तुम्हारी वात सुनना भी कल्पता नही है। कई साधु अपना भान भूल कर कइयों को दवा वता देते है। तुम तो साधु हो तुम्हे दवा रखने का क्या अधिकार है? सग्रह करोगे तो परिग्रही वन जाओगे। साधु पक्षी की तरह होता है। उसे ममत्व से क्या काम है? आत्मा को ही जिसे देखना है—उसे वाह्य वैभव से क्या काम है? वह तो आहार भी अरुचि पूर्वक ही करता है। उसके प्रति उसे राग नही होता। स्वादु तो चाह चाह कर खाता है पर साधु अरुचि पूर्वक खाता है। जीभ से नीचे आहार गया नही कि उसका क्या स्वाद? फिर रस मे क्यो पडे रहते हो? अनशन—उणोदरी जो भी कर सको वह तप करो। तप के विना निर्जरा नही हो सकती है। थाली मे जो भी आ जाय उसमे से भी एक का त्याग कर दो। दाल है तो शाक छोड दो—आचार मत लो—इस तरह का त्याग करना भी तप कहा गया है। कम खाने से भी सयम की रक्षा ही होती है।

जहा अकेला पुरुष बैठा हो वहां अकेली स्त्री को नही जाना चाहिये। इसी तरह जहा अकेली स्त्री बैठी हो वहा अकेले पुरुप को भी नही जाना चाहिये। ब्रह्मचारी को एकात मे नही रहना चाहिये। जैसे चूहा और विल्ली, आग और घासलेट साथ मे नही रह सकते, वैसे ही स्त्री और पुरुष को भी एकात मे साथ नही रहना चाहिये।

जो लोग यह कहते है कि जिसका मन वश मे है उसके लिये क्या है? उनका भी पतन हो सकता है।

कोई साधु होकर प्रेम पर व्याख्यान दे तो क्या वह साधु कहा जा सकता है? अगर तुम प्रेम नही करोगे तो संतान कैसे पैदा होगी? पत्नी से प्रेम करोगे तो संतान पैदा कर सकोगे—पुत्र पर प्रेम करोगे तो कुटुम्व पर प्रेम कर सकोगे। यों धीरे धीरे दुनिया पर प्रेम कर सकोगे और फिर भगवान पर भी प्रेम कर सकोगे। कैसी उल्टी वात वताते है? भगवान ने तो ऐसो को पाप श्रमण कहा है। जिस मार्ग से पाप आवे उसे तुम धर्म कहते हो। यह कैसी वात है?

जा अस्साविणी नावा जाइ अन्धो दुरुहिया।
इच्छई पारमागन्तु अन्तराय विसीयई।

जिस नाव मे छेद हो वह नाव पार कैसे पहुंचा सकती है? जो पापरहित होकर संवर मे जावेगा वही अपनी नाव पार कर सकता है। ब्रह्मचारी ही अपनी नाव पार कर सकता है। विषय–सेवन से नाव पार नही हो सकती है। जो लोग आज ऐसी उल्टी समझ लोगो मे भर रहे है वे महान–पाप ही कर रहे है।

हमारी सस्कृति तो महान है। ब्रह्मचर्य की यहा कैसी कीमत रही है? शील के खातिर लोगो ने मर जाना सहर्ष स्वीकार किया पर अपना सत्य न छोडा। जशमा जैसी नीच कुल मे उत्पन्न होने वाली औरत भी राजा से यह कहती है कि मुझे मर जाना मजुर है, पर मै तेरा स्पर्श नही करना चाहूंगी।

राजा कहता है मै तेरे पति को मार दूगा–तेरे लडको को मार दूगा–हट मत कर और मेरी रानी बनना मंजूर कर ले।

जशमा कहती है–हट तो तू कर रहा है। याद रख तू मेरा कुछ नही बिगाड सकता। यह शरीर मेरा नही–इसमे रहने वाला मै हू– उसे तू छू भी नही सकता–वह गया कि यह शरीर मिट्टी है। जो मेरा है वह मेरे पास ही रहेगा––तू पागल क्यो हो रहा है?

ब्रह्मचर्य की तो सब धर्मो ने महिमा ही गाई है। गीता में भी कहा है।

विषयोनुं रहे ध्यान, तेमां आसक्ति उपजे
जन्मे आसक्ति थी काम, काम थी क्रोध नीपजे।
क्रोध थी मूढता आवे, मूढता स्मृति ने हरे.
स्मृति लोपे बुद्धिनाश, बुद्धिनाशे विनाश छे.

जो विषय सेवन का उपदेश दे क्या वह साधु या सन्यासी कहा जा सकता है? विषय से काम, काम से क्रोध पैदा होता है। क्रोध आत्मा को मलिन कर देता है–मूर्ख बना देता है–बुद्धिभ्रष्ट कर देता है। अत. ब्रह्मचर्य तो उत्कृष्ट तप है। उसकी अवलेहना मत करो। भगवान ने इसकी जो बाड बताई है उसका बराबर पालन करो।

अकेला साधु स्त्रियो की सभा मे व्याख्यान नही दे सकता और न अकेली साध्वी पुरुषो की सभा मे व्याख्यान दे सकती है।

साध्वीजी ने कहा––पोटिला! हमे तो तुम्हारा यह सुनना भी नही कल्पता! सरस आहार लेना, ठूंस कर खा लेना, रूप रग सवारना, सुंदर लगने वाले वस्त्र पहनना–साधु को नही कल्पता है। नव बाड सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य की साधना करना ही साधुत्व की निशानी है।

भगवान ने जगह जगह साधु को यही कहा है कि तू अपने ब्रह्मचर्य को अखंडित रखना–तू विषय–कषाय के चक्कर मे मत फंसना। जहां कही उनकी बाते होती हो तो तू अपने कान मे ऊंगली डाल लेना।

एक साध्वीजी एक साधु से पढती है। दोनो जवान है। पढ़ते पढ़ते दोनो मे आकर्षण जागृत हो जाता है और दोनों ससार मे चले जाने का विचार–एकरार कर बैठते है। साधु कहता है–मेरा गुरु वृद्ध है–मै चला जाऊंगा तो उनकी सेवा कौन करेगा? मै ही उनका एकमात्र सहारा हू। साध्वी कहती है–तुम नही आ–ओगे तो मै अपघात कर मर जाऊंगी। गुरु की सेवा करने के लिये दूसरी व्यवस्था कर देगे। आखिर दोनों रात की १० बजे अमुक जगह मिलने का तय करते है। साध्वी तो उपाश्रय से रात को निकल कर गृहस्थ के वेष मे यथास्थान आकर बैठ जाती है। पर साधु के मन मे विचार आता है–मै चला जाऊंगा तो गुरु का क्या होगा? रात के ११ बज गये पर उसे नीद नही आती है। गुरु ने देखा कि आज शिष्य को नीद नही आ रही है तो वे उठे और उसके पास आकर बोले– आज नीद क्यो नही आ रही है? वे उसके सिर पर हाथ फिराने लगते है। साधुने सोचा मै अपने ऐसे गुरु को छोडकर कैसे चला जाऊं! धिक्कार है मुझे? मैने यह क्या कर लिया? वर्षो की साधना मिट्टी मे मिला दी? वह उठ खडा हुआ और गुरु के चरणो मे पड कर फूट२ कर रोने लगा–बोला–मुझे माफ कर दो–मै पापी हू। मैने बहुत बडा पाप कर दिया है?

गुरु ने आश्चर्य से पूछा–वत्स! तू तो मेरी बहुत सेवा कर रहा है। तेने ऐसा क्या पाप कर दिया है? मुझे कह तो सही? तुझे इतना दुख क्यो हो रहा है? तू तो मुझे अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय है।

साधु बोला––मै तो आज जाने वाला था–जो साध्वीजी पढा करती थी–वह आज अपघात करने वाली है। क्योकि मै नही गया हू। इसीलिये मुझे नीद नही आ रही थी। जैसे ही आपका हाथ मेरे सिर पर पडा मेरी वुद्धि ठिकाने आ गई। मेरा मन बोल उठा–मै अपने ऐसे गुरु को छोड कर कैसे चला जाऊ?

गुरु कहता है–वत्स! इसमे तेरा ही दोप नही है– दोप मेरा भी है। मैने तुझे छूट दे दी उसीका यह परिणाम है। अगर मै भी तेरे साथ वैठता तो ऐसी वात नही होती। मै भी जैनशासन का अपराधी हूँ। मै भी तेरे साथ प्रायश्चित्त लेने का हकदार वनता हूँ।

उधर साध्वी इंतजार करते करते थक जाती है। आखिरकार वह पास के एक कुए मे गिर कर अपघात कर लेती है। सुवह हुआ तो कुए मे से उसकी लाश निकाली गई। साधु वच गया, पर साध्वी ने अपघात कर अपनी जीवन

लीला समाप्त कर दी। एकांत में क्या नहीं हो सकता—कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः चेतो—सावधान बनो। हम तो ब्रह्मचारिणी है। महासतीजी कहती है—पौटिला हम तेरी बाते सुन भी नही सकती। वीतराग धर्म सुन। वही भवभव की परंपरा समाप्त करने वाला है। उसी की शरण ले। धर्म ही आत्मा का उद्धार करने वाला है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. ५–१०–६८

[१००]

गौटिला के यहा साध्वीजी पधारे है। वे २७ गुण से युक्त है। मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाले है। ससार से विमुक्त है। संसार का मार्ग अलग है और मोक्ष का मार्ग अलग है। संसार का मार्ग बधन युक्त है और मोक्ष का मार्ग बधन रहित है।—

दुनिया ना लोक साथे मलतो न मेल मारो
पृथ्विना पट मां तारा, प्रेम नो पंथ न्यारो।
हुं छुं निराधार मारे तारो छे आधार
दरियां मां होडी मुकी तार के डुबाड
मारे जावुं पेले पार।
प्रभु नाविक थई ने हुंकार, मारे जावुं पेले पार।

साधु और संसारी का साथ नही हो सकता है। ससार की कथनी कही नहीं जा सकती। जहां देखो वहा संयोग—वियोग—वेर—जेर ही दिखाई देता है। साधु जीवन तो विषय—कषाय—राग और द्वेष से रहित होता है। उनका मार्ग तो सीधा होता है। अगर वह मार्ग तुम न संभालोगे तो संसार कैसे मिट सकेगा?

जो साधक मोक्ष की तरफ चल देता है—वह फिर संसार को कैसे देख सकता है? उसे ससार से क्या मतलव है? अज्ञानी जीव ही अपना संसार वढाता रहता है।

हे भगवन! तू मेरा नाविक है। मै तो नाव में वैठने वाला हूं। ज्ञानी कहते है संसार की तरफ पीठ कर दे। ससार जल रहा है। उसमे कहीं भी सार दिखाई नही पड़ता है।

एक पक्खी केम प्रीति परवडे,
उभय मिला हुवे संध—जिनेश्वर।
हुं रागी हुं मोहे फंदियो,
तुमे निरागी निर्वंध—जिनेश्वर
धर्मजिनेश्वर गाऊं हो रंगशुं।

आनंदघन जी कहते है– हे भगवन ! मै तुम्हारे लिये सब कुछ सहन करने को तैयार हूं। बावीस परिषह भी सहन कर लेता हूं। राग–द्वेष नही करता हू, फिर भी तुम्हे मेरे पर कुछ नही होता !

राग कब बढता है ? जब कि सामने से भी राग का मेल होता है। हिलने-मिलने से प्रेम सबध बना रहता है। हम तो भगवान के लिये इतना करते है, पर यह एक तरफी प्रेम कैसे निभ सकता है ? मै तो तुम्हे चाहता हू, पर तुम नही चाहो तो काम कैसे बनेगा ? भगवान तो राग और द्वेष से परे है– उन्हे न राग है और न द्वेष। मै क्या करू ? तुम तो मेरे जैसे नही बन सकते हो, पर आखिर-कार मुझे ही तुम्हारे जैसा होना पडेगा। इसके सिवाय दूसरा और कोई रास्ता नही है।

मुझे तुमसे राग इसलिये है कि तुम वीतरागी हो। दुनिया मे सभी दुखी है —बडे बड़े सेठ साहूकार, राजा–चक्रवर्ती, बादशाह सभी दुखी है। एक मात्र सुखी वीतरागी ही है। राग को तो एरडी (केस्टर ओईल) का तैल कहा है। पेट मे जब मल जमा हो जाता है तो ऊपर से एरडी का तैल पिलाया जाता है। उसमे ऐसी शक्ति होती है कि वह स्वय भी मल के साथ बाहर निकल जाता है। राग भी यही काम करता है। हृदय मे जो मैल भरा हुआ है उसको दूर करने वाला यह राग भाव है–जो एक दिन स्वयं मैल के साथ हृदय से अलग हो जाता है। जब तुम एक दिन वीतरागी बनोगे तो यह राग भाव स्वय मिट जायगा।

दुनिया ना रंग मां मे संतोना संग खोया।
जीवन ना जंगमां मे उरना उछरंग खोया।
अंतरमां अंधकार, अंगे अंगे छे अंगार,
दरिया मां होडी मुकी; तार के डुबाड, मारे जावुं पेले पार—

इस दुनिया का रग इतना रग–बिरगा है कि मैने सत्सग भी छोड दिया और इसी मे फंस गया। क्यो, आज कल उपाश्रय मे क्यो नही आते हो ! समय नही मिलता है। बाजार मे जाना रहता है–कोई बीमार है तो उसकी साता पूछने जाना पडता है–कोई मर गया है तो उसके उठामने मे भी जाना पडता है–यों समय ही नही मिलता है। सभी जगह जाने का तो समय मिल जाता है, पर धर्म मे समय नही मिलता। सारे दिन देह की ही संभाल करते रहते हो–आत्मा को तो देखते भी नही। अरे शरीर तो लिफाफा है–उसमे रहा हुआ चैक अलग है। तुम लिफाफा फाड देते हो, पर चैक नही फाडते–उसकी बराबर संभाल रखते हो। लेकिन आज तुम क्या कर रहे हो ? शरीर रूपी लिफाफे की तो संभाल कर रहे हो पर चैक रूपी आत्मा को छोड

रहे हो। महापुरुष जो होते है वे शरीर को कभी नही देखते। वे तो आत्मा को ही देखते है। शरीर को घाणी में पीस दो, पर वे आह तक नही निकालते। उनकी आत्मा को तो देखो! तुम शरीर को ही देख रहे हो। चाय न मिले तो परेशान हो जाते हो। आज तो आयविल की ओली का आखिरी दिन है—आयविल कर लो न? तुम्हारा अन्तरात्मा कभी इसके लिये तैयार हो जाय तो बहिरात्मा कह उठेगा—आयबिल करोगे तो चाय नही मिलेगी—उसके बजाय एकासणा करलो—चाय भी मिल जायगी। ऐसी अनिश्चित स्थिति है तुम्हारी। तभी तो मार्ग लम्बा होता चला जा रहा है!

साधुजी के दर्शन करने आते हो तब भी मोटर मे बैठकर आते हो। लेकिन चौपाटी पर पैदल फिरने जाते हो। क्योकि डाक्टरने कहा है—रोज घूमने जाया करो। नही तो ब्लडप्रेशर वढ जायगा। धर्म मे भी तुम अपनी अनुकूलता ही देखते हो। लेकिन याद रखना जो अनुकूलता छोडकर प्रतिकूलता का मुकावला करता है वही मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

देह भाव क्षय होय ज्यां, अथवा होय प्रशांत।
ते कहिये ज्ञानी दशा, बाकी कहिये भ्रान्त।

देह भाव छूटता जाय, और आत्मा की पहचान होती जाय, तभी ज्ञानी दशा प्रकट होती है। शरीर को मत संवारो—इन्द्रियो को वश मे करो। आयविल का नीरस आहार अच्छा नही लगता है। क्योकि सरस आहार की आदत पडी हुई है। आदत तो जैसी डालोगे, वैसी ही हो जायगी। पोरसी करने का नियम ले लो तो चाय की आदत अपने आप मिट जाती है। आदत कर लेते हो इसीलिये वह फिर तुम्हारे पर सवार हो जाती है। यह शरीर तो ऐसा है कि इससे जो काम तुम लेना चाहो ले सकते हो। विलायत से कोई ५ लाख की मशीन लावे और उससे कुछ काम न ले तो मशीन का क्या दोष है उसमे? यह शरीर भी ऐसी ही मशीन है। इससे तुम मोक्ष प्राप्त कर सकते हो। वोलो, क्या करना चाहते हो? मोक्ष पाना चाहते हो या इसकी संभाल करना चाहते हो? शरीर की क्यो सभाल करते हो? मा जिस लडके की ज्यादा संभाल करती है वह ज्यादा वीमार रहता है—क्योकि हर समय वह उसे देखती रहती है। जव कि गरीव का लडका नंगे वदन रह कर भी स्वस्थ रहता है।

वेदनीय कर्म का उदय १४ वां गुणस्थान के अंतिम समय तक रहता है। जो कर्म तुम्हे प्रिय या अप्रिय लगे उनको ही नष्ट कर दो ताकि फिर कोई झंझट ही न रहे।

कठौर कर्म नी क्यारी कापीं, होमीश ध्यान हवनमांरे शीद जावुं रे वनमां।
तारक छे आ तनमां रे, शीद जावुं रे वन मां।

कर्म की कठौर क्यारी:–मिथ्यात्व की गाठ ऐसी है जिसमें ७० करौडा-करौडी सागरोपम की स्थिति भरी पडी है, उसको मूल से मिटाना है तो तुम ध्यान रूपी हवन करो। नवरात्रि के बाद आज के दिन लोग हवन करते है। आग जलाकर घी डालते है। उसमे तिल, जव और नारियल आदि डालते है। परन्तु भगवान ने जो हवन बताया है वह इससे भिन्न है। उसमे किसी जीव की हिसा नही होती है। पृथ्वी–पानी, हवा और वनस्पति के जीवो की भी हिसा उसमे नही होती। भगवान ने तो कहा है––

के ते जोई के व ते जोइ ठाणे.
का ते सुया किं व ते कारिसंगं
एहा य ते कयरा सन्ति भिक्खू
कयरेण होमेण हुणासि जोइं।

ब्राह्मण पूछते है–ज्योति क्या है? होम क्या है? उनको उत्तर देते हुए हरिकेषी मुनि कहते हैं––

तवो जोई जीवो जोईठाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंगं
कम्मेहा संजमं जोग सन्ती होमं हुणामि इसिणं पसत्थं।

जीव रूपी कुडमे तप रूपी ज्योति प्रकट करो। मन का चाटुवा बनाओ। मन को वश मे करो। सर्प काटता है तो उससे उसका पेट नही भरता है। इसी तरह मन भी भटकता रहता है, पर उससे आत्मा का भला नही होता। मन वाला सज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ७० करोडा क्रोडी सागरोपम का आयुष्य वाध लेता है, जब कि मन रहित असंज्ञी पचेन्द्रिय १ हजार सागरोपम का ही आयुष्य बाधता है। कितना वडा अतर हो जाता है?

अत.ज्ञानी कहते है–तुम मन को वश मे करो। मन को जीत लोगे तो सारा ससार जीत सकोगे।

मन के जीते जीत है मन के हारे हार।

कर्मरूपी इधन उसमे झोक दो। ज्ञान रूपी हवा के झोके आने दो और नवकार मत्र का उच्चारण करो। ऐसा हवन ही उत्कृष्ट हवन कहा जाता है। यही भवसागर का अत कर देने वाला है। नवकार मत्र जैसा कोई मत्र इस दुनिया मे नही है।

हजारों मंत्र शुं करशे–मारो नवकार वेली छे.
जगत रुठीने शुं करशे " "

एक तरफ हजारो मत्र हो और दूसरी तरफ नव .ार मत्र हो तो उसका मुकावला कोई नही कर सकता।

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मं हवई मंगलम्--'

सव पापो को नष्ट करने वाला मेरा नवकार मंत्र ही है।

जगत रूठ कर भी मेरा क्या कर लेगा? जला दो, गोली मार दो, डुबा दो, मेरा कुछ होने वाला नही है। मै मरने वाला नही हूं। पच महाव्रत धारी साधु तुम्हे यही उपदेश देते है। काया को मत देखो, आत्मानुलक्षी बनो। यही सम्यग्-दर्शन है। इसीसे वंधन टूटेगे। इसके बिना तीन काल मे भी उद्धार होने वाला नही है। ऐसा प्रशस्त हवन करने वाले ही प्रशस्त बन सकते है--

ध्यान धूपं मनो पुष्पं पंचेन्द्रि हुताशनं
क्षमा जाप संतोष पूजा, पूजो देव निरंजनं......नमो...

आत्मा को ध्यान की घूप दो, अगरवत्ती की धूप से क्या होगा? सच्ची धूप तो ध्यान है। जहा ध्यान ही ध्यान मे आत्मा लीन रहे वहा कैसा आनंद रहता होगा? साधु १ पोरसी यानी ३ घटे तक ध्यान करते है। तुम तो ५ मिनिट भी नही कर सकते। रात और दिन मे ८ पोरसी होती है। जिसमे साधु २ पोरसी ध्यान मे व्यतीत करता है। लेकिन स्वाध्याय मे ४ पोरसी व्यतीत करता है। जितना पढते हो उतना याद नही रहता। जितना सुनते हो उतना सभी याद भी नही रहता। जितना याद रहे उसी का ध्यान करो--मनन करो--चित्त को एकाग्र करो--इसी को ध्यान कहा जाता है।

जो आत्मा ध्यान मे लीन हो जाता है उसे फिर कुछ भी भान नही रहता है। ध्यानस्थ साधुको समुद्र मे फेक दो या शरीर के टुकडे टुकडे कर दो--आग मे जला दो या आकाश मे उठा कर नीचे फेक दो, उसे उसका ध्यान नही रहता है।

एक साधु को देवता ने लवणसमुद्र मे फेक दिया, फिर भी उन्होने अपना ध्यान नही छोडा--शुक्ल ध्यानी बने रहे तो मोक्ष मे पहुच गये। उनका कितना उत्कृष्ट ध्यान रहा होगा? और आज आपका ध्यान कैसा है? चलते चलते कोई टकरा जाय या पांव पर पाव गिर जाय तो गुस्से हो जाते हो! व्याख्यान सुनते सुनते इतना समय हो गया, पर इतना भी नही समझे, और गुस्सा कर वैठते हो! वह तो तुम्हारे कर्म क्षय मे निमित्त वनने आया है। उसके प्रति रोप क्यो करते हो? अशुभ कर्म उदय मे आते है तो तुम रोने लग जाते हो। शुभ कर्मो का उदय होता है तो खुश हो जाते हो। ऐसा क्यो! जो कर्जा तुम ले चुके हो उसे तो चुकाना ही पडेगा। साहूकारी तो इसी मे है। अशुभ कर्म के रूप में

तुम अपना कर्जा चुका रहे हो– फिर रोते क्यो हो ? शुभ कर्म मे अगर आसक्त बन जाओगे तो नये पापो का बंध कर लोगे। ससार को और आगे बढा लोगे। अशुभ कर्म तो पापो का क्षय कराने आये है। फिर तुम उनमे दुखी क्यो होते हो ? तुम्हे अनुकूलता प्रिय लगती है और प्रतिकूलता अप्रिय मालूम देती है। परतु साधु तो प्रतिकूलता का हंसते हसते मुकाबला करता है और अनुकूलता की तरफ पीठ कर देता है। वीर पुरुप ऐसे ही होते है। वे ही कर्मो को नष्ट कर सकते है। दुख आवे तो भले आवे–उसका स्वागत है। अपमान हो तो भले हो–उसका भी स्वागत है। मै तैयार बैठा हूँ– मुझे किसीका भय नही है। सत्ता में कर्म है तो उदय मे भी आवेगा ही। उदय होगा तो फल भी भोगना ही पडेगा। उससे कोई नही बचा सकता। तो फिर मै भयभीत क्यो बनू ? सहनशील वनोगे तो आत्मा को हल्का कर सकोगे। हाथ मे क्षमा रूपी तलवार धारण कर लो, तुम्हारा मार्ग निष्कटक बन जायगा।

एक पठान एक जैन श्रावक को जैसा–तैसा बोलने लगा। श्रावक ने सोचा–यह पठान है–जैसे–तैसे बोल रहा है। ठीक है, यह भी निमित्त है। मेरा क्या बिगाड रहा है ? भले ही बोले ? पठान चिल्लाता रहा। श्रावक ने कहा–और बको–चुप क्यो हो गये ? बोलते बोलते पठान थक गया, पर श्रावक को कुछ नही हुआ। आखिर जीत क्षमावान की ही हुई। क्रोध करने वाले को क्षमा देना या लेना वडा कठिन काम है। यहां बैठे हो तव तक तो वडे प्यारे लगते हो। सांप ऊपर से तो बडा कोमल होता है, पर काटे तव पता चलता है कि वह कैसा है ? क्षमा रखना तो वडा कठिन काम है।—

एक सेठ की पत्नी लक्ष्मी वाई जव से घर मे आई सचमुच लक्ष्मी घर में आ गई। लडका भी हो गया। नाम रखा निरजन। लडका १० वर्प का हुआ कि माता का स्वर्गवास हो गया। सेठ ने दूसरी शादी की। उससे भी एक लडका उत्पन्न हुआ। जिसका नाम स्नेहल रखा। यह लडका भी ५ वर्प का हुआ होगा कि मा मरणासन्न हो जाती है। उसका जीव अपने लडके मे रहता है। मैने निरजन को तो अपना लडका समझ कर पाला–पोपा, पर अव मेरे लडके को कौन ऐसा समझ कर पालेगा ? नई मा आवेगी तो वह इसे कैसा रखेगी ? ममता कैसी चीज है ? मरे वाद क्या होगा ? उसकी भी चिन्ता करने लग जाते हो ?

निरजन मा से कहता है–मा, तू क्यो दुखी हो रही है ? स्नेहल मेरा भाई है। मै हूं वहां तक कोई इसका वाल भी वाका नही कर सकेगा। तू इसकी चिन्ता छोड दे और भगवान का नाम ले।

आयुष्य केरी दोरी ज्यां तुटशे डोक्टर ने वैदो पाछाज पडशे,
पड्या रहेवाना अे बाटला दवाना, रे दवाना अे बाटला
जवानो समय आव्यो जवाना जवाना.
जवाना जवाना अे तो थवाना रवाना रे जवानो——

जाने का जब समय आता है तब कोई रोक नही सकता, मोह का पर्दा इतना अधिक पडा रहता है कि जीव जाते जाते भी सथारा करने का विचार नही करता है। साधु चाकू लावे और वापिस उसे न सभलावे तो उससे जो क्रिया होगी वह उसे ही लगेगी। घर मे जो बरतन तुम लाये हो—अगर मरते समय तुमने उनकी ममता न छोडी तो उनकी सारी क्रिया का पाप तुम्हे ही लगेगा। अतः सथारे का तो बडा महत्व है। मकान तो बनाया, पर उद्घाटन करने का रह गया—जाते जाते भी रोते हो। तुम्हे यहा नही तो दूसरे घर मे तो जाना ही है। फिर रोते क्यो हो? ममत्व क्यो नही छोड देते? ममत्व नही छोडोगे तो मर कर पक्षी बनोगे और उसी मकान मे घोसला बना कर रहोगे। अतः ममत्व भाव मत रखो। मरते समय संथारा करो। जो पडित मरण मरता है वह तो भाग्यशाली होता है। तुम आज किसे पडित मरण मान रहे हो? ठेठ तक बोलते बोलते गये, मेरे हाथ से पानी भी पिया—यह पंडित मरण नही है। भगवान ने तो सकाम और अकाम मरण का बहुत विस्तार से वर्णन किया है।

निरजन ने मा से कहा—मा, तुम शाति से नवकार मत्र का जाप करो। मन मे किसी तरह की चिन्ता मत रखो। सेठ भी कहता है—मै अब दूसरी शादी करने वाला नही हू। तू मन मे किसी तरह का विचार मत कर। आखिरकार मा ने शाति से अपना देह त्याग कर दिया।

ध्रुजावता धम धम धरा, पडता जेना पाय।
अेवा नर उपडी गया, जन्म्या ते तो जाय–जाय ने जाय।

पेढी जोरदार चलती हो—दिन मे तीन ड्रेस करते हो, पर फिर भी एक दिन तो जाना ही पडता है। जो जन्मा है वह तो मरने वाला ही है। जो जन्मा है वह तो मौत को साथ मे लेकर आया है। मा के पेट से बाहर निकला नही कि जीवन के ९ महीने कम हो जाते है। अत.ज्ञानी कहते है तू ससार मे मत फस, धर्म का आचरण कर।

निरजन डाक्टर बन जाता है। वह अपने छोटे भाई स्नेहल को बहुत प्यार करता है। सेठ से लोग कहते है—तुम कहा बूढे हो गये हो? तीसरी औरत और ले आओ। घर मे औरत रहेगी तो घर भी अच्छा लगेगा। सेठ कहता है—मैने तो प्रतिज्ञा करली है—अब शादी नही करूंगा। लडका बडा हो गया है। उसकी

शादी कर दूगा तो घर मे औरत आजायगी और फिर किसी तरह की असुविधा नही रहेगी।

सेठ निरजन से शादी कर लेने को कहता है। निरंजन भी अपने पिता की बात को टालना उचित नही समझता। निरजन और जानकी की शादी हो जाती है। जानकी भी सस्कारित लडकी थी। घर मे आते ही उसने तो घर का हाल ही बदल दिया। स्नेहल को वह बहुत प्रेम से रखती है। स्नेहल अपने भाई से पूछता है—यह कौन है? निरजन कहता है—यह तेरी भाभी मा है? स्नेहल उसे भाभीमा कहकर बुलाता है। छह माह बाद सेठ की भी मृत्यु हो जाती है।

निरजन अब डाक्टर बन गया है। उसका धधा बहुत अच्छा चलता है। स्वार्थ और परमार्थ दोनो वह अपने व्यवसाय से कर लेता है। गरीबो को मुफ्त मे दवा देता है। कई डाक्टर दयालु भी होते है—अपने पास से दवा भी दे देते है। वह बीमारो से बड़ा प्रेम करता है— आश्वासन देता है। इससे भी बीमार का आधा दर्द दूर हो जाता है। ग्राहक को तुम कैसे समझाते हो? ग्राहक गाली भी दे दे तो तुम बुरा नही मानते—उसे तो दूध देने वाली गाय समझ कर चुप रहते हो। क्योकि आखिर कमाना तो तुम्हे उन्ही से है न?

निरजन को एक लडका भी हो गया। उसका नाम रखा सुकेतु। वह स्नेहल को भी डाक्टरी पढाता है। उसकी पूरी संभाल रखता है। स्नेहल भी अपने भाई और भाभी को माता और पिता की तरह समझता है। सुकेतु ८ वर्ष का हुआ कि एकाएक निरजन बीमार हो गया। कई डाक्टरो को बुलाया पर कोई उसे बचा न सका। निरजन भी सबको छोडकर चला गया। घर की सारी जवाबदारी स्नेहल पर आगई। वह जानकी से कहता है—भाभी, तुम दुख मत करो। सुकेतु मेरा ही भाई है। अपकारी पर भी उपकार करना सज्जनो का कर्तव्य है। तुमने तो मेरे पर महान उपकार किया है अतः मेरा भी तो कर्तव्य हो जाता है। मेरे २ साल और निकल जाने दो, मै घर का सारा भार सभाल लूगा। तुम कुछ फिकर मत करो। दो साल बाद स्नेहल भी डाक्टर हो गया। भाई के नाम पर उसका भी अच्छा धंधा चलने लगा। जानकी ने बहुत आग्रह किया तो उसने भी सौदामिनी के साथ शादी कर ली।

सौदामिनी बडे घर की लडकी थी, पर कई बडे घर के भी हृदय के बडे छोटे होते है। सौदामिनी भी वैसी ही थी। उसने सोचा—मेरा पति तो डाक्टर है। वही कमाता है। फिर भी सब जानकी को दे देता है। ऐसा कब तक चलता रहेगा? सौदामिनी अपने मां के यहां जाती है तो मा भी उसे ऐसी ही शिक्षा देती है।

स्नेहल भाभी के कहने से शहर छोडकर गाव मे ही दवाखाना चालू कर देता है। गाव मे भी दवाखाना अच्छा चलता है। सौदामिनी को अब घूमना-फिरना नही मिलता। सिनेमा देखने को भी नही मिलता। वह डाक्टर से कहती है–यहा कैसे रहेगे ? शहर मे ही चलो–वहा जो मजा है यहा वह कहा है ?

डाक्टर कहता है–कही भी जाओ, भाग्य मे जो होगा, वह मिलने वाला ही है। भाभी कहे वैसा करना मेरा कर्तव्य है। तू भी उनकी बात मान कर चल। वही मेरी मा है। घर मे हिलमिलकर रहना ही स्वर्गीय सुख पाना है। लड-झगड कर घर को नरक नही बना देना चाहिये।

सौदामिनी कुछ दिनो बाद फिर अपने पीयर जाती है और वहा से भी वैसे ही संस्कार लेकर आती है। कमाने वाला तो तेरा पति ही है–फिर तू अपनी भाभी के सामने हाथ क्यो पसारती है ?

तेरा डोक्टर तो भोला है, वह तो कुछ नही समझता है। डोक्टर हो गया तो क्या ! थोडा पैसा तू भी अपने पास रखा कर। नही तो तेरे पास क्या रहेगा ? सौदामिनी आकर यही बात डॉक्टर से कहती है, पर डोक्टर उसकी बात नही सुनता। पत्नी की बात पति न सुने तो बहुत सी मुसीबते अपने आप टल जाती है। लेकिन अगर वह भी उसके साथ हो जाय तो घर मे क्लेश खडा हो जाता है।

एकदिन सुकेतु बीमार हो गया। दवा बहुत की, पर बुखार उतरता ही नही था। बड़े डोक्टर को बुलाया गया। उसने जैसा कहा वैसी दवा चालू कर दी गई। जानकी ने दवा देने का काम सौदामिनी को सौंप दिया। उसे क्या मालूम कि सौदामिनी के मन मे बुरे विचार है ? वह तो यही सोचती है कि मुझे कब ऐसा मौका मिले कि मै इसे दवा के बदले जहर दे दू और इस काटे को ही सदा के लिये हटा दू ? यह न रहेगा तो सब मेरा ही हो जायगा। परिग्रह क्या नही करा लेता ?

घर पीछे और दवाखाना आगे है। स्नेहल दवाखाने मे ही सो रहा है। दुपहर मे जब वह दवा देने के लिए खडी होती है तो विचार करती है – अभी यहा कोई नही है। आलमारी मे जो POISON पोईजन की शीशियां पड़ी है–उनमे से थोडा जहर क्यो न दे दूं ? वह आलमारी का दरवाजा खोलती है। आवाज होने से पीछे बैठा हुआ डाक्टर सोचता है–अभी आलमारी कौन खोल रहा है ? डाक्टर ने उसे प्याले मे जहर लेते हुए देख लिया। सौदामिनी समझती है मुझे कोई देख नही रहा है। वह दवा ले सुकेतु के पास जाती है और कहती है–लो, जल्दी दवा पीलो, अब तुम बिल्कुल अच्छे हो जाओगे। जैसे ही वह दवा

पिलाने के लिये प्याला उठाती है कि डोक्टर झपाटा मार कर कहता है—सौदामिनी! यह क्या कर रही हो ?

सौदामिनी —तुम क्या कर रहे हो ? देखते नही, हाथ से सारी दवा नीचे गिरा दी ! मै तो दवा पिला रही थी।

डाक्टर बोला—तू क्या यही वदला चुका रही है भाभी का ?

सौदामिनी—भाभी ने ही मुझे दवा देने का कहा था।

डोक्टर—झूठ बोलती है। तू दवा दे रही थी या जहर पिलाने जा रही थी।

आवाज सुनकर जानकी भी आ गई। वह बोली—क्या हुआ ? तुम दोनो लड क्यो रहे हो ? डोक्टर बोला—भाभी इसे वाहर निकाल दो, यह औरत नही राक्षसी है—दवा के वदले सुकेतु को अभी जहर पिला रही थी। आज इसे दे रही है तो कल मुझे भी दे सकती है। यह अपने घर मे रहने लायक नही है।

जानकी बोली—शात रहो, मनुष्य से भूल हो सकती है। भूल को सुवार लेना ही मानवता है। तुम्हे मेरी कसम है—तुम किसी से भी यह वात मत कहना। सौदामिनी रोने लगती है। वह अपना मुह ऊपर भी नही उठा सकती।

जानकी ने डोक्टर से कहा—तुम क्रोध मत करो—यह नादान है, सुधर जायगी। इस प्रकार जानकी सौदामिनी को भी सुधार लेती है।

सौदामिनी अब यह समझ जाती है कि मेरी भाभी तो सचमुच दैवी है। इस प्रकार जो अपने मे गुण प्रकट करता है वह अपने आप ऊपर आ जाता है। फूल खिलता है तो कहा चढ जाता है ? तुम भी अपने सद्‌गुण वढाओगे तो मोक्ष तक पहुच सकोगे। अवगुणो को मत देखो, न किसी की नीदा ही करो।

दोनो महासतीजी पौटिला को धर्म का शरण ग्रहण करने का कहते है। धर्म ही इस ससार सागर से पार उतारने वाला है। धर्म का उपदेश सुनना हो तो तुम वहा आकर सुन सकती हो—जहां हम ठहरे हुए है। यह कह कर महासतीजी तो चल देते है आगे क्या होता है। यथावसर कहा जायगा।

ता. ६-१०-६८

[१०१]

पौटिला को साध्वीजी ने धर्म की वात कही। उन्होने कहा—वहिन ! हम काम—वासना की वाते सुन भी नही सकते। काम—भोग तो किपाक फल के समान है। किपाक फल देखने मे सुदर लगता है— सुगंध भी वहुत प्रिय होती है। खाने मे भी मीठा होता है, पर परिणाम खराव होता है। खाते ही मौत का कारण हो जाता है। ऐसे ही भोगो का परिणाम भी खराव होता है।

जहाय किपाग फला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे।

कामभोग जहर की तरह है। जहर तो खाने पर ही असर करता है, पर इनका जहर तो देखते ही चढ जाता है। पढ़ते पढ़ते ही काम वासना सिर पर सवार हो जाती है, मन मे तूफान खडा कर देती है। अत: उससे तो सर्वत्र सावधान रहने की जरूरत है। प्रमादी को सर्वत्र भय रहता है जब कि अप्रमादी को कही भय नहीं होता।

विकार भी अनादि काल से आत्मा के साथ चले आ रहे है काम को कोई सिखाता नही है। उसको तो सुनने मे भी रस आता है। सिनेमा देखना हो तो खडे खडे भी तुम देख सकते हो, पर थकने का नाम नही लोगे। क्योकि उसमे रुचि अनुभव करते हो—जब कि धार्मिक कथा सुनते सुनते भी नीद लेने लग जाते हो।

कुंदकुदाचार्य ने समयसार मे कहा है कि अनंत बार जीवने काम भोग की कथा सुनी है—परिचय किया और अनुभव भी किया है अत: यही कथा जीव को रुचिकर प्रतीत होती है। लेकिन यह कथा संसार बढाने वाली है, उससे मुक्त कराने वाली नही है। अत: जिसे जागृत होना है—शाश्वत सुख पाना है उसे तो विकार पैदा करने वाले शब्द भी सुनने नही रुचते है।

साध्वीजी भी पौटिला से यही कहते है—हमको तो यह सुनना भी नही कल्पता। जीव ने अनती बार काम—कथा सुनी है। फिर भी वह यही सुनना पसद करता है। धर्म कथा उसे अच्छी नही लगती।

लभंति विमला भोये, लभंति सूर सम्पया।

लभंति पुत्तमित्तंच एगो धम्मो न लब्भई।

काम-भोगो का मिलना सुलभ है—कइयो के साथ विचार करके भी अधम वन जाते हो। देवता क्या ऐसे ही एकेन्द्रिय वनते है? भोगो का उपभोग करके भी वे सार क्या निकालते है? नारकी कभी एकेन्द्रिय में नहीं जाता है। वह दुख भोग कर निकलता है फिर भी एकेन्द्रिय मे नही जाता। लेकिन देवता जो विषय सुखो को भोगते है। वे मर कर एकेन्द्रिय मे भी चले जाते है। देवताओ को क्या करना पडता है? उनको तो कोई काम नहीं करना पडता—न खाना पकाना पडता है, न व्यापार धधा करना पडता है। संतान भी उनको नही होती—संग्रह भी उनको नही करना पडता। फिर भी वे मर कर एकेन्द्रिय मे क्यो चले जाते है? इसका कारण यही है कि वे भोग में इतने अधिक आसक्त हो जाते है कि वे मर कर पृथ्वी, पानी, और वनस्पति मे भी पैदा हो जाते है। काम विकार का फल कैसा होता है? यह तुम इससे स्वयं समझ सकते हो।

चित्तमुनि काम—भोग से निवृत्त हो संयम धारण कर उत्कृष्ट

साधना करते है तो मोक्ष मे पहुंच जाते है। दूसरी तरफ ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भोगो मे इतना अधिक आसक्त हो जाता है कि वह ७ वी नरक मे चला जाता है। जिससे बढ कर घोर दुख और कही नही होता। भोगासक्त जीव का यह फल है। ३३ सागरोपम की स्थिति वाली नरक मे जाकर घोर दुख सहन करने पडते है। बिना कारण से तो कोई कार्य होता नही है। तुमने कभी इसका विचार भी किया है कि वह ७ वी नरक मे क्यो चला गया?

बीज होगा तभी वृक्ष भी पैदा होगा। करोगे तभी तो होगा–बिना किये कर्म उदय मे कैसे आ सकते है? जीव विभाव मे जाता है तभी कार्मण वर्गणाऐ उससे जुड जाती है। भाव मे रहोगे तब तक वे कभी नही चिपकती, विभाव मे गये कि वे तुरंत चिपक जाती है। ब्रह्मदत्त काम भोग मे आसक्त रहा तो ७ वी नरक मे चला गया। फिर भी कोई काम भोग को श्रेष्ठ कहे तो तुम क्या समझोगे? आचार्य रजनीश ऐसा ही कहते हैं। सम्वत्सरी के दिन उन्होने जो प्रेम तत्व पर व्याख्यान दिया था–वह अभी प्रबुद्धजीवन मे प्रकट हुआ है। उसमें उन्होनें कहा है कि काम भोग ही मोक्ष को देने वाले है। पति–पत्नीका प्रेम ही ईश्वर–प्रेम पैदा करने वाला है। संभोग सबंध को ही वे प्रभु–प्रेम कहते है। मूल में ही जहां ऐसी भ्राति है उससे आगे क्या आशा की जा सकती है? सम्यक्त्व की तो बात ही कहां है? यह तो मिथ्यात्व की पट्टी है जो वे लोगो की आखो पर बांधना चाह रहे है। आचार्य मानतुग ने तो हमे प्रेम का दूसरा ही रूप बताया है——

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु:
पीत्वा पयः शशिकर द्युति दुग्धसिन्धो
क्षारंजलं जलनिधे रशितुं कइच्छेत। ११।।

हे प्रभु! एक वार मेरे नेत्र तुम्हे देख लेते है तो फिर वे कही जाने को तैयार नही होते—दूसरे किसी को भी वे देखना पसंद नही करते है। सम्पूर्ण शक्ति का विकास तो तुम्हारे मे ही है–फिर दूसरे को क्यो देखू?

क्षीर सागर का दूध पीने को मिलता हो तो कौन ऐसा मूर्ख होगा जो उसे छोडकर खारे समद्र का पानी पीना चाहेगा?

एक तरफ आचार्य मानतुग का प्रेम देखिये और दूसरी तरफ रजनीश का प्रेम देखिये। कितना अन्तर है दोनो मे? जमीन–आसमान जितना अंतर है। काम–विकार जो स्वयं विकार है–सारभूत नही है वह क्या प्रेम को जहता सकेगा?

मैत्री भावनु पवित्र झरनुं मुझ हैया मे वह्या करे।
शुभ थाओ आ सकल विश्वनुं एवी भावना नित्य रहे।

मैत्री-भाव कैसा होता है? उसमे क्या काम विकार होता है? एकमित्र दूसरे मित्र के लिये अपना सर्वस्व देने को भी तैयार रहता है। तो क्या यह काम-विकार का परिणाम होता है? भाई और बहिन का प्यार भी क्या काम-विकार का परिणाम कहा जा सकता है? स्वच्छदी कुछ भी कह सकता है, पर ज्ञानी के वचन जैसे तैसे नही हुआ करते-उनका परस्पर विरोधी कथन कभी नही होता। स्वच्छदता को छोड़ कर जो सत्सग करते है और तदनुसार चलते है वे ही मोक्ष-पद तक पहुंच सकते है। काम-विकार से कभी मोक्ष नही मिल सकता। वह तो नरक मे ही गिराने वाला है।

तुम्हारा लडका किसी लडकी से प्रेम करता हो तो तुम उसे किस नजर से देखोगे! रजनीश जी की मान्यतानुसार तो वह सारी दुनिया से प्रेम करना सीख रहा है। फिर तुम उस पर नाराज क्यो होते हो? क्या तुम उसे वैसा करने दोगे या थप्पड मार कर सीधे रास्ते पर लाओगे? ब्रह्मचर्य का मर्म जिसने समझा है वह ऐसा कभी नही चला सकता। काम विकार तो खराव मे खराव चीज है। तभी तो मनुष्य उसका पर्दे मे सेवन करता है। कुत्ते-कुत्तियों मे इतना ज्ञान नही होता अतः वे पर्दा नही करते-परन्तु मनुष्य तो समझदार प्राणी है। क्या तुम भी वैसे ही वनना चाहते हो? शादी होती है तो लडकियो को मुंह ढंकना पडता है। इससे वह यही वताती है कि मै जो काम करने जा रही हूं वह ठीक नही कर रही हूं। इसलिये वह अपना मुंह छिपाती है। तुम्हे अपना मुह छिपाना ही पसंद है या उसे खुला भी करोगे? खुला रखना चाहते हो तो हमारे पास आ जाओ। फिर तुम्हे वार २ मुह ढंकने की जरुरत ही नहीं पड़ेगी।

काम विकार को अच्छा कौन कह सकता है? सज्जन पुरुप तो ऐसा नही कह सकते। जहां विकार है वहां संसार है, वहां मोक्ष तीन काल मे भी नही हो सकता। काम विकार पाप है, आत्मा का हनन करने वाला है-उसको जो उत्तेजन देता है वह घोर पाप ही करता है।

लोग ब्रह्मचारी को ही शीश नमाते है। भोगी को कोई नमस्कार नही करता।

सल्लं कामा विसं कामा कामा आसी विसोपमा।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गई।

नमि राजर्षि इन्द्र को कहते है-हे इन्द्र! काम भोग तो शल्य जैसे है-काणो की तरह पीडा देने वाले है। सर्प जैसे विपैले है। उनकी

इच्छा करने वाला ही दुर्गति में चला जाता है तो भोगने वाले की कैसी हालत होती होगी? यह जिनेश्वर देव की वाणी है—त्रिकाल मे भी असत्य नही हो सकती है —

अनंत ज्ञानी थई गया वर्तमान मां होय ।
थाशे काल भविष्य मां मार्ग भेदना कोय ।

तीर्थंकर अनंत हो गये है, पर सब की एक ही आवाज है—सभी काम–भोग छोडने का ही उपदेश देते है– कोई उसमे फंसने का नही कहते। लेकिन रजनी–शजी कहते है– 'जीवन मे Sex (काम) तो चाहिये ही। विषयानंद और परमानंद दोनो भाई है। विषयानंद के विना परमानंदपना पैदा नही हो सकता है। संभोग से ही समाधि पैदा होती है।' यह कैसा उनका मिथ्या उपदेश है? सरासर घोर मिथ्यात्व है। उसे जो सुनता है वह अपना अहित ही करता है।

तीर्थंकर की वाणी सुनना प्रवचन कहा जाता है। दूसरा तो सब लेक्चर है। उसमे कोई बंधन नही होता। जब चाहो जैसा बोल दो—यही लेक्चर है। काम भोग से भी कभी परमात्मा मिल सकता है? उनकी वाणी तुम भी सुनने जाते हो। तुम्हारे नेता भी जाते है। क्या ऐसे आदमी तुम्हारे नेता हो सकते है? वे क्या तुम्हे अपने धर्म मे आगे बढ़ा सकेंगे जो स्वयं यह नही जानते कि धर्म क्या है?

संयम मे धर्म है या काम में धर्म है?

जो साधु विषय सेवन की नीदा करते है। त्याग–प्रत्याख्यान कराते है। उन्हे तो वे नास्तिक कहते है। ऐसे शास्त्रों को वे शास्त्र नही मानते। उन्हे वे जला देने का कहते है। खुले आम तुम यह सुन रहे हो, फिर भी चुप रहते हो। चोर खुले आम तुम्हारी सम्पत्ति लूट रहे है और तुम देख रहे हो। सम्वत्सरी के दिन जो तुम्हारा सबसे वडा पर्व दिवस है—उस दिन तुम्हे कोई ऐसी वाते सुनावे और तुम चुप होकर उसे सुन लो तो तुम्हे क्या कहना चाहिये? व्याख्यान माला कराने वाले कौन है? जैन ही कराते है न? क्या वे अपने शास्त्रो को जलाने के लिये ऐसा आयोजन कराते है? व्याख्यान माला के वजाय इसे तुम काम शाला कहो तो ज्यादा उपयुक्त रहेगा। जहा काम से ही ईश्वर वनने का प्रयोग वताया जाय वह कामशाला नही तो और क्या कही जा सकती है?

इस कामशाला के आचार्य रजनीशजी की वात और भी सुनिये—वे कहते है—गंगा को तो समुद्र से मिलने जाना है, पर वीच में वांव वना दिये गये है– व्रत पच्चक्खाण करा कर दिवाल खडी कर दी जाती है—गंगा सागर में मिल नहीं पाती है। यह सव क्या है? उन्मुक्त काम ही उन्हे चाहिये। कैसी विपरीत समझ है?

भगवान महावीर ने तो ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नव वाड बताई है– व्रतपच्च-क्खाण के विना तुम्हारी आत्मा शुद्ध नही रह सकती। तो क्या यह असत्य कहा गया है?

शून्य अवस्था क्या है? क्या आत्मा ज्ञान रहित है। ज्ञान रहित शून्य अवस्था तो पाट की है–जडकी है। जो चैतनावन्त है वह जड कैसे हो सकता है?

शुद्ध बुद्ध चैतन्य घन स्वयं ज्योति सुख धाम।
बीजुं कहिये केटलूं कर विचार तो पाम।

आत्मा तो शुद्ध–बुद्ध और निरंजन है। उसका विचार करोगे तो वह स्वरूप प्राप्त कर सकोगे।

शून्य होने से–जड बनने से क्या होगा? क्या आत्मा जड बन सकता है? रजनीशजी को कहो वे स्वयं जड वन कर तो बतावे कि शून्य कैसे बना जा सकता है?

चित्त की एकाग्रता शून्य नही कही जा सकती। लोगों को उल्टे मार्ग पर चढाना मिथ्यात्व है–घोर पाप है। उससे बचोगे तभी आत्मा का उद्धार हो सकेगा।

पति–पत्नी अपने प्रेम का ऐसा विकास करे कि वे सबके साथ प्रेम कर सके। ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाय तभी परमानद का अनुभव किया जा सकता है। यह कैसा उपदेश है? ससार घटाने वाला है या वढाने वाला?

जो उपदेश ससार वढाता है–उसे क्यो सुनते हो? सत्सग करो, कुसंग भूल कर भी मत करो।

त्याग विराग न चित्त मां थाय न तेने ज्ञान।
अटके त्यागविराग मां तो भूले निज भान।

जिसके मन मे त्याग–वैराग्य नही होता उसको कभी आत्म ज्ञान नही हो सकता है। नीचे से ऊपर जाना है तो सीढी से ऊपर चढना ही पडता है। ऊपर जाने के लिये सीढी ही एक साधन है। उसे छोड दोगे तो ऊपर कैसे जा सकोगे? इसी तरह मोक्ष भी साध्य है। उसको पाने का जो मार्ग है, वह साधन है। उस मार्ग पर चलोगे तो वहा तक पहुंच सकोगे। त्याग वैराग्य उसका मार्ग है–व्रत–पच्चक्खाण–यम–नियम आदि उसके साधन है। उनका अनुसरण करोगे तो तुम अवश्य आगे वढ सकोगे। साधक की प्राथमिक भूमिका कैसी होनी चाहिये।?

मंदविषय ने सरलता सह आज्ञा सुविचार।
करुणा कोमलतादि गुण प्रथम भूमिका धार।

राजचन्द्र जी कहते है –मद विषयी वनो, और रजनीशजी कहते है– काम

को उत्तेजित करो, काम के बिना समाधि नही हो सकती। किसके साथ किसको जोडते हो? कहा समाधि और कहां काम? ऐसों का तुम शिविर कराते हो? जो लोग उनका साथ देते है, या तो वे सुधर जायं या फिर वे समाज से अपना त्याग-पत्र देकर अलग हो जायं। अन्यथा एक दिन वे सारे समाज को विपरीत मार्ग पर ले जाने वाले हो जायंगे।

एक वार जापान से एक आदमी गाधीजी के पास आया और अपने कारखाने मे बनी हुई एक दर्जन पैसिले गाधीजी को भेट देते हुए कहा—यह हमारे कारखाने मे वनी हुई है। आप इन्हे स्वीकार कीजिये।

गाधीजीने कहा—मुझे नही चाहिये। वह बोला—मै प्रेम से दे रहा हूं—क्या आप इतनी सी भेट भी स्वीकार नही कर सकते? वह जवरदस्ती रख जाता है। गाधीजीने सोचा—अगर मै यह रख लूगा तो वह यह प्रचार करेगा कि गाधीजी हमारी पेसिल से लिखते है, तुम भी उसीसे लिखो। फिर मेरे देश की वनी हुई पेसिलो का क्या होगा? उनको कौन खरीदेगा? उसी दिन वह स्टीमर से जापान जा रहा था। गाधीजी ने वे पेसिले उसे वापिस लौटा दी। कितनी दीर्घदृष्टि थी गांधीजी की? तुम्हारे नेताओ को भी कभी इसका विचार आता है कि मै क्या कर रहा हूं? जहा भी थोडा मान मिलता है चल देते हो—यह नही सोचते कि मै क्या कर रहा हूं? उसका समाज मे क्या असर पडेगा? तुम समझदार हो—तुम अपनी श्रद्धा बिगडने न दोगे, पर तुम्हे देखकर जो लोग वहां चले जाते है उनका क्या होगा? उनकी जबाबदारी भी तो तुम्हारे ऊपर ही है। अत.समझते क्यो नही हो? वीतराग मार्ग को समझो। ऐरे गेरो की बातो मे मत आओ, उनमे कही सुमेल नही दिखाई देगा। कभी क्या तो कभी क्या वे कहेगे? विपरीत प्ररूपणा करने वाले को भी भगवानने मिथ्यात्वी ही कहा है।

सूत्र से कम—ज्यादा वोलना, विपरीत वोलना, दूसरो से समानता करना—तुम्हारे जैसा ही हमारा भी आचाराग है, ऐसा कहना भी मिथ्यात्व है। सर्व धर्म समभाव की वाते करने वाला भी यह नही समझता कि तुलना कहा करनी चाहिये? अत. कचरे मे मत उलझो—हीरा हाथ आने वाला नही है। सत्य को समझो, पूर्वापर विरोध जिनेश्वर के वचनो मे नही होता। वह मार्ग तो अनेकात का है। उसको छोडकर तुम आज कहा जा रहे हो? क्यो अपनी भूख अपने भोजन से नही मिटाते हो? कचरा क्यो खाते हो? यहा क्या नही मिलता है? कांदावाडी का चौमासा तो कभी खाली नही रहता। वडे वडे सतो का यहा चातुर्मास कराते हो। तुम्हे साधु तो अच्छा चाहिये, तो क्या हमे श्रावक अच्छे नहीं चाहिये? क्या हम तुमसे यह अपेक्षा नही कर सकते कि तुम हमारे श्रेष्ठ

श्रावक वनो ? पहले अपनी भूल क्यों नही समझते हो ?

एक विषयने जीतता जीत्यो सब संसार ।

कैसी वात कही है ? एक विषय को जीत लो सारा संसार जीत सकोगे—अपने वश मे कर सकोगे । ब्रह्मचारी सवको जीत लेता है ।—

निरखीने नवयौवना लेश न विषय निदान ।
गणे काष्ट की पुतली ते भगवान समान ।

ब्रह्मचर्य को कितना महत्व दिया गया है ? कोई धर्म ऐसा भी है जो यह कहता हो कि काम–भोग मे धर्म है ? नव यौवना को देखकर भी जो विषय भाव मे नही पडता–उसे जो काष्ठ की पुतली समझता है वही भगवान बन सकता है।

जे विन्न वणाई

जो स्त्री सामने से मागती है—स्वार्पण करने को तैयार है – फिर भी जो उसका त्याग कर देता है—मास का टुकडा समझ कर फेक देता है वही महात्मा कहा जाता है। जो संसार समुद्र से पार हो गये है वे ही ब्रह्मचारी भगवान के समान कहे जाते है।

स्वामी विवेकानद को दो औरतो ने देखा तो उन पर मुग्ध हो गई । वे उन्हे अपना पति वनाने आई। विवेकानद सो रहे थे। औरतो ने उनके पैरों को हाथ से छू लिया। वे जाग उठे और खडे होकर वोले—माताजी, तुम यहा क्यो आई हो ? उनके सिर पर हाथ रखते हुए उन्होने कहा—कहिये, तुम्हे अपने लडके से क्या काम है ? सुनते ही दोनो औरतो का काम विकार शांत हो जाता है।

सुदर्शन को शूली पर चढाया जा रहा है। फिर भी वे मौन है ? उनका प्रेम तो ब्रह्मचर्य पर ही है—अभया पर नही है। शूली पर चढने को वे तैयार है। पर ब्रह्मचर्य का भग वे नही करना चाहते। फैसला तो शूली को ही करना है।—

सुदर्शन शेठनी ऊपर चढाव्युं आल राणीओे ।
चढाव्या शूलीओ ज्यारे, चढ्या नवकारने ध्याने ।
थयुं शूली नुं सिहासन मारो नवकार वेली छेः (२)
हजारो मंत्र शुं करशे मारो नवकार वेली छेः
जगत रुठीने शुं करशे " " "

जगत रुठ भी जाय तो मेरा क्या कर लेगा ? अभया कहती है—सेठ सुदर्शन विकारी है; वह मेरे महलो मे आया है। या तूने उसे मंगाया है ? कौन जानता है ? अपना दोष सुदर्शन पर डालती है। लेकिन सुदर्शन तो पका हुआ घडा था, पर घबराता नही है। नवकार मंत्र का शरण लेता है—शूली मिटकर सिहासन

वन जाती है। कैसा प्रभाव है ब्रह्मचर्य का? सत्य कभी मरता नही है।

उधर सुदर्शन की पत्नी मनोरमा को औरतें कहती है–यह क्या किया तेरे पति ने? लेकिन मनोरमा तो जानती थी कि मेरा पति ऐसा कभी नही कर सकता। उसे उस पर इतना विश्वास था। क्या ऐसा विश्वास तुम्हे भी अपने पति पर है? मनोरमा ने कहा–जब तक मेरे पति का यह कलंक न मिटे तव तक मै खाने–पीने का भी त्याग करती हूं। ऐसा आदर्श प्रेम आज कहा दिखाई देता है? तुम शादी करते हो तब सौगन्ध तो लेते हो कि मै अपनी पत्नी का वफादार रहूंगा–कभी किसी पराई स्त्री पर नजर नही उठाऊगा। तो क्या वैसा पालन भी करते हो? जो करते है वे अच्छा ही करते है। जो नही करते उन्हे करना चाहिये। यही धर्म का मार्ग है। काम–विकारो को छोडेगे तभी तीर्थंकर की बातो को समझ सकोगे। ज्ञानियो का अनुभव ही सच्चा है। मिथ्यात्व मे मत फसो। जो विषय–कषायो से दूर रह कर आत्मा को जीतेगा वही अपनी आत्मा को शुद्ध–बुद्ध और निर्विकार बना सकेगा।

ता. ७–१०–६८

[१०२]

साध्वीजी पौटिला को सत्य का भान कराती है। कर्म को लेकर यह सब संसार है। कर्म करता कौन है? जीव स्वयं कर्म करता है। दूसरो का किया हुआ कर्म वह नही भोग सकता। कर्म भी अनादि है और जीव भी अनादि है। दोनो का संयोग ही संसार है। संसार भी अनादि है। कर्मो से रहित होना ही संसार से विमुक्त होना है। सर्वथा रहित होना मोक्ष पाना है और अंश से मुक्त होना निर्जरा करना है।

कर्म आने के ५ मार्ग बताये गये है– मिथ्यात्व २ अव्रत ३ प्रमाद ४ कषाय और ५ योग। इन पाचों का प्रतिक्रमण हो जाय तो जीव का मोक्ष हो जाता है।

मिथ्यात्व क्या है? उससे वचना है तो उसका स्वरुप भी जानना ही होगा। सत्य का विरोवी मिथ्यात्व है। सच्चे को झूठा कहना–झूठे को सच्चा कहना मिथ्यात्व है। काम से मोक्ष और ज्ञान, दर्शन–चारित्र से ससार की वृद्धि होती है ऐसा कहना मिथ्यात्व है।

अनादि काल से जीव सत्य का विरोवी रहा है। ससारी विद्या ही उसे अच्छी लगती है–पारलौकिक विद्या उसे रुचती नही है। सावु का व्याख्यान सुनना भी उसे रुचता नही है। उनका क्या व्याख्यान सुनना! उनसे तो हम ज्यादा जानते

है? सत्य क्या है? यह वे नही जानते है। पर अह भाव ऐसा रखते है। वे सेवा करके सन्तोष मान लेते है। लेकिन इतने मात्र से भी क्या हो जानेवाला है? जीव ने लौकिक अनुकम्पा तो अनेकबार की है। लेकिन लौकोत्तर अनुकम्पा कभी नही की। अपनी आत्मा की दया कभी नही की। की होती तो कभी का मोक्ष हो गया होता। ससार मे फिर भटकना नही पडता। करने योग्य काम तो वही है। दूसरो को दुखी देख कर दुखी हो जाते हो, पर कभी अपने पर भी तरस खाते हो? सभी दूसरे को देखते है, पर अपने को कोई नही देखता। दिया तले अधेरा कबतक रखोगे। अपने को भी देखो। हृदय को पहले शुद्ध करो। सत्य को समझो और असत्य को छोडो। यही सम्यग्दर्शन है। जड को जड और चैतन को चैतन समझना सम्यग्दर्शन है। पर वस्तु को तुम अपना नही बना सकते हो।

पर वस्तु मां नहीं मुंजवो, ऐनी दया मुझने अहो।
ए त्यागवा सिद्धान्त के पश्चात् दुख तें सुख नही।

सत्य को समझोगे तभी आत्मा का ज्ञान हो सकता है। मिथ्यात्व का खड्डा इतना गहरा हो गया है कि उसमे से हर समय गंदा पानी ही बाहर निकला करता है। जो समकिती होता है वह अन्तो करोड़ाक्रोडी से अधिक कर्म नही बाध सकता है। जबकि मिथ्यात्वी ७० करौडाक्रौडी सागरोपम का कर्म बाध लेता है। सत्य और असत्य मे कितना महान अंतर हो जाता है? पहले उसको समझो। जो मार्ग तीर्थंकर ने बताया है वही सच्चा है। ऐसी दृढ श्रद्धा पैदा हो तभी यह मिथ्यात्व का खड्डा भरता है और गदा पानी निकलना बद हो जाता है।

जो मिथ्यात्वी होता है वह असत्य का प्रचार करता है और वैसा ही अपने जीवन मे भी आचरण करता है। ऐसा मिथ्यात्वी कभी अपना संसार कम नही कर सकता है।

कुछ लोग ऐसे भी होते है जो सत्य को समझ तो लेते है, हृदय मे तो उसे मान लेते है, पर जीवन मे आचरण नही कर पाते है। जिसके हृदय से तो असत्य निकल जाता है, पर जीवन मे नही आ सका तो वह अविरति सम्यक्त्वी कहा जाता है।

एक आदमी २० वर्ष की अवस्था से वीडी पीने लगता है। पीते पीते ८० वर्ष का हो गया तब भी वह पीता है। डोक्टर कहता है तुम वीडी पीना छोडदो, नहीं तो केसर की बीमारी हो जायगी। आराम की मौत मरना चाहते हो तो अब यह आदत छोड दो। वह सोचता है—बीडी पीना तो नही चाहिये, इसे पीना खराब ही है, पर ६० वर्ष से पीता चला आ रहा हूं। अब कैसे छोड सकता हूं? यो वह हृदय से तो मान लेता है कि बीड़ी पीना अच्छा नहीं है, पर आचरण

मे नही ला सकता। समकिती जीव लडाई भी करते है, राजनीति मे भी उतरते है, पर हृदय मे सत्य रहता है—सम्यक्त्व रहता है अतः उन्हे अविरति सम्यक् दृष्टि कहा जाता है।

सर्व भाव थी औदासीन वृत्तिकरी
मात्रदेहते संयम हेतु होय जो
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहि
देहे पण किंचित मूर्च्छा नव होय जो।
अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?

सबसे बडा पाप मिथ्यात्व है। उसे बद तो कर दिया है, पर अव्रत का प्रवाह चालू है। वह यह समझता अवश्य है कि यह करने जैसा नही है, पर ससार है। करना तो पडता ही है। सुख बिन्दु जैसा है और दुख सिधु जैसा, कुटुम्ब परिवार के लोग मधु मक्खी की तरह काट रहे है। फिर भी मध का लोभ है, लोभ वश सब सहन करते रहते हो। लेकिन आयुष्य तो कम होता जाता है—
काला उंदरनी साथ धोला उंदर नी दाढ तारा आयुनी वडवाये मूके छे काप-(२)
हाथी रुपी अे काल हचमचावेडाल
तारा आयुना बंधन शिथिल थाय।
जीवन दीपक बुझाये आज्ञातीनी मति मुंझाये
जोजे य मिटडो केवो (२) संसार......

ज्ञानी कहते है—चार मुसाफिर जगल मे चलते चलते थक जाते है। एक वृक्ष के नीचे वे थोडा आराम करने बैठते है। उनमे से एक को नीद आ जाती है। दूसरे सोचते है— यहा ठहरना ठीक नही। जंगली जानवरो का भी डर है। अतः शीघ्र चल देना चाहिये। वे उसको जगाते है। लेकिन वह उठता नही है। तीनो उसे छोडकर चल देते है। वह सोता ही रहता है। कुछ देर बाद एक जगली हाथी चिघाडता हुआ वहा आता है। सोने वाला उठ कर भागने लगता है—लेकिन हाथी उसका पीछा नही छोडता। वह भी उसके पीछे पीछे दौडता है।

काल रूपी हाथी किसीको छोडने वाला नही है। तुम कही भी चले जाओ—देवलाली या लदन! पर काल भी साथ साथ ही जाता है। तुम पाताल मे चले जाओ या भोयरे मे छुप जाओ। चन्द्र लोक मे चले जाओ या मेरु पर्वत के शिखर पर पहुच जाओ, पर काल किसी को छोडने वाला नही है।

चौदह पूर्वधारी मुनि जो कि आहारकलब्धि वाले होते है। शका समाधान के लिये अपना पुतला भगवान के पास भेजते है। वह वापस आवे तब तक अगर यह मुनि काल कर जाय तो भगवान ने ऐसे मुनि को भी विराधक ही कहा है।

क्योकि वह मरते समय प्रायश्चित्त नही कर पाता है।

ऐसे लब्धिधारी मुनि को भी काल का पता नही चलता तो हमारी तुम्हारी क्या बात है?

भरत जैसे चक्रवर्ती ने भी अपने यहा एक आदमी रख छोडा था जो हर समय उस को यह सुनाता रहता था कि—

चैत चैत भरतेसर नर राया, चैत–काल झपाटा देत है.....।

हे राजन्! तू सचेत हो जा! काल झपाटा मारते हुए आ रहा है।

जिसका हृदय परिवर्तन हो जाता है, सत्य को सत्य समझ लेता है, भले ही जीवन मे वह उसका आचरण न कर सके, तब भी उसकी शुरुआत तो हो ही जाती है–जिसको तुमने सत्य मान लिया आज नही तो कल तुम उसका पालन भी करने लगेगो। जब तक न करोगे तब तक भी झूठे को झूठा तो कहोगे ही।

सम्यग्दर्शन हो जाने पर भी बाकी के ४ कारण तो खडे ही रहते है।

समकिती जीव को सर्वविरती के प्रति रुचि होती ही है। वह यह समझ लेता है कि करने योग्य तो यही है। लेकिन आज तो उल्टा हाल है। मन मे अभिमान का पवन भर जाता है और तोते की तरह ज्ञान की बातें करने लग जाते हो। हृदय का परिवर्तन तो नही होता। अगर सचमुच परिवर्तन हो जाय तो सर्व विरती के प्रति रुचि अवश्य जागृत होनी ही चाहिये।

२ अव्रत पाप है–ससार मे रह कर जीव सम्पूर्ण पाप से निवृत्त नही हो सकता। लेकिन जितने अंश मे निवृत्त हो सके उतना करे तो यह देशविरति धर्म कहा जाता है। इससे अव्रत की धारा मंद हो जाती है। महाव्रत की अपेक्षा से देशविरति–अणुव्रत कहा जाता है। यह श्रावक की भूमिका है जब कि महाव्रत साधु की। जितना जितना अव्रत दूर होता जाता है उतना उतना महाव्रत आता जाता है। बाकी का देशविरति तो रहता ही है।

एक पत्नी व्रत का नियम लेते हो तो एक को छोडकर अन्य सभी औरतो को मा–बहिन मान कर आस्रव का द्वार बद कर देते हो, एकपत्नी की छूट रखी है, पर यह भी पाप तो है ही –रजनीश की तरह ईश्वरीय प्रेम नही है। पाप को पाप समझना और उसको जितने अश मे छोड सको छोडते जाना देशविरति सम्यग्दृष्टि या अणुव्रत कहा जाता है।

सारी दुनिया का धन मैं इकट्ठा नही कर सकता। अतः उसका परिमाण कर लेना–आने–जाने के लिये सवारी का भी परिमाण कर लेना–रेल मे नही बैठने का नियम ले लेना–इससे कितने जीवो की हिंसा टल जाती है। अमुक कुए का ही पानी पीना, अमुक शाक–भाजी ही खाना–शेष का त्याग कर देना–

ऐसा करने से पाप के मार्ग अवरुद्ध हो जाते है। नियम लेने से उनका पाप टल जाता है। न करो तो वह खुला रहता है। आंशिक त्याग करने वाला देश-विरति श्रावक कहा जाता है।

संसार मे रहते हुए तुम सर्वथा जीवहिसा से बच तो नही सकते हो, पर जान बूझ कर हिसा नही करने से बच सकते हो। मकान बनाओ तो पृथ्वीकाय की और रसोई बनाओ तो पानी के जीवो की हिसा तो होती ही है। दीपक जलाते हो तो अग्नि के जीवो की हिसा होती है। लेकिन यदि तुम यह मर्यादा कर लो कि ५ दीपक से ज्यादा न जलाना, दो बार से ज्यादा चूल्हा नही जलाना, एक मकान से अधिक नही बनाना तो ऐसा करना भी आस्रव को रोक देना ही है। सारे दिन चाय पीते रहते हो—जहा जाते हो वही चाय पी लेते हो—अगर यह प्रतिज्ञा कर लो कि मुझे किसी के घर की चाय नही पीना तो तुम इस झझट से बच सकते हो। नियम लेना कोई बुरी बात नही है। सदाचारी ही अपना माथा ऊचा कर सकता है। क्योकि सदाचार ही पवित्रता का मूल है। मन, वचन और काया के योग अगर निर्मल हो जायं तो फिर देखो कैसा मजा आता है? चिदानद गीता मे कहा है।

पुद्गल केरा रांका अे तो जग मां रांक कहावे।
पुद्गल राग निवारत तिणदिन जगपति विरुद धरावे।
संतो देखिये वे प्रकट पुदगल जाल तमाशा।

पुद्गलो का तमाशा तो देखो? पुद्गल के रागी जगत के रागी कहे जाते है। चैतन्य के पुजारी बनो। जड के क्यो बन रहे हो? जिसके हृदय मे मिथ्या भावना भरी है, वह क्या चैतन को समझेगा? जिस दिन पुद्गल का राग निकल जायगा तभी वह जगत पिता बन जायगा।

श्रावको को जैसे धन का मोह है वैसे ही साधुओ को भी आज पदवियो का मोह हो गया है—आचार्य—शास्त्री—प्रभाकर—दिवाकर—मार्तंड आदि आदि। आचार्य की परीक्षा दी कि आचार्य हो गये? आचार्य तो ३६ गुण आने पर बनाया जाता है, परीक्षा देने से कुछ नही होता।

छतीस सद्गुण धरी समभाव युक्तं
ज्ञान क्रिया धर सुवाचक शास्त्र पूर्ण
सद्बोध दान कर्ता जग जन्तुओने
आचार्य कीर्तिधर ने मुझ वंदना हो।

आचार्य किसे कहते है—? क्या रजनीश आचार्य है? वे आचार्य अलग है

और हमारे आचार्य अलग है। नाम तो इन्द्र वदन पर मुह बदर जैसा है तो नाम से क्या? ऐसे ही आचार्य कहलाने से भी क्या होता है? जैन दर्शन कहता है–जो ५ महाव्रत पाले, ५ इन्द्रियो का दमन करे ५ समिति और ५ आचार का पालन करे–ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप और वीर्याचार–९ वाड शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले ४ कषाय जीते तथा ३ मन–वचन और काया की गुप्ति करे। ये ३६ गुण है, जो इनका पालन करता है वही आचार्य कहा जाता है। रजनीश जैसे आचार्य नही कहे जा सकते। आचार्य तो संघ का सचालक होता है– छोटे–बडे सबका ध्यान रखता है और योग्य व्यवस्था करता है। आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन श्रेणियां बताई गई है। उपाध्याय किसे कहते है–।

पाखंड भंग करता अगियार अंगो
सीखी सुयुद्ध करता निज कर्म संगे
शंका निवारि जन ने निज धर्म स्थापे–
निर्मोहि दान्त नमुं पाठक साधुजीने

पाखडी उनके सामने खडे भी नही रह सकते। अंधकार रहता है तब तक ही चोरों का भय रहता है। ज्ञान रूपी प्रकाश के सामने पाखंडी अपने आप भाग जाते हैं। वे ११ अंग १२ उपांग १ चरणसतरी और १ करण सतरी इन २५ गुणो से युक्त होते है। स्वयं पढते है और दूसरों को भी पढाते है। इनके सिवाय और कोई काम वे नही करते।

एक साध्वीजी मुझे मिले। बोले–तुम अपनी शिष्याओ को सूत्र क्यो कंठस्थ कराते हो? क्या आज पुस्तके कम मिलती है?

मैंने पूछा–आपको कितने सूत्र कंठस्थ है? वे बोले–मुझे तो एक भी सूत्र कंठस्थ नही है!

तो फिर यह साधु की कक्षा कहां रही! अत.पहले स्वसमय में आओ और फिर पर समय देखो। उपाध्याय यही काम करता है। पुस्तक के बजाय जो ज्ञान मुह से लिया जाता है उसमे अधिक जागृत रहना पडता है। मन को केन्द्रित किये विना मौखिक ज्ञान नही आता है। पुस्तक लेकर बैठने से क्या हो सकता है अगर मन उसमे नही है तो।अतः इस दृष्टि से तो पुस्तकों ने साधक को पंगु ही बनाया है। पहले मौखिकज्ञान ही ज्यादा था–गुरु शिष्य को मौखिकज्ञान सिखाया करते थे, पर आज वह धीरे धीरे गौण होता जारहा है। क्योकि पुस्तकें बहुत बढ गई है। तुम्हारे पास भी गाडी हो तो पैदल चलने की आदत कम हो जाती है...चलते हो तो थकावट अनुभव करने लगते हो। लोग पुस्तकीय ज्ञान तो कर लेते हैं–

उत्तराध्ययन और दशवैकालिक भी पढ लेते है। पर उनसे कोई यह पूछे कि बोलो–जीव के कितने भेद है? तो वे कहेगे–यह तो पुस्तक मे है, मुह जवानी तो याद नही है। यह कैसा ज्ञान है? पसारी की दुकान पर सैकडो चीजे रहती है। कोई ग्राहक हीग का भाव पूछे तो क्या वह चौपडे मे देखकर भाव बताएगा? वह तो फौरन कह देगा–यह भाव है। उसे सब भाव मुह पर रहते है। वैसे ही शास्त्र भी कटस्थ रहने चाहिये। ऐसे पक्के जब तुम बनोगे तव किसी की ताकत नही कि कोई तुम्हारे सामने आंख भी ऊची कर सके? वोलेगा तो तुम उसी समय उत्तर दे सकोगे। कच्चे मत रहो। शाक पकी भी नही कि दाल चढा देते हो–दाल भी पके नही और भात चढा देते हो–यो सब कच्चा ही रहे तो खाने मे मजा नही आता है – उल्टा वह पेट को नुकशान ही करता है। इसी तरह जो भी पढो–पक्का करो–अधुरा मत छोडो। भले ही नव तत्व या पच्चीस बोल का थोकडा ही पढो, पर वह भी पक्का होना चाहिये–कच्चा नही होना चाहिये।

पाच आदमी मुसाफिरी करने गये। खाना किसी को भी पूरा पकाना नही आता था। सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे। बाते सब बडी बडी करते थे, पर थे सब अधुरे। केवल एक आदमी ऐसा था जो बोला–भाई मुझे हलवा-पुडी तो बनाना नही आता। पर कडी और खीचडी जरूर मै बना सकता हू। उसने वह बनाई तो सबकी भूख शात हो गई। इसी तरह जो भी सीखो पक्का करोगे तो वही काम का हो जायगा। रुपया सच्चा होना चाहिये। कही भी जा सकोगे। उपाध्याय ऐसे ही होते है। वे ज्ञान सीख कर कर्म के साथ युद्ध करते है। शका समाधान कर धर्म मे लोगो को स्थिर करते है। कर्मो से लडाई करने मे दक्ष होते है। क्रोध रूपी शत्रु सामने आ जाय तो क्षमा से उसको परास्त करते है। तेजोलेश्या के सामने शीतलेश्या फेकते है और अन्त मे विजयी होते है। सत्य को जानकर उसे जीवन मे भी उतारना अव्रत से भी आगे की वात है। ऐसे निर्मोही उपाध्याय होते है। जो सवको समभाव पूर्वक ज्ञान देते है। अपना और पराया का भेद नही करते है।

साधु के २७ गुण है। आचार्य–उपाध्याय और सावु ये ३ कक्षा है–पर है ये सभी सर्व विरती, जिन्होने अव्रत के वध वाव दिये है। शेप ३ भेद रहते है– जिनका यथावसर वर्णन किया जायगा।

ता. ८–१०–६८

[१०३]

पौटिला साध्वीजी से अपनी बात कहती है। लेकिन साध्वी जी उसे धर्म का उपदेश देते है। जो जिस माल के व्यापारी है उसीकी तो वे बात करेंगे।

अनंत काल से जीव ने सत्य की तरफ आख मिचौनी की है। सत्य समझना ही उसे प्रिय नही लगता। यह स्थिति मिथ्यात्व की है। जडाधता कम होने पर जव आत्मा सत्य की ओर आर्कषित होता है, तब वह समझने लग जाता है कि करने योग्य तो यही है—फिर भले व्रह जीवन मे उसका पालन न कर सके, पर हृदय मे उसे स्थान दे देता है तो वह पहली स्थिति से निकल कर दूसरी स्थिति मे— अव्रत मे आ जाता है।

पुण्य से वाह्य सुख मिल सकते है— पर आतरिक सुख न मिले वहा तक कुछ नही हो सकता है। आज तक जीव ने पर मे ही सुख माना है, यही सब से वडा दुख है।

एक किसान अपने लडके को खेत मे बोने के लिये वीज देता है। वह उन्हे ले जा कर खेत मे फेक देता है, कुछ खेतके बाहर डाल देता है—कुछ घास-फूस मे विखेर देता है और कुछ जमीन के नीचे भी डाल देता है। जो खेत के वाहर डाल देता है उसे तो पक्षी चुग जाते है। घास—फूस मे डाले गये वीज उग तो जाते है पर वे घास मे ही रह जाते है। जो वीज खेत की मिट्टी पर पडे थे वे उग तो जाते है, पर हवा और पानी के अभाव मे वे अधिक समय तक खडे नही सकते—क्योकि जड उनकी मजवूत नही है। जो वीज गहरे चले जाते है वे ही उगते है और फल देने मे भी समर्थ होते है। इसी तरह सद्गुरु भी हमको उपदेश द्वारा वीज तो देते है—पर कुछ ऐसे है जो वही का वही एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते है। गुरु कह कह कर थक जाय पर सुनने वालो पर उसका असर ही नही होता है। दिगम्बरो मे ऐसी मान्यता है कि एक प्रतिमावारी श्रावक भी उपदेश देने योग्य नही कहा जाता। क्योकि —

पहेलां पोते आचरे, पछी दीये उपदेश.
वंदु एवा संतने जेने अहंभाव नहि लवलेश।

जीवन मे आचरण करता है वही उपदेश भी दे सकता है। लेकिन आज कल तो कल का दीक्षित भी उपदेश देने लग जाता है। और तुम जी. जी. करने लग जाते हो। सावु आज निर्भय वन गये है। पहले के श्रावक तो ऐसे होते थे कि साघुजी वोलते हुए भी डरते थे— कही कुछ अशुद्ध वोल देगे तो श्रावक हमारी जवान पकड लेगें। लेकिन आज वैसे

श्रावक कहां है? कैसा भी बोलो—तुम सुन लेते हो। क्योकि सिद्धान्त का ज्ञान नही है? पति पत्नी के संभोग संवध मे समाधि का सुख कहने वाले को भी सुन लेते हो। दिगम्बर यह कहते है कि आचार्य या उपाध्याय के सिवाय और कोई उपदेश नही दे सकते। लेकिन आज इसका पालन कहा होता है? जिसकी इच्छा हुई वही अपनी इच्छानुसार बोल देता है। जो उपदेश देने योग्य है उन्ही का उपदेश सुनो। सद्गुरु ही उपदेश दे सकते है। वे ही उपदेश द्वारा हृदय मे वीज बोते है। जो उन्हे फेक देता है, वे अपना जीवन नष्ट कर देते है। जमीन पर पडे हुए बीज उग तो जाते है—पर कुछ दिन तक ही वे हरे रहते है—जल्दी ही सूख जाते है। ऐसे ही संसार मे पड़े हुए उपाधि ग्रस्त लोग भी आगे नही बढ सकते है। क्योकि हृदय मे तो काटे ही भरे पड़े रहते है जो उन बीजो को हरा—भरा नही होने देते है। कुछ लोग सत्संग तो करते है, पर जैसे ही संसार मे आते है वापिस वैसे ही हो जाते है। वे उस तत्व को समझ कर आत्म-सात नही कर सकते है?

नद मणियार ने बारह व्रत स्वीकार कर लिये थे परन्तु सत्संग के अभाव से कुसंग बढने लगा तो वह पुण्य में धर्म मानने लग जाता है। धर्म और पुण्य भी भिन्न भिन्न है। धर्म तो आत्मा का गुण है जब कि पुण्य और पाप शुभाशुभ कर्म के परिणाम से होते है। शुभ में जाना है तो अशुभ को छोडना ही पडेगा। शुभ का आचरण और लक्ष्य विशुद्धि का रखोगे तो इस संसार से पार हो सकोगे। मोक्ष को पाना है तो शुभ को भी छोडना ही पडेगा। लेकिन नंदमणियार शुभ मे ही धर्म मान लेता है और धर्म को छोड देता है। इस तरह वह सत्य को असत्य और असतय को सत्य मान बैठता है। व्रतधारी होकर भी वह मिथ्यात्वी हो जाता है।

जगत मे दो तत्व है—जीव और अजीव। सुख और दुख का वैदक जीव है। अजीव में यह शक्ति नही होती। क्योकि वह जड है। आत्मा चैतन है स्व—पर का ज्ञाता है। जड को सुख— दुख नही होता न उसे अनुभव ही होता है। यह शरीर भी जड है। इसमे रहा हुआ जो आत्मा है वही ज्ञानवान है— सुख—दुख का वेदक है। जीव रहित शरीर मुर्दा है· तुम कौन हो? चैतन्य हो न? क्या कभी अनुभव किया है इसका? सारे दिन किसका मनोरथ करते रहते हो? किसका चितन करते रहते हो?

इमं च मे अत्थि इमंच नत्थि इमं च में किचइमं अकिचं,

तं एव मेव लालपमाणं हरा हरन्तिति कहं पमाओ?

इतना है, इतना नही है, इसे लाना है और उसे मिटाना है। ७ लडके है—

६ वगले तो है, एक वनाना है। इसी मे रात–दिन गुजार देते हो। ज्ञानी कहते है – अब तो रुको–ठहरो–आखे खोल कर तो देखो–कहां जा रहे हो? यह बंगला तुम अपना कहते हो, पर देखो तो सही वह क्या है? जड है। उसके भी दो भेद है–रूपी और अरूपी।

धर्म, अधर्म, आकाश–काल और जीव द्रव्य अरूपी है। पुद्गल रूपी है। जिसमे वर्ण, गंध रस और स्पर्श होता है उसे रूपी कहते है। जो इन्द्रियो द्वारा ज्ञात हो सके उसी को रूपी कहा जा सकता है।

एक मकान अनन्त परमाणुओ का समूह है। अनन्त परमाणुओ का जत्था जव इकठ्ठा होता है तव वह इन्द्रिय गम्य होता है। अन्तिम परमाणु इन्द्रिय गम्य नही है। एक पत्थर के टुकडे करो–वारीक से वारीक टुकडा जो एटम कहा जाता है–सूक्ष्मातिसूक्ष्म– उससे भी छोटा भाग जो आखो से देखा नही जा सकता। ऐसे अनत परमाणुओ का समूह जव इकट्ठा होता है तभी वह दृष्टिगोचर होता है। ऐसा ज्ञान जीव मे ही है। दूसरा कोई तत्व इसको समझ नही सकता।

सच्चा ज्ञान–सच्चा सुख आत्मा मे ही है। अज्ञान वश उसने पर मे सुख मान लिया है–यह उसकी भ्राति ही है—

सुख अनंतु छे निज घर मां पर घर दुख अपारी
अहंता, ममता जड मा करे केम? भ्रांति थी दुख भारी
आतम तूं नही जड नो भिखारी——।
शहेन शाह तू जग नो स्वामी तुज पदवी ले संभाली.......।

वीमार होते हो कि घवरा जाते हो–हाय मै वीमार हो गया! सनत्कुमार को १६ रोग एक साथ हो गये थे। फिर भी वे सुख मे लीन रहते थे। हृदय परिवर्तन करो, हृदय मे सुख प्रकट करो। सुख को वाहर क्यो ढूढते हो? पर पदार्थ में सुख नहीं है। सुख का निवास स्थान तो हृदय है। जैसे जैसे यह विश्वास दृढ होता जाता है वैसे वैसे आत्मा इन्द्रिय जन्य सुखो की उपेक्षा करने लगता है और तप वढने लगता है। वह अव पर घर मे दुख और स्व मे सुख अनुभव करने लग जाता है। धन आवे या जावे उन्हे हर्ष या शोक नही होता। तुम कैसा होना चाहते हो? कव इस मार्ग पर आओगे! कल आना है तो आज ही क्यो नहीं आ जाते? इसमे देर क्यो करते हो?

अमुक समय तक तो मुझे यह कर ही लेना चाहिये। इतना समय हो गया, फिर भी मैं क्रोध और झूठ से मुक्त न हो सका? घर मे लडके भूल करें तव भी मुझे गुस्सा नही करना चाहिये? कुछ तो नियम करो। ध्येय रहित जीवन कव तक गुजारते रहोगे? एक सद्गुण ही ग्रहण करोगे तो जीवन का

बेडा पार हो जायगा। सचमुच करने योग्य तो यही है। सुबह उठकर ८ बजे तक मौन रहने का भी नियम लोगे तो कई पाप अपने आप नष्ट हो जायगे।

सच्चे सुख की ओर वढो–पर पदार्थ मे मत फसो। उसका सुख सच्चा सुख नहीं है। वह तो सुखाभास है।

एक सेठ गांव जा रहा था। चलते चलते उसे एक ठग का साथ हो गया। सेठ ने सोचा–चलो एकसे दो हुए–रास्ता जल्दी कट जायगा।

चलते चलते ठग कहता है–सेठ संभल कर चलना–इस मार्ग पर ठग वहुत रहते है। सेठ तो उसे देख कर ही समझ जाता है कि तू भी उसमें से एक है। संभलना तो तुझ से ही है।

सेठ के पास रत्नो की एक पेटी थी। रात होती–वे धर्मशाला में सो जाते। वह अपनी पेटी उस ठग को दे देता था। ठग उसको अपना वनाने की सोच रहा था। सेठ आराम की नीद सो जाता था, पर ठग को नीद नही आती। वह पेटी खोल कर देखता तो कुछ भी दिखाई नही पड़ता। पेटी खाली दिखाई देती थी। हर एक आदमी पर को अपना वनाना चाहता है, पर क्या वह ऐसा कर सका है? पुद्‌गल अनंतकाल से आत्मा के साथ है – पर एक भी परमाणु आत्मा क। नहीं हो सका। शरीर को कितना घी दूध खिलाते हो, फल–फूल मेवा मिष्टान्न खिलाते हो, पर वह तुम्हारा कभी वन कर रह सका है? मौका आते ही वह तुमसे अलग हो जाता है। गरम गरम रोटी न मिले तो क्रोधित हो जाते हो, पर यह शरीर तुम्हारा कहां रहता है? फिर भी जीव का मिथ्यादर्शन–शल्य इतना प्रबल होता है कि वह उसी मे सुख मान लेता है।

दिन होता है सेठ फिर जंगल मे चलने लगता है। सेठ कहता है–यह रत्नो की पेटी है–संभाल कर रखना। रात को वह खाली हो जाती है और दिन में भर जाती है।

ठग कहता है–सेठ मुझे तो इस पेटी में कही रत्न दिखाई नहीं देते। मै अपने मन की वात आप से कह रहा हूं–मै उन्हे लेना चाहता था, पर उस पेटी में तो कुछ है ही नहीं।

सेठ ने कहा–यह तो मैंने पहले ही जान लिया था। इसीलिये मै अपने रत्न पेटी में से निकाल कर तेरी जेव में रख दिया करता था। क्यो कि ठग हमेशा दूसरों की ही जेव देखते है अपनी जेव कभी नहीं देखते। ऐसे ही आत्मा मे तो अनंत सुख है, पर इस जीव ने भ्रांति वश पर में सुख मान लिया है–जो उस

सेठ के रत्नो की तरह मिलता नही है।

पौटिला भी पर मे सुख मान लेती है। ईष्ट का वियोग होने से भी दुखी मत वनो। जो यह समझ लेता है वही समभावी बन कर जीवन व्यतीत कर सकता है। कुसंग होने से नंद मणियार भी मिथ्यात्वी बन जाता है।

सर्व संग त्यागी निज स्वरूपे समावुं
आत्म शोधकोनो अे सार छे—
हजार वार विषयवृत्तिकारने धिक्कार छे
सत्यना विरोधिओ अपार छे......हजार.....

जिसको आत्मा की गवेषणा करनी है उसे तो पर को छोड़ कर स्व में लीन होना ही पड़ेगा।

एक आदमी कुंआरा रहे तव तक उसे किसी की चिन्ता नही होती है। शादी हो जाती है तो दो से चार पैर हो जाते है— चिन्ता खड़ी हो जाती है— अव क्या करना ? मां भी कहने लगती है—वेटा, अव तो कुछ कमाने का प्रयत्न कर। दो से तीन हुए कि चिन्ता और वढ जाती है। गृहस्थ का पुष्प खिल जाता है। धीरे धीरे चार, पाच और छह कानखजुरे के पैर की तरह गृहस्थी बढ़ती जाती है। लडके वडे होते है। स्कूल में जाते है— सगाई संवंध भी होते है— कितनी चिन्ता वढ जाती है? ज्यादा लडकों वाला सुखी होता है या दुखी होता है? यह तो तुम अच्छी तरह जान सकते हो। जीवन मे सुखी होना है तो ब्रह्मचर्य को धारण करो। सच्चा सुख उसी मे है।

इस जंजाल से मुक्त वनना है तो अव भी अपनी जंजाल समेटो। सत्संग करो. कुसंग का त्याग करो। नंदमणियार भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वी वना और मर कर मैढक वनता है।

पौटिला को सत्संग होता है। सत्संग गाय के घी की तरह है। कुसंग प्याज की तरह है। प्याज की तरफ दृष्टि रखोगे तो आखो मे से पानी निकलेगा और घी की तरफ नजर करोगे तो शिथिल ही वनोगे। अत: सत्संग करो—भूल कर भी कुसंग मत करो। पौटिला महासतीजी के पास आती है और उपदेश सुनती है। महासतीजी उसे जड और चैतन की वात वताते है। जड में मत पडो और धर्म में मन को लगाओ। वही सच्चा सुख देने वाला है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. ९-१०-६८

[१०४]

साध्वीजी पौटिला को धर्म सुनाती है। जले हुए व्यक्ति को जैसे राल का मल्हम शाति देता है वैसे ही धर्म भी मनुष्य को शांति देता है। मनुष्य मे ही यह शक्ति है कि वह धर्म का आचरण कर सकता है। देवताओ मे इतनी शक्ति होती है कि वे एक चिमटी वजाओ उतने मे तो सारे जम्बू द्वीप के सात चक्कर लगा कर आ सकते है। वह भी मनुष्य के सामने हार जाता है। देवता मे इन्द्रिय जन्य सुख वहुत है, पर उनमे आध्यात्मिक सुख विल्कुल नही होता है।

उनमे तीन ज्ञान—मति—श्रुति और अवधि—होते है। परन्तु मनपर्यय और केवल ज्ञान उनको नही हो सकता। मनुष्य के भी तीन भेद है—सम्मूर्च्छिम, गर्भज और युगलिया। सम्मूर्च्छिम और युगलिया को भी ये दो ज्ञान नही हो सकते है। गर्भज मनुष्य मे भी पर्याप्ता वाले को ही होते है। उनमे भी असख्याता वर्ष वाले को नही संख्याता वर्ष वाले को ही होता है। संख्याता मे भी जो समकिती होते है उनको ही होता है। समकिती मे भी जो सर्व विरति होते है उन्हे ही यह होता है। प्रमत्त संयत्ति को नही होता है। जैसा कि कहा है—

**इड्ढीपत्त अपमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जतग संखे-
ज्जवासाउय कम्म भूमिय गब्भवक्कतिय मणुस्साणं, नो अणिड्ढि-
पत्त अपमत्त संजय समदिट्ठि पज्जत्तग संखेज्ज, वासाउय कम्मभूमिय
गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं, मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ।**

ऋद्धिवान अप्रमत्त समदृष्टि, संख्याता वर्ष आयुष्यवाला, पर्याप्ता गर्भज मनुष्य को ही मन.पर्ययज्ञान होता है। देवता उसे प्राप्त नही कर सकते है।

अप्रमत्त दशा देवता की नहीं होती। प्रमाद आत्मा का शत्रु है। वह आत्मा को आगे वढ़ने से रोक देता है। प्रमाद से कर्मो का वल प्रवल होता है और आत्मा कमजोर होता जाता है। अतः जागृत रहने की जरूरत है। जहा जहा प्रमाद होता है वहां वहां भय रहता है।

आदमी कारखाने मे काम करता है तो वहां जागृत रहता है, जागृत न रहे तो मरने का भय रहता है—कभी भी हाथ—पैर मशीन मे आ सकते है। विजली के तार हाथ मे लग जायं तो मौत हो जाती है, उसको भी कोई दूसरा छू ले तो उसको भी करंट लग जाता है। इस तरह असावधानी से तो कदम कदम पर मौत का भय रहता ही है। रोटी सिगडी पर पक रही है, ध्यान न रखोगे तो जल जायगी। अतःसावधानी तो सव जगह रखनी पडती ही है। वही—चौपडा लिखो या माल दो तो उस समय तुम कितनी सावधानी रखते हो? इसी तरह आत्म

[illegible]

मज्जं विसय कसाया निद्दा विगहा य पंचमी भणिया।
ए ए पंच पमाया जीवा पाडंति संसारे।

मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा ये पांच प्रमाद हैं, जो जीव को दुर्गति में डाल देते हैं। प्रमाद में आदमी पुरुषार्थ नष्ट कर डालता है। अतः सो सावधानी रखो कि [illegible] हैं, [illegible] बिल्कुल नष्ट हो जाता है। और फिर तुम उसपर अफसोस करने लगते हो कि मेरा माल चला गया। पर यह माल तो पराया है, तुम्हारा नहीं है। जो माल तुम्हारा है उसकी क्या परवाह कर रहे हो? कहो-भाई- सामायिक क्यों नहीं करते हो? क्या समय नहीं मिलता? समय तो मिलता है, पर प्रमाद लगा रहता है अतः नहीं कर पाते हो। निन्दा करने के बजाय अगर सामायिक में बैठ कर नवकार का जाप करो तो लाभ हो होगा। समय तो रुकता नहीं है। रात और दिन तो चले जा रहे हैं। कोई उसे रोक नहीं सकता। फिर इस कीमती समय को क्यों गुमा देते हो? कांच के टुकड़ों में क्यों लुभा रहे हो?

एक छोटी लड़की खेलते खेलते कांच के टुकड़े इकट्ठे करती है। शाम को सोती है तो वह अपनी जेब में ही उन्हें भर कर सो जाती है। उसका पिता यह देखता है तो वह उन्हें निकाल कर बाहर फेंक देता है। सुबह लड़की जागती है तो वह अपनी जेब खाली देखती है। वह पुनः जेब में कांच के टुकड़े भर लेती है। पिता कहता है—तू यह क्या कर रही है? कहीं हाथ में चुभ जायेंगे तो खून निकल जायगा?

लड़की कहती है—तुम भी तो नोट भर रहे हो। मैं अपनी जेब में कांच भर रही हूं और तुम नोट भर रहे हो। दोनों में भेद क्या है?

[illegible]

एक बार सेठानी ने सेठ से कहा—तुम उपाश्रय में तो आओ—कभी तो व्याख्यान सुन लिया करो। सारे दिन दुकान पर ही बैठे रहते हो।

सेठ अगमलाल कहता है—मुझे फुरसत नहीं है। जिसे फुरसत होती है वही उपाश्रय मे जाता है।

नाम तो अगमलाल पर काम कैसा है उनका? ५० लाख की सम्पत्ति है—घर मे पति पत्नी के सिवाय तीसरा कोई नही है। सेठानी कहती है—अब तो यह जंजाल छोडो और उपाश्रय मे आना शुरु करो। सेठ कहता है। इसे तू क्या समझेगी? क्यो नाहक माथा मारती है? तू तेरा किया कर, मै मेरा कर लूगा।

सेठानी कहती है—करने योग्य तो यही है। न करने योग्य काम अब क्यो कर रहे हो? कौन लडका है जो कुंआरा रह जायगा?

मुझे तेरा उपदेश नही सुनना। तू जाया कर! तुझे कौन रोकता है? स्वर्ग से लेने तुझे विमान आवेगा तो मै भी उसकी डाडी पकड लूगा। तेरे साथ मै भी वहां चला जाऊंगा। पैसो मे कितना मोह होता है?

देश परदेशे मोटा मनाया, तेमां साचू कहो शुं कमाया?

सेठ कहता है—देखती नही? रोज कितने तार—टपाल आते है— कारखाने चल रहे है। उनको देखू कि उपाश्रय मे आऊ। लेकिन ज्ञानी कहते है— यह कमाई तेरी नही है। करने का काम तुम नही कर रहे हो। यह तो दुख मे फसने का ही काम कर रहे हो। इससे सुख मिलने वाला नही है। अतः बाह्याडंबर मे मत पडो। ये मकान—दुकान या नोटो के बडल तुम्हे तार नही सकेगे। चक्रवर्ती भी अपनी ऋद्धि छोडकर चले गये तो तुम्हारी क्या बात है? बाणव्यतर देवी के सिर की बिन्दी की कीमत ही इतनी होती है कि उसमे सारे जम्बूद्वीप की ऋद्धि समा जाती है। तुम्हारे पास क्या ऋद्धि है? फिर मोह क्यो कर रहे हो?

लेकिन सेठ समझता नही है। वह तो अपने को ही ऊंचा समझता है। मै कोई कम थोडे ही हूं? ५० लाख का आदमी हू।

आ दुनिया मां अभिमान तो कदीन करशो कोय।
सेर तणे माथे कदी सवा सेर पण होय।

सेठ अपने काम मे ही व्यस्त रहता है। लेकिन सेठानी रोज उपाश्रय मे जाती है और व्याख्यान सुनती है। गरीबो को दान भी देती है। एकवार एक प्रभाविक साधु फिरते फिरते वहा आते है। सेठानी व्याख्यान सुनकर मुनि से कहती है— मुझे कोई दुख नही है, वीतराग धर्म मे मेरी दृढ श्रद्धा है। दुख मुझे इसीका है कि मेरे पति कभी उपाश्रय मे नही आते है। अगर आपके उपदेश से उनका

हृदय वदल जाय तो उनका भी भला हो जायगा।

महाराजने कहा—उनको कहना महाराज सा. ने याद किया है। दिन में २ वजे वे यहां आ सकते है। सेठानी खुशी खुशी घर गई। सेठ खाने आये तो सेठानी ने कहा—महाराज तो तुम्हें जानते हैं।

सेठ—कौन !

सेठानी—आचार्य संभूति विजय।

सेठ बोला—मुझे कौन नही जानता ? पैसों की जरूरत हुई होगी, तभी मुझे याद किया है।

सेठानी—महाराज ने कहा है दिन में २ वजे आ सकते हैं।

सेठ यथा समय उपाश्रय में पहुंच जाता है। महाराज पूछते है—कहो कारोवार कैसा चल रहा है?

सेठ—खूव जोरो से चल रहा है।

महाराज—तुम्हारे पिता तो वहुत आते थे—तुमको नही देखा तो सोचा—क्या वात है? मिले तो सही। मुझे एक वात तुमसे पूछनी है। तुम्हारे दिल में अव क्या इच्छा वाकी रही है?

सेठ—मुझे तो करोडपती वनने की इच्छा है।

महाराज—वन सकते हो। आठ दिन का कोर्स है—अगर तुम मेरे साथ साधना कर सको तो यह इच्छा भी पूरी हो सकती है। ८ दिन तक आयंविल करना पडेगा और ब्रह्मचर्य का पालन करना पडेगा। रात्रि भोजन का और चाय का तो अपने आप त्याग हो गया। वोलो तुम यह कर सकोगे? जहां पैसा मिलता हो वहा तो सव कुछ करने को आदमी तैयार हो जाता है। सेठ भी तैयार हो गया। महाराज कहते है—कल से वरावर इसी समय ८ दिन तक आते रहना। मुझे भी तुम्हारे साथ वैठना पड़ेगा। शर्त इतनी ही है कि जो भी मिले उसका आधा भाग मुझे देना होगा। वीच मे व्यवधान नहीं होना चाहिये। सेठ भागीदारी के लिये भी तैयार हो गया।

सेठ घर आता है। सेठानी पूछती है—क्या कहा महाराज ने? सेठने कहा—तुझे क्या मतलव है? मै उनसे मिल आया हूं और कल फिर जाऊंगा। सेठ दूसरे दिन यथा समय उपाश्रय जा पहुचा। साधुजीने उसे सामायिक कराई और एक कमरे मे वैठा कर 'ॐ असि आउसाय नमः' इस मंत्र का जाप करने को कहा।

अ—अरिहन्त
सि—सिद्ध
आ—आचार्य
उ—उपाध्याय
सा—साधु-साध्वी

एक बार सेठानी ने सेठ से कहा—तुम उपाश्रय में तो आओ—कभी तो व्याख्यान सुन लिया करो। सारे दिन दुकान पर ही बैठे रहते हो।

सेठ अगमलाल कहता है—मुझे फुरसत नही है। जिसे फुरसत होती है वही उपाश्रय में जाता है।

नाम तो अगमलाल पर काम कैसा है उनका? ५० लाख की सम्पत्ति है—घर मे पति पत्नी के सिवाय तीसरा कोई नही है। सेठानी कहती है—अब तो यह जंजाल छोडो और उपाश्रय मे आना शुरु करो। सेठ कहता है। इसे तू क्या समझेगी? क्यो नाहक माथा मारती है? तू तेरा किया कर, मै मेरा कर लूगा।

सेठानी कहती है—करने योग्य तो यही है। न करने योग्य काम अब क्यो कर रहे हो? कौन लडका है जो कुंआरा रह जायगा?

मुझे तेरा उपदेश नही सुनना। तू जाया कर! तुझे कौन रोकता है? स्वर्ग से लेने तुझे विमान आवेगा तो मै भी उसकी डाडी पकड लूगा। तेरे साथ मै भी वहां चला जाऊगा। पैसो मे कितना मोह होता है?

देश परदेशे मोटा मनाया, तेमां साचू कहो शुं कमाया?

सेठ कहता है—देखती नही? रोज कितने तार—टपाल आते है— कारखाने चल रहे है। उनको देखू कि उपाश्रय मे आऊं। लेकिन ज्ञानी कहते है— यह कमाई तेरी नही है। करने का काम तुम नही कर रहे हो। यह तो दुख मे फसने का ही काम कर रहे हो। इससे सुख मिलने वाला नही है। अतः बाह्याडंबर मे मत पडो। ये मकान—दुकान या नोटो के बंडल तुम्हे तार नही सकेगे। चक्रवर्ती भी अपनी ऋद्धि छोडकर चले गये तो तुम्हारी क्या बात है? वाणव्यतर देवी के सिर की बिन्दी की कीमत ही इतनी होती है कि उसमे सारे जम्बूद्वीप की ऋद्धि समा जाती है। तुम्हारे पास क्या ऋद्धि है? फिर मोह क्यो कर रहे हो?

लेकिन सेठ समझता नही है। वह तो अपने को ही ऊंचा समझता है। मै कोई कम थोडे ही हू? ५० लाख का आदमी हूं।

आ दुनिया मां अभिमान तो कदीन करशो कोय।
सेर तणे माथे कदी सवा सेर पण होय।

सेठ अपने काम मे ही व्यस्त रहता है। लेकिन सेठानी रोज उपाश्रय मे जाती है और व्याख्यान सुनती है। गरीबो को दान भी देती है। एकवार एक प्रभाविक साधु फिरते फिरते वहा आते हैं। सेठानी व्याख्यान सुनकर मुनि से कहती है— मुझे कोई दुख नही है, वीतराग धर्म मे मेरी दृढ श्रद्धा है। दुख मुझे इसीका है कि मेरे पति कभी उपाश्रय मे नही आते है। अगर आपके उपदेश से उनका

हृदय बदल जाय तो उनका भी भला हो जायगा।

महाराजने कहा—उनको कहना महाराज सा. ने याद किया है। दिन में २ बजे वे यहा आ सकते है। सेठानी खुशी खुशी घर गई। सेठ खाने आये तो सेठानी ने कहा—महाराज तो तुम्हे जानते है।

सेठ—कौन!

सेठानी—आचार्य संभूति विजय।

सेठ बोला—मुझे कौन नही जानता? पैसो की जरूरत हुई होगी, तभी मुझे याद किया है।

सेठानी—महाराज ने कहा है दिन मे २ बजे आ सकते है।

सेठ यथा समय उपाश्रय में पहुच जाता है। महाराज पूछते है—कहो कारोबार कैसा चल रहा है?

सेठ—खूब जोरो से चल रहा है।

महाराज—तुम्हारे पिता तो बहुत आते थे—तुमको नही देखा तो सोचा—क्या बात है? मिले तो सही। मुझे एक बात तुमसे पूछनी है। तुम्हारे दिल में अब क्या इच्छा बाकी रही है?

सेठ—मुझे तो करोडपती बनने की इच्छा है।

महाराज—बन सकते हो। आठ दिन का कोर्स है—अगर तुम मेरे साथ साधना कर सको तो यह इच्छा भी पूरी हो सकती है। ८ दिन तक आयंबिल करना पडेगा और ब्रह्मचर्य का पालन करना पडेगा। रात्रि भोजन का और चाय का तो अपने आप त्याग हो गया। बोलो तुम यह कर सकोगे? जहा पैसा मिलता हो वहा तो सब कुछ करने को आदमी तैयार हो जाता है। सेठ भी तैयार हो गया। महाराज कहते है—कल से बराबर इसी समय ८ दिन तक आते रहना। मुझे भी तुम्हारे साथ बैठना पडेगा। शर्त इतनी ही है कि जो भी मिले उसका आधा भाग मुझे देना होगा। बीच मे व्यवधान नही होना चाहिये। सेठ भागीदारी के लिये भी तैयार हो गया।

सेठ घर आता है। सेठानी पूछती है—क्या कहा महाराज ने? सेठने कहा—तुझे क्या मतलब है? मै उनसे मिल आया हूं और कल फिर जाऊगा। सेठ दूसरे दिन यथा समय उपाश्रय जा पहुचा। साधुजीने उसे सामायिक कराई और एक कमरे मे बैठा कर 'ॐ असि आउसाय नमः' इस मंत्र का जाप करने को कहा।

अ—अरिहन्त
सि—सिद्ध
आ—आचार्य
उ—उपाध्याय
सा—साधु-साध्वी

इस मंत्र में सारी पचपरमेष्टी आ गई है। महाराजने कहा—आठ दिन तक इसका जाप करो। यो करते करते ७ दिन पूरे हो गये। कल आखिरी दिन है। साधु जी ने कहा—आज मुझे एक बात तुम्हे बतानी है।

सेठ बोला—क्या बात है?

साधुजीने कहा—तुम्हारी साधना कल पूरी हो रही है। उसका फल अवश्य मिलने वाला है। जो कुछ मिलेगा उसमे आधी भागीदारी मेरी भी है। पर मैं तो साधु हू– पैसा पास मे रख नही सकता हूं। मेरे हिस्से मे जितने रुपये आवे उनका तुम रत्न ले लेना और एक लकडी मे बद करा देना। अगले भव मे जब हम दोनो मिलेगे तब तुम मुझे अपनी यह लकडी दे देना। इस भव मे तो वह तुम्हे ही रखनी पडेगी। सेठ बोला—महाराज! आपकी लकड़ी मै अभी तो रख लूगा, पर अगले भव मे अपने साथ कैसे ले जा सकूगा? यह आप कैसी बात कह रहे है?

साधुजी—तो क्यो तुम इतना इकट्ठा कर रहे हो? जब तुम अपने साथ नहीं ले जा सकोगे तो फिर नये नये कारखानें खोलने की क्या जरूरत है? तुम्हारे लिये तो इतना बहुत है। ५० लाख तो है अब करौडपती बन कर भी क्या करोगे? साथ मे तो तुम ले जा नही सकोगे। अगर ले जा सको तो मेरी लकडी भी साथ मे अवश्य लेते आना।

आदमी पैसों के लिये सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। स्त्री—मा-बाप, पुत्र—सभी को छोडकर परदेश कमाने चले जाते हो तो धर्म के लिये भी कुछ क्यो नही करते हो?

महाराजने सेठ की आंखे खोल दी। सेठको लगा कि करने योग्य काम तो अभी तक मैने किया ही नही है। उसने साधुजी से कहा—आपने करौड रुपया तो दिया नही है, पर मेरी आखे अवश्य खोल दी है। करौड रुपया मिल जाने पर मुझे जितनी खुशी होती उससे भी हजार गुना ज्यादा खुशी आज मुझे हो रही है। परिग्रह रूपी सर्प को मै अब अपने घर मे लाना नही चाहता। जो है उसका भी दान कर देना चाहता हूं। अब से मै नया कारोबार कोई भी चालू नही करूगा। परिग्रह का परिमाण कर वह अब सुख अनुभव करने लगता है। अब वह नियमित उपाश्रय मे आने लगता है। अष्टमी चतुर्दशी को पौषध करता है। सेठानी सोचती है—ये तो देर से आये और मेरे से भी आगे निकल गये है। कभी कभी तो सेठ रात मे भी सोते नही और सामायिक कर के बैठ जाते। सेठानी कहती—नीद तो पूरी निकाला करो। नही तो तबियत बिगड जायगी। सेठ कहता—तू चूप रहा कर, मुझे मेरा कर लेने दे। प्रभु भजन मे प्रमाद का क्या काम है?

विश्ववर्ति विघ्न हर मारा हृदय मां ठर
ध्यान मां अरज धर, दोष मारा दूर कर
त्रिभुवन तणा ताज अरज सुणजे आज.
राखजे शिष्यो नी लाज,
एक मां अनेक तूं, अनेक मां हि एक तूं
प्रीते तो नमीये तूने चित्ते चिन्तवीये
विश्वेश्वर सुखकर दुःखहर देव.......

हे देव! तू दुःखहारी है—सुखकारी है। एक ही लगन उसे लग जाती है। क्या ऐसी लगन मुझे भी लग नहीं है? यह कहता है—हे देव! मैं तुझे प्रेम से भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूं—तू तो सिद्ध बुद्ध और मुक्त है—मुझे भी अब वैसा बना दे।—

जय जय जगपति अगम छे तारी गति
मंद मंद मारी मति धारी न सकाय धृति
फलिन नकाय कृति चले जो तारा मां वृत्ति
दोष नव रहे रति, अपार तूं अगम्य तूं अवाच्य तूं

तेरी ही जय है—तेरी ही विजय है। क्योंकि तुमने ही अपने सभी कर्म नष्ट कर दिये है—वीतराग बन गये हो—मैं तो अभी मूढ हूँ। सम्यग्दर्शन का एक भी नही आता है। धीरज भी मुझ में नहीं है। आज सामायिक की या माला फेरी तो उसका फल भी आज ही मिल जाना चाहिये। ऐसा कैसे हो सकता है? कुछ भी धैर्य न रखो तो फल कैसे मिलेगा?

एक लडका खेत में बीज बोता है— कुछ दिनो बाद अकुर पैदा हो जाते है। वह रोज खेत पर जाता है, पर देखता है ये पौधो बढते क्यो नही है? आलसी क्यो हो गये है? वह उन्हे खीच खीच कर ऊपर उठाता है—जड से उन्हे उखाड देता है। ऐसा करते करते उसे बहुत देर हो गई। जब वह घर गया तो पिता ने पूछा आज खेत पर बहुत काम किया लगता है। कितनी देर से आये हो? वह बोला आज तो बहुत काम करना पडा। पौंवे सभी आलसी हो गये थे, ऊपर बढते ही नही थे अतः मैने उन्हे खीच कर ऊपर कर दिया। इसीलिये इतनी देर हो गई।

पिता बोला— यह क्या किया? जो बीज बोये थे वे भी बेकार चले गये। फल ऐसे ही नही आ जाते? उसमे भी कुछ धीरज तो करनी ही पडती है। तुम भी आज एक माला फेरो— शातिनाथजी साता करो और तत्क्षण फल भी चाहो तो यह कैसे हो सकता है? धीरज रखोगे तो फल अवश्य मिलेगा ही। भगवान ने तो अखूट धीरज

बताई है। ज्ञातासूत्र मे मोर के अडो का वर्णन आता है– दो मित्र मोर के अंडे ले गये। एकने उसे मुर्गी के यहां रख दिया, जो अपने दूसरे अडों को भी पाल रही थी। दूसरे ने उसे देख कर सोचा इस छोटे से अंडे मे मोर रहा हुआ है-वह उसे कान से लगाता है-ऊपर नीचें करता है। ऐसा करते करते वह फूट गया और उसका रस निकल गया। दूसरे ने सोचा अंडे मे से मोर तो निकलेगा ही। कुछ दिनो वाद सचमुच मोर पैंदा हुआ। उसने उसे ऐसी कला सिखाई कि उससे वह बहुत धन कमाने लग गया। धीरज रखा तो उसे यह फल मिला। इसी तरह धर्म मे भी दृढ़ श्रद्धा रखोगे तो उसका फल भी अवश्य मिलेगा। भगवान ने दर्शन को भी परिषह कहा है। धर्म मे भी धैर्य की तो जरूरत होती ही है। जीवन भर भक्तामर का पाठ करो और माला फेरो, पर श्रद्धा दृढ न हो तो उसका फल कहां से मिलेगा? भगवान तो अगम्य है- अगोचर है वह तो हृदय मे ही दिखाई दे सकता है– चर्मचक्षुओ से वह देखा नही जा सकता। अतः साधक कहता है–हे प्रभु! तू मेरे हृदय मे विराज़मान हो। मेरे दोष दूर कर–अन्तराय मिटा। चौविहार उपवास करते हो तो घर वाले कहते है– पानी तो खुला रख लिया करो–ये सब अन्तराय है। ऐसा कहने वाले तो मिलते है– पर यह कोई नही कहता कि तुम कर रहे हो तो हम भी करते है। दिवाली आ रही है– मिठाई की वाधा मत ले लेना। ऐसा कहने वाले तो मिल जायंगे। लेकिन डोक्टर मना कर दे तो क्या करोगें? नही खाते हो। खाना चाहते हो तब भी घर वाले नही देते– क्योंकि डोक्टर ने मना किया है। इस तरह तुमने अब तक शरीर को ही देखा है, आत्मा को तो देखा ही नही है। देखा होता तो आज ऐसी हालत कभी नही होती।

तीन दिन वाहर गांव जाना हो तो घर वाले मना नही करेगे – पर अट्ठम करना चाहो तो वे मना कर देगें। आज उपवास कर लो। कल ठीक रहे तो आगे देखना–एक साथ अट्ठम क्यों करते हो? यो धर्म मे तो गति धीमी रखोगे– पर बस पकडनी हो तो भाग कर चलोगे! कही चली न जाय–वह आ रही है– साथ मे औरत वच्चे हो तो उनको भी भगाते हो–वहां गति तेज करते हो, पर धर्म मे मंद गति क्यो चलते हो? यहा भी सबको क्यों नही भगाते? समय व्यतीत होता चला जा रहा है। क्या तुम्हारी वस यही रहने वाली है? धर्म करने मे सलाह लो पर धर्म से विमुख होने मे सलाह क्यो मानते हो? धर्म-कर्म मे किसी को भी दखल नही करना चाहिये। मेरी मैं जानता हूं – अभी तक मैंने तुम्हारा ही किया है अव तो मुझे अपना कर लेने दो। ऐसा विचार आता है तभी आत्मा आगे बढ सकता है।

साध्वीजी पौटिला से कहती है—धर्म करोगे तो सुख मिलेगा। इस संसार

में मूर्च्छित होने से तो दुख ही मिलेगा। वीतराग मार्ग पर चलने वाले और क्या कह सकते है ? जो माल उनके पास है वही तो दिखावेगें। रत्न त्रय की आराधना करो—तुम्हारा भी भव-चक्र मिट जायगा। पोटिला कहती है— मुझे आज आपने सत्मार्ग बता दिया है। मेरी दृष्टि खुल गई है। मै अपना जीवन ऐसा ही बनाऊंगी। आगे क्या होना है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १०-१०-६८

[१०९]

पोटिला सुव्रताजी साध्वीजी के पास आती है। वे उसे बोध देते हुए कहते है—

काम भोग शल्य जैसे है— विष मय है—और किंपाकफल की तरह परिणाम मे दुख दायी है। यह सुन कर पोटिला सोचती है कि समझने योग्य तो यही है।

बलती जलती आत्मा संत सरोवर जाय
समकित केरी लहर में स्वरूप जिकोडा खाय।

अनादि काल से जीव आधि-व्याधि और उपाधि मे पडा हुआ है। इनसे दूर रहने वाले संत होते है। जो सन्तों के पास चले जाते है, उन्हे फिर संसार अच्छा नही लगता। उनकी रुचि मोक्ष की तरफ हो जाती है।

आस्तामचिन्त्य महिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहत पान्थः जनान्निदाधे
प्रीणाति पद्मसरस सरसोऽनिलोऽपि।

जीव अनादि काल से है और कर्म भी अनादिकाल से है। उनसे मुक्त होने का जो मार्ग बताते है वे सन्त कहे जाते है। पैसे वाला होना सुलभ है, राज्य मिल जाना भी सुलभ है, पर सन्त-समागम दुर्लभ कहा गया है।

जीव स्वभाव मे रहता है तब तक वह दुखी नही होता है। पर-भाव मे जाता है तब वह दुखी होता है और राग तथा द्वेष का बंध करता है। कर्मो का बंध करने से कर्म सत्ता मे आता है और यथा समय उदय मे आता है। कर्म उदय में आता है तो उसका फल तो भोगना ही पडता है। तब वह कर्म छूटता है। चलित कर्म की निर्जरा होती है। अचलित कर्म आत्मा से जुडे रहते है। धीरे धीरे आंशिक रूप से कर्मो का क्षय होना निर्जरा है और सम्पूर्ण कर्म रहित हो जाना मोक्ष कहा जाता है। मोक्ष हो जाने पर जीव वापस आता नहीं है। मोक्ष मे जाने पर भी जीव वापस संसार मे आ जाय तो वह कर्मो से रहित

कैसे कहा जा सकता है? जब तक मोक्ष नही होता तब तक जीव का भ्रमण मिटता नही है। मोक्ष ही साध्य है। उसको पाये बिना जीव का कल्याण नही हो सकता है।

ज्ञान दर्शन चारित्र और तप की सम्पूर्ण आराधना न हो तब तक मोक्ष नही मिल सकता है।

आत्मा को कोई बनाने वाला या मिटाने वाला नही है। वह स्वयं अपना कर्ता और भोक्ता है। वह अविनाशी है–कभी मिटने वाला नही है। सबसे पहले समझने वाली बात तो यही है। प्रमाद मे मत पडो। विषय सेवन करना, विकथा करना– चीन मे क्या हो रहा है? रूस क्या कह रहा है? आदि बाते करना भी विकथा है। उपेक्षा भाव रखना यह सब प्रमाद ही कहा जाता है। प्रमाद आत्मा का शत्रु है। वह आत्मा को धर्म की तरफ रुचि नही लेने देता है। स्व कथा मे आना धर्म है। अपूर्व भाव प्रकट करना धर्म है। सद्‌गुरु ही ऐसा अपूर्व भाव प्रकट कर सकते है—

गुरु गोविन्द दोनो खडे किसको लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की गोविद दिया बताय।

गुरु प्रत्यक्ष निमित्त होते है। वीतराग तो परोक्ष होते है। पर उनकी पहिचान कराने वाले गुरु ही होते है। गुरु ही आत्मा को पवित्र बनाने का उपदेश देते है।

गुरु विना को नही मुक्ति दाता
गुरु विना को नहि मार्ग गन्ता।
गुरु विना को नहि जाड्य हर्ता
गुरु विना को नहि सौख्य कर्ता।

गुरु ही मुक्ति दाता है–गुरु ही मार्ग बताने वाले–उपकारी है। उनका योग मिलना भी महान पुण्य का काम है। गुरु वचनो मे श्रद्धा रखने वाला ही अपना कल्याण कर सकता है। गुरु कौन हो सकते है? जो निर्गृन्थ होते है वे ही गुरु हो सकते है। मिथ्यात्व की गाठ उनको नही होती। जो किसी तरह की सम्पत्ति अपने पास नही रखते वे ही निर्गृन्थ गुरु होते है।

पर के साथ जो मेल कर लिया है यही मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व जब तक दूर न हो तब तक जीव का उद्धार नही हो सकता है। सद्‌गुरु का संग करो तो यह गांठ मिट सकती है। जहां–तहां मत भटको। कुगुरु के पास मत जाओ–सद्‌गुरु का संग करोगे तो रत्न को प्राप्त कर सकोगे —

हीरा नो वेपार भाई तुं तो जवेरात नो जाणकार भाई
तारे हीरा नो वेपार जी
कई मफतिया फरे वजारे बेससे झाली तारा बारने
मोढुं जोइने खोलजे तारी तिजोरी ना द्वार...भाई तारे..

सच्चा हीरा तो जवेरी के पास ही मिलता है। काच के टुकडे वेचने वाले तो कई होते है– पर सच्चे हीरे के व्यापारी तो कुछ ही होते है। हीरा लेने कई लोग आते है, पर जौहरी सूरत देख कर ही जान लेता है कि लेने वाला कौन है? और कौन खाली सिर फिराने वाला है। इसी तरह ज्ञानी भी देख लेते है कि कौन पात्र है और कौन अपात्र है?

पात्रविना वस्तु नवरहे पात्रे आत्मिक ज्ञान।
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मति मान।

अगर तुम्हे भी पात्रता लानी है तो काम–क्रोधको नष्ट करो। ब्रह्मचर्य का सेवन करो तभी आत्मा का ज्ञान कर सकोगे। ब्रह्मचर्य से ही शक्ति पैदा होती है। विपय–वासनाओ के सेवन से कोई जीव आगे नही आ सकता। काम भोग का मार्ग तो ससार वढाने का मार्ग है। उससे मोक्ष कैसे मिल सकता है? रजनीश अगर यह कहे तो उसे क्यो सुनते हो! हमारे तीर्थकरो ने तो काम भोग को अधोगति का ही मार्ग कहा है।–

खाणी अणत्थाण उ काम भोगा

अगर ये मोक्ष देने वाले होते तो वे इन्हे अनर्थ की खान क्यो कहते? जीव अनादि से पर मे पड़ा हुआ है– विषय–भोगो मे आसक्त रहा है। अगर काम भोग ही मोक्ष देने वाले होते तो जीव अभी तक मोक्ष मे क्यो नही जा सका? अतः यह स्पष्ट है कि काम–भोग मे मोक्ष नही है। मोक्ष तो त्याग में ही है। तभी तो तीर्थंकरो को भी घर वार का त्याग कर साधु वन कर त्याग का मार्ग स्वीकार करना पडता है। वे त्याग मार्ग पर चलते है और दूसरो को भी उस पर चलाते है। उन्हे तो वे (रजनीश) अत्याचारी साधु कहते है। कैसी विचित्र वात कहते है? गुरु कैसे होने चाहिये? निर्ग्रन्थ ही गुरु हो सकता है। पाच महाव्रत का जो पालन करता है वही सच्चा गुरु कहा जा सकता है।

ब्रह्मचर्य रहित जे गुरु होय तो गुरु थाये जग सहुकोय।
गृहस्थ गुरु गृहिने शुं करे, लोह संगे पत्थर केम तरे।
तारे श्री गुरु महाव्रत धार, पंडितजन एम करे विचार।
कनकरत्न धन ममता तजे, लोभ छंडीने सिद्धने भजे।

सद्गुरु राग–द्वेष और मोह को संसार का कारण वताते है। इनसे मुक्त

हो ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना करोगे तो मोक्ष को प्राप्त कर सकोगे। लेकिन रजनीशजी कहते है (Sex) काम वासना पैदा करो, यही मोक्ष का मार्ग है। वीतराग के विरोधी ऐसे लोग दुनिया का क्या भला कर सकेगे ? उनका तुम भी व्याख्यान सुनने जाते हो। तुम्हे कोई कहनेवाला भी है या स्वच्छंदी बन गये हो ?

दो साल का बालक अपने हाथ मे चाकू लेकर बैठ जाय तो तुम क्या समझोगे ! ऐसा ही हाल अज्ञानी लोगो का भी है। वे क्या कर रहे है ? इसका भी उन्हे भान नही होता है–। भगवान ने तो कहा है ।

विसंतु पियं जह कालकूडं हणाय सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसो ऽ वि धम्मों विस ओववन्नो, हणाय वेयाल इवाविवन्नो।

सिर काटने वाला दुश्मन उतना बुरा काम नही करता जितना कि कुगुरु बुरा करता है।

विषय का सेवन करना मोक्ष देने वाला है ऐसा कहने वाला कुगुरु है। उसको इसका फल तो मिलेगा ही। आज वे भले लाउडस्पीकर मे बोल कर खुश हो ले, पर भावी जीवन मे उन्हे जीभ भी मिलने वाली नही है। त्याग मे पाप कहना और भोग मे मोक्ष बताना कैसी विचित्र मान्यता है उनकी ?

सुव्रताजी का उपदेश सुन कर पौटिला समझ जाती है कि करने योग्य तो यही है। जो ब्रह्मचारी होता है वही सच्चा मार्ग बता सकता है। ब्रह्मचर्य रहित व्यक्ति खुद भी डूबता है और दूसरो को भी डुबा देता है।

दो कटौरी मे दूध भरा हुआ है। एक मे आकडे का दूध है और दूसरी मे भैस का। लडके को पता नही, वह तो दोनो को दूध ही मानता है। परन्तु उसे बताना तो पडेगा ही कि यह दूध भैस का है और यह दूध आकडे का है। इसको पीओगे तो मर जाओगे और उसका पान करोगे तो तंदुरुस्त बनोगे। यो समझाना बुरा नही है। ऐसा कहना नीदा नही है। हमको भी रजनीशजी से द्वेष नही है। लेकिन वस्तु का स्वरूप तो समझाना ही चाहिये। क्योकि वर्तमान मे पाखंडियो का जोर कुछ कम नही है।—

पाखंडियों नो संग न करशो ऐवी छे जिन नी वाणी
जड चैतन ना भेद बतावी चैतन नी किंमत जाणी
डाह्या २ ना आ कलयुग मां उतरी गया छे पाणी
जगतमां सुण जो संतनी वाणी (२)

ज्ञानी कहते है–सम्यक्त्व के भी ५ अतिचार कहे गये है। जिन्हें पाताल कलश की उपमा दी गई है। पाताल कलश कैसे है ? जिसकी ठीकरी ही १० हजार योजन जैसी मोटी (जाडी) है। वैसे ये ५ अतिचार है। शंका, कांक्षा, वितिगिच्छा परपाखंडी प्रशंसा और परपाखंडी परिचय,

इनको जानना चाहिये, पर उनका आचरण नही करना चाहिये।

१ शका—जिन वचन मे शंका करना।

२ काक्षा—मिथ्यात्व सुनने की इच्छा करना।

कई लोग कहते है सुनने मे क्या है? सुनने से जहर चढता है। रजनीशको सुनकर तुमने क्या किया? कोई वहा सुनते सुनते भी खडा हुआ?

३ वितिगिच्छा—'करणी के फल मे सन्देह करना। इतना किया फिर भी फल कुछ नही मिला। आचाराग मे कहा है।

वितिगिच्छा समावन्नाणेणं लभावन्नाणं अपाणेणं नो लभति समाधि

वितिगिच्छा मे जो संदेह करता है वह कभी समाधि को प्राप्त नही कर सकता है।

४ पर पाखंड प्रशसा—पर पाखडी की प्रशसा करना। एक बार तो सुनो। बहुत अच्छा कहते है। क्या कहते है। (Sex) भोग करो...मिथ्यात्व की बाते ही कहते है। उसको समझते भी हो या गर्डारिया प्रवाह की तरह ही चले जा रहे हो!

५ परपाखंडी परिचय—उनका परिचय करना भी समकित का अतिचार कहा गया है। सम्प्रदाय वाद या किसी तरह का वाद नही होना चाहिये। ऐसा कहते-कहते वे स्वयं अपना आश्रम खडा कर लेते है। इस खड्डे से निकल कर उस खड्डे मे गिरो, इससे क्या फायदा है?

अन्धो अन्धं पह नेन्तो दूर मद्धाण गच्छइ।
आवज्जे उप्पहं जन्तू अदुवा पन्थाणुगामिए।
एवमेगे नियागट्ठी, धम्म माराहगा वयं।
अदुवा अहम्म मावज्जे, न ते सव्वज्जुयं वए।

अज्ञानी और मिथ्यात्वी अपने को और साथ मे दूसरो को भी खड्डे मे डाल देता है। भोगी क्या उपदेश दे सकता है? क्या बीडी पीने वाला यह कह सकता है कि बीडी मत पीवो उससे केसर हो जायगा। वह तो उसके गुण ही बताएगा। चाय का प्रचलन जब शुरु किया गया तो कम्पनिया मुफ्त मे चाय के बंडल बाटती फिरती थी। आज तुम उसके आदी हो गये हो। बिना चाय के काम चलता नही है। व्यसन मे धर्म नही हो सकता। इसी तरह काम भोग मे भी धर्म नही हो सकता। धर्म तो त्याग मे है। स्वप्न मे भी भोग की इच्छा मत रखो। फिर भी कोई Sex काम को ही मोक्ष का द्वार कहे तो यह कैसी बात है? आस्रव द्वार को मोक्ष का द्वार कहना—जिस मार्ग से पाप आता है उसी मार्ग को मोक्ष का मार्ग कैसे कहा जा सकता है? आस्रव को रोक कर संवर में न आओगे तब तक मोक्ष कैसे हो सकेगा?

आस्रव निरोधो हि संवर

आस्रव का निरोध करना ही सवर है। संवर ही मोक्ष देने वाला है। आस्रव ससार बढाने वाला है। यह कितनी सीधी सादी बात है ।

परमत्थ संथवो वा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि।
वावन्न कुदंसणवज्जणा य सम्मत्त सद्दहणा।

उत्तरा० २८ अ.

निर्ग्रन्थ मत का परिचय करो। वह तो तुम करते नही हो और पर पाखडी का परिचय करते हो, जो कि नही करना चाहिये। अकार्य को कर रहे हो, कार्य को छोड रहे हो। बुद्धिमान कहे जाने वाले भी इसमे फंस जाते हैं। जिसकी पांख टूट जाती है उसे पाखडी कहते हैं। जिस पक्षी की पाख टूट जाती है वह फिर उड नही सकता है। ज्ञानी कहते है ज्ञान और चारित्र ये दो पख हैं। उनके बिना जीव उड नही सकता है-प्रगति नही कर सकता है। जैन पर दो मात्रा लगाई जाती है-उसे हटा दो तो जन हो जायगा-साधारण आदमी रह जाओगे परन्तु जब ज पर ज्ञान और चारित्र की दो मात्रा लगती है तभी वह जैन कहा जाता है। बोलने से कुछ नही होता है। महत्व तो आचरण का ही है।

कीहा सरसवाने किहा मेरुधीर, कीहां कायराने कीहां शूरवीर
कीहा सूवर्णथाली कीहा कुंभखंड, कीहां कोद्रवाने कीहां खीरमंड।
कीहां खीरसिंधु कीहां क्षारनीर, कीहां कामधेनू कीहां छागखीर।
कीहा सत्य वाचा कीहा कुडवाणी, कीहां रंकनारी, कीहां रायराणी
कीहां नारकी ने कीहां देव भोगी कीहां इन्द्र देही कीहां कुष्ट रोगी
कीहां कर्म घाती कीहां कर्म धारी नमो, वीर स्वामी भजो अन्य वारी।

कई लोग सर्व-धर्म-समभाव की बात कहते है-कहा सरसो और कहा मेरु पर्वत? कहा कायर कहां शूरवीर! कहा खीर और कहां खारा पानी? क्या इनकी तुलना आपस मे की जा सकती है? राजा की रानी कहा और गागुतेली की औरत कहा? कहा कर्म नष्ट करने वाले अरिहत और कहा कर्म करने वाले भोगी? क्या दोनो को समान कहे जा सकते है? अतः पाखडी का विश्वास मत करो। वे तुम्हारा आत्म-धन लूट लेने वाले है। जो माल तुम्हारे पास है उसे भी वे छीन लेगे, अतःउनका संग मत करो पहले अपने को बरावर समझो और फिर उनसे चर्चा करो। स्व को बरावर समझोगे तो उन्हे परास्त कर सकोगे। जाने मे कोई बात नही है-पर पक्के बन कर जाओ कच्चे रह कर मत जाओ। अन्यथा नुकशान तुम्हे ही होगा।

बातों से किसी का मोक्ष हुआ नही है और न होने वाला है। धर्म का

आचरण करोगे तभी कल्याण होगा। सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा मजबूत रखोगे तो तुम्हारा कल्याण अवश्य हो जायगा।

सुव्रताजी साध्वी पौटिला को मार्ग बताते है। धर्म का उपदेश देती है। उसे सुनकर पौटिला वारह व्रत अगीकार कर देश विरति श्राविका वन जाती है। सुनना तभी सार्थक होता है जब कि उसे जीवन मे उतार लिया जाय। पौटिला १२ व्रत स्वीकार कर लेती है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता० ११-१०-६८

[१०६]

ज्ञानियो के वचनो मे अनत हेतु और रहस्य भरे हुए है। वीतराग वाणी के समान और कोई वाणी नही है। इसमे जो स्नान कर लेता है वह पवित्र हो जाता है। महापुरुषो की उपदेश धारा अविरत रूप से प्रवाहित होती रहती है। उसको यथाशक्ति जो ग्रहण करना चाहे कर सकता है। महापुरुष तो सदैव दुनिया पर महान उपकार ही करते है—

परोपकाराय वहन्ति नद्या
परोपकाराय फलन्ति वृक्षा:।

नदी और वृक्ष भी दूसरो का उपकार ही करते है। इसी तरह महापुरुष भी अपना और दूसरो का भला ही करते है। वीतराग पथ के पक्षिक मुनि भी ऐसे ही होते है। वे संसार मे उलझते नही है। सर्व विरति के परिणाम जब हृदय मे आ जाते है, तव आस्रव की धारा अपने आप वंद हो जाती है।

पौटिला कहती है—मै सर्व विरति तो नही हो सकती हूं पर आप मुझे देश विरति बना लीजिये। मै श्रावक के १२ व्रत स्वीकार करना चाहती हूं।

व्रत लेने से पूर्व श्रद्धा दृढ होनी चाहिये। फिर चारो तरफ की वाड मजवूत करनी चाहिये ताकि उसमे कभी अशुभ विचार प्रवेश न कर सके। अत:फिर साव-धानी की तो सतत आवश्यकता रहती ही है।

जयं चरे जयं चिट्ठे जय मासे जयं सए।
जयं भुंज्जतो भासन्तो पावकम्मं न वंधई।

यत्ना पूर्वक चलने से पाप टल जाते है। आत्मा मे जब अप्रमत्त भाव आता है तभी ऊपर चढ़ा जा सकता है। प्रमाद से आत्मा का पतन ही होता है। पर्वत पर चढना हो तो कितनी सावधानी रखनी पडती है? कहीं भी कदम डगमगा जाय तो नीचे गिरने का भय रहता है। इसी तरह आत्मोत्थान में भी

मोह की खाई चारो तरफ फैली रहती है–पाव फिसल जाता है तो आदमी का पतन हो जाता है। वासना मे मन चला जाय तो फिर मोक्ष कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मोक्ष का मार्ग तो वडा कठिन है—

दुरणुचरो मग्गो वीराणं अनियट्ट गामीणं

वीर का मार्ग वहुत जटिल है–उस पर चलते हुए तो सतत जागृति रखनी पडती है। इन्द्रिय सुखो को छोडना पडता है। समय को समझ कर पुरुपार्थ करना पडता है—

खणं जाणाहि पण्डिए

जो समय को जानता है वही पंडित कहा जाता है। जो प्रमाद रहित होकर चलता है वही आगे वढ सकता है। कोई साधु साधना करते हुए भी चलित हो जाय–ब्रह्मचर्य से डिग जाय और संसार मे आना चाहे तो उसे वैसा नही करके उसका पश्चात्ताप करना चाहिये। क्यो आज ऐसे विचार पैदा हुए? मैने ऐसा क्या आहार किया? जिससे मेरा मन उद्विग्न वन गया है? इसका विचार करना चाहिये और मन को पुनः ब्रह्म मे स्थिर करना चाहिये। अशुभ भाव को तो प्रोत्साहन देना ही नही चाहिये। काम विकार आत्मा का पतन करने वाला है। यह शरीर अशुचि का घर है। उसमे पुनः क्यो फंस रहे हो? ऐसा विचार कर उसे सावधानी ही रखनी चाहिये।

एक आदमी युद्ध में हार जाय तो दुबारा वह दुगुनी ताकत से लडने जाता है और विजय प्राप्त करता है। वैसे ही विचलित साधु भी दुगुने वेग से तैयार होकर अपने विकारों को दूर करने का प्रयत्न करे–संसार मे चले जाने का पामर विचार न करे।–

मन वाल्युं वले सद्गुरुवर थी
सदगुरुवर थी निज अनुभव थी
अभ्यासे ने वैराग्ये थी—मन—

सद्‌गुरु की तो समय समय पर जरुरत पड़ती ही है। वे कहते है– हे साधक? तू अपने मार्ग से विचलित मत हो जाना। अभ्यास वढाओ–पुरुपार्थ करो, घन-घाती कर्मो को नष्ट करना है तो खूब पुरुषार्थ करना होगा। शरीर से चमडा उतारलो पर साधु समता नहीं छोडते है। ऐसा साधु भी अगर मन मे अभिमान कर ले कि मै कितना समता धारी हूं? तो ज्ञानी कहते है उनकी साधना भी व्यर्थ हो जाती है। इसमें अहंकार क्यों होना चाहिये? मैने तो मेरा गुण ही विकसित किया है। अहंकार ने किसी का भी भला नहीं किया। उसका तो त्याग कर देना ही योग्य है—

स्वच्छंद मत आग्रह तजी वर्ते सद्गुरु लक्ष।
समकित तेने भाखियुं कारण गणी प्रत्यक्ष।

जहा जहाँ शंका हो, गुरु के पास पहुच जाओ और उसका समाधान करो। प्रयत्न करोगे तो अवश्य प्राप्त कर सकोगे।

अमेरिका मे रोक फेलर नामक बहुत बडा धनवान व्यक्ति हो गया है। उसने अनैतिकता से व्यापार मे बहुत पैसा कमाया था। वह अपने नौकरो को भी बहुत सताया करता था। गरीबो को भी कभी दो पैसे की मदद नही करता था।

एक बार वह बीमार पड़ा। कई डाक्टर आये पर कोई उसे ठीक न कर सके। अनाथी मुनि को भी रोग हुआ था तो शरीर मे दाह ज्वर फैल गया था। भयंकर दर्द उनके शरीर मे व्याप्त हो गया। उनके माता-पिता ने कहा-जो इस बीमारी को दूर कर देगा मै उसे अपनी सारी सम्पत्ति का मालिक बना दूगा। रोक फेलर ने भी ऐसा ही कहा-चाहे जितना पैसा लेलो पर मेरा दर्द कम कर दो। पर दर्द चाहने से कम नही होता। दर्द तो कर्म का विपाक है। यह फल कोई मिटा नही सकता। दूसरो को दुखी देख कर तुम मन मे दया लाते हो, पर अपना दुख तो देखो। तुम भी उससे कम दुखी नही हो। जब कर्मो का विपाक तुम्हारा भी पकेगा तब तुम्हारा भी ऐसा ही हाल हो जायगा। तब तुम भी बचाओ-बचाओ -चिल्लाओगे।

रोक फेलर की पत्नी-बाल बच्चे सभी पास मे खडे है-पर कोई कुछ कर नही सकते। कुटुम्बीजन पैसा खर्च कर सकते है, पर दुख एक दूसरे का नही बांट सकते।

रोक फेलर ने सोचा-मैने कितने पाप किये है? पैसे को ही मैने सब कुछ समझा-एक रात मे मैने लाखों रुपये कमाये, पर वह सम्पत्ति भी मुझे आज दुख से मुक्त नही कर सकती। मैने आज तक इकट्ठा ही किया है - एकपाई का भी दान किसी को नही दिया...

में दान तो दीधुं नहिने शियल पण पाल्युं नहि
तपथी दमी काया नही शुभ भाव पण भाव्यो नहि।
अे चार भेदे धर्म मांथी कांई पण प्रभु नव कर्युं
मारूं भ्रमण भवसागरे निष्फल गयुं निष्फल गयुं।

जब आदमी को दुख आता है तब वह पश्चात्ताप करने लगता है। पश्चात्ताप भी तभी होता है जब आत्मा जागृत होती है। रोकफेलर भी बिस्तर पर पडा पडा सोचता है-मैने बहुत लूट मचाई है-किसी को भी सुख नहीं पहुंचाया। पैसों को ही सब कुछ समझा।

पैसो प्यारो तमने छे पण अेने कोई नथी प्यारूं।
बे घडी दिलने बहेलावे ने त्रीजी घडीए अंधारूं।
सुख दुख ना साचा संगाथी पैसो के प्रभु
कोण तमने व्हालु बोलो पैसो के प्रभु
पत्थर जेवा पैसाने सोना जेवा स्वामी–कोण तमने..

पैसा तुम्हे कितना प्यारा है? ५ रु. का नोट कही गिर जाय तो कितना ढूंढते हो? आत्मा की भी कभी फिकर करते हो? वह घुम गया है–लेकिन उसे कौन दूढता है?

पैसो के लिये तुम क्या नही करते हो? कुछ तो यह भी कह देते है कि जाना तो नरक मे ही है–सात नरक ही है न! आठ तो नही है? उसमे भी चले जायंगे पर पैसा तो इकट्ठा कर लेने दो। नरक मे जाना मंजूर है, पर पैसा छोडना मंजूर नही है। पैसा बडा प्रिय लगता है—

जड पासे चेतन मांगे मने कांइक दे
नरसैया नो स्वामी कहे तारी अेक फूटी के बे।

जड बडा प्रिय लग रहा है। यो तुम अंधे क्यों वन रहे हो? जड मे सुख कहां है? सुख तो आत्मा मे है। उसके लिये क्यों काला बाजार करते हो?

ओ ब्लेक करने वालों क्या साथ मे चलेगा।
सरकार डाकू डाक्टर कोई भी लूट लेगा।
पापों की पूंजी प्यारे पचती नही कभी भी,
कागज की नाव जल मे डुबेगी जब गलेगा।

विश्वास हो या न हो लेकिन यह बात सच है–तुम्हारा पाप तो स्वयं बोल रहा है। पल भर की देर है। पाप की पूजी जो तुमने इकट्ठी की है वह यही रह जाने वाली है। सतर्क हो जाओ नहीं तो बेमौत मर जाओगे।

एक आदमी ने लोगो से कर्जा लेकर व्यापार किया। उसमे वह ५० हजार रुपया कमा गया। अव वह बंगला लेने की सोचता है। आधुनिक साधन वहा बसाना चाहता है। टेलीफोन–रेफरीजेटर –पंखे फरनीचर आदि। उधर से एक आसामी आ गया, जिसने इसे कुछ रुपया उधार दिया था–बोला–व्यापार मे तुमने अभी अच्छा कमाया है, अपना हिसाब कर दो–दिवाली भी आ रही है, हिसाब बराबर हो जाना चाहिये। वह वोला–मैं सबका रुपया दे दूगा तो अपना वंगला कैसे वना सकूंगा! दूसरो के पैसों से मौज–शौक करना अच्छा नहीं होता है। परिणाम बुरा आता है अतः पहले अपना कर्जा चुका दो। लेकिन वह कहता है, अभी नहीं पीछे दूंगा। पाकिट मे ५० हजार रु. के नोट पडे है पर वह देता

नही है। आगे चलता है तो चार गुंडे उसे पकड लेते है और छुरा दिखा कर पाकिट छीन कर भाग जाते है। पचास हजार चले गये। अव वह पश्चात्ताप करता है, दे दिये होते तो ऋण से मुक्त हो जाता। पर अव क्या हो सकता है? दूव का दूध मे और पानी का पानी मे धन चला जाता है। हाथ मे क्या रहता है? लेकिन कर्मो का वध तो हो ही जाता है। वह कैसे मिट सकेगा? अत:ज्ञानी पुरुप भी यही कहते है धर्म करो–धर्म करो। लेकिन तुम यह समझ लेते हो–फिर करेगें जल्दी क्या है? फिर कर लेगें। लेकिन जव बीमारी आ जाती है और काल रूपी डाकू सामने आकर खडा हो जाता है तव तुम भी यह कहने लगते हो कि कर लिया होता तो अच्छा होता। पर तव तक तो वाजी हाथ मे से निकल जाती है।

साथ मे कुछ ले जा तो नही सकोगे, फिर कालावाजार क्यो करते हो? इससे तुम अपना ही अहित कर रहे हो।

क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे का अहो राची रह्यो

क्षण क्षण तुम भाव मरण कर रहे हो। उससे वचते क्यो नही हो! विश्वासघात क्यो कर रहे हो?

एक सेठ ग्वालिन से घी लेता है। ग्वालिन तो यह घी सेर भर कहती थी, पर यह तो पौना सेर ही निकला। गाव में भी लोग ४२० हो गये है। अव तक तो यह बीमारी शहरो तक ही सीमित थी, पर अब तो गावो मे भी यह फैल गई है। सेठ कहता है–आने दो कल उसे, घी कम क्यो दे गई?

दूसरे दिन ग्वालिन वाजार मे आई तो सेठने उससे कहा–तू तो कहती थी कि घी सेर भर है पर वह तो पौना सेर ही निकला। क्या तू भी ऐसा पाप करने लग गई है! ग्वालिन वोली–सेठ यह तो मै नही जानती कि घी कितना था–पर मै यह जानती हू कि तुमने मुझे जो शक्कर की पुडिया दी थी, वह यह कह कर दी थी कि यह एक सेर की है–उसी से तुमने मेरा घी भी तोल लिया था। अगर तुम्हारी शक्कर भी पौना सेर रही होगी तो घी सेर भर कहां से हो जायगा? पाप तो तुम कर रहे हो या मै?

रोक फेलर की भी आज आख खुल गई। वह सोचता है–न मैने दान दिया और न किसी का दुख ही दूर किया। अगर मै इस दर्द से वच जाऊं तो अपनी सारी सम्पत्ति दान मे दे दूगा।

यह सोचते २ उसे नीद आ जाती है। परोपकार की भावना में भी कितना आनद है? पन्द्रह दिन से उसे नीद नही आ रही थी, वह आज आ गई। तुम भी माला तो फेरते हो, पर मन से कहां फेरते हो–चार–चार मणके एक साथ फिरा देते हो ताकि जल्दी माला पूरी हो जाय। कुछ लोग तो उल्टी माला फेरते

हैं। उसका फल तो चाहते हो, पर वह मिलेगा कैसे ? वीतराग का मार्ग तो ऐसा है कि धर्म करोगे तो फल अवश्य मिलेगा। पैसा दो और माल न मिले यह कैसे हो सकता है ? फल चाहिये तो अन्तःकरण शुद्ध करो। शुद्ध मन से करोगे तो फल भी अवश्य पा सकोगे।

रोक फेलर सुबह उठा तो तंदुरुस्त था। उसकी औरत ने कहा–आज डोक्टर की दवाका असर हुआ है– आज तुम्हें आराम की नीद आई है। रोक फेलर ने कहा –अब रोग चला गया है। शुभ भाव मन मे आता है तो अशुभभाव निकल जाता है। तभी वास्तविक शाति अनुभव की जा सकती है। आत्मा से जो जाप होता है वही फल देता है—

स्मरण ऐसा कीजिये, हिले ना जिह्वा ओष्ठ।
मुख से मेहनत ना पडे, लागे निशाने चोट।

ऐसा स्मरण होता है तभी निशाना बराबर लगता है। प्रभु के ध्यान मे जब एकाकार हो जाओगे तभी शाति प्राप्त कर सकोगे। रोकफेलर का अशुभ भाव मिटा तो शुभ भाव खडा हो गया। तुम भी टाईम वोम फूटने से पहले चेत जाओ। फटाके फोडने जाते हो तो जिन फटाको को हवा लग जाती है वे नरम हो जाते है– उनको जलाओ तो आवाज नही होती है। सु–सु–की आवाज होकर वे जल जाते है। ऐसे ही कर्मो को भी तुम नरम बना दो–उनका धडाका भी बद कर दो। जागृत हो जाओगे तो यह हो सकेगा, वरना टाईमबोम ऐसा फूटेगा कि तुम स्वयं उसका भोग हो जाओगे। अत. जागो और सत्ता मे जो कर्म आये पडे है उनको विपाक मे आने से पहले ही कमजोर वना दो। तप और सयम से कर्मो की उदीरणा ही होती है। ये कर्मो को निर्बल वना देते है– अतः जीवन मे तप और सयम का जितना पालन कर सको अवश्य करो।

रोक फेलर नित्य कर्म कर के अपने कमरे मे बैठा ही था कि उसके मैनेजर का फोन आया–हम जो केस लड रहे थे–उसमे हम हार गये है–लाखो रुपया हमारा वरवाद हो गया है। मैनेजर सोचता था कि यह सुन कर रोकफेलर वहुत गुस्सा करेगा, पर वह वोला–कोई वात नही जो कुछ हुआ वह ठीक है।

मैनेजर को विश्वास नही हुआ कि क्या यह रोकफेलर वोल रहा है ? उसने पूछा–आप कौन वोल रहे है ?

रोकफेलर वोला–मै खुद ही वोल रहा हू। मैनेजर को वडा आश्चर्य हुआ। एकाएक ऐसा परिवर्तन कैसे हो गया ? वह घर आता है और यही वात उसे कहता है। रोकफेलर कहता है–जो आया है वह जाने वाला ही है। तुम यहा जितनी भी संस्थाएं है उनकी लिस्ट वना कर मझे दो। मै सव को थोडा थोडा

दान देना चाहता हूं। मैनेजर लिस्ट बना कर देता है। वह सब संस्थाओं को चैक लिख कर भिजवा देता है। जिन्दगी मे जो आनंद उसने कभी अनुभव नही किया वैसा आनंद वह आज अनुभव करता है।

मैनेजर तो देखता ही रह गया। सेठ को हो क्या गया है? लाखों का दान दे दिया है? पहले तो एक पाई का भी दान नही देता था? इतना परिवर्तन कैसे हो गया?

रोक फेलर के चैंक जहा जहा गये सब संस्थाओने उन्हे वापिस कर दिये। कोई भी सस्था उसका पैसा लेना नही चाहती थी। अन्याय और अनीति का पैसा हम अपने पास नही रख सकते। उससे तो हमारी भी मति भ्रष्ट हो जायगी।

रोकफेलर सोचता है–मेरा पैसा भी कोई लेना नही चाहता। कितना खराब पैसा है मेरा? मै अब अपने पास भी उसे कैसे रख सकता हू? वह संस्था के अधिकारियो से कहता है– आप जैसा समझ रहे हो वैसा मै अब नही रहा हूं। मुझे तो देना ही है–आप उसे ले लीजिये। फिर भी कोई उसे लेने को तैयार नहीं होता। आखिरकार वह अपने एक मित्र को बुलाता है। उसका जीवन बड़ा न्याय नीति पूर्ण और प्रामाणिक था। वह उससे कहता है–मुझे इतना रुपया दान मे देना है–मुझे मेरे नाम का मोह नही है–तुम अपने नाम से यह रुपया इन संस्थाओं को दे दो और मुझे मेरे पाप से हल्का करो। मित्र ने अपने नाम से वह सब रुपया सस्थाओ को दे दिया। संस्थाओ ने भी उसे स्वीकार कर लिया।

कहने का आशय इतना ही है कि जब हृदय का परिवर्तन हो जाता है तो आदमी सुधर भी जाता है। शुभ विचार हृदय मे पैदा होने चाहिये। तभी आत्मा ऊपर उठ सकता है। तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारे हृदय मे भी परिवर्तन हो रहा है या नही? कब होगा? तुम तो रोज रोज धर्म सुन रहे हो। फिर भी परिवर्तन क्यो नही हो रहा है? क्यो पैसों मे ही लुभा रहे हो?

कर कूड कपट छल माया, धन लाख करौड कमाया।
संग चले न एक अधेला, सब चला चली का खेला।
सुत नार मात पितु भाई, कोई अंत सहायक नाहि
क्युं भरे पाप का थेला सब चला चली का खेला —
दो दिन का जग मे मेला.........

यह तो बात तुम समझ गये हो कि धन साथ आने वाला नहीं है। या तो सरकार ले लेगी या लुटेरे लूट लेगे। यह जो हरा हरा दिखाई दे रहा है वह क्षणिक है, चार दिन की चांदनी आखिर अंधेरी रात है। पत्नी–पुत्र–भाई मां

बाप सब एक मेले मे इकट्ठे हो गये है। मेला विखरने वाला है–साथ मे रहने वाला नहीं है। अतः ब्रह्मानंद की वाणी सुनो। कोई तुम्हारा साथ देने वाला नही है। क्यों पाप का घडा भर रहे हो? दुर्गति मे जाने से कोई तुम्हे बचा नही सकेगें। मरने वाला चला जाता है–देखने वाला रह जाता है, पर एक दिन तो उसे भी जाना ही है न? तुम जो इकट्ठा कर रहे हो उसका सुख तो दूसरे भोगेगे, पर पाप तो तुम्हारे ही साथ आने वाला है–उसमें कोई हिस्सा नही बंटा सकेगा। फिर ऐसी मूर्खता क्यो कर रहे हो? अब भी समझो, ऐसे धंधे मत करो, नये नये मील और घांणे क्यो चलाते हो? असंख्य जीवो की हिसा जिसमे होती हो वह तुम्हे करना शोभा नही देता। कोई अपने पैर पर १० सेर का वजन डालना चाहता है? समझता है गिर पडेगा तो पैर टूट जायगा। वैसे ही तुम क्यो नही समझ रहे हो? क्यों आत्मा को पाप मे डाल रहे हो! हृदय परिवर्तन करोगे तो तुम्हारा भी कल्याण हो जायगा।

पौटिला बारह व्रत स्वीकार कर लेती है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १२–१०–६८

[१०७]

पौटिला श्रावक के १२ व्रत अंगीकार कर लेती है। सुव्रताजी आर्या ने उसे ज्ञान सुनाया तो उसे ऐसा विचार पैदा हुआ। ज्ञान का फल ही यही है–ज्ञानस्य फलं विरति-विषय से दूर होना और स्व मे स्थिर होना विरति है।

श्रावक का गुणस्थान ५ वा है और साधु का छठा। पाचवे से छठा गुणस्थान ज्यादा कीमती है। जैसे हीरा लाख रुपयो का भी होता है और हजार रुपये का भी होता है। कोई लाख रु. का हीरा न ले सके तो इससे यह नही कहा जा सकता कि वह लाख रुपये का नही है। जैसी जिसकी ताकत होती है वैसा वह ले सकता है। श्रावक और श्राविका १२ व्रतधारी होते है जब कि साधु साध्वी पंच महाव्रत धारी। व्रतोसे आस्रव रुकता है। और आस्रव का निरोध होना ही संवर कहा गया है–

आस्रवनिरोधो हि संवरः।

कर्म करते हो तभी वे तुम्हारे साथ आते है। अतः करने से पहले यह विचार करो कि मै क्या करने जा रहा हूं? मै अपनी आत्मा को वैतरणी नदी में डुबाने जा रहा हूं या नदंन वन मे घुमाने जा रहा हूं? कूडशाल्मली वृक्ष

द्वारा कटाने जा रहा हू या कामधेनु का दुग्धपान कराने जा रहा हू? मै स्वयं अपने सुख और दुख का कर्ता तथा भोक्ता हू। अतः तुम्हे सुख चाहिये तो संवर मे आओ—व्रत पच्चक्खाण करो। नये कर्म मत बाधो, पुराने जो है उन्हे तप और त्याग से नष्ट कर दो। नदी का पानी यो ही समुद्र मे न चला जाय इसीलिये सरकार उस पर बाध बाधती हे। इसी तरह ज्ञानी भी कहते है—

अणाणाए एगे सोवट्ठाणे आणाए एगे निरुवट्ठाए
एमं ते मा होउ एयं कुसलस्स दंसणं।

जिसने महावीर का शासन समझा है वह उनकी आज्ञा मे कभी निरुद्यमी नही हो सकता और वह उनकी आज्ञा बाहर उद्यम कभी नही कर सकता। उनकी आज्ञा क्या है? अहिसा, सत्य अचौर्य—ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह उनकी आज्ञाऐ है। महावीर का साधक अहिसा की कैसी साधना करता है? मासखमण का तपस्वी साधु पारणे के लिये आहार लेने जाते है। नागश्री ब्राह्मणी उन्हे देखती है तो आहार के लिये बुलाती है और अपने यहा बनाया हुआ कडुवे तुम्बे का आहार बहराती है।

जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा।

अज्ञानी जीव ऐसे ही घोर पाप का बंध कर लेते है।

मुनि कहते है—बस करो बहिन! बस करो! पर वह तो सारा शाक दे देती है। भूल से उसने कडुवे तुबे का शाक बना लिया था। जिसे खा लो तो मौत हो जाय। यह साधु क्या काम का है? मर भी जायगा तो किसी का कुछ न बिगडेगा। यह सोच कर उसने तो अपना सारा शाक मुनि को बहरा दिया। यो उसने तो घोर पाप का बंध कर ही लिया। मुनि आहार लेकर अपने गुरु के पास आये। गुरु ने देखा तो कहा—यह क्या? केवल शाक लेकर ही तुम लौट आये! आज तो तुम्हारे मासखमण का पारणा है न?

मुनिने कहा—

नाना करता मुझने व्होराव्यो भाव उलट मन आणी
चाखी गुरुअे निर्णय कीधो जेर हलाहल जाणो
मुनिश्वर धर्मरुचि ऋषि वंदु।

मैंने तो बहुत मना किया, पर वह न मानी और भाव पूर्वक सब बहरा दिया। गुरु विलक्षण बुद्धि वाले थे। सोचा—दाल मे कुछ काला लगता है। जरा चख कर तो देखू। जैसे ही उन्होने ऊंगली मे ले उसे चक्खा—कडुवा जहर प्रतीत हुआ। गुरु ने कहा—यह तो कडुवा है, जहर है— जो तुम खा जाओगे तो अकाल मे ही मर जाओगे। अतः इसे किसी निर्दोष जगह पर परठ कर आजाओ।

पहले के मुनि कैसे स्वावलम्वी होते थे ? मासखमण का तप करने वाले साधु भी स्वय गोचरी जाते थे और परठने की क्रिया भी स्वयं करते थे। गुरु की आज्ञा हुई तो शिष्य उस आहार को परठने चल दिये। निर्दोष भूमि की तलाश करने लगे। चलते चलते कुम्हार के अड्डे पर पहुचे, वहा कुछ राख पडी देखी तो सोचा यह स्थान निर्दोष है। यहां यह आहार परठ देना चाहिये। फिर भी वे कुछ देर खडे रहे और सोचा पहले एक बूद डाल कर तो देखू ! वे एक बूद डालते है और कुछ देर वहा खडे रहते है। सुगध से कई चीटिया वहा आ जाती है और उसका पान करते ही मर जाती है। मुनि ने यह देखा तो सोचा–गुरु ने तो निर्दोष जगह मे परठने का कहा है–यह भी निर्दोष स्थान कहा है ? एक बूद मे ही इतनी हिसा हो गई तो यह सारा परठने से तो कितने जीवो का घात हो जायगा ? कैसा दया भाव है मुनि का ? और आज कैसा भाव रह गया है तुम्हारा ? रात को खटमल और मच्छर हैरान न करे इसलिये डी. डी. टी. का प्रयोग करते हो। जिस समाज मे ऐसे साधक हुए–जिन्होने कीडी मकौडो की रक्षा के लिये भी अपना बलिदान कर दिया, उसी समाज मे आज लोग अडे और मछली का तेल खाने लग गये है। क्योकि उसमे विटामिन वी है। कुछ लोग अडो को निर्जीव कहते है। यह मान्यता उनकी भूल भरी है। अडे निर्जीव नही है। उसमे भी पचेन्द्रिय जीव रहा हुआ है। वह केवल पानी नही है– उस पानी मे भी पचेन्द्रिय जीव है। लडका दुबला पतला है, तुम उसे कोडलिवर ओईल पिलाते हो–यह सब क्या है ? श्रावक कहला कर क्या तुम ऐसा कर सकते हो ? शरीर का लोभ क्यो कर रहे हो ? शरीर तो एक दिन जाने वाला है । तुम अपने मुनिवरो को तो देखो ! एक बूद मे ही अनेक चीटियो को उन्होने वहा मरते देखा तो उन्होने सोचा———

घणां जीवो ने हणाता जोई मार्ग कयो छे मुनि विचारे
भले हणातुं अेक जीवन आ कीडियोनी करुणा दिल धारे।
कडवो आहार त्यां आरोगी जाय. . . .धन्य धर्मरुची तुम अवतार।

मेरे लिये इतने जीवो की हिसा? मेरा व्रत तो अहिंसा का है। गुरुने कहा है– निर्दोप स्थान पर परठना। निर्दोष जगह तो मेरा पेट ही है। यह सोच कर वे तो गुड–खाड की तरह उस शाक को खा जाते है। कडुवा जहर भी अम्लान भाव से पी जाते है। तुम्हे सुदर्शन चूर्ण लेना हो तो एक हाथ मे पुडिया और दूसरे मे पानी का गिलास रखते है। फिर भी लेते लेते मुह विगाडते है। वे मुनि उसे कैसे पी गये होगें ? शास्त्र में कहा है—

तितगंच कडुयं च कसायं अंविलं च महुरं लवणं वा
एयलध्धंमन्नत्थ पउतं, महु–धयंव भुंजिज्ज संजए।

दश. ५ अ.

संयति मुनि आहार कडुवा हो तव भी खा जाते है। तीखा हो, खट्टा हो या मीठा हो तव भी मुनि उसे खा जाते है। लाये है तो खाने के लिये ही तो लाये है। शरीर मे जाने के वाद तो एक सा हो जाने वाला हे। तुम प्रिय आहार तो खा जाते हो और अप्रिय को फेक देते हो। मुनि ऐसा नही कर सकते। पुद्गलानंदी और आत्मानंदी मे यही अन्तर है। मुनि उस कडुवे तुम्वे की शाक को भी खा गये। खाते ही उनके पेट मे पीडा होने लगती है–

परवर पीडा उपनी शरीरे चालण शक्ति नाही
पादोपगमन त्यां करयो रे संथारो समता दृढ मन आणी
मुनिश्वर धर्मरुचि ऋषि वंदू ....

सारे शरीर मे जहर व्याप्त हो गया। सवसे क्षमा याचना कर मुनिने वही पदोपगमन सथारा कर लिया। जो मौत को साथ लेकर फिरते है, वे कभी रोते नही है। साधक तो कमा कर जाते है, उन्हे दुख क्यो हो? जहर शरीर मे व्याप्त होता जाता है वैसे वैसे पीडा भी वढती जाती है। पर मुनि हिलते–डुलते भी नही है, वे स्थिर हो ध्यान मे लीन हो जाते है। ऐसे पवित्र मुनि तुम्हें क्या उपदेश दे गये है और तुम क्या कर रहे हो? क्या कभी इसका भी तुम्हे विचार आता है? कहा हमारे वे महामुनि जो जीवहिसा वचाने के लिये स्वयं कुर्वान हो गये और कहा आज का मानव? जो आज अपने सुख के लिये मक्खी, मच्छर, मछली, वंदर और चूहे मार रहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति आज कैसी विकृत हो गई है? क्या हमको ही जीने का हक है, दूसरो को नही है? फिर क्यो कदम–कदम पर हिसा व्याप्त हो गई है? चलते हो तो मोटर मे जाते हो– कितने जीव नीचे आकर मर जाते है। क्या कभी इसका विचार भी करते हो? यह क्या नही जानते हो कि हिसा तो नरक देने वाली है––

हिसा दुखनी वेलडी हिसा दुखनी खाण।
अनंत जीव नरके गया हिंसातणे फल जांण।

भगवती सूत्र और ठाणांग सूत्र मे कहा है कि जीव ३ कारण से अल्प आयुष्य वाधता है––

१ जीव हिसा करने से–किसी का प्राण ले लो तो आयुष्य कम हो जाता है। हमारा सिद्धान्त तो यह है– जीओ और जीने दो। पर आज इस पर कौन चल रहा है? अपने सुख के लिये दूसरे प्राणियो को मारा जा रहा है। आचारांग

में कहा है—

'जो जीव दूसरों को मारते हैं, वे स्वयं भी मर जाते हैं। दूसरो को ठगने का विचार करते हो वही तुम स्वयं भी ठगा जाते हो।

२ झूठ बोलने से—३ तथारूप साधु सध्वी को अशुद्ध आहार पानी वहराने से जीव का अल्प आयुष्य बधता है।

सारी उम्र लडके को पढाया—लिखाया और जब वह योग्य हुआ तो वही छोडकर चला जाय, सुख के दिन वह देख नही सका। शरीर मे हर समय बीमारी बनी ही रहे। एक ठीक हो तो दूसरी पैदा हो जाय। इसका कारण यह पाप ही है।

पंडनी पलोजण पुरी करूं त्यां
माथे मलकनो भार
नीत ने नीत हरी केम रे झंकारवा तुटेली वीणाना तार
तुं तो मारा आतमना गेबी असवार——।

ज्ञानी कहते है—सारी जिन्दगी तुमने शरीर की ही परवाह की, समय पर यह करो—वह खाओ और यह मत खाओ। अभी आराम करो—अमेरिका मे क्या हो रहा है और चीन मे क्या हो रहा है? यो सिर पर सारी दुनिया का भार-लेकर फिरते हो। वह चन्द्रमा की परिक्रमा करके लौट आया है, पर तुम चौरासी का चक्कर लगा रहे हो उसे भी तो देखो। एक समय मे १४ राजूलोक मे चक्कर लगा कर आ जाओ, उस शक्ति को तो समझो। विज्ञान अभी अधुरा है, वह तो विनाश मे ले जाने वाला है। भगवान का ज्ञान ही आत्मा को उर्ध्वगामी बनाने वाला है।

महापुरुष दूसरो को बचाने के लिये कितना उपकार करते है? कबूतर की दया पालने के लिये भगवान शातिनाथ ने अपने पूर्व भव—राजा मेघरथ के भव मे अपना देह काट कर दे दिया। वे देवता की परीक्षा मे पास हो गये, पर तुम किस परीक्षा में पास हुए हो?

कुत्तो को रोटी और गायो को घास डालने वाला देश आज गायो को ही मारने लग गया है। यंत्रो से खेती करो और बैलो को मारने लग जाओ तो पशु-धन कैसे बच सकेगा? वेजीटेबल खाकर फिर अधे न बनोगे तो और क्या बनोगे? पहले के श्रावकों के पास कितना पशुधन होता था? आनद श्रावक के पास ४० हजार गाये थी। कामदेव के पास ६० हजार और चूलणीपिता के पास ८० हजार गाये थी। आज इस देश मे शुद्ध घी और दूध का भी कहा ठिकाना है? दूध भी बाटली में मिल रहा है। ताजी है या बासी? कौन जानता है?

जीवो की हिसा कर रहे हो और वे कैसे थे जो दूसरो के लिये खुद कुर्बान हो गये ?

वाह्य साधन सामग्री कितनी वढ गई है ? पराधीनता की भी हद हो गई है। सव काम मशीनो से होने लग गया है। घर मे कपडे धोने की भी मशीन आ गई है। अपने आप कपडे धुल कर, सूखकर और इस्त्री वन कर निकल जाते है। चूल्हा की जगह गेस आ गया है। पर कभी फूट जाता है तो घर मे वाकी कोई नही वचता। यह तुम सुख अनुभव कर रहे हो या दुख मोल ले रहे हो। याद रखो विज्ञान की टांकी मे पानी नही –घासलेट भरा पडा है–दिया सलाई दिखाओगे तो जल जाओगे । विजली भी क्या है ? हाथ लगा नही कि मौत का आमत्रण आ जाता है।

रेफरीजेटर भी क्या है ? एक नौकर ने सोचा–ऐसा इस मशीन मे क्या है जो सव चीजे ठडी हो जाती है ? आज मै भी अदर वैठ जाऊं – ठडा हो जाऊंगा गरमी भी ज्यादा है – मजा आ जायगा । वह उसमे वैठ जाता है । फिर क्या था ? मर कर ठंडा हो गया । ये सव साधन कैसे है ? नाश के ही तो है । द्रुतगामी साधन वसाना चाहते हो, पर धर्म मे शीघ्रता कहा करते हो ? सव यंत्र आगये है पर चाव कर मुह मे देने का यंत्र अभी कहा आया है ? इस यात्रिक युग मे सब काम मशीने करती है तो तुम्हे कितनी फुरसत मिल जाती होगी ? वह सव समय तुम्हारा कहां जाता है ? धर्म मे तो फुरसत तुम्हे मिलती ही नही है !

आज भी गावो मे ४ वजे उठकर औरतो को चक्की पीसनी पडती है। तमी रोटी के दर्शन होते है । पानी लाने के लिये भी एक मील दूर कुए पर जाना पडता है । पर यहां तो घर घर मे नल आ गया है । फिर भी एक सामायिक करने का समय नही मिलता। तो वोलो, कव फुरसत मिलेगी ? आत्मा को भी कभी पहिचानोगे या ऐसे ही वने रहोगे ?

भगवानने ४ प्रकार के जीवो को मक्खियों की तरह कहा है ।–

१. शक्कर की मक्खी – यह मक्खी जव चाहे तव उड सकती है और स्वाद भी ले सकती है । इसी तरह पुण्यानुवंधी पुण्य से जिनको तीर्थंकरो का योग मिलता है, वे शालिभद्र, घन्नासेठ और सुवाहुकुमार जैसे एक व्याख्यान सुन कर ही संसार से चल पडते है । फिर क्यो तुम चिपके हुए हो ?

साधु वनकर भी कोई संसार से चिपका रहे तो यह भी ठीक नहीं है ।

उजला वस्त्र तो भले ते सज्या मन ना वस्त्रो जो मेला रह्या
तो करमना छुटे भव फेरा ना खुटे, नवा दोषो वधे बेशुमार
ले जो समझीने संयम भार ।

सफेद कपडे पहनने से ही कुछ नहीं हो जाता। मन साफ न हो तो यह भी

भार रूप ही रहेगा। धोबी जैसे कपडे को धोता है वैसे ही साधक भी मन को धो दे–उज्ज्वल बना दे तभी उसकी सार्थकता है।

मन मैला रह गया तो भव भ्रमण कैसे मिट सकेगा ? अत: सयम भी समझकर लेने की चीज है – देखादेखी करने की चीज नही है। सयम मार्ग वीतराग का मार्ग है। उसको धारण कर राग का पोषण नही किया जा सकता है। ऐसे महापुरुष शक्कर की मक्खी की तरह होते है जो समय पर उठ खडे होते है और अपनी आत्मा का कल्याण कर लेते है।

संयम लेना कोई हंसी खेल नही है। संयम लेना मेरुपर्वत उठाने जैसा है। सयम लेकर कोई यह सोचे कि मेरी मा क्या करती होगी ? घर मे वहू आई है तो ऐसी आई है कि दिन भर लडा करती है– ऐसी वाते सुनना भी साधु को नही कल्पता है। उनको आना है तो वे तुम्हारा वोध सुने उनकी वातो को साधु क्यो सुने ? उनसे अव उसे क्या काम है ?

अत: सयम भी लो तो समझ कर लो– तभी आत्मा को जागृत कर सकोगे।

२ पत्थर की मक्खी–दूसरी तरह के आदमी पत्थर की मक्खी की तरह होते है। पत्थर मे स्वाद नही है पर मक्खी वहा वैठती है तो उडने मे स्वतंत्र है। जव चाहे तव उड सकती है। ऐसे ही संसार मे पुण्य की अनुकूलता न हो, पर उडने मे स्वतत्रता हो– मोह न हो, समय पर दीक्षा लेकर वे भी अपना कल्याण कर सकते है।

३. शहद की मक्खी– यह मक्खी स्वाद तो लेती है, पर चिपक जाती है, उड नही सकती है। इसी तरह कुछ लोगो को पूर्व भव के पापानुवधी पुण्योदय से अनुकूलता तो मिल जाती है, पर वे ससार मे ऐसे फंस जाते है कि उससे मुक्त नही हो पाते है। समय आता है तव (I am Very Sorry) कह कर अपनी जान वचा लेते है। क्यों भाई ! क्या तकलीफ है ? निकल क्यो नही जाते ? वे कहते है– अभी वच्चे छोटे है। माया छूटती नही है– मक्खी शहद मे लिपटी रहती है वैसे ही ये भी ससार मे अन्त तक फसे रहते है।

४. श्लेष्म की मक्खी–श्लेष्म में पडी हुई मक्खी न उड सकती है और न स्वाद ही ले सकती है। ऐसे कुछ संसारी जीव संसार में न तो आनंद ही उठा पाते है और न उससे विमुक्त ही हो सकते है। क्या करें घर मे १० प्राणी है ? गुजर भी नही चलता। लडके वडे हो रहे है– विवाह-शादी की भी मुसीवत आनेवाली है– कैसे क्या होगा ? उधर सरकार भी पीछे पडी हुई है– इन्कमटैक्स और सेल्स टैक्स भरना भी वाकी है, किसी को मृत्यु टैक्स तो किसी को वक्षीस टैक्स देना है– यो जिनको न आनंद है और न उससे निकल सकते हैं ऐसे मनुष्य चौथे नंवर की श्लेष्म की मक्खी की तरह कहे गये है।

इन चार तरह की मक्खियों मे से तुम्हारा नंबर कौनसा है ! यह तुम स्वय जान सकते हो।

जैसे मक्खी श्लेष्म में बंध जाती है वैसे ही अज्ञानी जीव भी संसार मे बंधे रहते है। उससे मुक्त नही हो पाते। अतः ज्ञानी कहते है– पुण्य की अनुकूलता मिली है तो धर्म का सहारा मत छोडो– धर्म करोगे तो तुम्हारा भला हो सकेगा। जो धर्म का सहारा लेता है वह कभी दुखी नही होता है। आज दो बहिने सयम के मार्ग पर अग्रसर होने जा रही है। दोनो बाल ब्रह्मचारिणी हैं। भगवान का मार्ग तो खाडे भी धार पर चलने जैसा है। वीर पुरुष ही उस पर चल सकता है। कायर का काम नही है। उस महान पथ पर चलने मे और ज्ञान दर्शन चारित्रकी साधना करने में ये बहिने सफल सिद्ध हो इसी मंगल भावना के साथ–।

ता. १३–१०–६८

[१०८]

अहिसा संयम और तप रूपी धर्म है। जिन्होने इसका आचरण किया वे ही मोक्ष प्राप्त कर सके हैं। साधु की आराधना पूर्ण होती है। वे पच महाव्रत धारी कहे जाते है। श्रावक की साधना आंशिक होती है। वे बारह अणुव्रतधारी कहे जाते है। श्रावक रहते हुए भी धर्म की आराधना की जा सकती है। श्रावक कोई भी काम करता है तो पश्चात्ताप की भावना रखता है। कब मै इससे निवृत्त हो सकूगा ? ऐसे भाव रखकर जो काम करता है वह कर्मो का तीव्र बंध नही बांधता है। भगवान ने जो यह कहा है कि यत्ना मे धर्म है वह इसी दृष्टि से कहा है। शुभभाव आत्मिक सुख की वृद्धि करता है और अशुभ भाव आत्मा का पतन करता है, उसे वह दुख में डालता है।

खाते समय भी श्रावक यही सोचता है कि मै यह गेहूं, बाजरा, चना आदि जो खा रहा हूं–एकेन्द्रिय का मुर्दा शरीर ही खा रहा हू। पृथ्वी, पानी, हवा, अग्नि और वनस्पति मे भी जीव है। मै उन पाच स्थावर जीवो का घात कर हर्ष कैसे अनुभव कर सकता हूं। केले का शाक खाते समय अगर तुम यह कहो कि यह तो बहुत बढिया बना है– इसे खाने से तो आलू का ही स्वाद आ रहा है तो तुम कर्मो का उपार्जन कर लेते हो और अगर यह सोचकर खाओ कि मै तो एकेन्द्रिय का ही मुर्दा खा रहा हूं– उसमे हर्ष क्या है ? निर्ममत्व भाव से खा लेते हो तो इससे कर्मो का बंध कम होता है। परिणामों पर ही कर्म बंध का आधार रहा हुआ है। इसीलिये ज्ञानी कहते है कि संसार मे रहते हुए भी जीव तीव्र से मंद और मंद से तीव्र कर्मो का बंध कर सकते है।

एक आदमी ने वाढ राहत मे रोते रोते जवरन २०० रु. का दान दिया जवकि दूसरे ने विना मागे ही २०० रु. का दान दे दिया। तीसरे ने दो सौ के वजाय १२०० रु. दे दिये। चौथा सोचता है– मेरे पास तो १०० रु. ही है– वडी मेहनत से इकट्ठे किये है– सहायता करने का यह मौका मिला है तो वह सहर्ष उनका दान कर देता है। कल क्या होगा ? इसकी भी वह परवाह नही करता और अपने सर्वस्व का दान कर देता है। कहिये इनमे किसका दान सर्व श्रेष्ठ कहा जायगा ? जिसने १२०० रु. दिये उसके पास तो २ लाख पडे हुए है– पर १०० रु. देने वाले के पास तो एक पाई भी नही है। दान मे भी भावना का महत्व होता है– ज्यादा या कम देने का महत्व वहा नही होता। परिणामो की तारतम्यता ही कर्म वंध मे भी तीव्र और मद वध के लिये कारणभूत होती है। तदनुसार ही जीव कर्मो का वध करता है। टाईम वोम कव फूट जायगा ? कव कौनसा कर्म उदय मे आ जायगा ? इसका कुछ कहा नही जा सकता है ? यहा से तो राजीखुशी गाडी मे वैठ कर रवाना हुए थे, पर घर पहुचने से पहले ही स्टेशन पर उतरे नही कि शरीर मे लकवा हो जाता है– हाथ पैर उठते नही है। यह कैसे हो गया ? इस शरीर की तो खूव सभाल की थी, वढ़िया वढ़िया खिलाया पिलाया था– फिर क्यो ऐसा हो गया ?

जैसे आत्माकी शक्ति अनंत कही गई है वैसे ही भगवान ने कहा है कि जड मे भी अनत शक्ति है। आज का विज्ञान यही तो वता रहा है। भगवान ने उसका प्रयोग नही किया क्योकि उसमे हिसा रही हुई होती है। जड मे भी अपार शक्ति रही हुई है। शरीर मे कब्ज हो जाय– एक गोली जुलाव की ले लो कि पेट साफ हो जाता है। यह गोली की ही तो करामात है। गोली क्या है ? जड है। अफीम क्या है ? वह भी जड है ? पर शक्ति कितनी है उसमे ? खाते ही मार देती है। चाकू, तलवार, वंदूक सव जड है– पर सब मे शक्ति कितनी रही हुई है? ज्ञानी तो इससे भी आगे की वात कहते है– कोई तुम्हे कुत्ता कह दे तो तुम्हे कितना बुरा लगता है ? कुत्ता क्या है ? शव्द ही है न ? शव्द भी जड है– लेकिन उसकी शक्ति कितनी है ? तुम्हारा खून गरम कर देता है।

जेर सुधा समझे नहि, जीव खाय फल थाय।
एम शुभाशुभ कर्म नुं, भोक्तापणुं सधाय।
एक रांक ने एक नृप, अे आदि जो भेद।
कारण विना न कार्य जे, एह शुभाशुभ वैद।

तुम्हारी क्या वात है ? तुमने तो सारा जीवन सेवा कार्य मे व्यतीत कर दिया। यह सुन कर कैसे खुश हो जाते हो ? वही अगर यह कह दे कि तुम कैसे सेवा भावी हो ? दान के पैसे भी खा जाते हो तो कैसे चिल्लाने लगते हो ? यह सव शव्द का

ही तो कमाल है। जड शब्द में भी कितनी ताकत है ?

तार आया है– तुम अभी भी सामायिक मे वैठे हो। घर जाकर तो देखो ! यह सुनते ही मन मे क्या क्या भाव आने लग जाते है ? देश मे भाई वीमार था, कल ही तो लडका परदेश गया है–तार क्यो आया है ? अभी तो सामायिक मे १० मिनिट वाकी है, मुश्किल से सामायिक कर के घर जाते हो– वहा तो औरत कहती है लडके की सगाई का तार आया है।

चश्मा क्या है ? जड ही है न ? आखों से हटालो तो अंधे हो जाते हो– दिखाई नही देता। अतः जड मे भी अपार शक्ति रही हुई है। लेकिन ज्ञानियो ने कहा है– जड से भी आत्मा की शक्ति विशेष है। चश्मा हो, आख हो पर आत्मा न हो तो चश्मा भी क्या करेगा ? ताकत तो चैतन की ही है। जड जड का कुछ नही कर सकता जब तक कि उसमें चैतन्य न हो। आत्माने अनंतकाल निकाल दिया है, पर अव तक भी वह अपना स्वरूप समझ नही सका है। आम का स्वाद लेने वाला यह शरीर नही है– वह तो मैं ही हूं– उस जानकार को जानो, जड मे मत उलझे रहो। जो चैतन स्वयं प्रकाशित है वही आज अज्ञान मे क्यो चला गया है।? क्यो अपना भान भूल गया है ?

अपने आपको भूल कर हैरान हो गये
अपने कर से असि उठाई अपने सिर पर लाते है।

भाव मरण द्वारा आत्मा स्वयं अपनी घात कर रहा है। अतःज्ञानी कहते है– एक बार तूं अपनी पहचान कर, अपनी अचिन्त्य शक्ति को देख, अनुभव द्वारा जान, यह ज्ञान तो अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। देह रहित अवस्था मे भी अनतकाल तक जीवित रहा जा सकता है। सिद्ध भगवान रहते ही है न ?

तारा शुद्ध स्वभावनेजी आदरे धरी बहु मान
तेहने तेहीज निपजेजी अेह कोई अदभुत ज्ञान।
विमल जिन विमलता ताहरीजी अवर न बीजे कहाय।
लघु नदी जेम तेम उलंथीयेजी पण´ स्वयंभू रमण न तराय
विमल जिन विमलता ताहरीजी . . .

देवचन्द्रजी म. अपनी चौबीसी मे कहते है– हे विमलनाथ प्रभु ! तेरे शुद्ध स्वभाव का जो एक वार वहुमान पूर्वक पान कर लेता है वह वैसा ही वन जाता है। भगवान के गुणग्राम करते करते भक्त भी भगवान वन जाता है। हे विमलनाथ ! तेरी निर्मलता तो ऐसी है कि उसका वर्णन शब्दो से नही किया जा सकता। छोटी नदी को पार करना तो आसान है, पर जैसे स्वयंभूरमण समुद्र को पार नही किया जा सकता वैसे ही तुम्हारे गुणों का कथन भी नही किया जा सकता है। भगवान के

गुण तो अनंत है। उसके एक ज्ञान गुण का ही वर्णन हम नही कर सकते है।

तेह स्वरुप ने अन्य वाणी ते शुं कहे
अनुभव गोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो
अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे।

धनवान को देख कर तुम यह कहते हो कि ये वहुत वड़े आदमी है, इनके पास मोटर है, वगला है— फोन है, रेफ़रीजेटर है— डनल पीलो की गादिया है— यो अद्यतन साधन सामग्री है— एकदिन ऐसा भी आ जाता है कि यह सब चला जाता है और खाने को छाछ और रोटी ही मिलती है तो वह दुखी हो जाता है। श्रीमन्त था तब तक तो उसे डनलपीलो की गादी पर नीद भी नही आती थी, पर अव तो खाट पर भी विना गादी के गहरी नीद आ जाती है। पहले तो एक रोटी खाई नही कि पेट मे गेस हो जाती थी, पर आज तो वह २ रोटी वाजरे की खा जाता है— तो वोलो वह सुखी अव है या तव था? सुख वगले मे था या सुख अव झोपडी मे है?

मरवानुं बधा मनथी विसर्या
अेने उर अति अहंकार भर्या
मारा खोप थी लेश दिलेना डर्या
एवा रंक जनोना रुधिर पीता
अे श्रीमन्तो ने कोईनो त्रास नथी
एवा रावण राजाना महेल विषे
मारा दीन दयालुनो वास नथी।

दो भाई थे। बडे भाई के पास पैसा वहुत है, पर छोटा भाई साधारण स्थितिवाला है। एक वार इस कुटुम्व मे एक वूढी औरत मर गई। दोनो भाई उसके दाह संस्कार मे गये। जाते जाते दोनो भाई पानी मे भीग गये। ठंडी हवा चल रही थी। वापस लौटे तो वडे भाई की मोटर आ गई थी। उन्होने अपने छोटे भाई को भी साथ मे बैठा लिया। शंकरलाल का घर भी रास्ते मे ही आता था। ठंड के मारे दोनो भाई ठिठुर रहे थे। घर आये कि दोनो को वुखार हो गया। वडे भाई के यहा तो डाक्टरो की लाईन लग गई। पर शकरलाल के यहां डोक्टर कैसे आवे? फीस देने को भी पैसे कहा? उसने तो घर आकर शरीर पर नीलगिरी का तेल लगाया और चौविहार उपवास धारण कर सो गया।

उधर वडे भाई ईश्वरलाल के यहा तो डोक्टर उसकी जांच करने लगे। टट्टी-पेशाव-थूक-खून आदि की जांच करने लगे। एक्सरे भी लिया। यो वे निदान करने लगे कि वुखार क्यो आ गया?

इसमे क्या निदान करना है! तुम भूल करोगे तो शरीर सजा देगा ही।

जहर की दवा भी जहर ही होती है। वैसे ही शरदी की औषधि बुखार है। उसे आ जाने दो, शरीर की गरमी बाहर निकल जाने दो। उसे दवाओ मत-रोको मत। नही तो वह मिटकर निमोनिया हो जायगा। कम से कम ३ दिन तक तो ठहर कर देखो कि वह जाती है या नही ? लेकिन इतना धैर्य कहा होता है ? तब फिर इन डोक्टरो को कौन पूछेगा ? और इन दवाओ को भी कौन लेगा ?

ईश्वरलाल सेठ को एकमास हो गया। कीमती दवाये दी गई। फिर भी डोक्टरोने उसे कहा—अब भी तुम्हे एक मास तक आराम करना चाहिये। जल्दी करोगे तो फिर तबियत बिगड सकती है। हवा खाने देवलाली चले जाओ, तबियत जल्दी ठीक हो जायगी। सेठ देवलाली जाकर भी आ गये। रुपये ५ हजार पूरे हो गये। छोटा भाई शंकर लाल अपने भाई की खबर करने आता है। ईश्वरलाल कहता है तेरी तबियत कैसी है ? मुझे तो तेरा विचार आ जाता था कि तू क्या करता होगा? तेरी भी तो तबियत खराब हो गई थी। शंकरलाल ने कहा— बडो की तो दवा भी बडी होती है। मै तो दूसरे दिन ही ठीक हो गया था।

सेठने आश्चर्यसे पूछा-ऐसी क्या दवा की थी तुमने ? शंकरलाल बोला—मै तो चौविहार उपवास कर सो गया। दूसरे दिन तबियत बिल्कुल ठीक हो गई।

बस, इतना करने से ही ठीक हो गया। सेठ ने कहा — मेरा तो ५ हजार रु. पूरा हो गया है और अब भी कमजोरी मिटी नही है।

धनवानों का पैसा तो सरकार, डाक्टर या लुटेरे ही लेजा सकते है। और वे किसको प्रसन्न होकर दे सकते है ? ब्लेक का पैसा जिस तरह आता है वैसे ही चला भी जाता है। वह लम्बे समय तक ठहर नही सकता। क्योकि कई लोगो की हाय उसमें रही हुई होती है।

लोग कहते है आजकल बहुत मंहगाई हो गई है। लेकिन पान और बीडी की दुकान पर तो कुछ कमी दिखाई नही पड़ती। होटलो पर भी भीड लगी रहती है। सिनेमा के टिकिट मे तो लाईन लगी रहती है। मंहगाई बढने पर भी मौज—शौक में कमी कहां हुई है। तो क्या धर्म मे मंहगाई आ गई है? इसीलिये नही कर पा रहे हो। कही ऐसी बात तो नही है? धर्म करने मे तुम्हारा क्या पैसा लगता है? तुम्हारा धर्म तो ऐसा है कि

पैसा लगे न टक्का
ढूंढिया धरम पक्का

पहले तो पीतल के बरतनों मे खाना खाया जाता था। पर आज तो उसकी जगह लोहा आ गया है। भगवान ने कहा है पाचवे आरे के अन्त मे जिसके घर में १। सेर कांसा होगा वही धनवान कहा जायगा। लोहे का प्रचलन

बढ जायगा। अभी तो ढाई हजार वर्ष बाकी है। तब तक क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

युरोप की एक कंपनी का मैनेजर भारत मे एक राजा के पास आया और अपनी कम्पनी के बनाये हुए कांच के बरतनो को दिखाते हुए बोला—हम ऐसे बरतन बनाते है– आप भी हमे कुछ आर्डर दीजिये। बरतन दिखने मे बडे सुन्दर थे। सबने उन्हे खूब पसंद किया। राजा बडा समझदार था। उसने एक केटली उठाई और दूर फेक दी। गिरते ही उस के टुकडे टुकडे हो गये। राजाने कहा—अब इन टुकडो की क्या कीमत है? एक पाई भी कोई इसकी देना चाहेगा?

राजा अपनी पुरानी दवात मगाता है। पहले दवात भी पीतल की हुआ करती थी। राजा उस दवात को फेकता है और नौकर से कहता है जा इसे बाजार मे बेच आ। फूट जाने पर भी इसका कुछ तो पैसा आवेगा ही। पर काच फूट जायगा तो क्या मिलेगा? राजा कहता है हमे ऐसा माल नही चाहिये। यह दिखने मे तो सुदर अवश्य है, पर इसमे स्थायीत्व नही है। हमारी वस्तुओं का ये क्या मुकाबला कर सकेगे? तुम भी अपनी वस्तुओ की तरह दिखने मे तो सुदर हो पर तुम हमारी आर्य भूमि के मानवो का मुकाबल नहीं कर सकते हो। धन्ना अणगार अन्त समय मे भी यही कहते है कि अब मै छट्ठ का तप तो नही कर सकता हूं, क्योकि अशक्त हो गया हू—पर अब भी संथारा करने की तो ताकत है। वह कर सकता हूं। कहिये कैसी ताकत थी उनकी? काच की तरह दिखावटी मानव आज क्या कर सकेगे? पाश्चात्य सस्कृति के हिमायतियो! क्या तुम भी वैसा ही बनना चाहते हो? १० वर्ष तक एक स्त्री के साथ रहे और फिर उसे छोडकर दूसरी के साथ हो जाय, यह कैसी सस्कृति है। दस वर्ष तक साथ निभ जाना भी वहां आश्चर्य माना जाता है और उसका भी उत्सव मनाया जाता है। आर्य सस्कृतिको तो देखो! शादी होते ही पति को अगर टी. बी. हो जाय तो क्या वह औरत उसे छोडकर जा सकती है? अपना सर्वस्व देकर भी वह उसकी सेवा ही करेगी। भारतीय नारी का ऐसा ही आदर्श है। तुम आर्य भूमि की सन्तान होकर भी आज सम्पत्ति मे क्यो मूर्च्छित बने हुए हो! शरीर को देखना बद करो और आत्मा को देखना शुरु करो। आज तुम घर की बात तो सुनते नही हो और दूसरो की बात करने मे मजा मान रहे हो। ऐसा करना छोड दो और अपनी करवट बदल लो। बस, एक करवट बदलने की देर है। वह नही कर पा रहे हो तभी तो सामायिक और प्रतिक्रमण के बजाय रेडियो सुनने मे रस आ रहा है। वदना करने मे रस नही आता, पर व्यायाम शाला मे जाकर दंड बैठक करने मे रस आने लगता है। करवट

बदलोगे तो वंदना करते करते ही कर्म नष्ट कर सकोगे। आज क्रिया मे भी कितनी असावधानी हो गई है? कपडे का व्यापारी कपडा बताते बताते भी कितना ऊचानीचा होता है? ग्राहक को वह कभी यह नही कहता कि तुम यहा से चले जाओ। लेकिन धर्म मे इतनी मेहनत कहा करते हो? सामायिक करते हो तो पूरी विधि भी कहा करते हो? जो विधि बताई गई है तदनुसार क्रिया करो तभी वह पूरी कही जा सकती है। क्रिया करनी है तो विधि युक्त करो–बेगार मत उतारो। धर्म मे तो शूर बनना चाहिये पर तुम तो धर्म मे ढीले बन रहे हो। क्या तुम्हारे मे पावर (ताकत) नही रहा है? अगर है तो उसे दिखाते क्यों नहीं हो? ध्यान करते हो तो स्थिर कहां रहते हो? सिनेमा देखते हो तो कितना ध्यान रखते हो? यह गाना कौनसे पिक्चर का है यह तो बता दोगे, पर कुंथुनाथ भगवान कौन है? यह नहीं बता सकोगे। कैसी हालत है तुम्हारी ! अब भी करवट न बदलोगे तो फिर कब बदलोगे? धर्म की शरण लो, वही अन्तिम शरण है। देह को छोडकर भी जो धर्म की रक्षा करता है वही अपना कल्याण कर सकता है।

श्रावक तो ऐसे होते है कि देवताओ से डिगाये भी डिगते नही है। तुम भी चाहो तो वैसे शुद्ध श्रावक बन सकते हो।

पौटिला सतीजी से १२ व्रत स्वीकार कर श्राविका बनती है। साध्वीजी उसे व्रतो का ज्ञान करा रहे है। आगे क्या होता है? यथासवर कहा जायगा।

ता. १४–१०–६८

[१०९]

भगवान का मार्ग अहिसा का मार्ग है। मन वचन और काया से किसी को भी दुख न पहुंचाना अहिसा है। 'अहिसा परमोधर्मः' यह तो सभी कहते है, पर जैनियो की अहिसा सबसे न्यारी है।

सव्व भूयप्प भूयस्स समं भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स पावकम्मं न बंधइ।

जो अपनी आत्मा के समान ही दूसरे जीवो को भी मानता है, वह कभी हिसा नही कर सकता है। किसी भी जीव को मारना पाप है–क्योंकि मरना कोई नही चाहता। दुख किसी को प्रिय नही होता है —

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिजिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निगंथा वज्जयंतिणं।

सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता। जीव का स्वभाव ही जीने का है। जो था, है और रहेगा उसी का नाम जीव है। जीव कभी मरता नही है–ट्रांसफर हो जाता है, यह शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। उसीको तुम जीव का मरना समझ लेते हो, पर यह मृत्यु जीव की नही, शरीर की है। उसके लिये शोक क्यों करते हो ? वह तो यह जगह छोडकर दूसरी जगह चला गया है। मरा कहां है? इतना भी समझ जाओगे तो कितना आश्वासन मिल सकता है। हृदय का वोझ हल्का हो सकता है। तो फिर शोक क्यो करते हो? क्यों जीवित रहने के लिये हिंसक दवाइयां और इंजेक्शन लेते हो ?

अपने लडके को जीवित रखने के लिये तुम दूसरे प्राणियो की हिंसा नही देखते हो। यह कैसी बात है? ज्ञानियो ने तो दूसरों की रक्षा के लिये हंसते हंसते अपना बलिदान किया है। मुनि तो जीव हिंसा के कार्य मे एक शब्द भी नहीं बोल सकता है।—

जंगल मे कोई मुनि जा रहे हो, हिरनो का झुड उनके सामने से निकल जाय, पीछे से शिकारी आकर मुनि से यह पूछे कि हिरन किस ओर भागे है? तो मुनि उसका उत्तर न दे, मौन धारण कर ले। भगवान ने कहा है ऐसी अवस्था में मुनि बोल नही सकता है। अगर वह यह कहे कि मुझे पता नही है तो इससे उसका दूसरा व्रत भंग होता है। अगर वह बता दे तो पहला व्रत भंग हो जाता है। अतः मौन ही रहे। भले ही शिकारी उस पर क्रोध करे– मारे–काटे या जला दे–मुनि मरना कबूल करे पर अपने व्रत पर आच न आने दे। इसी का नाम अहिसा है।

ऐसा अहिसक हिंसक दवाओ का उपयोग कैसे कर सकता है?

मैतार्य मुनि मासखमण का तप करते है। आठ कन्याओ को छोड़कर वे दीक्षित बने है। संयम लेते ही उन्होने आत्मा को तपाना शुरु कर दिया–तपश्चर्या करने लग गये। आचाराग मे भगवानने कहा है।–

एस वीरे पसंसिए अच्चेइ लोयं संजोयं

वीरप्रभुने उसी की प्रशंसा की है जो इस ससार से अलिप्त रहता है। कितना कमाते हो? कितने लडके है? वे क्या करते है? शादी कब करोगे? साधु इन झझटो मे नही पडते। वह तो अपने व्यापार मे जुट जाते है। क्षमा, दया, सतोष–आदि गुणो की वृद्धि मे वे लग जाते है। सयम मे प्रवृत्ति करते है और आस्रव का आना बद कर देते है। जो पुराना आया हुआ है उसको नष्ट करने के लिये वे तप करते है। तप से पुराने कर्मो की निर्जरा हो जाती है।

मेतार्य मुनि भी ३० दिन की तपश्चर्या करते है। ३१ वें दिन वे पारणा के लिये राजगृही नगरी मे आहार लेने आते है——

फरता फरता आवीया राजगृही मोजार
मासखमण ने पारणे फरता घर घर वार।
मेतारज मुनी आविया कांई सोनीडा ने हाट।
सोनीडो कांइ घडी रह्यो छे, जवला केरा घाट।
जवला घडवा पडता मुकी वंध्या मुनि ना पाय।
भिक्षा देवा मुनिराज ने सोनी गयो घर मांय
त्यांतो साचा जव जाणी पंखी जवला चणवा लाग्युं।
सोनी देखी मुंखमां मुकी. जीव लईने भाग्युं।

भिक्षा के लिये वे राजगृही मे, जो मुनि की जन्म भूमि है, घूम रहे है। साधु को अपने गांव का भी मोह नही होता। भगवान महावीर ने अपनी जन्म भूमि क्षत्रिय-कुड मे एक भी चातुर्मास नही किया। जितने भी चातुर्मास किये राजगृही मे ही किये। वीतरागता प्राप्त करनी है तो फिर राग का क्या काम है? यह मेरा घर या यह मेरा गांव है, ऐसा विचार भी क्यो आने देना चाहिये? संयमी जीवन तो उच्च कक्षा का जीवन है। थूक कर चाटने मे बुद्धिमानी नही है?

मुनि आहार लेने जा रहे है। घूमते घुमते वे एक सोनी के घर जा पहुचे। सोनी स्वर्ण का जव बना रहा था। मुनि को देखा तो भिक्षा देने अंदर चला गया। घर मे जो कुछ था वह शुद्ध आहार मुनि को दे दिया? अशुद्ध आहार देने वाला भी पाप का भागी बनता है। साधु आवे या न आवे तुम दान देने की भावना तो कर सकते हो न? किसी दिन साधु आ जाय तो निर्दोष आहार का दान दो-शुद्ध मन से दो—ऐसा दान ही सुपात्र दान कहा जाता है।

सोनी मुनि को आहार देने घर मे जाता है। और पीछे से पक्षी उसे जौ समझ कर खा जाता है। मुनि लौटते है तो वे यह देख लेते है कि पक्षी जौ खा गया है। पैर का आहट सुनते ही पक्षी तो भाग गया। सोनी भिक्षा दे वाहर आया। मुनि घर से वाहर निकल चुके थे। सोनी ने जव नही देखे तो सोचा—वे कहा चले गये? और तो कोई आया नही है। हो न हो वह साधु ही उन्हे लेकर चला गया है। वह भाग कर साधु के पीछे दौडता है। अव तक तो उसके मन मे मुनि के प्रति वड़ा मान था, पर अव उसकी भावना वदल गई। साधु होकर भी चोर निकला! वह चिल्लाया—ओ मुनि खडे रहो। मेतारज मुनि समझ गये— जौ पक्षी खा गया है और सोनी मुझे चोर समझ रहा है। सोनी मुनि को वापस अपने घर लाता है और पूछता है—

सोनी पूछे जवला क्यां छे. मुनिवर कांइ न बोले।
चोर कदि माने नहि जल्दी अेम कही ढंढोले।

जव कहां है? तुम आये थे तव तो वे थे और तुम गये कि उनका भी पता नही? बोलो, कहां रखे है उनको? मुनि कुछ नही वोलते है। उनको चुप देख कर सोनी की शंका और दृढ होती है। उसने मुनि के वस्त्र टटोले—पात्र भी देखे, पर जव कही नही दिखे। वह क्रोधित होकर वोला—सच सच वतादो—कहां रख कर आये हो? नही तो मै तुम्हारी ख़वर ले लूगा।

बलवलता बपोरे सोनी वाधर शिश विंटाडे।
मुनीना मस्तक मांथी जाणे वीज कडाका बोले।
फटफट फूटे हाडका ने त्रट त्रट त्रुटे चाम।
सोनीडे संतापिया पण मुनि रह्या मन ठाम।

हे मुनि! वोलते हो कि नही? मै ऐसे ही छोडने वाला नही हूं। वता दो कहा रखे है? मुनि अव भी मौन रहते है। वह तो यह जानते है कि मै पक्षी का नाम वता दूगा तो यह उसे जीवित नही छोडेगा। नाहक बेचारे की मौत हो जायगी। भले चाहे जो हो जाय मुझे उसकी जान तो वचानी ही है। मुनि मौन ही रहते हैं। सोनी मुनि को वाडे मे ले जाता है। मुनि ने मासखमण का पारणा भी नही किया है और यह उपसर्ग उसे आ गया! भगवान ने कहा है—चाहे जैसा उपसर्ग क्यो न आ जाय जो मुनि समभाव पूर्वक सहन करता है वही सच्चा मुनि कहा जाता है।

सोनी ने मुनि पर गीला चमडा लपेटा और धूप मे खडा कर दिया। जैसे जैसे गरमी वढती गई मुनि का शरीर चमडे से सिकुडने लगा—हड्डिया टूटने लगती है, फिर भी मुनि शांत भाव से स्थिर रहते है—

सम्मं सहइ खमइ तितिखेइ अहियासेइ

वे समभाव पूर्वक पीडा सहन करते है। सोनी के प्रति लेश मात्र भी क्रोध नही करते——

तोये अे मोटा मुनि मन ना आणे रोष।
आतम निंदे आपनो, सोनी नो श्यो दोष?
समझावे संकट सही, सत्वर केवली थाय।
वधती चाली वेदना, मुनिवर मुक्ते जाय।

मुनि देह भाव छोडकर आत्म भाव मे लीन हो जाते है। मुनि के पास अनेक लब्धिया थी—आख ऊंची करके भी देख लेते तो सोनी जल कर राख हो

जाता। ऐसी तेजोलेश्या भी उनके पास थी – फिर भी वे शांत ही बने रहे। सोनी पर रंच मात्र भी रोष नही। प्रतिकूलता को अनुकूलता मे लेजाने वाले तो विरले ही होते है।

अगवडता मां सगवड करी वर्ते करे न गडबड गोटो
बडबडता लोको थी जे कोई बीये नहि ते जन मोटो।

जो सच्चे साधक होते है वे किसी से भयभीत नही होते । वे तो मौके का इन्तजार करते है। मृत्यु का भी वे हंसते हुए स्वागत ही करते है। जन्म के साथ मृत्यु तो लगी ही हुई है। फिर भयभीत क्यो होते हो?

काचा सुतरना तार ना जेवी छे मानव जिंदगी।
तंद्रा मुकी देतुं आज थी, करी ले प्रभु नी बंदगी.
कोने खबर छे कालनी देह तणी दिवालनी.

यह शरीर तो कच्चे सूतका बना हुआ है, कभी भी टूट सकता है। नारकी और देवता का आयुष्य तो निकाचित है–बंधा हुआ है–अकाल मृत्यु उनकी नही होती। लेकिन मानव के सिर पर तो काल घूम रहा है–कभी भी वह तुम्हारा गला दबा सकता है। अतः प्रति दिन भगवान को याद कर लिया करो। यहा रोज प्रार्थना तो होती है, पर उसमे आदमी कितने आते है? कैसे आवे? रस ही नही आता। ये धर्मस्थानक क्यो बनाये जाते है? सामूहिक रूप से धर्म ध्यान किया जा सके इसीलिये तो बनाये जाते है। पहले के जमाने मे तो श्रावको के घर मे ही पौषधशाला भी हुआ करती थी। पर आज ऐसे घर कहा है? आज तुम मकान लेते हो तो पायखाना और बाथरुम पहले देखते हो–पौषधशाला का तो विचार भी कहां आता है? क्योकि शरीर की ही चिन्ता करते हो–आत्मा का तो विचार ही कहा करते हो? प्रार्थना मे तो अपार शक्ति रही हुई है – शुद्ध मन से और एक रूप होकर अगर वह की जाय तो वही भगवान बना देती है।

शब्दों सामे जोईश मां तु भाव हृदय नो जोजे।
कंठ सुरीलो होय भले ना ताल जीवननो जोजे।

शब्दे शब्दे गुंथायेली, गीते गीते गुंथायेली
पारखजे तुं प्रीतरे व्हाला (.२)
अंतर ने एक तारे मारे गावा तारा गीतरे व्हाला...गावा

प्रार्थना करते समय साधक और कुछ नही देखता वह तो अपना तार प्रभु से मिलाना चाहता है। मानतुगाचार्य की प्रार्थना तो देखिये—

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्
यत्कोकिल किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चारुचाम्र कलिकानिकरैक हेतु।

हे भगवन, मै तो मूर्ख हूं। पडितो के बीच हास्यास्पद हूँ। फिर भी तुम्हारी भक्ति मुझे जबरन बोलने को बाध्य कर रही है। जैसे वसन्त आती है तो आम्र मंजरियो को देख कर कोयल अपने आप बोलने लग जाती है वैसे ही तुम्हारी भक्ति ही मुझे मजबूर कर रही है। ऐसी निरभिमानता हृदय मे जब पैदा होती है तभी प्रार्थना सफल होती है। लेकिन आज तो थोथा चणा बाजे घणा—एरंडोपि द्रुमायते जैसे हालत हो रही है। भगवान तो अनंत गुणी है। उनका कथन हम नही कर सकते। हे प्रभु ? तू मेरे शब्दो को मत देख—मेरा कंठ भी सुरीला नही है उसे भी मत देख—तू तो मेरे भावों को देख—हृदय का प्रेम देख। मुझे तुमसे ही अटूट प्रेम है। तू मुझ पर कृपा कर और मुझे भी अपने जैसा बनाले। यही मै चाहता हूँ।

एक लडकी मां के साथ अगुली पकड कर चलती है। चलते चलते लडकी पीछे रह जाती है—साथ छूट जाता है। लडकी मां—मा कह कर चिल्लाती है। आदमी उसे रोते हुए देखते है तो पूछते है तू किसकी लडकी है? वह कहती है—मेरी मा, मेरी मां और कुछ नही कहती। ऐसे ही साधक भी जब यही कहने लग जाय कि मेरे प्रभु—मेरे प्रभु—इसके सिवाय और कुछ न दिखाई दे तभी भक्ति सफल कही जा सकती है।

आखिरकार लडकी को पुलिसचौकी मे पहुंचा दिया जाता है। मां घर चली आती है। सोचती है, लडकी पीछे आ रही होगी। काफी समय हो गया फिर भी जब वह नही आई तो वह उसको ढूढने जाती है। लडकी पुलिस चौकी मे भी मेरी मां—मेरी मा ही कहती है—उसे तो एक ही धुन है। तुम भी तो एक ही धुन मे पडे हुए हो—हाय पैसा—हाय पैसा—! भगवान को कब भजोगे ?

मा ढूढते २ पुलिस चौकी पहुंचती है। लडकी अपनी मां को देखती है तो वह दौडकर अपनी मां से लिपट जाती है—मां भी अपनी लडकी को उठा लेती है। दोनो का वात्सल्य उभर आता है। भक्ति भी ऐसी ही होनी चाहिये। पर आज की भक्ति तो बगुला भक्ति हो गई है। मुह से तो राम—राम करते रहते हो, पर मन मे तलवार चलाते रहते हो—मौका आया नही कि उसका बराबर कर देते हो। बंधुओ! ऐसा मत सोचो। बहुत समय से तुम यही करते आ रहे हो। अब इसे छोड दो और जो करने योग्य है वही करो। बच्चा रोता है तो उसे

मनाने के लिये क्या क्या नही करते हो? पर अपनी आत्मा को कभी रिझाते नही हो। यो क्यो अपनी जिन्दगी बरबाद कर रहे हो? भगवान को याद करोगे तो आबाद रह सकोगे नही तो बरबाद हो जाओगे।

कबीर कहे साधका साहेब आवे याद।

लेखे ते सोही घडी बाकी का दनिया बाद बादने बाद।

कबीरने कहा—जितनी देर भगवान का नाम याद आये उतना समय ही सार्थक समझना चाहिये। बाकी समय बरबाद गया समझ लो। तुमने अपना समय कहा गुजरा है? जिसने अपना स्वरूप समझ लिया वह कभी पर मे माथा नही मारता है। शरीर जाय तो क्या और रहे तो क्या? न हर्ष होता है और न दुख। मुनि सोनी पर रोष नही करते। समभाव मे ही रहते है। क्योकि वे तो यह समझते है कि

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि

किये हुए कर्मो को तो भोगना ही पडेगा। मुनि अपने ध्यान मे तल्लीन है, मरणान्त वेदना हो रही है—शरीर से चमडा अलग हो रहा है फिर भी उनकी समता मे कोई अन्तर नही आता। वे तो केवल ज्ञान, दर्शन की प्राप्ति कर मोक्ष में सिधार जाते है। अक्षय आनंद के धाम मे पहुच जाते है।

कार्मण—काचली फूट गई और आत्मा का अखड गोला मोक्ष मे पहुच गया। मुनि का क्या बिगडा? जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। कोई गाली दे तो मै क्यो बुरा मानू? मेरा क्या अहित हो सकता है? वह स्वय अपना ही अहित कर रहा है। क्रोध के सामने क्रोध मत करो। वह अज्ञानी है, इसीलिये क्रोध करता है। उसका मुकाबला मै क्यो करू? ऐसा समझने वाला ही आत्मा की पहचान कर सकता है।

मेतारज मुनि तो मोक्ष मे चले गये। इतने मे तो लकडी की भारी लिये हुए एक औरत वहा आई। उसने अपनी भारी नीचे डाली। उससे जो आवाज हुई उसे सुन कर वही पक्षी चौक पडा और उसे टट्टी हो आई। जिसमे वे सब जौ बाहर निकल आये।

त्यां तो आवी एकनारी फेंकी अेणे काष्ट नी भारी।
घबकारे पेलूं पंखी चमक्युं सत्वर, जवला दीधा काढी।
विष्टा मांही जवला भाली सोनी भूल्यो भान।
नाहक मे मार्या मुनिवरने आखर आव्युं भान।
पश्चात्तापे रडतो सोनी आंसुडे चोधार
माफ करो मने माफ करो एम बोले वारंवार।

अन्त में सत्य तो प्रकट होता ही है। मुनि ने तो वे लिये नही थे। सोनी ने पक्षी की टट्टी मे वे जौ देखे तो वह रोने लग गया। नाहक मैंने मुनिवर को चोर बनाया और उन्हे मार दिया। मैंने कैसा भयंकर पाप किया है? वह दौड कर वाडे मे जाता है और चमडा हटाता है। पर अव वहा मुनि कहा थे? वहां तो उनका शव पडा हुआ था। सोनी रोता है—मुझे माफ करो! मुझे माफ करो! मैंने नाहक आपको मार दिया। आप निर्दोप थे। इस पाप का दोषी मैं हूं। मैं कब इस पाप से मुक्त बनूंगा? सोनी पश्चात्ताप करने लगता है। वह स्वय मुनि का ओघा और पात्र लेकर मुनि वन जाता है और इस असार संसार को छोड देता है।

जीव दया ना कारणे जेणे दीधा प्राण।
मेतारज मुनिराज नुं जीवन धन्य प्रमाण।

जीवदया के लिये जैनधर्म के साधक समय आने पर अपना बलिदान भी कर देते है।

उनकी अहिसा तो देखो। मर जाना कवूल है, पर किसी का बुरा नहीं होने देते हैं। लेकिन आज क्या हो रहा है? डी. डी टी. छिडक कर प्राणियो का घात किया जा रहा है—मक्खी, मच्छर, चूहे और बंदर मारे जा रहे है। एक पक्षी के लिये अपना बलिदान करने वाले मुनि कहा और आज का मानव कहा जा रहा है? अतःसमझो और आत्मा का हित जिससे हो वही करो। हिसक दवा या चमडे की वस्तुओ का उपयोग मत करो। तभी अहिसा को जीवन मे उतार सकोगे।

पौटिला बारह व्रत का स्वरूप समझ रही है। सुव्रताजी साध्वी जी उसे क्रमशः स्वरूप समझा रही है। आगे क्या होगा? यथावसर कहा जायगा।

ता. १५-१०-६८

[११०]

पौटिला को साध्वीजी बारह व्रतो का स्वरूप समझा रही है। पहला अणु-व्रत थुलाओ पाणाई वायाओ—पहला अणुव्रत जिसमे स्थूल प्राणातिपात यानी त्रसजीवो को मारने की बाधा ली जाती है। स्थावर जीवो की नहीं। त्रस मे भी सापराधी को छोडकर नियम लिया जाता है। चोर—व्यभिचारी या वदमाश को सजा देने की छूट रखी गई है। पहले के श्रावक लडाई भी करते थे।

चेडा राजा लडाई करता है। उसके सामने आकर उसका शत्रु खडा हो

जाता है। वह कहता है। राजन् ? तू अपना वाण छोड, मैं तुम्हारे सामने आ गया हूं। लेकिन राजा कहता है– यह मुझे नहीं कल्पता, पहले तुम अपना वाण चलाओ फिर मैं चलाऊंगा। लडाई में भी धर्म को भुलाते नहीं थे। लेकिन आज तुम क्या कर रहे हो ? दुकान पर कोई ग्राहक आ जाय तो उसे किस तरह फंसाने की कोशिश करते हो ?

भगवती में वरुणनाग नटुवा का अधिकार आता है। वह यावज्जीव छट्ठ का तप कर रहा है। चेडा राजाने उससे कहा–तुम्हे भी युद्ध मे चलना होगा। उस दिन उसके छट्ठ का पारणा आता था, लेकिन समय न होने से वे पारणा न कर अपना तप आगे बढा देते है और अट्ठम का पच्चक्खाण कर लेते है। युद्ध के लिये तैयार हो वे चल देते है। पर सांथ मे संथारे का भी सामान ले लेते है। क्योकि साधक तो हर समय अपने साथ मृत्यु को लेकर ही चलते है। तुम दर्शन यात्रा करने जाते हो, पर साथ मे मुखवस्त्रिका या वैठका कहां ले जाते हो ? मै कहा जा रहा हूं ? यह तो याद रखना चाहिये न ? शादी करने जाओ और कोई राम राम बोले तो ? मुर्दा निकल रहा हो और वहा कोई गणेशजी की स्थापना करे तो ! तुम क्या कहोगे उसे ? विवेक तो रखना चाहिये न ? जहां भी जाना है वैसे साधन तो साथ मे रहने ही चाहिये।

वरुणनागनटुवा तेला पचक्ख कर युद्ध मे चल देता है। घोडे से घोडे–हाथी से हाथी, पैदल से पैदल आमने सामने लड रहे है। किसी के पास हथियार नही तो हथियार देकर लडाई करते है–निहत्थे से लडना कायरता समझते थे। परन्तु आज की लडाई तो देखो, चुपके से वम फेककर शत्रु भाग जाता है।

दुश्मन कहता है–राजा, चलाओ अपना वाण। लेकिन–राजा कहता है–नहीं, पहले मै नही चला सकता। शत्रु अपने धनुष पर बाण रख कर छोडता है तो वह सीधा वरुणनागनटुवा के सीने मे आकर घुस जाता है। उसने सोचा–अब मेरा वच सकना कठिन है–वह समरांगण से बाहर आता है और भूमि पूज कर आसन विछा देता है ! तत्क्षण संथारा कर चौरासी लाख जीव योनि से क्षमायाचना करता है। अणुव्रत से अव वह महाव्रत में आ जाता है। शरीर को भी वह वोसिरा देता है। जैसे ही उसने सीने मे लगा हुआ बाण वाहर निकाला–वह मर जाता है। और देव लोक मे देव रूप मे उत्पन्न होता है।

उसका एक वालमित्र भी उसके साथ लडाई मे घायल हो जाता है। वह भी उसके साथ समरागण से वाहर आता है, पर उसके साथ वरुणनागनटुवा की तरह धार्मिक उपकरण नही थे। न उसे व्रत–पच्चक्खाण ही आते थे। फिर

भी वह उसे देख कर यही कहता है, मेरा मित्र जो कर रहा है—वही सच्चा है।

जाणे अजाणे जे पडिकमशे ने
करमे हलवो थाशे
वरुण नाग नटुवाना मित्र दृष्टांते
जाण जो मुक्ते जाशे।
संगे करवुं ते रंगे हो राज.
पडिम्कमणुं मन चंगे।

जानते या अनजानते भी जो प्रतिक्रमण करते है—वे कम से कम उस मार्ग पर तो चल देते है। कभी न कभी तो वे उसका मर्म समझेगे ही।

सर्प-दंश वाले को यात्रिक मंत्र सुनाता है। पर वह तो वेभान रहता है, वह उसे सुनता थोडे ही है? पर जैसे जैसे वह वोलता जाता है, उसका जहर उतरता जाता है। शव्द मे भी कैसी शक्ति रही हुई है? अतः प्रतिक्रमण भी अवश्य करना चाहिये। उस मे तो वडी ताकत है। व्रत लेने वाले को ही प्रतिक्रमण करना चाहिये—दूसरा क्यो करे? ऐसी वात भी नही है। प्रतिक्रमण तो हर एक को करना चाहिये। अपने किये हुए पापो से पीछे हटने का नाम ही प्रतिक्रमण है। जव तक तुम अपने पापो से मुक्त न हो जाओ तब तक तुम प्रतिक्रमण करने से मुक्त कैसे हो सकते हो?

करने योग्य काम तो व्रत और पच्चक्खाण ही है। शेप काम तो अनादि काल से तुम करते चले आ रहे हो। स्पृहा—आशा—तृष्णा की विष—वेल तो वहुत लम्वी—चौडी है, जो अनादि काल से फैली हुई है। आत्मा उससे ढंक गई है। उसको तो मूल से उखाडोगे तभी काम हो सकेगा। अब तक तो तुमने पर में ही रति की है। वाल—वच्चो का, व्यापार का, आवागमन का और मकान आदि का ही विचार किया है, अपने स्वरूप का तो विचार भी नही किया है। जो अपना विचार करता है उसका ही उद्धार होता है।

आज तुम्हारे जीवन मे आत्म—रति है या पर—रति है? अट्ठम क्यो किया? किसी ने कराया है। जो करेगा उसे ३ रुपया मिलेगा। इस आशा से किया गया है।

दान क्यों देते हो? नाम होता है। लोग ढूढते हुए भी मेरे पास आते है। कितना मेरा नाम हो गया है?

मै कितना सुदर वोलता हूं। कितने लोग सुनने आते है? दूसरे साधुओ के पास तो वहुत कम लोग जाते है। मेरी कितनी वाहवाही हो रही है? साधु होकर भी अगर ऐसा सोचे तो उस साधुता का भी क्या मूल्य है?

उपवास किया है– पानी माग रहे हो। पत्नी ने गरम पानी का गिलास हाथ मे दे दिया। तुम उसे पीते हो पर मजा नही आता। सोचते हो ठंडा होता तो ठीक होता।

पौषध करके बैठे हो–यहा हवा नहीं है। वहा चल कर वैठू–उधर हवा आ रही है। यों किया तो पौषध है, पर भाव जड मे ही वना हुआ हो तो यह भी क्या तप कहा जा सकता है?

जड का ही पोषण करते रहोगे तो स्व मे कव आओगे? अनन्त काल तुमने अनात्म रति में निकाल दिया है, अब तो आत्म रति मे आओ– देह–पलटा करो–बस, अव करने योग्य तो यही रहा है।

लडका शादी करता हो, घर मे कुछ न हो तो माग कर भी गहने पहनाते हो। गहने पराये है– अपने नही है, फिर भी उनकी संभाल कितनी करते हो? कही घुम जायगे तो उन्हे देना पडेगा। मागे हुए गहनो पर अपने गहनों जैसा मोह कहा रखते हो? वैसे ही यह शरीर भी तुम्हारा नही है, फिर भी उस पर इतना मोह क्यो कर रहे हो? आत्मा को तो जाना ही नही है? पुद्गलानदी अवस्था छोडो और आत्मानदी बनो। शरीर तो पराया है–वह तुम्हारा कहा है? मांग कर गहने पहनने वाले को जब असली मालिक देखता है तो वह अपने मित्र से कहता है–ये गहने उसके नही मेरे है। यह सुन कर पहनने वाले को कितना बुरा लगता है? पर वह क्या कर सकता है? अपने पास नही है तभी तो वह मांग कर पहनता है। इसी तरह तुम भी पराये मे क्यो झूम रहे हो?

पार के मांडवणे चेतन आटलो शुं मटको।
स्थिति पाकशे काढी मुकशे पछी चढशे चटको।

स्थिति पक जायगी तो तुम्हे भी बाहर निकाल दिया जायगा। शरीर तो जड का पिड है। मै तो चैतन्य का पिड हूं। मुझे तो गुण की ही स्पृहा करनी चाहिये, पर की क्यो करूं? पराये गहनो में मुझे आनद नही मानना चाहिये– क्योकि उसे तो वापस दे देना है!

सुख जे रह्यु तप धन तथा चारित्र ना गुण पुंजमां।
तेमज अनंतु सुख साचुं विरति केरी कुंज मां।
ते सुख भाग अनंतमो ना होय भोग विलास मां।
कामादि मां जे मोज माणे अंधते अज्ञान मां।

सुख कहा है? चारित्र के रग रग मे सुख रहा हुआ है। पर मे वह नहीं होता है। फिर भी अज्ञानी उसमे लट्टू हो जाता है। लेकिन ज्ञानी तो स्व मे सुख खोजता है। विरति मे ही सच्चा सुख है। चारित्र मे जो प्रशम रस रति है

उसका अनंतवां सुख भी काम भोग मे या वैभव-विलासमे नही है। फिर भी जो कामादि मे मौज मान रहे है वे अज्ञानी है-अंधे-है-मूढ है। वे जड के पीछे जड होकर फिरते है। लेकिन सच्चा सुख तो आत्मा में है।-स्व में है, पर मे सुख नही है-न मिल ही सकेगा।

अहिसा मे जो सुख है वह अन्यत्र नही है। वरुणनाग नटुवा तो देवलोक मे पहुंच गया। श्रावक मर कर वैमानिक देव ही वनता है। उसका मित्र भी उसी की देखादेखी करता है। उसको जो हो, वह मुझे भी हो। वह कुछ जानता नही है, पर वह जो कर रहा है, वही ठीक है ऐसा समझ रहा है अतः वह मर कर भी मनुष्य ही बनता है। इस भव मे भी वह वडा भद्रिक और धर्मपरायण होता है। यहा से मरकर वह महाविदेह क्षेत्र मे मनुष्य वनता है। और वहा वह दीक्षा धारण कर मोक्ष मे चला जायगा।

वरुणनाग नटुवा को देवता का ४ पल्य का आयुष्य मिला। वहा से वह महाविदेह क्षेत्र में पैदा होगा और फिर मोक्ष मे जावेगा। लेकिन उसका मित्र उससे पहले ही मोक्ष मे पहुंच जावेगा। वह कुछ जानता नही था, फिर भी सत्य के प्रति उसका अनुराग था। हृदय की सरलता थी-उसी का उसे यह फल मिला। भगवान से प्रश्न पूछा गया है कि हार और हाथी के संग्राम में जो १ करौड ८० लाख प्राणी मारे गये थे वे मर कर कहां गये है?

युद्ध मे ये दो मरे तो देवताओ ने उन पर पुष्प वृष्टि की। इससे दूसरो ने समझा जो युद्ध मे मरता है वह अप्सराओ का प्रिय होता है। भगवान ने कहा, ऐसा समझना ठीक नही है। उस युद्ध मे १ करौड ८० लाख प्राणी मारे गये। उसमे से केवल वरुणनाग नटुवा ही मर कर देवगति मे गया और उसका मित्र मरकर मनुष्य वना, वाकी सभी नरक और तिर्यंच गति मे गये है। दस हजार जीव तो एकही मछली की कोख से उत्पन्न हुए है। काली, महाकाली आदि के १० लडके मर कर ४ थी नरक मे गये है। वहा से निकल कर वे मनुष्य भव धारण करेगे और मोक्ष मे जावेगे। परन्तु अभी तो वे भयकर पीडा ही भोग रहे है।

उस लडाई मे श्रेणिक के दो हाथी-उदयानंद और भूतानद-भी मर गये थे। वे मरकर पहली नरक मे गये है। वहा से वे मनुष्य बनेगे और मोक्ष मे जावेगे। यह भगवान की कही हुई वात है। ऐसे वैसे की कही हुई नही है।

श्रावक या साधक तो युद्ध भूमि को भी धर्म भूमि वना देता है। यह उसके हाथ की वात है। तुम तो यहां से घर या दुकान जाते हो तो धर्मी होकर जाते हो। लेकिन वहां जाकर धर्म को कहां लटका देते हो? घर हो या दुकान सर्वत्र सत्य व्रत का पालन करो। कन्या-वर संबंधी-गाय भैस संवंधी, भूमि संवंधी, धरोहर

संबंधी झूठ नहीं बोलने का और झूठी साक्षी नही देने का नियम ले लो। करने योग्य तो यही है। इसमे पुरुषार्थ करोगे तो उद्धार हो जायगा।

एक वेश्या थी. एक दिन उसने भी श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर लिये। अब वह वेश्या न रही। सदाचार से रहने लगी। उसका एक चोर यार था। वह एक दिन राजा के यहा से हार चुरा लाया और वही हार वेश्या को इनाम मे देने आया। वेश्याने कहा—यह हार तू कहां से लाया है? सच सच बताना। अगर यह चोरी का होगा तो मैं नही ले सकूगी। चोर कहता है यह चोरी का नहीं है– मेरी कमाई का है। यों वह झूठ बोलता है। वेश्या उसकी बात को सच मान कर हार अपने पास रख लेती है। एक दिन गांव मे महोत्सव हुआ। वेश्या भी अपना यह हार पहन कर उसमें जाती है। रानी उसे देखती है तो वह अपना हार पहचान लेती है। बोल—यह तू कहां से लाई ? यह तो मेरा हार है? वेश्या सोचती है– अगर मैं उसका नाम बता दूंगी तो रानी उसे मरवा देगी—नाहक उसकी जान चली जायगी। अगर मैं यह कहूं कि मुझे पता नही है तो ऐसा कहने से मेरा दूसरा व्रत भंग हो जाता है। अतः वह मौन ही रहती है। रानी वेश्या को जेल में डलवा देती है। और रोज ५० कोडे उसे लगवाती है। फिर भी वह बोलती नही है। समभाव पूर्वक वह यह मार भी सहन करती है।

जब यह उस चौर को पता चलता है तो वह सोचता है—हार तो मैंने उसे दिया है, पर वह मेरा नाम बता नही रही है और मेरे खातिर खुद कौडे खा रही है। यह तो ठीक नही है। पाप मैंने किया है और फल वह क्यो भोगे? वह राजा के पास गया और सच सच कह सुनाया—महाराज! रानी का हार चुराने वाला मैं हूँ, मैंने ही उसे वेश्याको दिया था। वह तो बिल्कुल निर्दोष है। राजाने जब यह जाना कि वेश्या होकर भी वह तो श्राविका है– व्रती है, दूसरे का अहित न हो इसके लिये वह स्वयं कौडे की मार खाते हुए भी कुछ बोलती नही है तो राजा को भी उसके प्रति बहुत मान पैदा हुआ और उसने उसे बंधन मुक्त कर दिया। उसके बजाय अब चोर को फांसी की सजा हो गई। वैश्या उसके पास आई और उससे बोली– इसमे किसी का दोष नही है– तेरे कर्मों का ही दोष है– तू अपनी आत्मा मे सरलता रखना– किसी पर भी रोष मत करना। दूसरा कोई तेरा दुश्मन नहीं है तेरा कर्म ही तेरा दुश्मन है। नवकार का जाप कर– यही शाश्वत शरण है। चोर भाव पूर्वक नवकार का स्मरण करता है और करते करते ही मर जाता है। मर कर वह राजा के यहा ही पुत्र रूप मे उत्पन्न होता है। वैश्या समझती है कही वही तो मर कर राजा के यहा उत्पन्न नही हो गया! वैश्या

राज महलों में जाती है तो बालक को खिलाती है। चारु पिंगल शब्द कहती है-जिसे सुन कर बच्चा भी मुदित हो जाता है। बालक को जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है। वैश्या समझ जाती है कि यह वही चोर का जीव है। अन्त समय मे उसने धर्म सुना तो उसी का यह फल उसे मिला है। अब भी अगर इसे धर्म सुनाया जाय तो यह उच्च बन सकता है। वह उसे झूला देते हुए भी धर्म ही सुनाती है। इसका फल यह हुआ कि वह जब बडा होता है तो साधु बन जाता है। कहने का आशय इतना ही है कि जो व्यक्ति कसौटी के समय भी व्रत नही छोडते है-सत्य नही छोडते है-चोरी का माल नही लेते है वे ही आगे बढ सकते है। व्रत लोगे तभी तो ऐसा कर सकोगे। आगे क्या होता है! यथावसर कहा जायगा।

ता. १७-१०-६८

[१११]

पौटिला श्रावक के बारह व्रत स्वीकार कर रही है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच महाव्रत है। इनमे भी अहिंसा सर्व प्रथम है, जिसमें शेष चारों का भी समावेश हो जाता है। शेष जो चार महाव्रत है वे भी अहिसा का पोषण करने के लिये ही है। अहिसां और दया मे कोई अन्तर नहीं है। दोनो पर्याय-वाची है। दया दो तरह की बताई गई है- स्व दया और पर दया। जो अपनी दया पालता है उसमे परदया भी आ ही जाती है। लेकिन जो पर दया पालता है उसमें स्व की भजना रहती है- हो भी सकती है और न भी हो।

आत्मा की हिंसा न हो इसके लिये स्व दया बताई गई है। इसके ८ भेद कहे गये है-

१. स्वदया- अपनी आत्मा को पाप से बचाना स्व दया है। कदम-कदम पर आत्मा को पाप मे चले जाने का अदेशा रहता है। किसी की नीदा करना, दूसरा दुखी है तो उसको देख कर खुश होना, अप्रिय वचन कहना, क्रोध करना, मान या माया करना, काम भोग मे आसक्त बन जाना आदि आदि ऐसे कार्य है जिनके प्रति सतकर्ता रखी जाय तो आत्मा पाप मे जाने से बच सकता है। अपनी आत्मा की दया पालना भाव अहिसां है। जो दूसरो की नीदा करते है वे अपनी ही भावहिसा करते है। अतः अपने आत्मा की हिंसा मत करो- आत्मा को दुख मत दो, अन्यथा वह सुखी कैसे हो सकेगा?

सुख दीधे सुख होत है, दुख दीधे दुख होय।
आप न हणिये अवरकुं तो आपकुं हणे न कोय।

याद रखो जो तुम दोगे वही ले सकोगे– जो बोओगे वही मिलेगा, बाजरा बोओगे तो बाजरा ही मिलेगा । करोगे तो पाप और चाहोगे सुख तो यह सभव नही है । सुखी होना तो अपने हाथ की बात है, दूसरा कोई सुखी नही बना सकता है ।

व्यापार में नुकशान चला जाय तो भाई-बधु, सगे संबधी भी उसमे मदद कर सकते है । पर याद रखना तुम्हारे दुख मे कोई भी मददगार नही बन सकेगा । कर्म तुमने किये है तो भोगना भी तुम्हे ही पडेगा । यह तो बिल्कुल सीधी सादी बात है ।–

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।

अतः विभाव भाव को दूर करो । मनुष्य भव ही ऐसा है जिसमे यह किया जा सकता है । स्वदया– अपनी आत्मा की दया करो । आत्मा की हिसा न करना स्व दया है ।

२. परदया– दूसरो की दया करना पर दया है ।

३. द्रव्य दया– देखादेखी दया पालना, द्रव्य दया है । तुमने क्या किया है ? आज पंचमी है– दया की है, उसने की है तो मै भी कर लू । आज वह हरी नही खा रहा है तो मै भी नही खाऊ । ऐसी देखादेखी करना द्रव्य दया है । ऐसा करते करते भी एकदिन वह सत्य स्वरूप को समझ सकता है ।

४. भावदया– अन्त.करण मे जब दया का भाव पैदा हो जाता है तब वह भाव दया कही जाती है ।

५. व्यवहार दया– यत्ना पूर्वक काम करना व्यवहार दया है । झाडू लगाना हो तो देख कर लगावे, कोई जीव न मर जाय । पानी छान कर ले–यह व्यवहार दया है । आजकल तो घर मे नौकर काम करते है । वे क्या यत्ना रखेगे ? वह तो झाडू उठाता है और फटाफट साफ करने लग जाता है । चींटी जैसे छोटे प्राणी तो कई मर जाते है । यह यत्ना नही है । घर मे काम करते हुए भी यत्ना रखना व्यवहार दया है ।

६. निश्चय दया–अपनी आत्मा को कर्म–बध से मुक्त करना निश्चय दया है । समय समय जीव सात-आठ कर्म तो बाधता ही रहता है । उसे इस बधन से छुडाना निश्चय दया है ।

पुद्गल पर वस्तु है । वह तुम्हारा नही है । यह तुम समझ गये हो न ? फिर उसकी पूजा क्यो करते हो ? कल धन तेरस है– क्या करोगे ? धन की पूजा करोगे। तुम चैतन होकर धन की– जड की पूजा करोगे ? फिर तुम कहा समझे हो कि पुद्गल पर वस्तु है? जो पर है उसकी क्या पूजा? जो अपनी हो सके उसीकी पूजा की जानी चाहिये । आत्मा की लक्ष्मी तो अक्षय निधि है । अनंत ज्ञान–दर्शन और चारित्र का वह भंडार है । वह पत्थर के कंकरो की पूजा कैसे कर सकता है ? फिर तुम

यह क्या खेल कर रहे हो ? क्या पूजा करने से लक्ष्मी मिल जाती है ? पूजा तो सभी करते हैं, लेकिन लक्ष्मी तो किसी किसी को ही मिलती है । जिसका पुण्य प्रबल होता है वही लक्ष्मीवान बनता है । पूजा करने से कोई धनवान नही होता । फिर क्यों तुम यह समझ नहीं रहे हो ? तुम अपने घर मे ही क्यो नहीं देखते हो ? तुम्हारा नौकर चौबीसो घंटे काम करता रहता है, फिर भी उसके पास कितना होता है ? और तुम्हारे पास कितना होता है । जिसका जैसा पुण्य होता है वैसा उसे मिलता है । बैटरी का पावर पूरा होता है तो नया डालना पडता है । वैसे ही तुम भी नया कर रहे हो या पुराना ही खाये चले जा रहे हो ? अनंतज्ञान का स्वामी और जड चैतन का भेद विज्ञानी आत्मा क्या कभी जड की पूजा कर सकता है ? करता है तो क्या वह जैन कहा जा सकता है ? सम्यक्त्वी कहा जा सकता है ? अगर वह जैन है, सम्यक्त्वी है तो वह कभी जड की पूजा नहीं कर सकता है ।

श्रावक लक्ष्मी की पूजा नही कर सकता । लक्ष्मी तो श्रावक के पीछे २ दौडा करती है । देवता भी श्रावक से कहते है– माग माग तुझे क्या चाहिये ?

श्रावक कहता है 'असहाया देवा' तू मुझे क्या दे सकेगा ? जो मुझे मिल रहा है वह तो मेरे पुण्य से मिल रहा है । क्या तुम मुझे मोक्ष का सुख दे सकते हो ? उसके लिये तो अपना पुरुषार्थ ही काम देगा– दूसरे का लिया दिया वहां नही चल सकता । देवता भी उसे नही दे सकते । सनत्कुमार चक्रवर्ती की सेवा मे १६ हजार देवता हाजिर रहते थे फिर भी उसे कोई नरक मे जाने से बचा न सका । पुण्य पूरा हुआ कि फिर कोई उसे बचा नही सकता है । जिस द्वारिका को देवताओ ने ही बसाया था, वही द्वारिका २४ घंटों में जल कर राख हो गई । बलभद्र जैसे बलदेव को भी वहां पानी पीने के लिये लौटा तक नही मिल सका । यह सब अनेक बार तुमने सुना है, पर आचरण मे तुम्हारे परिवर्तन कहा हुआ है आज भी तुम जड को ही पूजते चले जा रहे हो ! अब भी समझ रहे हो या नही ? जो समकिती है वह क्या मिथ्यात्व की पूजा कर सकता है ?

जड का महत्व आज कितना बढ गया है ? जिसके पास धन हो वही कुलीन और खानदानी समझा जाता है । गाव का हरखा भी धनवान हो जाने पर हरखचंद सेठ कहलाने लग जाता है । कैसी माया है लक्ष्मी की ? तुम उसके गुलाम क्यों बन रहे हो ? बनना ही है तो उसके स्वामी बनो– लक्ष्मी पति बनो । उस पर अपना हुकम चलाओ, उसके गुलाम क्यो बनते हो ?

पडौसी का एक लडका बीमार हो जाता है । वह पैसो के अभाव में उसकी चिकित्सा नहीं कर सकता । वह अपने पडौसी से १०० रु. मांगता है– तुम दोगे तो मेरा लडका बच जायगा– एकाएक लडका है– मै तुम्हें धीरे धीरे वापिस लौटा दूंगा।

पर वह नहीं देता है। पडौसी के लडके को वह अपना नहीं समझता, अपने लडके को ही अपना समझता है। जब वह मरता है तो अपने लडके के लिये २५ हजार रुपये रख कर जाता है। इसका वह संतोष भी अनुभव करता है। लेकिन साथ में वह क्या ले जा सका ? ले जाने का उसे मौका भी मिला तो वह उसने घुमा दिया। मनुष्य आज इतना स्वार्थी हो गया है कि वह दूसरों को देखना भी नहीं चाहता है। विषमता इतनी बढ गई है कि एक तरफ तो खाया हुआ पचाने के लिये गोलियां ली जा रही हैं। ऐसा क्यों करते हो ? कुछ कम खा लिया करो न ? भूख से कम खाओगे तो गोलियां नहीं लेनी पडेगी। दूसरी तरफ कई लोग भूख से तडप रहे हैं, पर खाने को कुछ नहीं है। अतः यह विषमता मिटानी है तो लक्ष्मीपति बनो, उसके दास मत बनो। याद रखो जो आनंद देने मे है वह लेकर रखने में नही है।

पानी बहता है तो निर्मल रहता है। उसे बांध दिया जाता है तो वह गंदा हो जाता है। इसी तरह धन को भी सदा बहते हुए रखो, दान में दो, शुभ कामो में उसका व्यय करो। व्यभिचार या मौज शौक में उसे मत उडाओ, सिनेमा या नाटक में उसे मत घुमाओ, किसी दीन दुखी अनाथ गरीबों की भलाई करोगे तो तुम अपनी आत्मा को अहित से बचा सकोगे।

वस्तुपाल और तेजपाल का नाम आज भी क्यों याद किया जाता है ? उन्होंने अपने धन का सद्व्यय किया था। तुम भी अपने धन का सदुपयोग करोगे-अपनी तिजौरी मे ही उसे बंद न रखोगे तो तुम्हारा भी नाम कायम रह सकता है। जो दान देकर चले जाते है उनका ही नाम दुनिया में कायम रहता है। जो किसी को देता नहीं है, अपने पेट में ही डालता है उसे कौन याद रखता है ? अतःसद्व्यय करना सीखो। लक्ष्मी को भी मर्यादित करो। मर्यादा रखोगे तो कई पापों से अपने आप वच जाओगे।

ज्ञानियों ने धन की तीन गति बताई है– दान, भोग और नाश। चौथी कोई गति उसकी नही है। देने मे जो आनंद है वैसा भोगने मे नही है। आये थे तब क्या लेकर आये थे ? जावोगे तब भी क्या साथ मे ले जाओगे ?

आवे जीव एकलो, जाय जीव एकलो
शुभाशुभ कर्मनो सथवारो लई।
जेवा कर्मो करशे तेवुं पामशेरे... आवे...

जीव अकेला आया है और अकेला ही जावेगा। अतः लक्ष्मीदास मत वनो लक्ष्मीपति वन कर रहो।

यह मकान मैंने वनाया है-कितना गर्व करते हो ? महान् आरंभ समारंभ मे भी गर्व करते हो। लेकिन जव जाओगे तो यह सव यहीं रह जायंगें। जैसे भी कर्म

करोगे वही साथ में ले जा सकोगे। जिसने स्व और पर को समझ लिया है वह कभी पर में मोहित नहीं होता है। वह तो अपनी ही दया खाता है। निश्चय दया ही १४ वे गुणस्थान की स्थिति लाने वाली है –

७ स्वरूपदया– बकरे को घर लाकर खूब अच्छा अच्छा खिलाया जाता है। इससे वह मोटा ताजा होजाता है। लेकिन आखिर तो वह बलि का बकरा है– उसकी यह दया बाहरी है।

जाव न एई आएसे, ताव जीवइ से दुही,
अह पत्तम्मि आएसे, सीस छेत्तूण भुज्जई।

वह बकरा तभी तक सलामत रहता है जब तक कि घर में कोई अच्छा मेहमान न आ जाय। उसे जो माल मसाला खिलाया गया है वह उसके गले पर तलवार चलाने के लिये ही खिलाया गया है। तुम भी माल मलीदा ही खाते रहोगे, व्रत उपवास नही करोगे तो याद रखना गले पर तलवार चले विना नही रहेगी। ज्ञानी कहते है मनुष्य भव मिला है तो उसका सदुपयोग करलो। मानव के रूप मे तुम्हे मोक्ष मे पहुंचने का राकेट–यंत्र मिला है– उसका प्रयोग करो– ध्यान, स्वाध्याय, निदिध्यासन, चितन, मनन कुछ भी करोगे तो सद्विचारों को कायम रख सकोगे, क्या करना है? यह समझ सकोगे।

जैसे वह बकरा मेहमान न आवे वहां तक जीवित रहता है, वैसे ही जो लोग यह सोचते है कि हमारे तो बड़े बडे मील और धांणे चल रहे हैं, हमको क्या है? पर याद रखना उनमें तुम्हारे पुण्य पिला रहे है। चक्रवर्ती जैसे वैभवशाली भी सब कुछ छोडकर सातवी नरक तमतमः प्रभा में चले गये तो तुम्हारी क्या बात है? अतः सच्चा सुख चाहिये तो आत्म वैभव प्रकट करो। करने योग्य तो यही है। जितना अपने हाथ से हो सके करलो। गुणग्राही बनो। देह से हो सके उतना तप त्याग करो, अवगुणो को छोड़ो। मनुष्य भव बार बार मिलना मुश्किल है। ऊपरी दया मत बताओ। यह स्वरूप दया है।

८ अनुबंध दया– लडका पढता नहीं है, पिता उसे मारता है– डांटता है, क्रोध करता है, पर अंदर से तो वह उसे प्रेम ही करता है। बुखार उतारने के लिये मां अपने बालक को कटु औषधि भी दे देती है, यों वह उसका हित ही करती है। ऐसी दया अनुबंध दया कही जाती है। गुरु भी शिष्य को प्रताड़ना दे, पर हृदय से तो वह उसका हित ही सोचता है अतः वह भी अनुबंध दया ही कही जाती है।

ठाणांग सूत्र मे मनुष्य को ४ चार तरह के फलो की उपमा दी गई है–

१. द्राक्ष की तरह– अंदर और बाहर दोनों तरफ से जो द्राक्ष की तरह कोमल हो। ऐसे मानव मुंह से बोलते है तो फूल झरते है और हृदय भी उनका ऐसा ही कोमल

होता है। आचार्य, साधु, साध्वी आदि इसी श्रेणी में आते है, जो किसी को भी दुखी नही देख सकते है। शीत-उष्ण की परवाह किये विना भी वे तुम्हे उपदेश देने आते हैं। तुम्हारा और हमारा क्या संवंध है? फिर भी हित वुद्धि से वे परिषहों को सहन करते हुए भी तुम्हे धर्म का मार्ग वताते है। वे अदर और वाहर दोनों तरफ से एक समान होते है।

२. नारियल की तरह ऊपर से कठौर, अंदर से कोमल। माता-पिता और गुरु भी इसी श्रेणी मे आते है। ऊपर से भले ही वे कठौर वचन कह दे, पर अंदर से तो वे कोमल ही रहते हैं।

३. वोर की तरह ऊपर से कोमल अंदरसे कठौर। ऐसे लोग दगावाज, प्रपंची और ठग होते है। जैसे सरौता सुपारीको बीच मे लेकर काट देता है वैसे ही ऐसे आदमी भी अपनी जाल मे लोगों को फंसा लेते है।

४. सुपारी की तरह ऊपर से भी कठौर और अंदर से भी कठौर। ऐसे आदमी बोलते है तो कठौर शब्द ही बोलते हैं। जिनका वचन भी वाण की तरह हृदय मे चुभता है। हृदय से भी वे ऐसे ही कठौर होते है।

इन चार मे से तुम क्या बनना चाहते हो? तुम द्राक्ष जैसा वनना चाहते हो न? जरूरत तो यही है। तुम्हारे हृदय मे सरलता और ऋजुता पैदा होजायगी तो तुम भी वैसे अवश्य बन सकोगे। धनतेरस को धन की पूजा करने वालों, धन के बजाय गुणों का संग्रह करो। तभी तुम वास्तविक लक्ष्मी के स्वामी वन सकोगे।

संत तो मार्ग वताने वाले है उस पर चलने का काम तो तुम्हारा है। यह भव तो एकदिन पूरा होने वाला ही है। तुम चाहो तो इससे तिर सकते हो, नहीं तो डूव जाओगे। यह साधन तो तिरने का है उसे डुवाने वाला मत वनाओ। धर्म करणी करो। क्यों अपने हाथसे अपनी कब्र खोद रहे हो! आर्त और रौद्र ध्यान छोडो तथा धर्मध्यान मे मन लगाओ।

संत कहते हैं उपशम और वैराग्य भाव प्रकट करो। आत्मा को ठगो नहीं। शाश्वत की ओर जाओ अशाश्वत मे मत उलझो।

पौटिला को साध्वीजी व्रतो का ज्ञान करा रही है। पहली ईंट अहिसा की है उसको मजबूत करो। शेष चारो महाव्रत इसे ही दृढ करते है। यो देखा जाय तो जैनधर्म ही अहिसा की नीव पर खडा है।

पौटिला व्रत समझ रही है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १८-१०-६८

[११२]

पौटिला सुव्रता आर्याजी से व्रत ग्रहण कर रही है। पांच अणुव्रतो की व्याख्या चल रही है। अहिंसा के वाद सत्य व्रत आता है। जो आदमी झूठ बोलता है उसे अन्त में पछताना पडता है। क्योकि अन्त मे विजय तो सत्य की ही होती है। सत्यमेव जयते नानृतं। जो मानव सत्य को स्वीकार कर लेते हैं उनका सर्वत्र आदर ही होता है।

खोटु बोलशो मां झूठु तोलशो ना
चार शिखामण गुरुअे दीधी, तेमां पेली अेह
खोटु बोलशो मां. . .
भूल करो तो भले करो पण छुपाववा माटे
युक्ति खोजशो मां, डहापण डोलशो मा. . .

ज्ञानी कहते हैं– जो आदमी असत्य बोलता है उसका कोई भी विश्वास नहीं करता है। सत्यवादी ही सर्वत्र पूजा जाता है। कभी तुमसे भूल हो भी जाय तो उसे सुधारने का प्रयत्न करो– उसको दवाने के लिये दूसरी अनेक भूले करने का विचार मत करो। यह कप किसने फोडा है ? मुझे मालूम नहीं। यह तो तय है कि घर मे जितने आदमी हैं उनमे से ही किसी ने यह फोडा है। फिर झूठ क्यो बोलते हो ? याद रखना झूठ बोलने वाला मरकर तिर्यंच गति में उत्पन्न होता है — गाय, बैल, ऊट, घोडा, गधा और कुत्ता वनना पडेगा। झूठ बोलने का ऐसा फल मिलेगा अतः झूठ मत वोलो। भूल हो भी जाय तो उसे छुपाओ मत, प्रकट कर दो।

एक हशे पण आकरु पड़शे ढांकवु कपट नुं कामजी
लाखो बीजा करवा पडशे छल तणां संग्राम
जीवतुं छाना करीश नहि कामजी. . .
नेणे मीठी नीद्रा न आवे पावे नहि विश्रामजी
तबियत एनी रहे न साजी, राजो रहे नहि राम. जीव
जीवतु छाना करीश नहि काम
नहितर तारो रिसाई जाशे राम . . जीव. . .।

अज्ञानी आत्मा झूठ बोल कर भी अनेक पाप कर वैठता है। तुम उसे छुपाना तो चाहते हो, पर क्या तुम्हारी आत्मा से वह छिप सकेगा ? अनंत सिद्ध और केवली की नजरो से तुम कैसे बच सकते हो ? पाप छिपाने से छिपता नहीं है, वह तो फूट कर बाहर निकलेगा ही। हृदय मे जो पाप है– छल कपट है– उसे दूर कर

दो। दीवाल पर भी रंग कराना होता है तो उसे साफ किया जाता है। तभी उस पर रंग भी सुंदर दिखाई देता है। वैसे ही हृदय को भी साफ करो, तभी उसमें गुणों के अंकुर पैदा हो सकेगे।

सुरा, सुन्दरी और सत्ता के लोभ में मत पडो। ये आत्मा के कट्टर शत्रु हैं। लोभ भी मोह की ही प्रकृति है। दुकान पर 'एक ही भाव' का वोर्ड लगाने वाला भी कितने भाव करता है? जीकर मर जाना है, फिर भी ये पाप क्यों बांध रहे हो? आज का लक्ष्मी पूजन तो ऐसा होना चाहिये कि तुम अपनी ही अलौकिक आत्मिक सम्पत्ति के स्वामी बन सको।

सच्चं खु खलु भगवं

सत्य ही भगवान है। सत्य का आचरण कर के ही भगवान बना जाता है। यह गुण धारण करो। जीवन में सत्य को ताने-बाने की तरह गूंथ लो। शरीर जाय तो भले चला जाय-पर मेरा सत्य नहीं जाना चाहिये। ऐसी अडौल श्रद्धा जिस दिन तुम्हारे में पैदा हो जायगी वह दिन धन्य हो जायगा।

तुम बही- चौपडे कितने रखते हो? दिखाने का अलग और रखने का अलग। कभी पकडा जाओ तो कैसा होता है? पाप का फल बुरा ही होता है। अतः भगवान कहते हैं- पहले हृदय शुद्धि करो। हृदय शुद्धि होगी तो चित्त भी स्थिर रह सकेगा। आज तुम माला तो फेरते हो, पर मन कहां स्थिर रहता है? हृदय शुद्धि के अभाव में आज भजन भी कहां हो पाता है? अतः हृदय की शुद्धि करो। सत्य का आराधन करो। शरीर जाय तो भले जाय, पर सत्य को मत जाने दो।

कलकत्ता से मल्लिक सेठ अपने गांव जा रहा था। साथ में नाव मे काफी माल भरा हुआ था। सेठ सत्यवादी था। कभी असत्य नहीं बोलता था। चलते चलते उसे मार्ग में समुद्री लुटेरे मिल गये। उन्होने सेठ से कहा- तुम्हारे पास जो भी हो दे दो, वरना जान से मार दिये जाओगे। सेठ ने नाव मे रखा हुआ अपना सब माल बता दिया। चोर उसे ले किनारे चल दिये। सेठ के हाथ मे एक हीरे की अंगूठी भी थी। उसे देखकर सेठ ने सोचा- यह तो मेरे पास ही रह गई है- चोरने कहा था- जो भी तुम्हारे पास हो वह सब दे दो। यह भूल से रह गई है। उसने आवाज दी- यहा आओ-कुछ माल और रह गया है। चोरो का सरदार आता है तो सेठ उसे अपनी यह हीरे की अंगूठी भी दे देता है। यह अंगूठी ही दस हजार रुपये की थी। परन्तु उसे तो अपने सत्य की रक्षा करनी थी। सर्वस्व चला जाय तो भले जाय, पर सत्य नहीं जाना चाहिये। क्या तुम भी ऐसा कर सकते हो? कर्मों का जब उदय आता है तब कोई उसे बचा नहीं सकता है।

उदये आवता ज्यारे भोगवे फल अेहना
विपाके भागी ना कोई बांधनारो ज भोगवे ।

कर्म बांधनेवाले को ही भोगना पडता है । तुम दयालु हो या निर्दयी ? अपनी आत्मा की दया कहां करते हो ? पाप का फल तो कडवा है । अठारह पाप का पोषक अंत में तो डूबता ही है । मल्लिक सेठ चोर के सरदार से कहता है–भूल से यह अंगूठी मेरे हाथ में ही रह गई है । यह भी तुम ले जाओ, मै अपने पास कैसे रख सकता हूं ? चोरों का सरदार तो यह सुनकर आश्चर्य मे डूब गया । उसने कहा– सेठ, तुम अपनी यह कीमती अंगूठी हमें बुला कर क्यो दे रहे हो ? सेठने कहा अगर यह अंगूठी मेरे पास रह जाती है तो मेरा व्रत भंग हो जाता है । चाहे मेरा सर्वस्व क्यो न चला जाय, पर मै सत्य को नहीं छोड़ सकता । तुमने कहा था, जो भी हो मुझे सौपदो, फिर मै यह अंगूठी भी अपने पास कैसे रख सकता हूँ ?

दिन हो या रात, शहर हो या गाव साधक को तो सतत धर्म में जागृत ही रहना पडता है । उसका जीवन तो सदैव एक समान रहता है । धर्मी कभी धर्म नहीं जाने देते है ।

चोर के सरदार ने सोचा– ऐसा पवित्र पुरुष तो हमने पहले कभी नहीं देखा । इनका माल हमको कैसे हजम हो सकेगा ? वह अपने लोगों को बुलाता है और सेठ का सारा माल वापिस उन्हे लौटा देता है । हम तो दूसरों का माल जबरन लूटते फिरते हैं–पर तुम कैसे महान् हो कि अपना माल हंसते हसते दूसरों को देना चाह रहे हो। वह सरदार कहता है– हम भी आज से चोरी करना बंद करते हैं । चारित्र शील आदमी का प्रभाव पड़े विना रह नहीं सकता । चोर भी सुधर जाते हैं । सेठ उसे अपनी अंगूठी इनाम में दे देता है ।

चारित्रशील आदमी ही अहिसक बन सकता है । अहिंसा पर बढिया से बढिया भाषण देने वाला भी अगर अंडे खाता है तो वह क्या दूसरों पर प्रभाव डाल सकेगा ? अतः धर्म को तो जीवन में उतारोगे तभी वह सार्थक हो सकेगा ।

जडका आकर्षण कम करो और आत्मा के अखंड खजाने के मालिक वनो । चंचल लक्ष्मी से तुम्हारी भूख कभी मिटने वाली नहीं है–

सो हजार के लाख करोडो होय छतां नहि शांति ।
सोनु रुपु हीरा होय पण दिलमां सदा अशांति ।
नींदरमां पण द्रव्य देखीने झबकी जइये जागी ।
अमे रंग रागना रागी अमे अंग अंग अनुरागी ।
पाछी तारी कने शुं मांगीये वीतरागी– शु मांगीये

तुम्हारी तृष्णा कभी मिटने वाली नही है । सौ मिले तो हजार, हजार मिले

तो लाख– लाख मिले तो करोड की इच्छा करते हो। बाग बगीचे दुकान मकान सब कुछ हो, फिर भी मन में तो सदा अशांति ही बनी रहती है। स्वप्न में भी अगर चोर आगया है और वह तिजौरी का ताला खोल रहा है तो तुम डर जाते हो। कहीं सचमुच तो उसने ताला नहीं खोल लिया। नीद उड़ जाती है तो उठ कर उसे देख भी आते हो। कितना आकर्षण है जड का तुम्हे ? तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? क्या तुम पुद्‌गलानदी बनना चाहते हो या आत्मानंदी ?

एक बार विष्णुजी ने लक्ष्मी से कहा– सर्वत्र तुम्हारी ही पूजा हो रही है, मुझे तो कोई पूछता भी नही है। तुम भी महालक्ष्मी जाते हो न ? दो पैसा उसे चढा देते हो और बदलें मे दो लाख मांग बैठते हो। दो पैसा लेनेवाली तुम्हे दो लाख कहां से दे देगी ?

नीतर्या घी नो दीवो करूं ने शीरापुरी नो थाल धरूं।
तारी रोज वगाडुं प्रभु टोकरी, मने परणावो अंक छोकरी।

वीतराग से तुम क्या माग रहे हो ? पैसा, औरत, लड़का ऐसी तुच्छ मांग कर रहे हो। मांगना ही है तो यह मांगो कि कब मै तुम्हारे पास आ सकूगा ? काम क्रोध आदि विकारो को छोड़ कर कब मै निर्विकारी बन सकूंगा ?

विष्णु और लक्ष्मी दोनो संसार मे यह देखने आते हैं कि कौन किसको चाहता है ? चलते चलते वे एक मदिर में पहुंचे। कई सन्यासी वहा मंत्र जाप कर रहे थे। विष्णु ने बाल सन्यासी का रूप धारण किया और उनके पास आकर कहा–मुझे भी यहां अपनी यह छोटीसी मूर्ति रखनी है, क्या मै रख सकता हूं ?

महन्तजीने कहा– यहां मूर्तियो की कमी नही है। उनकी भी पूजा नही हो पाती है तो तुम्हारी फिर कौन संभालेगा ? सन्यासीने कहा–तुम्हारे भगवान के साथ मेरे भगवान की भी पूजा होती रहेगी। और कोई कष्ट आपको नही करना पडेगा।

दूसरे सब सन्यासी माला फेर रहे हैं। वह सन्यासी भी वहां मूर्ति रख कर बैठ जाता है। और हाथ मे माला ले वह भी घुमाने लगता है।

सन्यासी देखता है– कौन माला शुद्ध फेर रहा है ? उपाश्रय मे आने मात्र से ही धर्म नही होजाता है। धर्म तो उपयोग मे है– जड और चैतन को समझने मे है।

महन्तजी मंदिर मे घूम रहे हैं। इतने मे तो एक सोने की मोटर वहा आकर रुकी। सेठ और सेठानी अपने बालक के साथ मदिर मे आये। महन्त जी तो मोटर को देखते ही मंदिर मे आ गये और आगन्तुको का स्वागत करने लगे। सेठने कहा– हमको भगवान की पूजा करानी है, यह लडका हुआ है, एक लाख रु चढाना है इसीलिये आपकी सेवा मे आये है। महन्तजी तो यह सुनते ही हैरान रह गये।

एक लाख रुपया चढाना है ? महन्तजीने २५ दीपक जलाये और आरती शुरु कर दी। सन्यासी भी यह खेल देख रहा है। आरती पूरी हुई। सेठ तो एक लाख रुपया भगवान को चढाकर चल दिया। महन्तजी उनको बटौरने लगे तो उस सन्यासीने कहा—आप सब रुपया कैसे ले सकते है ? आधे का हकदार तो मै भी हूँ। मेरी मूर्ति पर भी रुपया चढाया गया है।

महन्तजीने कहा—मूर्ति रखने दी तो अब गले पडने लग गये हो ? ले जाओ अपनी मूर्ति यहा से। यह कह कर महन्तजी उस मूर्ति को बाहर फेक देते है।

सन्यासी ने कहा—यह क्या अपराध कर रहे हो महन्त जी ? लालजी की मूर्ति को तुम बाहर फेक रहे हो ? सेठ वापस आया और बोला—महन्तजी, ठहरो रुपया मत उठाओ, तुम रुपया लेने काबिल नही हो। लालजी की मूर्ति को बाहर क्यो फेक रहे हो ? मुझे रुपया तुम्हे नही देना है।

जो सामने दिखाई दे रहा था, वह सब गायब हो गया। तुम भी ऐसा ही तो नही कर रहे हो ? सामायिक मे बैठ गये हो, करेमिभते बोलना बाकी है। इतने मे लडका आता है और कहता है, थोडी देर ठहर कर सामायिक करना बाहर गाव से व्यापारी आया है। वह आपको बुला रहा है। सामायिक तो मैने ली नही है, यह सोचकर तुम चल देते हो। लाख रुपये की सामायिक छोड कर कौडियो के लिये चल देते हो। समझते क्यो नही हो ? धन तो तुम्हारी परछाई है। धर्म करोगे तो लक्ष्मी भागती हुई तुम्हारे पीछे पीछे आवेगी। उसके पीछे तुम्हे भागने की जरुरत नही होगी।

एक आदमी सूर्य की तरफ पीठ कर के चलता है तो उसकी परछाई उसके आगे-आगे भागती है। वह उसे पकडने को दौडता है, पर क्या वह उसके हाथ आ सकती है ? केवल मुह उल्टा कर लेने की देर है—परछाई तुम्हारे पीछे हो जायगी। इसी तरह तुम्हे भी एक ही करवट बदलने की देर है, जो आदमी आत्मदेव के सामने पीठ कर के चलता है वह परछाई के सामने दौडता फिरता है—वह उसको परास्त नही कर सकता। लेकिन जो आत्मा के सम्मुख मुह कर देता है, लक्ष्मी उसके पीछे पीछे परछाई की तरह दौडती आती है। शालिभद्र और धन्ना के पास क्या लक्ष्मीकी कमी थी ? शालिभद्रने जब यह सुना कि मेरा भी कोई धणी है तो वे उस लक्ष्मी को भी लात मार कर चल निकले थे। ऐसी अशाश्वत लक्ष्मी क्या काम की है ? भगवान महावीर का क्या कोई धणी था ? वे स्वयं अपने स्वामी थे। चौतीस अतिशय और ३५ वाणी के गुणों से युक्त होते हुए भी उन्हे उसमे आसक्ति नही थी। आहार लेने जाते तो साढे बारह करौड सोनैया की बरसात होती थी, फिर भी उनको

अहं नही था। याद रखिये पैसों से धर्म नहीं होता है, धर्म के पीछे पैसा भागता आता है। फिर भी धर्मात्मा उसमें आसक्त नहीं होता है।

तुम आज धन्ना और शालिभद्र जैसी ऋद्धि सिद्धि तो चाहते हो, पर उनके-जैसा वैराग्य कहां मांगते हो? वे भी अपनी ऋद्धि छोडकर मुनि बन गये थे तो तुम उनकी ऋद्धि क्यो माग रहे हो? जो अशाश्वत है उसकी इच्छा मत करो– शाश्वत लक्ष्मी के स्वामी बनना चाहोगे तो उसे एकदिन तो छोडना ही पड़ेगा।

भरत चक्रवर्ती छह खंड जीत कर आये, उनके पास कितनी ऋद्धि थी? लेकिन जब वे अरिसा भवन से बाहर निकले तो उनके पास कुछ भी नही था– बाह्य सम्पत्ति का एक धेला भी उनके पास नही था, वे अकिंचन बन गये थे, फिर भी वह अढलक-अखूट सम्पत्ति का मालिक बन गया था। उनका प्रभाव तो देखिये, उनके साथ १० हजार राजाओने भी संयम लिया था। उस आध्यात्मिक सम्पत्ति को प्राप्त करना है तो अपना मुह सीधा करलो– सूर्य सन्मुख हो जाओ, उल्टे मत चलो, आत्म वैभव अपने आप प्रकट हो जायगा।

पौटिला व्रतों का स्वरूप समझ रही है। महासतीजी उसे सत्य का स्वरूप बता रही है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. १९–१०–६८

[११३]

पौटिला साध्वीजीसे बारह व्रत स्वीकार कर रही है। तीसरा व्रत अचौर्य है। चोरी करना अनीति है, अन्याय है। अचौर्य व्रत जो स्वीकार कर लेता है उसका जीवन कैसा होता है? और आज तुम्हारा जीवन कैसा है? यह श्रावक की दुकान है– यहां न कम माल मिलेगा और न खराब माल मिलेगा। पैसे भी यहा अधिक नही लिये जायगे। ऐसा विश्वास क्या तुम्हारा भी है? सर्वत्र आज तो धन का ही बोलबाला है। धनवान को ही सर्वत्र आदर मिलता है। साधु भी आज उनकी खबर ही पूछते है। साधुके लिये अमीर या गरीब की क्या बात है? साधु तो ऐसे होते है कि

वंदे चक्री तथापि न मले मान जो

ऐसे साधु भी आज किसको पूछ रहे है? कैसी स्थिति हो गई है? कुछ श्रावक तो ऐसे है जो अपने चौपड़ो पर भी साधुओ से ॐ लिखाते है। दुकान पर उनका पदार्पण कराते है ताकि धन ज्यादा कमा सकें। ऐसी भावना रखते हो। पर याद रखना, परिग्रह पाप का मूल है और दुर्गति देने वाला है–

सव्वं गन्थं कलहंच विप्प जहे तहाविहं भिक्खू
सव्वेसु कामजाएसु पासमाणो न लिप्पई ताई।
भोगामिस दोस विसन्ने हिय निस्सेय सबुद्धिवोच्चत्थे
बाले य मन्दिए मूढे बज्झई मच्छिया व खेलम्मि।

ज्ञानी कहते है कि पैसा कलह का बीज है। इसका अनुभव तुमको भी हुआ है या नही ? सारे झगड़े पैसो के ही है। जो आदमी सत्य समझ लेता है वह धन का दास नही होता। वह तो यह समझ लेता है कि यह तो पुण्य की खेती है। देवता के सुख भी मैं देख चुका हूं। इन में आसक्त क्यो होना चाहिये ? यह शरीर तो कच्ची मिट्टी का घडा है, कब फूट जायगा कहा नही जा सकता। अतः प्रमाद मत करो और धर्म मे तल्लीन हो जाओ।

आलस मां आउरवा गया दिन दिन दोढा काज
फद्या रहेशे डाकला पछी के दि भजशो भगवान

करनेका काम करलो। भाव दिवाली करो, अत्मा को प्रकाशित करो। वाह्य प्रकाश से क्या होगा ? भीतर अंधकार है तो बाहर की टयूब लाईट भी क्या कर सकेगी ?

असत्यो मांहे थी प्रभु परम सत्ये तुं लइजा
उडा अंधारे थी प्रभु परम तेजे तुं लइजा।

जीवन मे अज्ञान का अंधकार है–असत्य है–हे प्रभु। तू मुझे असत्य से सत्य की ओर और अंधकार से प्रकाश की ओर लेजा।

गुफा मे अंधकार होता है, पर बेटरी डालो कि वह अंधकार हट जाता है। ऐसे ही अनादिकाल का अंधकार सद्गुरु के एक ही वचन से दूर हो जाता है। ऐसा प्रकाश तुम भी प्रकट करो। बाह्य दीपक करने मे तो आरंभ समारंभ है, उसके बजाय अन्तर दीप जलाओ, उसका जो प्रकाश है उसका मुकाबला हजारों सूर्य भी नही कर सकेगें।

स्वाध्याय करोगे तो वैसा प्रकाश प्रकट कर सकोगे। ज्ञानावरणीय कर्म जैसे जैसे हटता जायगा वैसे वैसे तुम्हारा प्रकाश भी प्रकट होता जायगा।

एक आचार्य के पास एक मुनि दीक्षा लेते है। आचार्य उसे एक गाथा याद करने को देते है, पर मुनि उसे याद नही कर पाते है। ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण इतना जबरदस्त है कि वे चार दिन में भी गाथा का एक पद याद नही कर पाते। एक पद याद होता है तो दूसरा भूल जाते है। ऐसा करते करते बारह वर्ष हो गये, पर उन्हे एक गाथा भी याद नही हुई। उनके बाद दीक्षित होने वाले साधु चौदह पूर्वी हो गये, पर इनको एक गाथा भी याद नही हुई। शास्त्रो से द्वेष किया है इसीलिये

ऐसा हो रहा है । ज्ञान की आशातना करने से ऐसा होता है । वह मुनि सोचता है– मेरे कर्म वडे स्निग्ध है । कैसे मै उनसे मुक्त वन सकूगा ? उसे वडा पश्चात्ताप होता है । अव वह दूसरे मुनियो की सेवा करने लगता है । उन्हे कहता है–तुम पढो, तुम्हारी वैयावच्च मै कर दूगा । मै ज्ञान नही पढ सकता हूं तो क्या, वैयावच्च तो कर सकता हूं । वह दूसरे साधुओ की भी वैयावच्च करने लग जाता है। फुरसत मिलती है तो गाथा याद करने वैठ जाता है । लोग कहते है वूढे होने आये हो, अव क्या विद्या पढोगे ? जो ऐसा कहते है वे अभी तक आत्माको समझे नही है । आत्मा कभी वूढा नही होता है और न वह कभी जन्म ही लेता है । वह तो अनादि, अनंत है । यह शरीर ऐसा है जो वूढा होता है । शरीर को आत्मा मत समझो । शरीर तो नाशवंत है । जव कि आत्मा अविनाशी है ।

मुनि वैठे हुए गाथा याद कर रहे है । आचार्य पूछते है– क्या गाथा याद हो गई ? मुनि ने कहा-जी हां । आचार्य ने कहा-सुनाओ । मुनि वोल उठे–

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिसां संजमो तवो ।
देवावि तं नम्मंसंति जस्स धम्मे सयामणो ।

आचार्य ने कहा– बारह वर्ष वाद आज पूरी गाथा याद हो सकी है । मुनि ने दूसरी गाथा भी कह सुनाई । आचार्य ने कहा-क्या तुम्हे ज्ञान हो गया है ?

मुनि ने उत्तर दिया– आप की कृपा से मुझे भी ज्ञान हो गया है । अब उन्हे पुस्तक की जरूरत नही रही । केवल एकही गाथा से वे केवली हो गये । तिजौरी की चावी मिल जानी चाहिये । अदर तो करौडो की मिल्कत भरी पड़ी है, पर चावी घुम गई है । दूसरी चावी कहा से मिल सकेगी ? सद्गुरु के पास जाओगे तो वे तुम्हे चावी दे सकेंगे –

कुंची रूपे तत्व मने कान मां कीधुं रे
दया करीने दीलडां मां दरसावी दीवुं रे
शांति माटे सद्गुरु नुं शरणु लीधुं रे
गोत तो चारे कोर ते घट मांही चिध्युरे ।
वैराग्येथी गुरुअे मारुं मनडु विंध्यु– शान्तिमाटे –
शरणु लीधु, शरणु लीधु शरणुं लीघु रे– शांति

ज्ञानी कहते है– चावी चाहिये तो सद्गुरु के पास जाओ । वे जो चावी देगे उससे तुम आत्मा की अनत शक्ति की खोज कर सकोगे ।

सुख को ढूढने तुम कहा नही जाते हो ! वदरीनाथ, हरिद्वार, द्वारका और मथुरा भी हो आते हो, पावापुरी, सम्मेतशिखर और पालीताना भी नही छोडते हो ।

लेकिन वह कहां मिलता है ? वह तो तेरे घट में ही है। ध्यान कर गहरी डुबकी लगाओगे तो वह मिल जायगा।

बारह वर्ष तक जो मुनि एक गाथा भी न सीख सका वह भी केवली हो गया। अत: धर्म तो समझने की चीज है, हृदय मे धारण करने की वस्तु है। जिसके हृदय में धर्म होता है वह कभी घबराता नही है।

देवशकर भाई का छोटा भाई दामोदर भाई ५ वर्ष का था तभी उनकी मां का स्वर्गवास हो गया। दामोदर भाई की सारी जवाबदारी देवशंकर भाई और उनकी पत्नी दयाबेन पर आ गई। दयाबेन बहुत समझदार और धर्म को समझने वाली औरत थी। वह दामू का अपने लडके की तरह ध्यान रखती है। दामू बड़ा हुआ और मैट्रिक पास हो गया। बडा भाई देवशंकर कहता है अब हमारी शक्ति इसे आगे पढाने की नहीं है। लेकिन दयाबेन कहती है– नहीं, लड़का पढ़ने में होशियार है– इसे तो आगे पढाना चाहिये।

देवशंकर भाई कहता है– तू ही बता, इसे आगे कैसे पढा सकेगें ? अपने पास क्या है ?

गरीबों के लड़के पढना चाहते हैं, पर अर्थाभाव से पढ़ नहीं सकते है, जबकि धनवानों के लडके साधन सम्पन्न होने पर भी पढ़ नही सकते हैं।

दयाबेन अपने गहने बेच कर भी उसे पढाने का कहती है। मेरा देवर पढे और होशियार बने यही मेरा गहना है। कैसे आदर्श विचार थे उसके ? क्या आज कोई बहिन ऐसा कह सकती है ?

दामू पढ़ लिख कर इंजीनियर बन जाता है। उसकी शादी उर्वशी से हो जाती है। उर्वशी भी बी. ए. पास है। वह घर में आई तो दया बेन से अपने को बडा मानने लगती है। मै तो बी. ए. पास हूं– भाभी तो दो चौपडी भी पढ़ी हुई नहीं है। मै उसके नीचे कैसे रह सकती हूं ? मेरा पति तो बडा इंजीनियर है। कमानेवाला तो वही है। फिर मै यहां दब कर क्यों रहूं ? वह अपने पति से कहती है– मैं इस घर में नही रह सकती। तुम इस घर से अलग हो जाओ।

दामू कहता है– तू नहीं जानती है, भाभी का मेरे पर कितना उपकार हैं ? जिस भाभी ने अपने गहने बेच कर मुझे पढाया, होशियार बनाया, उससे मैं अब अलग हो जाऊँ ? यह कैसे हो सकता है ?

तो मै इस घर में नहीं रह सकती हूं। मै भी बी. ए. पास हूं।

दामू ने सोचा– अगर यह चली जायगी तो बदनामी अपनी ही होगी। वह अपने बडे भाई से अलग होजाता है।

देवशकरभाई अपनी औरतसे कहता है– देख लिया तूने भी । मै तो कहता नही था कि तू साप को दूध पिला रही है ? दया बेन को भी बहुत दुख होता है ।

अलग होजाने पर दोनो भाइयों मे भी अंतर बहुत बढता गया । वस्त्र फट जाता है तो तत्क्षण उसको सी लो तो वह आगे नही फटता है । नही तो धीरे-धीरे वह सारा फट जाता है । इसी तरह दोनों भाईयो का अन्तर भी बढता गया । दामू फिर कभी भाई के घर नही आया न उर्वशी ही दयाबेन के पास आई ।

देवशंकर भाई दया बेनसे कहता है तेने उसके लिये क्या नही किया ? पर वह आज तुझे तो देखता भी नही है–

मन ने मान्या हता के आ बधा मारा
मानीले जीवड़ा न मारा के तारा
स्वार्थ विना प्रीत कोई करतुं नथी रे
कोई कोईनुं नथी रे. . . .
नाहक मरीओ छी बधा मथी मथीने. . कोई. . .

देवशंकर भाई के हृदय मे द्वेष भाव बढ जाता है । उसका लडका दिनेश भी डाक्टरी की परीक्षा मे पास होजाता है और वह भी अच्छा डाक्टर बन जाता है । एक दिन देवशकर भाई बहुत बीमार होगये । दिनेश को तार भेज कर बुलाया गया। दिनेश आता है तब तक तो वे बेभान होजाते हैं । दिनेश ने आते ही इंजेक्शन लगाया तो वे कुछ देर बाद ही जागृत हो आखे खोल देते हैं । दिनेश को देखते है तो कहते है– ठीक हुआ बेटा, जो तू आगया । नही तो मेरी बात मेरे मुह मे ही रह जाती । पास में ही दया बेन बैठी है । देवशंकर भाई कहता है-दिनेश, मेरी सुन, मुझे वचन दे कि तू वैसा ही करेगा जैसा कि मैं कहूंगा ।

दिनेश कहता है–हां पिताजी, आप जो कहेगे मै उसका पालन अवश्य करूंगा ।

देवशंकर भाई बोला– यह तेरा दामोदर काका है न, उसने मेरे साथ बड़ा अहित किया है– मै बीमार हूं, फिर भी वह मेरी खबर लेने तक नही आया है । बडा नालायक निकला है । तेरी मा के गहने बेच कर उसे पढाया–लिखाया और होशियार बनाया, पर वह तो नमक हराम ही निकला । सुन, कभी वह बीमार हो जाय और तेरे पास आये तो तू उसे ऐसा इंजेक्शन लगा देना कि उसकी जिन्दगी ही पूरी हो जाय । वह मेरा दुश्मन है । बोल, तू ऐसा कर सकेगा न ? मरते मरते भी वह दूसरो को मारने की इच्छा करता है । ऐसे अज्ञानी जीव भी इस दुनिया में है ।

दूसरी बात और सुन, देवशंकर भाई कहता है, मैं तो मरनेवाला हूं–मेरा शव भी उसे छूने मत देना ।

यह सुनकर दया बेन कहती है– तुम यह क्या कह रहे हो ? अन्तिम समय मे तो भगवान को याद करना चाहिये । क्यो आप आर्तध्यान कर आत्मा का पतन कर रहे है ?

अंतकाले अरिहन्त मारा श्वासमां रे
सद्गुरु विराजे मारी पासमां रे
हुं तो अरजी करूं छुं अंतकालनी रे ।

वह तो मरते मरते भी यही कह गया कि दिनेश, याद रखना– मैंने कहा वैसा ही करना । कहिये, मर कर वह किस गति मे गया होगा ?

देवशकर भाई मर गया तो दामू और उर्वशी भी उसके घर आई । दामू अंदर जाता है, तो दिनेश कहता है– काका तुम शव को छूना नही, पिताजी मना करके गये है ।

मेरे भाईने मुझे स्पर्श करने से भी मना कर दिया । ठीक है, मैंने उससे ऐसा ही बरताव किया था । कम से कम मुझे उनकी खबर तो लेनी चाहिये थी । दामू मन ही मन पश्चात्ताप करता है ।

उर्वशी रोती है । दया कहती है बहिन रो मत, जो आता है वह तो एक दिन जाता ही है, रोने से भी कोई वापिस लौट नही आता । उसे अपनी देराणी पर भी रंच मात्र दुख नही है ।

१३ दिन वाद दिनेश अपना दवाखाना अपने गांव मे ही ले आता है । यहा भी उसका काम वहुत अच्छा चलने लग जाता है । गाव का वह प्रसिद्ध डाक्टर हो जाता है ।

एक दिन दामू भाई वीमार हो गये । कई डाक्टरो से दवा कराई, पर अच्छे नही हुए । आखिरकार वे दिनेश के पास आते है । दिनेश अपने काका को आते हुए देखता है तो खडा हो जाता है और कहता है– कैसी तवियत है काका ? चलो, मै पहले आपको देख लूं । वह काका की जांच कर दवा देता है और कहता है इंजेक्शन कलसे चालू करेगे, आपकी बीमारी असाध्य नही है, कुछ ही दिनों में आप विल्कुल ठीक हो जायगे । घवराने की कोई वात नही है ।

दामू घर आकर उर्वशी से कहता है– लडका तो देवता जैसा है, वड़ा नम्र है । कल से इंजेक्शन चालू करेगा ।

इधर दिनेश घरआता है तो मां से कहता है–काका का केस आज हाथमें आया है। पिताजी ने जो यह कहा था कि जहर का इंजेक्शन दे देना, अब मैं क्या करूं ? तू ही बता।

दया बेन कहती है– तेरे पिताने जो यह कहा था, उसे तू बराबर समझा नहीं है। उन्होने तो दुश्मनाहट को निकालने के लिये इंजेक्शन देने का कहा था. नकि काका की जान लेने के लिये। तू भूल कर भी ऐसा पाप मत कर बैठना। काका तेरे पिता की जगह है– उनकी बराबर सेवा करना।

दिनेश आज समझा कि मेरी मां कैसी है ? सचमुच वह दया की ही मूर्ति है। भले ही वह दो चौपडी पढी हुई है, पर उसके संस्कार महान है– मात्र अक्षर ज्ञान ही क्या काम का है जब तक कि हृदय पवित्र न बन जाय ?

दूसरे दिन काका आये तो दिनेश ने इंजेक्शन लगा दिया। वह बोला–काका, अब आपको यहां आने की जरुरत नहीं है– मैं खुद ही आपके पास आ जाया करूंगा। यह तो घर का ही काम है– आप आराम करें, बहुत जल्दी आप ठीक हो जायंगे।

अब दिनेश स्वयं दामू के यहां जाता है। घर मे सब की कुशल–मंगल पूछता है। दामू के दो लडके थे, जिनकी नौकरी छूट गई थी। दामू कहता है– अभी ये दोनों बेकार है–कही भी नौकरी नहीं लगी है।

दिनेश उन दोनों की भी नौकरी लगा देता है।

महिने भर बाद तो दामू बिल्कुल ठीक हो गया। उसने इस खुशी मे पार्टी दी और अपने बड़े भाई देवशंकर के नाम से २५ हजार रुपये का चैक दिनेश को देते हुए कहा– यह मैं तुम्हे अपने दवाखाने में दे रहा हूँ। इनसे तुम गरीबो को मुफ्त मे दवा देना और उनका इलाज करना। भाई भाई वैर लेकर दुर्गतिमें चले जाते हैं। पर पीछे उनके लडके तो आपस में एक हो जाते हैं। फिर तुम ऐसा पाप क्यों करते हो ?

अब दोनो घर एक जैसे होगये, दुश्मनाहट दूर हो गई। दिवाली आई है, साल मुबारक करने निकलोगे, पर पहले अपना वैर भाव दूर कर दोगे तो नया साल तुम्हारे लिये भी नया संदेशा लेकर आ जायगा। आत्मा का मैल दूर हो जायगा और एक दिन तुम भी उस चिरन्तन दिवाली के अक्षय प्रकाश को प्राप्त कर सकोगे।

ता. २०–१०–६८

[११४]

दीपावली

चरम तीर्थंकर भ. महावीर का आज निर्वाण दिवस है । उन्होने अपने जीवन में तप, त्याग और संयम को मूर्तिमन्त किया था ।

से वारिया इत्थि सराइ भत्तं
उवहाणवं दुखखयट्ठयाए
लोगं विदित्ता आरं पारं च
सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ।

उनके जीवन की भी बडी महिमा है । सूत्र-सिद्धान्तो का कथन करने वाले तीथंकर है । गणधर उनको गूंथते है । केवलज्ञान की उत्पत्ति होने पर तीर्थंकर चार तीर्थ की स्थापना करते हैं । भगवान ने १२।। वर्ष और १५ दिन तक घोर तप किया और अपने कर्मो को नष्ट कर दिया । सर्वज्ञ होने के बाद ही उन्होंने उपदेश देना शुरु किया था । विहार करते करते वे पावापुरी आते है–

शासन नायक वीर जिणंद तीरथनाथ जाणे पुनमचंद ।
चरण लागे जारे चोसठ इन्द्र, सेवा करे जारी सुरनर वृंद ।
थें अबको चौमासो स्वामीजी अठे करोजी ।
थे पावापुरी मे थी पग आधो मति धरोजी ।
अठे करो– अठे करो– अठे करोजी,
थे चरम चोमासो स्वामीजी अठे करोजी ।
हस्तिपाल राजा विनवे कर जोड,
पुरो प्रभुजी मारा मनना रे कोड
शीश नमाय उभो जोडी हाथ
करुणा सागर मानो कृपा जी नाथ
थे अबको. . . . ।

हस्तिपाल राजा विनती करता है– भगवन ! यह चातुर्मास आप यही करे । भगवान अपना यह अन्तिम चातुर्मास पावापुरी मे करते है । भगवान ने कुल ४२ चातुर्मास किये थे । पहला चातुर्मास उन्होने अट्ठी ग्राम मे किया था ।

भगवान गर्भ मे आये थे तभी वे तीन ज्ञान के तो स्वामी थे ही । मुनि बनते है तब उन्हे चौथा मनपर्ययज्ञान भी हो जाता है । परन्तु पाचवां केवल–ज्ञान होना आसान नही होता । भगवान को भी उसके लिये घोर परिश्रम करना पड़ा है । कर्मो से भयंकर युद्ध करना पडा है ।

सामे चडीने अेणे दुखडाने नोतर्या
जेरी जंतुअे अेना अंगे अंग कोतर्या
देहने दुभावनार प्रत्येक जीव ने
दीधा अभयना दान– चाल्यो रे जाय वर्धमान ।
जंगल नी केडीये योगी बनी ने
पेला चाल्या–रे जाय वर्धमान–चाल्या रे. . .

वर्धमान दीक्षा ले जंगल मे चले जाते हैं । राज–पाट वैभव आदि का त्याग कर वे एकाकी बन जाते है । घूमते घूमते वे अट्ठी ग्राम मे आते है ।

अट्ठी ग्राम मे एक बणजारे का बैल बीमार हो गया था । बणजारा एक महाजन को उपचार के लिये रुपया देकर चला गया । महाजन ने उस बैल की दवा नही कराई और सब पैसा खुद ही हजम कर गया । बैल बीमारी मे मर गया । वह मर कर देव बनता है।

उसने अपने ज्ञान में देखा तो उसे अपना मृत शरीर–बैल दिखाई दिया–कौए उसको चोच मारकर खा रहे थे । अट्ठी ग्राम में वह अभी भी पडा था–किसी ने भी उसका दाह संस्कार नही कराया । मेरे मालिक ने तो मेरे लिये पैसे दे दिये थे, पर महाजन ने मेरी परवाह नही की, इसकी खबर तो अभी मै लेता हूं । यह सोच कर यक्ष ने वहां ऐसा उपद्रव मचाया कि लोग बीमारी से धडाधड मरने लग गये । हड्डियो का वहा ढेर लग गया । इसलिये उस गाव का नाम अट्ठिग्राम रखा गया ।

राजा को मालूम हुआ कि यह तो किसी देव का उपद्रव है तो उसने एक दिन सारे गाव वालो को एकत्रित किया और कहा– यदि यह किसी देव का उपद्रव है तो हमें बतावे–हम अपनी भूल सुधारने का प्रयत्न करेगे और जैसा वे कहेगे वैसा ही करेगें ।

आकाश मे से यक्ष ने कहा– तुम्हारे गाव के महाजन ने मेरी आशातना की है उसी का यह फल है । राजा ने यक्ष की मूर्ति बना कर एक मदिर मे स्थापना करवा दी ।

भगवान विचरते विचरते उसी अट्ठी ग्राम में आते है और इसी यक्ष–मदिर मे ठहर जाते है । यह उनका प्रथम चातुर्मास था । पुजारी कहता है– इस मदिर मे रात नही रहा जा सकता है । रात मे यहा यक्ष आता है जो किसी को जीवित नहीं छोड़ता है । अतः आप कही अन्यत्र चले जाइये ।

लेकिन भगवान तो निर्भय थे । उन्हे किसका भय था ? वे वहीं रहते है ।

रात हुई नही कि यक्ष का उपद्रव शुरू हो गया । भगवान तो ध्यान मे लीन हो गये । यक्ष ने जो भी किया वे सहन करते रहे । तुम तो आज भूत के नाम से ही डर जाते हो । साक्षात भूत अजाय तो क्या हाल हो ? पहले के श्रावक तो ऐसे होते थे कि देवता के डिगाये भी डिगते नही थे, पर आज के श्रावक तो मेढक से भी डरने

लग जाते है । जो धीर-वीर और गंभीर होते हैं वे ही धर्म की आराधना कर सकते है । सिर देने वाला ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है । माला फेरने से ही मुक्ति नही मिल जाती है । मुक्ति के लिये तो लोहे के चने चबाने पडते हैं ।

यक्ष सांप बन कर भगवान पर लिपट जाता है। वह कभी शेर बन कर गर्जना करता है, पर भगवान तो अडिग रहते हैं– अपने ध्यान मे ही लीन रहते हैं । वीर का मार्ग तो शूर-वीरो का मार्ग है । उस पर कायर तो एक कदम भी चल नहीं सकता है । चार महीने तक भगवान के चौविहार उपवास थे । ऊपर से ऐसे भयंकर उपसर्गो का भी सामना करना पडता था । तीन दिन निकल गये । चौथे दिन इन्द्र कहता है– हे यक्ष ! तेरे मदिर मे तो भगवान आये है, तू उनकी सेवा कर, उनको जो तूने कष्ट दिया है उसकी माफी माग । इनके चरणो मे हजारो देवता पडे रहते है । चल, तू भी उनको नमस्कार कर । यह सुन कर यक्ष भी अपना वैर भाव त्याग कर मित्र बन जाता है ।

भगवान ने १२।। वर्ष और १५ दिन तक मौन रखा था । मौन का भी बड़ा महत्व है । इससे भी आत्मा मे महान् शक्ति पैदा होती है । महात्मा गाधी भी सप्ताह मे एकदिन मौन रखा करते थे । बड़े बडे आचार्य–जवाहर लालजी म. और गणेशीलाल जी म. भी सप्ताह मे एक दिन मौन रखा करते थे । लेकिन तुम तो व्याख्यान मे भी मौन नही रख पाते हो ? बहिने दूसरी बहिन की साडी देखती है तो बोल उठती है– यह साडी तुम कहां से लाये हो ? इसकी डिजाइन तो वडी सुन्दर है, यह कहा बनाई है ? भगवान ४ कारणों से बोल दिया करते थे । वाकी वे मौन ही धारण किये रहते थे । १ आज्ञा मागते समय– २ कौन हो ? कोई प्रश्न करता तो वे कहते– मैं भिक्षु हूं । उन्होने कभी यह नही कहा कि मैं सिद्धार्थ राजा का पुत्र हूं । कितनी निर-भिमानता उनमे थी ? आज तो साधु होकर भी यह मेरी मातुश्री है– बहिन है–एक वार छोड कर निकल गये हो तो सर्वथा क्यों नही छोड देते हो ! राग का बंधन फिर क्यो रहने देते हो ?

भगवान कहते थे मैं तो भिक्षु हूं ।

अहमंसीति भिक्खु आहट्टु

३ भिक्षा के लिये और ४ मार्ग पूछने के लिये वे वोल दिया करते थे । भयंकर सर्दी और गरमी की भी वे परवाह नहीं करते थे । भयंकर ठंडी मे भी वे ओढते नहीं थे । भयंकर गरमी मे भी वे विहार कर देते थे ।

वोसट्ठकाए सुइचत्त देहे

वे शरीर का ममत्व भाव छोड चुके थे । काया तो दुश्मन है, उसकी क्या चिन्ता करना ? भगवान ने ९ वार चार मास के चौविहार उपवास किये । एक वार ६

मास का चौविहार उपवास किया। ७२ बार १५ उपवास किये। १२ वार भिक्षु पडिमा–अठ्ठम तप किये। भद्र पडिमा, सर्वतो भद्र पडिमा और महाभद्र पडिमा के लिये डेढ़ दो और ढाई मास के चौविहार उपवास किये। कमसे कम छठ्ठ का तप और. अधिक से अधिक ६ मास का उन्होने तप किया। साढे वारह वर्ष और १५ दिनो में उन्होंने केवल ३४९ दिन ही पारणा किया। एक बार ५ मास और २५ दिन का सुप्रसिद्ध अभिग्रह युक्त चौविहार उपवास किया, जिसका पारणा चंदना के हाथ से हुआ। भगवान यह अभिग्रह ले कौशाम्बी में आहार के लिये जा रहे हैं। आज उनको ५ मास और २५ दिन हो गये हैं–

सति चंदन वाला ने बारणे ३
प्रभु आवी उभा छे पारणे
अेनुं जीवतर धन्य धन्य थाय।
पांच पांच मासना उपवास साथे
पच्चीस दिवस ना व्हाणां वाया – व्हाणा. . .
घेर घेर घूमता तोये प्रभु ने,
भोजन मले ना मन मान्या
कोई मोदक मीठा लावता रे
कोई पकवान्न प्रेमे आपता रे
तोय प्रभुजी पाछा जाय. . . सति –
आवो– आवो देव मारा सूना सूना द्वार
मारा आंगणां सूना।
माथे मुंडी पगमां वेडी आंखे आसुधार
उपवासी त्रण त्रण दिन नी तोय मुखे गणे नवकार। मारा–

महावीर फिरते फिरते धन्नावह सेठ और मूला सेठानी के यहां आते हैं। मूला चंदना के बाल काटकर भोयरे मे डाल देती है। तीन दिन हो गये है। सेठ आते हैं तो चदना की ऐसी हालत देख कर दुखी हो जाते है। चदना कहती है– इसमे किसी का दोप नहीं है, मेरे ही कर्मो का दोप है। सेठ ने कहा– वेटी, तू तीन दिन की भूखी है, पहले कुछ खा ले। मै लुहार को बुलाकर लाता हू। वे एक सूप मे उडद के बाकुले देकर लुहार को बुलाने चले जाते है।

चंदना देहली पर आकर वैठ जाती है। दो पोरसी हो गई है, फिर भी वह किसी अतिथि का इन्तजार करती है।

आओ आओ देव मारा सूना सूना द्वार मारां आंगणा सूना ।
रोती रोती चंदनबाला विनवे छे आज, मारा आंगणा सूना ।

कोई मेरे आंगन में आवे तो उसे देकर ही मैं खाऊँ । मेरा अट्ठम का तप है । इधर ये किसी का इंतजार कर रही है और उधर भगवान अभिग्रह ले बैठे हैं । दोनों का कैसा संयोग मिल रहा है ? भगवान तो चार ज्ञान के धणी थे । फिर भी उन्होने यह कभी नही देखा कि मेरा पारणा कब होगा ? तुम्हारे पास ऐसा ज्ञान हो तो कब तक तुम भूखे रह सकोगे ? चंदना ने भगवान को आते हुए देखा तो वह हर्षित हो गई–

वाकुलाना भोजन मलिया पण नहि मनडु माने ।
कोई अतिथि ने आपी ने पछीज खावुं मारे । मारा...

भगवान ने देखा और सब बाते तो मिल गई है, पर एक बात की अभी भी कमी है । आखो मे आसू नही थे । वे वापस लौट जाते हैं । चंदना उन्हे लौटते देखती है तो रोने लगती है– क्या अब भी कुछ कमी है ? अतिथि आये हुए वापिस क्यो चले गये ? भगवान ने उसे देखा । अब सब बातें पूरी हो गई थी । वे पुनः लौट आये । चंदना यह देख कर खुश भी हो गई । अश्रु भीनी आंखो मे खुशी की लहर भी दौड आई ।

अेज क्षणे चमकार थयोने पगनी बेडी तूटी
माथे सुंदर केश थयाने वरसी सुखनी हेली– मारा..

कैसा चमत्कार हो गया ? भगवान को उडद के बाकुले दिये नही कि हाथ-पैर की वेडिया अपने आप टूट गई । सिर पर सुंदर बाल आ गये । पहले फूलों की वर्षा हुई और बाद मे १२।। करौड सोनैयो की बरसात होने लगी । देवदुदुभि बज उठी– भगवान का पारणा हो गया है ।'

कहा हुआ है ? लोग आने लगे । मूला सेठानी भी आई । उसने चंदना को देखा तो बोली-वेटी, मुझे माफ कर दे । मुझे अपने किये पर वहुत दुख है । चंदना कहती है–यह क्या कह रही हो मां ? यह सब तो आपका ही प्रताप है । बडो की बातें तो देखो ?–

भूल बीजानी भूली जाजे कदि तारीं भूल कबुली जाजे ।
अपकारे उपकार करीने दिलनों हलवो भार करीले । थोडो
एक दिवस एकान्ते बेसीने थोडो प्रभुसे प्यार करीले । थोडो ।

सेठ तो लुहार को लेकर आ रहे हैं ? इतने मे तो वे यह क्या देखते हैं ? चंदना यह क्या ? पिताजी आपका प्रताप । दूसरो की भूल भूल जाना ही महापुरुषो का काम है ।

राजकुमारी ते हती, वैभव नो नहि पार ।
तो ये आ संसार नो मोह न जेणे लगार ।

भगवान जब चार तीर्थ की स्थापना करते है तो साध्वी तीर्थ की पहली साध्वी यह चंदन बाला ही बनती है। इसकी आज्ञा में दूसरी ३६ हजार साध्विया थी। सोचिये तो सही वह कैसी गंभीर रही होगी ?

कोई अपना बुरा भी कर दे तो उसे भूल जाओ। यही समझो कि जो कुछ हुआ है वह मेरे कर्मो का ही परणाम है ? निमित्त भले दूसरा वन गया हो, पर उपादान तो मेरा ही है।

भगवान का अभिग्रह चंदना के हाथो से पूरा हुआ। और वह भी उडद के बाकुलो से। महत्व उडद के बाकुले का नही है–महत्व तो भावना का ही है। जब हृदय मे उत्कृष्ट भाव आता है तभी कर्मो का दल नष्ट किया जा सकता है।

पांच मास और पच्चीस दिन वाद भगवान का पारणा हुआ और वह भी उडद के बाकुले से। दूसरे दिन तो पुनः वे छठ्ठका तप स्वीकार कर लेते है। इस तरह १२।। वर्ष और १५ दिन तक उन्होने घोर तप किया था। उनके जैसा तप और किसी तीर्थकर ने नही किया। सम्पूर्ण कर्मो को नष्ट करने के लिये उन्हें जबरदस्त पुरुषार्थ करना पडा था।

जो काम भगवान महावीर ने किया था वही काम आज जैन साधु भी कर रहे है –

तेरे कदमों पे चलते चलते मरूं।
मुसीबत के पहाडों से तो कभी ना डरूं
तुझको हिंसा से नहीं प्यार, तुम हो सत्य के अवतार
मेरे जिनजी प्रभु दुखियों के तारण हार।।

हे भगवन्! तेरे मार्ग पर चलते चलते मुसीबतों के पहाड भी क्यो न टूट जाय, पर हम उस मार्ग से हटेगे नही। विचलित नही बनेगे।

स्त्री हठ, राज हठ, जोगी हठ और बाल हठ ये चार हठ तो है, पर यह पीछे-हट कब से चालू हुई है ? आज धर्म मे पीछे हट क्यो हो रही है ?

आज पौषध करना है, क्या तुम भी आवोगे ? अरे भाई! यह तो तुम जैसे जवानो का काम है– मेरे जैसे बूढे आदमी का काम नही है। शरीर अभी काम नहीं देता है। चलो ठीक है, पर कल संघ का जीमण है, उसमे तो आवोगे न ? हा भाई उसमे तो आना ही पडेगा। कहा तुम्हारी साधना और कहा भगवान की साधना ? वे खडहर मे भी रह जाते थे और देह की परवाह नही करते थे। तुम भी अपनी आत्मा की परवाह करो शरीर की परवाह क्यों कर रहे हो ?

पहेला देह दृष्टि हती, ते थी भास्यो देह
हवे दृष्टि थई आत्ममां, गयो देह नो नेह।

सम्यक्–दृष्टि अप्रमत्त संयति ही ऐसा कर सकते है।

१० समयं गोयम मा पमामए–प्रमाद मत करो।
११ बहुसूत्री। (विद्या प्राप्त करने की पात्रता और अपात्रता)
१२ हरिकेशी मुनि– चाडाल कुल में उत्पन्न होने वाला भी मुनि हो सकता है।
१३ चित्त– संभूति के रूप मे त्याग और भोग का क्या परिणाम होता है? यह बताया गया है।
१४ छहजीव–एक साथ छह आत्मा स्वरूप को समझ कर साधु बनते हैं– उसका वर्णन किया गया है।
१५ साधुओं के गुणों का विवेचन है।
१६ ब्रह्मचर्य की ९ वाड का विवेचन।
१७ पाप श्रमण। जो साधु बन कर भी अपने धर्म का पालन नही करते–प्रमाद करते हैं तो वे पाप श्रमण कहे जाते हैं।
१८ संयति राजा का।
१९ मृगापुत्र का।
२० अनाथि मुनि का। अनाथ कौन और सनाथ कौन? इसकी बहुत सुंदर व्याख्या की गई है।

मुनि राजा श्रेणिक से कहते है–तू स्वयं अनाथ है, तू मेरा क्या नाथ बनेगा? राजा– क्या आप झूठ तो नहीं बोल रहे है? मुनि– नही, मैं समझ कर ही बोल रहा हूं। वे अपनी बात कहते हैं। वेदना आती है तब कोई उसे नही ले सकता है। तू भी वैसा ही है।

संयमी बन कर भी जो उससे चलित हो जाते है वे भी अनाथ ही है।

पूज्य श्रीलालजी म. यावज्जीवन इस अध्ययन की स्वाध्याय करते रहे थे। उन्होने तो यहां तक कह दिया था कि जिस दिन मै इसकी स्वाध्याय न कर सकूंगा समझ लेना उसी दिन मेरी मृत्यु हो जायगी। सचमुच हुआ भी ऐसा ही। एक दिन वे इसकी स्वाध्याय न कर सके, उसी दिन उनकी मृत्यु भी हो गई। कैसे वे महापुरूष रहे होगे?

२१ समुद्रपाल का।
२२ रहनेमि और राजुल का।
२३ केशी और गौतम का सवाद।
२४ आठ प्रवचन माता का
२५ जयघोष और विजय घोष मुनि का
२६ साधु समाचारी
२७ गर्गाचार्य के ५०० अविनीत शिष्यो का
२८ मोक्षमार्ग का

२९ सम्यक्त्व पराक्रम का
३० तप मार्ग का
३१ चारित्र विधि
३२ प्रमाद स्थान
३३ आठ कर्मप्रकृतियों का
३४ छह लेश्या का
३५ अणगार जीवन का
३६ जीवाजीव विभक्ति का

भगवान का निर्वाण अमावस्या की पिछली रात में हुआ। आज उनकी निर्वाण तिथि है। गुलाब जामुन खाने का या नये नये वस्त्र पहनने का यह दिवस नहीं है। संयम की आराधना करो—कर्मों के साथ संग्राम करो। उन्होने जैसा किया था वैसा अगर हम भी करेगें तो एक दिन हम भी उनके समान वन सकेगें।

पावापुरी में उनका निर्वाण हुआ। उनकी अन्तिम देशना उत्तराध्ययन के रूप में है। कम से कम एक बार भी उसे पढ जाओगे तो धर्म के वास्तविक स्वरूप से परिचित हो सकोगे।

जो भव्य आत्मायें भगवान के जीवन का अनुकरण कर उस मार्ग पर चलेगें वे ही अपने जीवन का कल्याण कर सकेगें।

ता. २२-१०-६९

[११५]

पौटिला को साध्वा जी वारह व्रत समझा रही है। चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है। पुरुष के लिये स्व स्त्री को छोड कर पर स्त्री का त्याग और स्त्री के लिये स्व पति को छोड कर पर पुरुष का त्याग कराया जाता है। इस व्रत को लेने वाला केवल एक कोटि मे अब्रह्मचर्य का त्याग करता है। जो लोग व्रतों के स्वरूप को समझते नहीं हैं वे तरह तरह की शंकाओ मे फंस जाते हैं। व्रत लेने से पूर्व व्रतों के स्वरूप को वरावर समझ लेना आवश्यक है। जो महाव्रती होते हैं वे अब्रह्मचर्य का ९ कौटि से त्याग करते हैं साधु का त्याग नौ कोटि से हैं। लेकिन जो श्रावक होते हैं वे केवल 'करू नहीं काया से' इतना ही त्याग करते हैं। शेष ८ कोटि की उन्हें छूट रहती है। वे शादी विवाह करा सकते हैं। उनको देवता संवंधी ६ कोटि का त्याग होता है। परन्तु मनुष्य तथा तिर्यंच संवंधी त्याग केवल करूं नहीं काया से—एक कोटि का ही होता है।

जो लोग नौ कोटि से ब्रह्मचर्य की साधना न कर सके वे भी एक कोटि से तो कर सकते हैं । पाप से तो जितने अंश मे विमुक्त बना जायगा उतना ही अच्छा रहेगा। साधु लड़के–लडकी के विवाह के बारे में कुछ कह नहीं सकते हैं । क्योकि उनको नौ कोटि से पच्चक्खाण होते हैं ।

मन से करूं नहीं, करावुं वही. अनुमोदु नहीं. ३
वचन से करूं नहीं, करावु नहीं अनुमोदुं नहीं ३
काया से करूं नहीं, करावु नहीं अनुमोदुं नहीं. ३

९

यह नौ कोटि पच्चक्खाण कहा जाता है । सीता सती थी, पर जो नौ कोटि से ब्रह्मचर्य की साधना करती है, वे महासती कही जाती है । श्रावक भी एक कोटि से ३ कोटि, ६ कोटि और ९ कोटि तक पहुंच सकता है । श्रावक के ४९ भांगे कहे गये है । ३३ वां भागा तीन करण और तीन योग का है । यही साधु का भी भांगा है । साधु कभी किसी को ऐसा आशीर्वाद नही दे सकता कि तुम वैभवशाली बनो, बाल-बच्चो वाले बनो – यह काम साधुजी नही कर सकते हैं । साधु का जीवन तो उच्च कक्षा का जीवन होता है । उनको जो तिक्खुत्तो से तीन बार नमस्कार किया जाता है, वह उनके गुणो को किया जाता है न कि उनके शरीर को । गुण हों तो साधु वदनीय है। साधु के पास और क्या होता है ? सफेद वस्त्र और काष्ट के पात्र । फिरभी वह वंदनीय क्यो है? पाच इन्द्रिय और चार कषायो को जो वश मे रखते है वे ही वंदनीय होते है । जिस साधु के शरीर मे आत्मा न हो– शरीर मुर्दा हो गया हो तो उसे भी नमस्कार नही किया जा सकता है ।

चिनगारी छोटी सी भी क्यो न हो, वह भी दावानल का रूप धारण कर सकती है । ऐसे ही निगोद मे भी अक्षर के अनन्तवा भाग जितना ज्ञान तो सदैव रहता ही है । वह न हो तो जीव भी अजीव बन सकता है । लेकिन ऐसा कभी हो नही सकता । जैसा कि कहा भी है –

सव्व जीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंत भागो
निच्चुग्घाडिओ जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा–
तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा सुट्ठुवि मेहसमुदए होइ
पभाचंद सूराणं ।

जीव था, है और रहेगा । उसका कभी नाश नही हो सकता । चिनगारी जितना ज्ञान तो निगोद मे भी रहता ही हैं । जैसे चिनगारी में महानल बनने की शक्ति रही हुई है वैसे ही ज्ञान के अनन्तवें भाग मे भी महाज्ञानी बनने की शक्ति तो रही

हुई है ही। आवश्यकता है उसे प्रकट करने की। अनन्त काल से तुम जी तो रहे हो, पर, वह शक्ति अभी तक क्यो नही प्रकट कर पा रहे हो ? परीक्षा मे पास होने के लिये लडका दो महीने पहले से ही तैयारी करने लगता है। जो लडका यह सोचता है कि अभी तो परीक्षा दूर है—परीक्षा होगी तब देखा जायगा, वह क्या पास हो सकेगा ? वैसे ही तुम भी यही सोच रहे हो कि अभी क्या है ? मौत आवेगी जब देखा जायगा। जल्दी क्या है ? तब क्या कर सकोगे ? क्या तुम फेल होना चाहते हो ? फिर मेहनत क्यो नही करते ? इन्द्रियो मे ताकत है तब तक परिश्रम क्यो नहीं करते ? बाद मे कुछ नही कर सकोगे।

प्रतिमाधारी साधु शरीर से कितना काम लेते है ? शीत—उष्ण के महान परिषह भी वे सहन करते है। पाव मे काटा चुभ जाय या आख मे धूल पड जाय, वे हाथ से निकालते नही है। भयकर गर्मी पड रही हो और वे मार्ग मे जा रहे हो तो उस मार्ग को छोड़ कर वे छाया वाले मार्ग मे नही चल सकते है। इसी तरह शीत से बचने के लिये उष्ण स्थान पर नही आ सकते है। एकान्त मकान मे वे अगर ध्यानावस्था मे खडे हों, वही दो—स्त्री—पुरुष काम—वासना की तृप्ति के लिये भी आजायं और उस मुनि को बाहर जाने का कहे—इसके लिये उन्हे मारे—पीटे और जला भी दे तब भी वे मुनि अविचलित रहते है, मकान से बाहर नही निकलते है। शरीर पर कितना उनका कन्ट्रोल होता है ? शरीर की ममता तो तनिक भी उन्हे नही होती। तुम तो शरीर को ही देखते रहते हो। कितना वजन बढा है ? यो बारदान को ही देख रहे हो, माल को तो देखते ही नही हो। मोक्ष चाहते हो या रखडपट्टी मे ही रहना चाहते हो ? फिर देह को ही क्यो देख रहे हो ?

जब तक जीव सकर्मक— कर्म सहित रहता है तब तक वह पौद्गलिक ही कहा जाता है। जैसे घडा होता तो मिट्टी का ही है, पर उसमे घी भरा हुआ हो तो वह घी का घडा कहा जाता है— वैसे ही जब तक आत्मा मे कर्म रहते है तब तक वह भी पौद्गलिक ही कही जाती है। आत्मा स्वयं तो चैतन है, पर कर्मो के संयोग से वह पौद्गलिक मान ली जाती है।

आत्मा मे तो अपूर्व शक्ति रही हुई है। निगोद से भी क्रमिक विकास करते करते मनुष्य भव धारण कर आत्मा मोक्ष मे जा सकती है। आवश्यकता है आत्माभिमुख होने की। जैसे किसी को १०० रु. मासिक वैतन के बजाय २०० रु. मिलने लग जाय तो रहन—सहन मे अन्तर हो जाता है वैसे ही स्व मे भी पुरुषार्थ करोगे तो आध्यात्मिक गुण अवश्य प्रकट हो सकेगें—तुम्हारी आध्यात्मिक स्थिति मे भी अन्तर अवश्य दिखाई देगा।

महामुनि फिरते फिरते आ रहे है। उनकी आख मे घास का तिनका पड गया है।

पर वे हाथ से उसे निकाल नही सकते है । सामने से सिंह भी आ जाय तो वे पीछे कदम नहीं उठा सकते हैं । ऐसे वे निर्भय होते हैं । प्रतिमाधारी साधु की क्या वात है? वे तो कर्मों को नष्ट करने के लिये घोर तप करते हैं । जैसे जैसे पौद्गलानंदी स्वभाव कम होता जाता है वैसे वैसे आत्मानंदी स्वभाव वढता जाता है । मोह छोडोगे तो भगवान के पास पहुंच सकोगे । शरीर का फोटो क्यों खिचवा रहे हो ? वह आत्मा का फोटो नहीं है ? आत्मा तो अरूपी है, उसका फोटो कभी नहीं पड सकता है । यह शरीर आत्मा नहीं है ।

मुनि गौचरी जा रहे हैं । आंख में से आंसू बह रहे हैं । सुभद्रा ने मुनि को देखा तो समझ गई कि मुनि प्रतिमाधारी हैं । आंखों मे कुछ पड गया है । पर वे निकाल नहीं सकते हैं । सुभद्रा ने अपनी जीभ से मुनि की आंख साफ कर दी । उसकी सास तो यही मौका देख रही थी । वह चिल्लाई–तू ने तो हमारे कुल में कलंक लगा दिया । मुंह से तो अरिहन्त – अरिहन्त कहती है, पर मुनि से प्रेम करती है । वह अपने लडके से भी कहती है–तेरी औरत कुल को कलंक लगाने वाली है–पर पुरुष से प्रेम करती है ।

गुण विणसी गुण लाडको, गुण विना नार कुनार ।
मन रे भांग्युं भरथारनुं, नहि मारे घर द्वार ।
पियु वचन श्रवणे सुणी, सति मन चिंतवे अेम ।
जैन धर्म कलंक जाणी करी, काउसग्ग कीधो रे तेम ।
इन्द्र तणु रे आसन चाल्युं सति शिर आव्युं रे आल ।
पोल जडावुं नगर तणी, तो रे उतरशे गाल ।

सुभद्रा का पति कहता है–तू कुलटा है–गुण हीन है । तू मेरे घर मे रहने योग्य नहीं है । सुभद्रा यह सुनकर सोचती है– पति ही अगर मुझे ऐसा कहें तो दूसरा कौन मेरी बात समझ सकेगा ? मै निर्दोष और मुनि भी निर्दोष हैं, फिर भी कलंक तो आया ही है । यह कलंक न उतरे वहां तक मै चारों आहार का त्याग करती हूं ।' सोना सच्चा था, उसे डर किस का ? सुभद्रा तो काउसग्ग कर के वैठ गई। इन्द्र का आसन चलायमान हो उठा । उसने अपने ज्ञान में देखा तो ज्ञात हुआ कि सती पर संकट आ गया है, घर के आदमी ही उसके दुश्मन हो गये हैं । इन्द्र ने चंपा नगरी के दरवाजे वंद करवा दिये । वाहर के वाहर और अंदर के अंदर ही रह गये ।

भुंगल तो भांगे नहि घण न लागे रे घाय ।
चंपा पोल उघाडवा, आकुल व्याकुल थाय ।
आकाशे उभा देवता, बोले अेवा रे बोल ।
जो सती जल सिंचे चालणी, तो उघडशे पोल ।

दरवाजे खोलने के बहुत प्रयत्न किये, पर वे किसी भी तरह टस से मस न हुए। तीन दिन हो गये। आवागमन सब बंद हो गया। इतने में आकाशवाणी हुई– जो सती कच्चे सूत से चालणी बांधकर पानी निकालेगी और फिर दरवाजे पर छांटेगी तो दरवाजे अपने आप खुल जायंगें। राजा तो यह सुनकर खुश हो गया। मेरे यहां तो सैकडो रानियां हैं। अभी वे चलनी मे पानी निकाल देगीं और दरवाजे खुल जायंगें। वह अपनी रानियों को बुलाता है और पानी निकालने के लिये कहता है। परन्तु पानी निकालना तो दूर रहा– चलनी भी बंधती नहीं है। कच्चा सूत ही तो ठहरा–बाधते बांधते ही धागा टूट जाता था। राजा यह देख कर तो हैरान हो गया कि मेरे महलों मे भी कोई सती स्त्री नही है? राजा ने अब अपने गाव में ढीढोरा पिटवा दिया। आदमी ढोल बजाते हुए गली गली में यही कहता चला जा रहा था। सुभद्रा ने भी इसे सुना तो समझ गई कि अब मेरी परीक्षा का समय आ गया है। वह अपनी सास से कहती है–

यडो रे आव्यो घर आंगणे, नगरी हालक लोक।
जो माता अनुमति दीयो, तो रे उघाडु हुं पोल।

माताजी, अगर आपकी आज्ञा हो तो मै दरवाजे खोलेने जाऊं?

सासु कहती है–

वली वली बहु तने शुं कहुं, नहि रे निर्लज ने लाज।
नव कुल नाग नाशी गया, आव्युं काकीडे राज।

कुलटा होकर पतिव्रता बनने जा रही है? घर मे ही बैठी रह, बाहर क्यो घर की बेइज्जती कराने जा रही है?

मै निर्दोष हूं या दोषी हूं? यह तो तभी मालूम हो सकेगा। सुभद्रा चल देती है। राजा और प्रजा सभी उसको देखने लगते है। उसका तेज अपूर्व था। सुभद्रा ने कहा–

अवर पुरुष बंधव पिता, सती मनमांहि सोय।
मानव सहु मेडी अे चडी सतीने जुअे सहु कोय।
काचे तांतणे चालणी सती कला चढी रे सोल।
कामिनी कुप जले भरी, उघाडी त्रण पोल।
कोई पियर कोई सासरे, कोई हशे माने मोंसाल
चोथी पोल उघाडशे, जे हशे शियल चोसाल

अगर अरिहंत मेरे देव और पति ही मेरे सर्वस्व रहे हों तो यह चलनी पानी से भर कर बाहर निकले। यह कह कर जैसे ही उसने चलनी कुए में डाली कि वह पानी से भरी हुई बाहिर आ गई। चलनी मे कितने छेद होते हैं?

फिर भी एक बूंद पानी नीचे नहीं गिरता है। उसने वह पानी दरवाजें पर छिड़का तो दरवाजे अपने आप खुल जाते हैं। इस तरह उसने तीन दरवाजे तो खोल दिये, पर चौथा नहीं खोला। राजाने उसे भी खोलने के लिये कहा–तो सुभद्रा ने कहा–राजन्! इसे बंद ही रहने दीजिये, मेरे जैसी कोई भी स्त्री जो अपने पीयर या सुसराल गई हुई होगी, वह भी चाहेगी तो इसे खोल सकेगी।

चंपा नगरी का वह दरवाजा आज भी बंद है। सुभद्रा परीक्षा में पास हो गई। सच्चा सोना तो आग मे जल कर भी खरा ही रहता है, काला नहीं पडता है। सास आकर उसके पैरों में पडती है–पति भी अपनी भूल स्वीकार करता है। यों घरमे सब आनंद मंगल हो जाता है। पतिव्रता स्त्री मे भी कितना तेज होता है? यह इससे स्पष्ट होजाता है। अब्रह्मचर्य तो पाप है, उसकी मर्यादा कर लेना भी अंशतः धर्म में आ जाना है। इसीलिये श्रावक–श्राविकाओ को ब्रह्मचर्य की मर्यादा कराई जाती है।

पर स्त्री को देख कर काम-विकार जागृत करना पाप का कारण है। श्रावक तो स्वदार संतोषी होता है।

एक राजा के पास एक बाई का पत्र आता है। पत्र पढ़ कर राजा ने सोचा कि यह कोई दुखी औरत होगी–मुझे बुला रही है–मैं राजा हूं–उसका दुख दूर करना मेरा कर्तव्य है। वह अपने साथ दो सिपाही लेकर वहां जाता है।

बाई तो प्रतीक्षा कर ही रही थी। राजा ने द्वार खटखटाया तो उसने दरवाजा खोला और पधारिये–कह कर राजा का स्वागत किया। राजा के साथ दो सिपाही भी थे। वह उन्हें बाहर बैठा कर राजा को अंदर ले गई। राजा तो उसका बंगला देख कर हैरान रह गया। यह बाई तो गरीब नही है–फिर मुझे क्यो बुलाया है?

बाई कहती है– राजन्? मै विधवा औरत हूं। मेरे पास धन की कमी नहीं है, अरबों की सम्पत्ति है। मेरा पति ६ महीने मे ही मर गया है। संतान कोई नही है। मन पर काबू नही रहता है। आप मेरी इच्छा पूरी करो। मै आपकी और आप भी मेरे हो जाइये।

यह सुन कर राजा कहता है– बहिन, यह तुम क्या कह रही हो?

बाई बोली– मै चाहती हूं कि आप के जैसा ही मेरे भी लडका हो।

राजा कहता है– तू मेरी मा है– मै तेरा पुत्र हूं। पतित होकर तू मा बनना चाहती है? नाहक यह पाप क्यों मोल लेना चाहती है? मुझे तू अपना पुत्र बना ले और दुष्ट कामना अपने हृदय से बाहर निकाल दे। यह सुनकर बाई तो आश्चर्य मे डूब गई।

निरखी ने नव यौवना लेश न विषय निदान।
गणें काष्ट की पूतली, ते भगवान समान।

राजा की भावना कैसी निर्विकार है? स्व पत्नी के सिवाय उसे तो दूसरी

सभी स्त्रियां मां और बहिन जैसी है। भारत भूमि पर ऐसी सन्नारियां और महापुरुष तो अनेक हो गये है। उसी पवित्र संस्कृति के वारसदारों में आज तलाक की मनोवृत्ति पनपती जा रही है। ब्रह्मचर्य के लिये सर्वस्व का बलिदान करने वाले देश में आज ब्रह्मचर्य को ही हवा मे उडाया जा रहा है ?

पौटिला चौथे व्रत का पच्चक्खाण लेती है। स्वपति संतोष का व्रत धारण करती है। सतीजी उसे ५ वां व्रत परिग्रह परिमाण का ज्ञान कराती है।

सामिसं कुललं दिस्स, बज्झ माणं निरामिसं।
आमिसं सव्व मुज्झिता, विहरिस्सामो निरामिसा।

मांस के टुकड़े को देख कर जैसे पक्षी उस पर मंडराते रहते हैं वैसे ही जहां परिग्रह होता है उसे भी सभी लोग देखते रहते हैं। चोर, डाकू और लुटेरे भी वहीं आते हैं। निष्परिग्रही को किसीका डर नही होता। फकीरी में जो मजा होता है वह अन्यत्र कही नहीं होता।

संतोषी ही सदा सुखी होता है। साध्वी जी उसे अपरिग्रह व्रत का स्वरूप बता रही है। आगे क्या होता है ? यथावसर कहा जायगा।

ता. २३-१०-६८

[११६]

पौटिला व्रतों का स्वरूप समझ रही है। साध्वीजी उसे अपरिग्रह का स्वरूप बताते हुए कहती है-

क्या इच्छत है खोवत है इच्छा-है दुख मूल।
जब अनादि की इच्छा मिटे, मिटे अनादि की भूल।

इच्छाओं से जीव दुखी होता है। इच्छाओं की पूर्ति न हो तो मानव को दुख होता है। जब इच्छा-पूर्ति के साधन उपस्थित होते हैं तो इच्छाएं बदल जाती हैं। वे कभी पूरी नही होती।

मनसुबाना चणे मीनारा मृगजल सरीखा लागे प्यारा।
चार दिवसना ए चमकारा एकलो आव्यो...

मानव मनसूबे तो खूब करता है। ऐसा हो जाय तो ठीक, परन्तु सोचने मात्र से ही तो वह हो नही जाता ? अनुकूल साधन मिलना और न मिलना यह भी पुण्य-पाप का खेल है। अनंत बार तुमको स्वर्गीय सुख प्राप्त हुए हैं, केवल एक धर्म ही नही मिला है अतः उसकी इच्छा करो। दूसरी इच्छाएं करने से तो मोक्ष मिलेगा नही अतः मोक्ष चाहिये तो कर्मों को नष्ट करने की इच्छा करो।

महावीर देव प्रणमी विनती करूं छुं एवी
शिव रमणि ना सुख क्यारे मले हुं मांगुं एटलुं
क्यारेक नरक ना दुख, क्यारेक स्वर्ग ना सुख
आवागमन मारा क्यारे, टले हुं मांगु एटलुं

हे प्रभु ! मैं इतना ही मांगता हूं कि मेरा जन्म–मरण मिट जाय और मैं कुछ नहीं चाहता। यह जीव अनन्तकाल से जन्म–मरण करता चला आ रहा है। कई बार स्वर्ग में तो कई बार नरक में भी गया है।

उववायं चवणं नच्चा ।

उत्पन्न होना और मरना तो जीव के साथ रहा हुआ ही है। मैं अब इस मार्ग पर जाना नहीं चाहता। मेरा आवागमन कब मिटेगा ? यही मेरी प्रार्थना है। ८४ लाख घर हैं। एक घर को साफ-सूफ करता हूं, वहा तो खाली करने की नोटिस आ जाती है। उसे छोडकर दूसरे में जाता हूं तो वहा से भी निकाला जाता हूं। अब मैं इस झंझट मे रहना नहीं चाहता हूं। भाव कर्म छूट जायंगे तो द्रव्य कर्म अपने आप दूर हो सकते हैं। राग-द्वेष को छोडोगे तो कर्मों को नष्ट कर सकोगे। अतः ज्ञानी कहते हैं– हे प्रभु ! मेरा आवागमन मिट जाय, बस इतना ही मैं मांगता हूं। शिव रमणी का सुख ही मैं चाहता हूं।

मोक्ष – सुख की प्राप्ति मे परिग्रह भी एक महा बंधन है। लेकिन तुम्हें तो परिग्रह ही प्रिय लग रहा है – उससे मुक्त होने का तो कभी विचार भी नही आता है। घर में रेडियो है तो रेफरीजेटर की इच्छा करते हो। यों तृष्णा में ही सारा जीवन व्यतीत कर देते हो। जहां तक मोक्ष सुख न मिले वहा तक जीवन सार्थक नही कहा जा सकता है।

भाव कर्म निज कल्पना माटे चेतन रूप ।
जीव वीर्यनी स्फूरणा ग्रहण करे जड धूप ।

भाव कर्म ही राग-द्वेष की जड़ है। उसकी कल्पना करके ही जीव द्रव्य कर्म की वर्गणा अपने से चिपका लेता है। चाकू टेबल पर पड़ा हुआ है, उसे हाथ से उठा कर पेट में मारोगे तो लगेगा-ऐसे ही पडे पडे तो नही लग सकता है, वैसे ही कर्मों को जब भी तुम विभाव भाव से चिपकाओगे तभी वे चिपकेंगें, अन्यथा नहीं।

परिग्रह पाप का मूल है, वह कषाय की ज्वाला प्रज्वलित करने वाला है। कूड-कपट की बेल को हरा रखने वाला है– संसार को हरा भरा रखने वाला है। तुम भी उसे हरा रखना चाहते हो या जलाना चाहते हो ? करने योग्य जो काम है– क्षमा–संतोष, धैर्य–यमनियम– प्रत्याख्यान आदि–वह तो करते नहीं हो और विपरीत मार्ग पर चलने में मजा मान रहे हो। कोई तुम्हें सच्चा मार्ग बतावे तो

तुम उन्हें आखे दिखाते हो । रोज रोज यही क्या सुनाते हो ? कुछ दूसरा सुनाओ न ? जो सच्चा है वही तुम सुन रहे हो तो उसी मार्ग पर क्यो नहीं चलते हो ? क्यों विपरीत मार्गपर जा रहे हो ? फिर भी न छोडोगे तो खड्डे मे पड़ जाओगे, नाश हो जायगा । ज्ञानी तो निष्कारण करुणा करनेवाले हैं । तुम्हारा और हमारा संबंध क्या है ? फिर भी हम तुम्हे वीतराग का मार्ग निस्पृह भाव से बताते हैं । फिर भी तुम बंधन से मुक्त होने का प्रयत्न क्यों नही करते हो ? तोते को सोने के पिंजरे में बंद कर क्यों न रखो, पर वह परवशता तो अनुभव करता ही है । वैसे ही तुम भी बंधन को महसूस तो करो । आत्मा का स्वभाव तो मुक्त होने का है । अक्सर लोग कहा करते है कि मै किसी के दवाव मे नही रह सकता, तो फिर कषाय के दबाव में क्यों रहते हो ? इन्द्रियां कहती है वैसा ही क्यो करते हो ? यह पराधीनता नहीं तो क्या है ?

मोक्ष के लिये तो उत्कट अभिलाषा जागृत होनी चाहिये । जैसे पानी मे डूबने वाला आदमी बचाओ २ चिल्लाता है– उस समय उसकी जो तडफड़ाहट होती है वैसी ही तडफडाहट मोक्ष के लिये भी पैदा हो जाय तो वह मिल सकता है ।

कषाय की उपशांतता मात्र मोक्ष अभिलाष ।
भवे खेद अन्तर दया, ते कहिये जिज्ञास ।

कषाय शात हो जाते है तो मोक्ष की इच्छा जागृत हुए विना नहीं रहेगी । इच्छा करनी ही है तो मोक्ष की करो । यही मानव भव का सार है ।

खेत अच्छा हो– मिट्टी चिकनी हो, वरसात और मौसम भी अनुकूल हो, पर उसमे वोया हुआ वीज पैदा न हो तो क्या समझना चाहिये ? कादावाडी सरीखा विशाल स्थानक है– पर उसमे पैदा क्या होता है ? एक अट्ठाई या मासखमण का तप कर लो और उसी मे संतोष कर लो तो यह क्या पैदावार हुई ? एक श्रावक भी श्रद्धा मे दृढ निकल जाय तो वही वहुत वडी कमाई है । वनना ही है तो सच्चा रुपया वनो । खोटे रुपये हजार भी क्या कर सकेगे ? जिसके वचनो का ही ठिकाना न हो, चारित्र का ही ठिकाना न हो– वे कैसे अविकारी है ? अत: आवश्यकता है सच्चे श्रावक वनने की ।

एक साधु ज्ञानी तो हो, पर चारित्र मे कमजोर हो, व्यभिचारी हो तो क्या तुम उनको नमस्कार कर सकोगे ? जिसका चारित्र चला जाता है वह भ्रष्ट हो जाता है । चारित्र हीन, ज्ञानी भी क्या काम का है ? वैसे ही भ्रष्ट श्रावक का भी क्या अर्थ है ? मौका आता है तो तुम महालक्ष्मी भी चले जाते हो, अंबाजी और घोराजी भी चले जाते हो । फिर तुम कैसे श्रावक हो ? ज्ञान और श्रद्धा मे भी स्थिर न हो सको तो तुम्हे क्या समझना चाहिये ?

श्रावक का गुणस्थान तो ५ वा है जब कि देवता का तो चौथा है । क्या मानव देवता को नमस्कार कर सकता है ? राजा प्रधान को नमस्कार करता है या प्रधान राजा को नमस्कार करता है ? तुम भी अपना पद क्यों नहीं देखते हो ? तुम भी श्रावक हो, फिर देवता को क्यो नमस्कार करते हो ?

देवता के डिगाये भी जो डिगते नही है वे ही सच्चे श्रावक कहे जाते हैं ।

अरणक श्रावक से देवता क्या कहता है ! तुम केवल इतना ही कह दो कि मेरा धर्म झूठा है ।' नही तो मैं तेरा वाहन समुद्र मे डुवा दूगा ।

अरणक की जगह तुम होते तो क्या करते ? अरणक कच्चा श्रावक नही था। वह . संथारा कर बैठ जाता है –

आहार शरीर ने उपधि पचखूं पाप अठार
मरण आवे तो वोसिरे, जीवुं तो आगार '

अरणक कहता है– तुम्हें जो करना हो वह कर लो मेरा धर्म असत्य नहीं है । सुदेव–सुगुरु और सुधर्म को छोड़कर मैं कुदेव–कुगुरु और कुधर्म को कभी स्वीकार नही कर सकता । नांव मे बैठे हुए दूसरे आदमी भयभीत हो जाते है । वे भी अरणक से कहते हैं–हम भी तेरे साथ बेमौत मारे जावेगें । मुह से तू बोल क्यों नही देता ? मन में चाहे जैसे समझना । जान बचाने के लिये कभी ऐसा बोलना भी पड़े तो उसमें क्या पाप है ? लेकिन अरणक ऐसा नामधारी श्रावक नहीं था । वह अपने धर्म पर अडिग ही रहता है । क्या तुम भी ऐसे अडिग रह सकते हो ? सच्चे बनो, अरणक की तरह दृढ बनो । देह जाय तो भले जाय, मैं शरीर नही हू, मन–वाणी और देह से भिन्न मै तो चैतन हूं । वह कभी मारा नहीं जा सकता ।

धर्म तो आत्मा में है, शरीर मे नहीं है । शरीर तो नश्वर है– कभी भी मर सकता है । देव का जोर भी शरीर पर चल सकता है, आत्मा पर नही ।

देव वाहन को उठा कर आकाश में ले जाता है । देव का विकराल रूप देख कर दूसरे लोग तो भयभीत हो जाते हैं । परन्तु अरणक निर्भय हो अपने ध्यान मे तल्लीन रहता है– वह अपना धर्म नही छोडता । देव कहता है– अब भी बोल दे– नही तो मै यह नाव समुद्र में ही उल्टी कर दूगा ।

अरणक कहता है– तू मेरी श्रद्धा डिगा नहीं सकता है । शरीर को समुद्र में डुवा सकता है, पर मेरी आत्मा को डुवा नही सकता है ।

अन्त मे देव स्वयं थक जाता है– दुख देने वाला थक जाता है, पर सहन करनेवाला नही थकता । देवता ने जब यह समझ लिया कि अरणक के परिणामो मे कुछ भी अन्तर नही हो रहा है– तो वह नाव को वापिस नीचे लाता है और स्वय देव का रूप धारण कर अरणक की सेवा मे हाजिर हो कहता है– हे देवानुप्रिय श्रावक ! आपको

धन्य है। ऐसे धन्यवाद के पात्र तुम भी क्यों नहीं बनते हो ? देवता कहता है– तुम्हारा जीवन धन्य है। तुमने ही धर्म को समझा है। इन्द्र ने जो तुम्हारी प्रशंसा की थी वह यथार्थ ही थी।

अरणक अपने धर्म में कैसा दृढ था ? वह नाव मे भी प्रतिक्रमण करना नहीं भूलता था। तुम्हारे मे से कितने भाई–वहिन ऐसे हैं जो रोज प्रतिक्रमण करते होगे ? खाना पीना और आराम करना– क्या इसीमे ही तुम अपना यह अमूल्य मानव भव घुमा वैठोगे ?

दिवस गुमाव्यो खाई ने, रात्रि गुमावी सोई
हीरा जेवो मनुष्य भव, कौडी बदले खोई

इन्द्र ने तुम्हारी प्रशंसा की, वह मुझे नहीं रुची इसीलिये मैंने तुम्हारी आशातना की है– पर तुम तो खरे निकले हो– अपनी परीक्षा मे पास हुए हो–तुम दृढ धर्मी हो, प्रियधर्मी हो– मुझे माफ करो– मेरा अपराध क्षमा करो। फिर मैं कभी ऐसा काम नही करूंगा। वह देवता भी अरणक के पैरो मे पड़ कर क्षमा मांगता है। फिर भी अरणक को उस पर राग नहीं होता और न तव द्वेष ही हुआ जव कि उसने उन्हे मुसीवत मे डाल दिया था।

दुखे उद्वेग ना चित्ते, सुखों नी जंखना गई।
गया राग भय क्रोध, मुनि ते स्थिर वुद्धिनो।

रोज रोज सुनते तो वहुत कुछ हो–पर सुन कर स्वीकार करोगे तो उसके अंकुर पैदा हो सकेंगे। नही तो उठ कर कपडे झटक दोगे तो क्या लाभ हो सकेगा ? जो कुछ व्याख्यान मे सुनते हो, कभी उसका मनन भी करते हो ? क्यो करना चाहोगे? मुफ्त का माल है– रोज ही मिल जाता है। इसीलिये न ? सिनेमा तो पैसा देकर देखते हो अतः वरावर याद रखते हो। तीन साल पहले के पिक्चर का गाना भी वोल सकते हो, पर हमारा कल का व्याख्यान याद नहीं रहता है। क्योकि वह मुफ्त में मिल रहा है, उसमें रुचि नहीं होती है। पर याद रखना काम तो यही आनेवाला है– सिनेमा तो तुम्हे नरक का खेल ही दिखाने मे मददगार वनेगा जव कि वीतराग का उपदेश तो अक्षय सुख का स्वामी वना देगा। अरणक श्रावक कैसा था ?

क्रोध निकट नहीं आने देऊं।
शस्त्र अचूक क्षमा का लेऊं।
दूर ही मार भगाऊं भगवन तुम्हारा अव मै
सच्चा भगत बन जाऊं।

वह क्रोध को अपने निकट भी नहीं आने देता था। क्षमा की तलवार हर

समय हाथ मे रहा करती थी अत: क्रोध आ भी कैसे सकता था ? अरणक यह समझता है कि देवता भी निमित्त हो सकते हैं, पर उपादान तो मेरा ही है। उसमें कोई भी भाग नहीं पड़ा सकता है। कर्म उदय में आता है तो फल देगा ही। कर्म का उदय होता है तो वह अपने आप निमित्तों को बुला लेता है। जिसमें सम्यग्ज्ञान होता है वह दुखी नहीं होता है, समभाव पूर्वक उसे भी सहन करता है– लेकिन नये कर्म नहीं बांधता है। देवता अरणक से कहता है– बोल- तुझे क्या चाहिये ?

अरणक कहता है–तू मेरी क्या मदद कर सकेगा ? असहाया देवा। तुम से भी कोई देवता यह कहे कि मांगो–तुम्हें क्या चाहिये ? तो तुम क्या मांगोगे ? सात माले का मकान हो– लाखो की सम्पत्ति माग बैठोगें। पर यह मांग तो मिट्टी की है–मिट्टी की क्या मांग करते हो ? चैतन की कीमत क्यों नहीं समझते हो ? उस हीरे की कीमत तो अमूल्य है–उसको समझो। अरणक देव से कहता है– मुझे तेरी मदद नहीं चाहिये। मर्द कौन होता है ? जो किसी की मदद नहीं मागता वह मर्द कहा जाता है। तुम कैसे मर्द हो जो देवता से मदद मांग रहे हो ! दीपक करते हो–धूप देते हो–नारियल चढाते हो और यह कहते हो कि हमारा भला करना। वे क्या भला करेगे ? तुम स्वय अपना भला और बुरा करने वाले हो–

अप्पा कत्ता विकत्ता या सुहाण य दुहाण य।
अप्पा मितंअमितच, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।

आत्मा स्वयं अपना मित्र और दुश्मन है, दूसरा कोई अपना मित्र या दुश्मन नही है। यहां बैठे हो वहा तक तो ठीक है, पर बाहर निकले न ी कि श्रद्धा हवा में उड जाती है।

देवता कहता है– मांग–माग–क्या मागता है। अरणक कहता है– मुझे कुछ नही चाहिये। हमको भी ऐसे ही श्रावक चाहिये। हीरे के बटन वाले हमें नही चाहिये। धर्म में अडिग और दृढ श्रद्धावाले ही श्रावक हमको चाहिये। देवता अरणक को बिना मागे ही दो रत्न जडित कुडल की जोडी देकर चला जाता है।

अरणक उन्हे भी अपने पास नही रखना चाहता। क्योंकि वह समझता है कि परिग्रह पाप का मूल है। उसने एक कुडल की जोडी तो मल्ली भगवती को दे दी और दूसरी चम्पा नगरी के राजा को भेंट कर दी। परिग्रह मे सुख नही है। अगर तुम भी यह समझते हो तो अब से नया परिग्रह मत बढाओ। इस तरह सुव्रताजी साध्वी पौटिला को छट्ठा दिशा परिमाण व्रत, ७ वा उपभोग परिभोग व्रत, ८ वा अनर्थ दडविरमण व्रत, ९ वां सामायिक व्रत, १० वा देशावगासिक व्रत, ११ वां पौषधव्रत और १२ वां अतिथि संविभागव्रत का स्वरूप समझाती है। पौटिला १२ व्रतधारी श्राविका बन जाती है। वह अब प्रतिदिन व्याख्यान सुनती है और सोचती है– कहा इन त्यागियो

का जीवन और कहां मेरा जीवन ? चातुर्मास पूरा होने पर ये तो यहां से चले जावेगें, तव मैं क्या करूगी ?

वीर वाणी ना वेणे वेणें जीवननुं घडतर कीधुं
छताय स्वामी पर उपकारी मूल्य कशुंये ना लीधु
चातुरमास पूरा थया ने विहारनो दिन आव्युं रे

मेरे अंकुर कुम्हला जावेगें। इन्होने मेरे पर कितना उपकार किया है ? बदले में एक पैसा भी इन्होने लिया नही है। कितने उपकारी गुरु है मेरे ? ये चले जायंगे तो मुझे मांगलिक भी कौन सुनावेगा ? इसका विचार करते करते एकदिन रात में वह जम जाती है। सोचती है-क्यो न मै भी साध्वीजी के साथ चली जाऊं-दीक्षा धारण कर लूं। क्या तुम्हे भी कभी ऐसा विचार आता है ? पौटिला सोचती है- कल सुवह होते ही मै प्रधान से इसकी आज्ञा मागूगी और इस असार संसार को छोड कर सर्व विरति भाव धारण कर लूगी।

वंधुओ ! रात मे जागते तो तुम भी हो, पर भावना कैसी करते हो ? धर्म करते हो या अधर्म ? पौटिला विचार करती है- जीवन चंचल है. धर्म मे मन स्थिर हो जाय तो वेडा पार हो सकता है। आगे वह क्या करती है ? यथावसर कहा जायगा।

ता. २४-१०-६८

[११६]

पौटिला सर्व विरति वनने का विचार करती है। ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना तीन तरह से की जा सकती है- जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

ज्ञान की आराधना-जघन्य आठ प्रवचन माता,
मध्यम-११ अंग और उत्कृष्ट १४ पूर्व।
दर्शन की आराधना-जवन्य-क्षयोपशम
मध्यम-उपशम और उत्कृष्ट क्षायिक

चारित्र की आरावना जघन्य- सामायिक, मध्यम-परिहार विशुद्धि-और उत्कृष्ट-यथाख्यात चारित्र। जो दिन व्यतीत हो जाते है वे वापस आने वाले नहीं है अतः मुझे यह साधना कर लेनी चाहिये। महासतीजी विहार कर चले जावेगे तो फिर मे कैसे कर सकूगी ?

जेम पाणी नो रेलों चाले तेम चाल्या चार मासो रे।
ओ व्हेतु झरणुं वंध थवानो निर्दय दिवस आव्यो रे।
चातुर्मास पूरा रे थयाने विहार नो दिन आव्यो रे।

पौटिला कहती है चातुर्मास पूरा हो जायगा तो फिर मै कहा यह पवित्र वाणी सुन सकूगी ? मैं अब यह साथ छोडना नही चाहती हूं। सर्वविरति भाव जब हृदय मे आ जाता है तब यह संसार खारा प्रतीत होने लगता है। मुह में खेबार आ जाय तो जैसे उसे बाहर फेक दिया जाता है वैसे ही यह संसार भी छोड देना चाहिये। हृदय में मोक्ष भाव पैदा हो जाता है तो फिर संसार मे रहने की इच्छा नहीं होती है–

चड्यु आ चित्त चगडोले खरे कोई मार्ग खोले छे।
अने उर वृत्तिओ मारी बधी ये त्याग बोले छे!

संसार के प्रति उदासीनता होती है तो मोक्ष के भाव जागृत होते ही हैं। संवेग आता है तो निर्वेद बढता ही है। चित्त एकाग्र होता है तभी कुछ काम होता है। पौटिला के हृदय में अब वैराग्य भाव आ जाता है–अनंत बार काम–भोगों को भोगा है, अब तो उसे छोडना ही है। आत्मा का खून अब मुझे नहीं करना है। क्षणिक सुख के लिये अब अनंत दुख मुझे नही चाहिये। राग और द्वेष संसार बढाने वाले हैं, यह न समझो तब तक उद्धार होना असंभव है।

संसार का राग भाव भयंकर है। शरीर तो अशुचि वाला है, मल मूत्र का घर है, दुख और क्लेश का ही भाजन है। मुझे उसमें मोह क्यों करना ? वह मैं नही हूं। मैं तो सच्चिदानंद मय हूं। घर मे सुख नहीं है–न कभी उसमे सुख मिल सकेगा। स्व में आना ही सुख को पाना है। कषाय छोडने से तो मोक्ष निकट आता है। अतः चारित्र को निर्मल करो। संचय किये हुए कर्मो को चारित्र द्वारा नष्ट कर दो। अज्ञान दूर करो, उसका साथ मत करो। पर वस्तु का मोह दूर कर दो और स्व में स्थिर हो जाओ। तब तुम समझोगे मोक्ष का मार्ग तो निकट आ गया है।

चैतन जी, पुदगल मोह निवार।

मोह दूर करोगे तो मोक्ष पास मे आने लगेगा। जड वस्तुऍं मेरी नही है। यह सब अस्थिर है, फिर क्यो मै इनमे मोहित हो रहा हूं ?

रात्री अने दिवस रूपे आ काल व्हेण वही जतुं
नहि स्थिर छे आ काम भोगो आयु पण अस्थिर छे।
फल फूल विनाना तरु तजी पक्षी गणो दूर जाय छे
तेमज त्यजी जाये सहुआ काम भोग मनुष्य ने।

रात और दिन के रूप मे काल व्यतीत होता चला जा रहा है। तुम्हारे जीवन का ध्येय क्या है ? कुछ प्रकाश पैदा किया है या नही ? विषय और कषाय में बरबादी है, आबादी नही है। समझो, यह समझने का तुम्हे अनमोल अवसर मिला है। इतनी सुविधा और कहा मिलेगी ? काम भोग और आयुष्य अस्थिर है, रहनेवाले

नहीं है। प्राण देने वाली रानी भी परदेशी राजा को जहर दे देती है। स्वार्थ में तनिक भी खलल पडती है कि वह जहर देने को उद्यत हो जाती है।

राजा भर्तृहरि स्वयं न खाकर अमर फल पिंगला को दे देता है। कैसा मोह है? मेरी रानी अमर रहनी चाहिये। मेरे रहते वह नही मरनी चाहिये। अतः उसे अमर फल खाने के लिये देता है।

रानी को अश्वपाल से प्रेम है। वह अपना अमर फल उसे दे देती है। भर्तृहरि पिंगला को अपना मान रहा है और पिंगला अश्वपाल को अपना मान रही है। अश्वपाल सोचता है—इसे खाकर मैं अमर हो जाऊंगा तो मैं अपनी प्रेमिका वैश्या का मरण कैसे देख सकूगा? वह उसे वैश्या को दे देता है।

वैश्या कहती है—यह फल कहा से लाये हो?

अश्वपाल कहता है— अभी मुझे समय नहीं है—तू इसे जल्दी खा जाना, किसी दूसरे को मत देना।

वैश्या सोचती है—मैंने तो जीवन मे बहुत पाप किये हैं— अमर फल खाकर मैं और पाप क्यो करूं? इस फल को खाने के लायक तो राजा है— वे खायेंगे तो अमर रहेगे और कई गरीब लोगो का भला करेंगे। वह उसे ले जा कर राजा को दे देती है। राजा उसे देख कर विचार मे पड जाता है।

उसने पूछा—यह फल तेरे पास कैसे आया? सच सच बता देना, नही तो तेरी खैर नही है।

वैश्या ने कहा—मेरे पास तो अनेक आते हैं, फिर भी अगर आप उसे प्राणान्त की सजा न दे तो मैं नाम बता सकती हूं।

राजा ने कहा— तू विश्वास रख, मैं उसका अहित होने न दूगा।

वेश्या ने अश्वपाल का नाम बता दिया। राजा ने उसे बुलाया और कहा— सच सच बता, यह फल कहा से लाया है? सच बता देगा तो तुझे माफ कर दिया जायगा। वरना अहित हो जायगा।

अश्वपाल कहता है— राजन्! यह फल मुझे रानी पिंगला ने दिया है।

यह सुनकर राजाने सोचा—कैसा अंधेर है? जिसे मैं अपनी मान रहा हूं वह तो पर पुरुष से प्रेम कर रही है। धिक्कार है इस ससार को?

धिक् तां च तं च मदनं च इमं च मांम च।

काम—विकार का कैसा साम्राज्य चलता है? मुझे पिंगला पर प्रेम है, पर पिंगला का प्रेम अश्वपाल पर है और अश्वपाल का वैश्या पर। इसमे दोष किसी का नही है। दोष मेरा अपना ही है। राजा वह फल तो खा जाता है, पर अब उसकी अभिरुचि संसार के प्रति कम हो जाती है।

राजा राजदरबार में आता है और पिंगला से कहता है– कल तुम वही साडी पहन कर आना जो तुमने शादी के समय पहनी थी। दूसरी कोई बात वह राणी से नहीं कहता है। सारी रात उसे नींद नहीं आती है। विषय लौलुपी मानव कुत्तों की तरह फिरते रहते हैं। सडी हुई कुत्तिया भाग रही है, उसके पीछे पीछे कुत्ता भी भाग रहा है। इसी तरह आत्मा भी अपना अविनाशी त्रिकालाबाधित आत्मभाव भूल कर विषयों का कीडा बन कर घूमता फिरता है। काम–भोग को वह छोडता नहीं है।

बूढा हो जाने पर भी काम–विकार से मन पीछे नही हटता है। भर्तृहरि कहता है इस काम भोग को धिक्कार है। सायमे मुझे और रानी को भी धिक्कार है जो मन मे उसकी आश लगाये बैठे हैं।

दूसरे दिन पिंगला सोलह श्रृंगार कर सिंहासन पर आ बैठी। वह सोचती है आज कुछ नई बात होने वाली है। राज दरबारी भी यथा स्थान बैठ जाते हैं।

राजा कहता है– आज तक मैंने इस राज–पाट को ही अपना माना था। पर आज ज्ञात हुआ कि जिसे मै अपना मान रहा हूं वह मेरा नही है। मै उसका त्याग करता हू और उसका सारा भार पिंगला को सौंप कर साधु हो जाना चाहता हूं।

पिंगला कहती है– यह आप क्या कह रहे है ? आप विना मै इसे कैसे निभा सकूंगी? आपके विना एक क्षण भी मेरा रहना कैसे संभव होगा ?

राजा ने कहा– पिंगला, तूने मुझे जागृत कर दिया है। जो अमर फल मैंने तुझे दिया था, घूम–फिर कर वह फल वापस मेरे ही पास आ गया है।

यह सुन कर तो पिंगला का मुह नीचे हो गया। उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि अगर धरती भी फट जाय तो वह उसमे समा जाय। रानी कहती है– अपराधी मैं हूं–मेरे खातिर आप क्यो संसार छोड रहे हैं ?

राजा बोला– मै तेरे लिये नही, अपने लिये ही यह कर रहा हूं। तू तो निमित्त मात्र है– तुमने मेरे ज्ञान–चक्षु खोल दिये हैं। भर्तृहरि साधु बनकर निकल जाते है।

ससार की चाल कैसी है ? वह चारो तरफ से जल रहा है। संसार मे आधि-व्याधि और उपाधि कितनी है ? बात बात में कितना दुख है ? अतः इसमे रचे–पचे मत रहो। यहा बैठे हो तब तक तो जी हां कर लेते हो, पर बाहर निकले नहीं कि वैसे के वैसे। सचमुच क्या तुम्हें यह लगता है कि इस संसार में खडे रहना भी योग्य नही है ?

मकान जल रहा है। सीढियां जल गई है। ऊपर दो भाई रह गये हैं। नीचे वाले कहते है– बचना है तो नीचे गिर पडो, हम तुम्हें झेल लेंगे। उनमें से एक सोचता है कही नीचे गिर पडूगा तो मौत हो जायगी। वह नही कूदता है। परन्तु दूसरा कूद जाता है। वह बच जाता है और जो ऊपर ही रहा वह जल कर राख हो जाता है।

इसी तरह तुम भी नीचे कूदेगो तो झेलने वाले तैयार खडे हैं। निष्कारण तुम्हारी उपाधि भी वे लेने को तैयार हैं।

मास्टर ट्यूशन करता है तो पढ़ा कर अपनी जबाबदारी से मुक्त हो जाता है। परन्तु हमारी जबावदारी तो कभी पूरी नही होती–चौबीसो घंटे बनी रहती है। सुकान हाथ में लेना और लाईन पर चलाना कुछ साधारण काम नही है। गुरु का महत्व कुछ कम नही है।

संसार मे भयंकर दावानल जल रहा है। उससे बचना है तो छलांग मारने की जरूरत है। नीचे गिरोगे, पर मरोगे नही, इतना दृढ विश्वास रखोगे तो बच सकोगे।

समुद्र मे नाव जा रही है। चलते चलते तूफान आ जाय और मल्लाह यह कह दे कि अव जिन्दगी खतरे मे है– तव क्या तुम्हे चाय पीना अच्छा लगेगा! सब कुछ छोड कर उस समय तुम क्या करोगे? भगवान को याद करने लग जाओगे न?

नाव झोले चडी, ऊंचे आंधी अडी
मारे जावुं छे दूर कांई सूझे नहीं –२
नयी जडती कडी रात काली नडी
घनघोर घटा जाणे छांई रही।
दशा छे आवी मारी अेने तुं ले उगारी
जोजेना डूबे नैया–जोजेना डूबे नैया...

नाव डगमगा रही है। तूफान आ गया है। अव क्या होगा? उस समय तुम किस को याद करोगे और अभी तुम क्या कर रहे हो? क्या तुम्हारी नाव भी सही सलामत है? विषय–कषायों से टकरा तो नही रही है?

एक सेठ का लडका नाव मे धन-माल भर कर जा रहा है। वीच मे नाव तूफान में फस जाती है– उसमें पानी भरने लगता है। चन्द्रकान्त सोचता है–अव क्या होगा? सारा माल–मिल्कत डूव जायगी। जीवन और मृत्यु के वीच आ गया हूं। देखते देखते नाव समुद्र मे डूब जाती है। अव तो जान की वारी है। भाग्य से एक लकड़ा उसके हाथ आ गया। वह उसके सहारे तिरते तिरते किनारे लगता है। लकडा स्वयं तिरता है और दूसरो को भी तिराता है। तिरते तिरते उसकी धोती ढीली हो जाती है। वह अगर उसको पकडता है तो लकड़ा हाथ से छूट जाता है। लकड़ा न छोडे तो धोती चली जा रही है। क्या करे? धोती रखे या लकडा? शरीर सुरक्षित रहेगा तो धोती बहुत मिल जायगी–पर लकडा छोड देगा तो डूबने का भय खडा हो जायगा। लकडा धर्म की तरह है। वह स्वयं भी तिरता है और दूसरों को भी तारता है। धोती बहुत लम्बी है– औरत, बाल-बच्चे माता-पिता-भाई आदि धोती की तरह हैं– उसे

ही पकड बैठोगे तो जीवन से साथ धो बैठोगे। इसके विपरीत अगर यह समझ लोगे कि जो होना होगा, होगा–पर धर्म नहीं छोडेगें तो दोनों भव में–इस भव और पर भव में–भी सुखी हो सकोगे। अतः विवेक रखो। क्या रखना और क्या छोडना? इसका विचार करो। पौटिला यही विचार कर रही है–

संसार सागर छे भारी, सौ डूबी रह्या नरनारी।
अेमां नैया मले दृढ़ सारी, संसार सागर दे तारी।
मिथ्यात्व पाणी विषयना वमणो मोहना मगरो अज्ञान खडको
श्रमण धर्म नी दीव्य दिवा दांडी आफत मां बने सहकारी
संसार सागर दे तारी।

ज्ञानी कहते है– यह संसार समुद्र की तरह खारा है। इसमें रहते हुए लोगों को धर्मामृत का पान करना रुचता नहीं है। लोग उसकी मजाक करते हैं। लेकिन याद रखना धर्म की मजाक करना अच्छा नहीं है। बने उतना पालन करो। नही तो उसका अनुमोदन ही करो, पर नीदा कभी मत करो। धर्म तो दीवादांडी के समान है, मुसीबत के समय मे सहायक होता है। संतपुरुष भी दीवादांडी के समान है- वे तुम्हें हर समय सजग रखते हैं, सिपाहियो की तरह खबरदार रखते हैं। फिर भी तुम सावधान कहां बनते हो? आंखों से अंधे तो नही हो गये हो! उस दिवादांडी को देखते क्यों नहीं हो? जगह जगह ऐसे श्रमण फैले हुए हैं जो वीतराग धर्म का प्रचार कर रहे हैं। तुम उसको क्यो नही समझ रहे हो?

पौटिला यह समझ लेती है कि मेरा उद्धार तो सर्वविरति भाव में ही है। क्यों न मैं भी इनके साथ हो जाऊं? सार धर्म तो चारित्र ही है। क्या ऐसे भाव तुम्हें भी कभी पैदा होते हैं? खाली जी–जी करने से क्या होता है? कुछ करो– सावधान हो जाओ–नहीं तो चौरासी में फेक दिये जाओगे।

प्रातः होते ही पौटिला प्रधान के पास जाती है और कहती है– आपकी आज्ञा हो तो मैं भी सुव्रता जी साध्वीजी के पास दीक्षित होना चाहती हूं। मैंने उनसे धर्म सुना है, वही यथार्थ है, मै भी उसी मार्ग पर जाना चाहती हू।

यह सुनकर प्रधान तो विचार मे पड जाता है। पौटिला दीक्षा की वात कर रही है? दीक्षा मे तो २२ परिषह है, लेकिन तुम्हारे काम मे कितने परिपह है? इतने अनगिनत परिषह हैं कि तुम होकर ही उनको सहन कर सकते हो। लेकिन याद रखना–तुम्हारे यहां निर्जरा का काम नही है, तुम अपने नाना परिपहो द्वारा भी कर्मो का ही उपार्जन करते हो, लेकिन हमारे मार्ग पर आओगे तो परिपहो की संख्या सिर्फ २२ रह जायगी और कर्मो को भी नष्ट कर सकोगे। मुक्त होना चाहोगे

तो इसी मार्ग पर आना पड़ेगा। जब तक शरीर मे शक्ति है तब तक धर्म कर लो। निर्बल अवस्था में कुछ भी नही कर सकोगे।

पौटिला की बात सुन कर प्रधान कहता है तुम दीक्षित होना चाहती हो—यह तो बहुत सुन्दर बात है—मेरे विचार भी दीक्षा लेने के हैं, पर अभी तो मैं नही ले सकता हूं।

साधु की दो ही गति होती है—या तो वह मोक्ष में चला जाता है या फिर वैमानिक देव बनता है। प्रधान कहता है— पौटिला, अगर तुम साध्वी बन कर मोक्ष में चली गई तो कोई बात नही है, पर मोक्ष में न जाकर देव गति मे गई तो तुम्हें मुझे प्रतिबोध देने आना पडेगा। ताकि मैं भी दीक्षा ले सकू। अगर यह शर्त तुम्हें मजूर हो तो मैं तुम्हे सहर्ष आज्ञा दे सकता हूं।

प्रधान की भी भावना तो देखिये। क्या तुम्हें भी ऐसी भावना होती है?

भावना का भी बड़ा महत्व है। इस भव मे भी भावना करोगे तो आगामी भव में साधु बन कर अपना कल्याण कर सकोगे। लेकिन तुम भावना ही न करो तो काम कैसे होगा? अतः भावना तो यही करते रहो कि दीक्षा लेने जैसी तो है, सर्व विरति हुए बिना किसी का अन्त आने वाला नहीं है। तीर्थंकर भी दीक्षा धारण करते हैं, फिर मैं कब उसे स्वीकार करूंगा?

पौटिला प्रधान की बात स्वीकार कर लेती है। मैं अगर देवता बनूगी तो तुम्हें अवश्य प्रतिबोध देने आऊंगी।

आत्मा जब जागृत हो जाता है तो दूसरा कौन उसे रोक सकता है? भावना में कमजोरी होती है तभी व्यवधान भी खडे हो जाते हैं। प्रधान दीक्षा की तैयारी शुरु कर देता है। जगह-जगह आमंत्रण पत्रिका भिजवाता है। लोगो को यह जान कर आश्चर्य होता है कि प्रधान की पत्नी दीक्षा स्वीकार कर रही है। किसीको भी यह ज्ञात नहीं होता कि दोनो मे अनबन है। लडके का विवाह भी नही हुआ और मां दीक्षा ले रही है? इस तरह के विचार लोगो मे फैल जाते हैं। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २५-१०-६८

[११७]

पौटिला को दीक्षित होने की स्वीकृति मिल जाती है।

संयमी जीवन उच्च कक्षा का जीवन है। इन्द्र भी संयमी को नमस्कार करता है। जहां धर्म होता है वहां देवता भी नतमस्तक होते हैं।

संयमी जीवन कौन जी सकता है? वीर पुरुष ही ऐसा जीवन जी सकते हैं—कायर

का काम नहीं है। कर्मो के सामने युद्ध करना—मानापमान सहन करना और आत्म भाव में लीन रहने का नाम ही दीक्षा है।

मन मानी सौ चीजों मले पण त्यागी हाथ न झाले
फूल विछाव्या मारग मां पण, कंटक पंथे चाले
तृष्णाना वीतरागी बनो... भोगी मटीने त्यागी बनो।
नानकडो आ भव नो मंडप, सद्‌गुण थी शणगारो।
तृप्त बने सौ छांये बेसी, अेवुं जीवन प्रसारो
प्रेम भर्या परमार्थी बनो!
भोगी मटीने त्यागी बनो, संयम ना अनुरागी बनो... भो...

संयम लेने के बाद मनभावन चीजें तो मिल जाती है, पर जिसे इन्द्रियों को जीतना है वह उसमें मोहित नहीं होता। यह मलमल अच्छी है, यह मिठाई बढिया है, थोड़ी चक्खो तो सही। यों संयम में प्रलोभन तो कदम कदम पर है, पर संयमी उसमें फंसता नहीं है। उनकी इच्छा करना भी पाप का मूल है। जहां अतृप्ति रहती है वहीं अशांति होती है। जहां संतोष है वहीं शांति है। एक आदमी ५० तरह के व्यंजन लेकर खा रहा है, फिर भी यह कह कर अतृप्त ही रहता है कि वह चीज तो रह ही गई है। दूसरा आदमी आयंबिल कर रहा है-केवल मूग की दाल ही खा रहा है। कहिये, दोनो में श्रेष्ठ कौन है? भोगी मिट कर त्यागी बनो। भोग से संसार बढता ही है—जब कि त्याग से वह कम होता जाता है।

हमारा आयुष्य कितना थोडा होता है? शादी का मंडप भी छोटा होता है, पर उसका श्रृंगार कितना करते हो? इसी तरह तुम्हारा आयुष्य भी थोडा है, उसको भी सद्‌गुणों से सुशोभित कर लो— जो दुर्गुण हैं उनको बाहर निकाल दो— उन्हें ढूंढ ढूढ कर बाहर करो—तेने मेरा बहुत नुकसान किया है—अब तू यहां मत रह—दूर हो जा। इस तरह दुर्गुण निकालोगे तो गुण आवेगें ही।

बनो सोपान मारा जीवन ने घडवा,
जावुं क्यां संत मारे अेकान्ते रडवा
आंगली पकडोने धर्म धारी
आंखडी खोलोने संत मारी
अेरी.. मारी दूर करो ने बिमारी...आं..

प्रधान कहता है— तू मुझे सत्मार्ग बताने वाली बनना। तू देव होकर आवेगी तब मैं तेरी बात अवश्य मानूंगा।

संसार में रहोगे तो राग और द्वेष इन दो में से एक तो होगा ही। दोनों ही पाप के कारण है। धन का गर्व करना भी पाप है। रस का गर्व करना—मैं इतनी चीजें खाता हूं— मेरे यहां इतने नौकर हैं—ऐसा घमंड करना भी पाप है।

संसार तो दुखमय है, उससे मुक्त होना है तो उसका मोह छोड़ना ही पड़ेगा। पोटिला प्रधान की बात मान लेती है। वह कहती है मैं तुम्हें प्रतिबोध देने अवश्य आऊंगी। अब प्रधान उसे दीक्षा की आज्ञा दे देता है।

दीक्षा का मार्ग सर्व श्रेष्ठ मार्ग है।-इससे तो शाश्वत पद मिलता है। उस मार्ग पर चलने वाले को जो रोकता है वह अज्ञानी होता है। ज्ञानी तो सदैव उसमें सहायक ही होते है। क्योकि वे तो यह समझते हैं कि दीक्षा लेना अपने कुल का गौरव बढाना है। जिसका बड़ा भाग्य होता है वही दीक्षा ले सकता है।

संसार में तो नाना प्रकार के परिषह और प्रलोभन होते हैं, पर वीतराग मार्ग में प्रलोभन या विकार नहीं होता। मुंहपत्ति बांधो और जाप करने बैठ जाओ। शरीर तुम नहीं हो, उसका क्या श्रृंगार करना? शरीर स्वस्थ तो मैं स्वस्थ, यह पहनूं तो अच्छा लगेगा या नहीं? मैंचिंग होगा या नही? शरीर की शोभा कैसे वढे? यही करते रहते हो। लेकिन ज्ञानी कहते हैं—यह क्यो कर रहे हो? अपनी आत्मा को पहिचानो। उसका तो गुणो से श्रृंगार करो। सद्‌गुणों का संचय करो। जिनके पास गुण होंगे देवता उन्हें ही नमस्कार करते है। धर्म रूपी बगीचे में जो विश्राम करते हैं देवता उनके चरणो मे ही नतमस्तक होते हैं।

तैतली दीक्षा महोत्सव की तैयारी करता है।

आज नो ल्हावो लीजिये रे काल कोणे दीठी छे।
नाणुं मलशे टाणु नहि मले रे काल काणे दीठी छे।

आज का लाभ ले लो, कल किसने देखा है। दान, शील, तप और भाव में आओ। तुम वृद्ध होने आये हो, तुम्हारे सामने छोटी छोटी वालिकाएं ब्रह्मचारिणी वन रही हैं, क्या तुम ब्रह्मचर्य का नियम नही ले सकते हो? सुवाहुकुमार के ५०० औरतें थी। उन्होने सभी का त्याग कर दीक्षा ग्रहण कर ली तो तुम एक का भी त्याग नही कर सकते? क्यों आग मे घी डाल रहे हो? आग वुझने वाली नही है। भोग की तृप्ति कभी नहीं होती। संयमी जीवन जैसा कोई जीवन इस दुनिया मे नहीं है।

तैतली दीक्षा प्रसंग पर हजारों आदमियो को बुलाता है— उनको खाना खिलाता है—स्वधर्मी वंधुओ का मान सन्मान करता है— सत्मार्ग में दान देता है। फिर ऐसा प्रसंग कव आवेगा? यह सोच कर वह खुले हाथों लक्ष्मी का दान करता है।

नदी का पानी बहता रहता है; खड्डे का पानी बंद रहता है। खड्डे ने एक दिन नदी से कहा–तुम कैसी मूर्ख हो, अपना सारा पानी समुद्र में बहा ले जाती हो–मुझे तो देखो, मैं किसी को नहीं देता हूं।

नदी बोली– मूर्ख तुम हो, या मैं ? देने में जो मजा है, वह रखने मे नही है। इसे तू क्या समझेगा ? बंद पानी सड जायगा, बदबू मारने लगेगा जब कि बहता हुआ पानी निर्मल रहेगा। इसी तरह लक्ष्मी को भी फिरती हुई रखो, अपनी तिजौरी में ही बंद मत रखो, स्वधर्मी बंधुओं को भी देखो।

एक बार हेमचन्द्राचार्य को कुमारपाल ने देखा तो बोला–आचार्य, आप मेरे गुरु होकर भी फटी हुई पछेवडी पहनते हैं–यह ठीक नही है। मेरे यहा कपडे की कहा कमी है ? आचार्य ने कहा तुम्हे मेरी पछेवडी देखकर शर्म आ रही है, पर तेरे राज्य में जो अन्न–वस्त्र बिना तडफ रहे है उन्हे देखकर तुम्हे दया क्यों नही आती है ? शरीर मे आत्मा बैठा है जो इस शरीर की खबर ले रहा है, पर तुम समाज मे बैठे हो तो समाज की खबर क्यो नही ले रहे हो ?

तुम राजा हो, उनकी सभाल रखना भी तुम्हारा काम है।

यह सुनकर कुमारपाल घर घर जाकर अपनी प्रजा की खबर लेता है– जो दुखी है उनके दुख दूर करता है। ऐसे राजा ही युगो तक याद किये जाते है। लक्ष्मी को बंद मत रखो, उसे तो नदी की तरह प्रवाहित ही रहने दो। जाते समय क्या लेकर जाओगे ? कई खाकर खुश होते है, कई खिला कर खुश होते है। कई देकर खुश होते हैं, कई लेकर खुश होते है। लेकिन याद रखिये देने वाले का ही हाथ ऊपर रहता है।

करमां पहेरे कडा पण कर पर कर धरियों नहीं,
ए माणस नहि पण मड़ा, सोरठीयो साचुं भणे।

हाथ में तो कडा पहनते हो, पर किसी के हाथ पर हाथ नही रखा तो कडा भी क्या पहना ? आज तुम किसी की मदद भी करते हो तो लम्बा चौडा इतिहास पूछने लग जाते हो। पहले के श्रावक तो गुप्त दान दिया करते थे। घर जाते थे और चटाई के नीचे सौ रुपया रख आते थे। लेकिन आज तो देते कम हो और ढींढोरा ज्यादा पीटते हो। देना ही है तो गुप्त दान दो–उसका जो महत्व है वह तुम्हारे दिखावटी दान मे नहीं है।

एक आदमी रातको दरवाजा खटखटाता है। बलवन्त भाई सोचता है– इतनी रात गये कौन आया है ? बाहर से आवाज आई मै जीवा किसान हूं। बलवन्त भाई सोचता है अभी यह क्यों आया है ? कल तो दस रुपये का धान दिलाया था। और कुछ मांगने आ गया होगा ? दरवाजा खोलूं या नहीं ? बंधुओं! जिसका पुण्य होता है

उसीके घर लोग आते हैं– तुम उन्हे धुत्कार दोगे तो याद रखना तुम उसे नही भगा रहे हो. अपने पुण्य को ही लात मार रहे हो।

बलवन्तभाई दरवाजा खोलता है। क्यो भाई, इतनी रात गये क्यो आया है ?

जीवा बोला– मै कुछ लेने नही आया हूं–लेकिन एक काम मेरा आपको करना होगा– मेरे पास ५ हजार रुपये हैं, आप उन्हें अपने पास रख ले, कल मेरे घर की तलाशी होने वाली है। ये रुपये मेरी बहिन उसके लडके के लिये दे गई थी। मेरे खातिर इन रुपयो का कहीं नुकशान न हो जाय इसीलिये मै आपके यहां आया हूं। पहले के लोग पराई थापण को किस तरह संभाल कर रखते थे ? जीवा अपने भान्जे भूधर के रुपयो मे से एक पाई भी अपने लिये लेना नहीं चाहता है। श्रावक कहे जाने वालों, आज कितनो की थापण खा जाते हो ? पराई थापण को तो छुआ भी नहीं जा सकता है। बलवन्त भाई सोचता है– कहा यह जीवा किसान और कहां मै साहूकार? जीवा चाहता तो इन रुपयो मे से एक हजार रुपया देकर अपने घर की तलाशी होना रुकवा सकता था, पर वह कहता है– इन रुपयो को छूने का भी मुझे हक नहीं है। यह रुपया मेरा नही, भूधर का है। बलवन्त भाई कहता है तू ये रुपये मेरे यहां रखजा, पर मै तुझे अपने पास से एक हजार रुपये देता हूं–तू अपना कर्जा चुका देना और जब तेरे पास सुविधा हो तब मुझे दे जाना।

कहने का आशय इतना ही है कि अनपढ आदमी मे भी मानवता तो होती ही है।

ईश्वरचंद विद्यासागर कितने बडे आदमी थे ? स्टेशन पर एक आदमी मजदूर को ढूढ रहा था, उसके पास केवल एक सन्दूक थी। ईश्वरचन्द विद्यासागर स्वयं उसकी पेटी उठा लेते है। युवक अपने घर आया तो उसके भाईने विद्यासागर को पहचान लिया। वह उनके पैरो मे गिर पड़ता है। वह युवक शर्मिन्दा हो जाता है। ईश्वरचंद विद्यासागर जैसे विद्वान आदमी ने भी पेटी उठाने मे शर्म महसूस न की तो तुम अपना सामान उठाने मे क्यो शर्माते हो ? जो स्वाश्रयी बनता है वही आगे बढता है। बाप नीचे बैठा है और लड़का ऊपर बैठा है, आज विनय भी कहां रहा है ?

गुरु रह्या छद्मस्थ पण विनय करे भगवान।

केवली हो जाने पर भी वे गुरु का तो आदर करते ही है – आपका प्रताप ! कैसा विनय है ?

अणंत नाणो व गओ वि सन्तो

विद्या तो विनय से ही शोभा पाती है। विनय रहित विद्या कुविद्या हो जाती है। जो आदमी नम्र बनता है वही आगे बढ़ सकता है।

प्रधान सबको अपने हाथ से भोजन परोसता है, प्रेम से सब को खिलाता है।

अपने आप करने में जो आनंद आता है वह दूसरों से कराने में नहीं आ सकता है। धर्म करना है तो अपने हाथ से करो, दूसरो से वह नहीं हो सकता है।

पौटिला सहस्रवाहिनी शिविका (पालखी) में बैठ कर घर से निकलती है और सुव्रताजी आर्याजी के पास आती है। प्रधान महासतीजी से कहता है–

कोई व्होरावे वस्त्र पात्र ने, कोई व्होरावे कपडानी जोड,
हुं रे व्होरावु मारी पत्नीने, तेना करजो तमे प्रेमे जतन
अनुमति आपी पति अे रोवता।

मैं अपनी पत्नी को सहर्ष आज्ञा दे रहा हूं–आप उसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।

अलित्तेणं भन्तेलोए, पलित्तेणं भन्ते लोए

पौटिला कहती है– घर में आग लग जाती है तो सेठ सारभूत वस्तु लेकर चल देता है, वैसे ही यह संसार भी जन्म और मरण से जल रहा है, मैं अपनी आत्मा को उससे बचाना चाहती हूं। कृपया आप मुझे स्वीकार कर कृतकृत्य करें।

साध्वीजी पौटिला को दीक्षित कर लेती है– यावज्जीवन करेमि भंते... सामायिक का पच्चक्खाण करा देती है।

दीक्षाऐं तो आज भी होती है पर तुम उस समय संयम का पाठ कहां सुनते हो? पैसा इकट्ठा करने का ही यह मौका समझते हो। दीक्षा गौण हो जाती है और धन–संग्रह ही मुख्य ध्येय हो जाता है। यह क्या अनर्थ कर रहे हो?

त्याग मार्ग का आदर्श भूल कर भोग मार्ग का महत्व क्यों बढा रहे हो? दीक्षा देख कर दूसरों में भी वैसे भाव पैदा हो जाने चाहिये– इसीलिये ऐसे प्रसंगों की रचना की जाती है। परन्तु यह लक्ष्य तो भुला दिया जाता है। साधु भी परिग्रह के चक्कर मे फंस जाता है। उसे क्या काम है परिग्रह से!

नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हेज्जा
नेव डन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हावेज्जा
परिग्गहं परिगिण्हन्तेऽवि अन्ने न समणु जाणेज्जा।

परिग्रह पाप है। उससे आगे आने का विचार छोड दो और गुणों से आगे आओ। सत्य हकीकत निर्लोभी ही कह सकता है। साघु का शव भी तुम २४ घंटे पडा रखते हो, यों क्यों उनकी साधना खुले आम नीलाम कराते हो?

पैसा ही निकलवाना है तो उसके मार्ग कई है–सीधे मार्ग से काम करो-उल्टे मार्ग पर क्यों चलते हो? इससे धर्म की साधना नहीं विराधना ही होती है। इस दिशा में भी काफी सुधार की आवश्यकता है।

धन-व्यय करने के तो अनेक मार्ग हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं-थावरच्चा पुत्र का दीक्षोत्सव तो मैं करूंगा? कैसा भाव है? तुम भी यह कह सकते हो कि यह दीक्षा महोत्सव तो मुझे कर लेने दो। नौ कोटि से जो पच्चक्खाण करता है उसकी भावना में सहयोगी बनने की इच्छा रखो।

साधु तो उपाश्रय बंधाने का भी नहीं कह सकता है। यह तो गृहस्थ का काम है, साधु का नही है। साधु को तो अपनी जिह्वा मुंह में ही रखनी पडती है, विना विचारे बोलना भी उसे पोषाता नही है।

पौटिला साध्वी बन जाती है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २६-१०-६८

[११८]

पौटिला दीक्षा ले लेती है। प्रतिज्ञा लेना तो सरल है, लेकर उसे निभाना कठिन है। साधक के लिये कदम कदम पर गुरु की जरूरत तो रहती ही है। मोटर हो, पेट्रोल भी हो, पर ड्राईवर न हो तो वह क्या काम की है? वैसे ही गुरु विना ज्ञान नही होता है। गुरु भी ज्ञान करा सकते हैं, पर क्षयोपशम तो अपना ही होना चाहिये। तभी उसे ग्रहण किया जा सकता है। मां तुम्हे खाना परोसकर दे देती है, ज्यादा प्रेम उमड आवे, तो वह रोटी का कौर मुंह मे भी रख देती है परन्तु चबा कर तो वह नही दे सकती, चबाना तो तुम्हारा ही काम है। इसी तरह गुरु भी ज्ञान दे सकता है, पर उसे अपने जीवन मे आत्मसात करना तो तुम्हारा ही काम है।

गुरु सदैव हित ही सोचते हैं। शिष्य का जीवन कैसे उर्ध्वगामी बनें? उसका उत्कर्ष कैसे हो? गुरु के सदैव ऐसे ही विचार होते हैं।

कई गुरु धन के लोभी होते हैं- मेरे नाम का इतना रुपया निकालो, मेरा चौमासा हो तो इतना खर्च करना पड़ेगा। इस तरह जो साधु बन कर भी वित्त का हरण करते हैं उन्हे साधु कैसे कहा जा सकता है?

आत्मज्ञान समदर्शिता विचरे उदय प्रयोग।
अपूर्व वाणी परम श्रुत, सद्‌गुरु लक्षण योग।

गुरु कैसे होते हैं? जो स्व-पर के ज्ञाता होते हैं, जो आत्मानंदी हैं, जो लक्ष्मी के पीछे पीठ कर देते हैं, जिन्हे आत्मज्ञान होता है, समभाव रखते हैं। वे ही गुरु होते है-

जहा पुण्णस्स कत्थति तहा तुच्छस्स कत्थति

जो राजा या भिखारी, गरीब या अमीर के प्रति भी समभावी रहते हैं।

रुपया और राख में भी अन्तर नहीं समझते हैं । ऐसा निर्गृन्थ का पंथ ही संसार समुद्र से पार कराने वाला है ।

निग्रंन्थ नो पंथ भव अंतनो उपाय छे

दूसरा कोई पंथ संसार का अन्त लानेवाला नही है । तुम भी अपना यह भव रोग बढाना चाहते हो या कम करना चाहते हो ? अनादि कालसे यह रोग वढ़ रहा है । थोडी सी भी बीमारी आती है तो तुम डोक्टरके पास पहुंच जाते हो, पर जो रोग अनादि से लागू हुआ पडा है, उसे छोडने का नाम भी नही लेते हो ? कभी ऐसा विचार भी करते हो कि संसार वर्धक काम मै अब से नही करूंगा । क्योकि, मुझे तो भव-रोग जड़ भूल से दूर करना है । कितने काल से मैं रखड रहा हूं, उसका अन्त भी कभी आवेगा या नहीं ? समुद्र मे चलने वाली स्टीमर महीना दो महीना बाद तो किनारा देखती ही है, पर तुम कब मोक्ष का किनारा देखोंगे ? भव कम कर रहें हो या बढ़ा रहे हो ? तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? तुम क्या बनना चाहते हो ?

सिद्ध समान सदा पद मेरो

कर्म दशा बेसुध अवस्था है, कलंक है । मेरी शुद्ध दशा तो वीतराग दशा है । तुम्हे क्या बनना है ? मोटर वाला, बंगला वाला या और कुछ ? बनना तो वीतरागी है, पर चल किधर रहे हो ? धनार्थी धन की तरफ जाता है, वैसे ही मोक्षार्थी को मोक्ष की तरफ चल देना चाहिये । न चलोगे तो भव रोग कैसे मिट सकेगा ?

डाक्टर कहता है- तुमने इलाज कराने मे देरी कर दी, यह तो १० साल पहले की बीमारी है । लेकिन हम तो कह रहे हैं- यह बीमारी अनादि काल की है, तुम अब तक चैन से क्यो बैठे हो ?

आत्म भ्रांति सम रोग नहीं, सद गुरु वैद सुजाण ।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान ।

जड को चैतन और चैतन का जड मान रहे हो । जहां सुख नहीं हो सकता वहां सुख मान रहे हो-

अत्यि तं अत्यि परिणमति
नत्यि तं नत्यि परिणमति

अस्ति नास्ति हो नही सकता और नास्ति अस्ति बन नहीं सकता । किसमें से क्या आता है ? यह पहले समझो । षट द्रव्य मे से सुख किसमें है । जिसमें होगा उसी में से तो आ सकेगा । सुख अन्यत्र नहीं है । सुख आत्मा मे ही है । परमें सुख नही है, फिर भी आज तो पर के पीछे ही सारी जिन्दगी समाप्त कर देते हो ? यह कैसी मूर्खता है ? सद्गुरु के पास जाओ । वे ही तुम्हारा अज्ञान दूर कर मोक्ष का मार्ग बता सकेंगे ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

जो आवे मन आमलो साक्ष्म सुख्खो सणाग ।

ए लेवुं पोचु नहि, पण वळ्यो फोसो थाग ।

मन पर काबू हो जाय तो भगवान करते हैं यही परम ज्ञानी हो जाता है ।

ज्ञान से तो नम्रता आनी ही चाहिये । एक बार विवेकानंद ने अमेरिका में भाषण दिया, जिसे सुनकर वहां के लोग बड़े खुश हो गये । वे विवेकानंद को भेंट देने की सोचने लगे । विवेकानंद को यह पता चलता है तो वे वहां से चल देते हैं । क्योंकि वे जानते थे कि परिग्रह पाप है । मान की इच्छा रखना भी पाप है । इससे आत्मा का पतन ही होता है ।

आचारे अभिमान वध्युं तप थी धायो जो क्लेश'

गर्व वध्यो जो ज्ञान थी, तो स्वर्ग गुमाव्यो शेश ।

जिसे अपनी आत्मा की शुद्धि करना है उसे तो आचार पालना ही पड़ेगा । डाक्टर कहे वैसा ही दर्दी को परहेज पालना ही पड़ता है । [illegible] किसके लिये करते हो ? अपने लिये ही तो करते हो न ? जो तुम्हें अपना हित करना है तो उसकी प्रसिद्धि क्यों करते हो ?

कर्युं कराव्युं भजन आदर्युं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

जो कुछ करो आत्म शुद्धि के लिये करो । आत्म शुद्धि के बिना आत्म सिद्धि नही होती है । अतः सद्गुरु के पास जाने में डरो नहीं । वे ही वैद्य [illegible] हैं जो इस भव रोग से मुक्त कर सकेंगे ।

डॉक्टर तो जांच करने की भी फीस लेता है, पर सद्गुरु तो [illegible] फीस नहीं लेते हैं । वे तो मुफ्त में [illegible] देते हैं । [illegible] दुकान त्याग की है, भोग की नहीं । [illegible] ऐसी इच्छा उनके सामने नहीं की जानी चाहिये ।

आजकल तो लोग [illegible] [illegible] लग गये हैं । क्योंकि [illegible] सुख कैसे मिलना है ?

[illegible] [illegible]

उदय होता है । वही कर्म सुख या दुख देते हैं । और दूसरा कोई नही दे सकता। तुम्हें सुख का उदय होगा तो हजारों देवता मिलकर भी तुम्हें दुख नही दे सकते । पाप का उदय होगा तो कोई देवता तुम्हें पुण्यशाली नहीं बना सकता । अभी तो तुम्हारी श्रद्धा का भी कहां ठिकाना है ?

जिसे तुम बडा आदमी समझते हो, जिनके पास बड़े बड़े मील हैं, ज्ञानी की नजरों में वे नरक के मेहमान हैं । वह मोटा नहीं खोटा है । फुग्गा फूला रहा है– परिग्रह की हवा भरी जा रही है, लेकिन याद रखना एक दिन फूट जानेवाला है ।

नरक में जाने के जो चार कारण–१ महा आरंभ २ महा परिग्रह ३ दारु मांसका आहार और ४ पंचेंद्रिय जीवोंका वध–बताये गये है, उनकीही आज तुम साधना कर रहे हो । भौतिक सुख की क्यों इच्छा करते हो ? धर्म को समझो । भौतिक सुख के पीछे मत पडो । महावीर को छोड़कर घंटाकर्ण को क्यों याद कर रहे हो ? देवाधिदेव को याद रखो । संसारी देव को क्यों भज रहे हो ? रागी को क्यों याद करते हो ? वीतरागी को क्यों नहीं याद करते हो ? श्रावक होकर यह घोटाला क्यों कर रहे हो ? याद रखो वीतराग जैसा और कोई देव नहीं है । और निर्ग्रन्थ जैसा गुरु नहीं है ।

भगवां वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई गुरु नहीं हो जाता है । कोई तुम्हें यह कह दे कि २ साल बाद तो तुम लखपती होने वाले हो तो तुम उस पर विश्वास कर लेते हो । पर जो वीतरागी है–पूर्ण ज्ञानी है उस पर तुम्हें विश्वास नहीं होता । यह कैसी श्रद्धा है तुम्हारी ? जंगल में एक राजपूत जा रहा था । कुछ दूर जाकर साथ में एक वोराजी भी हो गये । दोनों आपस में बातें करते करते जा रहे थे । वोरा राजपूतसे पूछता है– तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने कहा — वागजी ।

तुम्हारा नाम क्या है ?

वोरा कहता है– मेरा नाम तो बहुत बड़ा है– सुनो, दो वाघ, दो वाघनिया ऊपर दो टोपा उस के ऊपर दो फू फू ।

राजपूत हंसने लगता है– इतना बड़ा नाम है तुम्हारा ? इतने मे तो बाघ की आवाज सुनाई दी ।

वागजीने कहा– दो बाघ दो वाघनिया अब तुम आगे चलो । वोराजी तो थर थर कांपने लगे । घबराते हुए वह बोला– वागजी, आगे तुम चलो, मेरा नाम तो भिंया फुसकी है ।

वागजीने धडाका किया तो बाघ दूसरे रास्ते भाग गया । नाम का क्या महत्व है ? बड़ा बडा नाम रखने से क्या होता है ? शासन सम्राट ! व्याख्यान

वाचस्पति, भारत भूषण, विद्या वारिधि, सर्वगुण सम्पन्न आदि कितने हैं ? केवल विशेषण लगाने से क्या होता है ? पराक्रम कैसा है ? विपरीत मार्ग पर वह कैसे चल सकता है ? श्रावक हो कर भी परपाखंड प्रशंसा और परपाखंड संस्तव भी नही आता ? जितना तुमने अपना बिगाड़ा है उतना अन्य मतियोंने नही बिगाडा है।

मुर्दा सिंह पडा है। सियार उसे देख कर आता है। परन्तु भयभीत होकर वापिस लौट जाता है। सियार सिह के शरीर को छू नही सका, पर सिह के शरीर में कीडे पैदा हो गये। वे ही उसे पोला कर देते है। सियार तो अभी भी डर ही रहा है। इसी तरह जैनदर्शन को दूसरा देख नहीं सकता पर उसीके मोटे मोटे आदमी जो यहा भी संघ के प्रमुख है और दूसरी जगह भी प्रमुख हो जायं तो क्या वे श्रावक कहे जा सकते है ? जो सुदेव-अरिहन्त, सुगुरु–निर्गृन्थ और सुधर्म–केवली प्ररुपित धर्म का वफादार रहता है वही श्रावक कहा जाता है।

चारे चूक्यो बारे भूल्यो छ ना न आवडे नाम।
जगत मां ढंढेरो फेरवे श्रावक हमारा नाम।

एक वार एक बहुरूपिया साधु का वेश धारण कर एक सेठ के यहां गया। सेठ ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। साधु उपदेश देने लगा– लक्ष्मी चंचल है– उसकी तीन स्थितियां कही गई है– नाश–भोग या सद्व्यय। तुम क्या कर रहे हो ? दे गया सो ले गया, रख गया झख मार गया। सेठने सेठानी से कहा–इसको सोना मोहर दे दो। वहुरुपिया के सामने मोहरो से भरी थाली रख दी गई। परन्तु वह कहता है हम तो साधु है, हमको यह लेना कल्पता नही है। निस्पृही को तो यह जगत तृण वत है। निस्पृहस्य तृणं वित्तं।

महीने भर वाद वही वहुरूपिया भिखारी का वेष धारण कर सेठ के यहा आया। सेठ ने कहा–तुम आज भीख मांग रहे हो, तव तो हम तुम्हें सोना-मोहरों का थाल दे रहे थे–ले लिया होता तो यह भीख नही मागनी पडती।

वहुरूपिया कहता है– वेष का वफादार रहना मेरा कर्तव्य है। वहुरूपिया का वेष धारण करने वाला भी निष्परिग्रही रह सकता है तो जो वीतराग धर्म का उपदेशक है उसे कैसा होना चाहिये ?

सोनु रुपु हीरा न मांगु, तारा प्रेम नी भिक्षा मांगु।
तारा चरणे मुक्ति नु धाम रे, जीवन पावन कारी।
प्रभु पारसनाथ नुं नाम रे, जीवन पावन कारी।

ज्ञानी कहते है– जब आत्मार्थी बनते हो तब पुद्गल की ऋद्धि भी तिनके के समान लगती है। निज वैभव को समझोगे तो ऐसा विचार कर सकोगे।

जड चैतन नही बन सकता, चैतन जड नही हो सकता । वह सोना–चादी, हीरा की भी भीख नही मांग सकता । मै तो तेरे चरणो में रहने की प्रार्थना करता हू । सच्चे साधु तो ऐसे होते हैं ! माथा मुंडाने वाले तो कई होते है, पर मन को मुडने वाले तो बिरले ही होते हैं । जिसके हृदय में वीतराग भाव रहते हैं वही सद्‌गुरु बन सकते हैं ।

पौटिला गुरु आज्ञा मे रहती है । आगे क्या होता है ? यथावसर कहा जायगा ।

ता. २७–१०–६८

[११९]

पौटिला सुव्रताजी आर्याजी की शिष्या बन जाती है । आस्रव उसके अवरुद्ध हो जाते है और संवर चालू हो जाता है । अव वह ज्ञान पूर्वक संयम-तप की आराधना करने लगती है । ज्ञान शून्य क्रिया का महत्व नही होता । अत: वह गुरु से ज्ञान सीखने लगती है ।

पौटिला ११ अंग का ज्ञान करती है । भगवती सूत्र भी वह मौखिक कर लेती है ।

साध्वीजी १४ पूर्व का अभ्यास नहीं कर सकती है । पुलाक लब्धि और आहारक शरीर उसे नहीं हो सकते है । परन्तु केवलज्ञान उसे हो सकता है । ११ अंग का ज्ञान वह कर सकती है ।

खाना पीना सोना मिलना वचन विलास ।
ज्यों ज्यों पंच घटाइये, त्यों त्यों आतम प्रकाश ।

इधर-उधर की बातों मे समय कितना चला जाता है ? चाय पार्टी में तुम्हारा समय कितना जाता है ? बहिनो का समय खाना बनाने मे कितना जाता है ? भात-कथा अनादि से चली आ रही है । दूसरी तरफ सिद्ध भी हैं जो अनादिकाल से आहार रहित अवस्था मे भी जी रहे हैं । फिर तुम भात–कथा मे क्यो पड़े हुए हो ? रसना में लौलुप क्यो हो रहे हो ? पीने की भी हद कहां है ? कई तो शराब भी पी जाते है । शरीर को ही हृष्ट-पुष्ट बनाना सीखे हो या आत्मा को भी देख रहे हो ?

ब.हर रुढी वली बदबो अंदर होय
ऐनी शुं ये मरामत होय. . .
काया छे पिंजरु रे अेनी शुं य मरामत होय ।
जे ते अभक्ष वस्तु भरीने काया नचावे तेम करी ने रे ।
रात्रि न जोई दिवस न जोयो भटक्यो भान ने खोय– अेनी शुं

यह शरीर हाड-चाम का बना हुआ है– बाहर से सुदर दिखाई देता है, पर अंदर तो वदवू ही भरी पड़ी है। घडा ऊपर से तो सुदर हो, पर अंदर विष्ठा भरी पड़ी हो तो उसे कौन लेना चाहेगा ? इसी तरह शरीर मे भी क्या है ? दूधपाक (खीर) खा कर उल्टी करो तो कैसा लगेगा? बासुदी बर्तन मे पडी रहे तब तक तो खराब नही होती है, परन्तु जैसे ही वह पेट मे चली गई कि अशुचि बन जाती है। यह शरीर ही अशुचि मय है, इसमे जो भी वस्तु डालोगे अशुचिमय ही हो जायगी।

अभक्ष्य का भी भक्ष्य कर लेते हो–बटाटा–आलू का शाक तो चाहिये ही। श्रावक होकर आलू खाते हो ? बम्बई है, यहां सब चलता है। ऐसा क्यो सोचते हो ? धर्म अपनी चीज है। उसका पालन तो सब जगह होना ही चाहिये। जीभ को क्या अच्छा लगता है ? दिन और रात वही खाते रहते हो। चाहे जो खावो अमर तो हो नहीं सकते। एकदिन तो जाना ही होगा। पंचमी को जाना है तो छठ होने वाली नही है। फिर क्यो अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग नही कर देते हो ? रातको पानी पीना खून पीने जैसा है और भोजन करना मांस खाने बराबर है। चौविहार करने वाला इन पापों से बच जाता है। शुरु-शुरु मे भले ही उसे तकलीफ हो पर धीरे-धीरे आदत हो जाती है। रात को दवा लेना तो दूर, इंजेक्शन भी वह नही ले सकता है। डाक्टर तो तुम्हारा शरीर देखता है, आत्मा को थोडे ही देख सकता है। आत्मा को तो तुम स्वयं ही देख सकते हो। ज्ञानी कहते हैं खान पान और सोने मे जिन्दगी मत घुमाओ। आधी जिन्दगी सोने मे गुजर जाती है। दिन मे भी मोटी-मोटी गादियों पर पडे रहते हो। रात में शांति रहती है, तब थोडा विचार तो करो कि मैं कौन हूं ? मेरा कौन अपना है ? मै अकेला हूं। इसका विचार करते-करते ही जीव को आत्मज्ञान हो जाता है।

हुं कौन छुं क्यायी थयो शुं स्वरूप छे मारू खरु।
कौना संबंधे वर्गणा आ राखूं के हुं परिहरूं।

तुम ममता क्यो कर रहे हो ?

ममताना बंध ने दुनिया बावरी,
मनड् जोडी दे समता ने द्वार-बंध करी दे ममता ना द्वारने।

यह मेरा लडका-यह लडके का लड़का है। सुन कर खुशी अनुभव करते हो। लेकिन यह नही जान रहे हो कि रात और दिन चूहे की तरह आयुष्य की डोरी काटते चले जारहे हैं। क्षण-क्षण जो आत्मा का भाव मरण होताजा रहा है,अब इसे बद करदो। चार बार खाते हो तो दो बार बद कर दो, पीना भी बंद कर दो, दो घंटा भी बंद रखोगे तो उतना ही आस्रव भी बद रहेगा। सोना कम करो, आलस्य घटाओ, ध्यान और चिंतन-मनन बढाओ। लेकिन आज तो तुम आराम चाहते हो, आलसी बन

गये हो। पहले के श्रावक तो घर में ढोर रखते थे, फिर भी यथा समय धर्म स्थानक में आते थे। तुम कहां आते हो? रोज-रोज तुमको क्या कहे? समझदार को तो इशारा ही बहुत होता है। पहले तो दिन में बिस्तर बिछा हुआ रखना भी बुरा समझा जाता था। लेकिन आज तो हर समय बिस्तर बिछा हुआ रहता है। अपना सारा समय हिलने-मिलने में ही चला जाता है। उपाश्रय में आते हो तो यही शिकायत करते हो कि वे तो बोलते भी नहीं हैं। क्या तुम्हारे लिये हमने दीक्षा ली है? तुम्हारी हवेली के दरवाजे तो बंद होते हैं और खुलते भी हैं। पर हमारे दरवाजे तो चौवीसों घंटे खुले रहते हैं। जब भी तुम अपने काम से निवृत्त बनो उपाश्रय में आकर बैठ जाओ, चिंतन-मनन और वांचन करो। उपाश्रय क्या है? संघ की पौषधशाला ही तो है न?

रोज-रोज कागज पत्र क्यों लिखते हो? साधु-साध्वी को भी कागज का क्या काम है? उनको किसके लग्न कराने है? आत्म साधक को यह पोषाता नही है। भले ही ऐसा साधु लोकप्रिय न होगा, पर आत्म प्रिय तो होगा। तप त्याग और ध्यान में तो आगे बढेगा। उसे तो शिव-रमणी से प्रेम करना है।

कैसे हो? कहा नही कि साधु अपने गले मे घंटी बांध लेता है। फिर तो रेडियो बंद ही नहीं होता। अतः हिलना – मिलना भी बंद करो। वचन-विलास कम करो, संक्षेप मे उत्तर दे दो – थोडे में ही निपट लो। दैनिक पत्र पत्रिकाओ के चक्कर में मत पडो, न साधुओ को उसमे पडने का कहो।

वाद-विवाद या झगडे मे भी मत पडो। मौन रखो। ज्यादा बोलना भी आफत को मोल लेना है। भगवान ने १२॥ वर्ष तक मौन रखा था। तुम भी मन-वचन और काया का मौन करो। इससे आत्मा मे प्रकाश पैदा हो सकेगा।
तुम No Time कहते हो-पर हमने कितना समय बता दिया। यह समय अनमोल है। इसे यों ही व्यर्थ मत गंवा बैठना!

झूठा जगना झूठा खेल, मनवा मारू तारू मेल
तू तो छोडी देने चिन्ता आखा गामनी।
तू तो जपीले ने माला भगवान नी।

इस दुनिया के खेल सभी झूठे हैं। कभी रास-विलास तो कभी रोग-शोक। यह नाटक ही तो है।

पौटिला साध्वीजी ज्ञान ध्यान मे लीन रहती है। ज्ञान के साथ-साथ आचरण का भी पालन करती है– तप, स्वाध्याय करती है, मासखमण का तप भी करती है। कर्मों को नष्ट करने के लिय वह इस प्रकार उग्र तप भी करती है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

ता. २८–१०–६८

[१२०]

पौटिला ११ अंग का अभ्यास करती है और उसके साथ तप भी करती है। ज्ञान रहित जीवन पशु तुल्य होता है। ज्ञान ही शक्ति है। लेकिन साथ ही क्रिया भी आवश्यक है।

घर में दीपक तो कर लिया है, प्रकाश हो गया है, पर कचरा बहुत हो गया है। दीपक कचरा तो बता देता है, पर वह निकाल नहीं सकता है। वह तो क्रिया करने से ही साफ हो सकेगा।

साफ करो भाई साफ करो
दिलना कचरा साफ करो।

दीपक यह बता सकता है कि यह शक्कर है, यह पत्थर है। क्या ग्रहण करने जैसा है और क्या छोडने जैसा है? इस तरह जानना एक बात है और जान कर आचरण करना दूसरी बात है।

क्रिया रहित ज्ञान पंगु है। रसोइया खाना बनाना तो जानता है, पर तदनुकूल क्रिया न करो तो वह तैयार कैसे हो सकेगा?

थाली परौसी हुई, पड़ी है, पर हाथ से रोटी उठाओगे नहीं तब तक भूख कैसे मिट सकेगी? ज्ञान दर्शन और चारित्र से मोक्ष होता है, यह ज्ञान तो कर लिया, पर चारित्र का ठिकाना न हो तो मोक्ष कैसे हो सकेगा?

एक जंगल में एक अंधा और एक लंगडा मिल गये। जंगल में आग लगी। अंधा उसी ओर चल रहा है, लंगडा उसे देख लेता है। वह कहता है तू किधर जा रहा है? उधर आग लग रही है। अंधा देख नही सकता, लंगडा चल नही सकता। दोनो अलग-अलग चलेंगे तो मर जावेंगे। अंधे ने लंगडे को अपने कंधे पर बैठा लिया और उसके बताये हुए मार्ग पर चलने लगा तो दोनो की जान बच जाती है। इसी तरह मोक्ष पहुंचना है तो ज्ञान और क्रिया दोनो का पालन करना होगा।

ज्ञान बिना क्रिया आंधा जेवी
समझ क्रिया विण पंगु जेवी
भाव मसालो भरलो हो संत समागम करलो।

ज्ञान रहित क्रिया अंधी है। सामायिक, प्रतिक्रमण, व्रत पच्चक्खाण क्यों करते हो? यह तो पता नहीं है, पर करना है इसलिये करता हूं। ऐसी क्रिया अंधी क्रिया कही जाती है। क्रिया रहित ज्ञान भी शुष्क ज्ञान कहा जाता है। जानने मात्र से रोटी नही बन जाती है।

कोई क्रिया जड थई रह्या शुष्क ज्ञान मां कोई।
माने मारग मोक्ष नो करुणा उपजे जोई।

अज्ञानी करोड वर्ष तक मासखमण का पारणा करे तब भी वह अज्ञान तप कहा जाता है। ज्ञानी तीन गुप्ति सहित जो क्रिया करता है वह उतने कर्म नष्ट कर देता है जितने कि मासखमण वाला भी नही कर सकता। एक श्वासोश्वास के समय मे ज्ञानी इतने कर्म नष्ट कर देता है जितना कि अज्ञानी करोडो मास खमण मे भी नही कर सकता।

जं अन्नाणी कम्मं करेइ बहुंहि वासकोडीहिं।
जं अन्नाणं तं नाणी, तिहिगुत्तो खवेइ उसासमंतेणं।

ज्ञान तो दूसरे भी करा सकते है, पर धर्मक्रिया तो स्वय करनी पड़ती है। क्रिया करने पर भी ज्ञान न हो तो–

भारस्स वाही न तु चंदणस्स

गधा चंदन का भार उठाता है, पर उसे यह नही मालूम होता कि मैं क्या उठा रहा हू ? ऐसे ही जो क्रिया करता है, पर ज्ञान नही है तो यह भी वैसा ही है। ज्ञान हीन मनुष्य क्रिया करने पर भी वस्तु का स्वरूप जान नही सकता है। कई क्रिया हीन शुष्क ज्ञान मे ही मजा मान रहे हैं। यह भी ठीक नहीं है।

बाह्यक्रिया मां राचता अन्तर भेद न कांई।
ज्ञान मार्ग निषेधता, तेह क्रिया जड आंहि।

कोई साधु अपने पास नोट रख ले तो तुम उसे क्या कहोगे ? इसी तरह तुम भी क्या पौषध करके नोट ले सकते हो ? पौषध भी २४ घंटे का चारित्र ही है। साधु का चारित्र जीवन पर्यन्त होता है। उसे यह लेना नही कल्पता।

पौषध में दवा–इंजेक्शन भी नही लिया जा सकता है। दवा लेनी है तो पौषध क्यों करते हो ? या तो दवा छोड दो या पौषध मत करो। वेष का वफादार तो रहना ही चाहिये। बहुरूपिया भी वेष को लजाता नही है तो तुम अपनी क्रिया को समझते क्यो नहीं हो। पौषध का कितना महत्व बताया गया है? फिर क्यो तुम उसे एक लड्डू के लिये या शक्कर की पुडिया के लिये घुमा वैठते हो। मासखमण से भी पौषध का महत्व ज्यादा कहा गया है। ऐसी अंधी क्रिया मत करो। लोकेषणा से दूर रहो। दूसरे कुछ भी करे, पर मुझे क्यो करना चाहिये ? तृष्णा और लालच मे मुझे क्यो पड़ना चाहिये ?

भक्ति भी अंधी नही होनी चाहिये। लाभ की इच्छा से भक्ति मत करो। धर्म ध्यान करो यही लाभ है। इससे अधिक और क्या लाभ चाहिये ?

अकेला ज्ञान या अकेली क्रिया मोक्ष देने वाली नही है। मोक्ष तो ज्ञान और क्रिया दोनों से मिल सकता है।

ज्ञान तो प्रकाश है। उसको प्रकट करोगे तो मालूम होगा कि यहां क्या है? आख से अवे हो जाते हो तो कैसा वुरा हाल हो जाता है? वैसा ही हाल दीव्यचक्षु यानी ज्ञान–नेत्र न होने पर क्यो नही होता है?

ज्ञानथकी जाणे सकल, दर्शन श्रद्धा रूप।
चारित्रथी आवक रुके तपस्या खपन स्वरूप।

चारित्र से कर्म आने वंद हो जाते है। तपस्या से कर्मो की निर्जरा होती है। मोक्ष निकट आने लगता है। अतः पहले जानो और फिर प्रयत्न करो।

पौटिलाने पहले ज्ञान किया और फिर तपस्या आरंभ की। समझ कर जो क्रिया की जाती है वही शुद्ध क्रिया कही जाती है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा।

३०–१०–६८

[१२१]

पौटिला ११ अंग का ज्ञान कर तपश्चर्या करती है। यों वह निरतिचार पूर्वक संयम की आराधना करती है। उग्र तपस्या करने से वह कृश हो जाती है। एक दिन वह अपने गुरु से कहती है–'आपकी आज्ञा हो तो अव मै संथारा कर लू।' गुरुने भी उसकी स्थिति देखी तो आज्ञा दे दी।

पौटिला का संथारा १ मास तक रहा। उसकी अखड आत्म ज्योति जलती रही। संथारा पूर्वक मरण तो हर एक चाहते है, परन्तु कोई विरले ही इसकी साधना कर पाते है। थोडीसी वीमारी हो जाती है तो तुम डोक्टर के पास चले जाते हो। डोक्टर कहे वैसा करने लगते हो। उसके वजाय गुरु के पास जाओगे तो मृत्यु भी महोत्सव का रूप धारण कर लेगी। शरीर छोडने में दुख का क्या काम है? देह होते हुए भी विदेह स्वरुप मे रहना ही ज्ञानी दशा है।

देह छता जेनी दशा वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानी ना चरणमां, हो वंदन अगणीत।

पौटिला अन्त समय तक अपने चारित्र में स्थिर रहती है, मुंहसे अरिहन्त अरिहन्त ही कहती रहती है।–

अनशन को सिद्ध वट हो
प्रभु आदि देव घट हो
गुरु राज भी निकट हो,
जब प्राण तनसे निकले।
ऐसी दशा हो भगवान,
जब प्राण तनसे निकले।

हे भगवन ! जब मेरे तन से प्राण जाने लगे तब मुझे संथारा हो—चारों आहार का त्याग हो, १८ पापों का त्याग हो । यह शरीर जिसकी मैंने वहुत संभाल की है, उसका भी मोह न हो । ऐसा पंडित मरण ही सर्व श्रेष्ठ कहा गया है—

बाल मरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव य बहुयाणि ।
मरिहन्ति ते वराया जिण वयणं जे न माणन्ति ।

वाल मरण मरने वाले तो अनन्त जीव है, अकाम मृत्यु से मरने वाले भी अनन्त है । वे सब अज्ञानी है । जो जिन वचन नही जानते है वे ही इस तरह मरते है । पर जो ज्ञानी हैं वे तो मृत्युजय होते है— वे तो मौत को भी हाथ में लेकर फिरते है ।

आज हमारी गुरांणी दिवाली बाई स्वामी की तिथि है । जिन्होने हमें सच्चा मार्ग बताया । उस परम पूज्य गुरांणी की आज पुण्य तिथि है ।

१५ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह होता है । दो मास वाद ही वे विधवा हो जाती है । विधि का विधान तो देखिये, दो वर्ष की उम्र में तो माता चल वसी और शादी के दो मास वाद पति का स्वर्गवास हो गया।दीवाली बाई को संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हो गया । कोई हड्डी टूट जाय और तुरन्त उसकी मल्हम पट्टी कर दी जाय तो वह तत्काल जुड भी जाती है । इसी तरह दिवालीबाई को भी सूरजवाई स्वामी का संयोग मिल गया । सूरजवाई स्वामी ने तो १२ वर्ष की उम्र में ही संसार छोड दिया था । जिनके साथ उनका विवाह होने जा रहा था, उन कस्तुरभाई को उन्होंने भाई कहकर संबोधन किया । वह तो मेरा भाई है, क्या बहिन भाई के साथ शादी कर सकती है ? वे महान— प्रभाविक साध्वीजी थी । उनका अनायास संयोग मिल जाने से दिवाली बाई जाग्रत हो गई ।

जब प्रिय वस्तु का वियोग होता है तो वैराग्य पैदा हो जाता है । जैसा कि तत्वार्थसूत्र में कहा है—

जगत्काय स्वभावौ च संवेग वैराग्यार्थम्

सनत्कुमार चक्रवर्ती को एकसाथ १६ रोग होगये थे । उन्होने सब कुछ छोड़ कर संयम ले लिया । क्योकि उन्होने यह समझ लिया था कि शरीर है तो रोग है, रोग है तो डोक्टर है, डोक्टर तो है तो दवा है— यो शरीर को लेकर ही यह सब है । शरीर को ही अगर मै भुला दू तो यह सारी लाईन अपने आप साफ़ हो जायगी ।

दिवाली बाई को उनके पिता ने बहुत समझाया पर वे अपने मत पर दृढ़ रही । ५ वर्ष तक अभ्यास करती रही । १०० थोकडे कंठस्थ कर लिये थे । २० वर्ष की उम्र मे उनकी दीक्षा वढ़वाण में हुई । पूज्य मोहनलाल जी म. के सान्निध्य मे उन्होंने दीक्षा धारण की थी ।

महापुरुषो के सान्निध्य मे रहनेवाले भी महान होते है । दीक्षा ली उसी दिन से उन्होने व्याख्यान देना भी शुरू कर दिया । चातुर्मास के लिये इनकी इतनी मांग रहती थी कि पूज्य महाराज कहा करते थे कि तुम वैक्रिय रूप करो तब भी इनकी पूर्ति नही कर पाओगे ।

विहार करते समय कोई भी सामने आ जाता तो उसे त्याग अवश्य करा देते । चाहे भंगी हो या मेहतर– बीडी तमाखू, मांस, मदिरा, अब्रह्मचर्य आदि का त्याग करा ही देते थे । वे अक्सर कहा करते थे कि त्यागियो के पास और क्या है ? त्याग-पच्चक्खाण लेना ही त्यागियो की याद कायम रखना है । वे जब व्याख्यान देते थे तब कई लोग यह समझ बैठते थे कि यह तो कोई पुरुष ही बोल रहा है । उनकी वाणी जिसने भी सुनी होगी आज भी वे उसे याद करते हैं ।

उनकी आत्मा महान् थी । तबियत नरम होती तब भी उनके हाथ में पुस्तक तो रहती ही थी । पढो– पढो– सत्साहित्य को पढ़ते ही रहो । सुनना है तो हमारी बात सुनो, हमे तुम्हारी बात से क्या मतलब है ?

पूज्य श्रीलालजी म. मारवाड से जब २१ ठाणो के साथ वढ़वाण पधारे थे तब वहा दीक्षा प्रसग होने से ७५ साधु साध्वी इकट्ठे हो गये थे ।

ज्ञानी अे ज्ञानी मले तो थाये ज्ञानमी लूंटा लूंट ।
पण अज्ञानी अे अज्ञानी मले तो थाये माथा फोड ।

ज्ञानी मिलते है तो ज्ञान की ही चर्चा करते है । पूज्य श्रीलालजी म. ने एक दिन सभी महासतियों की परीक्षा ली । उनमे सबसे पहला नंबर दिवाली बाई स्वामी का ही रहा । ३० वर्ष तक उन्हे डायबिटीज की बीमारी रही, पैर मे फोडे रहे और पीप आता–जाता रहा, पर मुंह से चूं तक कभी नही किया । शरीर को सदैव उन्होंने अशरीर ही समझा । विनयी तो वे इतने थे कि छोटे से छोटे आदमी से भी ज्ञान लेने में संकोच नहीं करते थे । पाट पर से नीचे उतर कर बैठ जाते थे । जिस दिन इन्होंने दीक्षा ली थी उसी दिन से सूरजबाई स्वामीने अपनी बागडोर इनको संभला दी थी । ५८ वर्ष तक उन्होंने संयम पाला ।

हमारा बचपन तो रंगून मे ही बीता । ११ वर्ष तक हम रंगून में ही रहे । यही हमने सामायिक-प्रतिक्रमण सीखा । ११ वर्ष की उम्र में बीकानेर आये तो ऐसे महान् सद्गुरु के दर्शनों का लाभ मिला । माता तो जन्म देकर मुक्त हो जाती है, पर सद्गुरु उसे सुसंस्कारित बनाते हैं, हृदय परिवर्तन कर सन्मार्ग पर ले जाते हैं, आत्मा और परमात्मा का ज्ञान कराते हैं । दीक्षा लेने के २॥ वर्ष में ही ३० सूत्रों का पठन करा दिया । संसारी अवस्था में २॥ वर्ष तक समयसार और प्रवचन सार का पठन कराया । ऐसे विलक्षण गुरु ही तरण–तारण होते है

पारसमणि और संत में बडो आंतरो जाण ।
वो लोहा कंचन करे, वो करे आप समान ।

पारस मणि तो लोहे को सोना बनाती है, पर गुरु तो शिष्य को अपने समान बना देते हैं । गुरु चरणों में अपने को समर्पित कर दो । एक दिन तुम भी उनके समान बन जाओगे । गुरु की महिमा तो अपरंपार है–

अहो अहो श्री सद्गुरु, करुणा सिंधु अपार ।
आ पामर पर प्रभुकर्यो, अहो अहो उपकार ।
शुं प्रभु चरण कने धरूं, आत्मा थी सहु हीन ।
ते तो प्रभुअे आपीयो, वर्तु चरणाधीन ।

गुरु की आज्ञा ही मेरा धर्म है । भगवान ने कहा है–

जस्सन्तिए धम्म पयाइ सीक्खे
तस्सन्तिए विणइयं पउंज्जे ।
सक्कारए सिरसा पंजली उडो,
कायगिरा भो मणसा य निच्चो ।

गुरु कैसे होते हैं ?

जैसे कपडे को थान दरजी वेतत आन
खंड खंड करे जाण देत सो सुधारी है ।
काटके ज्युं सुत्रकार, हेमको कसे सुनार,
माटी के ज्युं कुंभकार पात्र करे त्यारी है ।
धरती के किरसाण लोहके लुहार जाण
सिलावट शिला आण घाटघडे भारी है
कहत हैं तिलोक रिख, हितकारी देत सीख,
ऐसे गुरुराज ताकुं वंदना हमारी है।

कपड़े के थान लाकर दरजी को सौपदो तो वह उनके टुकडे टुकडे कर कमीज बना देता है । ऐसे ही अनपढ़ को गुरु घड कर सुगठित कर देता है । जैसे सूत से जुलाहा कपडा बना देता है, स्वर्णकार सोने से गहना बना देता है, ऐसे ही गुरु भी शिष्य को संस्कारित कर चमका देते हैं । मिट्टी से कुम्हार सुदर पात्र बना देता है वैसे ही गुरु भी मानव को महान् बना देता है । समाज का रक्षण करने वाले गुरु ही होते हैं । उनको हम कैसे भुला सकते हैं ?

कदिना भूलाय स्वामी २ रे
विसामा नो डाल स्वामी कदि ना भूलाय रे ।

विश्राम-डाल को हम कैसे भूल सकते हैं ? जो स्वयं धूप सहन करते है और दूसरो को छाया देते हैं, उनको हम कैसे भूल सकते है ?

दिवालीवाई स्वामी परीक्षा करने में वडे निपुण थे । कई बहिनें उनसे दीक्षा लेने की बात कहती तो वे उनको देख कर यह कह दिया करते थे कि यह तुम्हारा काम नही है । उनकी ५ शिष्याएे बनी–

१ सुदरवाई स्वामी– जो रूप गुण की खान थी और संयम में भी दृढ थी ।

२ जहरवाई स्वामी– जो छठ्ठ का पारणा करते थे ।

३ झबकबाई स्वामी–जिन्हों ने ९२ वर्ष की उम्र मे वाकानेर मे काल किया । महान् सेवा भावी और तपस्वी थे । उन्होने अपने जीवन मे कनकावली, मुक्तावली, वर्धमान ओली, भद्रपडिमा, आदि कई एकासना के तप किये थे । अन्त समय मे ३ दिन का संथारा कर ९२ वर्ष की आयु मे स्वर्गवासी हुए । बारह वर्ष तक ठाणा तप किया था ।

४ पार्वती बाई स्वामी– जो उनकी संसारी काकी थी । ये भी बडे तपस्वी और सेवाभावी थे ।

५ वी शिष्या मैं ही हूं । ऐसे स्वामी मिलना भी महान् पुण्य का कारण है । ३८ वर्ष के संयम काल में वांकानेर का चातुर्मास भी विशेष कारण से ही हुआ था, मेरे लिये तो नही किया था । फिर भी निमित्त तो ऐसे मिल ही जाते हैं । यह सब प्रताप गुरु का ही है । यह मार्ग पाना और उस पर दृढता पूर्वक चलना आसान काम नही है । यह गुरु का ही प्रताप है ।

दिवाली बाई स्वामी कभी ऐसे डाक्टर या वैद्य से दवा नही लेते थे जो अपनी दवा के पैसे लेते थे । वे पहले ही यह पूछ लेते थे कि तुम अपनी दवा के पैसे नही लोगे तो हम दवा ले सकेगें, अन्यथा नही । इस तरह उनकी चर्या बहुत कडक थी ।

अन्त समय में उनकी वेदना ने तीव्र रूप धारण कर लिया था । दो माह तक यह वेदना रही । पाव भी लम्बा नही हो सकता था । फिर भी उनकी सहनशीलता मे कोई अन्तर न था । पठन-पाठन बराबर चालू रहता था । आचारांग का पठन चल रहा था । आज का अन्तिम दिन था । आंचारांग का ९ वां अध्ययन भगवान महावीर का चल रहा था–

सूरो संगामसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे । ..

महावीर ने कर्मों के साथ कैसा संग्राम किया ? करने योग्य तो यही है । रातमे आनन्दघन जी के स्तवन और देवचंद जी के स्तवन, कल्याणमंदिर आदि सुनते थे । सागारी संथारा तो था ही । रात को यावज्जीवन संथारा कर लिया । जब अन्तिम समय था, मैंने कहा– स्वामी क्या कर रहे है ? उन्होंने उत्तर दिया–मै नवकारमंत्र का स्मरण कर रही हूं । मैंने कहा– मैं कहती हूं–

णमो अरिहन्ताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं –

यह सुनते सुनते ही वे चले गये। मैंने किसी का मरण अपनी आंखो के सामने नहीं देखा था, तब देख लिया।

उनका जीवन बड़ा शुद्ध था। सूरज बाई स्वामी की तरह उनको भी वचन सिद्धि प्राप्त हो गई थी। जो कुछ कहते थे वैसा ही हो जाता था।

उन्हीं उपकारी गुरु की आज तिथि है। उनकी स्मृति में जो भी तप-त्याग हो सके वह तुम करोगे तो तुम भी अपनी आत्मा को उनके समान शुद्ध-सरल और उच्च बना सकोगे।

ता. ३१-१०-६८

[१२२]

पौटिला को एक मास का संथारा आया। कषाय के साथ जो मरण होता है, वह अपघात कहा जाता है। कषाय रहित मरण पंडित मरण कहा जाता है। पौटिला का मरण पंडित मरण था। कोई मासखमण का तप करता है तो ३१ वां दिन पारणा होगा यह तो निश्चय होता ही है, पर संथारे में तो कुछ भी निश्चय नहीं होता। संथारा दो दिन चलेगा या दो मास? कौन कह सकता है? अतः संथारे की क्रिया का विशेष महत्व है। पौटिला मर कर देव लोक में पैदा होती है। देव लोक के देव पौटिला का स्वागत करते हुए कहते हैं– तुमने कितना दान दिया था? संयम की कैसी उत्कृष्ट साधना की थी? अंतिम समय में संथारा की आराधना की। उसीसे आप हमारे देव बने है। पौटिला भी अपने ज्ञान से देखती है तो उसे अपना मृत शरीर दिखाई देता है।

राजा कनकरथ बड़ा लोभी था। वह अपने पुत्रों का भी अंग भंग कर देता था। वह अपने को अमर समझता था, पर काल किसी को रहने देता है?

ध्रुजावता धमधम धरा पडता जेना पाय।
एवा नर उपडी गया, जे जन्म्या ते तो जाय जाय ने जाय।

जो चलते थे तो पृथ्वी धूजती थी–ऐसे भी काल के आगे ठहर न सके। एक दिन तो सबको काल का ग्रास होना ही पडता है —

जेम तेतर ऊपर बाज मच्छ पर बगलो रे
तारी नवल सुरंगी देह करी देशे ढगलो रे।
जेम तोरण आव्यो वींद पाछो नव वलशे रे।
तारा स्वजन कुटुंब परिवार मुह टलवलशे रे।

जैसे तीतर जमीन पर बोलता रहता है, पर बाज आता है तो उसे पकड ले जाता है—मार देता है। वैसे ही जीव भी चाहे जहां आता-जाता हो, काल कहीं भी उसको छोडता नही है।— देह का भी एक दिन ढेर हो जाता है। शरीर तो अनंत परमाणुओं का पिंड है, उसे ढलते क्या देर होती है?

कनकरथ राजा भी बीमार हुआ, कई तरह के उपचार कराये गये, पर वह बच न सका। आयुष्य टूटता है तो दूसरा कोई उसे जोड नही सकता। मनुष्य को जाना तो पड़ता ही है, पर वह अपनी अच्छाई और बुराई पीछे छोड़ जाता है। अच्छे आदमी को सभी याद करते हैं। पर बुरे आदमी के मर जाने पर भी लोग खुश ही होते हैं। कनकरथ राजा के मरने से भी लोगों ने खुशी ही महसूस की। अज्ञानियों का मरण अकाम मरण कहा जाता है। वे मर कर नरक या तिर्यंच गति मे जाते हैं। सकाम मरण वाले देवलोक मे उत्पन्न होते हैं। पौटिला का मरण सकाम मरण था।

मनुष्य के हाथ में जब मौका आया था तब तो कुछ किया नही; मौका चला गया तब क्या हो सकता है?

नही करवाना कामों ते कीधा
अमीरस मूकीने विष पान पीधा
छोडीओ अमृत ने हवे केम रोवे
करीना कमाणी गुमावी शुं रोवे।
गई हाथ वाजी पछी केम रोवे?

साधक स्वय बाधक हो जाता है। आई हुई बाजी हाथ से घुमा बैठता है। फिर पछताने से भी क्या हो सकता है?

ज्ञानियो ने जिसे हेय कहा—न करने योग्य कहा—वह तो किया और जो करने योग्य बताया—ज्ञान—दर्शन चारित्र और तप की आराधना—वह नही किया— यो अमृत को छोडकर विप पान कर बैठे तो अब उससे कैसे बच सकोगे?

कनकरथराजा मर जाता है। उसकी जगह दूसरा किसको राजा बनाया जाय? यह प्रश्न खडा हो जाता है। प्रधान राज्य का काम सभालता था और गुप्त रहस्य का भी ज्ञाता था अत· प्रजाजन मिल कर उनसे विनती करते हैं कि जब तक आप राजसिंहासन पर किसी को न बैठा दें तब तक आप ही राज्य का संचालन करें।

प्रधान सभा मे कनकरथ के लडके को खडा करता है और कहता है—यह लड़का राजा का ही है। प्रभावती रानी इसकी मां है। उन्होंने मुझे पालन-पोषण के लिये सौंपा था। राजा अपने लड़कों का अंग-भंग कर देता था अतः

इसका पालन मेरे यहा हुआ। प्रभावती रानी भी वहां आ गई। उसने भी कहा-यह लडका मेरा है। मैंने ही इसे प्रधान को सौंपा था। प्रजा उसे युवराज के रूप में मान्य कर लेती है। प्रधान ने उसे सब तरह से योग्य तो बनाया ही था। कनक ध्वज राजकुमार का राज्याभिषेक किया जाता है। तैतली की भी खूब प्रशसा होती है।

प्रभावती रानी अपने लड़के को एकांत मे ले जाकर कहती है-तेरा पालन-पोषण प्रधान ने किया है अतः इन्हें तू अपना पिता समझना। यह कहे वैसा ही करना और इनका आदर-सत्कार करना।

राजकुमार को आज पता चलता है कि मेरे जनेता कौन है और पालक कौन है? पहले के लोग कितने गंभीर होते थे? आज तो छोटी सी बात का भी बतंगड खडा कर दिया जाता है। पहले जैसी गंभीरता आज कहां दिखाई देती है?

कनक ध्वज प्रधान की इज्जत करता है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन कभी नही करता। प्रधान का मान-सन्मान और आय भी बहुत बढ गई।

पौटिला देवलोक से यह देख रही है। मैंने प्रधान को समझाने का वचन दिया है। तभी तो उसने मुझे दीक्षा की अनुमति दी थी।

पौटिला स्वप्न में देव रूप मे आती है और प्रधान से कहती है-प्रधान जी! संयम की साधना करने के लिये ही यह मानव भव मिलता है। इसीलिये भगवान ने भी इसका बखान किया है। एक तरफ देवलोक का राजा इन्द्र हो और दूसरी तरफ सब कुछ त्याग कर देने वाला साधु हो तो दोनों में कौन बड़ा होता है? त्यागी के सामने भोगी बड़ा नही हो सकता। इन्द्र भी त्यागी सन्त को ही नमस्कार करता है। अतः तुम भी यह सब भोगविलास छोडो और त्यागी बन कर निकल जाओ। तुम्हारे मे जो शक्ति छुपी पड़ी है उसको पहचानो, पर से निवृत्ति लो और स्व में स्थिर हो जाओ। इसी में आत्मा का कल्याण रहा हुआ है।

पौटिला इस तरह तीन बार प्रधान को प्रतिबोध देती है। लेकिन प्रधान पर तो उसका कुछ भी असर नहीं होता है।

जिसके घर में खाने को भी न हो उसे ही धर्म याद आता है। प्रधान तो राजा से भी ऊपर माना जा रहा है। वह अब संयम मार्ग पर कैसे आ सकता है? पैसे वालों पर साधुजी के उपदेश का क्या असर होता है? वे तो यही समझते है कि प्रत्यक्ष सुख को छोड कर अप्रत्यक्ष सुख को लेने की इच्छा करना कहां की बुद्धिमानी है? घर मे सब तरह की सुविधा हो-आज्ञाकारी संतान और पत्नी हो तो जीव धर्म करने मे भी भयभीत होता है। यही कारण है कि पहले और दूसरे आरे मे धर्म नहीं होता है। क्योंकि इन आरो मे दुख

होता ही नहीं है। तीसरा आरा सुखम. दुखम होता है—इसी आरे में धर्म की शुरुआत होती है। दुख होगा तभी तो उससे मुक्त होने का विचार भी पैदा होगा। अभी तो ५ वॉ आरा चल रहा है। जिसमे दुख ही दुख है। एक दुख मिटता है तो दूसरा खडा हो जाता है।

पहले के श्रावकों के पास कितनी ऋद्धि थी? किसी के पास ४० करौड सोनैया तो किसी के पास ८० करौड। आज तो उतने पैसे भी तुम्हारे पास कहां मिलेगे? कहा शालिभद्र की ऋद्धि और कहा तुम्हारी ऋद्धि? फिर क्यों मान कर रहे हो?

आज तो लोगों के पास रहने का भी कहां ठिकाना है? एक कमरे में कितने आदमी रहते हो? कई तो रास्ते मे ही पड़े रहते हैं। घरो का भी कैसा हाल है?

तुट्यो सो सखर घर बिल है अनेक,
नोल कोल अहीं खुदर सु समायो है।
बोखी हांडी वांडो चाटु काली सी कलेसी नार
लेणु लेवा लेणदार आंगाणा मे आयो है।
खाट उणी अेक पाये, गोदडी बिछाई जुनी
लेलडीया लटकाया लेर मोज आयो है।
अेतामा भगन भयो न मान्यो साधुको कह्यो।
मान को मरड़्यो जीव बहुत दुख पायो है।

ऊपर छप्पर उड गया है— नीचे चूहो के बिल हैं। सर्प-विच्छू घर बनाये हुए हैं। काली कलूटी औरत साथ मे है। सोने का भी ठिकाना नही है। पलंग के तीन पाये ही हैं। चौथा टूट गया है। इस तरह न खाने-पीने और रहने का ही ठिकाना है। फिर भी कोई साधु यह कहे कि अब तो उठ, क्यो यहां पड़ा है? छोडकर साधु वन जा, तब भी वह संसार छोडना नहीं चाहता है। निर्धन आदमी का भी ऐसा हाल है तो तैतली कैसे उसे छोड सकता है? पौटिला विचार करती है—मैंने प्रधान को वचन दिया है—किसी भी तरह इसे प्रतिवोध देकर धर्म के मार्ग पर तो लाना ही होगा। वह हृदय पलटाने का विचार करती है।

जो वड़े आदमी होते है उन्हे छोटी सी वात भी कभी कभी वहुत चुभ जाती है। पौटिला अब ऐसा ही उपाय सोचती है। देवता के लिये कोई वात कठिन नही होती।

प्रधान सज-वज कर महलों में जाता है। मार्ग में सव उसका अभिवादन करते हैं। जैसे ही प्रधान महलों मे पैर रखता कि राजा उसके सामने आकर उसका

स्वागत करता था। पर आज ऐसा नही हुआ। राजा अपना मुंह फिरा लेता है। राज दरबारी भी कोई खड़े नहीं होते हैं। प्रधान पास में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ जाता है। पर वह सोचता है आज क्या हो गया? मुझे आज मान क्यो नहीं मिल रहा है? राजा का क्या ठिकाना है? नाराज हो जाय तो किसी भी दिन अहित हो सकता है।

नंद राजा का ऐसा नियम था कि जो भी उसे नया श्लोक बना कर सुनाता वह उसे सोना मोहर का थाल इनाम में दे देता था। एक पंडित उसे रोज रोज नया श्लोक सुना कर सोना-मोहर ले जाता था। प्रधान ने सोचा ऐसे तो राजा कुछ ही दिनों में खजाने का माल साफ कर देगा। प्रधान राजा से कहता है-तुम जो श्लोक सुन कर सोना-मोहर बाट देते हो वह तो पुराने श्लोक हैं। नये नहीं है। मेरी लडकियों को भी वे आते है।

प्रधान के ७ लडकिया थीं। उनमे ऐसी शक्ति थी कि पहली लडकी एक बार सुन ले तो उसे याद रह जाता था-दूसरी-दो बार, तीसरी तीन बार इस तरह क्रमशः सब सुन लें तो सब को याद हो जाता था। दूसरे दिन पंडित आया और श्लोक बोला। उसे सुनकर मंत्रीने कहा-पंडितजी यह श्लोक तो पुराना है; नया नही है। पडित बोला-पुराना नही, नया है।

प्रधान बोला-यह तो मेरी लडकियों को भी याद है-देखते ही देखते पहली दूसरी, तीसरी यों सातों ही लडकियां उसको बोल गई। यह देख कर पंडित तो हैरान हो गया। राजाने कहा-पंडित तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है, पुराने श्लोक सुनाकर मेरा धन ले जाते रहे हो। अब से यहां कभी मत आना।

पंडित तो चला गया, पर प्रधान के प्रति वैरभाव लेकर गया। किसी न किसी तरह वह शकडाल मंत्री को पदच्युत करने का मौका देखने लगता है।

शकडाल के पुत्र की शादी होती है। शकडाल सोचता है विवाह मे कई देशों के राजा भी आवेगें। उन्हे क्या भेट दी जानी चाहिये? वह उनको भेट देने के लिये शस्त्र बनवाता है। राजा भी आजकल भोग-विलासी हो गये हैं। उनको यह हथियार दिया जायगा तो वे अपने शौर्य को याद कर जागृत हो सकेगें। इस दृष्टि से वह शस्त्र तैयार कराता है। उधर वह पंडित सारे गांव में यह बात फैला देता है कि प्रधान हथियार तैयार करा रहा है, वह नंद राजा को मार कर अपने लडके श्रियक को राजगद्दी का मालिक बनाना चाहता है। बात फैलते फैलते राजा के पास भी पहुंच गई। राजा तो वैसे ही शंकाशील होते हैं। राजा प्रधान को बुला कर मार देने का विचार करता है।

शकडाल वृद्ध है, घर पर ही रहता है। उसका एक आदमी प्रधान से

[illegible]

[illegible]

[illegible]

यह सुनकर श्रियक तो भौंचक्का हो गया। बोला—यह आप तो मुझ से नहीं होगा। [illegible] ने कहा—तू मुझे मार रहा है यह मैं नहीं समझूंगा। मैं तो मुंह में ही [illegible] रख रहा हूं—मेरे पीछे राजा तुम्हें परेशान न करे इसलिये मैं यह कह रहा हूं। तू ऐसा करेगा तो इसमें तेरा हित हो होगा।

[illegible] को राजा बुलाता है। [illegible] जहर खाकर चल देता है। साथ में श्रियक भी तलवार लेकर जाता है। सबको पता चल जाता है कि प्रधान आज मर जाने वाला है। महलों में पहुंच कर प्रधान राजा को नमस्कार करता है—ज्यों ही उसने गर्दन झुकाई कि श्रियक तलवार से उसका सिर अलग कर देता है। राजा का काम श्रियकने ही कर दिया। राजा कहता है—श्रियक यह क्या किया तुमने? श्रियक कहता है राजन! मैंने जो किया है यह बराबर किया है। जो राजद्रोही होते हैं उन्हें तो मारना ही चाहिये।

यह सुन कर राजा तो खुश हो गया। वह श्रियक को प्रधान बनाने को कहता है। श्रियक कहता है इस पद के योग्य तो मेरा बड़ा भाई स्थूलिभद्र है—आप उसे प्रधान पद दीजिये। मैं इस पद के योग्य नहीं हूं।

तेतली भी सोचता है—राजा की इच्छा कब कैसी हो जायगी? कहा नहीं जा सकता। मेरी मौत भी कहीं ऐसे न हो जाय? वह महलों से अपने घर लौट आता है। मार्ग में भी उसका कोई सत्कार अब नहीं करता। यह अपमान उसे असह्य लगता है। भगवान ने ७ भय स्थान बताये हैं। उनमें अपयश भय मृत्यु से भी कठिन होता है। व्यापार में नुकसान हो जाता है तो लोग जहर खाकर मर जाते हैं। पाप का उदय होता है तो लोग प्राणान्त कर लेते हैं। प्रधान भी यही विचार करने लगता है। घर के आदमी भी मान [illegible] लगते हैं— उसको कोई पूछता नहीं है। वह सोचता है—ऐसा मैंने क्या [illegible]
जो मुझ से सभी रुष्ट हो गये हैं। वह स्वयं मर जाने का [illegible]

घर मे सब साधन हों, पर घर के आदमी न बोलें तो उसे कैसा लगता है? जिस राजकुमार को मैंने ही पाला-पोषा-वही आज मुझ से नही बोल रहा है। अब मुझे जीवित रहने का हक नहीं है। प्राणान्त कर देना ही मुझे योग्य है। अपमान युक्त जीवन से तो मर जाना ही बेहतर है। यह सोच कर वह जहर की पुडिया उठाता है और मुंह में डाल कर पी जाता है। बंधुओ ! अज्ञानी मनुष्यो की हालत तो देखो, वे मर जाना कबूल करते है, पर ससार को छोडकर त्यागी जीवन व्यतीत करना स्वीकार नहीं करते हैं। मार्ग तो दो ही है-संसार मार्ग और मोक्ष मार्ग। सभी संसार मार्ग पर ही चलना चाहते हैं, मोक्ष मार्ग पर चलना तो कोई विरला ही चाहता है।

प्रधान भी उस पर चलना नहीं चाहता। वह जहर खाकर मर जाना चाहता है। पर मरता नहीं है। सोचता था खाते ही मर जाऊंगा-तालपूट जहर है-वह तो अपना काम करेगा ही। परन्तु जहर भी अपना काम नहीं करता। वह गले मे फांसी लगा कर मरना चाहता है। रस्सी बांधता है-पर वह टूट जाती है। बंधती ही नहीं। उसकी नजर अपनी तलवार पर जाती है- वह म्यान मे से तलवार निकाल कर अपनी गर्दन पर चला देता है, पर वह भी काम नही करती, सोचता है-आखिर यह हो क्या गया है? सभी मुझसे रुष्ट कैसे हो गये हैं? मैं अपमान सहन नहीं कर सकता, मैं मरना चाहता हूं, पर मरने के लिये भी जो साधन जुटाता हूं वे भी असफल हो जाते हैं। वाडे मे घास की गजी लगी हुई थी-वह उसमे आग लगा कर बैठ जाता है, पर आग भी पानी हो जाती है-वह जलता नही है। यह कैसा जादू हो गया है? कुछ समझ नही पडता है। अब वह कुए मे गिर कर मरने की सोचता है। पास ही एक शिला पडी हुई है-उसे अपने गले मे बांध कर कुए मे गिरने का वह विचार करता है-आगे क्या होता है यथावसर कहा जायगा।

१-११-६८

[१२३]

धर्म भव सागर से पार उतारने वाला है। धर्म की आराधना करने वाला ही मोक्ष मे जा सकता है।-

राग नुं वृक्ष कदि नव रोपे।
मोह माया ने ते जीव रोके
जाय जनमने जीती, जेने धर्म ध्यान मां प्रीति।...

ज्ञानी कहते हैं जो जीव धर्म का पालन करते हैं वे ही राग और द्वेष को समूल नष्ट कर सकते है। कर्म का मूल राग और द्वेष ही है। मूल ही नष्ट हो जाय तो फिर संसार रूपी वृक्ष कैसे लहलहा सकता है? मोहमाया, राग-द्वेष, विषय और कषाय को रोकने वाला धर्म ही है। अनादि काल से आत्मा भ्रान्ति वश विकार मे ही मस्त रहा है, समकित में आया ही नही है। जो जीव समकित में आ जाते हैं वे मोक्ष के निकट पहुंच जाते हैं। परन्तु जो मिथ्यात्व मे ही रहते हैं वे संसार में ही भटकते रहते हैं। मोक्ष का दरवाजा उनके लिये कोसों दूर रहता है।

पौटिला देवरूप में प्रधान को धर्म समझा रही है। हे प्रधान! तू मोक्ष की तरफ जा, संसार को छोड दे, संसार में रह कर सुख की इच्छा करना पानी को मथ कर मक्खन निकालने जैसी बात है—उसे छोड और तत्व को समझ। नौ तत्वों में प्रतीति कर। संवर, निर्जरा और मोक्ष को उपादेय समझ कर ग्रहण कर, हेय को हेय समझ कर उसे छोड दे। इस तरह वह प्रधान को समझाती है, पर प्रधान समझता नहीं है। पौटिला उसका हृदय परिवर्तन कर देती है। अब वह मरना चाहता है, पर मर नही पाता है। वह जहर खा लेता है, गले में फांसी लगा लेता है, तलवार से मरना चाहता है, आग में जल जाता है, फिर भी मरता नही है। अपमान युक्त जीवन से तो वह मरना श्रेष्ठ समझ रहा है। अब वह गले में शिला बांध कर कुए में कूद पडता है, पर कुए का भी पानी सूख जाता है। वह सोचता है—यह क्या हो रहा है? मौत भी मुझ से भाग रही है? वह भी मुझे अपनाना नहीं चाहती। विचार-मग्न हो वह बैठ जाता है। आंखों से अश्रुधारा वह निकलती है।

मनुष्य का अपमान हो जाता है तो उसकी आंख में से आंसू आ जाते हैं, पर वही जब पाप कर बैठता है तो उसकी आखों में आंसू कहा होते हैं?

प्रधान विचार मग्न बैठा है। देव पौटिला का रूप धारण कर आता है और कहता है—प्रधान! क्या सोच रहे हो? सामने से हाथी चिघाडते हुए आ रहा है, दो दिशाओं में भयंकर दावानल जल रहा है, तीसरी दिशा मे समुद्र उछालें मार रहा है, ऐसी स्थिति में वह आदमी कहां जाय? कौन उसकी रक्षा कर सकता है? प्रधान कहता है—भयभीत मनुष्य को चारित्र का ही शरण है। क्षुधातुर को अन्न का, प्यासे को पानी का, रोगी को औषधि का, मार्ग मे थके हुए पथिक को वाहन का, पानी में डूबने वाले को नाव का सहारा होता है। परन्तु संयमी को इनमे से कोई भय नहीं होता क्योंकि उसको मृत्यु का तो डर ही नही होता। मृत्यु भय के अभाव में अन्य सब भय नष्ट हो जाते है।

देव ने कहा—तो तू आर्तध्यान क्यों कर रहा है? क्यो नही मुनि मार्ग को स्वीकार कर लेता?

प्रधान कहता है—मै तैयार हूं। धर्म ही एक मात्र शरण है। संसार मे जलता हुआ प्राणी संयम मे ही शांति अनुभव कर सकता है।

देव कहता है—मै पौटिला हूँ, मर कर देव बनी हूँ। मै तुझे प्रतिवोध देने आई हूं। तू अव भी धर्म को समझ और उस मार्ग पर प्रयाण कर दें।

प्रधान समझ गया कि यह पौटिला की ही करामात है। उसीने मुझे वचाया है। मुझे अव संयम स्वीकार कर लेना चाहिये। इसमे मुझे विलम्ब नही करना चाहिये।

पौटिला के रूप मे जो देव आया— वह अदृश्य हो गया। जैसे आया था वैसे ही चला गया। प्रधान को विचार करते करते जाति स्मरण ज्ञान हो जाता है। वह अपने पूर्व भवो को देखने लगता है। जिसे यह जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है। वह अपने लगा तार ९०० संज्ञी पंचेन्द्रिय के भवोको देख सकता है। वीच मे एक भी भव दूसरा—असंज्ञी का आ जाता है तो उसका देखना रुक जाता है।

समाधि के जो १० वोल कहे है—उनमे से दूसरा जाति स्मरण ज्ञान भी है।

उत्कृष्टा नवसे भव लगता
देखे संज्ञी पंचेन्द्रियना ठीक रे प्राणी।
आयुष्य जाणे आप परायु,
मतिज्ञानी मंगलीक रे प्राणी।
चित्त समाधि हुवे दस बोले।

जाति स्मरण ज्ञान से चित्त समाधि हो जाती है। मै कौन हूँ? मैं आत्मा हूँ, चैतन्य हूं। असंख्यात प्रदेशी हूँ—मै सिद्ध जैसा हूँ। जड नहीं हूँ। निज वैभव का स्वामी हू। पूर्व भव का ज्ञान जव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा तो वह दीक्षा लेने को तैयार हो जाता है। घर में सव से कह देता है कि मै दीक्षित होने जा रहा हूं। राजा को खबर कर दी जाती है। दीक्षा महोत्सव की तैयारियां शुरु हो जाती है। क्या तुम भी तैतली की तरह दीक्षा ले सकते हो? क्यों संसार मे पड़े हुए हो? संसार असार है, दुख की खान है। भले ही आज तुम्हे भौतिक सुख उपलब्ध हों, पर वे भविष्य में तो अनन्त दुख ही देने वाले है। चक्रवर्ती भी ७ वी नरक मे चले गये, भौतिक सुखों का उपभोग करके भी क्या लाभ उन्होने उठाया? तुम भी भविष्य मे दुखी वनना चाहते हो या सुखी? सुखी वनना चाहते हो तो तैतली की तरह तुम भी दीक्षा के लिये तैयार हो जाओ। संसार मे सुख कही नही है। मरना और जीना—जीना और मरना यह क्रम वद करोगे तभी सच्चा सुख मिल सकेगा।

दूध का कटौरा पडा हुआ है—दूध मे केशर, कस्तुरी डाली हुई है—पर उसमें

जहर भी डाला हुआ है तो उस दूध को कौन पीना चाहेगा? ऐसे ही यह संसार भी ऊपर से बहुत सुन्दर दिखाई देता है, पर कदम कदम पर जहर बिखरा हुआ है। फिर भी इसे तुम कहां छोडने को तैयार होते हो? हंसते हंसते उसे पीते चले जा रहे हो? कैसा घोर अज्ञान है यह? परिणाम का विचार तक नहीं कर रहे हो?

सुबह होती है तो मां अपने लडके को जगाती है–उठ, सुबह हो गई है–वह गुदडी खीचती है। लेकिन लडका उसे ऊपर खीचता है, उसे नीद मीठी लग रही है। संसारी जीव सोते है तब भी मुनि जागृत रहते हैं–

सुता अमुणीणो सया, मुणीणो सया जागरन्ति।

गृहस्थ परमार्थ मे सदा नीद्राधीन रहता है जब कि मुनि सदैव जागृत रहते हैं।—

निशा जे सर्व भूतोनी तेमां जागृत संयमी।
जेमां जागे बधा भूतो, ते ज्ञानी मुनिनी निशा।

रात में जब सब सो जाते हैं मुनि उस समय भी जागृत रहते हैं। जब सारा संसार जागृत रहता है तब मुनि सोते रहते है। ज्ञानी और अज्ञानी मे यही अन्तर है। अतः तुम भी जागो, नहीं जागोगे तो तुम्हारा अमूल्य खजाना लूट लिया जायगा। परमाधार्मिक देवों की मार खानी पडेगी। वे सारे शरीर को चाकू से चीर कर नमक–मसाला भरेगें और गरम गरम पानी में उकालेगें। क्या तुम ऐसे भयंकर दुखों को मोल लेना चाहते हो? संयम मार्ग पर चलोगे तो इन दुखो से वच कर सच्चा सुख प्राप्त कर सकोगे। वीतराग दशा जैसा उत्कृष्ट सुख और कहां मिल सकता है? चक्रवर्ती और इन्द्र भी उनको नमस्कार करते है।

एगंत सुही मुणी वीयरागी

पाप से निवृत्ति लेना और संयम मे प्रवृत्ति करना ही चारित्र है। चार अंग दुर्लभ कहे गये हैं–

चउरंगं दुल्लहं नच्चा संजमं पडिवज्जए।
तवसा धुय कम्मंसे सिद्धे हवइ सासए।

चार अंग दुर्लभ है– १ मनुष्यत्व, सूत्र सिद्धान्त का श्रवण करना, उन पर श्रद्धा करना और संयम में पुरुषार्थ करना–ये चार बोल दुर्लभ कहे गये है, यह जानते हो तो संयम क्यों नहीं अंगीकार कर लेते हो? श्रद्धा है तो उसे कार्य रूप मे परिणत क्यों नहीं करते हो? दृष्टि छोटी मत रखो, दीर्घदृष्टि से विचार करो। यह जो मानव देह मिला है वह तो अनंत भव मिटाने के लिये मिला है, यह क्यों नहीं समझते हो?

कोई पांच के पचीशे, कोई त्रीस के बत्तीस
चालीस ने चुकावी आखर जवु नक्की छे
व्यासी अगर नवाणु जनम्यो जरूर जवानुं
दीपक बधा बुझावी आखर जवुं नकी छे।
प्रभुने तुं ले पीछानी, आखर जवुं नकी छे।

यहां कौन रहने वाला है? जाना तो तय है ही। कितनी उम्र में जाओगे? एरोप्लेन में या ट्रेन में? खाते-पीते या सोते सोते ही चले जाओगे? कुछ कहा नहीं जा सकता। तो फिर क्या कर रहे हो? क्यों नहीं जागृत होते हो? भगवान ने तो यही कहा है कि

समयं गोयम मा पमायए

समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। जीवन भी अशाश्वत है—

रह्या न राणा राजिया, सूर नर मुनि समेत।
तूं तो तरणा तुल्य छो, चेत चेत नर चेत।
तन धन ते तारा नथी, नथी प्रिया परणेत।
पाछल सहु रहेशे पड्या चेत चेत नर चेत।

इस ससार में बड़े बड़े राजा-महाराजा भी नही रहे-देवता भी नही रहे, चक्रवर्ती और तीर्थंकर भी नही रहे, सभी को एक दिन तो जाना ही पडा, तो तू कैसे रह सकेगा? तुम्हारी हालत तो तिनखे जैसी है। हवा का झौका आया नही कि उड जाओगे। तुम्हारी क्या शक्ति है? फिर क्यों अभिमान करते हो?

संसार दुख मे खारा और सुख मे मीठा लगने लगता है। गर्भावस्था मे रहा हुआ जीव उस पीडा से मुक्त होना चाहता है। हे भगवान! कब मै इस पीडा से मुक्त बनूगा? मां सोचती है- हे भगवन! कैसे मै इस भयंकर पीडा से मुक्त बनूगी। गर्भावस्था का दुख कितना भयंकर है? पेट मे गर्भ आम की तरह उल्टा लटकता रहता है? प्रसव की पीडा कितनी भयंकर होती है? बच्चा पैदा हो जाता है और माता के मुंह मे गुडका पानी गया नही कि संसार मीठा लगने लग जाता है। जीव पेट मे से बाहर आता है कि सब दुख भूल जाता है। गर्भ में जीव भगवान को याद करता है, पर बाहर आते ही वह उसे भूल जाता है। स्कूल से आता है तो मां को याद करता है, मां कही दिखाई नही देती है तो चिल्लाता है, पर जैसे ही औरत आ जाती है वह मां को भी भूल जाता है। अब वह औरत का हो जाता है। मां से कहता है-उसे कुछ कहना नही-यही संसार है। जिसमें सार कुछ नही है, फिर श्रृंखला बद्ध कडियां एक के बाद एक उलझती जाती है। धर्म की तो याद ही नही आती। बंधुओ! अनादि काल

से जीव यही करता आ रहा है। करने योग्य तो वही है जो आज तक नही किया है—

अपूर्व अवसर एवो क्या रे आवशे।
क्यारे थइशुं बाह्यान्तर निग्रंथ जो।

निर्ग्रन्थ कब बनोगे? इस भव में या परभव मे? परभव को कौन जानता है? करना है वह अभी करलो। धर्म को भविष्य के लिये मत रखो।

सारूं जीवन खोयुं रंग अने राग मां।
दिवसो बितावी दीधा खोटी खोटी वात मां।
हवे दुख थाये पस्तावानो ना पार छे।
जीवनना राहे मलता पथिको नो साथ छे।

सारा जीवन रग–राग मे व्यतीत कर दिया। वह ऐसा पहनता है, मैं भी वैसा ही पहनू–देखादेखी करते हो। गुप्त अगो को भी खुला रखने लग गये हो। कैसी वेष–भूषा चली है? सारा दिन एक दूसरे की नींदा मे व्यतीत कर देते हो। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा के सिवाय और क्या करते हो? दिन भर स्त्री कथा–भात कथा, देश कथा और राज कथा–करते रहते हो, धर्म कथा कहा करते हो? सच पूछो तो इस दुनिया में सभी अनाथ हैं। भले ही लम्बा–चौडा कुटुम्ब परिवार हो, धन–वैभव और मकान हो, लेकिन परमार्थ मे सब अनाथ है। जिसने भगवान को पाने के लिये पुरुषार्थ किया है वही सनाथ है बाकी सभी अनाथ हैं।

रात की १२ बज गई है, पर मजा बहुत आ रहा है? क्या कर रहे हो? ताश खेल रहे हैं। चायपानी कर रहे हैं? यों राग–रंग में मजा मान रहे हो, पर सामायिक या ध्यान करने का विचार कहां करते हो? ऐसा हो जाय तो फिर क्या चाहिये? आत्मा सत्मार्ग मे जागृत हो जाता है।—

दुहओ जीवियस्स परिवंदण–माणण पूयणाए।

मान–सन्मान मे मत पडो। सत्य मे डूब जाओ। तुमने जो मार्ग पकड रखा है वह सच्चा है या हमने जो पकड रखा है, वह सच्चा है? हमारा मार्ग सच्चा है तो उस मार्ग पर तुम क्यो नहीं आते हो? क्या कहने के लिये ही सच्चा है या करने के लिये भी है? कब तक मोह में पडे रहोगे? संसार तो दावानल की तरह हैं। उसमें रहोगे तो जल जाओगे, बच नहीं पाओगे। बचना है तो संयमी मार्ग पर आजाओ। उसमे जो आनंद है वह अन्यत्र कहीं सुलभ नही होगा।

एक आदमी जंगल में चला जा रहा है। चलते चलते उसे जोरो की प्यास लग जाती है। पानी की तलाश मे वह घूमता है। सामने एक आदमी

दिखाई देता है। वह उससे पूछता है–भाई, इधर कहीं पानी मिल सकेगा? वह कहता है–देख, सामने जो वड का पेड है वही पानी की प्याऊ है। तुम वहां जाकर पानी पी सकते हो। यह सुनते ही वह खुश हो जाता है। वह उस पेड के पास जाता है और ठंडी छाया में वैठकर पानी पीता है। थोडी देर वाद आश्रम का एक आदमी आता है और कहता है–भाई, भोजन तैयार है, उठो, आश्रम मे चल कर खाना खालो। उसे तो भूख लग ही रही थी। वह खाना भी खा आया। आराम करने के लिये पलंग भी उसे मिल गया। थोडी देर वहां सो भी गया–प्यास और भूख भी मिट गई। आराम भी कर लिया। वहां दूसरा आदमी आता है और उससे कहता है–चलो, गांव चलना है न? रात हो जायगी तो जानवरो का डर हो जायगा–अतः जल्दी करो। यह सुन कर वह खडा हो जाता है। आखिर तो उसे अपने गांव जाना ही है। वीच में उसे यह विश्राम भले ही मिल गया हो, पर जाना तो उसे अपने घर ही है। ऐसे ही हम भी तुम्हें जगाने आये है–सजग हो जाओ, आगे मत जाओ–वहां भय है, पर तुम कहां उठते हो? तुम सजग हो मुनि वन जाओगे तो हम तुम्हारे पैरो मे पडेगे। अव देर क्यों करते हो? स्नेहपाश मे क्यों वंधे हुए हो। एकदिन तो उसे तोडना होगा ही। वंधन से मुक्त होने का यही भव है। दूसरा कोई तुम्हे वधनो से नहीं वांधता, तुम स्वय बंध गये हो। धर्म प्रिय लगता है तो उसे स्वीकार कर लो–अव किसकी इंतजार करते हो? संयम मार्ग जैसा पवित्र मार्ग दूसरा नही है। हम तुम्हे ऊपर चढ़ने का मार्ग वता रहे है, फिर तुम क्यो नही सुनते हो?

रजकण तारा रखडशे जेम रखडती रेत।
पछी नर तन पामीश क्यां चेत चेत नर चेत।

दलपतराम कवि ने तो कमाल कर दिया है। एक काव्य मे ही कितने भाव भर दिये है? चैतन चला जाता है तो यह शरीर राख कर दिया जाता है। श्मशान भूमि में कई आदमियों को जाते हुए देखा होगा। एक दिन यह शरीर भी वहीं जाने वाला है। फिर दुबारा यह शरीर मिलने वाला नहीं है। मिल भी गया तो अनार्यभूमि मे पैदा हो जाओगे, धर्म न पा सकोगे तो क्या लाभ हो सकेगा? सुरा और सुन्दरी मे ही रह जाओगे तो दुर्गति में चले जाओगे। ऐसा मौका कभी नहीं मिल सकेगा। इस तरह तुम्हारी नींद उडाने वाले सद्गुरु कहा मिलेगे? फिर भी तुम जागते कहां हो?

कही कही ने थाक्या गुरुवर आव्युं न आतम ज्ञान
अलगुं न कर्युं श्रेयने माटे अंतरनुं अभिमान।
जगाड्या शुं जागता नथी, तजवानुं त्यागता नथी।

अक्सर माता-पिता अपने लडके को कह कह कर थक जाते है। पर लडका सुनता ही नहीं है। यही हाल हमारा भी हो रहा है। गुरु आत्मज्ञान बता बता कर थक गये, पर तुम पर की ही चिन्ता मे पडे हुए हो। स्व मे आने की तो सोचते ही नही हो। गुरु तो कह कह कर थक गये, पर तुम कहा आचरण करते हो? अभिमान भी कहा छोडते हो? रोज उपाश्रय मे क्या जाना? जब भी कहना होता है चला जाता हू – मेरे जैसा दूसरा कौन बोल सकता है? ऐसा मन मे अभिमान रखते हो तो आगे कैसे बढ सकोगे? आत्मा का उद्धार करना है तो अभिमान छोड दो और ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप में लीन हो जाओ।

तैतली निरतिचार संयम लेने को तैयार हो जाता है। अब उसे ससार मे मजा नहीं आता है।

ज्यारे आतमनो दिवडो जागे,
त्यारे वैभव अलखामणा लागे।
लागे खारो संसार लागे प्यारो अणगार
अने मुक्ति ना सुखनी रढ लागी
जाग्यो रे आतमा....!

जब आत्मा जागृत हो जाती है तो संसार खारा प्रतीत होने लगता है। और अणगार धर्म श्रेष्ठ मालूम होने लगता है। एरिये की तरह यह ससार है। जहा से खावो वही से कडुवा लगता है। जहर वाले को नीम के पत्ते भी मीठे लगते हैं। घी जहर उतारने वाला है अत: वह उसे कडुवा लगता है। यह जहर का ही प्रभाव होता है। इसी तरह ससारी जीव को भी धर्म अप्रिय लगता है और ससार प्रिय प्रतीत होता है। यह जहर का ही परिणाम है। इस जहर को हटाना है तो पुरुषार्थ करना पडेगा, धर्म को जीवन मे उतारना होगा तभी यह जहर दूर हो सकेगा। पौटिला तैतली को समझा देती है। तैतली सयम लेने को तत्पर हो जाता है। आगे क्या होता है? यथा समय कहा जायगा।

ता. २-११-६८

[१२४]

पौटिला ने प्रधान को समझा दिया। वह उसे ससार की भयकरता बताती है। चारो तरफ से यह ससार जल रहा है। सामने से एक पागल हाथी जीव के पीछे दौडता चला आ रहा है। ऐसी स्थिति मे उसकी रक्षा कौन कर सकता है?

पेले बोले भूख्यानें जेम भोजन नो आधार ।
तेम संसारे डुबता जीवने दया धरम नो आधार ।
बीजे बोले तरस्याने जेम पाणी नो आधार,
तेम संसारे डुबता जीव ने दया धरम नो आधार ।

भूखे को भोजन का आधार होता है ।

अरब का राजा खलीफा बडा दयालु था । पर उसका लडका बडा कंजूस निकला । वह अपने खजाने को ही देखा करता था, किसी को एक पैसा देना भी उसे बुरा लगता था । एक दिन एक लुटेरा उसके खजाने को लूटने आता है । वह भी उससे लडने को तैयार होता है, पर कोई सैनिक लडने को तैयार नहीं होता । क्योंकि वह वेतन तो किसी को देता ही नही था । लुटेरा उसे कैद कर लेता है और जेल में डाल देता है । खलीफा कहता है—मुझे माफ कर दो । लुटेरा कहता है— मैं तुझे जो प्रिय है, वह सब देने को तैयार हू, तेरा सारा खजाना मैं तेरे सामने रख देता हू । लेकिन याद रखना और कुछ भी मैं देने वाला नही हूं । लुटेरे ने उसका सारा खजाना जेल मे रख दिया, पर वह तो भूख और प्यास से घबराने लगा । तीन दिन हो गये । पेट मे चूहे कूदने लगते—है—

भूख रांड भूंडी, आंख जाय उंडी ।
पग थाय पाणी, मोढे न आवे वाणी ।

आठवें दिन वह लुटेरा आया और बोला—क्यों भाई मजे मे तो हो ?

खलीफा बोला— मुझे खाने को भोजन और पीने को पानी दो । उसके बिना मैं तो मरा जा रहा हू ।

लुटेरेने कहा— जो तुझे प्रिय था वह तो सब दे दिया है, अब और क्या माग रहा है ? लोगो को लूट कर जिस खजाने को इकट्ठा किया उसी से भूख और तृषा भी क्यों नही मिटा लेता है ? आखिरकार खलीफा भूख से तडप तडप कर मर जाता है ।

भूखे को भोजन का, प्यासे को पानी का, नदी मे नाव का और थके हुए पथिक को जैसे ठंडी छाया का आधार होता है, वैसे ही जब चारो तरफ से दावानल जल रहा हो तब एक मात्र चारित्र का ही आधार होता है । धर्म ही शरण भूत होता है, दूसरा कोई आधार नहीं हो सकता । प्रधान जब यह समझ लेता है तो पौटिला अदृश्य हो जाती है ।

प्रधान को जातिस्मरण ज्ञान हो जाता है । जिसमें वह अपना पूर्व देखने लगता है । उसने अपने ज्ञान मे देखा कि—जम्बू द्वीप मे तीन क्षेत्र—भरत, इरवत और महाविदेह क्षेत्र ही कर्म भूमि के क्षेत्र है, जहा मनुष्य रहते है—शेष ६ क्षेत्रो में—१ हेमवय

२ हिरण्यवय ३ हरिवास ४ रम्यकवास ५ देवगुरु और ६ उत्तर कुरु–युगलिया रहते है। ये छहों क्षेत्र अकर्मभूमि के हैं।

कर्म भूमि मे रहने वाले ही मोक्ष में जा सकते है–अकर्मभूमि मे रहने वाले युगलिये मोक्ष मे नही जा सकते।

प्रधान ने जाना कि मै अपने पूर्व भव मे महाविदेह क्षेत्र मे पुंरगिरी नगरी का राजा महापद्म था। वहा मै एक स्थविर मुनि की वाणी सुन कर दीक्षित हो गया था। दीक्षा लेने के बाद मैंने चौदह पूर्व का अभ्यास किया था। वहां से पंडित मरण कर मै ७ वे देवलोक मे उत्पन्न हुआ। दूसरे देवलोक से ऊपर देवियां नहीं होती है। वहां से आयुष्य पूरा कर मै तैतलीपुर मे प्रधान रूप से उत्पन्न हुआ हू।

पूर्वभव का ज्ञान हो जाने से प्रधान अब संयम लेने को तैयार हो जाता है। वह प्रमदवन उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे आता है और वहां पडी हुई शिला पर बैठ कर स्वयं अपना लोच कर पच महाव्रत अगीकार कर लेता है।

शिला पर बैठे हुए जैसे जैसे वह अपने पूर्व भव के ज्ञान मे उपयोग लगाने लगता है वैसे वैसे उसके हृदयपटल खुलते जाते है और उसे केवलज्ञान हो जाता है।

अपने कर्मो को नष्ट करना है तो प्रबल पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा। ज्ञानी पुरुष कहते हैं– अगर तुम्हे अपनी आत्मा का भला करना है तो अपनी आत्मा को देखना शुरु करो, उसी की पहिचान करो –

आप आप मे रमी रह्यो, बंध्यो तुं आपो आप।
जिसको तू ढूंढ़त फिरे सो ही आपो आप।

आत्मा, आत्मा से ही खेल रहा है। छह द्रव्यों मे से कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है जो अपने स्वभाव से दूसरे में आ सके।

तैतली ऐसा विचार करते करते अपूर्वीकरण भाव मे आ जाता है। जो अप्रमादी होते हैं, वे ही अपूर्वीकरण में आ सकते है। प्रमादी को कहीं स्थान नहीं है। तैतली अपूर्वीकरण में आ जाता है और केवलज्ञान, केवल दर्शन का स्वामी बन जाता है।

ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना करते करते जीव २८ मोहनीय कर्म की प्रकृतियों को क्षय कर देता है। फिर वह क्रमशः ज्ञानावरणीय की ५ दर्शनावरणीय की ९ अंतराय की ५ प्रकृतियां एक साथ नष्ट कर देता है। इस प्रकार चारों घनघाती कर्म नष्ट हो जाने पर केवल ज्ञान और केवलदर्शन प्रकट हो जाता है। केवल ज्ञान पैदा हो जाने पर जीव सब वस्तुओं को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जानने लग जाता है।

अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्म गण्ठिविमोयणट्ठयाए
तप्पढमयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठवीसइविहं
मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ पंचविहं नाणावरणिज्जं
नवविहं दंसणावरणिज्जं पंचविहं अन्तराइयं ए ए
तिन्निवि कम्मं से जुगवं खवेइतओ पच्छा अणुत्तरं
कसिणं पडिपुण्णं निरावरणं वितिमिरं विसुद्धं
लोगालोगप्पभावं केवलवर नाण दंसणं समुप्पादेइ ।

मति, श्रुति, अवधि और मनपर्ययज्ञान तो क्षयोपशम जनित ज्ञान है– होकर मिट भी सकते हैं । परन्तु केवल ज्ञान होकर मिटता नहीं है । ऐसा पूर्ण ज्ञान हर एक आत्मा मे है, पर उस पर आवरण इतने आ गये है कि वह उनसे दब गया है । यह आवरण हटाना चाहते हो तो प्रवल पुरुपार्थ करना पडेगा । किसान पुरुषार्थ करता है तो खेत मे से धान पैदा करता है । तुम भी मोक्ष के लिये पुरुषार्थ करोगे तो वह अवश्य प्राप्त कर सकोगे ।

तैतली सर्वज्ञ हो जाता है । अव उसे इन्द्रियज्ञान की जरुरत नही रहती । उसे प्रतिवोध देने वाली पौटिला तो देवलोक में ही वैठी है, पर तैतली तो उससे भी आगे निकल गया है ।

प्रमदवन में तैतली को केवलज्ञान हो गया । आकाश में देवदुदुभी वज उठी । सुगंधित द्रव्यों की वर्षा होने लगी । लोगों को जब यह मालूम हुआ कि तैतली प्रधान ने दीक्षा ले ली है और उसे केवलज्ञान हो गया है तो वे उनके दर्शनार्थ आने लगे । कनकध्वज राजा भी प्रधान से क्षमा मगने आता है ।

तैतली ने तो अपना ध्येय प्राप्त कर लिया, हम कब प्राप्त करेंगे ? कितने भव और करने पडेगें ? हे भगवन ! कव हम भी मोक्ष में पहुंचेगें ? ऐसी मांग भी कभी करते हो या धन-दौलत की ही करते हो ?

राजा कनकध्वज अपनी सवारी के साथ आता है और तैतली से क्षमा मांगते हुए कहता है– मैंने आपका अपमान किया है, मुझे क्षमा कर दें । लेकिन तैतली तो समझता है कि दोष किसका था ?

कागल तणी होडी वडे सागर कदि उतराय ना ।
चितरेल मोटी आग थी भोजन कदि रंधाय ना ।
जल जल तणा स्मरण कर्ये जल विण तृषा छिपाय ना
भोजन तणी वातों करियेथी लेश पेट भराय ना ।

बच्चे कागज की नाव बना कर पानी में तिराते हैं । क्या उससे तिरा जा सकता है ? लेकिन लडका खेलने में ही सारा दिन निकाल देता हैं । तुम भी

संसार मे रह कर ऐसा ही खेल खेल रहे हो । कव तुम यह खेल वंद करोगे और धर्म का आचारण करने लगोगे ?

ज्ञानी कहते है, बस करो, अब यह खेल मत खेलो और स्वरूप को समझो । तुझ मे जो सुख भरा पड़ा है उसकी अनुभूति कर । जड उसकी अनुभूति नही कर सकता । दूधपाक (खीर) का वर्तन भरा पड़ा है । अंदर चम्मच फिरा रहे हो, पर क्या वह उसका स्वाद ले सकता है ? शक्कर वरनी मे भरी हुई है, पर वरनी क्या जाने शक्कर का स्वाद ? अनुभूति तो चैतन ही कर सकता है ।

निज नाभि मां कस्तुरी भरी पण
हर्ष न पामे हरणी ।
दास दयो कहे धन दाट्युं घणुं पण,
धनवान न कहावे धरणी ।
वस्तु ने शुं जाणे व्याकरणी–२ ।

मृग की नाभि में कस्तुरी रहती है, वह उसकी सुवास मे घूमता रहता है, अपने पेट मे ही है, यह नही समझ पाता है । अगर वह यह समझ ले कि कस्तुरी तो मेरी नाभि मे ही है तो क्या फिर वह कभी दौड़ सकता है ?

तुम भी देश छोडकर परदेश आते हो, पर क्या इस तरह देश छोडने से मोक्ष मिल सकता है ? पैसा मिल सकता है, ससारी सुख मिल सकता है पर शाश्वत सुख कैसे मिल सकता है ?

मलशे तोये पैसाथी तो
संसारी सुख मलवाना
नितनित नवली तृष्णा जागे
अेवा सुख शुं करवाना
सघला दुख थी मुक्ति आपे पैसो के प्रभु !
कोण तमने व्हालुं बोलो पैसो के प्रभु !

पैसे विना कहां चलता है ? पर याद रखना पैसे से जो भी सुख मिलता है वह नश्वर ही होता है । आध्यात्मिक सुख उससे नही मिल सकता है । उसके लिये भले ही कुछ छोडना पड़े तो छोडने को तैयार हो जाओ, उससे जो सुख मिलेगा वह स्थायी सुख होगा । उसमे जो आनंद अनुभव होगा वह अन्यत्र कही नहीं मिलेगा ।

संसारिक सुखों मे संतोष कहां है ? मिल जाय तव भी संतोष कहा रहता है? दुख तो वना ही रहता है । है कोई दुनिया में ऐसा सुखी जिसे किसी तरह का दुख न हो ? पैसे वालो से तो एक साधारण मजदूर भी आराम की नींद लेता है । जहा तृष्णा है, वहां दुख है, जहा संतोष है वहीं सुख है ।

रोटी मांगने वाला भिखारी है, लेकिन जिसके पास एक लाख है और दो लाख माग रहा है– इच्छा कर रहा है– वह उससे भी बड़ा भिखारी है। तृष्णा का कभी अन्त आने वाली नही है। जैसे जैसे उस की पूर्ति करते जाओगे वैसे वैसे वह तो और अधिक बढती ही जावेगी।

एक महात्मा नदी के किनारे बैठे थे। एक सेठ उनके पास आकर कहता है– मैं अफ्रिका से आया हूं। मुझे सारे गाव को खाना खिलाना है, आप भी पधारो और मुझे कृतकृत्य करो। आज तक किसीने भी ऐसा नही किया वैसा मैं कर रहा हूं।

मुनि ने सोचा सेठ को अभिमान तो बहुत है, वे बोले– भाई, मुझे नही आना है।

सेठने कहा– यह कैसे हो सकता है? आप पधारोगे तो कभी मैं भी आपके काम आ सकूंगा।

यों पैसे वाले साधु को भी लोभ दिखाते हैं। कई साधु भी ऐसे होते हैं जो भाट–चारण की तरह पैसेवालों का गुणगान करते रहते हैं– 'कहो, देवाणुपिया, मजेमें तो हो?' साधु तो फक्कड होता है–ठंडा खाय और आकाश में उडा जाय, उसे खुशामद क्यों करनी चाहिये? मन में अभिमान भी क्यों आना चाहिये?

वन्दे चक्री तथापि न मले मान जो –

सन्त ने तो आने का मना कर दिया। लेकिन सामने एक बाई अपने चार लडको के साथ बैठी हुई थी, संत ने उसकी तरफ इशारा करते हुए सेठ से कहा– तुम उसे ले जाओ।

सेठ के कहने से वह बाई उसके साथ हो ली। उसने अपने लडकों को तो बाहर ही बैठाया और वह स्वयं पहले खाने को बैठ गई। सेठ परोसने लगा और बाई खाने लगी। देखते ही देखते वह सब खा गई-जितना भी माल बनाया गया था, उसने सब साफ कर दिया। जो सामान बचा हुआ था, वह भी खा गई। फिर भी उसकी भूख मिटती नही है। वह सेठ से कहती है खाने को दो, नही तो मैं तुम्हें खा जाऊंगी? सेठ घबरा गया। अब क्या करे? अभी उसके चार लडके तो बाकी ही है।

सेठ संत के पास जाता है, पीछे पीछे वह भी पहुंच जाती है। सेठ हांफता हुआ संत के चरणो में पडता है और कहता है– बचाइये–बचाइये।

संत कहता है– क्या बात है? घबरा क्यों रहे हो? सेठने कहा यह बाई तो सारा भोजन खा गई, कुछ भी नहीं छोडा। फिर भी इसकी भूख मिटी नही है। मुझे भी खाना चाह रही है। अब मैं क्या करूं? आप ही इससे बचाइये।

संतने बाई पर पानी छिडका तो वह शांत हो गई। अब उसकी भूख भी मिट गई थी। संत की अंजलि का भी कैसा प्रभाव होता है?

तुम भी तृष्णा मे पागल हो रहे हो। घर मे किस चीज की कमी है, यही

देखा करते हो, पर आत्मा में क्या नही है ? इसका भी कभी विचार करते हो ? तैतली ने इसका विचार किया तो वह केवली हो गया।

तृष्णा दूर करो और संतोष धारण करो। तृष्णा का खप्पर कभी भरता नहीं है।, अभी तो उसके चार लडके – क्रोध–मान–माया और लोभ बाहर ही खडे हैं। संतोष धारण करोगे तो सच्चे सुख को प्राप्त कर सकोगे। संत की एक अंजलि में जो बल है, वह तुम्हारे अढलक रुपयो मे भी नही है।

वाणी तो घणेरी पण वीतराग तुल्ये नाहि,
जिन वेण अन्य वेण अन्तर घणेरो हे।

अतः वीतराग मार्ग पर चलने को तैयार हो जाओ। राजा कनकध्वज तैतली के दर्शनार्थ आता है। वह प्रधान से क्षमा मांगता है।

भगवान से गौतम पूछते हैं–

खमावणयाए णं भन्ते जीवे किं जणयइ ?

भगवान कहते हैं–

खमावणयाए णं पल्हायण भावं जणयइ, पल्हायणभाव
मुवगए य सव्व पाण भूयजीव सत्तेसु मित्ती भावमुप्पाएइ
मित्ती भावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काऊण निब्भए भवइ।

क्षमा मागने से क्या होता है ?

आह्लादभाव पैदा होता है– आत्मा प्रफुल्लित बनता है। सर्व प्राणियों के प्रति मैत्री भाव पैदा होता है।

सारा संसार मित्र बन जाय तो फिर भय कैसे रह सकता है ? मित्र का अहित कौन सोच सकता है ? क्षमा से ही ऐसा भाव पैदा होता है।

कल चौमासी क्षमापना का दिवस है ? चुटकी बजाते चार मास निकल गये। दिन कैसे व्यतीत हो जाते हैं ? कुछ पता भी नही चलता है।

रहेवुं थोडु ने मोह जाजो थोडु रहेवुं ने मोह जाजो,
अेरी तारी काया नो रंग करमातो करमातो रे...रहेवुं...
आ रे संसारमां बहु बहु भमीया
लक्ष चोराशीना फेरा रे फरीया
तोये न आव्यो हजु आरो...रहेवुं थोडूं...

रहना थोडा और मोह ज्यादा है। दिन दिन पर्याये पलटती जा रही है– बाल – युवा और वृद्धावस्था होती जा रही है। संसार में खूब घूमे हो, भ्रम है तो परिभ्रमण भी है। भ्रम निकल जायगा तो परिभ्रमण अपने आप मिट जायगा।

अतः पर को छोड़ कर स्व में लीन हो जाओ। एकदिन तो ब्रह्मदशा पैदा हुए बिना नही रहेगी।

आ छे ब्रह्म दशा अेनी पाम्ये ना मोह मां पड़े।
अंत कालेय तेह राखी ब्रह्म निर्वाण मेलवे।

भ्रांति को मिटा देना ही ब्रह्मदशा है। आत्म भाव होने पर कोई मोह में नहीं पड़ता है। अन्त समय तक जिसकी ऐसी ही दशा रहती है वही निर्वाण पद पा सकता है।

तैतली केवली बन उपदेश देता है। सारी सभा उसे सुनती है। चौरासी के चक्कर में घूम आये हो, पर भव का अंत तो अभी तक नही आया है। कितने भव और करोगे? उसका अंत आयेगा भी या नही?

स्वार्थ सधाये त्यारे ममता बिछावे
सरी जतो स्वार्थ त्यारे मुकी दूर जावे
चार दिनों नी चांदनी ना जेवो प्यार छे
जीवन ना राहे मलता पथिकों नो साथ छे।

जब तक स्वार्थ रहता है तब तक तो तुम उनके बने रहते हो। स्वार्थ पूरा हुआ कि तुम अपने मां-बाप को भी भूल जाते हो। दुनिया में स्वार्थ का ही जाल बिछा हुआ है। कहीं से भी कुछ मिलने की आशा होगी तो उसे अपना कहते थकोगे नहीं, अन्यथा देखना भी नही चाहोगे। ऐसे स्वार्थी संसार मे क्यो पड़े हुए हो? तैतली की तरह तुम भी उसे छोड क्यों नही देते हो?

तीर्थंकर ही देशना देते है-ऐसी बात नहीं है। सामान्य केवली भी देशना दे सकते हैं। तैतली का उपदेश चल रहा है। आगे क्या होता है? यथावसर कहा जायगा

ता. ३-११-६८

[१२९]

तैतली संयम मार्ग पर आया तो उसे केवल ज्ञान हो गया। आत्मा में जब प्रबल पुरुषार्थ प्रकट होता है तो वह कर्मो को नष्ट कर शुद्ध बन जाता है। आत्मा अनादि काल से अशुद्ध बना हुआ है। कर्म का संयोग संसार है और वियोग हो जाना मोक्ष है।

ज्ञानियों ने कहा है- आत्मा अनादि है। कर्म भी अनादि है। विभाव में आकर आत्मा कर्मो को अपनी तरफ खीचता है और अपना संसार खडा कर लेता

है। जब यह विभाव भाव मिट जाता है और आत्मा कर्म रहित हो जाता है, तब वह कर्म पुद्गल स्कंध कहा जाता है। जब ये आत्मा से चिपक जाते हैं तब वे कर्म कहे जाते हैं।

आठ वर्गणा हैं–औदारिक–वैक्रिय–आहारक, तेजस, भाषा–श्वासोश्वास–मन और कार्मण वर्गणा। ये क्रमशः अनंतगुणी होती जाती है। जैसे रुई पिंजने से फैल जाती है, एक मन रुई कितनी जगह ले लेती है? और एक मन सोना कितनी थोडी जगह लेता है? इसी तरह औदारिक की कर्म वर्गणा भी फैली हुई है। लेकिन कार्मण वर्गणा बहुत सूक्ष्म होती है। वे दिखाई भी नही देती है। अनादि काल से ये आत्मा के साथ लगी हुई है। उसे निकालने का प्रयत्न कब करोगे? ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जैसे पक्षी अपने पंख पर पड़ी हुई मिट्टी फडफडाकर साफ कर लेता है तभी आकाश में उड़ सकता है, वैसे ही मोक्षार्थी जीव भी कर्म मल को दूर कर वहां जा सकता है।

तैतली का उपदेश सुनने कनकध्वज राजा भी आता है। उनकी धर्म–देशना चल रही है। आत्मा का उद्धार कैसे हो? यही बात वे समझाते हैं।

औदारिक के बाद कार्मण काचली न फोडो तब तक आत्मा का अखंड गोला बाहर नही आता है। राग-द्वेष का पानी रहता है तब तक वह चिपका रहता है। पानी सूख जाता है तो आत्मा भी अलिप्त हो जाता है। जो कर्म बंध जाता हैउसका भी अंत तो है ही–७० करौडा क्रोडी सागरोपम की सीमा बताई गई है। फिर भी उनका अंत क्यो नही आता? अंत यो नही आता कि कर्मो की परम्परा चालू रखते हो। जैसे चरखा कातते हो तो नई नई पूणियां कर सूत कातना चालू रखते हो, वैसे ही नये नये कर्म उपार्जन करते जाते हो अतः उनका अन्त कैसे हो सकता है? नये कर्म बांधना बंद कर दोगे तो एकदिन उसका अंत भी अवश्य हो जायगा।

अणगार बन जाओगे तो नये कर्म बंधना बंद हो सकते है। सच्चा पुरुषार्थ प्रकट होना चाहिये। भगवानने कहा है–अविरति सम्यग् दृष्टि जितनी निर्जरा करता है उससे अनत गुणी निर्जरा देश विरति करता है। उससे भी अनंतगुणी निर्जरा अप्रमत्त साधु करता है। यो उत्तरोत्तर निर्जरा बढ़ती ही जाती है। १० वे गुणस्थान मे ६ कर्म ही बंधते हैं। ११ वें गुणस्थान मे आत्मा सातावेदनीय ही बाधता है। यथा-ख्यात चारित्र का मजा तो देखो, और कोई कर्म वहां नही बधता, केवल सातावेदनीय ही रहता है। जीव समझे तो अकषाय भाव में आ सकता है। कोई भी आत्मा यह समझ कर अपनी आत्मा का उद्धार कर सकता है।

आज चौमासी पक्खी है, क्षमापना का दिवस है। आज क्षमायाचना करो और कल से फिर वही करने लग जाओ तो यह क्रम कैसे मिट सकेगा?

दस तरह का यति धर्म कहा गया है। उसमें पहला पाठ ही क्षमा का है। वही कच्चा है, तो आगे कैसे बढ़ सकोगे ? आज के समय में तो भगवान महावीर के सिद्धान्तों का ही हमें आधार है।

इस पांचवें आरे में साक्षात् अरिहन्त तो नही हैं। महाविदेह क्षेत्र में तो है, पर यहां कोई नहीं है। चौदह पूर्वधारी भी नही है, न गगन गामिनी विद्या ही है केवल एक ही आधार है– जिन वाणी का।–

नव में बोले श्रावक ने जेम साधुनो आधार।
दुर्गति मां पडता जीवने तेम दया धरम आधार।
दसवें बोले साधु ने जेम सूत्र नो आधार।
दुर्गति मां पडता जीवने तेम दया धरम आधार

जैसे भूखे को भोजन का, प्यासे को पानी का आधार होता है, वैसे ही श्रावक को साधु का आधार है। इसीलिये वह श्रमणोपासक कहा जाता है। साधु को सूत्र का आधार हैं। जो साधु यह कहें कि मैं सूत्रों को नहीं मानता हूं, तो वह कैसा साधु है ? क्या तुम उसे साधु कह सकते हो ? वीतराग वाणी का वफादार रहने वाला ही साधु है।

एक वार एक मुनि बीमार हो गये। सर्दी दूर करने के लिये वे गृहस्थ के घर से सूंठ का गांठिया लाये। मुनिने उसे घिस कर सिर पर लगा लिया। बचा हुआ गांठिया उन्होने अपनी कनपट्टी पर लगा दिया। प्रतिक्रमण से पहले वह बचा हुआ गाठिया गृहस्थ को वापिस कर देना चाहिये था। परन्तु वह मुनि उसे देना भूल गया। प्रतिक्रमण की आज्ञा लेते समय वह कान से नीचे गिर जाता है। साधु सोचता है, यह मैंने वापिस क्यों नहीं कर दिया ? भगवान महावीर को निर्वाण हुए तो अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं, अभी से स्मृति कमजोर होती जा रही है, तो आगे क्या होगा ? तभी से सूत्र–सिद्धान्त लिपिबद्ध किये गये।

भगवान के निर्वाण के ९८० वर्ष बाद सूत्र लिखे गये। भगवान महावीर के एक हजार वर्ष बाद भी पूर्वधर मुनि रहे थे, ऐसा भगवती सूत्र में पाठ आता है। पूर्वधर मुनियों ने तालपत्र पर ये सिद्धान्त लिखे थे। वे ही आज ३२ सूत्र के रूप में हमारे आधार है।

आज लोकाशाह की जयंती है। उस समय साधु भी शिथिल हो गये थे। जब वे शास्त्र लिख रहे थे तो लिखते लिखते उन्हें ऐसा विचार आया कि साधु का आचार तो ऐसा बताया गया है। एक सूई भी वे अपने पास नहीं रख सकते हैं, पर आज तो वे रुपये पैसे भी रखने लग गये हैं। वस्त्र और पात्र का तो ठिकाना ही नहीं है। वे शास्त्रों की डबल कोपी करते है। एक अपने पास रख लेते हैं और दूसरी यतिजी

को दे देते है । यथा समय उन्होने समाज को ललकारा कि यह तुम क्या कर रहे हो ? मूल सिद्धान्तों का पालन कर रहे हो या उनका भंग कर रहे हो ? अज्ञानी, अज्ञानी के सामने चाहे जैसा बोले तुम सच मान लेते हो ।

सो बोघा सो बोघली सो बोघाका बच ।
अज्ञानी बेठो गप्पा हां के, जे बोले ते सच्च ।

ज्ञान हो तो भूल पकड सकते हो, नही तो हां जी, हां जी करते रहो, उससे क्या हो सकेगा ?

भगवती सूत्र को चाहे जितनी बार बाचो, हर समय नई नई पर्यायें खुलती जायगी । लेकिन शब्द ज्ञान ही न हो तो उसका रहस्य कैसे समझ मे आ सकेगा ?

एक राजा प्रतिदिन एक पंडित से श्लोक सुनता है और बदले में दो सोना मोहर उसे दे देता है । पंडित किसी दूसरे विद्वान को राजा के पास नही आने देता है।

कुछ दिनो बाद पंडित तीर्थयात्रा पर जाना चाहता है, पर यह सोच कर वह चिन्तित हो जाता है कि मै न रहूंगा तो कोई दूसरा पडित मेरी जगह राजा को सुनाने आ जायगा । मेरी आजीविका बंद हो जायगी । पंडित चिन्तित रहता है । एक दिन राजा उससे पूछता है– आजकल आप चिन्तित क्यो रहते है ? पंडित बोला–मै यात्रा करने की सोच रहा हूं, पर मेरे अभाव मे आप किससे सुनेगे, यही सोच कर मै चिन्तित रहता हूं । राजा ने कहा – आप जाइये, इसमे चिन्ता करने जैसी कोई बात नही है। मैं आपने जो सुनाया है, उसका ही मनन करता रहूंगा ।

पंडित को आन्तरिक भय तो यह है कि कोई दूसरा पंडित आ जायगा तो राजा का मत परिवर्तन कर देगा । फिर वह मेरी बात नहीं सुनेगा ।

तीर्थंकर के समय में भी प्रतिवादी तो होते ही थे । लेकिन उनके साधु इतने तैयार रहते थे कि वे उनको समझा दिया करते थे । लेकिन आज ऐसे श्रावक और साधु भी कहा है ? सूत्र–सिद्धान्तो को समझने की कोशिश करोगे तो तुम भी वैसे अवश्य वन सकोगे ।

पडित तीर्थयात्रा पर जाता है, पर जाने से पहले वह राजा को एक श्लोक वना कर दे जाता है । वह कहता है–कभी कोई दूसरा पंडित तुम्हें सुनाने आ जाय तो तुम उससे इस श्लोक का अर्थ पूछना । अगर वह सही अर्थ वता दे तो उससे सुनना, अन्यथा उससे वात भी मत करना ।

राजाने कहा– इसका अर्थ तो वता जाइये ?

पडितने कहा– इस श्लोक का अर्थ होता है– 'मंझले पर वैठी हुई विल्ली चना खा रही है ।'

पंडित गांव पर चला गया। राजा के पास जो भी आता उससे वह इसी श्लोक का अर्थ पूछता। कोई भी पंडित का बताया हुआ अर्थ नहीं कहता, अतः राजा उससे बात भी नही करता। एक महीना गुजर गया। इतने में एक जैन साधु वहां आ गये। वे चार ज्ञान के स्वामी थे। राजाने उनके सामने भी अपना श्लोक कह सुनाया और उनसे अर्थ बताने का कहा। मुनि तो मनोगत भावों को जानने वाले थे। उन्होंने कहा– राजन्! इसका अर्थ तुम इस प्रकार समझ बैठे हो– मंझले पर बैठी हुई बिल्ली चना खा रही है।' राजा बोल उठा–बराबर है, आपने ठीक बता दिया है। अब मैं आपका उपदेश सुनने रोज आया करूंगा। राजा को मुनि जड और चैतन की बात सुनाते हैं। आज से पहले कभी उसने ऐसी बात नहीं सुनी थी। उसे बड़ा आनंद आने लगा। एक मास पूरा होगया। मुनि विहार करने लगे। राजा ने ठहरने की प्रार्थना की, पर साधु ने कहा–हमारा ऐसा ही नियम है–हम कही भी २९ दिन से अधिक नही ठहर सकते हैं। विहार करने से राग और द्वेष का बंध नही होता है।

गुरु के प्रति प्रशस्त राग साधक को हो सकता है, पर गुरु किसी के प्रति राग भाव नही रखते हैं।

राजा कहता है– मै आपको क्या भेंट दूं? आपने तो मुझे अमूल्य ज्ञानामृत का पान कराया है।

मुनि कहता है– हमको कुछ नहीं चाहिये। हम बदले मे लेने की इच्छा नही कर सकते है।

राजा कहता है– तो, मैं क्या करूं? मेरे लिये कुछ आज्ञा फरमाइये।

साधु कहता है– अभ्यास करो, भाषाज्ञान सीखो। तुम भी आज लोगस्स बराबर बोल नहीं सकते हो तो उसका अर्थ कैसे कर सकोगे? पहले पढो और फिर उसका स्वयं अर्थ करो।

श्रावक को तो ऐसा तैयार रहना चाहिये कि कोई भी साधु उन्हें उल्टा न समझा सके। श्रावक को अम्मापिया ऐसे ही नहीं कहा गया है। ज्ञान सीखो, सूत्र-सिद्धान्त पढोगे तो उसका रहस्य समझ सकोगे। अन्यथा कैसे समझ सकोगे?

राजा ने पढ़ने का नियम ले लिया। अब वह भाषा ज्ञान सीखता है। तुम भी अर्धमागधी क्यों नही सीखते हो?

जैसे लोकाशाहने सूत्र लिखते लिखते यह समझ लिया कि धर्म तो कुछ अलग ही है, वैसे ही राजा भी भाषा ज्ञान सीखता है और तब उस श्लोक का अर्थ करता है तो उसे मालूम होता है कि उसका अर्थ तो कुछ दूसरा ही निकलता है। माले पर बैठी हुई बिल्ली चना खा रही है, यह अर्थ पंडित ने मुझे कैसे बताया है?

तीन महीने बाद पंडित वापस आता है तो राजाने उसे बुला कर कहा–तुमने

इस श्लोक का मुझे ऐसा अर्थ कैसे बताया ? जरा समझा कर बताइये ?

पंडित समझ गया कि राजा को किसीने सिखा दिया है। अब मेरी दाल गलने वाली नहीं है। वह अपनी भूल स्वीकार कर लेता है। तुम भी ऐसे ज्ञानी बनो। तुम्हारे यहां तो ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है कि तुम शास्त्र न पढ़ सको। फिर क्यों नही पढ़ते हो ?

लोंकाशाह ने जब यह ललकारा कि धर्म तो अहिसा और संयम मय है। आज जो तुम कर रहे हो, वह सब झूठा है। उन्होने ४५ साधुओं के साथ सद्धर्म का प्रचार किया। लोकशाह ने किसी धर्म की स्थापना नहीं की उन्होने तो धर्म में क्रांति की, जो विकार आ गया था उसे दूर किया था। अंगूठी का जो नग घूम गया था, वह नग लोकाशाह ने ढ़ूंढ निकाला था। इसीलिये लोग उन्हें ढूढिया कहने लग गये थे। स्थानक मे जाकर बैठने से वे स्थानकवासी हो गये। कोई डेरा मे बैठे तो वे देरावासी हो गये। बासी मत बनो, ताजा बनो। सच्चा क्या है ? और झूठा क्या है ? इसको समझो। धर्मवीर लोकशाह का हमारे पर महान उपकार है। उन्होंने जैसा पुरुषार्थ किया वैसा अगर हम भी करेगे तो धर्म प्रचार के साथ साथ अपनी आत्मा का भी कल्याण कर सकेगें।

आज चातुर्मासिक क्षमापना दिवस भी है। मन वचन और काया से किसी का भी जानते-अजानते दोष हो गया हो तो चौमासी संबंधी क्षमायाचना।

ता. ४-११-६८

— समाप्त —